भा०दि०जैनसंघग्रन्थमालायाः प्रथमपुष्पस्य पञ्चमो दलः

श्रीयतिवृषभाचार्यरचितचूणिसूत्रसमन्वितम् श्रीभगवद्गुणधराचार्यप्रणीतम्

क सा य पा हु डं

तयोश्च

श्रीवीरसेनाचार्यविरचिता जयधवला टीका

[पंचमोऽधिकारः अणुभागविहत्ती]

सम्पादकौ

पं० फूलचन्द्रः

सिद्धान्तशास्त्री

सम्पादक महाबन्धः सहसम्पादक

धवला

पं० कैलाशचन्द्र

सिद्धान्तरत्न, सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ प्रधान अध्यापक स्याद्वाद महाविद्यालय

काशी

प्रकाशक

मंत्री साहित्य विभाग

भा० दि० जैन संघ, चौरासी मथुरा

वि॰ सं॰ २०१३]

वीरनिर्वाणाब्द २४८३

िई० स० १९५६

मृस्यं रूप्यकद्वादशकम्

भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य

पाकृत संस्कृत आदि में निवद्ध दि॰ जैनागम, दर्शन, साहित्य, पुराण आदिका यथासम्भव हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन करना

सञ्चालक

भा० दि० जैनसंघ

ग्रन्थाङ्क १−५

प्राप्तिस्थान मैनेजर भा**े दि॰ जैन संघ** चौरासी. मथुरा

मुद्रक-शिवनारायण उपाध्याय, नया संसार प्रेस, बाराणसी।

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala No. 1-V

KASĀYA-PĀHUDAM V (ANUBHAG VIHATTI) BY

GUNADHARACHARYA

WITH

CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA

AND

THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF VIRASENACHARYA THERE-UPON

EDITED BY

Pandit Phulachandra Siddhantashastri,

EDITEOR MAHABANDHA JOINT EDITOR DHAVALA,

Pandit Kailashachandra Siddhantashastri

Nyayatirtha, Sidhantaratna, Pradhanadhya pak, Syadvada Digambara Jain Vidyalaya, Banaras.

PUBLISHED BY

THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT.
THE ALL-INDIA DIGMBAR JAIN SANGHA
CHAURASI, MATHURA.

VIRA-SAMVAT 2483] VIKRAMA S. 2013

[1956 A. C.

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year-]

[-Vira Niravan Samvat 2468

Aim of the Series:-

Publication of Digambara Jain Siddhanta, Darsana, Purana, Sahitya and other Works in Prakrit, Samskrit etc. Possibly with Hindi Commentary and Translation.

DIRECTOR: -

SRI BHARATAVARSIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA

NO. 1. Vol. V.

To be had from :—

THE MANAGER
SRI DIG. JAIN SANGHA.
CHAURASI, MATHURA,
U. P. (INDIA)

Printed by----S N UPADHYAYA,
AT THE NAYA SANSAR PRESS, BANARAS

800 Copies,

Price Rs. Twelve only

प्रकाशक की ओरसे

कसायपाहुड़के पाँचवें भाग अनुभाग विभक्तिको एक वर्ष पश्चात् ही प्रकाशित करते हुए . हमें हर्ष होना स्वाभाविक है। यह भाग भी डोंगरगढ़के उदारमना दानवीर सेठ भागचन्द्र जी के द्वारा दिये गये द्रव्यसे ही प्रकाशित हुआ है और आगे के भाग भी उन्हीं के द्रव्यसे प्रकाशित हो रहे हैं इसके लिये सेठ जी व उनकी धर्मपत्नी सेठानी नर्बदाबाई जी दोनों धन्यवादके पात्र हैं।

सम्पादन श्रादिका भार पूर्ववत् पं० फूलचन्द जी सिद्धान्तशास्त्री श्रीर हम दोनोंने वहन किया है। प्रेस सम्बन्धी सब भभंटोको पं० फूलचन्द्रजी ने उठाया है। एतदर्थ में पंडितजीका भी श्राभारी हूँ।

काशीमें गङ्गा तट पर स्थित स्वव्यायू छेदीलाल जी के जिन मन्दिरके नीचे के भागमें जयधवला कार्यालय श्रपने जन्म कालसे ही स्थित है और यह स्वव्यायुमाहबके सुपुत्र वाबू गएशदास जी और पौत्र बाव सालिगराम जी तथा बाव ऋपभचन्द जीके सौजन्य श्रीर धर्मप्रेमका परिचायक है, श्रतः में उनका भी श्राभारी हैं।

नय। ससार प्रेसके स्वामी पं० शिवनारायण जी उपाध्याय तथा उनके कर्मचारियोने इस भागका मुद्रण बहुत शीघ्र करके दिया, एतद्र्थ व भी धन्यवादके पात्र हैं।

जयधवला कार्यालय भदैनी,-काशी दीपावली-२४=३ केलाशचन्द्र शास्त्री मंत्री माहित्य विभाग भा० दि० जैनमघ

विषय-परिचय

प्रस्तुत अधिकारका नाम अनुभागविभक्ति है। अनुभाग फलदानशक्तिका कहते हैं। यह हो प्रकारका है—बन्धके समय जो अनुभाग प्राप्त होता है एक वह और बन्धके बाद द्वितीयादि समयोंमें जो अनुभाग रहता है एक वह । बन्धके समय प्राप्त होनेवाले अनुभागका विचार महाबन्धमें किया है । मात्र उसका यहां श्रधिकार नहीं है। यहाँ तो ऐसे श्रनभागका विचार किया गया है जो सत्ताके रूपमे बन्ध समयसं जेकर श्रवस्थित रहता है। वह बन्धकालमें जितना प्राप्त हुशा है उतना भी हो सकता है श्रीर क्रियाविशेषके कारण श्रन्यप्रकार भी हो सकता है। मोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ श्रदाईस हैं। एकबार उत्तर भेदोंका श्राश्रय लिए बिना श्रीर दुसरी बार इनका श्राध्य लेकर प्रस्तुत श्रधिकारमे श्रनुभागका सांगोपांग विचार किया गया है, इसलिए इसका श्रनुभागविभक्ति नाम सार्थक है। तदनुसार इस श्रीध-कारके दो भेद हैं - मूलप्रकृतिश्रनुभागविभक्ति श्रीर उत्तरप्रकृतिश्रनुभागविभक्ति । उसमें भी चर्णिकार श्राचार्य यतिष्टुपभने मृतप्रकृति श्रनुभागविभक्तिको सूचनामात्र की है। वीरसेनस्वामीने उसका विशेष व्याख्यान उच्चारणावृत्तिके अनुसार तेईम अनुयोगदारीका आलम्बन लेकर किया है । दे तेईस अनुयोगद्वार ये 🕻 - संज्ञा, सर्वानुभागविभक्तिः नोसर्वानुभागविभक्ति, उस्कृप्टानुभागविभक्ति, श्रनुस्कृष्टानुभागविभक्ति, जधन्यानुभागविभक्ति, अजधन्यानुभागविभक्ति, सादिअनुभागविभक्ति, अनादिअनुभागविभक्ति, ध वातु-भागविभक्ति, अध्र वानुभागविभक्ति, एक जीवकी अपेदा म्वामिन्व, काल, अन्तर, नानाजीवोंकी अपेदा भंगविचय, भागाभाग, परिमास, क्षेत्र, स्पर्शन, काला, अन्तर, भाव श्रीर श्रन्पबहुन्य । मूलप्रकृतिश्रनुभाग-विभक्ति एक है, इसलिए उसका विचार करते समय सक्षिकर्प अनुयोगहार सम्भव नहीं है।

संज्ञा--धातिसंज्ञा श्रीर स्थानसंज्ञा । जीवक श्रमुजीवी गुर्णोका बात करनेवाला होनेसे मोहनीय-कर्मकी धातिसंज्ञा है। उसमें भी यह दो प्रकारकी है--सर्वधाति श्रीर देशधाति । श्रपनेसे सम्बन्ध रखनेवाले जीवगुणका जो पूरी तरहसे बात करता है उसे सर्वधाति कहते हैं श्रीर जो पूरी तरहसे बात करनेमें समर्थ न होकर एकदेश धात करता है उसे देशधाति कहते हैं। यहाँ मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट श्रमुभाग सर्वधाति ही होता है, क्योंकि उसका उत्कृष्ट संक्लिष्ट परिणामींस संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव बन्ध करता है। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभाग सर्वधाति श्रीर देशधाति होनों प्रकारका होता है, क्योंकि उसमें जबन्य श्रमुभाग भी सम्मिलित है। जधन्य श्रमुभाग देशधाति होनों है, क्योंकि इसमें एकस्थानिक श्रमु-भागकी उपलब्धि होती है श्रीर श्रमवन्य श्रमुभाग देशधाति श्रीर सर्वधाति दोनों प्रकारका होता है, क्योंकि इसमें एकस्थानिकसे लेकर चनुःस्थानिक पर्यन्त चारों प्रकारका श्रमुभाग उज्लब्ध होता है।

कुल अनुभाग चार प्रकारका होता है - एकस्थानिक, हिस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक। जहाँ केवल लतारूप अनुभाग होता है उसकी एकस्थानिक संज्ञा है। जहाँ लता और दारुरूप अनुभाग होता है उसकी दिस्थानिक संज्ञा है। जहाँ लता, दारु क्योर अस्थिरूप अनुभाग होता है उसकी दिस्थानिक संज्ञा है। इस प्रकार स्थानसंज्ञाके चार भेद हैं। यहां इतना विशेष समम लेना चाहिए कि उत्तर अनुभागमें पूर्व अनुभाग गर्भित मान कर भी ये दिस्थानिक आदि संज्ञाएं ज्यवहत होती हैं। यद्याप लता, दारु, अस्थि और शैल ये उपमाएं मानकषायके लिए दी जाती हैं, क्योंकि उश्तरोत्तर इस प्रकारकी कठोरताका भाव उसमें सम्भव है किर भी यहाँ अनुभागकी उत्तरोत्तर तीव्रताको देखकर ये संज्ञाएं आरोपित की गई हैं। इनमेंसे लतारूप अनुभाग और दारुरूप अनुभागका अनन्तवां भाग दश्चाति माना गया है और शेष अनुभाग सर्वचाति माना गया है। मोहनीय कर्म धातिथोंमें पठित है, इसलिए संज्ञाके ये भेद शेष धातिकमोंमें भी सम्भव

हैं । श्रघाति कर्मोंमें स्थानसंज्ञाके चार भेद तो किये जाते हैं पर उनके नाम अपने अवान्तर भेदोंके साथ पुरुयकर्म श्रीर पापकर्मके भेदसे श्रन्य हैं ।

मोहनीय कर्मके कल भेद घटाईस हैं। उनकी घपेचा संज्ञाका विचार इस प्रकार है- सम्यक्त प्रकृतिके जितने देशवाति स्पर्धक हैं वे सब सम्भव हैं। सम्यग्मिथ्यात्वके प्रथम सर्ववाति स्पर्धकसे लेकर दारु समान स्पर्धकोंके श्रनन्तवें भागतक ही स्पर्धक उपलब्ध होते हैं। मिथ्यात्वके जहाँ सम्यग्निथ्यात्वका श्चन्तिम स्पर्धक समाप्त होता है वहाँ से लेकर श्रागेक सब सर्वजाति स्पर्धक पाये जाते हैं । चार संज्वलनोंको छोडकर शेप बारह कपायों के दिस्थानिक सर्वधाति स्पर्धकसे लेकर आगेके सब स्पर्धक होते हैं। चार संज्वलन श्रौर नो नोकपायोंके देशवाति श्रौर सर्ववाति सब स्पर्धक होते हैं। यहाँ मिथ्यात्वादि कर्मीके श्रनुभागरपर्धक यद्यपि श्रागे श्रन्ततकके कहे हैं फिर भी उनमें तारतम्य है जिसका विशेष ज्ञान महाबन्धके श्रलपबहत्वसे कर लेना चाहिए। इस प्रकार इन प्रकृतियोंकी स्पर्धक रचनाका परिज्ञान करके इनमें घाति-सज्जा श्रोर स्थानसंज्ञाका जहापोह कर लेना चाहिए। खुलासा इस प्रकार है--मिथ्याख, सम्यामिथ्याख, बारह कपाय श्रीर छह नोकपायोंका उन्कष्ट, श्रनन्त्रष्ट, जधन्य श्रीर श्रन्थन्य चारों प्रकारका श्रन्भाग सर्वधाति ही होता है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका जवन्य श्रनुभाग भी सर्वधाति होता है। यहाँ छह नोकपाथों का जधन्य श्रोर श्रनत्कृष्ट श्रनुभाग भी चूर्णिसूत्रकारने विवसाभेदसे सर्वधात स्वीकार किया है। शेप रहीं चार संज्वानन श्रीर तीन वेट ये सात प्रकृतियां सो इनका उत्कृष्ठ श्रानुभाग सर्वेवाति ही होता है, क्योंकि वह चतुःस्थानिक होता है। श्रनुस्कृष्ट श्रनुभाग सर्वधाति श्रीर देशघाति दोनों प्रकारका होता है, क्योंकि इसमें एकस्थानिक जयन्य अनुभाग भी सम्मिलित है। तथा इनका जयन्य अनुभाग देशवाति होता है, क्योंकि चपकश्री शिमं अपने अपने योग्य स्थानमे वह एकस्थानिक ही उपलब्ध होता है। तथा इनका श्चज्ञघन्य श्चनभाग सर्वपाति श्रीर देशवाति दोनों प्रकारका होता है । कारणका विचार कर कथन कर लेना चाहिए। स्थान संज्ञाकी दृष्टिसे विचार करनेपर कहाँ किस स्थानरूप ब्रनुभाग प्राप्त होता है इसका परिज्ञान कोष्ठकटारा कराया जाता है-

प्रकृति	उत्कृष्ट	श्रनुःकृष्ट	जघन्य	श्रजधन्य
मिध्यात्व, बारह- कपाय छह नोकपाय	चतुःस्था०	चतुः, त्रि०, द्वि०	द्विस्था •	द्वि०. त्रि०, च०,
सम्यक्तव	द्धिस्था०	हि०, एक०	एकस्था ०	एक०, द्वि०
सम्यग्मिथ्याःव	हिस्था०	हिस्था०	द्विस्था ०	द्विस्था ०
चार संज्वलन, पुरुपवेद	चतुः	च॰, त्रि॰, द्वि॰, एक॰	एकस्था ०	एक०, द्वि०, त्रि०, चतुः
खीवेद, नपुंसक- वेद	चतुः	च०, त्रि०, हि०, एक०	एकस्था ०	द्वि०, त्रि०, चतुः

स्त्रीवेदी श्रीर नपुंसकवेदी जीवोंके स्वोदयसे चपकश्रीण पर चढने पर झन्तिम निषेकके उदय समयमें एकस्थानिक जघन्य श्रनुभाग होता है. इसिकिए इन दोनों वेदोंका श्रजवन्य श्रनुभाग एकस्थानिक नहीं कहा है। सर्वविभक्तिःनासर्वविभक्ति— सर्वविभक्तिमे सब अनुभाग श्रीर नोसर्वविभक्तिमें उससे कम अनुभाग विविचित है। मूल श्रीर उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे यह यथायोख घटित कर लेना चाहिए।

उत्कृष्ट-श्रनुत्कृष्टविभक्ति — सर्वोत्कृष्ट श्रन्तिम स्पर्धककी श्रन्तिम वर्गणाका श्रनुभाग उत्कृष्टविभक्ति कहलाता है श्रीर उससे न्यून श्रनुभाग श्रनुकृष्ट विभक्ति कहा जाता है। यह भी श्रपने श्रपने श्रनुभागका विचार कर घटित कर लेना चाहिए।

जघन्य-त्रजघन्यविभक्ति — सबसे जघन्य स्थानकी श्रन्तिम वर्गणाका श्रनुभाग या श्रन्तिम रूष्टिका श्रनुभाग जघन्यविभक्ति है त्रौर इससे श्रिषिक श्रनुभाग श्रजघन्यविभक्ति है जो मूल श्रौर उत्तर प्रकृतियोंमें यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए।

सादि अनादि-ध्रुव-अध्रुविभक्ति— मूल प्रकृतिकी अपेषा जधन्य अनुभाग सूष्मसाम्परायिक प्रपक्के होता है, अतः जधन्य अनुभाग सादि और अध्रुव कहा है। इसके पूर्व सब अनुभाग अजधन्यरूप रहता है, इसिलए अजधन्य अनुभाग अनादि तो है ही साथ ही वह भव्यकी अपेषा अध्रुव और अभव्यकी अपेषा ध्रुवरूप होनेसे सादिविकल्पके सिवा तीन प्रकारका कहा है। उत्कृष्ट अनुभाग और अनुत्कृष्ट-अनुभाग कदाचित् होते हैं, इसिलये इनमें सादि और अध्रुव ये दो हो विकल्प बनते हैं। उत्तरप्रकृतियों की अपेषा विचार करनेपर चार संज्वलन और गो नोकपायोंका अजधन्य अनुभाग तो अनादि, ध्रुव और अध्रुव के भेदसे तीन प्रकारका है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका जधन्य अनुभाग स्वप्कश्रेणिमें प्राप्त होनेसे अजधन्य अनुभागमं सादि विकल्पके सिवा शेप तीन विकल्प बन जाते हैं। तथा इन १३ प्रकृतियोंका शेप तीन प्रकारका अनुभाग और इनके सिवा शेप प्रकृतियोंका चारों प्रकारका अनुभाग कादाचित्क होनेसे सादि और अध्रुव है।

स्वामित्य - स्वामित्व दो प्रकारका है - उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका स्वामित्व श्रीर जघन्य श्रनभाग-विभक्तिका स्वामित्व । मोहनीयका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चोन्द्रय पर्याप्त जीव करता है, इसलिए वह तो उल्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका स्वामी है हो । साथ हो उसका घात हुए बिना ऐसे जीवके एकेन्द्रिय मादि मन्य पर्यायोमें मरकर उत्पन्न होने पर एकेन्द्रिय म्रादि भ्रन्य जीव भी मोहनीयके उत्कृष्ट ग्रनुभाग विभक्तिके स्वामी हैं। मात्र भोगभूमिके तिर्यक्ष श्रोर मनुष्य तथा श्रानतादिकके देव उत्कृष्ट श्रनुभाग-विभक्तिके स्वामी नहीं होते, क्योंकि एक तो उन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंकी इनमें उत्पत्ति नहीं होती। दुसरे इन जीवोंके उत्क्रष्ट अनुभागका बन्य नहीं होता। सामान्यसे मोहनीयका जधन्य अनुभाग चपक-श्री शिमें प्राप्त होता है, इसलिए श्रन्तिम समयवर्ती सूक्तमसाम्पराय चपक जीव जघन्य श्रनुभागविभक्तिका स्वामी है। मोहनीयके श्रवान्तर भेदोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय श्रीर नो नोकपायोंकी उत्कृष्ट श्रनुभाग, विभक्तिका स्वामी मोहनीय सामान्यकी अपेत्रा जो स्वामित्व कहा है उसके ही समान है। तथा सम्यक्त श्रीर सम्यग्मिथ्यात्वकी उन्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका स्वामी उनकी सत्तावाजे सब जीव हैं। मात्र दर्शनमोहनीयकी चपणा करनेवाला जीव उत्कृष्ट श्रनुभागका घात करनेके बाद उसका स्वामी नहीं है। तथा मिथ्यावकी जधन्य श्रनुभागविभक्तिका स्वामी सूक्त्म निगोद श्रपर्याप्त जीव होता है, क्योंकि मिथ्यात्वके अनुभागका वात होकर सबसे जघन्य अनुभाग इसीके शेप रहता है, स्रोर वह घात किये गये उक्त अनुभागके साथ स्रन्य एकेन्द्रियोंमें व द्वीन्द्रिय स्रादिमें उत्पन्न होकर जब तक उसे नहीं बहाता है तब तक ये जीव भी मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिके स्वामी होते हैं। देव, नारकी स्रोर श्रमंख्यातवर्षकी श्रायुवाले तिर्यञ्ज स्रोर मनुष्य जवन्य श्रनुभागविभक्तिके स्वामी नहीं होते. क्योंकि इनमें सुदम निगोद श्रवर्याप्त जीवोंकी मरकर उत्पत्ति सम्भव नहीं है। इसी प्रकार मध्यकी ग्राठ कषायोंकी जघन्य श्रनुभागविभक्तिका स्वामित्व जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी जघन्य श्रुनुभागविभक्तिका स्वामी दर्शनमोहनोयकी चपणा करनेवाला श्रन्तिम समयवर्ती चपक जीव होता है। सम्यग्निश्यात्वकी जवन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी दर्शनमोहनीयकी उपलाके समय अपने अस्तिम

श्रनुभागकारहकका पतन करनेवाला जीव होता है। श्रनन्तानुबन्धीकी जबन्य श्रनुभागविभिक्तका स्वामी विसंयोजनाके बाद उससे संयुक्त होनेके प्रथम समयमें होता है। यद्यपि इस समय शेप कपायोंका अनुभाग श्चनन्तानबन्धीरूपसे संकात होता है फिर भी वह उस समय बँधनेवाले श्रनुभागरूप परिणम जाता है, इसलिए वह अनुभाग सूच्म निगोद अपर्याप्तके अनुभागसे अनन्तगुणा हीन होता है। यही कारण है कि धनन्तानुबन्धीचतुष्कके जधन्य श्रनुभागका स्वामित्वं सुद्मा निगोद श्रपर्याप्त जीवको न देकर श्रनन्तानु-बन्धीके विसंयोजनाके बाद पुनः संयोजना होनेवाले जीवको संयोजना होनेके प्रथम समयमें दिया है। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ श्रीर तीन वेदोंका जवन्य श्रनभाग स्वीदयसे चपकश्रेणि पर चड़े हुए जीवके अपनी अपनी चपणाके श्रन्तिम समयमें प्राप्त होता है, इसलिए उस अवस्था विशिष्ट जीव इनकी जबन्य ग्रनभागविभिनतका स्वामी है तथा छह नोकपायोंकी जबन्य ग्रनुभागविभिनतका स्वामी भी उनकी श्रन्तिम फालिका पतन करनेवाला चपक जीव होता है। यह स्वामित्वका विचार गति श्रादि मार्गणात्रोंका श्राश्रय लिए बिना किया है। गति श्रादि मार्गणाश्रोंम जहाँ श्रोधप्ररूपणा सम्भव है वहाँ श्रोवके समान जानना चाहिए । श्रन्यत्र श्रन्य विशेषताश्रोंको जानकर घटित कर लेना चाहिए । उदाहरलार्थ नरकमें श्रीर देवोंमें श्रमंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होते हैं इसलिए वहाँ उत्पन्न हुए हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले ऐसे जीवके मिथ्यात्व, बारह कपाय श्रीर नी नोकपायोंके जघन्य श्रनभाग-विभिन्तका स्वामित्व कहा है । सम्यक्वकी जधन्य ग्रनभागविभिन्तका स्वामित्व पूर्ववत् है । सम्यग्मिथ्यात्व का जबन्य स्वामित्व वहाँ सम्भव नहीं, क्योंकि चप्णाको छोड़कर श्रम्यत्र उसका श्रनुभागकाएडकघात नहीं होता। अनन्तानुबन्धीका जबन्य स्वामित्व भी पूर्ववत् है। श्रपनी अपनी विशेषताको जानकर इसीप्रकार श्रन्यत्र भी स्वामित्व बटित कर लेना चाहिए।

काल-सामान्यसे मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागका जवन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है, क्योंकि इसके उन्कृष्ट अनुभागका बन्ध होनेके बाद उसका अन्तर्सु हुर्तमें नियमसे घात हो जाता है। इसके अनुस्कृष्ट श्रनुभागका जवन्य काल श्रन्तमु हुर्त है, क्योंकि श्रनभागके श्रनुकृष्ट होने पर बन्धद्वारा उसके उत्कृष्ट होनेमें कमसे कम श्रन्तमुं हुर्त काल लगता है और उन्कृष्ट काल श्रसंख्यात पुरुगल परिवर्तन प्रमाण है, क्योंकि एकेन्द्रियोंमें उक्तकाल तक परिश्रमण करने पर वहाँ उत्कृष्ट श्रन्भागकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसी प्रकार मिध्यात्व, सोलह कवाय श्रीर नो नोकपायोंका काल पूर्वेक्त प्रकारसे घटित कर लेना चाहिए। सम्यक्त श्रीर सम्यामिथ्यात्वकी उन्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका जधन्य काज श्रन्तर्सुहूर्त है, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता होनेपर अन्तर्भ हुर्त कालके भीतर उनकी सप्ता सम्भव है स्रीर उत्कृष्ट काल साधिक दो छ्यासर सागर है, क्योंकि इतने काल तक इनकी सत्ता बनी रहनेमें कोई बाधा नहीं स्नाती। यहाँ साधिकसे कितना काल लिया जाय इस विषयमे श्राचार्योंमें मतभेद है। इसके लिए मूलप्रन्थ पृ० १८८ देखिए। इनके श्रनुकृष्ट श्रनुभागविभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मु हुर्त है, क्योंकि इनकी चपणाके समय प्रथम काएडक घातसे लेकर इनकी चपणामें इतना काल अवश्य लगता है। मोहनीयके जधन्य श्रनुभागका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है, क्योंकि चपक सूक्ससाम्परायके श्रन्तिम समयमं इसकी प्राप्ति होती है। तथा इसके पहले वह अजवन्य होता है, इसलिए अजवन्य अनुभागको अभन्योंकी श्रपेचा श्रनादि-श्रनन्त श्रीर भव्योंकी श्रपेचा श्रनादि-सान्त इस तरह दो प्रकारका कहा है । उत्तर प्रकृतियों की श्रपेला मिथ्यात्वके जवन्य श्रनुभागका जवन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मु हूर्त है, क्योंकि हतसमुत्पत्तिक कर्मके श्रवस्थानका इतना काल है। इसके श्रजधन्य श्रनुभागका जधन्य काल श्रन्तमुं हूर्त है, क्योंकि जवन्य श्रनुभाग सत्कर्मवाला जीव श्रजवन्य श्रनुभागको प्राप्त होकर कमसे कम श्रन्तमुं हुर्त काल तक इस श्रनुभागके साथ श्रवश्य ही रहता है। तथा उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोक प्रमाण है, क्योंकि श्रनभाग-बन्धा यवसान परिणाम श्रमंख्यात लोकप्रमाण बतलाए हैं । मिथ्यात्वके समान ही सम्यग्मिथ्यात्व, श्राठ कपाय श्रीर छह नोकपायोंके जबन्य श्रनभागका जबन्य श्रीर उन्क्रष्ट काल घटित कर लेना चाहिए। मात्र-

सम्यग्निध्यात्वके श्रजवन्य श्रन्भागका जवन्य काल श्रन्तमुं हूर्त श्रौर उन्कृष्ट काल पल्यके तीन श्रसंख्यातवें भाग श्रिक दो ह्यास्ट सागरप्रमाण है। सम्यक्त्वके श्रजवन्य श्रनुभागका जवन्य श्रौर उन्कृष्ट काल भी सम्यग्निध्यात्वके समान है। मात्र सम्यक्त्वके जवन्य श्रनुभागका जवन्य श्रौर उन्कृष्ट काल एक समय है, क्योंकि इसकी चपणांके श्रन्तिम समयमें इसका जवन्य श्रनुभाग उपलब्ध होता है। इसी प्रकार श्रपने श्रपने स्वामित्वके श्रनुसार श्रनन्तानुबन्धीचतुष्क. चार संज्वलन श्रौर तीन वेदोंके जवन्य श्रनुभागका काल एक समय विदेत कर लेना चाहिए। इनमेंसे श्रनन्तानुबन्धीके श्रजवन्य श्रनुभागके श्रनादि-श्रनन्त, श्रनादि सान्त श्रौर सादि-सान्त ये तीन भङ्ग श्रास होते हैं। सादि-सान्तका जवन्य काल श्रन्तमुं हूर्त श्रौर उन्कृष्ट काल कुछ कम श्रधंपुःगल परिवर्तन्यमाण है। कारण स्पष्ट है। चार संज्वलन, तीन वेद श्रौर छह नोकपायोंके श्रजवन्य श्रनुभागके दो भङ्ग होते हैं —श्रनादि-श्रनन्त श्रोर श्रनादि सान्त। तथा श्राठ कपायोंके श्रजवन्य श्रनुभागका काल मिध्यात्वके समान है। इस प्रकार यह सामान्यसे कालका विचार किया है। गति श्रादि मार्गणाश्रोमें श्रवनी श्रवनी विशेषता जानकर काल ले श्राना चाहिए।

श्चन्तर - सामान्यसे मोहनीयके उन्हृष्ट श्चनुभागका जघन्य श्चन्तर श्चन्तर्मु हूर्त है, क्योंकि उन्हृष्ट श्रनुभागका घात होकर श्रन्तर्मु हूर्तमें पुनः उसकी प्राप्ति सम्भव है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्तकाल प्रमाण है, क्योंकि पञ्जेन्द्रियके एकेन्द्रियादि पर्यायमें इतने काल तक रहने पर उन्कृष्ट श्रनुभागका इतना अन्तर देखा जाता है। ऋनुश्हष्ट ऋनुभागका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट ऋन्तर ऋन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका जवन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मु हुर्त है। उत्तरव्रकृतियोंकी श्रपेत्ता मिध्यात्व, सोलह कपाय श्रीर नौ नोकपायोंके उन्कृष्ट श्रनुभागका जवन्य श्रन्तर श्रम्तर्मुहूर्त है, क्योंकि घात हारा **धनु**ल्हृष्ट श्रनुभाग होकर कमसे कम श्रन्तर्मुहूर्त कालमें पुनः उसकी प्राप्ति सम्भव है श्रीर उत्कृष्ट श्चन्तर श्रसंख्यात पुद्गत्वपरिवर्तन प्रमाण है, क्योंकि कोई पञ्चेन्द्रिय उक्टप्ट श्रनुभागका वात कर श्रविक से श्रिधिक इतने काल तक एकेन्द्रियोंमें परिश्रमण करनेके बाद संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होकर पुनः उसका बन्ध करता है । श्रनन्तानुबन्धी चनुष्कको छोड़ कर इनके श्रनुस्वृष्ट श्रनुभागका जधन्य श्रीर उन्कृष्ट श्रन्तर श्चन्तर्मुहर्त है. क्योंकि इनके उन्कृष्ट श्रनुभागका जवन्य श्रीर उन्कृष्ट काल श्वन्तर्मुहर्त बतलाया है। श्चनन्तानुबन्धी के श्चनुत्कृष्ट श्चनुभागका जधन्य श्वन्तर श्वन्तर्मु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्वन्तर कुछ कम दो छ्यासट सागर प्रमाण है, क्योंकि इसकी विसंयोजना होकर इतने काल तक इसका श्रभाव रहता है। सम्यक्त श्रीर सम्यग्निध्यात्वके उन्कृष्ट अनुभागका जयन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उन्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, क्योंकि इनकी उद्देलना होकर कमसे कम एक समय तक श्रीर श्रविकसे श्रविक कुछ कम श्रर्थपुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल तक उनका स्रभाव देखा जाता है । इनके श्रनुकृष्ट श्रनुभागका अन्तर सम्भव नहीं है, क्योंकि उसकी प्राप्ति इनकी चपणाके समय होती है । सामान्यस मोहनीयके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका श्रन्तर नहीं होता, क्योंकि माहनीयका जघन्य श्रनुभाग एपक सूक्रमलाम्पराय के म्रन्तिम समयमे होता है, इसितिए इसका तो म्रन्तर हो ही नहीं सकता म्रीर इसके पहले म्रजघन्य श्रनभाग रहता है, इसलिए उसका भी श्रन्तर सम्भव नहीं है। श्रलग श्रलग प्रकृतियोंकी श्रपेत्ता विचार करने पर सम्यक्त्व, सम्याग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन कपाय श्रीर नौ नोकपायोंके जधन्य श्रनुभागका तो श्रन्तर सम्भव नहींहे, क्योंकि चपणाके पूर्व इनकी सत्ता नियमसे बनी रहती है । हाँ सम्यक्त श्रीर सम्यग्निध्यात्वके श्वजघन्य श्रनुभागका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रर्घपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि उद्वे जना होकर इनका उक्त काल तक श्रन्तर देखा जाता है । मिथ्याख श्रीर श्राठ कपायोंके जघन्य अनुभागका जधन्य अन्तर श्रन्तर्मु हूर्त है, क्योंकि जबन्य अनुभागकी सत्तावाला सूदम निगोद श्रपर्याप्त जीव अजधम्य अनुभागका बन्धकर अन्तर्मु हुर्तमं धात द्वारा पुनः उसे जधन्य कर सकता है श्रीर उत्कृष्ट श्चन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है, क्योंकि जघन्य अनुभागकी सत्तावाला सूचम एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव **भ**जधन्य **भनुभागका बन्धकर भसंख्यात लोकप्रमाया** घातस्थान परियामोंमें उतने ही काल तक परिश्रमया

करके यदि श्रन्तमें जघन्य श्रमुभागको प्राप्त होता है तो इनके जघन्य श्रमुभागका उक्त कालप्रमाण उत्कृष्ट श्रन्तर देखा जाता है। इनके श्रजधन्य श्रमुभागका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त है, क्योंकि इनके जघन्य श्रमुभागका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हुर्त बतला श्राये है। श्रमन्तानुबन्धीचनुष्कके जघन्य श्रमुभागका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्तविभाण है, क्योंकि इनके संयुक्त होनेके प्रथम समयसे लेकर पुनः विसंयोजनाक संयुक्त होनेमें कमसे कम श्रन्तमुं हुर्त काल लगता है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ्कम श्र्यपुरगलपरिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि जो श्रनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व पूर्वक इनकी विसंयोजना करके मिथ्यात्वमें जाकर इनसे संयुक्त होता है उसके पुनः उपार्थपुरगल परिवर्तनमें कुछ काल शेष रहने पर इस क्रियाके करने पर उत्कृष्ट श्रन्तर उक्त श्रमाण देखा जाता है। इनके श्रजघन्य श्रमुभागका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हुर्त काल तक श्रोर श्रिवक्त श्रिक कुछ्कम दो छ्यासउ सागरप्रमाण है, त्योंकि इन प्रकृतियोंका कमसे कम श्रन्तमुं हुर्त काल तक श्रोर श्रिवक्त श्रिक कुछ्कम दो छ्यासउ सागर काल तक श्रभाव रहकर मिथ्यात्वके प्राप्त होनेपर दितीय समयमें पुनः इनका श्रजधन्य श्रमुभाग देखा जाता है। इसपकार यह सामान्यसे श्रन्तरका विचार किया है। गति श्रादिकी श्रपेत्ता श्रपने श्रपने स्वामित्वको देखकर श्रन्तर ले श्राना चाहिए।

नाता जीवाकी अपेद्धा भङ्गविचय-मोहनीयसामान्यकी अपेद्धा कदाचित् एक भी जीव उत्कृष्ट श्रनुभागवाला नहीं होता, कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट श्रनुभागवाला होता है श्रौर कदाचित् नाना जीव *उत्कृ*ष्ट त्रनुभागवाले होते हैं हसलिए उत्कृष्ट श्रनुभागकी श्रपेत्ता तीन भन्न होते हैं। यथा — १ कदाचित् सव जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित होते हैं, २ कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित होते हैं श्रीर एक जीव उरहरूट अनुभागसे युक्त होता है तथा ३ कदाचित् नाना जीव उरहरूट अनुभागसे रहित होते हैं थोर नाना जीव उस्कृष्ट अनुभागसे युक्त होते हैं। किन्तु श्रनुस्कृष्ट श्रनुभागकी श्रपेत्ता इन तीन भक्नोंसे विपरीत भङ्ग जानने चाहिए । यथा -- १ कदाचित् सब जीव श्रनुस्कृष्ट श्रनुभागवाले होते हैं, २ कदाचित् नाना जीव अनुस्कृष्ट अनुभागवाले हाते हैं और एक जीव अनुस्कृष्ट अनुभागसे रहित होना है तथा ३ कदाचित् बहुत जीव स्रुनुस्कृष्ट स्रुनुभागवाले होते हैं स्त्रीर बहुत जीव श्रनुस्कृष्ट स्रुनुभागसे रहित होते हैं। कारण स्वष्ट है। सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिथ्यात्वको छोडकर शेप मिथ्यात्व श्रादि छुट्बीस प्रकृतियोंकी श्रपेत्ता भी इसी प्रकार भङ्ग जानने चाहिए । किन्तु सम्यक्त्व श्रोर सम्यग्मिध्यात्वकी श्रपेत्ता १ कदाचित् सव जीव उन्कृष्ट अनुभागसे युक्त होते हैं, २ कदाचित् नाना जीव उन्कृष्ट अनुभागसे युक्त होते हैं स्रोर एक जीव उन्कृष्ट अनुभागसे रहित होता है तथा ३ कदाचित् नाना जीव उन्कृष्ट अनुभागसे युक्त होते हैं और नाना जीव उन्कृष्ट श्रनुभागसे रहित होते हैं । तथा श्रनुःकृष्ट श्रनुभागकी श्रपेंचा १ कदाचित् सब जीव श्रनुन्कृष्ट श्रनुभागसे रहित होते हैं, २ कदाचित् नाना जीव श्रनुन्कृष्ट श्रनुभागसे रहित होते हैं श्रीर एक जीव श्रनुःकृष्ट श्रनुभागसे युक्त होता है तथा ३ कदाचित् नाना जीव श्रनुःकृष्ट श्रनुभागसे रहित होते हैं श्रीर नाना जीव श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागसे युक्त होते हैं इस प्रकार ये तीन भङ्ग होते हैं। जवन्य श्रनुभागकी श्रपेत्ता मोहनीय सामान्यका विचार करने पर १ कदाचित् सब जीव जवन्य श्रनुभागसे रहित होते हैं, २ कदाचित् नाना जीव जघन्य श्रनुभागसे रहित होते हैं ग्रौर एक जीव जघन्य श्रनुभागसे युक्त होता है तथा ३ कदाचित् नाना जीव जघन्य श्रनुभागले रहित होते हैं श्रीर नाना जीव जघन्य श्रनुभागले युक्त होते हैं। श्रज्ञचन्यकी श्रपेका १ कदाचित सब जीव श्रज्जज्ञन्य श्रनुभागसे युक्त होते हैं। कदाचित् श्रनेक जीव श्रजधन्य श्रनुभागसे युक्त होते हैं श्रीर एक जीव श्रजधन्य श्रनुभागसे रहित होता है तथा रै कदाचित् श्रनेक जीव श्रज्यन्य श्रनुभागसे युक्त होते हैं श्रीर श्रनेक जीव श्रज्ञघन्य श्रनुभागसे रहित होते हैं। उत्तर प्रकृतियोंकी भ्रपेत्रा विचार करने पर मिध्यात्व भ्रोर भ्राठ कपार्योकी भ्रपेत्रा तो जघन्य श्रनुभागवाले भी बहुत जीव होते हैं ग्रीर अजघन्य ग्रनुभागवाले भी बहुत जीव होते हैं। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी श्रदेचा जधन्य श्रनुभाग श्रीर श्रजधन्य श्रनुभागवालोंके मोहनीय सामान्यकी श्रपेषा जो तीन तीन भङ्ग कहे हैं वे हो यहांपर कहने चाहिए। इस प्रकार यह सामान्यसे विचार किया है। गति श्रादि मार्गणाश्रोंमें श्रपनी श्रपनी विशेषता व स्वामित्वको जानकर भङ्ग ले श्राना चाहिए।

भागाभाग-मोह सामान्यका उत्कृष्ट श्रनुभाग संज्ञी पञ्चीन्द्रय जीव करते हैं, इसलिए इनके श्रीर ये इस श्रनुभागके साथ श्रन्य एकेन्द्रियादिमें जाते हैं उनके मात्र उत्कृष्ट श्रनुभाग सम्भव है, श्रतः मोहनीयके उत्कृष्ट श्रनुभागवाले सब जीवोंके श्रनन्तवं भागप्रमाख होते हैं श्रोर श्रनुकृष्ट श्रनुभागवाले सब जीवोंके श्रनन्त बहुभाग प्रमाण होते हैं। मोहनीयकी छटबीस उत्तर प्रकृतियोंकी श्रपेत्ता उत्कृष्ट श्रीर श्रनुन्कृष्ट श्रनुभागवालोंका यही भागाभाग जानना चाहिए, क्योंकि स्वामित्वकी श्रपेत्ता मोहनीय सामान्यसे यहाँ कोई भेद नहीं है । मात्र सम्यक्त श्रीर सम्यग्मिध्यात्वकी सत्तावाले कुल जीव ही श्रसंख्यात होते हैं, इसलिए इनमे उत्कृष्ट श्रनुभागवाले श्रसंख्यात बहुभागप्रमाण होते हैं श्रीर श्रनत्कृष्ट श्रनुभागवाले श्चसंख्यात एक भागप्रमाण होते हैं यह भागाभाग बटित होता है। कारण इनका श्रनुकृष्ट श्रनुभाग चपर्णाके समय ही सम्भव है, इसलिए वे संख्यात ही होते हैं। शेष श्रसंख्यात जीव उत्कृष्ट श्रनुभागवाले होते हैं। जघन्य अनुभागकी अपेचा मोहनीयके जघन्य अनुभागवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाख होते हैं, क्योंकि मोहनीयका जवन्य श्रनुभाग चपकश्रीलमें प्राप्त होता है श्रीर श्रजवन्य श्रनुभागवाले श्रनन्त बहुभाग प्रमाण होते हैं। उत्तर प्रकृतियोंका विचार करने पर ग्रनन्तानुबन्धीचनुष्क, चार संज्वलन ग्रीर नी नोकपायोंका भागाभाग इसी प्रकार जानना चाहिए। तथा शेष प्रकृतियोंकी श्रपेत्ता जबन्य श्रनुभागवाले श्रसंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं श्रीर श्रजवन्य श्रनुभागवाले जीव श्रसंख्यात बहुभागप्रमाण होते हैं। कारणका ज्ञान स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। मार्गणात्रोंमें भी इसी प्रकार स्वामित्वको देखकर भागाभाग ले श्राना चाहिए।

परिमाण — मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव असंख्यात हैं और अनुस्कृष्ट अनुभागवाले जीव अनन्त हैं। छुव्बीस प्रकृतियोंकी अपेचा यही परिमाण जानना चाहिए। मात्र सम्यक्त्व और सम्यिम्ध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव असंख्यात हैं और अनुस्कृष्ट अनुभागवाले जीव संख्यात हैं। जवन्यकी अपेचा मोहनीयके जवन्य अनुभागवाले जीव संख्यात हैं श्रीर अजधन्य अनुभागवाले जीव अनन्त हैं। चार संज्वलन और नो नोकपायों की अपेचा इसी प्रकार परिमाण जानना चाहिए। मिध्यात्व और आठ कपायोंकी अपेचा जधन्य और अजधन्य अनुभागवाले दोनों प्रकारके जीव अनन्त हैं। सम्यक्त्व और सम्यिम्ध्यात्वकी अपेचा जधन्य अनुभागवाले जीव संख्यात हैं और अजधन्य अनुभागवाले जीव असंख्यात हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेचा जधन्य अनुभागवाले जीव असंख्यात हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेचा जधन्य अनुभागवाले जीव असंख्यात हैं और अजधन्य अनुभागवाले जीव असंख्यात हैं। कारणका ज्ञान स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। तथा भागाभागमें भी हम कारणका उत्लेख कर आये हैं, इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए। मार्गणाओंमे अपनी विशेषताको जानकर परिमाण ले आना चाहिए।

चेत्र—मोहनीयक उन्कृष्ट श्रनुभागवालोंका क्षेत्र लोकके श्रसंस्यातवे भागप्रमाण है. क्योंकि ये स्वल्प होते हैं, श्रतः इनका वर्तमान क्षेत्र लोकके श्रसंख्यातवे भागप्रमाणमे श्रियक नहीं हो सकता श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवालोंका सर्व लोक क्षेत्र है। कारण स्पष्ट है। उत्तर छुव्बीस प्रकृतियोंकी श्रपेचा इनका इसी प्रकार क्षेत्र घटित कर लेना चाहिए। तथा सम्यक्त और सम्यिमध्यात्वके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि इनकी सत्ता जो सम्यक्त्वको प्राप्त कर मिथ्यादिष्ट हो गये हैं, जो वर्तमानमें सम्यक्त्व श्रीर सम्यिमध्यात्वकी उद्वेलना होनेक पूर्व सम्यक्त्वको प्राप्त कर रहे हैं या जो उपशम तथा वेदकसम्यक्त्व सिहत हैं उनके ही होती है। उसमें भी जिन्हें मिथ्यादिष्ट हुए पल्यके श्रसंख्यातवे भागसे श्रियक काल नहीं हुन्ना है उनके ही उनकी सत्ता होती है। मोहनीयकी जघन्य श्रनुभागविभक्तिवालोंका क्षेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण हें श्रीर श्रजवन्य

अनुभागविभिक्तवालोंका क्षेत्र सर्व लोक है। श्रनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन श्रोर नौ नोकषायोंकी श्रपेत्ता इसी प्रकार क्षेत्र जानना चाहिए। मिध्यात्व श्रोर श्राठ कपायवालोंमें जघन्य श्रोर श्रजघन्य श्रमुभागवालोंका सर्व लोक क्षेत्र है। तथा सम्यक्त्व श्रोर सम्यग्यिथ्यात्ववालोंमें जघन्य श्रोर श्रजघन्य दोनों अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकके श्रमंख्यातवें भागप्रमाण है। सर्वत्र कारण स्पष्ट है। मार्गणाश्रोमें भी इसी प्रकार क्षेत्र ले श्राना चाहिए।

स्पर्शन -- मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंने वर्तमानकी अपेचा लोकके असंख्यातवें भागका, विहारवस्वस्थानकी अपेचा त्रसनाजीके चौदह भागोंमेंसे कुछकम आउ भागका और मारणान्तिक तथा उपपादगढकी अपेता सर्वलोकका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवाजोंने सर्व लोकका स्पर्शन किया है। मोहनीयकी छव्बीस उत्तर प्रकृतियोंकी अपेता इसी प्रकार सार्शन जानना चाहिए। सम्यक्त श्रीर सम्यामिथ्यात्वके उत्कृष्ट श्रनुभागवान्तींका भी मोहनीयके उत्कृष्ट श्रनुभागवान्तींके समान स्पर्शन बन जाता है पर श्रमुकुष्ट श्रमुभागवालोंका स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण हो प्राप्त होता है, क्योंकि चायिक सम्यक्त्वको प्राप्तिके समय ही यह अनुभाग सम्भव है। जवन्यकी अपेत्रा मोहनीयका जवन्य श्रनुभाग चपकश्रे शिमं होता है, इसलिए उससे युक्त जीवोंका रार्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाख है श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागवालोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है, क्योंकि ये सर्व लोकमें पाये जाते हैं। चार संज्वलन श्रीर नौ नोकपायोंकी श्रपेत्ता इसी प्रकार स्वर्शन है। कारण पूर्वे क ही है। मिथ्यात्व श्रौर श्राठ कपायोंके जबन्य श्रौर श्रजबन्य श्रन्भागवालींने सर्व लोकका स्वर्शन किया है। कारण सगम है। सम्यक्त श्रीर सम्यग्मिश्यात्वक जबन्य श्रमभागवालींने लोकके श्रमंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है, क्योंकि चायिकसम्यादर्शनकी प्राप्तिके समय यह अनुभाग होता है। इनके अजवन्य अनुभागवालोंने वर्तमान का नकी श्रपेता लोकक श्रमंख्यातवें भागका, विहारवस्थानकी श्रपेत्रा श्रसनालीके चौदह भागों में से कलकम ब्राट भागका तथा मारणान्तिक श्रीर उपपादपदकी श्रपेचा सर्व लोकका स्पर्शन किया है। श्रानन्तानुबन्धाचनुष्कके जघन्य श्रानुभागवाजोंने वर्तमान कालको श्रापेचा लोकके श्रासंख्यातर्वे भागका श्रीर विहारवत्स्वस्थानका श्रपेता श्रसनालीक चौदह भागोंमें प्र कुछकम श्राठ भागका स्पर्शन किया है। तथा अजनम्य धनुभागवालोंने सर्व लोकका स्पर्शन किया है। मार्गेखाओंमें भी इसी प्रकार अपनी अपनी विशेषताको जानकर स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

काल - मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जयन्य काल अन्तर्मु हूर्त है, क्योंकि नाना जीव अन्तर्मु हूर्त काल तक उत्कृष्ट अनुभागके साथ रहें और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि निरन्तर यदि नाना जीव उत्कृष्ट अनुभागको प्राप्त होने रहे तो इतने काल तक ही वे उत्कृष्ट अनुभागको प्राप्त होते हैं। उसके बाद उत्कृष्ट अनुभागवानोंका नियमसे अन्तर हो जाता है। मोहनीयके अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका सर्वदा काल है यह म्पष्ट ही है। मोहनीयकी छुट्वीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका सर्वदा काल है वह म्पष्ट ही है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका मर्वदा काल है, क्योंकि ये जीव सर्वदा पाये जाने हैं। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका अन्तर्मु हुर्त काल है, क्योंकि ये जीव सर्वदा पाये जाने हैं। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका अन्तर्मु हुर्त काल है, क्योंकि अनुत्कृष्ट अनुभागको प्राप्त ज्ञाति ज्ञायिक सम्यक्त्र प्राप्तिके समय ही सम्भव है। मोहनीयके ज्ञावन्य अनुभागवालोंका ज्ञावन्य काल एक समय है, क्योंकि यह सम्भव है कि नाना जीव एक साथ ज्ञावन्य अनुभागको प्राप्त हों और बादमें अन्तर पढ़ जाय तथा उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, क्योंकि लगातार नाना जीव यदि मोहनीयके ज्ञावन्य अनुभागको प्राप्त होते हैं तो संख्यात समय है, क्योंकि लगातार नाना जीव यदि मोहनीयके ज्ञावन्य अनुभागको प्राप्त होते हैं तो संख्यात समय है, क्योंकि लगातार नाना जीव यदि मोहनीयके ज्ञावन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। सम्यक्त्व, चार संज्ञ्ञ्चन और तीन वेदोंके ज्ञावन्य और अज्ञावन्य अनुभागवालोंका इसी प्रकार कात ले आता चाहिए। मिध्यात्व और आर कपायोंके ज्ञावन्य और अज्ञावन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके उकत

श्रनुभागवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं। सम्यक्षिध्यात्वके जबन्य श्रनुभागवालोंका जबन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है, क्योंकि इसके श्रन्तिम कार्यडक पतनमें श्रन्तमुं हूर्त काल लगता है श्रौर श्रज्ञचन्य श्रनुभागवालोंका सर्वदा काल है, क्योंकि इसके इस श्रनुभागवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं। श्रह नोकपायोंके जबन्य श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागवालोंका काल सम्यक्षिध्यात्वक समान ही है। श्रनन्तानुबन्धी-चतुष्कके जबन्य श्रनुभागवालोंका जबन्य काल एक समय है, क्योंकि इनकी संयोजनाके प्रथम समयमें ही इनका जबन्य श्रनुभाग प्रात होता है श्रीर उत्कृष्ट काल श्राविलके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि निरन्तर यदि नाना जीव इनके जबन्य श्रनुभागको प्राप्त होते हैं तो इतने काल तक ही प्राप्त होते हैं। तथा इनके श्रज्ञचन्य श्रनुभागवालोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही हैं। नाना जीवोंकी श्रपेता मार्गणाश्रोंम भी इसी प्रकार काल श्रपने श्रपने स्वामित्वके श्रनुसार बिटत कर लेना चाहिए।

अन्तर - मोहनीयके उत्क्रट अनुभागवालोंका जवन्य अन्तर एक समय है, क्योंकि नाना जीवोंकी श्रपेका एक समयके श्रन्तरसे उन्क्रष्ट श्रनभागकी प्राप्ति सम्भव हे श्रीर उन्क्रष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लीकप्रमाण है क्योंकि कोई भी जीव इतने काल तक उत्क्रष्ट श्रनुभागको न प्राप्त हो यह सम्भव है। श्रनुत्कृष्ट श्रनभागका श्रन्तर काल नहीं है. क्योंकि इस श्रनभागके साथ जीव सदा उपलब्ध होते रहते हैं। मोहनीयकी छब्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवाले जीवोंका इसी प्रकार श्रन्तरकाल जानना चाहिए। किन्तु सम्यक्त स्रोर सम्यग्मिश्यात्वके उत्कृष्ट स्रनुभागवाले जीवोंका स्रन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता क्योंकि इन प्रकृतियोंकी चपणाके सिवा अन्यत्र इनका उत्कृष्ट अनुभाग ही उपलब्ध होता है। इनके अनुकृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वह महीना है. क्योंकि इनकी कमसे कम एक समयके श्रन्तरसे श्रीर श्रधिकसे श्रधिक छह महीनाके श्रन्तरसे चपणा सम्भव है। जबन्यकी श्रपेचा मोहनीयके जबन्य श्रनुभागवालींका जबन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उस्कृष्ट शन्तर छह महीना है, क्योंकि कमने कम एक समयंक अन्तरसं और श्रधिकसे श्रधिक छह महीनांके यन्तरसं चवकश्रे लिकी प्राणि सम्भव है। मोहनीयंके यजवन्य अनुभागवालोंका अन्तर नहीं होता. क्योंकि ग्रजधन्य श्रनुभागवाले जीव सदा पाये जाते हैं । सम्यक्तवः सम्यग्मिश्यात्वः लोभसंज्यलन श्रीर छह नोकपायोंक जबन्य श्रीर श्रजबन्य श्रन्भानवालींका इसी प्रकार अन्तर काल जानना चाहिए। मिथ्यात्व ग्रीर प्राट कपायोंके जवन्य ग्रीर ग्रजधन्य ग्रनुसागवाले जीवोंका ग्रन्तरकाल नहीं है, क्योंकि इनके दोनों प्रकारके श्रनुभागवाले जीव सदा उपलब्ध होते रहते हैं। श्रनन्तानुवन्धीचतुष्कके जघन्य श्चनभागवालोंका जयन्त्र श्रन्तर एक समय है, क्योंकि जिन्होंने श्रनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसे नाना जीव एक समयके भन्तरसे उससे पुनः संयुक्त हों यह सम्भव है और उन्क्रष्ट भन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी संयोजनाके कारणभूत परिणाम श्रसंख्यात लोकप्रमाण हैं. इसलिए यह सम्भव है कि जिस परिगामसे जबन्य अनुभाग प्राप्त होता है वह इतने काल बाद होवे। श्चनन्तानुबन्धीके प्रजवन्य अनुभागवाले जीवोंका श्रन्तरकाल नहीं है, क्योंकि इसके श्रजधन्य श्रनुभागवाले जीव सटा पाये जाते हैं । स्त्रीयेद श्रीर नपुंसकवेदके जधन्य श्रनुभागवाले जीवोंका जधन्य श्रन्तर एक समय है और उन्क्रष्ट ग्रन्तर वर्षप्रथक्तवश्रमाण है, क्योंकि इन वेदवाले जीवोंका एक समयके ग्रन्तरसे भी चपकथ्रीण पर प्रारोहण करना सम्भव है और वर्षप्रथक्त्वके श्रन्तरसे भी चपकश्रीणी पर श्रारोहण करना सम्भव है। इनके अजयनय अनुभागवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। कारण स्पष्ट है। तीन संज्वलन और पुरुष्वेदके जधन्य अनुभागवाले जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कष्ट धन्तर साधिक एक वर्ष है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके उदयसे एक समयकं अन्तरसे भी जीव चएकश्रेणि पर भारोहरा कर सकते हैं थौर श्रधिकसे श्रधिक साधिक एक वर्षके श्रन्तरसे श्रारोहरा करते हैं। इनके श्चज्ञधन्य श्रनुभागवाले जीवोंका श्वन्तरकाल नहीं है यह स्पष्ट हो है। गति श्चादि मार्गगाश्चोंमें ज्ञाने श्चपने स्वामित्वको जानकर यह श्रन्तर काल घटित कर लेना चाहिए।

भाव— मोहनीय सामान्य श्रीर उत्तर प्रकृतियोंके उन्कृष्ट, श्रनुष्कृष्ट, जधन्य श्रीर श्रजधन्य श्रनुभाग-वालोंका सर्वत्र श्रीदायिक भाव है, क्योंकि मोहनीय कर्मके उदयमें ही इनका बन्ध श्रादि सम्भव है। यद्यपि उपशान्तमोहमें मोहनीयके उदयके बिना भी इनका सन्त्र देखा जाता है पर वहां पर नवीन बन्ध होकर इनकी सत्ता नहीं होती, इसलिए सर्वत्र श्रीदियकभाव कहनेमें कोई दोप नहीं है।

सिन्न र्ष - मोहनीयसामान्यकी श्रपेचा सिन्न र्ष सम्भव नहीं है। उत्तर प्रकृतियांकी श्रपेचा जो मिध्यात्वका उन्कृष्ट अनुभागवाला जीव है उसके सम्यक्त श्रीर सम्यग्मिध्यात्वका सत्त्व होता भी है श्रीर नहीं भी होता, क्योंकि श्रनादि मिथ्यादृष्टिके श्रोर जिसने इनकी उद्वेजना कर दी है उसके इनका सन्त्व नहीं होता, श्रन्यके होता है। यदि सन्व होता है तो नियमसे इनके उत्कृष्ट श्रनुभागका सन्ववाला होता है, क्योंकि यह सितकर्ष भिथ्यादृष्टिके ही सम्भव है श्रीर मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्निध्यात्वका मात्र उत्क्रष्ट श्रनभाग होता है। मिथ्यान्वके उन्ब्रष्ट श्रनुभागवाले जीवके सोलह कपाय श्रीर नी नोकपायोंका नियमसे सच्य होता है। किन्तु उसके इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट श्रनुभाग भी होता है श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग भी होता है। यदि अनुकृष्ट अनुभाग होता है तो वह छह हानियों मेंसे किसी एक हानिको लिए हए होता है। कारण स्पष्ट है। सोलह कपाय श्रीर नी नोकपायोंमेंसे एक एकको मुख्यकर इसीप्रकार सन्निकर्प बटित कर लेना चाहिए। सम्यक्त्वके उत्कृष्ट श्रनुभागवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट श्रनुभाग नियमसे होता है। मिथ्यात्व, वारह कपाय श्रीर नी नोकपायोंका उत्कृष्ट श्रनुभाग भी होता है श्रीर श्रनुस्कृष्ट श्रनुभाग भी होता है। यदि श्रनुन्छष्ट श्रनुभाग होता है हो वह छह प्रकारकी हानिको लिए हुए होता है। इसके श्रमन्तान्यन्थीचतुष्कका सस्य होता भी है श्रीर नहीं भी होता है। यदि सस्य होता है तो उत्कृष्ट श्रम्भाग भी होता है और अनुन्कृष्ट अनुभाग भी होता है। यदि अनुन्कृष्ट अनुभाग होता है तो वह छह प्रकारकी हानिको लिए हुए होता है। सम्यग्मिथ्यात्वको मुख्यकर सम्यक्त्वके समान ही सक्षिकर्प जानना चाहिए। मात्र सम्यग्निध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवालेके सम्यक्त्वका सत्त्व होनेका कोई नियम नहीं है। कारण कि सम्यक्त्वकी उद्वेतना सम्यग्मिध्यात्वसे पहले हो जाती है। पर यदि उद्वेतना नहीं हुई है तो नियमसे सम्यक्तका उन्क्रष्ट अनुभाग ही पाया जाता है।

मिथ्यात्वके जवन्य श्रनभागवालंके सम्यक्त और सम्यग्मिथ्यात्वका सन्त्व होता भी है श्रीर नहीं भी होता । यदि सन्यर्ग्हाष्ट जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर श्रोर सूचम निगोद श्रपर्याप्तमं उत्पन्न होकर सम्यक्त्व त्रीर सम्यामिथ्वात्वकी उद्देलनाके पूर्व मिथ्यात्वके जघन्य श्रनुभागको प्राप्त होता है तो उनका सत्त्व होता है अन्यथा नहीं होता । यदि सन्व होता है तो नियमसे अजवन्य अनुभागका ही सन्व होता है जो त्रपने जपन्यसे ज्ञतनत्रमुणा ग्रायिक होता है। इसके ज्ञानतानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन श्रीर नी नोकपायोंका नियमसे सत्त्व होता है जो श्रजधन्य श्रनन्तगृशा श्रधिक होता है। कारण कि इनका जघन्य श्रनभाग सदम निगोद श्रापर्याप्तके सम्भव नहीं है। श्राठ कपायोंका सन्त्र होता है जो जबन्य भी होता है श्रीर श्रजवन्य भी होता है। यदि श्रजवन्य होता है तो नियमसे छह बृद्धियोंको लिए हए होता है। मिथ्यात्व श्रीर श्राठ कपायोंके जपन्य अनुभागका स्वामी एक है, इसलिए यहाँ ऐसा सम्भव है। श्राठ कपायों में से प्रत्येक कपायको मुख्यकर सन्निकर्पका कथन मिथ्यान्वके समान ही करना चाहिए। सम्यक्तके जयन्य श्रनभागवालेके बारह कपाय श्रीर नी नोकपायींका श्रपने सत्त्वके साथ श्रजधन्य अनुभाग होता है जो श्रपने जघन्यकी श्रपेजा श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। इसके श्रन्य प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं होता, क्योंकि सम्यक्त्वकी चपणाके अन्तिम समयमें उसका जधन्य अनुभाग होता है. इसलिए उसके उक्त इक्कीस प्रकृतियोंका ही सन्त्र पाया जाता है। इसी प्रकार सम्यग्निथ्यान्त्रकी मुख्यतासे सन्तिकर्प जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्वका भी सन्व होता है जो सम्यक्त्वका सन्व श्रजघन्य श्रनन्तगृत्ते श्रनुभागको जिए हुए होता है। श्रनन्तानुबन्धी क्रोधके जधन्य श्रनुभागवालेके

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यभ्मिथ्यात्व, बाग्ह कवाय श्रीर नौ नोकवाय नियममे श्रजशन्य श्रनन्तगुणे श्रनुभाग-वाले होते हैं, क्योंकि श्रनन्तानुबन्धीकी संयोजनाके समय इन प्रकृतियोंका जबन्य श्रनुभाग सम्भव नहीं है। इसके श्रानन्तानुबन्धी मान, माया श्रीर लोभका मन्त्र तो श्रवश्य होता है पर उनका श्रानुभाग उस समय जवन्य भी होता है और ग्रजधन्य भी होता है क्योंकि संयोजनाके प्रथम समयमे जिस प्रकृतिके जयन्य श्रनुसागंक योग्य पश्चिम होते हैं उसका जबन्य श्रनुसाग होता है और शेषका श्रजबन्य श्रनुसाग् होता है। यदि उस समय इन तीनका अजवन्य अनुसाग होता है तो वह छह बृद्धियोंको लिए हुए होता है। जिस प्रकार श्रनन्तान्वन्धी कोधके जगन्य श्रनुसामकी सुख्यतासे सन्निकर्प कहा है उसी वकार श्रनन्तानवस्त्री मान, माया श्रीर लोभक जवस्य श्रनुभागकी मुख्यतास भी सन्निकर्ष कहना चाहिए । को र संज्वलनंक जबन्य श्रनुभागवालंक तीन संज्वलन कपार्थोंका श्रजधन्य श्रनन्तगुणा श्रनुभाग होता है, क्योंकि चुप्णांक समय जब संज्वलन क्रोधका जबन्य अनुभाग होता है उस समय अन्य तीन संज्वलन प्रकृतियां श्रज्ञवन्य प्रनुभागवाली होती हैं। संज्वलन मानके जवन्य श्रनुभागवालेके संज्वलन माया श्रीर लोभका श्रजवन्य श्रनन्तगुणा श्रनुमाग होता है, क्योंकि इनकी चपणा संज्वलन मानके बाद होती है। संज्वलन मायाके जघन्य श्रनुभागवालके संज्वलन लोभका श्रजघन्य श्रनन्तगुणा श्रनुभाग होता है। यहां संख्यान को राष्ट्रादि के जबन्य प्रनुभागके समय ब्रन्य प्रकृतियां नहीं होती. इयितिए उनका सित्तकर्ष नहीं कहा है। संज्यान लोभके जवन्य श्रमुभागवालेंक एक भी प्रकृतिकी सत्ता नहीं होती, इसलिए यहां श्रन्य प्रकृतियोंके साथ सिन्नकर्षका श्रभाव है। खीबेदवालेके चार सज्बलन श्रीर सात नोकपायोंका श्राजनिय श्रनन्तगुणा श्रनुमाग होता है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यताले सित्तकर्प जानना चाहिए । पुरुषेद्कं जयन्य श्रन्भागवालेकं चार संज्वलनीका श्रजवन्य श्रनन्तगुणा श्रन्भाग होता है । छह नोकवायोंके जधन्य श्रनुभागवालेके पुरुषवेद श्रीर चार संज्वलनका श्रजवन्य श्रनन्तगुणा श्रनुभाग होता है। किन्तु उस समय छह नोकपायोंका परस्पर नियमसं जवन्य अनुभाग होता है। यहां स्त्रीचेद श्चादि के जबन्य श्रनुभागवालेके जिन प्रकृतियोंका सन्त्व होता है उन्हींका सन्निकर्प कहा है, शेपका सन्त्व नहीं होता, क्योंकि उनकी पूर्वमें ही चपणा हो जाती है।

श्रान्पबहुत्व — मोहनीयकं उत्कृष्ट श्रानुजागवालं जीय सबसे थोडे हैं। इनसे श्रानुकृष्ट श्रानुभागवालं जीव श्रान्तगुणं है। इसी प्रकार मोहनीयकं जवन्य श्रानुभागवालं जीव सबसे थोडे हैं तथा इनसे श्राज्ञवन्य श्रानुभागवालं जीव श्रान्तगुणं हैं। उत्तरप्रकृतियोंकी श्रापेणा चृणिकारने जीव श्राल्पबहुत्वका निर्देश न करके निर्यत श्रात्ववहुत्वका निर्देश किया है। उत्तरप्रकृतियोंकी श्रापेणा भी वीरसेन स्वामीने चृणिसूत्रके श्रानुसार जाननेकी स्चना की है। यहां इतना निर्देश कर देना श्रावश्यक प्रतीत होता है कि उत्कृष्ट श्रानुभागकी श्रापेणा श्रावश्यक करते समय चृणिकारने यह सूचना की है कि जिस प्रकार बन्धमें प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रानुभागका श्रावश्यक श्राप्त सम्यक्त्व ये दोनों बन्ध प्रजृत्तामां श्राप्त होते उत्कृष्ट श्रानुभागका श्राप्त होते उत्कृष्ट श्रानुभागका पूर्व श्रानुभागके श्राप्त बहुत्वमें तारतस्य विद्यताते हुए स्वतन्त्र-रूपसे श्रान्तमें श्राप्त वहा है।

भुजगारविभक्ति

मुजगारियमिकि चार पद हैं—भुजगार, श्रल्पतर, श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तव्य । पिछले समयमें जितना श्रनुभाग हो उससे वर्तमान समयमे श्रिथिक श्रनुभागका होना भुजगार श्रनुभाग विभक्ति है। पिछले समयमे जितना श्रनुभाग हो उससे वर्तमान समयमे हीन श्रनुभागका होना श्रल्पतर श्रनुभागविभक्ति है। पिछले समयमे जितना श्रनुभाग हो, वर्तमान समयमे उतना ही श्रनुभागका होना श्रवस्थित विभक्ति है। श्रीर सत्ता प्राप्त होनेकं प्रथम समयमे जो श्रनुभाग प्राप्त हो उसका नाम श्रवक्तव्य श्रनुभाग

विभक्ति है। यहाँ इस अनुयोगद्वारका समुस्कार्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंको अपेचा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन तेरह अधिकारोंके द्वारा प्रतिपादन किया गया है। इन सब अधिकारोंकी जानकारीके लिए तो मूल प्रन्थके स्वाध्यायकी आवश्यकता है। मात्र यहाँ इतना निर्देश कर देना उचित प्रतीत होता है कि मोहनीय सामान्यकी अपेचा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीन ही पद होते हैं, अवक्तन्यपद नहीं होता, क्योंकि जिसने मोहनीय कर्मका नाश कर लिया है उसके पुनः उसकी प्राप्त सम्भव नहीं है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेचा मिध्यात्व, बारह कपाय और नी नोकपायोंके भी मोहनीय सामान्यके समान तीन ही पद होते हैं। कारण पूर्वोक्त ही है। सम्यक्त्व, और सम्यग्मिध्यात्वके अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य वे तीन पद होते हैं। इनके प्रारम्भके दो पद होते हैं यह तो स्पष्ट ही है। तथा इनकी एक तो प्रथमवार सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय सत्ता होती है। दूसरे उद्वेलना होकर पुनः सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय सत्ता प्राप्त होती है इसलिए इनका अवक्तव्यपद भी बन जाता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके भुजगारपद न होनेका कारण यह है कि सत्तासे इनका उत्कृष्ट अनुभाग ही प्राप्त होता है, इसलिए उसमें वृद्धि सम्भव नहीं है। अनन्तानुबन्धिके चार पद होते हैं। अवक्तव्यपद होनेका कारण यह है कि इसकी विसयोजना होकर पुनः संयोजना हो सकती है।

पदनिक्षेप

पदनिक्षेपमे भूजगारविभक्तिके श्रवान्तर भेदोंका विशेष रूपसे विचार किया जाता है । यथा - जो भूजगारविभक्ति होती है वह उत्कृष्ट बुद्धिरूप होती है या जघन्य बुद्धिरूप होती है। जो श्रल्पतरविभक्ति होती है वह उन्कृष्ट हानिरूप होती है या जघन्य हानिरूप होती है। तथा इन उन्कृष्ट वृद्धि आदिके बाद जो अवस्थान होता है वह भी उत्कृष्ट और जधन्यके भेदसे दो प्रकारका होता है। यदि उत्कृष्ट बृद्धि उत्क्रष्ट हानिके बाद श्रवस्थ न होता है तो वह उत्क्रष्ट श्रवस्थान कहलाता है और जबन्य बृद्धि श्रीर जघन्य हानिके बाद श्रवस्थान होता है तो वह जघन्य श्रवस्थान कहलाता है। इसके तीन श्रनुयोगद्वार हैं --समुर्कार्तना, स्वामित्व श्रीर श्रव्यबहुत्व । समुरकीर्तनाकी श्रपेका मोहनीय सामान्यकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि श्रोर श्रवस्थानपद होते हैं। तथा जबन्य बृद्धि, जबन्य हानि श्रोर श्रवस्थान ये तीन पद भी होते हैं। इसी प्रकार मोहनीयकी श्रवान्तर प्रकृतियोंमें भी जान लेना चाहिए। मात्र सम्यक्त श्रीर सम्यग्मिश्यात्वमे सुजगारविभक्ति सम्भव न होनेसे यहाँ इनकी उत्कृष्ट वृद्धि श्रीर जवन्य वृद्धिका निर्देश नहीं किया है। अर्थात इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि, जघन्य हानि श्रीर इनके श्रवस्थान ये पर ही होते हैं । यद्यपि सम्यक्त्व, सम्यग्मिश्यात्व श्रोर श्रानन्तानुबन्धीचतुष्कका श्रवक्तव्यपर भी होता है पर इसका निर्देश भूजगार विभक्तिमें कर श्राये हैं। यहाँ इस पढ़की श्रपेचा कोई विशेषना नहीं श्रानी है, इसलिए पदनिक्षेपमे इसका श्रलगसे निर्देश नहीं किया है। स्वामित्व श्रीर श्रल्यबहत्वका विचार मूल प्रस्थको देखकर कर लेना चाहिए। यहाँ काल श्रादि श्रन्य श्रन्योगदारोंका श्राश्रय लेकर विचार नहीं किया गया है। मालूम पहना है कि पदनिक्षेपके कथनकी तीन अनुयोगहानेंका आश्रय लेकर ही प्रवृत्ति रही है, अतः काल स्नादिका स्नाध्रय लेकर प्ररूपणा नहीं की गई है।

रदि

पदिनक्षेपमें जो उन्कृष्ट वृद्धि श्रादिका श्रोर उन्कृष्ट हानि श्रादिका निर्देश किया है वे कितने प्रकारको होती हैं इत्यादिका श्राश्रय जेकर यह श्रानुयोगद्वार प्रवृत्त होता है, इसिलए इस श्रानुयोगद्वारमें छह वृद्धि, छह हानि श्रोर श्रवस्थानका विचार किया जाता है। श्रानुभाग जधन्य भी श्रोर उन्कृष्ट भी श्रानन्त श्रविभाग-प्रतिच्छेदोंको लिए हुए होता है, इसिलए इसमें सभी वृद्धियाँ श्रीर सभी हानियाँ सम्भव हैं। तथा उनके

बाद अवस्थान भी सम्भव है यह उक्त कथनका ताल्पर्य है। इसके तेरह अनुयोगद्वार हैं। नाम वे ही हैं जिनका निर्देश भुजगारविभक्तिके समय कर आये हैं। उनमें से समुत्कीर्तनाकी अपेका मोहनीय सामान्यकी छुह वृद्धियाँ, छुह हानियाँ और अवस्थान ये पद होते हैं। इसीयकार छुटवीस उक्तरप्रकृतियोंकी अपेकासे भी जानना चाहिए। मात्र यहाँ अनन्तानुवन्धीचतुष्कका अवक्तत्य पद भी जानना चाहिए। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनन्तगुण्हानि, अवस्थान और अवक्तत्य ये तीन पद ही जानने चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी दर्शनमोहनीयकी चपणाके समय ही हानि होती है। वह भी केवल अनन्तगुण्हानिरूप ही होती है, इसलिए इसकी हानि एक प्रकारकी ही बतलाई है। शेप अनुयोगद्वारोंका विचार मृजको देखकर कर लेना चाहिए।

स्थानप्ररूपणा

कर्मके अनुभागका विचार अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक श्रीर स्थान इन पाँच विशेषताश्चोंके साथ किया जाता है। इन पाँचों विशेषताश्चोंकी चरचा मुलमें पृष्ट ३४१ के विशेषार्थमें की गई है, इसलिए इसे वहांसे जान लेनी चाहिए। यहां मुख्यरूपसे जो विचार करना है वह यह है कि धलग श्रलग कर्मोंकी श्रलग श्रलग फलदानशक्ति छौर एक ही कर्मकी हीनाधिक फलदानशक्ति क्यों होती है। एक उदाहरण यह दिया जाता है कि जिस प्रकार एक ही प्रकारका भोजन पाककालमें श्रनेक प्रकारके रस मजा श्रादि धात् उपवात् रूपसे परिणमन करता है उसीश्रकार कर्मका बन्ध होने पर वह भी पाककालमें श्रानेक प्रकारके फलोंको जनम देता है। पर इस समाधानसे मूल बात पर बहुत ही कम प्रकाश पड़ता है, क्योंकि कर्मका बन्ध होने पर उसमें जो स्थिति ग्रांर श्रनुभाग प्राप्त होता है उसीके श्रानुसार उसका पाक (फल) देखा जाता है। बन्बके बाद उसमे अन्य पाचनिक्रया नहीं होती। यह कहा जा सकता है कि बन्धके बाद भी उसमें संक्रमण, उन्कर्षण व अपकर्षण किया होती ही है, इसलिए बन्धके बाद ग्रन्य पाचनिक्रया नहीं होती यह मानना ठीक नहीं है। पर इस प्रश्नका समाधान यह है कि यह संक्रमण श्रादिरूप किया भी बन्धका ही एक भेद है। जिस प्रकार कपाय श्रादि परिखामोंसे नवीन कर्मका बन्य होता है उसी प्रकार वे परिणास बँवे हुए कर्ममें भी श्रवनी जातिके भीतर परिवर्तन, रसीन्कर्ष व रसहानि करते हैं। उसे कर्मवा पाक नहीं कहा जा सकता। पाक शब्दका प्रशोग दो श्रार्थींसे होता है-एक श्रात्मसात करने श्रर्थमं श्रीर दसरा भीग श्रर्थमं । भोजनको ग्रहण करत समय उसका सात्मीकरण नहीं होता । उसके उदरम्थ होने पर ही पाचन क्रिया व्यागरके हारा सात्कीकरण होता है । किन्तु कर्मके विषयमें ऐसी बात नहीं है । उसे जिम समय जीव ब्रह्ण करता है उसी समय सारमीकरण हो जाता है । यह सम्भव है कि जिस रूपमें उसे प्रदण िया है उसी एउमे वह फत है। यह बात श्रन्य है कि एक बार सामीकरण हो जानेके बाद भी जीव का डान्यरमें नवीन कर्कके सुरान पुतः पुनः उसका सामीकरण करता रहता है। जीवके दारा की गई उस कियाका नाम जी संक्रमण और उन्कर्षण श्रादि है। इसलिए हमें यह जानना श्रावश्यक है कि कर्मने यह विविध प्रकार के कारदानशक्ति क्यों श्रीर किस प्रकार उत्पन्न होती है ? यह तो प्रत्येक विचारक जानता है कि जीव श्रमुर्तिक है श्रीर कर्म मूर्तिक। श्रमुर्तिक श्रीर मृतिकका बन्ध नहीं होना चाहिए, क्योंकि हो द्वहमेंक परस्पर अनुप्रविष्ट होकर स्पर्श विशोपका नाम बन्य है, श्रतः वन्ध उन्हीं दो द्रव्योंका हो सुक्रा है जिनमें स्वर्शगुण हो । श्रातमामें स्पर्शगुण तो होता नहीं फिर उसका कर्मक साथ बन्व ैमा ? प्रश्न मार्मिक है। शास्त्रकारोंने इस प्रश्नका यह समाधान किया है कि जीव श्रनादिये कर्मबद्ध है। कर्मको वह श्रपने परिणामोंसे ही ब्रहण करना है, इसलिए दोनों मिलकर एकक्षेत्रागाडी हा कर रहते है खीर दोनोंकी किया प्रतिक्रियाका एक ृसरे पर प्रभाव पडता है। तथा इस क्रिया प्रतिक्रियाके श्रवसार प्रति समय नये नये कारणकृट मिलते रहते हैं । जहां तक हलन चलन रूप क्रियाका सम्बन्ध है वहां

सक उस द्वारा नये नये कर्मीका प्रहरा होता है। हमारे सामने यह प्रश्न बहुत दिनसे था कि योग किया द्वारा कर्मका प्रहण हो यह तो ठीक हे पर उसका जानावरणादि रूपसे विभाजन होकर क्यों ग्रहण होता है. क्योंकि यह कर्म जानका श्रावरण करे श्रोर यह दर्शनका श्रावरण करे यह विभाग योग क्रियासे सम्भव नहीं हो सकता है। यदि इसे भी क्यायका कार्य माना जाय तो प्रकृतिबन्ध श्रीर प्रदेशबन्धका कारण योग है इस श्रामम वचनमें बाधा श्रानी है। किन्त हमारे इस प्रश्नका समाधान धवला वर्गणावरदसे हो जाता है। वहां वर्तणात्रोंका विशेषकासं कहापोड किया गया है। इस सम्बन्धमें वहां लिखा है कि प्रत्येक कर्मकी वर्गसाएँ ही अलग अलग हैं। प्रारम्भमं जो भी इस बावको सनेगा उसे आश्चर्य श्रवश्य होगा पर समीचीन बात यही प्रतीत होती है। कारण कि जिसप्रकार हम अजग अजग प्रदाल स्कन्वोंमें अलग श्रलम प्रकारके वार्य करनेकी समता देखते हैं। कोई प्रदमल स्कन्ध भारक होता है, कोई प्रदमल स्कन्ध मादकता उत्पन्न करता है श्रीर कोई परगजस्कन्य संजीवनीका कार्य करता है। यह उस प्रदगलस्कन्धके असक प्रकारके स्पूर्ण रस श्रादि जुक्त हो कर बन्धनविशेषका ही कार्य होता है। इसी प्रकार कर्मवर्गणाएं भी अपने अपने बन्धन विशेषके कारण ऐसी बनती हैं जिनमेंसे कोई बन्ध होने पर आवरणका कार्य करनेमें सहायक होती हैं. कोई मोहनका कार्य करनेमें सहायक होती हैं श्रीर कोई सख़-दखका वेदन करानेमें सहायक होती हैं। जीवके कराय श्रादि परिणामींका यह कार्य नहीं कि कीन वर्गणाएँ उससे सम्बद्ध हो कर किस प्रकारका कार्य करें। वर्गणाएँ नियत हैं श्रीर वे सम्बद्ध हो कर नियत कार्य ही करती हैं। यहां नियत कार्यसे ताल्पर्य कार्य सामान्यसे हैं। यही कारण है कि बहु कर्ममें ज्ञानावरणका दर्शनावरण श्रादि रूपसे श्रोर दर्शनावरणका ज्ञानावरण श्राटिक रसे संक्रमण नहीं हो सकता । श्रात्माके रागादि परिणामोंका कार्य इससे श्रामेका है। श्रात्माके रागादि परिणाम क्या कार्य करते हैं इसके जिए यह हुशून्त उपयक्त होगा। मान लीजिए किसीको श्रातिसवाजीके निर्माण करनेका ज्ञान है, श्रतः वह उसकी सामग्रीको प्राप्त कर किसोसे फन्नभड़ी बनाता है और फिसोसे अन्य खेनको सामग्री तैयार करता है। विस्कोर करनेक स्वभाव वाली एक प्रकारकी इस सामग्रीसे वह श्राने परिणामोंके श्रानुसार उसका तदनुरू विविध प्रकारके कार्य रूपसे निर्माण करता है। उसी प्रकार जब जीव, योगक्रिया द्वारा कर्माको ग्रहण करता है। तब उनका परिणाम विशेषके कारण स्पर्शके नारतस्य श्रीर विशिष्ट प्रकारके श्राकार को लिए हुए उसी प्रकारका बन्यन होता है जिससे उस बन्यनके श्रज़ग होते समय श्रामी विस्तोट किया (उदय) द्वारा वह श्रास्मामें उन संस्कारोंको उदबुद्ध करता है जिन कार्योंक करनेसे उसके कर्ममे वैसे संस्कार पहे थे। उदाहरणार्थ एक श्रादमीने किसी दूसरे ब्रादमी को हत्या को. इसजिए हत्या करनेवालेके उस समय मोहनीय कर्मके अपयक्त वर्गणात्रोंका ऐसा बन्यनविशेष होगा जो यदि तदनुरूष बना रहा। श्रयोत श्रपनी जातिक भीतर श्रन्य कार्यरूपसे नहीं बदला तो अपने वियोगंक समय उन संस्कारोंका उदबढ़ करता है जिससे वह भी दसरेके हारा हननिक्रयाका पात्र होता है। प्रश्न यह है कि उसने हननिक्रया विविचत समयमे की थी किन्त उस कियासे सम्पत्न संस्कारवाले कर्मीका विस्तीर (उदय) किसी एक समयमे तो होता नहीं किन्तु दीर्घ कालतक होता रहता है, इसलिए उसके वे हननिक्षयांक योग्य संस्कार कब उद्वुद्ध होंगे । समाधान यह हैं कि जब तदनुरूप निमित्त मिलेगा तब उन संस्कारोंके योग्य कर्मका विशेष रूपसे (उदय) विस्फोट होगा । उदीरणाका रहस्य भी यही है। विवक्तित विषयको स्रष्ट करनेके लिए हमने एक दृष्टान्तमात्र दिया है। कर्मप्रक्रियाको देखकर इसकी संगति विख्ला लेनी चाहिए। इसप्रकार इतने विवेचनसे हमे कर्मी की श्रलग श्रलग फलदान शक्तिका श्रीर एक ही कर्मकी न्यनायिक फलदान शक्तिका ज्ञान हो जाता है। तालर्य यह है कि योगपे उस उस प्रकृतिवाले कर्मी का ही ग्रहण होता है। ज्ञानका जो वर्गणाएँ शावत करती हैं वे श्रवग हैं श्रीर दर्शनको श्रावरण करनेवानी वर्गणाएँ श्रवग हैं। योगद्वारा वे श्रात्माके साथ बन्यनके लिए सन्मुख कर दी जाती हैं। इसी प्रकार श्रन्य कमें के विषयमें भी समक लेना चाहिए। योगहारा मुलमें ऐसे स्वभाववाली वर्गणात्रोंका प्रहण होता है पर उनका प्रहण

होनेपर वे आत्माके साथ किस प्रकारके स्पर्शको (बन्धको) प्राप्त हों यह कार्य कपायका है। कपायके कारण हो उनके स्पर्शकी होनाधिकता श्रीर स्पर्शमें तारतम्य व श्राकार निश्चित होता है जिसे क्रमसे स्थिति श्रीर श्रनुभाग कहा जाता है। इस प्रकार श्रनुभागका ज्ञान हो जानेपर वह किस क्रमसे रहता है इस प्रकियाको बतलानेके लिए स्थानेंका निरूपण किया गया है। स्थान तीन प्रकारके हैं - वन्धसमुत्पत्तिकस्थान, हतसमुत्पत्तिकस्थान श्रीर हतहतसमुत्पत्तिकस्थान। बन्धके समय जो श्रनुभागको क्रिकरचना होती है उस सबको वन्धसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं। तथा सत्ताम स्थित श्रनुभागका बात हीकर जो स्थान उत्पन्न होते हैं वे यदि वन्धसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं। तथा सत्ताम स्थित श्रनुभागका बात हीकर जो स्थान कहते हैं। किन्तु जो स्थान वातसे उत्पन्न होकर बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंके समान होते हैं तो उन्हें भी बन्धसमुत्पत्तिक स्थान कहते हैं। किन्तु जो स्थान वातसे उत्पन्न होकर बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंके समान होते हैं वाह हतसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं। व्या इन हतसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं। इनमें बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सबसे थोड़ हैं। हतसमुत्पत्तिकस्थान इनसे श्रसंख्यातगुणे हैं। इनका विशेष क्रहापोह मूलमें किया ही है। इसलिए वहांसे जान लेना चाहिए।



विषय-सूची

विषय	बेब	विपय	मृष
वीर जिनको नमस्कार कर श्रनुभाग		जघन्य काल	३०-४३
विभक्तिके कहनेकी प्रतिज्ञा	۶	अन्तरानुगम	४३– ५२
श्रनुभागविभक्ति के दो भेद	ર્	उत्कृष्ट श्रन्तर	83-89
श्र नुभागका स्व हप	२	जघन्य श्रन्तर	४६-५२
विभक्ति शब्दका श्रर्थ	ર	नाना जीवोंकी ऋषेत्ता भंगविचय	५३–५६
मूलप्रकृति अनुभाग विभक्तिका अर्थ	ب	उत्कृष्ट भंगविचय	વરૂ – વ ષ્ઠ
उत्तरप्रकृति श्रनुभागविभक्तिका श्रर्थ	२	जघन्य भंगविचय	५५–५६
मूलप्रकृति श्रनुभागविभक्ति	२-१२०	भागाभागानुगम	4 ६– 4 [£]
मूलप्रकृति श्रनुभागविभक्तिके		उःकृष्ट भागाभागानुगम	५६–५८
२३ ऋतुयोद्वारोके नाम	३ ।	जघन्य भागाभागानुगम	45-48
मूलप्रकृति त्र्यनुभागविभक्तिमं	`	परिमाणानुगम	५९–६१
सन्निकर्ष अनुयागद्वारके न हानेका		उत्कृष्ट परिमागानुगम	५९–६०
निषंध	ર	जघन्य परिमाखानुगम	६० –६१
मूलप्रकृति श्रनुभागविभक्तिके श्रन्य	,	चेत्रानुगम	६२–६५
श्रनुयागद्वार श्रनुयागद्वार	રૂ	उत्कृष्ट चेत्रानुगम	६ २–६३
संज्ञाक दो भेद श्रौर उनका विचार	ર, -ે	जघन्य चेत्रानुगम	६३–६५
घातिसंज्ञाके दो भेद	3	स्परानानुगम	६५-७७
ःस्कृष्ट घातिसंज्ञा	રૂ_પ	उत्कृष्ट स्पर्शनानुगम	६५-७१
सर्वधाति पदका ऋर्थ	े ३	जघन्य स्पर्शनानुगम	<i>७७–५७</i>
जघन्य घातिसंज्ञा	५ –६	कालानुगम	<i>७७</i> –८४
स्थान संज्ञाके दो भेद श्रीर उनका	• `	उत्कृष्ट कालानुगम	とろーン
विचार	६-९	जघन्य कालानुगम	८१–८४
उ त्कृष्ट स्थान संज्ञा	६ −८	श्चन्तरानुगम	८५-७०
जघन्य स्थान संज्ञा	5 -6	उत्कृष्ट अन्तरानुगम	८५-८७
सर्व-नासर्वानुगम	3	जघन्य श्रन्तरानुगम	८७-७०
उत्कृष्ट-श्र <u>नु</u> त्कृष्टानुगम	१०	भावानुगम	69
जघन्य-श्रजघन्यानुगम	१०	श्ररुपब हु त्वानुगम	१3
सादि-श्रनादि-ध्रुव-त्रध्रुवानुगम	१ ०- १ १	उत्कृष्ट श्रन्पव हु त्वानुगम	83
स्वामित्वा <u>न</u> ुगम	११–१९	जघन्य ऋरपबहुत्वानुगम	83
उत्क्रष्ट स्वामित्व	११ –१५	भुजगार विभक्ति	९२–१०७
जघन्य स्वामित्व .	१५-१६	भुजगार विभक्तिके १३	
कालानुगम	२०-४३	अनुयागद्वाराके नाम	દ ર
उत्कृष्ट काल	२०–३०	समुत्कीर्तना	६२

विषय	पृष्ठ	विषय	নি ম্ভ
म्वामित्व	५२-९३	स्वामित्वानुगम	११३–११४
कालानुगम	६३–६६	कालानुगम	११४–११५
नारिकयों में प्रति समय श्रनुमाग		श्चन्तरानुगम	११६–११८
श्रपवर्तन नहीं होता इस बात	का	नानाजीवोंकी अपेद्या सङ्गविचय	११८-११९
निर्देश	98	भागाभागानुगम	१२०
अनुमागमत्त्वका अपवर्तनाक वि	ना	परिमाणानुगम	१२०-१२१
अप्रत्यतर पद नहीं होता इ		चेत्रनुगम	१२१
बानका निर्देश	९४	स्पशेनानुगम	१२१-१२२
चारित्रमोहकी चपणाकं वि	ना	कालानुगम	१२२-१२३
माहनीयके श्रनुभागका प्रति र	तमय	श्रन्तरानुगम	१२३-१२४
घात नहीं होता इस बातका नि		भावानुगम	१२४
श्रन्तरा नुगम	९७-१८	श्चल्पबहुत्वानुगम	१२४–१२५
नानाजीवोकी श्रपेता भंगविचय	66 -8 00	स्थान	१२४-१२८
भागाभागानगम	१८१-१८२	प्ररूपगा	१२५-१२६
परिमाणानुगम	१०२	प्रमाण	१२७
त्तेत्रानुगम	१०३	श्र रपबहु त्व	१२७–१२८
स्पर्शनानुगम	१०३–१०४	उत्तर प्रकृतिअनुभागविभक्ति	१२६–३९७
कालानुगम	१०४-१०५	उत्तर प्रकृतियाकी स्पर्धकरचन। विचार	
श्चन्तरानुगम	१०६		१२६ –१३५ े
भावानुगम	१०७	सम्यक्तव प्रकृतिका ऋनुभाग देशघा	
ऋरपबहु त्वानुगम	१०७	है इसकी सिद्धि	१३०
पदनिक्षेप	१०५-११२	सम्यक्त्व प्रकृति सम्यग्दर्शनके किंग भागका घात करता है इसका	
पदिनिद्येपके ३ ऋतुयोगद्वार	१०७	संज्ञाके दा भेद श्रीर उनक	
पदिनद्गेप पदका ऋर्थ	800	संशोक पा भेप आर उनक विचार	। १३५–१५५
समुस्कीर्तनानुगम्	१०८	द्विस्थानिक अनुभागम लता श्री	
उत्कृष्ट समुत्कीत्नानुगम	४०८	दारूष श्रनुमाग लिया गय	
जघन्य समुत्कीर्तनानुगम	४०८	है इसकी सिद्धि	१३७–१३८
स्वामित्वानुगम	१०८–११०	लता ऋदि संज्ञाएं मान कषायके	
उत्कृष्ट स्वामित्वानुगम	१०८-११०	अनुनागमे आती हैं फिर र्भ	
जघन्य स्वामित्वानुगम	१ १ ०	उनका मिध्यात्व स्त्रादिव	
श्चरपब ह त्व	१११-११२	श्रमुभागमं प्रहण होता है	
उत्कृष्ट श्ररुपबहुत्व	१११	इसकी सिद्धि	े १३९
जघन्य ऋरूपबहुत्व	११२	मिध्यात्व सर्वघाति क्यो है इसक	
वृद्धिषभिक्त	११२-१२५	विचार	१३९
वृद्धिविभक्तिके १३ श्रनुयोगद्वार	११२	ुसम्यक्त्वका अनुभाग देशघाति तथ	
वृद्धि पद्का अर्थ	११२	एकस्थानिक श्रौर द्विस्थानिक	5
समुत्कीर्तनानुगम	११३	है ऐसा कहनेका कारण	१४३

विषय	<i>মূ</i> ন্ত	विश्वय	<u>ঠিই</u>
उच्चारणाके अनुसार संज्ञाके दोन	ř	उचारणाके श्रनुसार उत्कृष्ट	
भेदोंका विचार	१५१-१५५	भन्तगनुगम	२०२-२०५
घातिसज्ञा विचार	१५१-१५३	जघन्य श्रन्तरानुगम	२०६-२१०
स्थानसंज्ञा विचार	१५३–१५५	अनन्तानुबन्धीकी चपगाके बाद	• • • •
उत्तरप्रकृति श्रनुभागविभक्तिये	<u> </u>	पुनः उत्पत्तिके समान श्रन्य	
श्रनुयागद्वारोंका नामनिर्देश	१५५०१५६	प्रकृतियोंकी पुन: उत्पत्ति क्यों	
सर्व–नासर्वविभक्त्यनुगम	१५६	नहीं होती इसका विचार	२०७
इत्कृष्ट-ऋनुत्कृष्टविभक्त्यनुगम	१५६	श्चनन्तानुबन्धीके समान मिथ्यात्व	·
जघन्य-श्रजघन्यविभक्त्यनुगम	१ ५६	श्रादिको विसंयोजना प्रकृति	
सादि-ऋनादि-ध्रुव-ऋध्रुवानुगम	१५६–१५७	न माननेका कारण	२०५
स्वामित्वानुगम	१५७-१८५		404
यतिवृपभन्त्राचार्य द्वारा सर्वविभक्ति		उचारणाके श्रनुसार जघन्य	-n
श्रादि श्रधिकार न कह कर		भन्तरानुगम	२१०-२ १३
स्वामित्व श्रधिकार कहनेका		नाना जीवोंकी ऋषेचा भङ्गविचय	२१३–२२१
कारण	१५७	श्रथंपद्	२१४
उत्कृष्ट स्वामिन्व	१५७-१६१	उत्कृष्ट भङ्गविचय	२१५–२१८
जघन्य स्वामित्व	१६१-१७५	उचारणाके त्रानुसार उत्कृष्ट	
चूर्णिसूत्रम आये हुए सूक्स पदकी		भङ्गविचय	२१९–६२०
विशेष व्याख्या	१६१-१६२	उद्यारणाके श्रनुसार जघन्य	
मिध्यात्वका जघन्य अनुसाग		भङ्गविचय	२२०-६२१
सूक्ष्म एकेन्द्रिय श्रपर्याप्तकांके		भागाभाग	२२१–२२३
होता है इसका कारण	ं १६ २	उत्कृष्ट भागाभाग	२२१–२२२
श्रनन्तानुबन्धीका जघन्य श्रनुभाग		जघन्य भागाभाग	হ্হ্হ্–হ্হ্
सूक्ष्म एकेन्द्रियके क्यो नहीं		परिमाग	२२४-२२६
होता इसका विचार	१६७	उत्कृष्ट परिमाग्	२२४
नरकगतिमे उत्तर प्रकृतियोंके जधन	व	जधन्य परिमाण	२२४–२२६
· -	१७५-१७४	चेत्र ्	२२६–२२७
उचारणाके श्रनुसार स्वामित्वानुगम		उत्कृष्ट च्रेत्र	२२६
उत्कृष्ट स्वामित्व	१७९-१८१	जघन्य सेत्र	२२६–२२७
जघन्य स्वामित्व	१८१-१८५	स्पर्शन	२२७–२३२
कालानुगम	१८५-२००	उत्कृष्ट स्पर्शन	२२७–२२९
उत्कृष्ट काल	१८५-१८५	जधन्य स्पशंन	२२६–२३२
उचारणाके श्रनुसार उत्कृष्ट काल		कालानुगम	२ ३३–२ ३८
जघन्य काल	१६२-१६५	उत्कृष्ट कालानुगम	२३३-२३४
उचारणाके श्रनुसार जघन्य काल		उचारणाके अनुमार उत्कृष्ट	
श्रन्तरानुगम	२०१–२१३	कालानुगम	२३४–२३६
उत्कृष्ट श्रन्तनगम		जघन्य कालानुगम	२३६–२३८

विपय	पृष्ठ	विषय	ਬੌੜ
उच्चारणाके अनुसार जघन्य	-	भाव	२६७
कालानुगम	२३८–२४०	श्र ल्पबहु त्व	२६७-३६६
श्च न्तरानुगम	२४१–२४२	पदनिचेप	२ ८६–३०७
उत्कृष्ट श्रन्तरानुगम	२४१–२४५	पदनिचेपके ३ ऋनुयोगद्वार	२६६
उच्चारणाके श्रनुसार उत्कृष्ट		समुत्कीर्तना उत्कृष्ट व जघन्य	२६९-३००
श्चन्तरानु गम	२४२-२४३	स्वामित्व ., ,.	३००–३ ० ५
जघन्य श्रन्तरानुगम	२४४-२४७	श्ररुपबहुत्व ,	३०५–३०७
उच्चारणाके अनुसार जघन्य		बृ द्धिविभक्ति	३०७–३३०
त्रन्तरा <u>न</u> ुगम	२४७–२४६	वृद्धिविभक्तिके १३ अनुयोगद्वार	३ ० ७
उच्चारणाके श्रनुसार सन्निकर्ष	२४९–२५६	समुत्कीर्तना	३०७-३०८
ड त्कृष्ट सन्निकर्ष	२४६–२५२	स्वामित्व	३०८–३०६
जघन्य सिन्न कर्प	२५२–२५६	काल	३०८-२१२
भावानुगम	२५ ६	श्चन्तर	३१२–३१६
श्चरपबहुत्वानुगम	२५६-२७३	नाना जीवोंकी ऋषेत्ता भङ्गविचय	३१६-३१=
उत्कृष्ट श्ररूपब हु न्व	२५६–२५९	भागाभाग	३१ ⊆–३२०
जघन्य ऋल्पबहुत्व	२४९–२६९	परिमाण	३२०–३२१
नग्कगतिमे जघन्य श्ररूपबहुत्व	२६९–२७१	चेत्र	३२१
उच्चारणाके अनुसार जघन्य		स्पर्शन	३ २ १– ३२ ४
श्र रुपबहुत्व	হ্ডহ্–হ্ডঽ	काल	३२४–३२६
भुजगार विभक्ति	२७३-२९४	श्चन्तर	३२६३२८
चूर्णिसूत्रम् बन्धके अनुसार भुजग	ार. पद	भाव	३०=
निचेप और वृद्धिविभक्तिके जानने		- श्रन्पवहुत्व -	३२५-३३०
मात्र की सूचना	२७३	स्थानप्ररूपणा	३ ३०–३६७
भुजगारविभक्तिकं १३ ऋनुयोग		चूर्णिसूत्रमं सत्कर्मस्थानोके तीन	
द्वारोकी सूचना	२७३	भेदोका निर्देश	३३०
समुत्कीर्तना	३७३ <u>-</u> ३७४	बन्धसमुत्पत्तिक छादि तीनो	
स्वामित्व	२,७५-२,७६	भेदोका निरुक्त्यर्थ	३३१
काल	२७६-२८०	स्थानप्ररूपणा कहने की सार्थकता	••
श्रन्तर	२८०–२८६	चूर्णिसूत्रमे बन्धसमुरपत्तिक स्थान	सब से
नानाजीबौकी ऋषदा भंगविचय	२८६-२८८	स्तोक हैं इस बातका निर्देश	३३२
भागाभाग	२८८–२८९	सबसे अघन्य बन्धसमुत्पत्तिकस्थान	
परिमाण	२८९–२९०	किसके होता है इस बातका ि	नेदेश
न्नेत्र	२९०–२६१	व उसकी सिद्धि	३३२
स्पर्शन	२६१–२⊦३	किस अवस्थामे चातस्थान बन्धसर्	पुरप त्तिक
काल	ર્ <i>દ</i>	स्थान कहा जाता है इस बातका	निर्देश ३३३
श्रन्तर	२६५-२५७	श्रष्टांक किसे कहते हैं इस बातका	विचार ३३३

विषय	रिक्र	विषय	ইন্থ
जघन्य अनुभागस्थान अनन्तगुण्-]	सूक्ष्म जीवके जघन्य स्थानके परमासाझों	
वृद्धिरूप है इसकी सिद्धि	३३३	की छह अधिकारोंके द्वारा प्ररूपणा	३५२
काण्डकका प्रमास निर्देश	३३४	प्ररूपगा	३५२
जघन्य बानुभागस्थान सत्कर्मरूप		प्रमास	३५२
होकर भी बन्धस्थानके समान है	,	श्रेगि	३५२
इसकी सप्रमाण सिद्धि	३३४	अवहारका ल	३५३
उत्कर्षण ऋनुभागवृद्धिका कारण नहीं है		भागाभाग	३६४
इस बातकी सिद्धि	३ ३५	श्चरपबहु त्व	३६३
श्रन्तिम स्पर्धककी श्रन्तिम वर्गणाका		द्वितीय श्रादि श्रनुभागस्थानका विचार	3 ६ ५
एक परमासु ऋनुभागस्थान क्यों है		एक कर्मपरमाणुके अविभागप्रतिच्छेदोंमें	
इस बातकी सिद्धि	३३६	श्रनुभागस्थान, वर्ग, वर्गणा श्रीर	
योगस्थानके समान् श्रनुभागस्थानके		स्पर्धक ये चारों संज्ञाएं बन जाती हैं	
कथन न करनेका कारण	३३७	इस बातका निर्देश	३६८
प्रदेशोंके गलनेसे स्थितिघातके समान	I	एक कर्मपरमाणुके ऋविभागप्रति-	, , -
अनुभागघात नहीं होता	३३७	च्छेदोंकी स्थान संज्ञा मानने	
संयमके ऋभिमुख हुए ऋन्तिम समयवती	ſ	पर एक स्थानम अनन्त स्थान	
मिध्यादृष्टिके श्रनुभागवन्ध जघन्य	_	नहीं प्राप्त होते इस बातका	
	१३८ ²	विशेष उद्दापोह	३६६
संयमके अभिमुख हुए श्रन्तिम समययती		त्रनुभागस्थानके बन्ध श्रौर उत्कर्षणसे	
मिध्यादृष्टिका अनुभागसःकर्म जघन		निष्पन्न होने पर वह बन्धसे	
क्यों नहीं है इस बातका विचार	३३ ८	निष्पन्न हुन्या क्यों कहा जाता है	
अनुभागकी वृद्धि या हानिमें योग कारा		इस बातका विचार	३७२
नहीं है इस बातका निर्देश	३३६	श्रसंख्यातभागवृद्धि श्रादि किस प्रकार	` `
समुद्घातगत् केवलीके उत्कृष्ट श्रनुभागव		उत्पन्न होती हैं त्रादिका विशेष	
सत्ता कैसे सम्भव है इस बातकी सिर्टि	_	ऊहापाह	३७४
जघन्यस्थानकी स्वरूपसिद्धि	३ ४४	बन्धस्थानोके कारणभूत कपाय उदय	, ,
जघन्य स्थानकी चार प्रकारसे प्ररूपणा	₹ ४ ७	स्थानोंके अवस्थान क्रमका निर्देश	360
श्रविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा 	३४७		
वर्गेणाप्ररूपणा	₹8⊏ 300	l	- ३९ ०
स्पर्धकप्ररूपग्।	३४९	विशुद्धिस्थानका लक्ष्मण	₹ 5 0
अन्तर प्ररूपणा	३५०	इतहतसमु त्प त्तिकस्थानविचार ३ ९१	–३९७

कसायपाहुडस्स **ऋ गाु भा ग** वि ह त्ती

चउत्थो श्रत्थाहियारो



सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारत्रोवइट्ठं

क सा य पा हु डं

तस्स

सिरि वीरसेणाइरियविरहया टीका जयधवता

तत्थ

ऋणुभागविहत्ती णाम चउन्था अन्थाहियागे

णिद्ववियअहकम्मं वीगं णिमयुण पत्तसव्वद्वं। अणुभागम्स विद्वतिं जहोवएसं परूवेमो॥१॥

जिन्होंने स्त्राटों कर्मोंका नाश कर दिया है स्त्रोर समस्त स्रथोंको प्राप्त कर लिया है उन श्री बीर जिनदेवको नमस्कार करके शास्त्रानुसार स्त्रनुभागविभक्तिको कहते हैं ॥ १ ॥

१ एतो अणुभागविह्ती दुविहा—मूलपयिडअणुभागविह्ती चेव उत्तरपयिडअणुभागविह्ती चेव ।

§ १. को अणुभागो ? कम्माणं सगकज्जकरणसत्ती अणुभागो णाम । तस्सं विहत्ती भेदो पवंचो जिम्ह अहियारे पर्क्विज्जदि सा अणुभागविहत्ती णाम । तिस्से दुवे अहियारा—मूलपयि अणुभागविहत्ती उत्तरपयि अणुभागविहत्ती चेदि । मूलपयि अणुभागस्स जत्थ विहत्ती पर्क्विज्जदि सा मूलपयि अणुभागस्स जत्थ विहत्ती पर्क्विज्जदि सा मूलपयि अणुभागस्स जत्थ विहत्ती पर्क्विज्जदि सा उत्तरपयि अणुभागविहत्ती । एवमेत्थ वे चेव अत्थाहियाराः तदियम्स णिव्विसयत्तेण अभावादो । ण दोण्हमिहयाराणं समूहो विसओः समृहिवदिरित्तसमृहाभावादो तहिंतो चेव तद्वगमदि वा ।

एत्तो मूलपयडिञ्चणुभागविह्ती भाणिदव्वा ।

१ २. एदम्हादा िणवंघणादो मृलपयिडअणुभागविहत्ती भाणिदृणै गेण्हद्व्वा ।
 संपित एदस्स सुत्तस्स उचारणाइरियकयवक्ताणं वत्तइस्सामो । तत्थ इमाणि तेवीसं

* यहाँ से अनुभागविभक्ति का कथन प्रारम्भ होता है। उसके दो भेद हैं— मृलप्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति।

§ १. शङ्ग-अनुभाग किसे कहते है ?

समाधान कर्मोंके अपना कार्य करनेकी शक्तिको अनुभाग कहते हैं, अर्थात कर्मोंमें अपना अपना फल देनेकी जो शक्ति रहती है उसे ही अनुभाग कहा जाता है।

उस अनुभागकी विभक्ति अर्थान् भेद या विस्तार जिस अधिकारमें कहा जाता है उसका नाम अनुभागविभक्ति है। उसके दो अधिकार हैं—मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति छोर उत्तरप्रकृति अनुभागविभक्ति। जिस अधिकारमें मूल प्रकृतियोंके अनुभागका विभाग कहा जाता है वह मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति हैं और जिसमें उत्तर प्रकृतियोंके अनुभागके विस्तारको कहा जाता है वह उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति है। इस प्रकार यहाँ दो ही अधिकार हैं। तीसरे अधिकारका अभाव हैं, क्योंकि उसका कोई विषय नहीं है। शायद कहा जाय कि दोनों अधिकारका समृह उसका विषय है अर्थान् तीसरे अधिकारमें मूल प्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति का कथन रह सकता है सो भी ठीक नहीं हैं, क्योंकि समृहवालोंसे अतिरक्ति समृहका अभाव है और समृहवालोंका ज्ञान हो जानेसे ही उनके समृहका भी ज्ञान हो जाता है। सारांश यह है कि जब पहले अधिकारमें मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिका और दूसरेमें उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्तिका कथन हो ही चुकता है तो उनका ज्ञान हो जानेसे उनके समृहका भी ज्ञान हो ही जाता है, क्योंकि दोनों विभक्तियोंका समृह उनसे कोई पृथक वस्तु नहीं है, अतः तीसरे अधिकारमें कथन करनेके लिये कोई विषय ही नहीं है इसलिये यहाँ तीसरे अधिकारका अभाव है।

यहाँसे मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिका कथन कराना चाहिये ।

६२. इस सूत्रसे मूनप्रकृतिअनुभागविभक्तिका कथन कराके उसे प्रहण करना चाहिये।
 अव इस सूत्रके उचारणाचार्यकृत व्याख्यानको कहेगे। मूनप्रकृतिअनुभागविभक्तिके विषयम ये

ग्रा॰ प्रतौ श्रमुमागो । तस्त इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ भिषादृष इति पाठः ।

त्रणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा—सण्णा सव्वाणुभागविहत्ती णोसव्वाणुभागविहत्ती उक्कस्साणुभागविहत्ती अणुक्कस्साणुभागविहत्ती जहण्णाणुभागविहत्ती अज्वहण्णाणुभागविहत्ती सादियअणुभागविहत्ती अणादियअणुभागविहत्ती धुवाणुभागविहत्ती अद्धुवाणुभागविहत्ती एग जीवेण सामित्तं कालो द्यंतरं णाणाजीविह भंगविचत्रो भागभागो परिमाणं खेतं पोसणं कालो द्यंतरं भावो त्रप्पावहुत्रं चेदि। सिण्णयासो णित्थः एकिस्से पयडीए तदसंभवादो । भ्रजगार-पदणिक्खेव-विह्नविहित्त-द्वाणाणि चेदि स्रण्णे चतारि अत्थाहियारा होति।

§ ३. तत्थ एदेहि कमेण मृलपयिडअणुभागिवहत्तीए परूवणं कस्सामा । तं जहा—सण्णा दुविहा—चादिसण्णा द्वाणसण्णा चेदि । घादिसण्णा दुविहा—जहण्णा उकस्सा चेदि । उकस्से पयदं । दुविहा णिहे सो—अग्रेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उकस्सअणुभागिवहत्ती सन्वघादी । सन्वघादि ति किं ? सगपिडबद्धं जीव-गुणं सन्वं णिरवसेसं घाइउं विणासिदुं सीलं जस्स अणुभागस्स सो अणुभागो सन्वघादी । अणुकस्सअणुभागिवहत्ती मन्वघादी देवघादी वा । एवं मणुसतिण्णि-

तेईस अनुयागद्वार जानने याग्य है—संज्ञा, सर्वानुभागविभक्ति, नांसर्वानुभागविभक्ति, उत्कृष्टानुभागविभक्ति, अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति, ज्ञचन्य अनुभागविभक्ति, अज्ञचन्य अनुभागविभक्ति, सादिअनुभागविभक्ति, अन्नचन्य अनुभागविभक्ति, एक जीवकी अपेन्ना स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोकी अपेन्ना भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, नेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पवहुत्व। यहाँ सन्निकर्प अनुयागद्वार नहीं है, क्यों कि एक प्रकृतिमें सन्निकर्प संभव नहीं है। यहाँ भुजगार, पदिनन्नेप, वृद्धिविभक्ति और स्थान ये चार अधिकार और होते हैं।

§ ३. अब इनके द्वारा क्रमसे मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिका कथन करेंगे। वह इस प्रकार है—संज्ञा दो प्रकारकी है—जवन्य और स्थानमंज्ञा। वातिसंज्ञा दो प्रकारकी है—जवन्य और उत्कृष्ट। उनमेसे पहले उत्कृष्ट वातिसंज्ञाका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आध निर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेसे आविनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभाग विभक्ति सर्ववाती है।

शंका-सर्वधाति इस पदका क्या अर्थ है ?

समाधान-श्रपने से प्रतिवद्ध जीवके गुएको पूरी तरह से घाननेका जिस श्रनुभागका स्वभाव है उस श्रनुभागको सर्वधाती कहते हैं।

मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वघानी भी है और देशघाती भी है। इसी

१. जो घाउँ सविसयं सयलं सो होइ सव्वघाइरसो ।

सो निच्छिद्दो निद्धो तसुत्रो फलिहब्भहरविमलो ॥ १४८ ॥ श्वेताम्बर पंचसंग्रहद्वार ३ व्याख्या—'यो घातयति स्विषयं संकलं स भवति सर्वघातिरसः । सर्व स्वघात्यं केवलज्ञानादिलच्चां गुर्सं घातयतीति सर्वघातीति ।

कर्मप्रकृतिमन्थ संक्रमकरणे गाथा टीका ४४

पंचिदिय-पंचिदियपज्ज०-तस-तसपज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालियकाय०-चतारिकसाय-चक्खु०-ञ्चचक्खु०-भविस०-सण्णि०-आहारि ति ।

\$ ४. आदेसेण णेर्इएसु उक्क० अणुक्क० सन्त्रघादी । एवं सन्वणिरय-सन्व-तिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-सन्वदेव-सन्वेइंदिय-सन्वित्तिर्याणिदिय-पंचिदियअपज्ज०-सन्वपंच-काय--तसञ्चपज्ज०--आरालियमिम्स०--वेउन्त्रिय०--वेउ० मिस्स०--कम्मइय०--आहार०-श्राहारमिम्स०-तिण्णिवेद-तिण्णिअण्णाण-पिन्हार०-संजदासंजद०-श्रसंजद०--पंचले०-अभवसि०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-मिन्द्वादिहि-अमण्णि-श्रणाहारि ति ।

प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयागी, पांचों वचनयागी, कायपागी, श्रोदारिककाययोगी, कोषी, मानी, मायाबी, लोभी, चचुदर्शनी, श्रवचुद्दर्शनी, भव्य, संझी श्रोर त्राहारक में जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मंहनीय कर्मके अनुभागका वर्णन करनेके लिये जो तेईस अनुयोगद्वार वतलाये हैं उनमेसे पहले संज्ञाके द्वारा अनुभागका वर्णन किया है। संज्ञाके दो भेद कहे हैं—एक चार्ता दूसरा स्थान। मोहनीय कर्म घाती हैं, क्योंकि वह आत्माके गुणोको घातना है। इसलिये उसके अनुभागकी घाति संज्ञा है। वह अनुभागकी हीनाधिकनाको लिए हुए अनेक प्रकारका होता है। सबसे अधिक फलदानकी शक्तिको उत्कृष्ट अनुभाग कहते हैं और उसके सिवा शेषको अनुत्कृष्ट कहते हैं। हीन फलदानकी शक्तिको जवन्य अनुभाग कहते हैं और उसके सिवा शेषको अज्ञचन्य कहते हैं। इस प्रकार घाती मोहनीय कर्मक अनुभागके चार प्रकार हो जाते हैं—उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जवन्य और अज्ञचन्य। इन चार भेदों में से उत्कृष्ट अनुभागिवभक्ति सर्वधानी ही होती है परन्तु अनुत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिमे जघन्य भी सम्मिलित हैं. इस लिए वह सर्वधाति और देशवाति दोनो प्रकार की होती हैं। जो अनुभागिवभक्ति आत्माके गुणोको पूरी तरहसे घातनी हैं वह सर्वधानी हैं अरेर जो उन्हें एकदेशसे घाननी है वह देशवाती हैं।

श्रनुभागके भेद प्रभेदोंको सर्वाघाती श्रोर देशघातीकी तरह एक दूसरे प्रकारसे भी विभाजित किया जाता हूं श्रोर वह प्रकार है स्थानसङ्घाका । मोहनीय कर्मके श्रनुभागस्थानों को चार हिस्सोंम बाटा जाता है—एकस्थानिक, दिस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक। एकस्थानिक स्पर्धक देशघाती ही होते हैं श्रोर दिस्थानिक स्पर्धक देशघाती ही होते हैं श्रोर सर्व-घाती भी होते हैं। किन्तु रोप अनुभाग स्पर्धक सर्वचाति ही होते हैं।

§ ४. श्रादेशकी अपेक्षा नारिकयोमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभाग विभक्ति सर्ववाती है। इसी प्रकार सब नारकी, सब नियंक्ष, मनुष्य अपर्याप्तक, सब देव, सब एकेन्द्रिय, सब विवलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक, सब तेज-कायिक, सब वायुकायिक, सब वनस्पितकायिक, त्रम अपर्याप्त, औदारिकिमश्रकाययोगी, वैकियिक काययोगी, वैकियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारकिमश्रकाययोगी, तीनो वेदी, कुमतिज्ञानी, विभक्षज्ञानी, विभक्षज्ञानी, परिहारविशुद्धसंयमी, संयत्रासंयत, श्रमयत, श्रुक्लके सिवा शेष पाँचो लश्यावाले, स्रभव्य, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपश्रमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिश्यादृष्टि, मिश्यादृष्टि, असंज्ञी और स्रनाहारकोंमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ- उक्त सब मार्गणात्रोमें मोहनीयकर्मका एक स्थानिक अनुभाग नहीं रहता है

१. ता॰ प्रती श्राहारि सि इति पाठः।

§ ५. अवगद० उक्क० सव्वघादी । अणुक्क० सव्वघादी देसघादी वा । एव-माभिणि०-सुद०--ओहि०--मणपज्ज०--संजम०--सामाइय--छेदो०--सुहुम०--च्रोहिदंस०-सुक्कते०--सम्मादिद्वि०--खइयसम्मादिद्वि० ति । अकसाइ० उक्क० अणुक्क० सव्व-घादी० । एवं जहाक्खाद०संजदे ति ।

एवमुक्कस्ससण्णाणुगमो समत्तो ।

ई ६. जहण्णए पयदं । दुविहो णिइ सो—-श्रोघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेणे मोह० जहण्णाणुभागविहत्ती देसघादी । अजहण्णाणु० देसघादी सञ्वघादी वा । एवं मणुसतिय--पंचिदिय--पंचिदियपज्जं०--तस--तसपज्ज०-पंचमण०-पंचविच०-काययोगि०-ओरालियकाय०--अवगद्वेद०--चत्तारिकसाय--आभिण०--सुद० --ओहि०--मणपज्ज०-संजद०-सामाइय--छेदो०--सुहुम०सांपराइय--चक्खु०--अचक्खु०--ओहिदंसण-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइय०-सण्णि-आहारि ति ।

जैसा कि आगेक स्थानसंज्ञा अनुयोगद्वारसे स्पष्ट हैं । तथा द्विस्थानिक अनुभागका भी वही अंश रहता है जो सर्वघाती है अतः इनमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्व-घाती होती हैं ।

§ ५. वेद रहित जीवकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति मर्वघाती है और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वघाती अथवा देशघाती है। इसीप्रकार आभिनिवाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी, संयमी, सामायिकसंयमी, छेदोपस्थापनासयमी, सृदमसाम्परायसंयमी, अवधि-दर्शनी, शुक्ललंदयावाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टिके जानना चाहिये। अकपायिक जीवकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वघाती है। इसी प्रकार यथाख्यातचारित्रसंयतमें जानना चाहिये।

विशेपार्थ मूलमे कही गई क्षायिकसम्यग्दष्टि पर्यन्त मार्गणाश्रोमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट श्रमुभागविभक्ति तो सर्वधाती ही होती हैं किन्तु श्रमुत्रुष्ट श्रमुभागविभक्ति सर्वधाती भी होती है श्रोर देशधाती भी होती है। इसका कारण यह है कि इनके चपकश्रेणीमें एकस्थानिक श्रमुभागकी भी सत्ता रहती है। अकपायिक श्रोर यथाख्यातसयत जीवोके मोहनीयके सर्वधाती श्रमुभागकी ही सत्ता रहती है, क्योंकि उपशमश्रेणीकी श्रपेक्षा ही इन मार्गणाश्रोमें मोहनीयका सत्त्व सम्भव है। श्रतः उनके दोनो ही श्रमुभाग सर्वधाती होते है।

इस प्रकार उत्कृष्ट संज्ञातुगम समाप्त हुन्ना ।

§ ६. अब जघन्य अनुभागविभक्ति प्रकरण है। निर्दोश दो प्रकारका है— आंघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेसे आंघनिर्देशको अपेदा मोहनीयकमकी जघन्य अनुभागविभक्ति देशावाती है और अजघन्य अनुभागविभक्ति देशावाती है और अजघन्य अनुभागविभक्ति देशावाती अथवा सर्वघाती है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यती, पंचित्रिय, पञ्च निर्देश पर्याप्त, त्रम, त्रसपर्याप्त, पाँचो मनोयोगी, पाँचो वचनयोगी, काययोगी, आदारिककाययोगी, अपगतवदी, चारों कषायवाले, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुनज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयमी, छेदोपस्थापना संयमी, सूद्भसांपरायसंयमी, चज्जदर्शनी, अचजुदर्शनी, अवधिदर्शनी, श्रुक्तलेश्यावाले, भन्य, सम्यन्दृष्टि, क्षायिकसम्यन्दृष्टि, संज्ञी और आहारकोमे समभना चाहिये।

५. ता॰ प्रतो य । श्रोधेस इति पाठः । र श्रा॰ प्रतो मसुसतिय पंचिदियपज्र इति पाठः ।

ः ७. आदेसेण णेरइएसु जहण्ण० अजहण्ण० सन्वघादी । एवं सन्वणेरइय-सन्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०--सन्वदेव--सन्वएइंदिय-सन्वविगलिदिय--पंचेंदियअपज्जै० सन्वपंचकाय०--तसअपज्ज०--ग्रारालियमिस्स०-वेउन्विय०-वेउन्वियमिस्सै०-कम्मइय०-आहार०-आहारमिस्स०-तिण्णिवेद०-अकसा०-तिण्णिअण्णा०--परिहार०-जहाक्खाद०-संजमासंजम--असंजम---पंचले०--अभवसि०--वेदग०--उवसम०--सासण०-सम्मामि०-मिच्छादि०--असण्णि०-अणाहारि ति ।

एवं जहण्णसण्णाशुगमो समतो।

्रद. हाणसण्णा दुविहा—जहण्णिया उक्कस्सिया चेदि । उक्कस्सियाए पयदं । दुविहो णिहे सो—ओयेण आदेसेण य । तत्थ ओयेण मोह० उक्कस्साणुभागहाणं चदुहा-णियं । अणुक्क० चदुहाणियं तिहाणियं विहाणियं एगहाणियं वा । एवं मणुसतिष्णि-पंचिदय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०--पंचविच०-कायजोगि०-ओराल्यिकाय०-

\$ ७. त्रादेशकी श्रपेक्षा नारिकयोमे जघन्य श्रोर अजघन्य अनुभागिवभक्ति सर्वघाती है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्यश्रपर्याप्त, सब देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय पंचेन्द्रिय श्रपर्याप्त, सब पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक, सब तेजस्कायिक, सब वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, त्रसञ्चपर्याप्त, श्रोदारिकमिश्र काययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्र-काययोगी, कामंग्यकाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारककाययोगी, श्राहारकमिश्रकाययोगी, तीनो वेदवाले, श्रकपायिक, कुर्मातज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, परिहारिवश्रुद्धिसंयमी, यथाख्यातचारित्रसंयमी, संयमासंयमी, श्रमंयमी, श्रुक्तलेश्याके सिवा शेप पांचो लेश्यावाले, श्रभव्य, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशममम्यग्दृष्टि, मासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यामिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, श्रसंज्ञी श्रीर श्रनाहारकमें समभना चाहिये।

विशेषार्थ—मूलमे कही गई आहारक पर्यन्त मार्गणाओं में क्ष्पकश्रेणिकी अपेता एक स्थानिक अनुभाग का भी सत्त्व पाया जाता है। अतः उनमें जयन्य अनुभाग देशवाती और अज्यान्य अनुभाग देशवाती तथा सर्वयाती होता है। तथा शेष अनाहारक पर्यन्त मार्गणाओं में सर्वयाती अनुभागका ही मत्त्व पाया जाता है अतः उनमें जयन्य और अज्यान्य दोनो अनुभाग सर्वयाती ही होते हैं। यहां यह स्मरण रखनेकी वात है कि अनुभागके ये उत्कृष्ट आदि भेद आंच और आदेश दो प्रकारसे किये हैं। इसलिए जहाँ जो सम्भव हो उस अपेता से उन्हें चटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार जघन्य संज्ञानुगम समाप्त हुआ।

§ प्त. स्थानमंद्रा दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेसे यहां उत्कृष्ट का प्रकरण है । निर्देश दो प्रकार का है—आघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे आघकी अपेक्षा माहनीय कमका उत्कृष्ट अनुभागस्थान चतुःस्थानिक होता है और अनुतृकृष्ट अनुभागस्थान चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक, द्विस्थानिक और एकस्थानिक होता है । इसी प्रकार तीनो प्रकारके मनुष्य, पञ्च न्द्रिय, पञ्च न्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याद, पाँचों मनोयोगी, पाँचों चचनयोगी, काययोगी, आदारिककाय-

श्रा ● प्रतौ सब्बिवगिर्विद्यग्रपज्ज० इति पाठः । २. ता० प्रतौ श्रोराितयमिस्स० वेउव्विय-मिस्स० इति पाठः ।

चत्तारिकसाय-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारि ति ।

६. त्रादेसेण णेरइएस उक्कस्स० चउहाण० । अणुक्क० वेहा० तिहा० चदुहाणियं वा । एवं सञ्चणेरइय-सञ्चतिरिक्ख-मणुसत्रपञ्च०-देव भवणादि जाव सहस्सार सञ्चेइंदिय-सञ्चविगालिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०--सञ्चपंचकाय-तसअपज्ज०-त्रोरालयमिस्स०-वेउिव्वय०--वेउिव्वयमिस्स०-कम्मइय०--तिण्णिवेद--तिण्णिअण्णाण--असंजद-पंचले०-अभवसि०-मिच्छादिहि-असण्णि-अणाहारि ति । त्राणदादि जाव सञ्चहसिद्धि ति उक्क० त्रणुक्क० वेहाणियं । एवमाहार०-त्राहारमिस्स०-अकसाय-पिरहार०जहाक्खाद०-संजदासंजद-वेदगसम्माइहि-उवसम०-सासण०-सम्मामि०दिहि ति । त्रावगदवेदेसु मोह० उक्क० वेहाणियं । त्रणुक्क० वेहाणियमेगहाणियं वा । एवमाभिणि०सुद०-ओहि०--मणपज्जव०--संजद०--सामाइय-च्छेदो०--सुहुमसांपराइय०--त्रोहिदंम०-

योगी, चारों कपायवाले, चल्रुदर्शनी, अचलुदर्शनी, भन्य, संज्ञी ख्रीर ब्राहारकमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ-यातिकर्मोंकी अनुभागशक्ति लता, दारु, अस्थि और शैल इस प्रकार चार प्रकारकी मानी गई है। जिसमें यह चारों प्रकारकी शक्ति होती है उसे चतुःस्थानिक अनुभाग कहते हैं। जिसमें शैलरूप शक्तिके सिवा तीन प्रकारकी शक्ति होती है उसे त्रिस्थानिक अनुभाग कहते हैं। जिसमें लता और दारुरूप शक्ति होती है उसे द्विस्थानिक अनुभाग कहते हैं और जिसमें केवल लतारूप शक्ति होती है उसे एकस्थानिक अनुभाग कहते हैं। उत्कृष्ट अनुभागशक्ति चतुःस्थानिक होती है यह स्पष्ट ही हे और उससे हीन सब अनुभाग शक्ति अनुत्कृष्ट कहलाती है, इसलिए अनुत्कृष्ट अनुभागशक्ति चतुःस्थानिक आति प्रकारका कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि एकस्थानिक अनुभागशक्ति चपकश्रेणिके सिवा अन्यत्र नहीं उपलब्ध होती। यही कारण है कि यहाँ जिन मार्गणाओं में चपकश्रेणि सम्भव है उनका कथन आंघके समान जाननेकी सुचना की है।

§ ६. आदेशकी अपेक्षा नारिकयोमे उत्दृष्ट अनुभागस्थान चतुःस्थानिक होता है और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक अथवा चतुःस्थानिक हाता है। इसी प्रकार सब नारिकयों, सब निर्यक्वों, मनुष्य अपर्याप्तक, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर सहस्नार स्वर्ग तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रियअपर्याप्त, सब पाँचो स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्तक, औदारिकिमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकिमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, मितअज्ञानी, श्रुनअज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, शुक्रलेश्याके सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले, अभन्य, मिण्यादृष्टि, असंज्ञी और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक अथवा द्विस्थानिक होता है। आनतस्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों में उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक होता है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अक्रपायी, परिहारिवशुद्धिलंयत, यथाख्यानसंयत, संयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिण्यादृष्टियोमे जानना चाहिये। अर्थात् उनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक हो होता है। अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक होता है। अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक होता है। इसी प्रकार आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयव,

सुक्कले ०-सम्मादिहि-खइय०दिहि ति । एव उक्कसिया द्वाणसण्णा समत्ता ।

- ११. त्रादेसेण णेरइएसु ज० वेद्वाणियं। अज० वेद्वा० तिद्वा० चउद्वाणियं वा। एवं सव्वणरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव भवणादि जाव सहस्सार सव्व-

छेदोवस्थापनासंयत, सूद्रमसांपरायसंयत, अवधिदर्शनी, शुक्तलेश्यावाले, सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें जानना चाहिये। अर्थात् उनमे मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक होता है और अनुन्कृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक अथवा एकस्थानिक होता है।

विशेषार्थ-आदेशसे प्रक्षणा करते समय यहाँ निर्दिष्ट सब मागणाश्रोंको तीन भागोंमें विभक्त कर दिया है। प्रथम प्रकारमें वे मार्गणाएँ आती हैं जिनमें श्रोघ उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है। या उसका घान किये बिना जिनमें ऐसे जीवोंकी उत्पत्ति सम्भव है। दृसरे प्रकारमें वे मार्गणाएँ आती हैं जिनमें चपकश्रेणि तो सम्भव नहीं पर अन्तरङ्ग विशुद्धिके कारण न तो द्विस्थानिक अनुभागसे उत्परके या नीचके अनुभागका बन्ध ही होता है श्रोर न इससे आगेके या नीचके अनुभागकी सत्ता ही रहती है। तथा तीसरे प्रकारमें वे मार्गणाएँ आतीं हैं जिनमें परिणामोकी विशुद्धिके कारण दिस्थानिक अनुभागसे आगेके अनुभागका न तो वन्ध ही होता है श्रोर न सत्ता ही रहती है। परन्तु इन मार्गणाओंमें अपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होने से यहाँ एकस्थानिक अनुभाग भी वन जाता है। मार्गणाओंका नामनिर्देश मूलमें किया ही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थानसंज्ञा समाप्त हुई।

\$ १०. श्रव जवन्य स्थानसंज्ञाका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रांचिनिर्देश श्रोर श्रादेशनिर्देश। श्रोपकी श्रपेक्षा मोहनीय कर्मकी जवन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक होती है श्रोर अजवन्य अनुभागिवभक्ति एकस्थानिक, दिस्थानिक, त्रिस्थानिक अथवा चतुःस्थानिक होती है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्यपयाप्रक, मनुष्यिनी, पर्चेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्रक, त्रस, असपर्याप्तक, पाँच मनायोगी, पाँच वचनयागी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चारो कपायवाले, चनुदर्शनी, अच्चुदर्शनी, भव्य, संज्ञी श्रोर आहारकमे जानना चाहिये।

विशेषार्थ-एकस्थानिकमं भी जो सबसे हीन अनुभागशक्ति होती है वह जघन्य अनुभागशक्ति है और इसके सिवा शेप सब अजघन्य अनुभागशक्ति है। इनमेसे मोहनीयकी जघन्य अनुभागशक्ति क्षपकसूद्दमसाम्परायके अन्तिम समयमे होती है। इसके सिवा अन्यत्र अजघन्य होती है। आंघसे तो यह सम्भव है ही। पर जिन मार्गणाओं में मिण्यात्वादि क्षपक सूद्दमसापराय तक गुणस्थान सम्भव हैं उनमें भी यह ब्यवस्था वन जाती है, अतः मूलमे निर्दिष्ट मार्गणाओं का कथन आंघक समान जाननेकी सूचना की है।

§ ११. ऋदिशकी अपेक्षा नारिकयोंमें मोहिनयकर्मका जनन्य अनुभागस्थान द्विस्थानिक हाता है और अजवन्य ऋनुभागस्थान द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक ऋथवा चतुःस्थानिक हाता है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यक्क, मनुष्य ऋपयोग, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर सहस्रार ण्इंदिय-सन्वविगलिदिय-पंचिदियअपज्ञ ०-सन्वपंचकाय-तसअपज्ञ ०-ओरालियमिस्स ०-वेउन्विय ०-वेउन्वियमिस्स ०--कम्मइय ०-तिण्णिवेद-तिण्णिअण्णाष--असंजद-पंचलेस्सा-अभवसि ०-मिच्छादि ०-असण्णि ०-अणाहारि ति । आणदादि जाव सन्वहसिद्धि ति जहण्णाजहण्णअणुभागविहत्ती वेहाणिया । एवं आहार ०-आहारमि ०-अकसा ०-परिहार ०-जहाक्खाद ०-संजदासंजद-वेदग ०-उवसम ०-सासण ०-सम्मामि ० दिहि ति । अवगदवेदेसु मोह ० ज० एगद्वाणिया । अज० एगद्वाणिया विद्वाणिया वा । एवमाभिणि ०-सुद ०-ओहि ०--मणपज्ज०--संजद ०--सामाइय-छेदो ०--सुहुमसांपराय ०--ओहिदंस ०--सुक्कले ०-

एवं जहण्णिया द्वाणसण्णा समता।

स्वर्ग तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पाँचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, अौदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदी, मितश्रक्षानी, श्रुनश्रक्षानी, विभङ्गक्षानी, असंयत, शुक्तलेश्याके सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले, अभव्य, मिश्यादृष्टि, असंझी और अनाहरकमें जानना चाहिये। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थेसिद्धिपर्यन्त जघन्य और अजधन्य अनुभागविभक्ति द्विस्थानिक ही होती है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, श्रकपायी, परिहारिवशुद्धिसंयत, यथाख्यातसंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशामसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मश्यादृष्टिमें जानना चाहिये। अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक होती है और अजघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक होती है और अजघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक होती है और अजघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक होती है स्थित, सम्यग्दृष्टि और चायिक सम्यग्दृष्टि शोर चाविक सम्यगदृष्टि शोर चाविक सम्यगदृष्टि शोर चाविक होती है और स्वच्यय अनुभागविभक्ति एकस्थानिक शोर द्विस्थानिक होती है।

इस प्रकार जघन्य स्थानसंज्ञा समाप्त हुई।

§ १२. सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्तिकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । आंघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके सब स्पर्धक सर्वविभक्ति है और उनसे न्यून स्पर्धक नोसर्वविभक्ति हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—सर्वविभक्तिसे आशय है सब भेद-प्रभेद। अर्थात् सब भेद-प्रभेदोंके समूहको सर्वविभक्ति कहते हैं और उस समूहमेंसे यदि एक भी भेद कम हो तो उसे नोसर्वविभक्ति कहते हैं। अतः मोहनीयकर्मके जितने स्पर्धक हैं उनका समूह सर्वविभक्ति कहा जाता है और उस समूहमेंसे यदि एक भी स्पर्धक कम हो तो उसे नोसर्वविभक्ति कहते हैं। सारांश यह है कि सर्वविभक्ति केवल सब स्पर्धकोंका समूह ही है और उस समूहसे कम स्पर्धक नोसर्वविभक्ति हैं। सब मार्गणाओंमें सर्वविभक्ति और नासर्वविभक्तिका यही कम समक्ष्ता चाहिये।

- § १३. उक्तस्साणुक्तस्साणुगमेण दुविहो णिहे सो ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० सच्चुक्तस्सओ अणुभागो उक्तस्सविहत्ती। तदूणमणुक्तस्सविहत्ती। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए ति; आदेसुक्तस्सस्स सच्चत्थ संभवादो।
- १४. सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिहे सो— छोघे० आदेसे०। ओघे० मोह० उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्णअणुभागविहत्ती किं सादिया किमणादिया किं धुवा किद्द्धुवा वा ? सादि— ऋद्धुवा। अज० किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा वा ? अणादिया धुवा अद्धुवा वा । आदेसेण णेरइय० मोह० उक्क० अणुक० ज० अज० [किं सादि०] किमणादि० किं धुवा किमद्धुवा ? सादि-ऋद्धुवा।
- \$ ११. च्त्कृष्ट अनुभागविर्भाक्त और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है ओघ निर्देश और अपेक्षा निर्देश निर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मका सर्वेत्कृष्ट अनुभाग चत्कृष्टविभक्ति है और उससे न्यून अनुभाग अनुत्कृष्टविभक्ति है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिये; क्योंकि आदेश उत्कृष्ट अनुभाग सब जगह सम्भव है।
- ६ १४. जघन्य अनुभागविभक्ति और अजघन्य अनुभागविभक्तिकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंघनिर्देश और आदेशनिर्देश। आंघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मका सबसे जघन्य अनुभाग जघन्यविभक्ति है और उससे अपरंक अनुभाग अजघन्य विभक्ति हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिय, क्योंकि आदेश जघन्य अनुभाग सब जगह संभव है।
- विशेषार्थ यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका विचार करते समय आदेश उत्कृष्टकी और जघन्य-अजघन्य अनुभाग विभक्तिका विचार करते समय आदेश जघन्यकी सम्भावना प्रकट की हैं सो उसका यही अभिशाय है कि जिन मार्गणाओं में औप उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति और आंघ जघन्य अनुभागविभक्ति सम्भव नहीं है वहां जो सबसे उत्कृष्ट अनुभाग हो उसे आदेश उद्कृष्ट अनुभागविभक्ति और जो सबसे कम अनुभाग हो उसे आदेश जघन्य अनुभाग विभक्ति जानना चाहिए। उदाहरणस्वरूप आभिनिवाधिक ज्ञानमें एकस्थानिक और द्विस्थानिक यह दो प्रकारकी अनुभागविभक्ति ही सम्भव है, इसिलए यहां उत्कृष्ट से आदेश उत्कृष्ट द्विस्थानिक अनुभागविभक्ति ली गई है। तथा सर्वार्थीसद्विम जघन्य अनुभागविभक्ति भी द्विस्थानिक सम्भव है, इसिलए वहां जघन्यसे आदेश जघन्य अनुभागविभक्ति ली गई है। इसी प्रकार सर्वत्र जहाँ जो सम्भव हो उसे घटिन कर लेना चाहिए।
- ९ १५. सादि अनुभागविभक्ति, अनादि अनुभागविभक्ति, ध्रुवअनुभागविभक्ति और अध्रुवअनुभागविभक्ति की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—आंचनिर्देश और आदेशनिर्देश। आंघ की
 अपेक्षा मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जावन्य अनुभागविभक्ति क्या सादि है क्या अनादि
 है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है १ सादि अध्रुव है। अजधन्य अनुभागविभक्ति क्या सादि
 है क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है १ अनादि, ध्रुव और अध्रुव है। आदेशकी
 अपेक्षा नार्राक्योमे माहनीयकर्मकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्ति क्या
 सादि है, क्या अनादि है क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है १ सादि और अध्रुव है, क्योंक

पदपरिवर्तनकी अपेदा आंर नरकसे निकलने आंर नरकमे प्रवेश करनेका अपेक्षा उत्क्रष्ट आदि चारोका सादि और अध्वभाव बन जाता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ—श्रोवसे माहनायकर्मका जवन्य श्रातुभाग चयक सूद्तमसान्परायिकके श्रन्तिम समयमें होता है, अतः वह सादि श्रोर श्राप्तुव है। उससे पहले अजघन्य अनुभाग होता है अतः जो सूद्तमसान्गरायिक अपक नहीं हुए उनके अजघन्य अनुभाग श्रनादि है। भव्य की अपेक्षा वह अप्रुव है और श्रमव्य की अपेक्षा ध्रुव है। तथा उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टिकं होता है आंर तब तक ही उसका सत्त्व रहता है जब तक उसका घात नहीं करता, अतः वह सादि और अप्रुव है। उत्कृष्ट अनुभागवन्ध के पश्चान् जो बन्ध होता है उसे अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध के पश्चान् जो बन्ध होता है उसे अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध की सादि और अप्रुव ही होता है। मार्गणाओं उत्कृष्ट आदि चारो पद सादि और अप्रुव ही होता है। मार्गणाओं अपेक्ष होते हैं, अतः अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी सादि और अप्रुव ही होता है। मार्गणाओं उत्कृष्ट आदि चारो पद सादि और अप्रुव ही होते हैं, क्यो कि एक तो मार्गणाणें बदलती रहती हैं और दूसरे कोई मार्गणा नहीं भी बदलती है जैसे अभन्य ता उनमे उत्कृष्ट आदि पद बदलते रहते हैं, अतः मार्गणाओं उत्कृष्ट आदि चारों के सादि और अप्रुव ये दा पद ही सम्भव हैं।

§ १६. स्वामित्व दा प्रकारका है—जवन्य और उत्कृष्ट । यहाँ उत्कृष्ट स्वामित्वसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—प्रावनिर्देश और आदेशनिर्देश । आवका अपेक्षा मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके जो जीव उसका जब तक घात-नहीं करता है तब तक वह एकेन्द्रिय हो या दाइन्द्रिय हो या तेइन्द्रिय हो या चोइन्द्रिय हो अथा असंज्ञी पञ्च न्द्रिय हो किसी भी गतिमें वर्तमान किसी भी जीवके उत्कृष्ट अनुभाग होता है । किन्तु असंख्यात वर्षकी आयुवाले निर्यञ्च और मनुष्योंमें तथा मनुष्योंमें ही जिनकी उत्पत्ति होती है उन देवोंमें उत्कृष्ट अनुभाग नहीं होता है । अनुत्कृष्ट अनुभाग किसके हाता है ? किसा भी जीवके होता है ।

उक्कोसगं पर्विथय श्रावित्यमहृष्टिञ्जउत्त उक्कस्तं। जाव ता घाएइ तयं संकामह श्रामुहुत्तंता ॥१२॥
 मिथ्याहृष्टिरुक्ट्रप्टमनुमागं बद्ध्वा तत श्रावित्वकामितिकम्यः बन्धावित्वकायाः परत इत्यर्थः।

तमुःकृष्टमनुभाग संक्रमयति तावद्यावन्न विनाशयति । कियन्तं कालं यावत् पुनर्नं विनाशयतीनि चेत् उच्यते-ब्रामुहूर्तान्तः-ब्रन्तमु हूर्तं यावदिःयधेः,। परतो मिथ्यादृष्टिः शुभ-प्रकतीनामनुभागं संक्लेशेन श्रशुभ-प्रकृतीनां तु विशुद्ध-याऽवश्यं विनाशयति ॥ १२ ॥ कर्मप्र० संक्र० ।

^{&#}x27;'मिच्छ्रतस्य उक्कस्याणुभागसंतकम्मं कस्य ? उक्कस्याणुभागं बंधिदृण जाव ण हण्दि ताव सो होउज एइंदिस्रो वा वेइंदिस्रो वा तेइंदिस्रो वा चडिरंदिश्रो वा श्रसणणी वा सण्णी वा। श्रसंखेऽजवस्साउएसु मणुस्सोववादियदेवेसु च णिथ ।'' चू० सू०

२. ''ब्रसंखेजनवस्साउएसु इति वृत्ते भोगभूमियतिरिक्खमणुस्सायां गहणां।''' ''ग्यास्तोव-वादियदेवेस ति बुत्ते ब्राणदादि उपरिमसन्बदेवाणां गहणां मणुस्सेसु चेव तेसिसुर्वतीदो।''''''एदेस्

§ १७. आदेसेण णेरइएसु मोह० उकस्साणु० कस्स ? अण्णदर० उकस्साणु-भागं वंधिदृण जाव सो ण हर्णाद् ताव। अणुक्कः कस्स ? ऋण्णदः । एवं सञ्वणेरइय-सञ्वतिरिक्ख-सञ्वमणुस्स-देव० भवणादि जाव सहस्सार० पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०--त्रोरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-तिण्णिअण्णाण-असंजद् ०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०--अभवसि०-मिच्छादिहि-सण्ण--आहारि ति । णविर पंचिंदियतिरिक्ख अपज्ज ० उकस्साणुभागविहत्ती कस्स ? अण्णद् मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा [पंचिदियतिरिक्ख-

विशेषार्थ-मंहिनीय वर्मका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध चारो गतिके उत्कृष्ट संक्लेशपरिगामी मंज्ञी पश्चीन्द्रय पर्याप्रक जीव करते हैं। करने पर जब तक उसका घात नहीं किया जाता तब तक वह जीव मरकर जहां भी उत्पन्न होगा वहीं उसके उत्क्रष्ट श्रमुभागका सत्त्व पाया जायेगा। इसी कारण्से एकेन्द्रियादिकमें उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध न होने पर भी उसका सत्त्व कहा है। किन्तु भागभूमियां जाबोके माहनीयका उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व नहीं होता, क्योकि न ता वहाँ माहनीय का उत्कृष्ट अनुभागवन्ध ही होता है और न उसकी सत्तावाला जीव वहां जन्म ही लेता है। इसी प्रकार आनतादि स्वर्गके देवोके भी मोहनीय के उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व नहीं होता, उत्कृष्ट अनु-भागकी सत्तावाला कोई जीव यदि भागभूमि या त्र्यानतादि स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाला होता है तो उत्कृष्ट अनुमागका घान करक ही उत्पन्न हा सकता है। उत्कृष्ट अनुमागसे अतिरिक्त अनुभाग की अनुत्कृष्ट अनुभाग कहते हैं अंदि ऐसा अनुभाग प्रायः सभी मोही जीवों के पाया जाता है।

🐧 १७. त्र्यादेशकी त्र्रपेक्षा नारिकयोमें मोहनी ककर्मका उत्कृष्ट त्र्यनुभाग किसके हाता है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक किसी भी जीवक मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग होता है। अनुत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है १ किसी भी जीवके होता है। इसी प्रकार सब नारकी, सब निर्यञ्ज, मब मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तककं देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँची मनायोगी, पाँची वचनयोगी, काययोगी श्रीदारिककाययोगी, वैकियिककाययोगी, तीनों वदी, चारों कपायवाले, तीनों ऋज्ञानी, ऋसंयत, चचुदशनी, ऋचचुदर्शनी, शुक्ललेश्याके सिना शेप पाँचों लेश्यावाले, भव्य, स्रभव्य, मिण्याद्रष्टि, सज्ञी स्त्रीर स्त्राहारक जीवोमे जानता चाहिये। पचेन्द्रिय तिर्यस्त्र श्चपर्याप्तकोंमे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टानुभागविभक्ति किसके होती है ? जो मनुष्य, मनुष्यिनी,

उक्कस्साणुभागसंतकम्मं खिरथ तं घादिय विद्वाणियं करिय पच्छा एदेसुप्पत्तीदो । या च तत्थ उक्कस्साणुभाग-वंघो वि श्राध्यः तेउपमम्सक्कतेस्साहि तिरिक्ख-मणुस्सेम् सुक्कतेरिसयाप् देवेसु च उक्कस्साणुभागबंधभावादो ।" ज० घ० श्रनु० वि०।

तथा चोक्तं पञ्चसंप्रहमूलटीकायाम् —'सम्यग्दष्टयो मिथ्यादृष्टयश्च सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोनींत्कृष्ट-मनुभागं विनाशयन्ति श्रवि तु चपकः सम्यग्दष्टिर्विनाशयति उभयोरिष दृष्टयोरिति । मिथ्यादृष्टिः पुनः सर्वासाः मपि श्रभप्रकृतीनां संक्तेशेनाशुभप्रकृतीनां तु विशुद्धया धन्तम् हर्तात्परतः उत्कृष्टमनुभागमवश्यं विनाशयति ॥ ४६ ॥ कर्मप्र• संक०

श्रणुभागं श्रव्नयरो सुद्दुमञ्रपः जलगाइ मिच्छो उ । विजिय श्रप्तंखवासाउए च मणुश्रोववाए य ॥४३॥ केबलमसंख्येयवर्षायुर्वा मनुष्यतिर्यञ्जो ये च देवाः स्वभवाच्चयुःवा मनुष्येष् उत्पद्यन्ते तांश्च मनुष्योपपाताः श्चानतप्रमुखान् देवान् वर्जयिश्वा । एते हि सिध्यादृष्ट्योऽपि नाशुभयकृतीनामुक्तस्वरूपणामुख्रुष्टमनुभागे वध्नन्ति, संक्लेशासावात् ॥ कमप्र० संक्र० ।

जोणियो वा] पंचिदियतिरिक्खजोणिणीओ वा उक्कस्साणुभागं बंधिदृण जाव ण हणित् ताव जो पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तत्त्रसु उववण्णो तस्स उक्कस्साणुभागविहत्ती। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिदिय-पंचिदियअपज्ज०-सव्वपंचकाय-तसम्रपज्ज० ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-असण्णि-अणाहारि ति।

- ह १८. आणदादि जाव णवगेवज्ञा ति मोह० उक्कस्स० कस्स १ अण्णदरस्स जो तप्पाओग्गडक्कस्सअणुभागसंतकिम्मओ द्व्वित्वंगी मदो अप्पप्पणो देवेसु उववण्णो सो जाव ण हणदि ताव तस्स उक्कसाणुभागविहत्ती । हदे अणुक्कस्सा । अणु-दिसादि जाव सव्वहिसिद्धि ति उक्कस्साणुभागविहत्ती कस्स १ अण्णदरस्स जो तप्पाओग्गडकस्साणुभागसंतकिम्मओ वेदगसम्मादिही अप्पप्पणो देवेसु उववण्णो सो जाव ण हणदि ताव उक्कस्साणुभागविहती । हदे अणुक्कस्साणुभागविहती ।
- ११. त्राहार०-आहारिमस्स० उक्तस्साणुभाग० कस्स ? जो संजदो वेदगसम्माइही त्राहावीससंतकिम्मओ तप्पाओगगउक्तस्साणुभागसंतकम्मेण उहाविदाहारसरीरो तस्स उक्तिस्सया त्रणुभागविहती । अण्णस्स त्रणुक्तस्सिया । अवगद० उक्क०
 पञ्चोन्द्रयितर्यञ्च अथवा पञ्चोन्द्रयितर्यञ्चयोनिनी उत्कृष्ट अनुभागक। बन्ध करके उसका धात किय
 विना हो यदि पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकों से उत्पन्न होता है तो उस पञ्चोन्द्रयितर्यञ्च अपर्याप्तके
 उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है । इसी प्रकार मनुष्यअपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय,
 पञ्चोन्द्रय अपर्याप्त, सब पर्मनो स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्तक, झौदारिक्रमिश्रयोगी, वैकियिक
 मिश्रयोगी, कामेणुकाययोगी, असंज्ञा और अनाहारक जीवोंमे जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मूलमे नारकीसे लंकर आहारक पर्यन्त जो मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमे माहनीयका उत्कृष्ट अनुभागवन्य हो सकता है, अतः उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करके जब तक उसका यान नहीं किया जाता तब तक उक्त मार्गणाओं में उत्कृष्ट अनुभाग रहता है। तथा पक्षे न्द्रियतिर्यक्ष अपर्याप्तकमें और मूलमे गिनाई गई मनुष्य अपर्याप्तकसे लेकर अनाहार मार्गणाप्यन्त मार्गणाओं में यद्याप माहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्य तो नहीं होता है, किन्तु कोई मनुष्य आदि यदि उसका बन्य करके उक्त मार्गणाओं में आजाते हैं तो उनमे भी उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व पाया जाता है।

§ १८. आनत स्वर्गसे लेकर नवप्रैंवयक तकके देवोंम माहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? जिसके आनतादि स्वर्गके यांग्य माहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ता है ऐसा जो द्रव्यलिङ्गी मरकर अपने यांग्य उक्त देवोंम उत्पन्न होता है वह जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्ध तक उत्कृष्टानुभागविभक्ति किसके हीती है ? अनुदिश आदिके यांग्य उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्दिष्ट अपने योग्य उक्त देवोंमें उत्पन्न होता है वह जब तक उत्कृष्ट अनुभागका घात नहीं करता है तब तक उसके उत्कृष्टानुभागविभक्ति होती है, और उत्कृष्ट अनुभागका घात करने पर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है ।

६ १६. आहारककाययांगी और आहारकमिश्रकाययांगियोंमे उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति किसके होती है ? अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्हिष्ट संयमी तृत्वयोग्य उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ताके रहते हुए आहारकशरीरको उत्पन्न करता है उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है,

कस्म १ जो अवगद्वेदअणियद्विजवसामओ पढमाणुभागकंडए वट्टमाणओ तस्स जक्कस्साणुभागविहत्ती । हदे अणुक्कस्सा । एवमकसाय-जहाक्खादसंजदाणं । णविर जवसंतकसायपढमादिसमए तप्पाओग्गजक्कम्साणुभागसंतकम्मेण वट्टमाणस्स वत्तव्वं; तत्थ अणुभागस्स घादाभावादो ।

६२०. णाणाणु० आभिणि०-सुद् ०-ओहि० मोह० उक्क॰ कस्स १ जेण मिच्छादिहिणा अहावीससंतकिम्मएण तप्पाओग्गउक्कम्साणुभागेण सह वेदगसम्मतं पिडवण्णं
जाव तं ण हणदि ताव तस्स उक्कस्साणुभागिविहती। तिम्म हदे अणुक्कस्सा। एवं
संजद् । संजद ०-ओहिदंस ०-सम्मादि०-वेदग०-सम्मामि०दिहि ति। मणपज्जव० आहार ०भंगो। एवं संजद ०-सामाइय-छेदो०-पिरहार ० संजदा ति। सुहुमसांपराय० उक्क०
कस्स १ सुहुमसांपराइय उवसामयस्स सगउक्कस्साणुभागेण सह वट्टमाणस्स। तिम्ह हदे
अणुक्कस्सो। सुक्कले० आभिणि०भंगो। उवसमसम्मा० मोह० उक्क० कस्स १ जो
मोहतप्पाओग्ग उक्कस्ससंत्तकम्मेणे सह वट्टमाणो उवसमसम्मादिही जाव पढमाणुभागखंडयं ण हणदि ताव तस्स उक्कस्साणुभागविहती। तिम्म हदे अणुक्कस्सा। खड्यसम्मा०

अन्यके अनुत्कृष्ट अनुभागांवभक्ति होती है। अपगतंबद्में उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति किसके होती है ? जां अतिवृत्तिकरण गुण्स्थानके अवेद भागवर्ती उपशमश्रेणिवाला जीव प्रथम अनुभागकाण्डक में विद्यमान है उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है। तथा उसका घात करने पर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है। इसीपकार अकपाय और यथाख्यातसंयतों के जानना चाहिये। इतनी विद्येपता है कि उपशान्तकपाय गुण्स्थानके प्रथम आदि समयमे उसके योग्य उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तासे युक्त जीवके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति कहनी चाहिये, क्योंकि वहां अनुभागक। घात नहीं होता है।

§ २०. ज्ञानकी श्रपेक्षा श्रामिनियोधिकज्ञानी, श्रुनज्ञानी श्रौर श्रवधिज्ञानीमें मोहनीय-कर्मका उत्कृष्ट श्रनुभाग किसके होता है ? श्रद्धाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस मिध्यादृष्टिने तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट श्रनुभागके साथ वेदकसम्यक्त्व प्राप्त किया है, जब तक वह उस श्रनुभागका घात नहीं करता है तब तक उसके उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्ति होती है । तथा उत्कृष्ट श्रनुभागका घात करने पर श्रनुःकृष्ट श्रनुभागविभक्ति होती है । इसी प्रकार संयतासंयत, श्रवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्निक्षण्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानमें आहारककाययागी के समान जानना चाहिये । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदांपस्थापनासंयत श्रौर परिहार-विशुद्धिसंयतोंक जानना चाहिये । सूदमसाम्परायसंयतमें उत्कृष्ट श्रनुभाग किसके होता है ? जो सूदमसाम्परायसंयत उपशामक जीव श्रपने उत्कृष्ट श्रनुभागके साथ विद्यमान है उसके उत्कृष्ट श्रनुभाग होता है श्रौर उसका घात होने पर अनुत्कृष्ट श्रनुभाग होता है । श्रुक्ललेश्यावालेके आभिनियोधिकज्ञानी की तरह मंग होता है । उपशामसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट श्रनुभाग किसके होता हु श्रो जब तक प्रथम श्रनुभागकाण्डकका घात नहीं करता है, तब तक उसके उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्ति होती है । श्रीयकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीय अर्थन घात करने पर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागविभक्ति होती है । श्रायकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीय

१. भ्र० प्रतो मोहतप्पाश्चोगासंतकम्मेख इति पाठः।

मोह० उक्क० कस्स ? जेण दंसणमोहणीयं खवेंतेण अणंताणुवंधिचउक्कं विसंजोएंतेण सन्वजहण्णो अणुभागो घादिदो अणुवसामिद्चारित्तमोहणीयो तस्स उक्कस्सओ अणुभागो । [अण्णस्स अणुक्कस्सो] । सासण० मोह० उक्क० कस्स ? जो उवसमसम्मा-दिही उक्कस्साणुभागेण सह सासणं पहिवण्णो तस्स उक्कस्सा । अवरस्स अणुक्कस्सा । एवग्रक्कस्सामित्ताणुगमो समत्तो ।

\$ २१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो— ऋोघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० ज० अणुभागो कस्स० ? अण्णद्र० खवगस्सं चिरमसमयसकसायस्स । एवं मणुसितय--पंचिंदिय---पंचिं०पज्ज०--तस--तसपज्ज०--पंचमण---पंचविच०--कायजोगि-ओरालिय०--अवगदवेद०-लोभक०--आभिण०--सुद०--ओहि०--मणपज्ज०--संजद०-सुहुमसांपराय०--चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक्क्ले०-भवसि०-सम्मादिहि०-खइ्य०-सण्णि०-आहारि ति ।

कर्मका उत्कृष्ट अनुभाग जिसके होता है ? दर्शनमोहनीयकी क्षपणा श्रीर अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करते समय जिस ज्ञायिकसम्यग्दिष्ट जीवने सबसे जघन्य अनुभागका घात किया है तथा चारित्रमोहनीयका उपशम नहीं किया है उसके उत्कृष्ट अनुभाग होता है श्रीर इसके सिवा अन्य क्षायिकसम्यग्दिष्ट जीवके अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है। सासादनसम्यग्दिष्टियोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? जो उपशमसम्यग्दिष्ट उत्कृष्ट अनुभागके साथ सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट अनुभाग होता है श्रीर अन्यके अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है।

विद्योषार्थ—यहां आभिनिवोधिकज्ञान आदि जिन मार्गणात्रोमे मिथ्यात्व गुण्स्थानसे जाना सम्भव हे उनमे मिथ्यात्व गुण्स्थानसे ले जाकर उत्कृष्ट अनुभागविभिक्त प्राप्त करनी चाहिए । और आहारककाययांग आदि जिन मार्गणात्रोमें मिथ्यात्व गुण्स्थानसे जाना सम्भव नहीं है उनमें ऐसे जीवको ले जाना चाहिए जिसके तत्यायांग्य उत्कृष्ट अनुभागके साथ उस मार्गणामे जाना सम्भव हो । इसी प्रकार सर्वत्र उत्कृष्ट स्वामित्वका विचार करना चाहिए।

इसप्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुन्त्रा।

§ २१. श्रव जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघनिर्देश श्रोर श्रादेश निर्देश। श्रोघ की श्रपेद्या मोहनीय कर्मका जघन्य श्रनुभाग किसके होता है ? सकपाय चपकके श्रान्तम समयमें श्रथात् दसर्वे गुणस्थानके श्रान्तमें मोहनीय कर्मका जघन्य श्रनुभाग होता है। इसी प्रकार तीनों मनुष्य, पंचेन्द्रिय, पञ्चोन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों क्चनयोगी, काययोगी, श्रोदारिककाययोगी, श्रपगतवेदी, लोभकषायवाले, श्रामिनिवाधिकज्ञानी, श्रवज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सूद्मसाम्परायसंपत, चजुदर्शनी, श्रचजुदर्शनी, श्रवधिदर्शनी, श्रुकलेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, सज्ञी श्रोर श्राहारक जीवोंमें जानना चाहिये।

तोभसंजलस्य जहरुण्यमणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्य चित्रमसमयसकसायिम्स ।' चू० सृ० ष० घ०, श्रमु० वि० ।

\$ २२. आदेमेण णेरडण्यु मोह० ज० अणुभागो कस्स ? अण्णद० जो हर्द-ममुष्पत्तियअणुभागसंतकम्मं मिओ असण्णिपच्छायदो णेरइएसु उववण्णो पुणो जाव मो वंधेण ण वड्डिंताव तम्म जहण्णिया अणुभागविहत्ती । एवं पढमाए पुढवीए ! विदियादि जाव सत्तमि ति मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? अण्णदरस्स उकस्सपिर-णामेहि अणंताणुवंधिचउक्कं विसजोइदसम्माइहिस्स । एवं जोदिसियदेवाणं पि वत्तव्वं ।

५२३ तिरिक्लेसु मोह० जहण्णाणुभागो कस्म १ अण्णद० जो "सुहुमेइंदिओ अपज्जत्तो कदहदससुष्पत्तियसंतकम्मो जाव जहण्णाणुभागसंतकम्मस्सुविर बंधेण ण

विशेषार्थ - ऋनुभागकाण्डकघात आदि क्रियाविशेषके कारण क्षपक सूद्रमसाम्यरायके अन्तिम समयमे मोहनीयका सबसे जघन्य अनुभाग उपलब्ध होता है, इसलिए अन्तिम समयवर्ती चपक सूद्रमसाम्यरायिक जीवको जघन्य अनुभागका स्वामी कहा है। मूलमें गिनाई गई अन्य मार्गणाश्रोंमें यह श्रवस्था सम्भव है, ऋतः उनका कथन श्रोघके समान किया है।

§ २२. श्रादेशकी श्रपेक्षा नारिकयोम मोहनीयकर्मका जघन्य श्रनुभाग किसके होता है ? जो हतसमुत्पत्तिक श्रनुभाग सत्कर्मवाला जीव श्रसंज्ञी पर्यायसे श्राकर नारक पर्यायमें उत्पन्न हुआ है वह जम तक पुनः वन्धके द्वारा श्रनुभागको नहीं बढ़ा लेता है तब तक उसके जघन्य श्रनुभागविभक्ति होती है। इसी प्रकार पहली पृथिवीम जानना चाहिये। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मोहनीयकर्मका जघन्य श्रनुभाग किसके होता है ? जो सम्यग्दृष्टि उत्कृष्ट परिणामोसे अनन्तानुबन्धीचतुष्कको विसंयोजना कर चुका है उसके होता है। इसी प्रकार ज्यांतिपी देवोमें भी कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ – सत्तामें स्थित अनुभागका घात करनेके बाद जो अनुभाग रोप बचता है उसे हतसमुत्पत्तिक अनुभागसत्कर्म कहते हैं। ऐसे अनुभागवाले असंझीके नरकमें उत्पन्न होने पर उस नारकीके शरीर प्रहणके पूर्व तक मोहनीयका जघन्य अनुभाग होता है। इसलिए सामान्यसे नरकमे ऐसे जीवको जघन्य अनुभागका स्वामी कहा है। प्रथम नरकमे ऐसा जीव उत्पन्न होता है, इसलिए उसका कथन सामान्य नारिकयोंके समान किया है। किन्तु द्वितीयादि नरकोंमें संझीके योग्य अनुभाग ही सम्भव है, इसलिए वहाँ जघन्य अनुभागका स्वामित्व जिसने उत्कृष्ट परिणामोंसे अनन्तानुबन्धी अतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसे जीवको दिया है। ज्योतिपी देवोंमें इसी प्रकार जघन्य स्वामित्व प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए उनका कथन द्वितीयादि नरकोंके नारिकयोंके समान किया है।

- § २३. तिर्यक्रोमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जो हतसमुत्पत्तिक सत्कर्मवाला सूदम एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव जब तक जघन्य अनुभाग सत्कर्मके उत्पर बन्धके
- ? 'हते घातिते समुत्वित्तर्यस्य तद् हतसमुत्वित्तर्वकर्म। श्रष्णभागसंतकम्मे घादिदे जमुब्बिरिदं जहरूक्याणुभागसंतकम्मं तस्स हदसमुत्वित्तयकम्मिमिदि सण्णा ति भिष्यदं होदि । ज० घ० श्रुजु० वि० । **** हतं विनाशितं प्रभूतमनुभागसन्दर्भ येन स हतसन्दर्भा ॥४६॥ कर्मप्र० सं०
- २. ''गिरयगदीए मिष्कुत्तस्स जहराणाग्रुभागसंतकमां कस्स ? श्रसविगस्स हदसमुष्पतियकम्मेण श्रागदस्स ।'' चू० सू०, ज० ध०, श्रजु० वि० । ३. श्रा० प्रतौ वद्ददि इति पाठः ।
- थ. "मिन्छ्यास्य जहरण्यमणुभागसंतकम्मं कस्स ? सुट्टमस्स । हदसमुप्पत्तियकम्मेण अरुखदरो एइंदिम्रो वा देहंदिम्रो वा तेहंदिम्रो वा चउरिंदिम्रो वा मसर्ग्या वा सर्ग्या वा सुट्टमो वा बादरो वा पज्जसो वा मपज्जतो वा जहरुग्याभुभागसतकिमिन्नो होदि ।" चू० सू०, ज० घ०, चनु० वि०।

वडुदि ताव तस्स जहण्णओ अणुभागो । एवमेइंदिय-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियअपज्जत्त०-वणप्फदि-णिगोद-सुहुमवणप्फदि-सुहुमणिगोद तेसि चेव अपज्जत्त० ओरालियमिस्स०-दोण्णिअण्णाण-त्रसंजद०-तिण्णिले०-स्रभव०-मिच्छादिहि-असण्णि ति ।

- २४, पंचिदियतिरिक्खेसु मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? अण्णदरस्स जो पंचिदियतिरिक्खो कदहदसमुप्पत्तियसहुमेइंदियचरो जाव जहण्णसंतकम्मससुविर विदृष्ण ण बंधिदं ताव तस्स जहण्णओ अणुभागो। एवं पंचिदियतिरिक्खपज्जता-पज्जत्त-पंचि०तिरि०जोणिण-मणुसअपज्ज०-सन्ववादरेइंदिय- सहुमेइंदियपज्ज०- सन्वविग्लिदिय-पंचिदियअपज्ज०-सन्वचतारिकाय-सन्ववादरवणप्पदिकाइय-सन्ववादर-णिगोद-सहुमवणप्पदि-सहुमणिगोदपज्ज०-तसअपज्ज०-कम्मइय०-अणाहारि ति ।
- ६ २५. देव-भवण०-वाण०-वेउव्वियमिस्सैं० णेरइयभंगो । सोहम्मादि जाव सव्वहिसिद्धि ति मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? अएए।द० जो एकम्हि भवे दोवार-

द्वारा श्रनुभागको नहीं बढ़ा लेता है तवतक उसके जघन्य श्रनुभाग होता है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय, सूदम एकेन्द्रिय, सूदम एकेन्द्रिय श्रपयाप्तक, वनस्पतिकायिक, निर्गादिया, सूदम वनस्पति, सूदम निर्गादिया और उनके श्रपयाप्तक, श्रौदारिकमिश्रकाययोगी, कुमतिज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, श्रसंयत, तीनों श्रद्धभ लेश्यावाले, श्रभव्य, मिश्याद्दि श्रौर श्रसंज्ञीमे जानना चाहिये।

विशोपार्थ-इतसमुत्पत्तिक संत्कर्मदाले सूदम एकेन्द्रिय अपर्याप्तके ये सब मार्गणाएँ सम्भव हैं इसलिए इनमें जघन्य अनुभागका स्वामित्व तिर्युद्धोंके समान कहा है।

§ २४. पक्चे न्ट्रिय तिर्यक्चोमं मोहनीयकर्मका जघन्य श्रानुभाग किसके होता है ? जिसने श्रानुभाग हनसमुत्पत्तिक किया है तथा जो सूच्म एकेन्ट्रियसे श्राकर पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्यायमें उत्पन्न हुआ है ऐसा जो पंचेन्द्रिय तिर्यच जघन्य सत्कर्मके ऊपर जब तक श्रानुभाग बढ़ा कर नहीं बाँधता है तब तक उसके जघन्य श्रानुभाग होता है । इसी प्रकार पक्चेन्द्रिय तिर्यक्च पर्याप्त, पक्चेन्द्रिय तिर्यक्च श्रानिनी, मनुष्य अपर्याप्तक, सब बादर एकेन्द्रिय, सूच्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पद्ध निद्रय श्राप्तक, सब प्रविक्त स्व जलकायिक, सब तेजस्कायिक, सव वायुकायिक, सब बादर वास्पतिकायिक, सब वादर निगोद, सूच्म वनस्पति, पर्याप्तक, सूच्मनिगोद पर्याप्तक, इस अपर्याप्तक, कार्मणकाययोगी श्रोर श्रानाहारकमं जानना चाहिये।

विशोपार्थ-इन सब मार्गणाओं में पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान सूच्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकों की उत्पत्ति सम्भव है और यथासम्भव शरीर यह एके पूर्व तक उनके वह अनुभाग बना रहता है, इसलिए इनका कथन पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान किया है।

§ २५. सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर श्रीर वैकियिकमिश्रकाययोगीमें नारिकयोंकी तरह भंग होता है। अर्थान् जैसे पहले नरकमें मोहनीयका जघन्य श्रनुभाग बतलाया है वैसे ही इनमें भी होता है, क्योंकि हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला श्रसंज्ञी जीव इनमें भी जन्म ले सकता है। सौधर्म स्वगसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य श्रनुभाग किसके होता है ? जो

श. धा० प्रतौ वहिंद इति पाठः। २. भा० प्रतौ वड्डितृ्या वंधिद इति पाठः। ३, भा० प्रतौ वाया० वेड० वेडिवियमिस्स० इति पाठः।

मुनसमसेढिमारुहिय पच्छा दंसणमोहणीयं खिवय पुणो अप्पिद्देवेसु उववण्णस्स । एवं वेउच्चियकायजोगीणं ।

- १ २६. आहार०-आहारिमस्स० मोह० जहएएएएआगो कस्स १ जेण दोवार ग्रुवसमसेढिमारुहिय हेटा ओदिरिय दंसणमोहणीयं खिवय पच्छा आहारसरीरग्रुटाविदं
 तस्स जहएएओ अणुभागो । एवं परिहार०-संजदासंजदाणं ।
- ६ २७. इत्थिवदेसु मोह० जहएएएएप्रभागो कस्स ? चरिमसमयसवेदस्स खवयस्स । एवं पुरिसै०-णवुंस०वेदाणं० । तिण्हं कसायाणमेवं चेव । णवरि अप्पप्पणो चरिमसमयसकसायस्स जहएएएप्रभागो ।
- े २८. अकसाईसु जहएए।। शुभागो कस्स १ एगवारमुवसमसेढिमारुहिय ओयरिद्ण पुणो उवसमसेढिं चडिय उवसंतकसायत्तमावणस्स । एवं जहाक्खाद-संजदाणं। विहंग० मोह० जहएए।। शुभागो कस्स १ अएए। द० दोवारमुवसमसेढिं चडिय

एक भवमें दोबार उपशमश्रेणिपर चढ़कर, पश्चान् दर्शनमाहनीयका क्षपण करके पुनः विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुन्ना है उसके मोहनीय कर्मका जघन्य त्रानुभाग होता है। इसी प्रकार वैक्रियिक-काययोगियोंमें जानना चाहिये।

§ २६. श्राहारककाययोगी और त्र्याहारकिमश्रकाययोगीमें मोहनीय कर्मका जघन्य श्रनुभाग किसके होता है ? जिसने दो बार उपशमश्रे िए पर चढ़कर नीचे उतरकर दर्शनमोहनीय का क्षपण करके पीछे श्राहारकशरीर उत्पन्न किया है उसके जघन्य अनुभाग होता है। इसी प्रकार परिहारिबशुद्धिसंयत श्रोर संयतासंयतमें जानना चाहिये।

§ २७. स्त्रीवदी जीवोमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है! क्षपकश्रीण वाले सवेदी जीवके अन्तिम समयमें होता है। इसी प्रकार पुरुषवेदी और नपुसकवेदीके जानना चाहिये। तीनो कपायोमें भी इसी प्रकार जघन्य अनुभाग होता है। इननी विशेषता है कि सकपाय जीवके अपने अपने कपायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है। अर्थान् जैसे वेदकी अपेक्षा क्षपकश्रीणवाले सवेदीके अन्त समयमें मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग होता है वसे ही क्रोधकपायकी अपेक्षा चपकश्रीणवाले सकपाय जीवके क्रोधकपायके अन्तिम समयमें मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग होता है, मान कपायकी अपेक्षा मान कपायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है आदि।

६२८. श्रकपाय जीवोंमे मोहनीयकर्मका जघन्य श्रनुभाग किसके होता है ? एक बार उपशमश्रेणिपर चढ़कर उतरकर पुतः उपशमश्रेणि पर चढ़कर जो जीव उपशान्तकपाय गुण-स्थानको प्राप्त हुआ है उसके मोहनीयकर्मका जघन्य श्रनुभाग होता है । इसी प्रकार यथाख्यात-संयतोंके जानना चाहिये । विभंगज्ञातियोंमे मोहनीयकर्मका जघन्य श्रनुभाग किसके होता है ? जो

१. 'इत्थिनेदस्स जहरुणयमणुभागसंतकमां कस्स ? स्वयस्स चरिमसमयइत्थिनेदस्स ।' 'पुरिस-वेदस्स जहरुणयमणुभागसंतकमां कस्स ? पुरिसवेदेण उविद्वयस्स चरिमसमयश्रसंकामयस्स ।''

चृ० सू० ज० घ०, श्रनु० वि०।

२. ''ग्रावुंसयवेदस्स जहरुणाणुभागसंतकमां कस्स ? खवगस्स चरिमसमयग्रावुंसयवेदयस्स ।'' च्० सू०, ज० ध०, धानु० वि०।

हेहा श्रोदिर्ण समयाविरोहेण विहंगणाणं पिडविण्णस्स । सामाइय-छेदो० मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? चिरमसमयश्रणियद्विस्स खवगस्स । तेउ०-पम्म० सोहम्म-भंगो । वेदग० मोह ज० कस्स ? दोवारमुवसमसेढिं चिडिय ओदिरिद्ण दंसणमोहणीयं खिवय पढमसमयकदकरणिज्जभावं गद्म्स । एवमुवसम० । णविर उक्संतकसायद्धाए हेहा वा श्रोदिर्य वृद्गाणउवसममम्मादिद्विम्स । एवं सासण०-सम्मामिच्छादिद्वीणं ।

एवं जहरूरासामित्ताणुगमो समतो।

दो बार उपशमश्रेणिपर चढ़कर उससे नीचे उतरकर आगमके अनुसार विभंगज्ञानकी प्राप्त करता है अर्थात मरकर उपरिम बैवेयकमें उत्पन्न होकर मिध्यात्वको प्राप्त करकं विभंगज्ञानी हो जाता है उसके मोहनीयकर्मका जबन्य अनुभाग होता है। सामायिकसंयत श्रीर छेदापस्थापनासंयतोंमें मीहनीयकर्मका जबन्य अनुभाग किसके होता है ? क्षपक अनिवृत्तिकरएएएएएथानके अन्तिम समयवर्गी जीवके होता है। तेजालेश्या श्रीर पद्मलेश्यामें सौधर्म स्वर्गकी तरह भंग जानन चाहिये। अर्थान जो दां बार उपशमश्रेणि पर चढ़कर पीछे दर्शनमोहनीयका क्षय करके देवोंमें उत्पन्न हो त्रोर वहाँ उसके तेज या पद्मलेश्या हो तो तेजालेश्या या पद्मलेश्याकी त्र्रपेक्षा उस जीवके मोहनीयकर्मका जबन्य त्र्रानुमाग होता है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जो दो बार उपशमश्रेणिपर चढ़कर, उतरकर, दशंन माहनीयका क्षय करके कृतकृत्यपनेका प्राप्त हुआ है उसके प्रथम समयमें मोहनीयका जघन्य अनुमाग होता है । इसी प्रकार उपशासमस्यग्दृष्टिके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि उपशान्तकषाय गुग्गस्थानके कालमें विद्यमान अथवा नीचे उतरकर विद्यमान उपरामसम्यग्दृष्टि जीवके माहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग होता है। अर्थान वह उपशमसम्यग्दृष्टि ग्यारहवें गुणस्थानमें हो या उससे नीचे उतर गया हो उसके मोहनीय-कमेका जघन्य अनुभाग होता है। इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि श्रीर सम्यग्मिध्यादृष्टियोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ-अप सोधर्म स्वर्गसे लेकर जिन मार्गणाश्रोंम मोहनीयकर्मकं जघन्य अनुभाग का स्वामित्व वतलाया है उनमे यदि क्षपकश्रेणि संभव है तो क्षपकश्रेणिमें अपने अपने स्वयंत्रलं अनितम समयमें मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागका स्वामित्व जानना चाहिये। जैसे स्त्रीवंदी आदिमें। िकन्तु जिनमें स्वयंत्रेणि संभव नहीं है उनमें यदि उपशमश्रेणि हो सकती हैं तो दूसरी बार उपशमश्रेणि पर चढ़े हुए जीव ययायांग्य जघन्य अनुभागके स्वामी होते हैं। िकन्तु जिनमें उपशमश्रेणि भी संभव नहीं है उन मार्गणाश्रोंमें दूसरी वार उपशमश्रेणि पर चढ़कर नीचे गिरकर दर्शनमोहनीयका स्वपण करनेवाला जीव विविश्वत मार्गणाश्रामें जाना शक्य नहीं है जैसे विभंगज्ञान, उपशमसम्ययदर्शन आदि तो उनमें दूसरी बार उपशमश्रेणि पर चढ़कर नीचे गिरनेवाला जीव ही दर्शनमोहनीयका क्षपण करके जिन मार्गणाश्रोंमें जाना शक्य नहीं है जैसे विभंगज्ञान, उपशमसम्ययदर्शन आदि तो उनमें दूसरी बार उपशमश्रेणि पर चढ़कर नीचे गिरनेवाला जीव ही दर्शनमोहनीयका क्षपण किये विना विविश्वत मार्गणावाला होने पर जघन्य अनुभागका स्वामी होता है। सारांश यह हैं कि जिस मार्गणामें जिस प्रकारसे जिस जीवके जघन्य अनुभागको सत्ता रह सकती है उस मार्गणामें उस प्रकारसे उस जीवके जघन्य अनुभागक। स्वामित्व जानना चाहिये। उससे अतिरिक्त प्रकारके जीवोंके उसी मार्गणामें अजघन्य अनुभाग होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जिस मार्गणामें मोहनीयका जो सबसे कम

६ २६. कालो दुविहो — जहएए।ओ उक्कस्सत्रो चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहे सो — ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्माणुभागविह्नी केविचरं कालादो होदि ? जहण्णुक० त्रंतामुहुत्तं । अणुक० ज० त्र्यतामु०, उक्क० त्र्रणंतकाल-मसंखेज्ञा पोग्गलपरियद्दा । एवं तिरिक्ख-एइंदिय-वणप्पदि--कायजोगि-णवुंसयवेद-मिदि--सुदअएए।ण-असंजद--अचक्खु०--भविस०--मिच्छादि०--असिण्ण ति । णविर तिरिक्ख०-कायजोगि०--णवुंसयवेदेसु उक्क० अणुक्क० जह० एयसम्ओ । एइंदिये-वणप्पदि-असएए।सि उक्क० जह० एगसम्ओ ।

श्रमुभाग पाया जाता है उस मार्गणामे वही जघन्य त्रमुभाग है, उससे त्रतिरिक्त शेप अनुभाग श्रजघन्य त्रमुभाग है।

इस प्रकार जघन्य स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ।

§ २६. काल दो प्रकारका है—जघन्य श्रीर उत्कृष्ट । उत्कृष्टसे प्रयोजन हे । निर्देश दो प्रकार का है—श्रोचनिर्देश श्रीर श्रादेशनिर्देश । उनमेंसे श्रोचकी श्रपेक्ष मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट श्रनुभागिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हुन है । श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागिविभक्तिका जघन्य काल श्रन्तमु हूर्त श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हुन है । श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागिविभक्तिका प्रकार तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, काययोगी, नपुसकवेदी, मितश्रज्ञानी, श्रुतश्रज्ञानी, श्रुतश्रज्ञानी, श्रुतश्रज्ञानी, श्रुतश्रज्ञानी, श्रुतश्रज्ञानी, श्रुतश्रज्ञानी, श्रुतश्रज्ञानी, श्रुतश्रज्ञानी, भव्य, मिथ्यादृष्टि श्रीर श्रमंज्ञी जीवोमे जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्च, काययोगी श्रीर नपुंसकवेदी जीवोमे उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक श्रीर श्रमंज्ञी जीवोमें उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है ।

विद्योपाथ-त्रांघसे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त ही है; क्योंकि उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करके काण्डकचातके विना बहुत कालतक रहने पर भी अन्तर्मु हूर्त-से अधिक काल तक रहना संभव नहीं है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल तो अन्त-मुंहर्त ही है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अन्तर्मुहर्त कालके बाद पुनः उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध कर सकता है। परन्तु उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परावर्तन हैं, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका घात करके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके साथ पञ्चे द्रियपर्यायमं श्रपने योग्य उत्कृष्ट काल तक रहकर पुनः एकेन्द्रियपर्यायमं चला जाने पर और वहाँ ऋसख्यान पुद्रगल परिवर्तन विताकर पुनः पञ्चीन्द्रिय होकर उत्कृष्ट अनुभाग करने पर उतना काल वन जायेगा। इसी प्रकार निर्यक्क्षसे लेकर असंज्ञी पर्यन्त जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्ज, काययोगी और नपुंसकवेदीमें दोनों विभक्तियोंका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका अवस्थान काल एक समय प्रमाण शेप रहने पर यदि कोई अन्य गतिका जीव मरकर तियञ्च हो या अन्य वेदवाला जीव मरकर नपुंसकवदी हो तो तिर्यक्त स्रार नपुंसकवेदीके उत्कृष्ट स्रानुभागविभक्तिका काल एक समय होता है। इसीप्रकार वचनयोग या मनोयोगमें स्थित उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जीव उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ताके एक समय प्रमाण शेप रहने पर काययोगी हुआ या काययोगमे वर्तमान कोई मिध्यादृष्टि एक समय तक उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करके दूसरे समयमे वचनयोगी या मनायोगी हो गया तो उसके काययोगमे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका काल एक समय होता है इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनु

१. भ्रा० प्रती जह० उत्रसम० एइंदिय इति पाठः ।

- § ३०. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्कस्साणुभाग० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं सञ्वणेरइय-सञ्वपंचिदियतिरिक्ख०--सञ्वमणुस०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार० सञ्ववादरेइदिय-सञ्वसुहुमेइदिय-सञ्वविगित्तिदय-पंचिदियअपज्ज०-सञ्वचतारिकाय०--सञ्वयादरसुहुमवणप्पदि--सञ्वणिगोद--तसञ्चपज्ज०---पंचमण०--पंचवचि०-ओरालिय०--ओरालियमिम्स०--वेउिव्वय०-वेउिव्वयमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-चत्तारिकसाय-विभेगणाण-किण्ह-णील-काउलेस्सिया ति।
- \$ २१. संपित जहाकममेदेसिमणुक्कस्सकालाणुगमं कस्सामो। तं जहा णेरइय० अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। एवं सव्वणेरइयाणं। णविर भागविभक्तिका भी जघन्य काल एक समय बनता है। एकेन्द्रिय, वनस्पित और असज्ञीमे भी उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल इसी प्रकार एक समय होता है, किन्तु इसमे अनुन्द्रष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय नहीं है, क्योंकि इनमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नहीं होता है।
- § ३०. आदेशकी अपेक्षा नारिकयोमे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुत है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पख्ने न्द्रियतिर्यक्त, सब मनुष्य,सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर सहस्रार पर्यन्त तकके देव, सब बादर एकेन्दिय,सब सूद्दम एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पख्ने निद्रय अपर्याप्त, सब प्रथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब तेजकायिक, सब वायुकायिक, सब बादर सूद्दम बनस्पति, सब निर्णादिया, त्रस अपर्याप्तक, पाँचो मनीयोगी, पाँचों वचनयोगी, औदारिककाययोगी, श्रोदारिककाययोगी, श्रोदेवी, क्रावी, मानी, माथावी, लाभी, विभगज्ञानी, क्रष्णलेश्यावाले, नील लेश्यावाले और कापोतलेश्यावालोम जानना चाहिये।
- विशेषार्थ कोई मनुष्य या संज्ञी पख्चे न्द्रिय तिर्यख्न मिध्यादृष्टि उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके और उत्कृष्ट अनुभागक कालमे एक समय शेप रहने पर यदि नारक आदिमें जन्म लेता है तो उनमें उत्कृष्ट अनुभागका ज्ञावय काल एक समय पाया जाता है। इसी प्रकार त्रसपर्याप्तक तक जानना। मनायांग, वचनयांग या औदारिककाययोगमें स्थित कोई जीव अपने अपने योगका काल एक समय शेप रहने पर उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके दृसरे समयमें अन्य योगवाला हो गया तो उसके उस उस योगमें उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिका ज्ञावन्य काल एक समय पाया जाता है। या उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिका ज्ञावन्य काल एक समय पाया जाता है। या उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवाला कोई जीव मनायोगिसे वचनयोग या औदारिककाययोगिसे या वचनयोगिसे किसी दृसरे योगमें आजाता है और वहाँ एक समय वाद उत्कृष्ट अनुभागका परिचात कर देता है तो उस उस योगमें उत्कृष्ट अनुभागका काल एक समय वन जाता है। इसी प्रकार कोई मनुष्य या संज्ञी पख्चे न्द्रिय-पर्याप्त तिर्यक्च उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करके मरकर औदारिकिमिश्रकाययोगी या वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुआ। और एक समय तक उस योगमें उत्कृष्ट अनुभागका काल एक समय वन जाता है। शेप विविच्च मार्गणाओं से उत्कृष्ट अनुभागिका ज्ञाव एक समय वन जाता है। शेप विविच्च मार्गणाओं में उत्कृष्ट अनुभागिका ज्ञाव एक समय वन जाता है। इन सब मार्गणाओं में उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल अन्तर्म हुत है यह स्पष्ट ही है।
- § ६१. ऋब क्रमानुसार इनके ऋनुत्कृष्ट कालका श्रमुगम करते हैं, जो इस प्रकार है— नारिकयोंमें ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय ऋौर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब नारिकयोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रत्येक नरकमे

सगसगुकरसिंदरी वत्तव्या । पंचि०तिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणि-णीसु अणुक्कः जः एगसः, उक्कः तिण्णि पलिदोः पुञ्चकोडिपुधत्तेणस्भिहयाणि । एवं मणुसनियस्स वत्तव्वं । पंचिद्यितिरिक्खअपज्ज० त्र्रणुक्क० ज० उक्क० त्रंतोग्र०। एवं मणुसत्रपञ्ज०-पंचिदियअपज्ज०--सन्बिवगलिदियअपज्ज०--तसअपज्जनाणं । देव-भवणादि जाव सहस्सार नि अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अप्पूष्पणो उक्कस्सिहिदी। आणदादि जाव सन्बद्दसिद्धि ति उक्तस्स-अणुक्तस्सअणुभागाणं जहण्णेण त्रांतोमु०, उक्क० सगसगुक्कस्महिटी ।

अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। अर्थान् पहले नरकमे अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल एक सागर है, दूसरेमे तीन सागर है, तीसरेमें मात सागर है, चौथेमें दम सागर है, पॉचवेंमें सत्रह सागर है, छिठेमे बाईस सागर है और सातवँम तेतीस सागर है। पञ्चोन्द्रयतियञ्च, पञ्चोन्द्रयतियञ्च पर्याप्तक और पञ्चोन्द्रय-तिर्यञ्जयोनिनी जीवोमें अनुत्रृष्ट अनुभागीवभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल प्रवेकोटिप्रथक्त ऋधिक नीन पत्य प्रमाण है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक श्रीर मन्दियनीकं कहना चाहियं। पञ्चान्द्रियं तियञ्च अपर्याप्तककं अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जधन्य श्रीर उत्क्रष्ट काल अन्तम् हुर्न है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पञ्चोन्द्रिय अपर्याप्त सब विकलेन्द्रिय अपर्यात और जसअपर्यातकांक जानना चाहिये। सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्नार स्वर्गपूर्यन्तके देवोंके अनुत्वृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमे उत्कृष्ट त्रीर श्रनुःकृष्ट त्रानुभागविभक्तिका जघन्य काल त्रान्तम् हुतै त्रीर उत्कृष्ट काल त्रापनी त्रापनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाग् है।

विशेषार्थ-जिन पर्यायोमं मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकता है, उनमे अनुस्कृष्ट अनुभागका जयन्य काल एक समय बन जाता है। किन्तु यदि उन पर्यायोंमें उत्कृष्ट श्चनुभागवन्य न हन्ना हो स्रोर पिछले भवसे भी उत्कृष्ट श्चनुभागको न लाया गया हो तो जीवनभर अनुस्कृष्ट अनुभागको ही सत्ता रह सकती है। इसीसे नरकगितमें अनुस्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय ऋौर उत्कृष्ट काल ऋपनी ऋपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहा है । पञ्चे द्विय तिर्येख श्रादिमे तथा तीन प्रकारकं मनुष्योमे उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकता है अतः उनमें अनुत्कृष्ट त्रानुभागका जवन्य काल एक समय बन जाता है। तथा इन मार्गणात्राोकी कायस्थिति तीन परुष अधिक पूर्वकाटि पृथक्तव प्रमाण है, अत: इत मार्गणाओं मे अनुत्कृष्ट अनुभागः का उत्कृष्ट काल भी इतना ही कहा है । पञ्जोन्द्रिय तिर्यञ्ज अपर्श्वाप्तक आदिमें उत्कृष्ट श्रनुभागबन्य नहीं होता है, तथा एक जीवकी अपेक्षा इन मार्गणाओंका काल भी अन्तमु हूर्न ही है, अतः इनमे अनुस्कृष्ट अनुभागका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल भी अन्तर्भ हुर्त ही कहा है। भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्तक देवोंमें भी यदि उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हुन्ना तो अनुत्कृष्ट अनुभागका काल एक समय अन्यथा अपनी अपनी स्थिति प्रमाण होता है। आनतसे लेकर सर्वार्थिसिद्धि तकके देवोंमे उत्कृष्ट अनुभागका घात न होने पर वह जीवन भर रह सकता है और घात होने,पर उसका अन्तर्मु हूर्त काल उपलब्ध होता है। तथा जीवनके अन्तर्मे अन्तर्मु हूर्त,काल शेष रहने पर उत्कृष्ट अनुभागका चात होने पर अन्तिम अन्तम हतेमें अनुत्कृष्ट अनुभाग पाया

§ ३२. इंदियाणुवादेण बादरेइंदिएसु अणुक जह खुद्दाभवग्गहणं श्रंतोमुहुत्तूणं, उक अंगुलस्स असंखे भागो असंखे जासंखे जाओ ओसप्पिण- उस्सिष्पणीत्रो । वादरेइंदियपज्जतएसु अणुक जह उक्कस्साणुभागंकाले णूणमंतो मुहुत्तं, उक क्संखे जाणि वाससहस्साणि । वादरेइंदिय अपज्जतएसु अणुक जि उक्कस्साणुभागकाले णूणं खुद्दाभवग्गहणं, उक अंगो मु । सुहु मे इंदिएसु अणुक जह उक्कस्साणुभागकाले णूणं खुद्दाभवग्गहणं, उक असंखे जा लोगा । सुहु मे इंदियप ज्जत्त एसु अणुक जि उक्कस्साणुभागकाले णूणं खुद्दाभवग्गहणं, उक असंखे जा लोगा । सुहु मे इंदियप ज्जत्त एसु अणुक जि उक्कस्साणुभागकाले णूणं सो मुहुत्तं, उक स्यलमं तो मुहु । सुहु मे इंदिय अप ज्जताणं वादरेइंदिय अप ज्ञताणं वादरेइंदिय अप ज्जताणं वादरे दियाणं वादरेइंदिय अप ज्जताणं वादरे वादरेवंदिय अप ज्जताणं वादरेवंदिय अप वादरेवंदिय अप वादरेवंदिय अप वादरेवंदिय अप वादरेवंदिय अप वादरेवंदिय अप वादरेवंदिय अप

जाता है और जो अनुस्कृष्ट अनुभागके साथ इन देवोंमें उत्पन्न होता है उनके जीवन भर अनुस्कृष्ट अनुभाग पाया जाता है। इसीसे यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों प्रकारके अनुभागका जघन्य काल अन्तुमु हुन्ने और उत्कृष्ट कान अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण वहा है।

§ ३२. इन्द्रियकी अपेत्ता बादर एकेन्द्रियोमें अनुस्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुं हुन कम नुद्रभवप्रहण्प्रमाण और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यानवें भागप्रमाण हे जो कि असंख्यातासंख्यान अवसर्पिणी-उत्मिर्पणी प्रमाण होता है। वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अनुस्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभाग कालसे कम अन्तमुं हुन प्रमाण है और उत्कृष्ट काल संख्यान हजार वपे हैं। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे कम नुद्रभवप्रहण्पप्रमाण है और उत्कृष्ट काल असंख्यान लोक हैं। सूद्रम एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे हो। सूद्रम एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे होन नुद्रभवप्रहण्पप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे होन नुद्रभवप्रहण्पप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हुन है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कमसे पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक एक हजार सागर और सो पृथक्त्व सागर है।

विशेषार्थ—बादर एकेन्द्रियका जघन्य काल जुद्रभवग्रहण्प्रमाण है, जो जीव उत्हृष्ट अनुभागको लेकर बादर एकेन्द्रियमे उत्पन्न होता है यह एक अन्तर्मु हूर्तमें उसका घात कर देता है, अतः उसके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तमु हूर्त कम जुद्रभवप्रमाण बतलाया है तथा उत्कृष्ट काल वादर एकेन्द्रियकी उत्कृष्ट स्थिनिष्रमाण वनलाया है। आगे भी विकलेन्द्रिय पर्याप्तक

१. ता॰ प्रती अगुक्कः जहरयपुक्कस्साग्रुभाग- इति पाठः ।

१३२. कायाणुवादेण पुढवि० आउ०-तेउ०-वाउकाइएसु मोह० अणुक० जह० उक्कस्साणुभागकालेणूणं खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० असंखेज्ञा लोगा। एवमेदेसि बादराणं। णविर उक्क० कम्मिहिदी। बादरपुढवि०-वादरश्चाउ०-वादरतेउ०-वादरवाउ०पज्जत्तएसु अणुक्क० जह० श्रंतोमु०, उक्क० संखेज्ञाणि वासमहस्साणि। एदेसिमपज्जताणं वादरेइंदिय-अपज्जत्तभंगो। सुहुमपुढविः--सुहुमआउ०-सुहुमतेउ०-सुहुमवाउकाइएसु मोह० अणुक्क० ज० देसूणं खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० असंखेज्ञा लोगा। एदेसि पज्जत्ताणमपज्जताणं च सुहुभेइंदियपज्जतापज्जत्तभंगो। वादरवणप्पदिकाइयाणं तेसि पज्जतापज्जत्ताणं च वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्जतापज्जताण भंगो। सुहुमवणप्पदिकाइय० तेसि पज्जतापज्जताणं सुहुभेइंदियपज्जतापज्जताणं अंगो। वादरवणप्पदिकाइयपत्तेयसरीराणं वादर-पुढविभंगो। तेसि पज्जतापज्जताणं वादरपुढविभंगो। तेसि पज्जतापज्जताणं वादरपुढविभंगो। तेसि पज्जतापज्जताणं वादरपुढविभंगो। वादरवणप्पदिकाइयपत्तेयसरीराणं वादरपुढविभंगो। वादरणमादेसु मोह० अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० अड्डाइज्जपोग्गळपरियद्या। वादरणिगोदाणं

पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थान अनुन्छुट अनुभागिवभक्तिका जघन्य काल तो उत्कृष्ट अनुभागिक कालसे रिवत अपनी अपनी जघन्य भविस्थिति प्रमाण है आर उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायिस्थितिप्रमाण है। पञ्चोन्द्रिय सामान्य और पञ्चोन्द्रिय पर्याप्रकमे उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल पूर्ववत् एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुह ते है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्य हो। सकता है। तथा उत्कृष्ट काल पञ्चोन्द्रिय सामान्य और पञ्चोन्द्रियपर्याप्रकका कार्यास्थिति प्रमाण है।

६३३. कायकी अपेता पृथिवीकायिक, अपकायिक, तंजस्कायिक श्रोर वायकायिकोंसे मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागित्रभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे हान जुदूभव महण प्रमाण है और उत्हर काल असल्यान लाक है। इसी प्रकार बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर बायुकायिकोमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें उत्क्रष्ट काल कमीस्थानिश्रमाण है। वादर पृथिवीकायिक पर्याप्तक, बादर जलकायिक पर्याप्तक, बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक आर बादर वायुका।यक पर्याप्तकामे अनुत्कृष्ट अनुमागावर्माक्तका जबन्य काल अन्तर्म् हत है और उत्हुष्ट काल सख्यात हजार वर्ष है । तथा इन्ही अपर्याप्तकोमे बादर क्केन्ट्रिय अपयानको समान भंग है । सूच्म पृथिवीकाथिक, सूच्म अप्कायिक, सूच्म तेजस्काथिक श्रीर सदम वायुकायिकाम माहनीय कमका श्रनुत्हृष्ट अनुमागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम चद्रभवमहणप्रमाण हे श्रीर उत्कृष्ट काल श्रासख्यात लोकप्रमाण है। इनके पर्यातक श्रीर श्रप-र्याप्तकोम सुद्म एकेन्द्रिय पर्यातक और सुद्दम एकेन्द्रिय अपयाप्तकक समान भंग है। बाद्र बन-स्पतिकायिकोमं वादर एकेन्द्रियके समान, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकोमं वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके समान और बाद्र वनस्पतिकायिक अपर्याप्तकोमे वाद्र एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंक समान भङ्ग ह । सुदम वनस्पतिकायिक तथा उनके पर्याप्तक आर अपर्याप्तकोमें क्रमसे सूदम एकेन्द्रिय, सूदम ए। न्द्रिय पर्याप्रक और सूद्रम एकेन्द्रिय अपर्याप्तकक समान भङ्ग है। बाद्र वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरी जीवोमें बादर पृथिवीकायके समान भग है। बादर बनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरी पर्याप्तक ऋौर अपर्याप्तक जीवोमें बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तक और बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तकके समान भङ्ग है। निगोदिया जीवोमे माहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम सुद्रभवप्रहणप्रमाण है । ऋौर उत्कृष्ट काल डाई पुद्रगलपरावर्तनप्रमाण है । बादर निगोदिया

बादरपुढविभंगो। तेसि पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरपुढविपज्जत्तापज्जत्तभंगो। सुहुमणिगोदाणं सुहुमपुढविभंगो। तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तपसु मोह० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० श्रंतोसु०। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि पुच्चकोडिपुथत्तेण-ब्भहियाणि [वेसागरोवमसहस्साणि]

६ ३४. जोगाणुवादेणं पंचमण०-पंचविच्जोगीसु मोह० अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० श्रंतोसु० । ओरालियकायजोगीसु मोह० अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वावीस वस्समहस्साणि देसुणाणि । ओरालियमिस्सकायजोगीसु मोह० अणुक्क० ज० खुहा-भवग्गहणं देसुणं, उक्क० श्रंतोसुहुत्तं । वेडिव्वयकायजोगीसु मोह० अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु० । वेडिव्वयमिस्स० मोह० अणुक्क० जहण्णुक्क० श्रंतोसु० । कम्मइय० मोह० उक्क० अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि समया । आहार०-आहारमिस्स० मोह० उक्क० अणुक्क० जहण्णुक्क० श्रंतोसु० । णविर श्राहारकायजोगीसु जह० एगस ०।

जीवोमं बादर पृथिवीकायिकके समान भङ्ग है श्रौर बादर निगोदिया पर्याप्तक तथा अपर्याप्तकों में बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तक श्रोर अपर्याप्तकके समान भङ्ग है। सूचम निगोदिया जीवोमें सूचम-पृथिवीकायिकके समान भङ्ग है। असकायिक तथा असकायिकपर्याप्तकों में मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रोर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमसे पूर्वकाटि पृथक्त्व श्रिधिक दो हजार सागर श्रोर दो हजार सागर है।

विशेषार्थ—उपर कही गई स्थावरकायसम्बन्धी मार्गणाओं में भी पहलेके समान ही अनुत्कृष्ट अनुभाग का जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे हीन अपनी अपनी भवस्थिति प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण है। सामान्य त्रमकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकोमें उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल पूर्ववत् जानना चाहिए। तथा इनमे उत्कृष्ट अनुभागवन्य हो सकनेके कारण अनुत्कृष्ट अनुभागक। जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है, इमलिए इन सबमें उक्त प्रमाण काल कहा है।

§ ३४. योगकी अपेक्षा पांची मनायोगी और पांची वचनयोगियोमे मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिक। जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुनै है। अोदारिककाययोगियोमें मोहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिक। जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष है। ओदारिकिमिश्रकाययोगियोमें मोहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिक। जघन्य काल कुछ कम जुद्रभवषदणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुन्ते हैं। वैक्रियिककाययोगियोमें मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिक। जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुन्ते हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमें मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिक। जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुन्ते हैं। कार्मणकाययोगियोमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिक। जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है। आहारककाययोगी और आहारकिमिश्रकाययोगियोमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट काल तीन समय है। आहारककाययोगी और आहारकिमिश्रकाययोगियोमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट काल तीन समय है। आहारककाययोगी कोर आहारकिमिश्रकाययोगियोमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट काल तीन समय है। इननी विशेषता है कि

ता० प्रतौ उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि पुन्वकोडिपुधत्ते खन्भिहयाणि च जोगाणुबादेण, श्रा० प्रतौ उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि जोगाणुबादेण इति पाठः ।

§ ३५. वेदाणुनादेण इत्थि०--पुरिस० मोह० अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० परिवाहीए पलिदोवमसदपुथत्तं सागरोवमसदपुथत्तं । अवगदवेदएसु मोह० उक्क० जह० एगसमओ, मरणेणुवल्तंभादो । उक्क० ऋंतोसु० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० ऋंतोसुहृतं । कसायाणुनादेण कोधकसाई० अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० ऋंतोसु० । एवं माण-माया-लोहाणं । अकसाय० मोह० उक्क० ऋणुक्क० जह० एगस०, उक्क० ऋंतोसु० । एवं जहानस्वाद०-सुहुमसांपरायसंजदाणं ।

श्राहारककाययागियोंमें जघन्य काल एक समय है।

विशेषार्थ-कोई एक मनोयोगी या वचनयोगी उत्कृष्ट अनुभागका विनाश करके उस समय श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवाला हुआ जब उसके मनोयोग या वचनयागका काल एक समय शेष रहा । इस प्रकार एक समय तक विविद्यात योगके साथ अनुतकृष्ट अनुभागमें रहा और दूसरे समयमें योग बदल गया तो विवक्षित बचनयोग या मनोयोगमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जबन्य काल एक समय होता है। अथवा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला कोई जीव मनायागी या वचनयोगी हुआ। एक समय तक विविद्यात योगमें रहकर उसने दूसरे समयमे उत्बृष्ट अनुभागवन्ध कर लिया श्रथवा दूसरे समयमें मरकर अन्य काययोगी हो जया तो भी एक समय काल बन जाता है। उत्कृष्ट काल अन्तर्म हुर्न इसलिये है कि मनायाग और वचनयागका उत्कृष्ट काल इतना ही है। श्रीदा-रिककाययोगका उत्क्रप्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्प एकेन्द्रिय जीवोमें सबसे अधिक स्थिति वाले म्वरपृथिवीकाथिक जीवके होता है। अतः उनमें अनुन्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है। जो जीव ब्ल्कुष्ट अनुमागके साथ बैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुआ और उत्कृष्ट श्रनुभागका काल बीतने पर वह त्रानुत्कृष्ट त्रानुभागवाला हो गया उसके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त हे और जो अनुत्कृष्ट अनुभागके साथ ही वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुआ। उसके उत्कृष्ट काल भी अन्तर्भु हुत होता है। कार्मणकाययोगका जवन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय हैं, अतः उसमे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी उतना ही होता है। आहारककाययांगका जवन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्त-र्मु हूर्त है तथा आहारकमिश्रका जयन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है, अतः उनमे रहनेवाले इत्कृष्ट ऋौर ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागका भी उतना ही काल जानना चाहिये।

\$ २५. वंदकी अपेक्षा स्तिवंदी और पुरुपंवदियोमें मोहतीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिका जवन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल कमशः स्नावदियोमें सो पृथक्त्वपत्य और पुरुपंवदियोमें सो पृथक्त्वपत्य और पुरुपंवदियोमें सो पृथक्त्वपत्य और पुरुपंवदियोमें सो पृथक्त्वसागरप्रमाण है। अपगतवंदी जीवामें माहतीय कमकी उत्कृष्ट अनुभागिक्षित्तका जवन्य काल एक समय है, क्योंकि यह मरणकी अपेवा उपलब्ध होता है। और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागिक्षित्तका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। क्यायकी अपेवा क्रांध कपायवालोमें अनुत्कृष्ट अनुभागिक्षित्तका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मान, माया और लोभमें जानना चाहिये। कपायरिहत जीवोमें मोहतीय कमकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागिक्षित्तका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार यथाख्यातसंयत और सूद्दम साम्परायस्यतोके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जो स्रीवेद श्रीर पुरुषवेदमें उत्कृष्टका बन्ध करके क्रमशः श्रायुके श्रन्तमें एक समय तक श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके साथ रहकर श्रन्य वेदके साथ उत्पन्न हो गया उसके श्रनुत्कृष्ट श्रनु-

- § ३६. णाणाणु० विहंगणाणीसु मोह० अणुक० जह० एगस०, उक्क० तेतीसं सागरोवमाणि देसुणाणि । त्राभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० त्रंतोसुहुत्तं । अणुक्क० ज० त्रंतोसु०, उक्क० ह्याविद्यागरोवमाणि सादिरेयाणि । मणपज्ज० मोह० उक्क० ज० त्रंतासु०, उक्क० पुन्वकोडी देसुणा । एवमणुक्कस्सं पि ।
- § ३७. संजमाणुवादेण संजदेसु मोह० उक्क० जह० श्रंतोसु०, उक्क० पुन्वकोडी देसूणा, किरियाए विणा अणुभागघादाभावादो । अणुक्क० ज० श्रंतोसु०, उक्क० पुन्वभागका जघन्य काल एक समय होता है। तथा उत्कृष्ट काल दोनो वेदोंकी अपनी अपनी कायस्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। कोधादि कपायोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्त-सृहूर्त होनेसे इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्त-सृहूर्त कहा है। कपायोंके समान ही अकपायी; सूद्भसाम्परायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके घटित कर लेना चाहिए।

६ ३६ ज्ञानकी अपेता विभंगज्ञानियोमें मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीम सागर है। आभिनिवाधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक छियामठ सागर है। मनःपययज्ञानियोमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकांटि है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका भी काल होता है।

विशेषार्थ-जो नारकी विभङ्गज्ञानी होनेक दूमरे समयमें अनुस्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला हो जाता है उसके विभङ्गज्ञानमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जवन्य काल एक समय उपलब्ध होनसे वह उक्त प्रमाण कहा है । नथा सानवें नरकमे विभद्मज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेनीस सागर होनेसे त्रानुन्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर कहा है। श्राभिनिवोधिकज्ञान आदि तीनों ज्ञानोका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है, इसलिए इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जवन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है। इन तीना ज्ञानीमें उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है यह तो स्पष्ट ही है। मात्र इसका जयन्य काल जो एक समय कहा है सो उसका यह कारण है कि जो जीव उत्कृष्ट अनुभागमें एक समय रहने पर श्राभिनिवाधिकज्ञाना श्रादि होते हैं उनके यह एक समय काल देखा जाता है। मन:पर्ययज्ञानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि हैं, इसलिए इसमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनोंका जयन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल इस्र कम एक पूर्वशेटि कहा है। यहां उत्कृष्ट अनुभागका जवन्य काल एक समय सम्भव नहीं। कारण कि जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनु-भागके साथ मनः पर्ययज्ञानको उत्पन्न करता है उसका वह उत्कृष्ट अनुभाग कमसे कम अन्तम हर्त काल तक अवश्य रहता है। तथा उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल जो कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है उसका कारण यह है कि क्रियाके बिना उत्कृष्ट अनुभागका घात न होकर उसका इतने काल तक **ऋवस्थान सम्भव** है ।

§ ३७. संयमकी अपेक्षा संयतोमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जवन्य काल अन्तर्मु हूर्न है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि हैं, क्योंकि क्रियाके विना अनुभागका वात नहीं होता । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जवन्य काल अन्तर्मु हूर्न और उत्कृष्ट काल कुछ कम

कोडी देमुणा । एवं सामाइय--छेदो ०-परिहार ०--संजदासंजदाणं । णवरि सामाइय-बढो० अणुक्क० ज० एगस०।

६ ३८ दंसणाणुवादंण चक्लुदंसणीसु मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोग्रु । अणुक् ज ज एगस ०, उक्क वेसागरीवमसहस्साणि । ओहिदंसणी० ओहिणाणिभंगो ।

६ ३६. लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउ० मोह० अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरो० सादिरेयाणि । तेउ०-पम्म० मोह० उक्क० जह० एगसम्बो. उक्क० अंतामु०। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वे-अद्वारससागरोवमाणि सादिरेयाणि । मुकलेम्साए मोह० उक० जह० एगस०, उक० अंतोग्र० । अणुक० जि॰ अंतोमु॰, उक्क॰ तेत्तीससागरो॰ सादिरेयाणि।

पूर्वकोटि है। इसी प्रकार सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसयत श्रीर संयता संयतोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषना है कि सामायिक और छेदापस्थानास्यतोमें अनुस्कृष्ट श्चनभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है।

विशेषार्थ-यहाँ सब कालका स्वष्टोकरण मनःवर्ययज्ञानके समान कर लेना चाहिए। मात्र सामायिकसयम और छेदो ।स्थापनासयमका जवन्य काल एक समय होनेसे इनमें अनुत्कृष्ट अनु-भागविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है।

६३८. दर्शनकी श्रपेक्षा चत्रदर्शनियोमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त हैं। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल दो हजार सागर है। श्रवधिदर्शनियोमें श्रवधिज्ञानीक समान भङ्ग है।

विशेषार्थ-जो चलुदर्शनी भवके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभाग करके मरकर द्वितीय समयमें अचलुदर्शनी हो जाता है उस चल्लदर्शनीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है, इमलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

§ ३८. लेश्याकी अपेक्षा कृष्ण, नील श्रीर कापात लेश्यावालोम मोहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट श्चनभागविभक्तिका जवन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल कमशः कुछ श्रधिक तेनीस सागर. कुछ अधिक सतरह सागर श्रीर कुछ श्रधिक सात सागर हैं। तेजोलेश्या श्रीर पदुमलेश्यावालोमें माहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हुर्त है। तथा अनुस्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जवन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कमशः इन्ह त्रिधिक दो सागर और बुद्ध अधिक अठारह सागर है। शुक्ललेश्यामें मोहनीयकर्मकी उत्सृष्ट अनु-भागविभक्तिका जवन्य काल एक समय त्रौर उत्कृष्ट काल त्रान्तर्मुहत है। तथा श्रनुत्कृष्ट त्रानुभाग-विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहर्न श्रौर उत्कृष्ट काल कुछ श्रधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ-जो कृष्णादि पाँच लेश्यावाला जीव अपने अपने लेश्याके प्रारम्भमे एक समय तक अनुत्कृष्टविभक्तिवाला होता है उसके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिक। जघन्य काल एक समय होता हं। इसी प्रकार पीत आदि तीन लेश्याश्रोमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय यटित कर लेना चाहिए। मात्र शुक्ललेश्यामें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है, क्योंकि इस लेश्यामें अनुत्कृष्टके बाद पुनः उत्कृष्टकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। शेष कथन \$ ४० सम्मत्ताणु० सम्मादि० मोह० उक्क० अणुक्क० आभिणि०भंगो । वेद्ग० एवं चेव । णविर अणुक्क० सगिहदी । खइय० मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीससागरो० सादिरेयाणि । एवमणुक्कस्सं पि । उवसम० मोह० उक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवमणुक्कस्सं पि । सासण० मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अवित्याओ । एवमणुक्कस्सं पि । सम्मामि० मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

स्पष्ट हो है।

§ ४०. सम्यक्त्वकी अपेता सम्यग्दिष्टियोमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागिकिका काल आभिनिवोधिकज्ञानियोंके समान है। वेदकसम्यग्दिष्टियोमें भी इसी प्रकार होता है। इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिका उत्कृष्ट काल वेदकपम्यक्त्वकी स्थितिप्रमाण अर्थात् छियासढ सागर होता है। आयिकसम्यग्दिष्टियोमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिका जघन्य काल अन्तर्मु हुन और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिका भी काल होता है। उपशाससम्यग्दिष्टियोमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुन है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिका भी काल होता है। सासादनसम्यग्दिष्टियोमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छ आवजी है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिका भी काल होता है। सम्यग्निथ्यादिष्टियोमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुन है और अनुत्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुन है और अनुत्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुन है।

विजापार्थ-जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागके साथ ज्ञायिकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसका क्रियान्तरके पूर्व कमसे कम एक अन्तर्मु हून काल तक और अधिकसे अधिक साधिक तेनीम सागर काल तक अवस्य ही अवस्थान रहता है, इसलिए यहाँ उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तम हुर्न और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। इसी प्रकार जो अनुत्कृष्ट अन-भागके साथ ज्ञायिकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है या क्रिया द्वारा उत्कृष्ट श्रानुभागका घातकर अनुत्कृष्ट अनुभाग कर लेता है उसे उसका अभाव करनेमें कमसे कम अन्तम् इतं काल और अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल लगता है इसलिए यहाँ अनुत्रुष्ट अनुभागका भी जघन्य काल अन्त-र्मु हूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेनीस सागर कहा है। उपशमसम्यक्त्वका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है और इतने काल तक दोनों प्रकारक अनुमागका अवस्थान सम्भव है तथा यहाँ भी क्रियान्तर अन्तर्मु हुर्त कालके पूर्व सम्मव नहीं, इसलिए इसमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका जयन्य श्रीर उत्कृष्ट दोनी प्रकारका काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। सासादनसम्यक्त्वका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल छह त्राविल होनेसे इसमें उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रान भागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। जिस मिश्यादृष्टि जीवके तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट श्रनुभागमं एक समय शेप रहने पर सम्यगमिण्यात्व गुणस्थान होता है उस सम्यामिश्यादृष्टिके उत्कृष्ट अनुभाग एक समय तक देखा जाता है श्रीर जो मिथ्यादृष्टि तत्रायाग्य उत्कृष्ट अनुभागके साथ सम्याग्मिश्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होकर वहाँ उसके साथ ही रहना है उस सम्यग्मिथ्यादृष्टिके श्रन्तम् हूर्त काल तक उत्कृष्ट श्रनुभाग देखा जात। है। यही कारण है कि सम्य-ग्मिथ्य। दृष्टिके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हर्न कहा है।

- § ४१. सिष्णि० मोह० उक्क० जह० एगस०, उक्क० अंतोम्र० । अणुक्क० ज० एगस०. उक्क० सागरीवमसदप्रथत्तं।
- ६ ४२, ब्राहारणुवादेण मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोग्रु०। त्र्रणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०भागो असंखेज्जासंखेजाओ ओसप्पिणि-उस्सिप्पणीत्रो । अणाहरीसु कम्म इयभंगो ।

एवम्रकस्सकालाणुगमो समत्तो ।

§ ४३. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो — ओघे० आदेसे०। तत्थ ओघे० भोह० जहण्णाणुभागविहत्तिया केवचिरं कालादो होति ? जहण्णुकस्सेण एगसमओ । अज० अणादि-स्रपज्जवसिदो स्रणादि-सपज्जवसिदो वा ।

यहाँ अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है यह स्पष्ट ही है। शेप कथन सुगम है।

६ ४१. संज्ञियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्ऋष्ट काल सौ पृथकत्व सागर है।

विशेषार्थ-तो संज्ञी भवके अन्तमे एक समय तक उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभागके साथ रहकर दूमरं समयमें असंज्ञी हो। जाता है। उस संज्ञीके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है। शेप कथन स्पष्ट ही है।

§ ४२. त्राहारककी त्रपेक्षा मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट ब्रानुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्भ हुने हैं। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागांवभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल अंगुलके श्रसंख्यातवें भाग है जो कि अमंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण है। अनहारकांमं कार्मणकाययांगियोके समान भक्त है।

विशेषार्थ-यहाँ आहारकोमे संज्ञियोके समान कालका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। मात्र इनकी कायस्थिति अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे अतुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा हैं। कार्मणकाययांगी अनाहारक ही होते हैं. इसलिए अनाहारकोमें कार्मणकाययागियोके समान काल कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ।

§ ४३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—स्रोव स्रोर स्रादेश। स्रोघकी श्रपेता माहनीयकर्मकी जघन्य श्रनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अजयन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका काल अनादि-अनन्त और श्चनादि-सान्त है।

विशेषार्थ-माहनीयकी जघन्य श्रनुभागविभक्ति चपक सूच्मसाम्परायके श्रन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। अजघन्य श्रनुभागविभक्ति श्रभव्योंके श्रनादिसे श्रनन्त काल तक श्रीर भव्योंके श्रनादिसे सान्तकाल तक होती है, क्योंकि जघन्य

१ मार प्रतौ मादेसे व मोघे व इति पाटः।

१४४. आदेसंण णेरइएस मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु० | अजहण्णाणु० ज० दस वाससहस्साणि श्रंतोसुहुत्तूणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोत्रमाणि | एवं पढमाए । णविर अजहण्णाणु० सगिंदिदी । एवं देव०--भवण०--वाणवेतर० | णविर अजहण्णाणु० सगिंदिदी । विदियादि जाव सत्तमि ति मोह० जह० ज० श्रंतोसु०, उक्क० सगिंदिदी देसूणा । अज० ज० श्रंतोसु०, उक्क० सगिंदिदी संपुण्णा । एवं जोदि-सिया० । णविर सगिंदिदी वत्तन्वा ।

अनुभागविभक्तिके प्राप्त होनेके पूर्वतक वह अजघन्य होती है, इसलिए उसका काल उक्तप्रमाण् कहा है।

§ ४४. त्रादेशकी त्रपेश्ना नारिकयोमें माहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। अजयन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहला पृथिवांमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थित प्रमाण होता है। इसी प्रकार सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तरोंमें होता है किन्तु इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल अपनी स्थिति प्रमाण होता है। दूसरी पृथिवांसे लेकर सातवीं पृथिवां तक मोहनीय कमकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी सम्पूर्ण स्थिति प्रमाण है। इसी प्रकार ज्यांतिपी देवोंमे कहना चाहिय। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिए।

विश्वापार्थ-जो इतसमुत्पत्तिक सत्कर्मवाला असंज्ञी पञ्चीन्द्रिय तिर्यक्ष मरकर नरकमे जन्म लेता है उसके तब तक जघन्य अनुभाग रहता है जब तक वह सत्ताम स्थित अनुभागसे श्रिधिक श्रानुभागवन्ध नहीं करता है। श्रातः यदि वह दूसरे समयमे ही श्रानुभागको वढा लेना है तो उसके जघन्य अनुभागका काल एक समय होता है अन्यथा अन्तर्मु हुर्त होता है। अन्तर्मु हुर्तके वाद हुआ। अजधन्य अनुभागका सत्त्व अायुके अन्त समय तक रहता है, अतः अजधन्य अनुभाग का जघन्य काल अन्तर्मुहर्त कम दस हजार वर्ष होता है। श्रीर यदि अजघन्य अनुभागके साथ नरकमें जन्म लिया गया तो उसका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर होता है, क्यों कि नरकमें इतनी ही उत्कृष्ट स्थिति है। पहले नरक, सामान्य देव, भवनवासी श्रीर व्यन्तरामे इसी प्रकार जानना चाहिए, क्योंकि हतसमुत्पत्तिक सत्कर्मवाला असंज्ञी उनमे जन्म ले सकता है। अन्तर केवल इतना है कि इतमे अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण लेना चाहिये। जैसे पहले नरकमे एक सागर। दूसरे ऋादि नरकोमे तथा ज्यांतिपी देवामे असंज्ञी तो जन्म ले नहीं सकता। अत: अजयन्य अनुभागवाला जो जीव उक्त स्थानोमं जन्म लेकर अन्तर्म् हर्तके बाद सम्यक्त्वको प्रहण करके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करता है उसके जघन्य अनुभाग होता है। यदि वह जीव विसंयोजना करके अन्तर्मृहर्तके बाद सम्यक्त्वसे च्युत हो जाता है या मर जाता है तो उसके जघन्य अनुभागका काल अन्तर्मु हूर्त होता है, अन्यथा कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है। किन्तु सातवें नरकमे सम्यग्द्रष्टि अवस्थामे मरण नहीं होता, अतः कुछ ऋौर ऋधिक कम कर लेना चाहिये। अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल स्पष्ट ही है।

[ा] ता ● प्रती स्रजहरखुक ० इति पाठः।

ु ४५. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मोह० जहण्णाण्० ज० एगस०, उक० श्रंतोग्रुः । अज्ञः जः एगसः, उक्कः श्रमंखेज्ञा लोगा । सन्वर्णचिद्यितिरिक्खः मणुसअपज्ज० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० ख्रंतोमु०। अज० ज० ख्रंतोमु०, उक्कः सगसगुक्कस्महिदी । मणुसतियम्मि मोहः जहण्णाणुः त्र्योघं । अजः जः खुद्दा-भवग्गहणं त्रंतोम्र०, उक्क० सगसगहिदी । सोधम्मादि जाव सव्वसिद्धि ति मोह० जहण्णाजहण्णाणुभागाणं जहण्णुकस्सेण सगसगजहण्णुकस्सहिदी वत्तव्वा ।

६ ४५. तिर्युक्रगतिमे तिर्यक्रोमे माहनीय कर्मकी जघन्यानुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उन्द्रुष्ट काल अन्तुमुहिन हैं। तथा अजयन्य अनुभागविभक्तिका जयन्य काल एक समय ऋौर उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है। सब पञ्चे न्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्रकोमे मोहनीय कर्मकी जबन्य अनुभागविभक्तिका जबन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तम् हर्न है। अज-घन्यानुभागविभक्तिक। जबन्य काल अन्तमु हुर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। सामान्य मन्त्य, मनुष्य पर्यात श्रीर मनुष्यिनियोंमे मोहनीय कर्मकी जघन्यानुभाग-विभक्तिका काल स्रोघके समान है स्रोर अजयन्यानुभागविभक्तिका जघन्य काल सामान्य मनुष्यके चद्रभवप्रहणुप्रमाण है और शेप दो के अन्तर्मुहर्त है, उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण हैं। सोधर्म स्वर्गमे लेकर सर्वार्थेसिद्धि पर्यन्त मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्ति और अज-घन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्क्रष्ट काल श्चपनी उत्क्रष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये।

विशेषार्थ-निर्यख्रोंमे जो सूच्म निरोदिया एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव अजवन्य अनुभागक। घात कर देता है उसके तब तक जघन्य अनुभागकी मत्ता रहती है जब तक वह बन्धद्वारा उसे बढा नहीं लेता । यदि एक समयमें ही उसने जबन्य अनुभागसे अधिकका बन्ध कर लिया तो जबन्य अनुभागका काल एक समय होता है, अन्यथा अन्तर्मु हुन होना है। इसी प्रकार जिस तिर्येखने एक समयके लिए अजघन्य अनुभाग प्राप्त किया और दूसरे समयमें मर कर वह मनुष्य हो गया तो श्राज्ञघन्य अनुभागका जयन्य काल एक समय होता है, अन्यथा अनुत्कृष्ट अनुभागकी तरह असं-ख्यात लोक होता है। यहाँ पर अनन्त काल न कहनेका कारण यह है कि एक तो सदम एकेन्द्रियो मं निरन्तर रहनेका काल असंख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए जिसने सूदम एकेन्द्रिय पर्यायके प्रारम्भ में और अन्तमे जधन्य अनुभाग करके मध्यमें वह अजधन्य अनुभागका स्वामी रहा तो अजधन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक देखा जाता है। दूसरे पृथिवीकायादिमें निरन्तर रहनेका काल भी असंख्यात लोक है, इसलिए किसी सूच्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्रकने जयन्य अनुभाग किया और दूसरे समयमे वह अन्य कायवाला होकर असंख्यान लोकप्रमाण काल तक अजवन्य अनुभागका स्वामी बना रहा । पुनः इतने कालके बाद वह सूदम निगोदिया अपर्याप्त होकर जघन्य अनुभागक। स्वामी हुआ तो भी अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक-प्रमाण देखा जाता है। इतसमुत्पत्तिकर्मवाला सूद्रम एकेन्द्रिय जीव सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोमें र्ऋार मनुष्य अपर्याप्तकोमं जघन्य अनुभागके साथ जन्म लेकर यदि दूसरे समयमे बढा लेता है तो जघन्य अनुभागका काल एक समय होता है. अन्यथा अन्तम् हुत होता है। इनमें अज-घन्य त्रानुभागका जघन्य काल अन्तमु हूर्त है, क्योंकि इनकी जघन्य भवस्थिति ही इतनी है और उत्दृष्ट काल ऋपनी ऋपनी कायस्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यत्रिकमे श्रूपकश्रेणि सम्भव होनेसे इनमें जघन्य अनुभागका काल श्रोघके समान बन जाता है। तथा सामान्य मनुष्योंकी भव-

§ ४६. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु मोह० जहण्णाणु० जह० एगस०, उक्क० श्रंतोसु०। अज० जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। बादरेइंदिएसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु०। अज० ज० श्रंतोसु०, उक्क० श्रंगुलस्स असंखे०-भागो श्रसंखेज्जासंखेज्जाश्रो श्रोसिपणि-उस्सिपणीश्रो। एवं बादरेइंदियप्रज्जत्ताणं। णविर अजहण्णाणु० उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि। बादरेइंदियश्रपज्जत्तपसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु०। अज० जह० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० श्रंतोसु०। सुहुमेइंदिएसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु०। अज० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु०। अज० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु०। अज० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु०। वेइंदिय-पंजाणाणु० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु०। वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं तेसिं चेव पज्जताणं च मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु०। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणमंतोसुहुत्तं देसूणं, उक्क० संखेज्जाणि वस्स-

स्थित जुल्लक भवप्रहणप्रमाण श्रीर शेपकी श्रन्तमुं हूर्तप्रमाण होनेसे इनमें श्रज्ञचन्य अनुभागका जधन्य काल उक्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी श्रपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है। सौधर्मादिक देवोंमेंसे उन्हीं देवोंके जधन्य अनुभाग होता है जो पिछले भवमें क्रिया द्वारा सबसे जधन्य श्रनुभाग कर चुके हैं श्रीर शेषके श्रज्ञघन्य श्रनुभाग होता है। यही कारण है कि सौधर्मादि सब देवोंमें जधन्य और श्रज्ञघन्य श्रनुभागका जधन्य काल श्रपनी श्रपनी जघन्य भवस्थितिप्रमाण श्रीर उत्कृष्ट काल श्रपनी श्रपनी उत्कृष्ट भवस्थितिप्रमाण कहा है।

§ ४६. इन्द्रियकी श्रपेक्षा एकेन्द्रियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है। बादर एकेन्द्रियोंमें मोहनीय-कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय आर उत्कृष्ट अन्तर्मु हुर्त है। अजधन्य अनुभागका जधन्य काल अन्त्रमुंहर्त श्रीर उत्कृष्ट श्रंगलके श्रसंख्यातवें भाग है जो कि श्रसंख्याता-संख्यात श्रवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल प्रमाण है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अजघन्यानुभागका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोमें मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल ऋन्तर्म हुते हैं। तथा ऋजघन्यानुभागका जघन्य काल कुछ कम चुद्रभवग्रहणप्रमाण है श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त हैं। सूदम एकेन्द्रियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तम् हूर्त है। श्रजघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है। सूदम एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्म् हर्त है। तथा श्रजघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त है। सूच्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हुते है। सामान्य दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय श्रीर चौइन्द्रिय तथा उन्हींके पर्याप्तकोंमें माहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रौर उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है। तथा

महस्साणि । एदेसिमपज्जताणं पंचिदियअपज्जताणं च पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

ः ४७. पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तपसु मोह० जहण्णाणु० ज० उक्क० एगस०। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोस्र०, उक्क० सागरोवमसहस्साणि पुट्वकोडिपुधत्तेणब्भ-हियाणि सागरोवमसद्पुधत्तं।

्र ४८. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० जहण्णाणु० ज० एगसमओ, उक्क० द्यंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवगाहणं देसूणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा । बादर-पुढवि-बादरआउ०-वादरतेउ०-बादरवाउ० जहण्णाणु० जह० एगस०, उक्क० द्यंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवगगहणं देसूणं, उक्क० कम्मिद्दिरी । एदेसि चेव पज्जत्ताणं जहण्णाणु०

सामान्य दोइन्द्रियादिकके अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम जुद्रभवमहणप्रमाण श्रीर पर्याप्तक दोइन्द्रियादिकके कुछ कम अन्तर्मु हूर्त प्रमाण है श्रीर सबके उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय श्रीर पद्मे न्द्रिय अपर्याप्तकोके पद्मे न्द्रिय तिर्यक्क अपर्याप्तकके समान भङ्ग होता है।

विशेषार्ध-सब प्रवारके एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंमं जघन्य अनुभागवाले सूद्रम एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति सम्भव होनेसे उनमे जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हर्त कहा है, इसलिए वह तिर्यक्कोंके समान यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। पूर्वोक्त अन्य जीवोंमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम अपनी अपनी भवस्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण बतलाया है यह तो ठीक है परन्तु एकेन्द्रिय, सूद्रस एकेन्द्रिय और सूद्रम एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें जो अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय बतलाया है उसका कारण यह है कि ये भवके अन्तमे एक समयके लिए अजघन्य अनुभागवाले होकर दूसरे समयमें यदि अन्य कायवाले हो जाते हैं तो इनके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है।

§ ४७. सामान्य पञ्चोन्द्रिय त्र्यौर पञ्चोन्द्रिय पर्याप्तकों में माहनीयकर्मकी जघन्य अनुभाग-विभक्तिका जघन्य त्र्यौर उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा सामान्य पञ्चोन्द्रियोके अजघन्य अनुभाग-विभक्तिका जघन्य काल जुद्रभवमहण त्र्यौर उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिष्ट्रथक्त्वसे अधिक एक हजार सागर है। त्र्यौर पञ्चोन्द्रिय पर्याप्तकोंके जघन्य काल अन्तमु हूर्त त्र्यौर उत्कृष्ट काल सौ प्रथक्त्व सागर है।

विशोषार्थ-पञ्चे न्द्रिय श्रीर पञ्चे न्द्रिय पर्याप्तकोमें क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होनेसे यहाँ जघन्य श्रानुभागका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनकी भवस्थिति श्रीर कायस्थितिको ध्यानमे रखकर इनमे श्राजघन्य श्रानुभागका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल कहा है।

§ ४८. कायकी श्रपेक्षा पृथिवीकायिक, श्रप्कायिक, तेजस्कायिक श्रोर वायुकायिकमें जघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुं हूर्त है। तथा श्रजघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य काल कुळ कम जुद्रभवमह्णप्रमाण श्रोर उत्कृष्ट काल श्रसंख्यात लोक प्रमाण है। वादर पृथिवीकायिक, बादर श्रप्कायिक, बादर तेजस्कायिक श्रोर बादर वायुकायिक जीवके जघन्य श्रनुभागका जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूते है। तथा श्रजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुळ कम जुद्रभवमहण्यमाण श्रोर उत्कृष्ट काल कमेस्थिति प्रमाण है। इन्हीं पर्याप्तकोंके जघन्य श्रनुभागिवभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तमुंहूर्त

ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि। एदेसिमपज्जताणं बादरेइंदियअपज्जतभंगो। सुहुमपुढिव०-सुहुमआउ०-सुहुमतेउ०-सुहुम-वाउ० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुतं। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देस्णं, उक्क० असंखेज्जा लोगा। एदेसि चेव पज्जतापज्जत्तएसु जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० ज० अंतोमु० देस्णं खुद्दा० देस्णं, उक्क० अंतोमु०। वणप्पदि-काइयाणं एइंदियभंगो। बादरवणप्पदिकाइय-चादरवणप्पदिकाइयपज्जतापज्जत्ताणं बादरेइंदियपज्जतापज्जत्ताणं भंगो। सुहुमवणप्पदिकाइय-सुहु मवणप्पदिकाइयपज्जता-पज्जताणं सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जतापज्जत्तभंगो। सव्वणिगोदाणं सव्वेइंदियभंगो। बादरवणप्पदिकाइयपत्तेयसरीरेसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देस्णं, उक्क० कम्मिहदी। बादरवणप्पदिपत्तेयपज्जत्तएसु मोह० ज० ज० एगस०, उक्क० संखे-जाणि वाससहस्साणि। बादरवणप्पदिपत्तेयसरीरअपज्जत्ताणं पंचिदियअपज्जत्तभंगो। तस०-तसपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस०, अजै० ज० खुद्दाभवग्गहणं तस०-तसपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस०, अजै० ज० खुद्दाभवग्गहणं तस०-तसपज्जत्त्रसु मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस०, अजै० ज० खुद्दाभवग्गहणं

हैं। तथा अज्ञघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अपन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्ष है । इन्हीं ऋपर्याप्तकोंकं वादर एकेन्द्रिय ऋपर्याप्तकके समान भंग होता है । सुद्दम पृथिवी-कायिक, सूद्रम ऋष्कायिक, सूद्रम तेजस्कायिक और सूद्रम वायुकायिक जीवोंके जघन्य अनु-भागविभक्तिका जवन्य काल एक समय ऋौर उन्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्यानुभाग-विभक्तिका जवन्य काल कुछ कम जुद्रभवप्रहण श्रीर उत्कृष्ट श्रसंख्यात लोक है। इन्हीं जीवोंके पर्याप्तक और अपर्याप्तक अवस्थामें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तमु हूर्त है। तथा उक्त पर्याप्तकोंके अजयन्य अनुभागविभक्तिका जयन्य काल कुछ कम अन्तर्मु हूर्त है और अपर्याप्तकोंके कुछ कम जुद्रभवप्रहण प्रमाण है और दोनोंके उत्कृष्ट काल अन्तर्म हुर्त है। वनस्पतिकायिकोंके एकेन्द्रियके समान भंग है। सामान्य वादर वनस्पति कायिकके बादर एकेन्द्रियके समान, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकके बादर एवं न्द्रिय पर्याप्तकके समान श्रीर बादर बनस्पतिकाथिक अपर्याप्तकके बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग होता है। सूच्म वनस्पतिकायिक, सूच्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक श्रोर सूच्म वनस्पतिकायिक श्रपर्याप्रकोंके क्रमसे सूदम एकेन्द्रिय, सूदम एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूदम एकेन्द्रिय अपर्याप्तककी तरह भंग होता है। सब निगोदिया जीवोके सब एकेन्द्रियोंके समान भंग होता है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरी जीवोमें माहनीयकर्मकी जघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्ब्रष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है। अज्ञवन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम चुद्रभवप्रहण प्रमाण श्रीर उत्कृष्ट कर्मिस्थितिप्रमाण है। बादर वनस्पतिप्रत्येकशरीर पर्याप्तक जीवोंमें मोहनीयकर्मकी जधन्य अनुभागविभक्तिका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तमु हूर्न है। अजधन्य अनु-भागविभक्तिका जवन्य काल कुछ कम अन्तर्मु हूर्त श्रीर उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष है। बादर वनस्पति प्रत्येकशारीर अपर्याप्तकोंके पञ्चे न्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग होता है। त्रस और श्रसपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य श्रतुभागविभक्तिका जघन्य व उत्कृष्ट काल एक समय

१. था॰ प्रती जहरुखुद्ध० ध्रज० इति पाठः।

श्रंतोग्र. उक्क वेसागरोवमसहस्साणि पुन्वकोडिपुधत्तेणब्भिहयाणि वेसागरोवम-सहस्साणि । तसकाइयअपज्जताणं पंचिदियत्रपञ्जतभंगो ।

५ ४६. जोगाणुवादेण पंचमण०--पंचवचि० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगसमञो । अज० जह० एगस०, उक्क० श्रंतोग्र० । कायजोगि० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस० । अज्ञ० ज० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेजा पोग्गलपरियद्या । ओरालियकाय० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस०। अज० ज० एगस०, उक० बावीसवाससहस्साणि देसणाणि । ओरालियमिस्स० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोम्र०। अज० जह० एगस०. उक्क० अंतोम्र०। वेउव्वियकाय० मोह० जहण्णाणु ज एगसं . उक्क अंतोम्र । अज ज एगस . उक्क अंतोम्र । वेउव्वियमि० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० ऋंतोम्र०। अज० जहण्णुक० तथा श्रज्ञचन्यं श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल त्रसोंमं जुद्रभवमहरण श्रार त्रस पर्याप्तकोंमे श्रन्तर्मुहूर्त हैं। श्रीर उत्कृष्ट त्रसोंमें पूर्वकोटिपृथक्तवसे श्रधिक दो हजार सागर श्रीर त्रस

पर्याप्तकोंमें केवल दो हजार सागर है। त्रसकायिक अपर्याप्तकोंमें पक्के न्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग होता है।

विश्रापार्थ-पृथिवी अादि चारों कार्योंके भेद-प्रभेदोंमें जवन्य अनुभागका जवन्य श्रीर उत्कृष्ट काल पूर्ववन एकेन्द्रियोंके समान घटित कर लेना चाहिये। अजधन्य अनुभागका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रपनी श्रपनी जवन्य श्रीर उत्कृष्ट ,स्थितिप्रमाण है। जिनमे जवन्य काल कुछ कम कहा है उनमे जवन्य अनुभागक कालको दृष्टिमें रखकर कहा है। अर्थान जवन्य अनुभागवाला उनमे जन्म लेकर यदि अनुभागको बढा ले तो अजधन्य अनुभागका जधन्य काल कुछ कम अपनी-अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण होता है। इसी प्रकार बनस्पतिकायिकमे जानना चाहिए। त्रस और त्रस पर्याप्तकके चापक सूच्मसाम्परायके श्रान्तिम समयमे जवन्य श्रानुभाग होता है. अतः उसका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा श्रजघन्य श्रनुभागका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रपनी श्रपनी जघन्य श्रीर उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

६ ४६. योगकी श्रपेक्षा पांचों मनायोग श्रीर पांचों वचनयोगोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तम् हुर्त है। काययोगियोमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभाग विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल अर्थान असंख्यात पदगलपरावर्तनप्रमाण है। औदारिक-काययोगियों में मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। श्चज्ञचन्य श्चनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्क्रष्ट काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष है। श्रीदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीय कर्मको जघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्दृष्ट काल अन्तुम हूर्त है। तथा श्रजघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है। वैिक्रियिककाययोगियोंमे मोहनीय कर्मकी जघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमु हूर्त है। तथा श्रजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्त्मुंहूर्त है। वैकियिकिमिश्र-काययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्चंतोग्च०। कम्मइय० मोह० जहण्णाणु० जह० एगसम्त्रो, उक्क० तिण्णिसमया। एवमजहण्णं पि। आहारकायजोगी० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोग्च०। श्रज्ञ० एगस०, उक्क० श्रंतोग्च०। श्राहारिमस्स० मोह० जहण्णाजहण्ण० जहण्णुक्क० श्रंतोग्च०।

९ ५०. वेदाणु० इत्थिवेदएसु मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस० । अज०
ज० एगस०, उक० पिलदोवमसदपुधत्तं । पुरिस० मोह० ज० जहण्णुक० एगस० ।

काल अन्तर्मु हूर्त है। अजघन्य अनुभागिवर्भाक्तका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। कार्मण्काययोगियों में मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। इसी प्रकार अजघन्य का भी है। आहारककाययोगियों मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। अजघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है। आहारकिमअकाययोगियों में मोहनीय कर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है।

विशेषार्थ-पाँचों मनायांगी, पाँचों वचनयांगी, काययोगी और श्रीदारिककाययोगी जीवोके चपक सूद्रमसाम्पराय गुणस्थान सम्भव है, इसलिए इनमें जवन्य अनुभागका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा पाँचों मनायाग श्रीर पाँचों वचनयोगोंका मरण अौर व्याघातकी अपेक्षा तथा औदारिककाययोगका मरणकी अपेक्षा एक समय काल होता है, इसलिए इनमें ऋजयन्य ऋनुभागका जयन्य काज एक समय कहा है। जो दसवें क्षपक गुरास्थानमें जघन्य अनुभागका प्राप्त करनेकं एक समय पूर्व काययांगी होता है उसके अजयन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है, श्रातः वह उक्त प्रमाण कहा है। सूच्म श्रापयीप्त एकेन्द्रियोक जिस प्रकार काल घटित करके बतला त्राये उसी प्रकार त्र्यौदारिकमिश्रकाययांगमे घटिन कर लेना चाहिए। वैक्रियिककाययांग और आहारककाययांगका जघन्य काल एक समय हानेसे इनमें जघन्य श्रीर श्रजधन्य अनुभागका जधन्य काल एक समय कहा है। तथा इन दोनों योगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त होनेसे इनमें जघन्य और अजधन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्न कहा है। जो वैक्रियिकमिश्रकाययांगी प्रथम समयमे जवन्य श्रनुभागके साथ रहता है और दूसरे समयमे उसे बढ़ा लेता है उसके जघन्य अनुभागका एक समय काल उपलब्ध होनेसे वह एक समय कहा है। इसमें जवन्य और अजवन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है यह स्पष्ट ही है। साथ ही जो असंज्ञी मर कर वैकियिकमिश्रकाययोगी होता है उसीके जवन्य अनुभाग होता है, श्रन्यके नहीं, इस लिए अजघन्य अनुभागका भी जघन्य काल अन्तुम् हुत प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। आहा-रकमिश्रकाययोगका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल अन्तम हूर्त होनेसे इसमे जघन्य श्रौर अजघन्य अनु-भागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। कार्मणकाययांगका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल तीन समय होनेसे इसमें जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। यहाँ जिन योगोंमें अजयन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल घटित नहीं किया है वह उन योगोंके उत्कृष्ट काल प्रमाण जानना चाहिए ।

९ ५०. वेदकी ऋषेक्षा स्त्रीवेदियोमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य ऋौर . उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा ऋजघन्य ऋनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय ऋौर उत्कृष्ट ्काल सौ पृथक्त्वपत्योपम है। पुरुष्वेदियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य ऋनुभागविभक्तिका जघन्य अजि जि श्रंतोग्रु , उक्क सागरोवमसदपुथतं । णर्बुसयवेद जहण्णाणु जह-ण्णुक्क एगस । अजि जि एगस , उक्क अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियष्टं । श्रवगद मोह जहण्णाणु जहण्णुक एसगसमओ । अजि जि एगस , उक्क श्रंतोग्रु ।

६ ५१. कसायाणुवादेण कोधकसाएसु मीह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोमुहुत्तं । एवं माण-माया-छोभाणं । अकसाएसु मोह० जहएएएाणु० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोमु० । एवमजहएएां पि ।

५२. णाणाणुवादेण मदि-सुद्अएखाणीसु मोह० जहएखाणु० ज० उक्क०
 श्रंतोमु०। श्रज० ज० श्रंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। विहंगणाणीसु मोह०

श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा श्रजपन्य श्रनुभागिवभिक्तिका जपन्य काल श्रन्तमुं हूर्त श्रीर उत्कृष्ट काल सी पृथक्तवसागर है। नपुंसक्रवेदियोंमे जपन्य श्रनुभागिवभिक्तिका जपन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है तथा श्रजपन्य श्रनुभागिवभिक्तिका जपन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रानन्त काल है। वह श्रानन्त काल श्रासंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। श्रपगतवेदियोमें मोहनीय कर्मकी जपन्य श्रनुभागिवभिक्तिका जपन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा श्रजपन्य श्रनुभागिवभिक्तिका जपन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तमुं हूर्त है।

विशेषार्थ—तीनों वेदोंमें मोहका जघन्य अनुभाग अपने अपने संवद्भागके अन्तिम समयमें होता है, अतः इनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उन्कृष्ट काल एक समय कहा है। स्नीवंद और नपुंसकवंदका जघन्य काल एक समय और पुरुपवंदका जघन्य काल अन्तर्भुहूर्त होने से इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितियमाण होता है यह स्पष्ट ही है। अपगतवंदमें सूद्रमसाम्परायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होनेसे इसमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। मोहकी सत्तावाले अपगतवंदीका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त होनेसे इसमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त कहा है।

§ ५१. कपायकी अपेचा क्रोधकपायवालों में मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य ऑरउत्कृष्ट काल एक समय हैं तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त हैं। इसी प्रकार मान, माया और लोभमें भो जानना चाहिये। कपायरित जीवोम मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त हैं। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागविभक्तिका भी काल जानना चाहिये।

विशेषार्थ—चारों कपायोंमें माहका जवन्य अनुभाग अपने अपने चयके अन्तिम समयमें होता हैं, अतः इतमे जवन्य अनुभागका जचन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा प्रत्येक कपायका जचन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हूर्त होनेसे इतमें अजधन्य अनुभागका जचन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हूर्त हो । उपशान्तकपायका भी जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हूर्त हहा है। उपशान्तकपायका भी जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हूर्त हैं, अतः अकपायी जीवोमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्म हूर्त कहा है।

§ ५२. ज्ञानकी अपेक्षा मतित्रज्ञानी और श्रुतऋज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य श्रनुभाग-विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त है। अजघन्य श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्भुहूर्त जहरणाणु० जह० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अज० ज० एगस०, उक्क० तेतीसं सागरो० देसूणाणि। आभिणि०--सुद०--श्रोहि० मोह० जहरणाणु० जहरणाणुकक० एगस०। अज० ज० अंतोसु०, उक्क० झासिहसागरो० सादिरेयाणि। मणपञ्जव० मोह० जहरणाणु० जहरणाणुकक० एगस०। अज० ज० अंतोसु०, उक्क० पुन्वकोटी देसूणा।

५३. संजमाणु० संजदेसु मोह० ज० जहएणुक्क० एगस० । अज० ज॰ अंतोसु०, उक्क० पुन्वकोडी देस्णा । एवं सामाइय-छेदो०संजदाणं । णविर अज० जह० एगस० । परिहार० मोह० जहएणाणु० ज० अंतोसु०, उक्क० पुन्वकोडी

श्रीर उत्कृष्ट काल श्रसं व्यात लोक हैं। विभंग ज्ञानियों में माहनीय कर्मकी जघन्य अनुभाग विभक्ति का जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम इकतीस सागर है। श्राज्यन्य अनुभाग-विभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। श्राभिनिवोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर अवधिज्ञानियों में माहनीयकर्मकी जघन्य श्रान्य अनुभाग विभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभाग विभक्तिका जघन्य काल श्रन्त मुंहूर्त श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ श्रिषक छियासठ सागर है। मनः पर्ययञ्जानियों में माहनीयकर्मकी जघन्य अनुभाग विभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभाग विभक्तिका जघन्य काल श्रन्तमुंहूर्त श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है।

विशेषार्थ—दोनों अज्ञानोमे एक बार जघन्य या अजघन्य अनुभाग होने पर वह कमसे कम अन्तर्भु हून अवश्य रहता है। इसीसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोमे जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्भु हुन कहा है। इनमे अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्भु हुन कहा है। इनमे अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल असंख्यात लांकप्रमाण जिस प्रकार एकेन्द्रियोमें घटित करके कतला आये हैं वैसे ही यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। जो मनुष्य जघन्य अनुभागको करके अनन्तर नीचे उतर कर यथाविधि एक समय तक विभङ्गज्ञानमें जघन्य अनुभाग कर लेना है उसके विभङ्गज्ञानमें जघन्य अनुभाग एक समय तक उपलब्ध होता है, इसलिए विभङ्गज्ञानमें जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा जो जघन्य अनुभागके साथ उपरिम-उपरिम नवमैवयकमें उत्पन्न होता है उसके विभङ्गज्ञानमे कुछ कम इकतीस सागर काल तक जघन्य अनुभाग देखा जाता है, इसलिए इसका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। इसमे अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। इसमे अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय काल यथाशास्त्र घटित करना चाहिए। आभिनिबाधिक आदि चारों ज्ञानोंमें क्षपक सूद्मसाम्पराय गुणस्थान सम्भव होनेसे इनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्भ है। तथा इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्भ है। तथा इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्भ है। देश इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्भ है। तथा इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्भ हो है।

६ ५३. संयमकी अपेक्षा संयतों में मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा श्रजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्न श्रीर उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है। इसी प्रकार सामायिक श्रीर छेदोपस्थापना संयतों में जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि श्रजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है। परिहार-विशुद्धिसंयतों मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मु हुर्त श्रीर उत्कृष्ट

देम्णा । एवमजहराणं पि । मृहुमसांपरायि० मोह० जहराणाणु० जहराणुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उनक० श्रंतोम्र० । जहाक्खाद० अकसायभंगो । संजदासंजद० मोह० जहराणाणु० ज० श्रंतोम्र०, उक्क० पुन्तकोडी देम्णा । एवमजहराणं पि । असंजद० मोह० जहण्णाणु० जहराणुक्क० श्रंतोम्र० । अज० ज० श्रंतोम्र०, उक्क० असंवेज्ञा लोगा ।

१४८. दंसणाणु० चक्खु० मोह० जहएएााणु० जहएएाुक्क० एगस०। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि। अचक्खु० मोह० ज० जहएएाुक्क० एगस०। अजै० ज० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो। ओहि-दंसणी० ओहिणाणिभंगो।

काल कुछ कम पूर्वकाटी है। इसी प्रकार अजयन्य अनुभागिवभक्तिका काल भी जानना चाहिये।
सूद्रमसान्परायिक संयतोमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागिवभिक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल
एक समय है। अजघन्य अनुभागिवभिक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त
है। यथाख्यातसंयतोमें कपायरहित जीवोंक समान भंग होता है। संयत।संयतोमें मोहनीयकी
जघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है।
इसी प्रकार अजघन्य अनुभागिवभक्तिका भी काल जानना चाहिए। असंयतोमें मोहनीयकी
जघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है और अजघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मु हुर्त तथा उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है।

विशेषार्थ—यहाँ जिन संयमोमे चपकश्रेणी सम्भव है उन्मे जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्हृष्ट काल एक समय कहा है। कारण कि उस उस संयमके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है। मात्र संयतोके सूदमसाम्यरायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है। सूदम-साम्यरायसंयम, सामायिकसंयम और छेदोपस्थापनासंयमका जघन्य काल एक समय हानेसे इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय कहा है। इन सबमें अजघन्य अनुभागका उत्हृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। यथाख्यातसंयम अकपायी जीवोके होता है, इसलिए इसमें कालका विचार अकपायी जीवोके समान जाननेकी सूचना की है। अब शेप तीन रहे परिहारविशुद्धिसयम, संयमासंयम और असयम सो इनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्हृष्ट काल तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मु हुर्त कहा है, क्योंकि इनका जघन्य काल अन्तर्मु हुर्त है। तथा इनका उत्हृष्ट काल प्रारम्भके दोका कुछ कम पूर्वकांटि होनेसे उनमे अजघन्य अनुभागका उत्हृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है और असंयतोमे अजघन्य अनुभागका उत्हृष्ट काल जिस प्रकार मत्यज्ञानियोमे असंख्यात लोकप्रमाण घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए।

६ ५४. दर्शनकी अपेक्षा चतुदर्शनियों में मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल तुद्रभवप्रह्म और उत्कृष्ट काल दो हजार सागर है। अचतुदर्शनियोमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अनादि अनन्त और अनादि सान्त है। अघिदर्शनवालों में अविधि हानियों के समान भक्क होता है।

रै, द्या॰ प्रती एगस॰ उक्क॰ भ्रंतोसु॰ स्रज॰ इति पाठः ।

\$ ५५. तेस्साणु० किण्ह--णील-काउ० मोह० ज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि सादिरेयाणि। तेउ०-पम्म० मोह० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० वे--अद्वारससागरो० सादिरेयाणि। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० वे-अद्वारससागरो० सादिरेयाणि। सुक्क० मोह० ज० जहण्णुक० एगस०। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि।

५६. भवियाणु० भविस० ओघं। अभैविस० मोह० ज० जहण्णुक० श्रंतोमु०।
अज० ज० श्रंतोमु०, उक्क० असंखेळा लोगा।

विशेषार्थ-क्षपक सूद्मसाम्परायमे भी चचुदर्शन और अचचुदर्शन होते हैं, इसलिए इनमें जयन्य अनुभागिवभक्तिका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। चचुदर्शनका जयन्य काल चुर्भनकम्बर्ण प्रमाण और उत्कृष्ट काल दो हजार सागर है, अतः इसमें अजयन्य अनुभागका जयन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है। अचचुदर्शन भव्य और अभव्य दोनों के होनेसे उसमें अजयन्य अनुभागका जयन्य और उत्कृष्ट काल अभव्यों के अनादि-अनन्त और भव्यों के अनादि-सान्त कहा है। अवधिदर्शनवालोका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवों के समान है यह म्पष्ट ही है।

§ ५५. लेश्याकी अपेचा कृष्ण, नील और कापात लेश्यावालों में मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागिवमिक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागिवमिक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ अधिक तेतीस सागर, कुछ अधिक सतरह सागर और उछ अधिक सात सागर है। तेजालेश्या और पद्मलेश्यावालों में माहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागिवमिक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ अधिक दो सागर और कुछ अधिक अठारह सागर है। अजघन्य अनुभागिवमिक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ अधिक दो सागर और कुछ अधिक अठारह सागर है। अजघन्य अनुभागिवमिक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागिवमिक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तेतीस सागर है।

विशेषार्थ-रूप्णादि तीन लेश्यात्रोंमे जघन्य अनुभागका जघन्य और उन्स्रष्ट काल तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एकेन्द्रिय की तरह घटित कर लेना चाहिए। तथा अजघन्य अनुभागका उन्स्रष्ट काल प्रत्येक लेश्याके उन्स्रष्ट काल की तरह है यह म्पष्ट ही है। एक जीव की अपेचा तेजालश्या और पद्मलेश्याका जितना जघन्य और उन्स्रप्ट काल है उतना ही उनमे जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य और उन्स्रप्ट काल कहा है। शुक्रलेश्यामे चपक सूक्ष्मसाम्परा-यिकके अन्तिम समयमें मोहका जघन्य अनुभाग होता है, अत: उसका जघन्य और उन्स्रप्ट काल एक समय कहा है तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य और उन्स्रप्ट काल शुक्रलेश्याक एक जीव की अपेचा काल को ध्यानमें रुवकर कहा है।

ह ५६ भव्यकी अपेत्ता भव्यां में आंघके समान भङ्ग है। अभव्यां में माहनीयकर्म की जवन्य अनुभागविभक्तिका जवन्य और उत्क्रष्ट काल अन्तर्मु हूर्न है। तथा अजवन्य अनुभाग-विभक्तिका जवन्य काल अन्तर्मु हुर्न और उत्क्रष्ट काल असंख्यात लोक है।

विशेषार्थ-त्र्यायसे जिस प्रकार कालका घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार भव्योंम

\$ ५७. सम्मत्ताणु० सम्मादिही० मोह० ज० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० त्रंतोमु०, उक्क० णवणउइसागरो० सादिरेयाणि छासिहसागरो० सादिरेयाणि वा। खइय० मोह० जह० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० त्रंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि। वेदग० मोह० जह० जहण्णुक्क० त्रंतोमु०। अज० ज० त्रंतोमु०, उक्क० ह्यासिहसागरोवमाणि। उवसम० मोह० जहण्णाणु० जहण्ण० उक्क० त्रंतोमु०। अज० जहण्णुक्क० त्रंतोमु०। सासण० मोह० ज० ज० एगस०, उक्क० छ आविलयाओ। एवमजहण्णं पि। सम्मामि० मोह० ज० जहण्णुक्क० त्रंतोमु०। एवमजहण्णं पि। मिच्छादिही० मोह० ज० ज० उक्क० त्रंतोमु०। अज० ज० त्रंतोमु०, उक्क० असंखेजा लोगा।

घटित कर लेना चाहिए। एकेन्द्रियोंमें जघन्य अनुभाग होनेके बाद वह अन्तर्मु हूर्त काल तक अवश्य रहता है, इसलिए इसका अभव्योंमें जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त कहा है। इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मु हूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ५७. सम्यक्ति श्रपेत्ता सम्यग्दृष्टियोमे मोहनीयकर्मकी जघन्य श्रनुभागिवर्भाक्ति जघन्य श्रीर उन्कृष्ट काल एक समय है। तथा श्रजघन्य श्रनुभागिवर्भिक्तिका जघन्य काल श्रन्तिमुंहूर्त श्रीर उन्कृष्ट काल कुछ श्रिष्ठक निन्यानवे सागर है। श्रथवा कुछ श्रिष्ठक छियासठ सागर है। त्रायिकसम्यग्दृष्टियोमें मोहनीयकर्मकी जघन्य श्रनुभागिवर्भिक्तिका जघन्य श्रीर उन्कृष्ट काल एक समय है। तथा श्रजघन्य श्रनुभागिवर्भिक्तिका जघन्य काल श्रन्तमुंहूर्त श्रीर उन्कृष्ट काल कुछ श्रिष्ठक तेतीस सागर है। वदकसम्यग्दृष्टियोमें मोहनीयकर्मकी जघन्य श्रनुभागिवर्भिक्तिका जघन्य श्रीर उन्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। तथा श्रजघन्य श्रनुभागिवर्भिक्तिका जघन्य श्रीर उन्कृष्ट काल छियासठ सागर है। उपशमसम्यग्दृष्टियोमें मोहनीयकर्मकी जघन्य श्रनुभागिवर्भिक्तिका जघन्य श्रीर उन्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। सामादनसम्यग्दृष्टियोमें मोहनीयकर्मकी जघन्य श्रनुभागिवर्भिक्तिका जघन्य काल एक समय श्रीर उन्कृष्ट काल छ श्राविलका है। इसी प्रकार श्रजघन्य श्रनुभागिवर्भिक्तिका जघन्य श्रीर उन्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। इसी प्रकार श्रजघन्य श्रनुभागिवर्भिक्तिका जघन्य श्रीर उन्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। इसी प्रकार श्रजघन्य श्रनुभागिवर्भिक्तिका जघन्य काल श्रन्तमुंहूर्त श्रीर उन्कृष्ट श्राल श्रन्तमुंहूर्त है। तथा श्रजघन्य श्रनुभागिवर्भिक्तिका जघन्य काल श्रन्तमुंहूर्त श्रीर उन्कृष्ट श्रमच्यात लोक है।

विशेषार्थ-सम्यग्दिष्ट और त्रायिकसम्यग्दिष्टकं त्रपक सूक्ष्मसाम्परायिकके अनितम समयमें जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका जघन्य और उन्क्रष्ट काल एक समय कहा है। तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य और उन्क्रष्ट काल मोटे तौरपर दोनोके जघन्य और उन्क्रष्ट कालकी तरह जानना चाहिए। वेदकसम्यक्त्वमें दोवार उपशमश्रेणीपर चढ़कर, उससे उतरकर दर्शनमोहनीयका त्रय करके कृतकृत्यभावको प्राप्त हुए जीवके प्रथम समयमें मोहका जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका जघन्य और उन्क्रष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा उपशमसम्यक्त्वमें दुवारा उपशम श्रेणीपर चढ़कर ग्यारह्वें गुण्स्थानमे वर्तमान जीवि जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका भी जघन्य और उन्क्रष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। और अजघन्य अनुभागका जघन्य और उन्क्रष्ट काल

- १ ४८. सिष्णयाणुवादेण सण्णीसु मोह० ज० जहण्णुक० एगस०। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । असिष्ण० मोह० ज० ज० एगस०, उक्क० स्रंतोसु०। अज० ज० एगसमञ्जो, उक्क० असंखेज्जा लोगा।
- १४६. त्राहारीसु मोह० ज० जहण्णुक० एगस०। त्रज० ज० खुदाभवगाहणं तिसमयूणं, उक्क० त्रंगुलस्स असंखे०भागो असंखेजात्रो त्रोसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ। अणाहारि० कम्मइयभंगो।

एवं जहण्णञ्जो कालाणुगमा समतो।

६०. त्रांतराणुगमेण दुविहमंतरं—जहण्णमुकस्सं च । उकस्सं पयदं । दुविहो णिद्देसो — ओघे० आदेसे० । ओघे० मोह० उकस्साणुभागमंतरं केविचरं ? ज० त्रांतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियद्दा । अणुक्क० जहण्णुक्क० त्रांतोमुहुत्तं ।

मांटे तौरपर दोनो सम्बक्त्वोके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी तरह जानना चाहिए।सासादनसम्बक्त्व और सम्बग्निध्यात्वका जितना जघन्य और उत्कृष्ट काल है उतना ही उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल होता है। जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे मिध्यादृष्टिके उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा मिध्यात्वमे अजघन्य अनुभाग कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण काल तक रहता है यह देखकर यहाँ वह उक्त प्रमाण कहा है।

६५८. संज्ञित्वकी अपंचा संज्ञियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजयन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण् और उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्व सागर है। असंज्ञियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है।

विशेषार्थ—संज्ञीके चपक सूक्ष्ममाम्पराय गुणस्थान सम्भव होनेसे इसमे जघन्य अनु-भागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा संज्ञियोका जघन्य काल क्षुद्रभव-प्रह्मप्रमाण और उत्कृष्ट काल मौ सागर पृथक्त्व होनेसे इसमे अजघन्य अनुभागका उक्त प्रमाण काल कहा है। असंज्ञियोमे जिस प्रकार एकेन्द्रियोमे काल घटित करके वतला आये हैं इस प्रकार घटित कर लेना चाहिए।

ई ५९. ब्राहारकोमे मोहनीयकर्मकी जघन्य ब्रनुभागविभक्तिका जघन्य ब्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। ब्रजघन्य ब्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल तीन समय कम क्षुद्रभवप्रह्ण ब्रौर उत्कृष्ट काल ब्रांगुलका ब्रसंख्यातवां भाग है जो कि ब्रसख्यात उत्सर्पिणी ब्रौर ब्रवसर्पिणी कालप्रमाण है। ब्रनाहारकोंमें कार्मणकायके समान भंग होता है।

इस प्रकार जघन्य कालानुगम समाप्र हुआ।

§ ६०. अन्तरानुगमकी अपंत्ता अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपंत्ता निर्देश दो प्रकारका है—आंघनिर्देश और आदेशनिर्देश। आंघकी अपंत्ता मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर्भुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल है। वह अनन्त काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनुन्कृष्ट अनु-

एवं तिरिक्खोघं।

§ ६१. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्कस्साणुभागमंतरं केव० ? ज० श्रंतोसु०, उक्क० तेत्तीससागरो० देसूणाणि । अणुक्क० ओघं । एवं सव्वणेरइयाणं । णविर सग-सगिहिदी देसूणा । पंचिदियतिरिक्खितएसु मोह० उक्क० ज० श्रंतोसु०, उक्क० पुव्यकोडि-पुभत्तं । अणुक्क० ओघं । मणुस्सितयस्स पंचिदियतिरिक्खितयभंगो । पंचिदियतिरिक्ख-अपज्ज० उक्क० श्रणुक्क० णित्थ श्रंतरं । एवं मणुस्सअपज्ज० आणदादि जाव सव्वद्व-सिद्धि ति । देवेसु मोह० उक्क० ज० श्रंतोसु०, उक्क० अद्वारससागरो० सादिरेयाणि । अणुक्क० ओघं । एवं भवणादि जाव सहस्सार ति । णविर सग-सगिहिदी वत्तव्वा ।

भागका जधन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्जोमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-इस प्रकरणमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागके अन्तरकालका विचार किया गया है। जैसे एक संज्ञी पश्चिन्तिय मिण्यादृष्टिने उत्कृष्ट अनुभागवन्य करके उसका घान कर दिया। तथा पुनः अन्तर्मुहूर्तमें उत्कृष्ट अनुभागवन्य किया। इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागका जयन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त होता है। और यदि वह एकेन्द्रिय पर्यायमें उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अनन्त कालतक एकेन्द्रिय ही रहा आव और उसके बाद संज्ञी पश्चिन्द्रिय होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य करके उत्कृष्ट अनुभागवाला हो जाय तो उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अनुभागका जयन्य और उत्कृष्ट अनुभागका जयन्य और उत्कृष्ट अनुभागका जयन्य और उत्कृष्ट अनुभागका जयन्य और उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल वक नही उपलब्ध होता।

§ ६१. आदेशकी अपचा नारिकयोमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघके समान है । इसी प्रकार सब नार्राकयोमें अन्तर काल होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है । पंचेन्द्रियितर्यच्च पंचेन्द्रियितर्यच्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियितर्यच्च प्रमाण होता है । पंचेन्द्रियितर्यच्च प्रमाण होता है । अनुत्कृष्ट अनुभागका अधन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अनुभागका अधन्तर आघकी तरह है । सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यित्योमें पञ्चेन्द्रियितर्यच्चित्रकके समान भङ्ग है । पंचेन्द्रिय तिर्यच्च अपर्याप्तकोमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तको और आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके द्वोमें भी समक्त लेना चाहिए । सामान्य व्ययमित्रको और आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके द्वोमें भी समक्त लेना चाहिए । सामान्य व्ययमित्रके अठाहर सागर है । अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर आघके समान है । इसी प्रकार भवनवासी से लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके द्वोमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि प्रत्येकम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति लेनी चाहिये ।

विशोपार्थ-श्रांघसे जो अन्तर काल घटित करके बतलाया है उसी प्रकार सामान्य नारकी, सातों पृथिवियोंके नारकी, पञ्चे न्द्रियतिर्यश्चित्रिक और मनुष्यित्रिकमें घटित कर लेना चाहिए। मात्र उत्कृष्ट अनुभागके उत्कृष्ट अन्तरमें विशेषता है। वात यह है कि इन सब मार्गणात्रोंकी स्थिति भिन्न भिन्न है, इसलिए जहाँ जो स्थिति हो उससे कुछ कम वहाँ उत्कृष्ट

- ई ६२. इंदियाणु० एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्तएसु सव्वविगलिदियपज्जता-पज्जत्तएसु च मोह० उक्कस्साणुक्कस्साणुभागंतरं णित्थ। पंचिदिय-पंचि०पज्जत्तएसु मोह० उक्क० ज० अंतोसु०, उक्क० सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुथत्तेणब्भिहयाणि सागरोवम-सदपुथत्तं । अणुक्क० ओघं । पंचिदियअपज्ज० मोह० उक्कस्साणुक्कस्स० णित्थ अंतरं ।
- § ६३. कायाणु० पंचण्हं कायाणमेइंदियभंगो । तस -- तसपज्जत्तएसु मोह० उक्क० केव० ? जहण्णेण अंतोस्र०, उक्क० वेसागरीवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेण-ब्भिहियाणि वेसागरीवमसहस्साणि। अणुक्क० ओघं। तसअपज्ज० पंचिदियअपज्जत्तभंगो।
- ६४. जोगाणु० पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-त्रोरालि०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-आहार०--आहारमिस्स० उक्क० अणुक्क० णित्थ त्रंतरं । णवरि कायजोगीसु अणुक्क० ओघभंगो ।

श्रतुभागका उत्कृष्ट श्रन्तर कहना चाहिए। पश्चे न्द्रियतिर्यश्वश्रपर्याप्त श्रादि मार्गणाश्चोमें श्रन्य पर्यायसे उत्कृष्ट श्रतुभाग लेकर श्राता है, वहाँ उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिए इनमें उत्कृष्ट श्रीर श्रतुत्कृष्ट श्रतुभागके श्रन्तरका निषेध किया है। देवोमें श्रीर सहस्रार कन्य तकके देवोमें नार्राक्योके समान म्पष्टीकरण है।

§ ६२. इन्द्रियकी अपेता एकेन्द्रिय, उनके सभी वादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त एकेन्द्रियोंमें तथा विकलेन्द्रियोंमें और उनके सभी पर्याप्त और अपर्याप्त जीयोंने मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। पंचेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मोहनीय-कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मृह्ते हैं और उत्कृष्टसे पञ्चेन्द्रियोंमें पूर्वकोटि- पृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागर है और पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकोंमें भी पृथक्त्वसागर है। अनुन्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघके समानहै। पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है।

विश्पार्थ-एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय स्त्रीर उनके भेद-प्रभेदोमें तथा पश्चे न्द्रिय स्त्रपर्याप्तकोमें उसी पर्यायमें उत्कृष्ट स्तृत्य स्त्रपर्याप्तकोमें उसी पर्यायमें उत्कृष्ट स्त्रुत्य स्त्राप्ति सम्भव नहीं है. इसलिए यहाँ भी उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट स्तुभागके सन्तरका निषंध किया है। पश्चे न्द्रियद्विकमे नार्राकयोके समान म्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। मात्र इनकी कार्यास्थिति भिन्न होनेसे इनमें उत्कृष्ट स्तुभागका उत्कृष्ट स्रन्तर कुछ कम स्त्रपनी स्त्रपनी कार्यस्थितिप्रमाण कहना चाहिए। इसी प्रकार स्त्रागे भी मार्गणात्रोमें यथासम्भव स्रन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए। जहाँ विशेषता होगी उसका म्पष्टीकरण करेगे।

§ ६३. कायकी अपेचा पाँचो स्थावरकायोमें एकिन्द्रियक समान मङ्ग होता है। त्रस्त और त्रसपर्याप्तकोमें मोहनीय कर्मक उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है? जघन्य अन्तर अन्तर्मृहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर त्रसोमें पूर्वकादिष्ट्रथवन्त्रसे अधिक दो हजार सागर और त्रसपर्याप्तकोमें केवल दो हजार सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघके समान है। त्रस अपर्याप्तकोमें पञ्चे न्द्रिय अपर्याप्तकोके समान भङ्ग होता है।

§ ६४. योगकी ऋषेचा पाँचों मनोयोगी, पाँचो वचनयोगी, सामान्य काययोगी, ऋौदा-रिककाययोगी, ऋौदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, बैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मण-काययोगी, ऋाहारककाययगी ऋौर आहारकिमश्रकाययोगीमें उत्कृष्ट ऋौर ऋनुकृष्ट ऋनु-भागका ऋन्तर नहीं है। इतनी विशेषता है कि काययोगियोमें ऋनुकृष्ट ऋनुभागका ऋन्तर

- ६ ६५. वेदाणु० इत्थिवेदएसु मोह० उक्क० केव०? ज० त्र्यंतोसु०, उक्क० पितदोवमसदपुधत्तं । अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं । पुरिसवेद० मोह० उक्क० केव० १ जह० अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसद्पुथनं । अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं । णवुंस० मोह० उक्क० ज॰ त्रंतामु०, उक्क० अणंतकालमसंखेजा पोग्गलपरियद्या । त्रणुक्क० जहण्णुक्क ओयं । अवगद्वेदे व उक्क०-अणुक्क०अणुभागविहत्तियाणं णित्थ स्रंतरं ।
- ६ ६६. कसायाणुवादेण कोध-माण-माया-लोहकसाईस्र मोह० उक्कस्साणुकस्स० णित्थ ऋंतरं । एवमकसाईणं ।
- ः ६७. णाणाणु० मदिअण्णाणि-सुद्त्र्यण्णाणीमु मोह० उक्क० केव० ? ज० श्चंतामु०, उक्क० अणंतकालमसंग्वेज्ञा पोग्गलपरियद्या । अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं । त्र्यायके समान है।

विशेषार्थ-एक योगके रहते हुए दो बार उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभाग सम्भव नहीं है. इसलिए इनमें अन्तरका निषेध किया है। मात्र काययोगमें अनुत्कृष्ट अनुभागकी प्राप्ति दो बार सम्भव होनेसे इसमें अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर आंवके समान वन जाता है।

६६५. वंदकी ऋषेत्रा स्त्रीयंदियांमं मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट ऋनुभागका ऋन्तर कितना है ? जबन्य अन्तर अन्तर्भहर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पृथक्वपत्य है। अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उन्कृष्ट अन्तर स्रोघकं समान है। पुरुषंदियोमें मोहनीयकर्मके उन्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जधन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पृथक्त्व साधर है। अनुस्कृष्ट अनुभागका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर ब्रोघके समान है। नपुंसकवंदियोंमें माहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्महर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो कि असंख्यात पुर्गलपरावर्तनप्रमास है। तथा अनुस्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ऋषिके समान है। अवगतविदियामें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवों-का ऋन्तर नहीं हैं।

विश्लोपार्थ-उपरामश्रेणि पर चढ़ते समय अपगतंवद अवस्थामे प्रथम अनुभागकाण्डकके रहते हुए उन्कृष्ट ऋनुभागविभक्ति होती है। यतः ऋपगतंत्रदी जीवके इस ऋवस्थाकी प्राप्ति दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए अपगतंत्रदी जीवके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके अन्तरका निषेध किया है। शेष कथन सगम है।

- ु६६. कपायकी ऋपंद्या, क्रोध. मान, माया ऋौर लोभ कपायवाले जीवोमें मोहनीय-कर्मक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार कपायरहित जीवोमें भी जानना चाहिये।
- ६ ६७. ज्ञानकी अपेचा मतित्रज्ञानी और श्रुतत्रज्ञानियोमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनु-भागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्महर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। वह त्रमन्तकाल असंख्यात पुर्गलपरावर्तनयमाण् है। अनुन्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट

१. भ्रा॰ प्रतौ -परियद्वा । श्रवगदवेदे इति पाठः ।

विहंगणाणीसु मोह० उक्क० केव० १ ज० श्रंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देस्णाणि । अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं । आभिणि०-सुद०-ओहि०--मणपज्ज० उक्कस्साणुक्कम्स० णित्थ श्रंतरं ।

- ् ६८. संजमाणु० संजद--सामाइय०-छेदो०--परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहा-क्खाद०-संजदासंजद० मोह० उक्कस्साणुकक्स० णित्थ त्रांतरं । असंजद० मोह० उक्क० जह० त्रांतोमुहु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्ञा पोग्गलपरियट्टा । अणुक्क० जहणुक्क० ओघं ।
- ६६. दंसणाणु० चक्खु० मोह० उक्क० ज० श्रंतोष्ठु०, उक्क० वेसागरीवम-सहस्साणि देसूणाणि। अणुक्क० जहणुक्क० ओघं। अचक्खु० मोह० उक्क० ज० श्रंतोष्ठु०, उक्क० त्रणंतकालमसंखेजा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्क० जहण्णुक्क० श्रोघं। ओहिंद्ंसणी० ओहिणाणिभंगो।

अन्तर खोघकी तरह है। विभंगज्ञानियोमें मोहनीयकर्मके उन्ह्रष्ट अनुभागका आतर कितना है १ जघन्य आतर अन्तर्माहर्त और उन्ह्रष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनुन्ह्रष्ट अनुभागका जघन्य और उन्ह्रष्ट अन्तर खोघकी तरह है। आभिनियाधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी आविध्यानी और मनःपर्ययज्ञानियोमें उन्ह्रष्ट और अनुन्ह्रष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जो मिण्यादृष्टि वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके आभिनिवोधिक आदि तीन ज्ञानोमे उत्कृष्ट अनुभाग होता है। तथा जो वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत मन पर्ययज्ञानको प्राप्त करता है उसके मन:पर्ययज्ञानमे उत्कृष्ट अनुभाग होता है, इसलिए इनमें उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागका अन्तर सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

६६८. संयमकी अपेद्या संयतः सामायिकसंयत. छेदोपस्थापनासंयत, परिहारिवशुद्धि-संयत, सृक्ष्मसास्परायसंयत, यथाच्यातसंयत और संयतासंयतोमे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोका अन्तर नहीं है। असंयतोमे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनु-भागका जघन्य अन्तर अन्तर्मृहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो कि असख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनुनकृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर आघकं समान है।

विश्रेपार्थ-संयत आदि जीवांके उन्क्षष्ट अनुभागके स्वामित्वका जो निर्देश किया है उसे देखनेसे विदित होता है कि इनमें भी उन्क्षष्ट और अनुन्कष्ट अनुभागका अन्तर सम्भव नहीं हैं, इसलिए उसका निर्पेथ किया है। मात्र असंयत जीवोंक वह वन जाता है जिसका निर्देश मूलमें किया ही है।

६९ दर्शनकी ऋषेचा चक्षुदर्शनवाले जीवोमे मोहनीयकर्मके उन्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मूहूर्त है और उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागर है। अनुन्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उन्कृष्ट अन्तर छोघके समान है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोमें मोहनीयकर्मके उन्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उन्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो कि असंख्यात पुद्गल परावर्तनप्रमाण है। अनुनकृष्ट अनुभागका जघन्य और उन्कृष्ट अन्तर आघके समान है। अविध्निवालोमें अविध्नानियोंके समान भंग होता है।

- ६ ७०. लेस्साणुवादेण किण्ड-णील-काउ० मोह० उक्क० ज० श्रंतोम्च०, उक्क० तेतीस-सत्तारस-सत्तसागरो० देसूणाणि । अणुक्क० जहण्णुक्क० ओघं । तेउ०-पम्म० मोह० उक्क० ज० श्रंतोम्च०, उक्क० वे-श्रद्वारससागरो० सादिरेयाणि । अणुक्क० जह-ण्णुक्क० ओघं । सुक्क० मोह० उक्कस्साणुक्कस्सा० णित्थ श्रंतरं ।
- ५७१. भवियाणु० भवसि० मोद० उक्क० ज० अंतोग्रहुत्तं, उक्क० अणंतकाल-मसंखेजा पाग्गलपियद्वा । अणुक्क० जहण्णुक्क० त्रोघं । अभवसि०-भवसिद्धियाणमोघं-भंगो ।
- ६ ७२. सम्मत्ताणु० सम्मादिहि-खइय०-वेदय०-खवसम०-सासण०-सम्मामि० मोह० उक्कस्साणुक्कस्स० णत्थि श्रंतरं । मिच्छादिहीसु भवसिद्धियभंगो ।
- ५ ७३. सिण्णियाणु० सण्णीसु मोह० उक्क० ज० श्रंतासु०, उक्क० सागरोवमसद-पुधत्तं । अणुक्क० जहण्णुक्क० श्रोघं । असण्णीसु मोह० उक्कस्साणुक्कस्स० णित्थ श्रंतरं ।
 - ९ ७४. ब्राहाराणु० आहारीसु मोह० उक्क० ज० ब्रांतोसु०, उक्क० ब्रांगुलस्स
- ९ ७०. लेश्याकी अपंत्ता कृष्ण, नील और कापात लंश्यावालां में मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ कम तेतीस सागर, कुछ कम मतरह सागर और कुछ कम सात सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर आघ है समान है। ते जोलेश्या और पढ़ मलेश्यावालां में मोहनीय कर्मक उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और उन्कृष्ट अनुभागका जघन्य अधिक दो सागर और कुछ अधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर आघक्षे समान है। शुक्रलेश्यावालां में मोहनीयकर्मक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है।
- ६ ७१. भव्यत्वकी अपेत्ता भव्योमें मोह्नीय कर्मके उत्वृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर् अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। अभव्योमें भव्योके समान भंग होता है।
- ्र ७२. सम्यक्त्वकी अपेत्ता सम्यग्दृष्टिः त्तायिकसम्यग्दृष्टिः वेदकसम्यग्दृष्टिः, उपशमसम्यग्दृष्टिः सामादनसम्यग्दृष्टि अर्थाः सम्यग्मिथ्यादृष्टियोमें मोह्नीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। मिथ्यादृष्टियोमें भव्योंके समान भंग होता है।
- ्र ७३ संज्ञित्वकी अपेद्धा संज्ञियोमें मोहनीयकर्मके उद्घृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पृथक्त्वसागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर आघके समान है। असंज्ञी जीवोंमें मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है।
 - 🖇 ७४. त्र्याहारकी ऋपेत्ता त्र्याहारकोमें मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट श्रनुभागका जघन्य श्रन्तर

१. च्रा० प्रतो भवसि० भंगो इति पाठः।

श्रन्तरकाल नहीं है।

असंखे०भागो असंखेजासंखेजाओ ओसप्पिण-उस्सप्पिणीओ । अणुक्क० जहण्णुक० ओघं । अणाहारि० मोह० उकस्साणुकस्स० णत्थि श्रंतरं ।

एवमुकस्साणुभागंतराणुगमो समतो ।

९७५. जहएएएए पयदं । दुविहो णिहे सो—ओघे० आदेसं० । ओघेण मोह० [जहण्णा-] जहएएएएणुभागविहत्तियाणं णित्थ श्रंतरं । एवं णिरयओघं पढमपुढवि-सञ्ब-पंचिदियतिरिक्ख-सञ्बमणुस० देवोघं भवण०-वाण० सोहम्मादि जाव० सञ्बद्धसिद्ध ति ।

ऽ ७६. आदेसेण णेरइएसु विदियादि जाव सत्तमि ति माह० जहण्णाणु० ज० अंतोसु०, उक्क० सग-सगुकस्सिट्ट्यी देमूणा। अज० ज० अंतोसु०, उक्क० सग-सगुकस्स- अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवे भाग है, जो असंख्यातासंख्यात अव-सिप्णी और उत्सिप्णीकालके वरावर है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागको लेकर अधिक समान है। अनाहारियोमें माहनीय कर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागको लेकर

विशेषार्थ-ग्रुङ्कलेश्या, सब सम्यक्त्व, ऋसंज्ञी और ऋनाहारक मार्गणाऋोंमें उत्कृष्ट ऋनु- . भागबन्ध नहीं होता, इस्र्वलए इनमें ऋन्तरका निषेध किया है । शेप कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट ऋनुभागका ऋन्तरानुगम समाप्त हुआ।

हु ७५. अब जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघनिर्देश श्रीर श्रादेश-निर्देश। श्रोघकी श्रपंत्ता मोहनीयकर्मके जघन्य श्रीर श्राज्यक्य श्रानुभागिवभित्तवाले जीवोंका श्रन्तर नहीं है। इसी प्रकार सामान्य नारकी, पहली पृथिवीके नारकी, सब पश्चे न्द्रिय तियंश्व, सब मनुष्य. सामान्य देव श्रीर भवनवासी, व्यन्तर तथा सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थासद्धि तकके देवोमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मंहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग चपकश्रीणके दसवें गुण्म्थानके श्रन्तिम समयमें होता है। उससे दूसरं समयमें उस जीवके मोहनीयका सर्वथा श्रभाव हो जाता है. अतः श्रांचसे जघन्य श्रोर श्रज्ञचन्य श्रनुभागका श्रन्तर नहीं कहा है। श्रागे श्रादेशकी श्रपेचासे भी जिन जिन माग्णाश्रोमें उक्त श्रवस्थामें जघन्य श्रनुभाग होता है उनमें श्रन्तरकालका श्रभाव जानना चाहिये। जैसे कि तीन प्रकारके मनुष्यामें। सामान्य नारकी, पहले नरकके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी श्रीर व्यन्तरांमें जो हतसभुष्यिककर्मवाला श्रमंज्ञी पश्चे न्द्रिय जन्म लेता है उसके तव तक जघन्य श्रनुभागकी सत्ता रहती है जब तक वह उसे बढ़ाना नहीं है। इसी प्रकार जो हतसमुष्यिककर्मवाला एकंन्द्रिय जीव पश्चे न्द्रियतिर्यश्च श्रीर मनुष्य श्रपयाप्तमें जन्म लेता है उसके जघन्य श्रनुभाग होता है। इस जघन्य श्रनुभागमें वृद्धि होने पर पुनः इन पर्यायोमें उसी जीवके जघन्य श्रनुभाग नहीं हो सकता श्रतः इनमें दोनों प्रकारके श्रनुभागका श्रन्तर नहीं कहा है। तथा दुबारा उपशमश्रीण पर चढ़कर वहांसे गिरकर पीछे दर्शनमाहनीयका चपण कर के जो मनुष्य सौधर्मादिकमें उपत्र होता है उसके जघन्य श्रनुभाग होता है। वह जघन्य श्रनुभाग यावजीवन रहता है, श्रतः सौधर्मादिकमें भी श्रन्तरकाल नहीं कहा है।

६ ७६. त्रादेशकी त्र्रपेत्ता नारिकयोमें दूसरे नरकसे लेकर सातर्वे नरक तक मोहनीय कर्मके जघन्य त्रानुभागका जघन्य त्रान्तर त्रान्तर्मक्री त्रीर उत्कृष्ट त्रान्तर कुछ कम त्रापनी व्रपनी

हिदी देस्णा । एवं जोदिसिय० । तिरिक्त्वेसु मोह० जहण्णाणु० ज० श्रंतोसु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जहण्णुक० श्रंतोसु० ।

5 ७७. इंदियाणु० एइंदिय०-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियअपज्जत्तएसु मोह० जह-ण्णाणु० जह० अंतोसु०, उक० असंखेजा लोगा। णविर अपज्जत्तएसु अंतोसु०। अज० जहण्णुक० अंतोसु०। सुहुमेइंदियपज्ज०-बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जतापज्जत्त-सन्विवगिलिदिय-पज्जतापज्जत्त-पंचिदियअपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णित्थ अंतरं। पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णित्थ अंतरं।

९७८. कायाणु० पुढवि० आउ०-तंउ० [वाउ०-] वादरै-सुहुम-पज्जतापज्जत-उत्हृष्ट स्थिति प्रमाण है। अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्भृहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। इसी प्रकार ज्योतियी देवोमें जानना चाहिये। तिर्यश्वोमें माहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्भृहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहूर्त है।

विशापार्थ-दूसरे आदि नरकमें जन्म लंकर जो जीव सम्यग्दृष्टि होकर अन-तानुबन्धी चतुष्कका क्षपण कर लंता है उसके जयन्य अनुभाग होता है। अन्तर्मु हूर्तके पश्चात् सम्यक्त्वसे न्युत होकर यदि वह जीव पुनः मिश्यादृष्टि हो जाता है तो अज्ञयन्य अनुभागका जयन्य अन्तर्म ह्वतं होता है। और अन्तर्मु हूर्त तक अज्ञयन्य अनुभागवाला रहकर सम्यन्दृष्टि होकर यदि पुनः अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके जयन्य अनुभागवाला हो जाता है तो जयन्य अनुभागका जयन्य अन्तर्म अन्तर्म हूर्त होता है। इसी प्रकार उत्तृष्ट अन्तर भी घटा लेना चाहिये। तिर्यश्चोमें कोई सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अज्ञयन्य अनुभागका घात करके जयन्य अनुभागवाला हुआ। यतः उसके यह जयन्य अनुभाग अन्तर्मु हूर्तसे अधिक काल तक नहीं रहता, अतः अनुभागका जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्तसे कहा है। और यदि अन्तर्मु हूर्तके बाद उस अज्ञयन्य अनुभागका घात करके पुनः जयन्य अनुभागवाला होजाता है तो जयन्य अनुभागका जयन्य अनुभागका अन्तर अन्तर्मु हुत्ते कहा है। तथा परिणामोके अनुसार असंख्यात लोक कालका अन्तर प्राप्त होनेसे उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। तथा परिणामोके अनुसार असंख्यात लोक कालका अन्तर प्राप्त होनेसे उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है।

६ ७७. इन्द्रियकी खपेत्ता एंजिन्द्रय सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय खप्याप्तकोमें मोह्नीय कर्मके जघन्य अनुभागिवभक्तिवालोका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुर्न हे और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि अपर्याप्तकोमें उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा इन सबके अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालोका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, समस्त विकलेन्द्रिय समस्त विकलेन्द्रिय समस्त विकलेन्द्रिय अपर्याप्तक और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें मोह्नीयकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागिवभक्तिका अन्तर नहीं है। पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मोह्नीयकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागिवभक्तिका अन्तर नहीं है।

§ ७८. कायकी श्रपेत्ता पृथिवीकाय. जलकाय. तेजकाय. वायुकाय तथा इनके बाद्र,

३. ता॰ प्रतौ संखेजा इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ तेउ॰ [वाउ॰] बाद्र॰, म्रा॰ प्रतौ तेउ॰ बाद्र॰ इति पाठः ।

सुहुमवणप्पदिकाइयपज्ञ०-वाद्रवणप्पदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्त-बादरणिगोद-पज्जतापज्ज०-सुहुमणिगोद्पज्जत्तएसु मोह० जहण्णाजहण्ण० णित्थि अंतरं। वणप्पदिकाइय-सुहुमवणप्पदिकाइय०-सुहुमणिगोदेसु मोह० ज० अज० अंतोसु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जहण्णुक्क० अंतोसु०। एवमेदेसिमपज्जत्तएसु वि। णविर जहण्णुक्क० अंतोसु०। तस०-तसपज्जत्तापज्जत्तएसु⁸० मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णित्थ अंतरं।

 ७६. जोगाणु० पंचमण०--पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०--वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-त्राहा०-आहारमिस्स० मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णित्थि त्रांतरं । ओरालियमिस्स० सहुमेइंदियअपज्जत्तभंगो ।

सूक्ष्म. पर्याप्तकः और अपर्याप्तकः सूक्ष्म वनस्पतिकाय पर्याप्तकः, बाद्र वनस्पतिकाय प्रत्येकशरीर तथा इनके पर्याप्तकः और अपर्याप्तकः बाद्र निगाद तथा इनके पर्याप्तक और अपर्याप्तकः बाद्र निगाद तथा इनके पर्याप्तक और अपर्याप्तक और सूक्ष्म निगाद पर्याप्तकोमें मोहनीयकमके जवन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। वनस्पतिकायिकः सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्मिनिगाद्या जीवोमें मोहनीयकमके जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर्र अन्तर्मृहृतं है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहृतं है। इसी प्रकार इनके अपर्याप्तकोमें भी जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषतः है कि इनमें दोनो प्रकारका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहृतं है। त्रसः, त्रसपर्याप्तक और त्रस अपर्याप्तकोमें मोहनीयक्षिके जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ-एकेन्द्रियों में और सूक्ष्म एकेन्द्रियों में तियं श्वो है समान स्पष्टीकरण है। किन्तु सूक्ष्म अपर्याप्तकों में जयन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त ही है, क्योंकि बार बार जन्म लेने पर भी कोई जीव अपर्याप्तकों में अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल तक लगातार जन्म नहीं ले सकता। राप सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्रक आदिमें अन्तर नहीं है, क्योंकि हतसमुत्पत्तिककर्म द्वारा जयन्य अनुभाग करनेश्वाला जीव उनमें जन्म तो ले सकता है किन्तु उन मार्गणाओं में जयन्य अनुभाग करता सम्भव नहीं है। इसी प्रकार पृथिवीकायादिकमें भी अन्तरका अभाव जानना चाहिए। केवल वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोदिया जीवोमें अन्तर होता है जो सूक्ष्म एकेन्द्रियकी तरह समम लेना चाहिए।

९ ७९. योगकी अपेत्ता पांचो मनायोगी, पांचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाय-योगी. वैक्रियिककाययोगी. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी. कार्मणकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोमें मोहनीयकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। औदारिकमिश्रकाययोगियोमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग है।

§ ८०. वेदकी अपेत्ता स्त्रीवेदी. पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमं मोहनीय कर्मके जघन्य
और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार अपगतवेदी चारों कपायवाले,
कपायरहित जीव, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अविध्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक

१. ता॰ प्रतो तस॰ तसपजनाएस इति पाठः ।

पज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-मुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिट्स०-सुकत्ते०--भवसि०--सम्मादिहि--वेद्ग०-खइय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि-आहारि-अणाहारि ति ।

्र ८१. पदि-सुद्अण्णाणीसु मोह० जहण्णाणु० ज० अंतोसु०, उक्क० असं-खेज्जा लोगा । अञ्चल जहण्णुक्क० अंतोसु० । विहंगणाणीसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णित्थ अंतरं । असंजद० मोह० ज० ज० अंतासु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जहण्णुक्क० अंतोसु० । किण्ह-णील-काउ०-तेउ०-पम्म० मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णित्थ अंतरं । अभवसि० मोह० ज० ज० अंतोसु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जहण्णुक्क० अंतोसु० । एवं मिच्छादिहि-असण्णीणं ।

एवं जहण्णाणुभागश्चंतराणुगमा समतो।

संयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहार्यवशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसयत, यथाख्यातसंयत, संयता-संयत, चक्षुदर्शनवाले, श्रचक्षुदर्शनवाले, श्रवधिदर्शनवाले, श्रुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दष्टि, वदकसम्यग्दिष्ट, चायिकसम्यग्दिष्ट, उपशामसम्यग्दिष्ट, सासादनसम्यग्दिष्ट, सम्यग्मिथ्यादिष्ट, संज्ञी, श्राहारी श्रीर श्रनाहारी जीवोंमें जानना चाहिये।

§ ८१. मितिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियों में मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है। अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनुभाग विभक्तिका अन्तर नहीं है असंयतों में मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य अनुभागिवभक्तिका अन्तर नहीं है असंयतों में मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक है। अजघन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनुभागिवभक्तिका जघन्य और अजघन्य अनुभागिवभक्तिका अवन्य अनुभागिवभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अस्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मिण्यादृष्टि और असिव्योंमें भी जानना चाहिये।

विशेषार्थ—यागकी अपेदा मनायाग, वचनयाग, काययाग और औदारिककाययागवालों के दापक दसवे गुण्स्थानके अन्तिम समयमें जवन्य अनुभाग होता है अतः अन्तर नहीं कहा है। वैक्रियिककाययागमं सौधर्मादिककी तरह अन्तर नहीं है। वैक्रियिकमिश्रमं नरकमं जन्म लेने वाले हतसमुत्पतिककर्मा असझी पञ्चेन्द्रियकी अपेदा जघन्य अनुभाग होता है अतः उसमें भी अन्तर नहीं है। आहारक और आहारकिमिश्रमें दुवारा उपशमश्रीण पर चढ़कर, उससे उतर कर दर्शनमोहनीयका चपण करके जो आहारकिमी उत्पादना करता है उसके जघन्य अनुभाग होता है अतः उनमें भी अन्तर की समावना नहीं है। अपने अपने योग्य इसी प्रकारके कारणोसे शेष मार्गणाओमें अन्तरका समावना नहीं है। अपने अपने योग्य इसी प्रकारके कारणोसे शेष मार्गणाओमें अन्तरका अभाव लगा लेना चाहिये। केवल औदारिकिमिश्र, मित्रअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयमी, अभव्य-मिध्यादृष्टि और असंज्ञीमें अन्तरकाल होता है जो एकेन्द्रियकी तरह लगा लेना चाहिये।

इस प्रकार जघन्य श्रातुभागका श्रन्तरानुगम समाप्त हुश्रा।

१. ता० प्रती जहरायाजहरायागुभागर्यतरायुगमी इति पाठः।

- \$ ८२. णाणाजीवेहि भंगविचत्रो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सत्रो चेदि। उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहे सो ओघे० आदेसे०। तत्थ ओघेण मोह० उक्कम्साणुभागविहतीए सिया सन्वे जीवा त्रविहत्तिया १। सिया अविहत्तिया च विहत्तिश्रो च २। सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ३। एवमणुक्कस्सं पि। णविर विहत्तिषुव्वं भाणिद्व्वा। एवं सन्वणेरइय-सन्वितिरक्ख-मणुसतिय-देव०-भवणादि जाव सहस्सार ति। मणुस-अपज्ज० उक्कस्साणुक्कस्साणुभागविहत्तियाणमह भंगा। आणदादि जाव सन्वहिसिद्धि ति उक्कस्साणुक्कस्स० णियमा अत्थि।
- ६ द्व. इंदियाणु० एइंदिय-वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-सन्विकालिदिय-सन्व-पंचिदिएसु सिया सन्वे अणुक्कस्सिविहत्तिया १। सिया अणुक्कस्सिविहत्तिया च उक्क-स्सिविहत्तियो च २। सिया अणुक्कस्सिविहत्तिया च उक्कस्सिविहत्तिया च ३। एवं छकाय-पंचमण०-पंचविच०-ओरालिय०-ओरालियिमस्स०-वेउन्विय०-कम्मइय०-तिण्णि-वेद०-चत्तारिकसाय०-तिण्णिअण्णाण०-आभिणि०-सुद०-ओहि०- असंजद०-चक्क्यु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-सम्मादिहि-वेद्ग०-मिच्छादिहि-सण्णि-असिण्ण-आहारि-अणाहारि हि ।
- १८२. नाना जीवोकी अपंत्ता भगविचय दा प्रकारका है—जधन्य और उक्ष्य । उन्क्षप्रका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—प्रेषिनिर्देश और उप्यद्शिनिर्देश। उनमें से आधकी अपंत्ता कदाचित् सब जीव माहनीयकमका उक्ष्य अनुभागअविभक्तिवाले है १। कदाचित अनेक जीव अविभक्तिवाले और एक जीव विभक्तिवाला होता है २। कदाचित अनेक जीव अविभक्तिवाले होते हैं ३। इसी प्रकार अनुन्द्रष्ट में भी जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि विभक्तिको पहले रखकर कथन करना चाहिये। अर्थात कदाचित सब जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट विभक्तिवाले हैं १। कदाचित अनेक जीव अनुन्दृष्टविभक्तिवाले,और एक जीव अविभक्तिवाला है २। कदाचित् अनेक जीव अनुन्दृष्टविभक्तिवाले,और एक जीव अविभक्तिवाला है २। कदाचित् अनेक जीव अनुन्दृष्टविभक्तिवाले,और एक जीव अविभक्तिवाला है २। कदाचित् अनेक जीव अनुन्दृष्टविभक्तिवाले और सन्विभक्तिवाले हैं ३। इसी प्रकार सब नारकी. सब तिर्वञ्च, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यिनी, देव, और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोमे जानना चाहिये। मनुष्य अपर्याप्तकोमे उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुनागविभक्तिवालों आठ भंग होते हैं। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट विभक्तिवाले जीव नियमसे होते हैं।
- \$ ८३. इन्द्रियकी श्रापत्ता सामान्य एकेन्द्रिय श्रीर उनके वाद्र. सूक्ष्म, पर्याप्त श्रीर श्रापर्याप्त सब भेदोमे तथा सब विकलेन्द्रियों श्रीर सब पश्चे निद्रयों में कदाचित सब जीव श्रमुन्कृष्ट विभक्तिवाले हैं १। कदाचित श्रमेक जीव श्रमुन्कृष्ट विभक्तिवाले श्रीर एक जीव उन्कृष्ट विभक्तिवाले हैं २। कदाचित श्रमेक जीव श्रमुन्कृष्ट विभक्तिवाले श्रीर श्रमेक जीव उन्कृष्ट विभक्तिवाले हैं ३। इसी प्रकार छहों काय. पाँचों मनायागी, पाँचो वचनयोगी. श्रीदारिककाययोगी. श्रीदारिकिमश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी. कार्मणकाययोगी, तीनों वदवाले. चार कपायवाले. मितिश्रज्ञानी, श्रमश्रज्ञानी, विभंगज्ञानी, श्राभिनवाधिकज्ञानी, श्रमज्ञानी, श्रवध्नानी, श्रमंयत, चिद्धदर्शनवाले, श्रवध्रुदर्शनवाले, श्रवध्रुदर्शनवाले, श्रवध्रुदर्शनवाले, श्रवध्रुदर्शनवाले, श्रवध्रुदर्शनवाले, श्रवध्रुदर्शनवाले, श्रमच्य, सम्यग्दिष्ठ, वेदकसम्यग्दिष्ठ, मिध्यादिष्ठ, संज्ञी, श्रसंज्ञी श्राहारी श्रीर श्रमाहारी

्र =४. वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०--अकसा०-सुहुमसांप-राय०--जहाक्वाद्०--उवसम०--सासण०-सम्मामिच्छादिहीर्णः मणुसअपज्ज०भंगो । संजद्-सामइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद्-मणपज्ज०-सुक्त्ते०-खइय०सम्मादिहीण-माणदभगो ।

एवं णाणाजीवेहि उक्कस्मभंगविचयाणुगमो समत्तो ।

जीवामें जानना चाहिए।

६ ८४. वैक्रियिकांभश्रकाययोगी, त्राहारककाययोगी, त्राहारकमिश्रकाययोगी, त्रपगत-वेदी, त्रकपाथी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दष्टि, सासादनसम्यग्दष्टि त्रीर सम्यग्मिथ्यादृष्टियोमं त्रपर्याप्त मनुष्यके समान भंग है। संयत, सामायिकसंयत, छेदो-पम्थापनासंयत, परिहारिवशुद्धिसंयत, संयतासंयत, मनःपर्ययज्ञानी, शुक्रलेश्यावाले त्रीर चायिक-सम्यग्दृष्टियोमं त्रानत कल्पके समान भंग है।

विशेषार्थ-इस अनुयागद्वारमें नाना जीवांकी अपेचा भंगविचयका विचार किया है। त्रोघसे उक्तप्र और अनुकुष्ट अनुभागके तीन तीन भंग ही घटित होते हैं। यत: उक्तप्र अनुभाग-की सत्ताका काल और जीव बहुत कम हैं, इसलिये कदाचिन् ऐसा समय ब्राता है जब उत्कृष्ट ब्रानु-भागकी मत्तावाला कोई जीव न हो श्रीर मव जीव श्रनुकृष्ट श्रनुभागवाले हों। कदाचित श्रनेक जीव उन्क्रष्ट अनुभागसे रहित और एक जीव सहित हो। कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागसे सिंहत और एक जीव उससे रहित हो। कदाचित अनेक जीव उन्कृष्ट अनुभागसे महित और अनेक जीव उससे रहित हो। इस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागक रहने न रहने की अपंचासे ६ भंग होते हैं। आदशसे भी चारों गतियोमें यही ६ भंग बनते है। केवल मनुष्य त्रप्रयाप्तके त्राठ भंग होते हैं जो इस प्रकार हैं – कदाचिन सब जीव उत्कृष्ट त्रनुभागसे रहित होते हैं। कदाचिन मत्र जीव उन्कृष्ट अनुभागसे सहित होते हैं। कदाचिन एक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित होता है। कदाचित एक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे सहित होता है। कदाचित अनेक जीव उत्क्रष्ट अनुभागसे महित और अनेक जीव उससे रहित होते हैं। कदाचित् अनेक जीव उन्कृष्ट अनुभागसे सहित और एक जीव उससे रहित होता है। कदाचिन एक जीव उन्कृष्ट अनुभागसे सिंहत और एक जीव उससे रहित होता है। कदाचित अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित और एक जीव उससे सहित होता है। इसी प्रकार अनुकृष्ट अनुभागके भी आठ भंग होते है। मन्द्य अपर्याप्तमें ये आठ भंग होनेका कारण यह है कि यह सान्तर मार्गणा है। इसमें कदा-चित एक भी जीव नहीं पाया जाता और कदाचित एक या अनेक जीव पाये जाते हैं, अत: उक्त थाठ श्राठ भंग बन जाते हैं। अन्य भी वैक्रियिकमिश्र श्रादि सान्तर मार्गणाश्रोंम^{ें} इसी प्रकार श्राठ श्राठ भंग होते है। श्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक तथा संयत श्रादिमें उत्कृष्ट श्रीर श्रनुकृष्ट श्रनुभागवाले जीव सदा पाये जाते हैं। कारण कि इनमें यदि श्रनुकृष्ट श्रनु-भागवाले जन्म लेते है तो उनके तो नियमसे अनुत्कृष्ट अनुभाग ही बना रहता है और यदि उत्कृष्ट श्रनुभागवाले जन्म लेते है तो उनके जब तक क्रियान्तरके द्वारा उसका घात नहीं होता तब तक वही बना रहना है। संयत, सामायिक संयत आदिके आनतादिकके समान ही जानना चाहिए। तथा शेपमें श्रांघके समान घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार नाना जीवोकी ऋपेत्ता उत्कृष्टभंगविचयानुगम समाप्त हुआ।

१८५. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जहएणाणुभागस्स सिया सन्वे जीवा अविहत्तिया १ । सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च २ । सिया० अविहत्तिया च विहत्तिया च ३ । अजहएणस्स सिया सन्वे जीवा विहत्तिया १ । सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च २ । सिया विहत्तिया च ऋविहत्तिया च १ । एवं णिरयओघं पढमपुढवि--सन्वपंचिदयितिरिक्ख--मणुसतिय-देवोघं भवण०-वाण०- सन्वविगलिदिय-सन्वपंचिदिय-वादरपुढवि०पज्ज०-बादरआउ०-पज्ज०--बादरतेउ०पज्ज०--बादरवाउ०पज्ज०--बाद्रवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्ज०-तस-तसपज्जत्तापज्जत-पंचमण०-पंचवचि०--काययोगि०ओरालि०--तिरिणावेद०-चत्तारिक०-आभिण०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-संजद०-सामाइय-छेदो०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहि-दंस०-सुक्ले०-भवसि०-सम्मादिद्व-खइयसम्मादिद्व-वेदगसम्मा०-सिर्णा-आहारि ति । ६६. विदियादि जाव सत्तिमि ति जहएणाजहरूणं णियमा अत्य । एवं तिरिक्ख-जोदिसियादि जाव सन्वहिसिद्ध-एइदिय-चादरेइंदिय-चादरेइंदिय-वादरेइंदियअपज्ज०-

सृहमेइंदिय--पज्जतापज्जत-पुढिवि०--वादरपुढिवि०--वादरपुढिवि०अपज्ज०--सुहुमपुढिवि०-

६८५. श्रव जवन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है - श्रोचनिर्देश श्रीर श्रादेश-निर्देश । उनमेंसे त्रोपकी त्र्रापत्ता कदाचित् सब जीव माहनीयकर्मकी जघन्य त्र्रानुभागत्र्यविभक्ति वाल हैं १। कदाचित अनेक जीव मोह्नीयकर्मकी जघाय अनुमागविभक्ति रहित है और एक जीव मोहनीयकी जवन्य अनुभागविभक्तित्राला है २। कदाचित अनेक जीव मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिसे रहित है और अनेक जीव अधन्य अनुभागविभक्तिवाल है ३। कदाचित सब जीव मोहनीयकर्मकी अजयन्य अनुभागविभक्तिवाले है १। कदाचित अनुक जीव मोहनीयकर्मकी अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले है और एक जीव अजघन्य अनुभाग विभक्तिसे रहित है २। कदाचिन अनेक जीव मोहनीय कर्मकी अजघन्य अनुसागविभक्तिवाले है और अनेक जीव अजघन्य अनुभागविभक्तिंस रहित है ३। इसी प्रकार सामान्य नारकी. पहली प्रथिवीके नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक. मनुष्यनी. सामान्य देव. भवनवासी. व्यन्तर. सब विकलेन्द्रिय, सब पर्चान्द्रिय. बादर पृथिबीपर्याप्तक. बादर ऋकायपर्याप्तक, बाद्र ते जकायपर्याप्तक,बाद्र वायुकायपर्याप्तक, बाद्र वनम्पतिप्रत्येकरारीरपर्याप्तक. त्रस. त्रसपर्याप्तक, त्रसत्त्रपर्याप्तक, पांचो मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिक-काययोगी, पुरुषवदी, स्त्रीवदी, नपुंसकवदी, क्रोबी, मानी, मायाबी, लोभी, आभिनिबोधिक-ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपम्थापनासंयत. चक्षदर्शनवाले, ऋचक्षदर्शनवाले. अवधिदर्शनवाले, शुक्रलेश्वावाले, भव्य, सम्यग्द्रष्ट्रि, क्षायिक सम्यन्द्रष्टि, वंदकसम्यकदृष्टि, संज्ञी श्रीर श्राहारी जीवोमें जानना चाहिये।

 सुहुमपुढवि ० पज्जत्तापज्जत-आउ०-बादरश्राउ०-बाद्रशाउअपज्ज०--सुहुम्याउ०--सुहुम-आउपज्जत्तापज्जत्त --तेउ०--बाद्रतेउ०--बाद्रतेउश्रपज्ज०--सुहुमतेउ०--सुहुमतेउ०पज्जता-पज्जत्त ०--वाउ०-बाद्रवाउ०--बाद्रवाउ०अपज्जत्त--सुहुमवाउ०--सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-सन्ववणप्पद्-सन्वणिगोद्--ओरालियमिस्स०--वेउन्विय०--कम्मइय०--मद्अण्णाणि-सुद्अण्णाणि-विहंग०-परिहार०-संजदासंजद०-असंजद०-किएह-णील-काउ--तेउ-पम्म०-अभवसि०-मिन्द्यादिष्टि-श्रसण्णि-श्रणाहारिति।

६ ८७. मणुसञ्चपज्ज० जहण्णाजहण्ण० श्रद्ध भंग। । एवं वेउन्वियमिस्स०-आहार०-ञ्चाहारमिस्स०-अवगद०--श्रकसाय०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-उवसम०-मासण-सम्मामिन्छादिष्टि ति ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमा समतो ।

्रद्र. भागाभागाणुगमा दुविहो — जहण्णश्रो उक्कम्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहेसो — ओघे० श्रादेसे० । श्रोघे० मोह० उक्कस्साणुभागविहत्तिया सञ्जजीवाणं केविडओ भागो ? अणंतिमभागो । श्रणुक्कस्स०विहत्तिया सञ्जजीणं केविडओ भागो ? अणंता भागा । एवं तिरिक्खोघं सञ्जण्हेदिय - सञ्जवणप्पदिकाइय-

अष्कायिक, बाद्र, अष्कायिक, अपर्याप्तक सूक्ष्म अष्कायिक, सूक्ष्म अष्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म अष्कायिक अपर्याप्तक, तेजकायिक, बाद्र तैजन्कायिक, बाद्र तैजन्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म तैजन्कायिक, सूक्ष्म तैजन्कायिक सूक्ष्म तेजन्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म तेजन्कायिक अपर्याप्तक, बाद्र वायुकायिक बाद्र वायुकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, स्व वनम्पति, सव निगोद्या, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियककाययोगी, कार्मण्काययोगी, मित्यज्ञानी, श्रुतअञ्चानी, विभंगञ्चानी, परिहारिवशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कपातलेश्यावाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, अभव्य, मिण्यादृष्टि, असंजी और अनाहारी जीवोमें जानना चाहिए।

६८७. मनुष्य अपर्याप्रकोमें मोहनीयकर्मकी जघन्य श्रीर श्राजघन्य विभक्तिके श्राठ श्राठ भंग होते हैं। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययागी, श्राहारककाययागी, श्राहारकमिश्रकाययोगी, श्राप्तान बेही, श्रकपायी, सूक्ष्ममास्परायसंयत, यथान्यातसंयत, उपशमसस्यम्हष्टि, सासादन-सस्यम्हिष्ट श्रीर सस्यिभिध्याहिष्टमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ-उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिकी अपेदा ओव और आदेशसे जिस प्रकार स्पष्टीकरण किया है उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। मात्र जिन मार्गणाओंमें विशेषता है उनमें जवन्य स्थामित्वको ध्यानमें रख कर वह घटित कर लेनी चाहिए।

इस प्रकार नाना जीवोंकी ऋपेत्ता भंगविचयानुगम समाप्त हुआ।

§ ८८. भागाभागानुगम दो प्रकारका है-जघन्य श्रीर उत्कृष्ट । उनमेसे उत्कृष्टका प्रकरण् है । उसकी श्रपेचा निर्देश दो प्रकार का है —श्राधिनर्देश श्रीर श्रादेशनिर्देश । श्रोधिकी श्रपेचा मोहनीयकर्मकी उन्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? श्रनन्तवें भाग हैं । श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? श्रनन्त बहुभागप्रमाण् हैं । श्रर्थान् सब जीवोंमें श्रनन्तका भाग देने पर एक भागप्रमाण् उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिवाले हैं

सव्वणिगोद--कायजोगि--ओरालि०--ओरालिमिस्स०--कम्मइय०--णवुंस०--चत्तारिक०-दोअण्णाण०-स्रसंजद०--स्रचक्खु०-किण्ह--णील-काउ०--भवसि०--स्रभवसि०--मिच्छा-दिद्वि०-असिएएण०-अहारि-स्रणाहारि ति ।

्रद्धः आदेसेण णेरइ एसु मोह० उक्कस्साणुभाग० सन्वजीवाणं केव० ? असंखे०-भागो । अणुक्क०विहत्ति० सन्वजी० केव० ? असंखे० भागा । एवं सन्वणेरइय-सन्वणंचिदि०तिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ञ०-देव०-भवणादि जाव अवराइद० सन्विवय-छिदिय—सन्वणंचिदिय-सन्वचत्तारिकाय—बाद्रवणप्पदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जतापज्जत-सन्वतसकाइय-पंचमण०-पंचवचि०-वेउन्विव०-वेउन्वियिसस०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिण०-मुद्०-ऑहि०-मंजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तेउ-पम्प-सुक्क०-सम्मादि०-वेटग०-खइय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सिएए। ति ।

६०, मणुसपज्ज०-मणुसिणी० उक्कम्साणुभाग० सव्वजी० केव० ? संखे०भागो। अणुक्क० संखेजा भागा। एवं सव्वद्व०-आहार०-आहारिमम्स०-अवगद०-अकसा०-

श्रौर शेष वहु भागप्रमाण श्रनुन्कष्ट श्रनुभागविभक्तिवाले हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्व. सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोदिया, सामान्य काययोगी, श्रौदारिककाययोगी, श्रौदारिककाययोगी, श्रौदारिकिमश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवदी, क्रोधी, मानी, मायाबी, लोभी, मितश्रज्ञानी श्रुनश्रज्ञानी, श्रसंयत, श्रनक्षुदर्शनवाले, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कापातलेश्यावाले, भव्य, श्रभव्य, मिथ्यादृष्टि, श्रसंज्ञी, श्राह्मरी श्रौर श्रनाहारी जीवोमे जानना चाहिये।

विशेषार्थ-श्रोधसे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असंख्यान श्रीर अनुन्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिवाले अनन्त होते हैं। इसीसे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले अनन्तवेभाग श्रीर अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले अनन्त बहुभाग कहे हैं। यहाँ मृलमे अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई है उनमें यह व्यवस्था वन जानेसे उनकी प्ररूपणा श्रोधके समान जाननेकी सूचना की है।

§ ८९. आदेशकी अपेत्ता नारिकयोम मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोके िकतने भाग हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोके िकतने भाग हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण है । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चे न्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त सामान्य देव. भवनवासीसे लेकर अपराजित अनुत्तर तकके देव. सब विकलेन्द्रिय. सब पञ्चे न्द्रिय सब प्रथिवीकायिक. सब जलकायिक, सब तैजनकायिक. सब वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर तथा उनके पर्याप्त अपर्याप्त, सब त्रसकायिक, पाँचों मनोयोगी. पाँचों बचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकसिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, विभंगझानी. आभिनिवोधिकझानी. श्रुतझानी. अबिधझानी, संयतासंयत. चक्षुदर्शनवाले. अबिधदर्शनवाले, नेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दिष्ट, वेदकसम्यग्दिष्ट, न्यायिकसम्यग्दिष्ट, उपशाससम्यग्दिष्ट. सामादनसम्यग्दिष्ट, सम्य-िमध्यादिष्ट और संज्ञी जीवोमे जानना चाहिए।

\$ ९०. मनुष्यपर्याप्त ऋौर मनुष्यिनियोमे उन्छष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सव जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव. आहारककाययोगी आहारकिमिश्रकाययोगी,

मणपज्ज०-संजद्०-सामाइय-छेटो ०-परिहार०-मृहुमसांपराय०-जहाक्खाद्०संजदे ति ।

§ ६१. जहएएएए पयदं । दुविहो णिद्दे सो—ओघे० आदेसे० । आघे० मोह० जहएएएए० सन्वजीवाणं केविडओ भागो १ अर्णातमभागो । अर्जा० सन्वजी० केव० १ अर्णता भागा । एवं कायजोगि० ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिकसाय०-अचक्खु०-भविस०-आहारि ति ।

६ ६२. ब्रादेसेण णेरइएसु मोह० जहएएगाणु० सव्वजीव० केव० १ असंखे०-भागो । अज० असंखेजा भागा । एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसअपज्ज०-देव०-भवणादि जाव ब्रवराइद० सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिदिय-सव्व-ब्रक्काय-पंचमण०-पंचविच०-आरालि०भिम्स०-वेजिव्वय०—वेजव्वि०भिस्स०-कम्मइय०-इत्थि०-पुरिस०-मदि०-सुद०-विहंग०-ब्राभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-असंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०--ब्रलेम्सा०--ब्रभविस०-इसम्मत्त०-सिएएग०-असिएएग०-अणाहारि

श्रपगतवेदी, कपायरहित, मनःपर्ययज्ञानी, संयत. सामायिकसंयत. छेदोपस्थापनासंयत. परिहार-विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाय्यातमंयतोमे जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नारकी त्रादि मार्गणात्रोमे उत्कृष्ट त्रौर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले यद्यपि असंख्यात हैं किर भी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असंख्यावे भाग ही हैं। इसीसे इनमे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असंख्यावे आग्रमाण् और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असंख्यात वहुभागप्रमाण् कहे है। मनुष्यपर्याप्त आदिमे दोनो विभक्तिवाले संख्यात हैं. इसलिए इनमे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले संख्यात हैं. इसलिए इनमे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले संख्यात वहुभागप्रमाण् कहे हैं।

§ ९१. श्रब जघन्यका प्रकरिंग् हैं। निर्देश दो प्रकारका है-श्रोधनिर्देश और आदेशनिर्देश। श्रोधकी श्रपेक्षा मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागविभक्तियाले सव जीवोके कितने भाग हैं ? अनन्तवेभाग हैं। अनयन्य अनुभागविभक्तियाले सव जीवोके कितने भाग है ?अनन्तहुभाग ब हैं। इसी प्रकार काययोगी, श्रौदारिककाययोगी नपुसकवेदी, कोधी, मानी, मायावी, लोभी, अचक्षदर्शनवाले, भव्य श्रौर आहारकोमे जानना चाहिए।

विशेषार्थ-त्रोघसे और उक्त मार्गणात्रोमे जघन्य अनुभागविभक्तिवाले संस्थात है और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले अनन्त हैं अतः उक्त प्रकारसे भागाभाग वन जाता है। आगे भी इसी प्रकार संस्था जान कर भागाभाग घटित कर लेना चाहिए।

ह ९२. त्रादेशकी त्रपेत्ता नारिकयोमें मोहनीयकर्नके जघाय त्रानुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोके कितने भाग है ? त्रासंख्यातवें भाग है त्रीर त्राज्ञचन्य त्रानुभागविभक्तिवाले सब जीवोके त्रासंख्यात बहुभागप्रमाण है । इसी प्रकार सब नारकी. सब तिर्यञ्च मनुष्य मनुष्य त्राप्याप्तासामान्य देव. भवनवामीसे लेकर त्रापराजित विभान तकके देव. सब एकेन्द्रिय. सब विकलेन्द्रिय, सब प्रवित्रिय. सब प्रथिवीकायिक. सब त्राप्याप्तास्त्र सब तेजस्कायिक. सब वायुकायिक. सब वनस्पतिकायिक. सब त्रासकायिक, पांचो मनोयोगी. पांचो वचनयोगी. त्रीदारिकमिश्रकाययोगी. वैक्रियिककाययोगी. वैक्रियिककाययोगी. वैक्रियिककाययोगी. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी. कार्भणकाययोगी. स्वीवदी. पुरुपवदी, मित्त्रज्ञानी. श्रुतत्रज्ञानी. त्र्यावाले, त्रास्वानी, त्राविद्यानी, संयनासंयत, त्रासंयत, चित्रुद्धानी, श्रुतत्रज्ञानी, श्रुविद्यानी, संयनासंयत, त्रासंयत, चित्रुद्धानी, त्राविद्यानी, त्रिव्यानी, त्राविद्यानी, त्

त्ति । मणुसपज्जत्तादिसंखेज्जरासीसु जहरण्गाणु० सव्वजी० केव० ? संखे०भागो । अज० संखेज्जा भागा ।

एवं जहएए।ओ भागाभागाणुगमो समतो।

- ६३. परिमाणाणुगमो दुविहो जहएए।ओ उकस्सओ चेदि । उकस्सए पयदं । दुविहो णिहे सो ओये० आदेसे०। ओयेण उकस्साणुभागविहित्तिया केव- डिया ? असंखेजा । अणुक्क० द्व्वपमाणेण के० ? अणंता । एवं तिरिक्खोधं सब्बे-इंदिंय-सब्बवणप्पदिकाइय०-सब्वणिगोद०-कायजोगि०--ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय-दोणिए।अएणाणि--असंजद०-अचक्खु०--किएह-णील-काउ०-भवस०-अभवस०-मिच्छादिहि०-असिएए।-आहारि-अणाहारि ति ।
- ६४. आदेसेण णेग्इएस उक्कम्स-अणुक्कम्साणुभागविहत्तिया जीवा द्व्वपमा-णेण कं० ? असंखेजा । एवं सव्वणेर्द्य-सव्वपंचिद्यितिर्वख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद० सव्विवगितिदिय-सव्वपंचिदिय-सव्वचत्तारिकाय-बादर-वणप्पदिकाइयपत्तेयसगैर-पज्जतापज्जत-सव्वतसकाइय-पंचमण०-पंचविच०-वंजिवय०-वंजिवयमिम्स०-इन्थि०-पुरिस०-विहंग०--आभिण०-सुद०--ओह०--संजदासंजद०-और ज्ञाहारक जीबोम जानना चाहिए। मनुष्यपर्याप्त आदि संख्यात राशियोंम ज्ञचन्य अनुभागविभक्तिवाले सव जीवोके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग हैं और अज्ञचन्य अनुभाग-विभक्तिवाले सख्यात बहुभाग प्रमाण है।

इस प्रकार जघन्य भागाभागानुगम समाप्र हुआ।

- ९३. परिमाणानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । प्रकृतमे उत्कृष्टसे प्रयोजन हैं । निहेंश दो प्रकारका है श्रोधनिर्देश और श्रादेशनिर्देश । श्रोधकी श्रपंत्ता उन्कृष्ट श्रनुभागिविमक्तिवाले जीव कितने हैं ? श्रमंख्यात है । श्रमुक्ष्रष्ट श्रनुभागिवमिक्तवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? श्रमन्त है । इसी प्रकार सामान्य निर्यश्च तथा सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोदिया, काययोगी, श्रौदारिककाययोगी, श्रौदारिकिमश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकादी, क्रोधी, मानी, मायाबी, लोभी, मित्रश्चानी, श्रुतश्चन्नानी, श्रसंयत, श्रचश्चर्रानवाल, कृष्णलेखायाले, नीललेश्यावाले, कार्यानलेश्यावाले, मव्य, श्रमव्य, मिण्यादृष्टि, श्रसंही, श्राहारक श्रोग श्रनाहारकोमे जानना चाहिए।
- ू ९४. आदेशकी अपेचा नार्राकयों में उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाण्से कितने हैं ? असंख्यात है। इसी प्रकार सब नारकी सब पश्चे न्द्रियतिर्यश्च मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त सामान्य देव भवनवासीसे लेकर अपराजित विमान तकके देव सब विकलेन्द्रय सब पश्चे न्द्रिय सब पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक, सब तैजनकायिक, सब वायुकायिक, बाद्र वनस्पतिकायिक प्रत्येकरारीर तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त सब त्रसकायिक, पांचों मनायोगी, पांचो वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी. स्वीवदी, पुरुपवदी, विभंगज्ञानी, आभिनिवायिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अविद्यानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अविध-

चक्तु ०-ओहिदंस ०--तेज-पम्म-सुक्क ०--सम्मादिहि--वेद्य ०--खइ्य ०-ज्वसम ०--सासण ०-सम्मामि०--सण्णि ति । मणुसपज्ज०--मणुसिणी० उनस्माणुकस्साणुभाग० केव० ? संखेजा । एवं सव्वद्व०-आहार०-आहार्गमस्स०-अवगद्०-अकसा०--मणपज्ज०--संजद-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-मुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०संजदे ति ।

एवम्रकस्साणुभागपरिमाणाणुगमा समतो ।

§ ६५. जहण्णए पयदं । द्विहो णिहे सां—ओघे० आदेसे०। तत्थ ओघेण मोह० जहण्णाणुभागविहत्तिया केतिया ? संखेज्ञा । [अजहएए।०] द्व्वपमाणेण केव० १ त्र्रणंता । एवं कायजोगि०-ओरालिय०-णवुंस०--चत्तारिकसाय०-अचक्लु०-भवसि०-आहारि त्ति।

दर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्रलेश्यावाले. सम्यग्दष्टि, वद्गसम्यग्यद्दष्टि, चायिक-सम्यन्दृष्टि, उपशामसम्यन्दृष्टि, सासादनसम्यन्दृष्टि, सम्यग्मिश्यादृष्टि श्रीर संज्ञी जीवाम जानना चाहिए। मनुष्य पर्याप्त श्रौर मनुष्यिनियामे उत्कृष्ट श्रौर श्रमुख्य श्रनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थीमिद्धिके देव. त्र्याहारककाययागी, त्र्याहारकिमिश्रकाय-योगी, ऋषगतंबदी, कपायरहित, मन:पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सुक्ष्मसाम्परायसंयत. ऋौर यथान्यातसंयत जीवोमे जानना चाहिए।

विशोपार्थ-पहले अनुयागद्वारमं यह वतलाया है कि आंघ और आदेशसे अमुक त्रातुभागवाले जीव समस्त जीवोके कितने भागप्रमाण है **त्र्योर इस ऋन्यांगद्वारमें उनका परि**-माण बतलाया है। स्रोघसे मोहनीयकर्मके ऋनुभागसे युक्त जीवराशि ऋनन्त है। किन्तु उसम उद्धृष्ट अनुभागवाले जीव केवल असंख्यात ही हैं. क्योंकि एक तो मोहनीयका उद्धृष्ट अनुभाग-बन्ध संज्ञी पश्चे न्द्रिय जीव करते हैं। दूसरे अन्य इन्द्रियवालोंने मोहनीयका उन्कृष्ट अनुभाग उन्हींके पाया जाता है जा संज्ञी पश्चीन्द्रिय इसका घात नहीं करके उनमें उत्पन्न होते है. इसलिए इनका प्रमाण त्र्रसंख्यात कहा है। शेष सब मोहनीयकी सत्तावालोके अनुन्कृष्ट अनुभाग होता है श्रत: उनका प्रमाण श्रनन्त कहा है । सामान्य तिर्यञ्चसे लंकर श्रनाहारक पर्यन्त जिन मार्गणात्रोमं जीवराशिका प्रमाण त्र्यनन्त है उनमे त्र्याघ की तरह ही परिमाण होता है। नरक-गतिसे लेकर संज्ञी पर्यन्त असंख्यात राशिवाली मार्गणाओं में उन्कृष्ट और अनुकृष्ट दोनो ही विभक्तिवाले जीव ऋसंख्यात होते हैं। तथा मनुष्य पर्याप्तसे लेकर यथाख्यातसंयत पर्यन्त संख्यात राशिवाली मार्गणात्रोमे दोनो विमक्तिवालोका परिमाण संख्यात ही होता है। किन्तु उनमें भी एक भागप्रमाण उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव होने हैं और बहु भागप्रमाण अनुस्कृष्ट अनभागवाले जीव होते है जैसा कि भागाभाग अनुयोगद्वारमे बतलाया है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभाग परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

६९५. प्रकृतमे जघन्यसे प्रयोजन हैं। निर्देश दो प्रकारका है --श्रोघनिर्देश श्रौर श्रादेश-निर्देश। उनमसे श्रोधकी अपेत्रा मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने है ? संख्यात हैं। द्रव्यप्रमाएसे अजघन्य अनुभागविभक्तिवाल जीव कितने हैं ? अनन्त है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी. नपुंसकवदी. क्रोधी. मानी. मायावी. लोभी. अचक्षदर्शन-वाले, भन्य और आहारकोम जानना चाहिए।

§ ६६. आदेसेण णेरइएसु जहण्णाजहण्णाणुभाग० केव० ? असंखेजा। एवं सव्विणिरय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुसग्रपज्ज०-देव० भवणादि जाव अवराइद० सव्विवगिलिदिय--पंचिदियअपज्ज०--सव्वपुढवि०--सव्वआउ०--सव्वतेउ०--सव्ववाउ०-- बाद्रवणप्फिद्काइयपत्तेयसरीरपज्जतापज्जत--तसअपज्ज०--वेउव्विय०--वेउव्वियमिस्स- विद्दंग०-तेउ-पम्मलेस्सिया ति । तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु जहण्णाजहण्णाणुभाग० केव० ? अणंता। एवं सव्वएइदिय-सव्ववणप्फिद्काइय-सव्विणगोद-ओरालियिमस्स०-कम्मइय०-मदिअएणाणि-सुदअएणाणि-श्रसंजद--किएह-णील-काउ०-श्रभव०--मिच्छा-दिहि-असिएण-अणाहारि ति ।

\$ ६७. मणुसगईए मणुस्सेमु जहण्णाणुभाग० केव० ? संखेजा । अज० असंखेजा । एवं पंचिदिय-पंचिदियपज्ज०--तस-तमपज्ज०--पंचमण०--पंचवचि०-इत्थि०-पुत्ति--आभिण०--मुद्द०--ओहि०--संजदासंजद०-चक्षु०--ओहिट्स०-मुक्क०-सम्मादिहि०-खइय०-चेद्ग०-उवसम०-सासण०सम्मापि०-सिएए। नि । मणुम्मपज्ज०-मणु-सिणीमु जहण्णाजहण्णाणु० केव० ? संखेजा । एवं सब्बद्द०-आहाग०-आहागमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-मामाइय-छेद्ग०-परिहाग०--मुहुमसांपराय०-जहा-क्यादसंजदे ति ।

एवं परिमाणायुगमा समत्तो ।

[्]९६. श्रादेशकी श्रपेत्ता नारिकयोमे जघन्य और श्रजघन्य श्रनुभागिवमित्तवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पश्चे न्द्रियतिर्य च. मनुष्य श्रपयाप्त, सामान्य देव भवनवासीसे लेकर अपराजित नामक श्रनुत्तर तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, पश्चे न्द्रिय-श्रपयाप्त, सब पृथिवीकायिक, सब श्रप्कायिक, सब तेजसकायिक, सब वायुकायिक, वादर वनस्पित-कायिक प्रत्येकशरीर तथा उनके पर्याप्त और श्रपयाप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी, तेजोलेश्यावाले और पद्मलेश्यावालोमे जानना चाहिए । तिर्य चगितमे तिर्यश्चोमे जघन्य और श्रजघन्य श्रनुभागविभक्तिवले जीव कितने हें ? श्रनन्त हें । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पितकायिक, सब निगोदिया, श्रीदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मितिश्रज्ञानी, श्रुतश्चिती, श्रमंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कार्पानलेश्यावाले, श्रमव्य, मिश्यादिष्ट, श्रमंज्ञी और श्रनाहारकोमे जानना चाहिए ।

हु ९७. मनुष्यगितमं मनुष्योमं जघन्य अनुभागिवभित्तवालं जीव कितने हैं ? सख्यात है। अजघन्य अनुभागिवभित्तिवालं जीव असंख्यात है। इसी प्रकार पश्चे न्द्रिय पथ्चे द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचो मनोयोगी, पाँचो वचनयोगी, स्त्रीवदी. पुरुपवदी, आभिनिवाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, सयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले. अवधिदर्शनवाले, ग्रुहलेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि,वेदकसम्यग्दृष्टि,उपरामसम्यग्दृष्टि,सासादतसम्यग्दृष्टि,सम्यग्मिण्यादृष्टि और संज्ञी जीवोमं जानना चाहिए। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनयोमं जघन्य और अजघन्य अनुभागिवभित्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात है। इसी प्रकार सर्वाथिसिद्धिः आहारककाययोगीः आहारकिमिश्रकाययोगीः अवगतवेदी, अकपायीः मनःपर्ययज्ञानीः संयतः सामायिकसंयतः हेदोपस्थापनासंयतः, परि-

\$ ६८. खेताणुगमो दुविहां — जहरणाओं उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहे सो — ओघे० आदेंमे०। ओघेण मोह० उक्कस्साणुभागविहितया केविड खेते ? लोगस्स असंखे०भागे । अणुक्क० सव्यलोगे०। एवं तिरिक्खोघं एइंद्विय-बादरेइंदिय-बादरेइंदिय-बादरेइंदिय-बादरेइंदिय-बादरेइंदिय-बादरेइंदिय-बादरेइंदिय-बादरेइंदिय-बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहवि०वादरपुटवि०-वादरपुटविअपज्ज०-सुहुमपुटिव०-सुहुमपुटिव०-सुहुमपुटिवपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरेआउ०-चादरेअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-वादरेवाउअपज्ज०-सुहुमताउ०-सहिस्या-सहिस्या-सहुम-हारिव्युद्धिसंयतः सुक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाक्यातसंयतेमे जानना चाहिए।

विशेषार्थ-त्रांघसे चपकश्रीणके दसवे गुग्गस्थानके अन्तिम समयमें मोहका जधन्य श्रनुभाग रहता है श्रीर ऐसे जीवोकी संख्या सख्यात है, श्रत: श्रोधसे जघन्य श्रनुभागवाले जीवोका परिमाण संख्यात कहा है और शेप अनन्त जीव अजघन्य अनभागवाले होते हैं। काययांगी ऋादि जिन मार्गणात्रोमे विविद्यत जीवराशिका प्रभाग अनन्त है और क्षपकश्रेणिके दसवे गुगास्थानके ऋन्तिम समयमें मोहका जघन्य अनुभाग होता है. उनमें जघन्य ऋौर ऋजन घन्य अनुभागवालो का परिमाण् श्रोघके समान ही जानना चाहिये। तिर्यञ्चगति श्रादि जिन मार्गणात्रोमें जीवराशिका प्रमाण त्रानन है और जघन्य त्रानुभाग हनसमुत्पत्तिककर्मा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोके होता है उनमें दोनो ही अनुभागवालोका परिमाण अनन्त कहा है। तथा नरक-गतिसे लेकर पट्रमलेश्यापर्यन्तकी असंख्यात राशिवाली मार्गणाओं होतो अनभागवालोंका परिमाण् असंख्यात कहा है। सामान्य मनुष्य आदि संजी मार्गणा पर्यन्त जिन मार्गणाओंमें जीवराशिका प्रमाण तो असल्यात ही है. किन्तु जवन्य अनुभाग चपकश्रेणिमे या उपशमश्रेणिसे गिरे हुए जीवांके होता है. उनमें जघन्य ऋनभागवालोका परिमाण संख्यात कहा है और ऋजघन्य अनुभागवालोका परिमा**ण असंख्यात कहाँ हैं। तथा मनुष्यपर्या**प्त आदि संख्यात जीवराशिवाली मार्गणात्रोमे दोनो त्रनुभागवालोका परिमाण संख्यात कहा है। विशेष इतना है कि इन सब मार्ग-गात्रोंमे अलग अलग स्वाभित्वका विचार कर यह परिमाण ले आना चाहिए। यहाँ अलग त्रालग स्वामित्वका उल्लंख न कर सूचनामात्र की है।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुन्या।

्९८. हेत्रानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उन्कृष्ट । प्रकृतमे उन्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । श्रोघसे मोहनीयकर्मके उन्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाले जीवोका कितना हेत्र है । लोकके अमंख्यातवे भागप्रमाण हेत्र है । अनुन्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाले जीवोका सब लोक होत्र है । इसी प्रकार सामान्य तिर्य च, एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपयोप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपयोप्त, पृथ्वीकायिक अपयोप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, बादर प्रथिवीकायिक अपयोप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर अपयोप्त, सूक्ष्म प्रथिवीकायिक अपयोप्त, सूक्ष्म अप्कायिक, बादर अप्कायिक, बादर तजनकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, स्वयंत्र, स्वयंत्र, सूक्ष्म वायुकायिक, स्वयंत्र, सूक्ष्म वायुकायिक, स्वयंत्र, स्वयंत्र, सूक्ष्म वायुक्तिक, स्वयंत्र, सूक्ष्म वायुक्तिक, स्वयंत्र, सूक्ष्म वायुक्तिक, सूक्ष्म वायुक

वणप्फदि--सृहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त--बाद्रवणप्फदिपत्तेय--बाद्रवणप्फदिपत्तेयसरीर-अपज्ज०-णिगोद०-वाद्रणिगोद०-बाद्रणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सृहुमणिगोद्द-सृहुमणिगोद-पज्जत्तापज्जत्त-कायजोगि०-ओरालिय०--ओरालियमिस्स०-कम्मइय०--णवुंस०-चत्तारि-कसाय--मदिअरुणाण०--सुद्अएणा०--असंजद-अचक्खु०-किएह-णील-काउ०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादिद्वि०-असिएए।०-आहारि०-अणाहारिति।

 ६६. सेसमग्गणासु उक्कस्साणुक्कम्सअणुभागिवहत्तिया जीवा लोग० असंखे०-भागे । णविर बाट्रवाउपज्जत्तएसु उक्कस्साणुभागिवहत्तिया जीवा लोगम्स असंखे० भागे । अणुक्क०अणुभाग० जीवा लोग० संखे०भागे ।

एवमुकस्साणुभागखेताणुगमो समतो ।

१००. जहएएएए पयदं । दुविहा णिद्देसो—ओघे० आदेसे०। ओघेण मोह० जहएएएएपागुभागविहत्तिया केविड खेते १ लोगस्स असंखं०भागे । अज० सब्ब-

वनस्पतिकायिक, बाद्र वनस्पतिकायिक, बाद्र वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वाद्र वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वाद्र वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वाद्र वनस्पतिप्रत्येकः रारीर, वाद्र वनस्पति प्रत्येकः रारीर अपर्याप्त, निगोद्या, वाद्र निगोद्या अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद्या, सूक्ष्म निगोद्या पर्याप्त, वाद्र निगोद्या अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद्या अपर्याप्त, काययोगी, अदारिककाययागी, अदारिकिमश्रकाययोगी, कार्मण्काययोगी, नपुंसकवेदी, कोधी, भानी, मायावी, लोभी, मित्रअञ्चानी, श्रुतअञ्चानी, अस्यंयत, अपस्थित, कृत्यः निग्यादिष्ट, जिस्स्वी, अपर्याप्त, अपर्याप्त, कार्यापान, वाद्य, वाद्य,

् ९९. शेष मार्गणात्रोमें उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका चेत्र लोक्के असंख्यातवे भाग प्रमाण है। इतनी विशेषना है कि वादर वायुकायिक पर्याप्रकोमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका चेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है और अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्ति-वालोका चेत्र लोकका संख्यातवां भाग है।

विशेषार्थ-वर्तमानमें उन्हार अनुभागवाले जीव लोकके असंस्थानवे भागप्रमाण चेत्रमें ही पायं जाते हैं. क्योंकि सज्ञी पश्चे न्द्रिय पर्याप्त मिण्याद्दार्श जीव ही मोहका उन्हार अनुभागवन्य करते हैं। खीर बात किये बिना उनके अन्य इन्द्रियवालों में उत्पन्न होने पर वहाँ उन्हार अनुभाग देखा जाता है, इसलिये ओघसे इनका चेत्र लोकका असंस्थानवां भाग है और अनुन्हार अनुभागवालोंका चेत्र सर्वलोंक है यह स्थार ही हैं। इसी प्रकार आदेशसे जिन जीवोंका चेत्र सर्व लोक है उनमें आघकी ही तरह चेत्र होता है। शेष मार्गण्याओं में दोनों ही अनुभागवालोंका चेत्र लोकका असंस्थानवाँ भाग है। केवल बादर वायुकायिकपर्याप्रकों में उन्हार अनुभागवालोंका चेत्र लोकका असंस्थानवाँ भाग है। केवल बादर वायुकायिकपर्याप्रकों में उन्हार अनुभागवालोंका चेत्र लोकका असंस्थानवाँ भाग है और अनुन्हार अनुभागवालोंका चेत्र लोकका संस्थानवाँ भाग है क्योंकि ये जीव लोकके संस्थानवे भाग चेत्रमें रहते हैं।

इस प्रकार उन्कृष्टानुभाग चेत्रानुगम समाप्त हुआ।

् १००. त्रव प्रकृतमे जघन्यसे प्रयोजन हैं । निर्देश दो प्रकारका है—स्रोघ स्रौर त्रादेश। स्रोघसे मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना चेत्र हैं ? लोकके स्रमंख्या- लोगे । एवं कायजोगि०--ओरालिय०--णवृंस०--चत्तारिकसाय-अचक्खु०--भविम०-आद्यारि क्ति।

- \$ १०१. आदेसेण णेरइएसु मोह० जहण्णाजहएएए। णुभाग० केव० खेते १ लोग० असंखे०भागे । एवं सव्योगइय-सव्यर्गचिद्यतिरिक्ख-सव्यमणुस-सव्यदेव-सव्य-विगलिद्य--सव्यर्गचिद्य--वादर्पुहविपज्ञ०--वादर् आउपज्ञ०--वादर्तेउपज्ञ०-वादर्--वणप्पद्विपत्तेयसरीरपज्ञ०--सव्यतसकाय०--पंचमण०--पंचविच०--वेउव्यिय०--वेउव्यिय-मिस्स०-ग्राहार०-ग्राहारिमस्स०-इन्थि०-पुरिस०-ग्रवगद०-ग्रकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ग्रोहि०-मणपज्ञ०--संजद--सामाइय-छेदो०-परिहार्०--मुहुमसांपराय-जहाक्खाद०-संजदासंजद-चक्खु०-ओहिदंस०-तेउ०-पम्म०-मुक्क०--सम्मादिहि०-वेद्ग०-खइ्य०-उव-सम०-सामण०-सम्मामि०-सिएए। ति ।
- १०२. तिरिक्खगईए तिरिक्खंसु मोह० जहण्णाजहण्णाणुभागविद्यत्या केविद्य खेते १ सञ्बद्योगे । एवमेइंदिय-वादग्डेदिय-वादग्डेदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमे-इदियपज्जत्तापज्जत्त -पुढवि०-- वादरपुढवि०-- वादरपुढविअपज्ज०--सुहुमपुढवि०--सुहुम-पुढविपज्जत्तापज्जत्त - आउ०--वादग्आउ०- वादर्याउअपज्ज०--सुहुमआउ०--सुहुमआउ-

तवें भागप्रमाण् चेत्र है। अजघन्य अनुभागविभक्तियाले जीवोंका सव लोक चेत्र है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, अचक्षुदर्शनवाले, भट्य और आहारकोमें जानना चाहिए।

- ह १०१. त्रादेशकी ऋषेत्ता नार्यकयोमें मोह्नीयकर्मकी जघन्य और ब्रजघन्य ब्रनुभागविभक्तिवाले जीवोका कितना त्रेत्र है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण त्रेत्र है । इसी प्रकार
 सब नारकी, सब पश्चे न्द्रियतिर्यक्च, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पश्चे न्द्रिय,
 वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर ऋष्कायिक पर्याप्त, वादर तैजम्कायिक पर्याप्त, वादर वनम्पतिकायिक प्रत्येकशागर पर्याप्त, सब बसकायिक, पाँचो मनायोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्षियककाययोगी, वैक्षियकिश्वकाययोगी, व्याहारककाययोगी, ब्राहारकिश्वकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, अपनारदी, ब्रक्ताययोगी, विभंगज्ञानी, ब्रामिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनः
 पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपम्थापनासंयत, परिहारविश्चिद्धिसंयत, सूक्ष्मसम्परायसंयत, यथाप्यातसंयत, स्यतास्यत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तेजालेश्यावाले,
 पद्मलेश्यावाले, शुक्रलेश्यावाले, सम्यग्दष्टि, वेदकसम्यग्दष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दिष्ट, उपशमसम्यग्दिष्ठ,
 सासादनसम्यग्दिष्ट, सम्यगीभथ्यादिष्ट श्रीर संझी जीवोमें जानना चाहिए।
- ६ १०२ तिर्य च्चाितमें तिर्य च्चाेमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभाग-विभक्तिवालं जीवोंका कितना सेत्र है १ सव लांक सेत्र है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय बादर एकेन्द्रिय बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त. सूक्ष्म एकेन्द्रिय सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त. सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त. पृथिवीकायिक बादर पृथिवीकायिक वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त. सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त. सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, अष्कायिक, वादर अष्कायिक, बादर अष्कायिक अपर्याप्त. सूक्ष्म अष्कायिक, सूक्ष्म अष्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अष्का

पज्जत्तापज्जत्त--तेउ०--वादर०--तेउवादरतेउश्चपज्ज०- सुहुमतेउ०--सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-वादरवाउ०--वादरवाउअपज्ज०-मुहुमवाउ-सुहुमवाउपज्जतापज्जत्त--सव्ववणप्पद्दि-सव्विणगोद्-ओगलियिमस्स०-कम्मइय०-मिद्--सुदुअएणाणि०--अमंजद०--किएह-णील-काउ०-अभवसि०-मिच्छादिहि-असिएण०--श्रणाहारि ति । वादरवाउपज्ज० ज० अज० लोगस्स संग्वे०भागो ।

एवं खेताणुगमो समत्तो ।

१०३, पोसणाणुगमो दृविहो—जहरूएाओं उक्कस्सओ चेदि । उक्कसे पयदं । दृविहो णिहे सो—ओघे० आदेसे०। ओघेण मोह० उक्कस्साणुभागविहत्तिएहि केविडयं खत्तं पोसिदं १ लोग० असंखे०भागो अद्वचोदसभागा वा देसणा सव्वलोगो वा । अणुक्क० सब्वलोगो ।

यिक अपर्याप्त. तैजम्कायिक बादर तेजस्कायिक बादर तैजम्कायिक अपर्याप्त. सूक्ष्म तैजस्का-यिक, सूक्ष्म तेजम्कायिक पर्याप्त. सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त. वायुकायिक, बादर बायुकायिक, बादर बायुकायिक अपर्याप्त. सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त. सूक्ष्म बायुकायिक अपर्याप्त. सव वनम्पतिकायिक, सव निगोदिया, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मण्काययोगी, मित-अज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, अमंयत, कृष्णलेश्यावाले नीललेश्यावाले, कार्पातलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारकोमें जानना चाहिए। बादर बायुकायिक पर्याप्त जीवोमें जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोका चेत्र लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण् है।

विशेपार्थ-श्रांघसे जघन्य अनुभागका सत्त्व चपक सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समय में होता है, खतः श्रांघसे जघन्य अनुभागवालोका चेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग और अजघन्य अनुभागवालोका चेत्र सर्वलोक कहा है। जिन मार्गणाओं जीवोका चेत्र सर्वलोक है तथा जघन्य अनुभाग भी श्रोंघकी तरह होता है उनमें श्रोंघकी तरह चेत्र कहा है। जैसे काययागी आदि। श्रांदरासे नरकगितसे लेकर संज्ञी पर्यन्त जिन मार्गणाओं में जीवोंका चेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग है उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोका चेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है। तथा सामान्य तिर्यश्चोमें और एकेन्द्रियसे लेकर अनाहारक पर्यन्त जिन मार्गणाओं में जीवोंका चेत्र सर्व लोक है तथा जघन्य अनुभाग हत्तममुत्पितककर्मा एकेन्द्रिय जीवके पाया जाता है उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागकालोका चेत्र सर्व लोक कहा है। केवल वादर वायुकायिकपर्याप्तक जीवोमें दोनों विभक्तियोका लोकका संख्यातवाँ भाग चेत्र कहा है, क्योंकि इस मार्गणाका चेत्र ही इतना है।

इस प्रकार चेत्रानुगम समाप्त हुआ।

ह १०३ म्पर्शनानुगम दो प्रकारका है— जघन्य और उन्कृष्ट । उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—अंघिनिर्देश और आदेशनिर्देश । आघसे मोहनीयकर्मकी उन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोने कितने चेत्रका म्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यानवें भाग चेत्रका लोकके चौदह भागो में से कुछ कम आठ भाग प्रमाण चेत्रका और सब लोकका म्पर्शन किया है । अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोने सब लोकका म्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ-श्रोघसे उत्कृष्ट अनुभागवालोने मारणान्तिक और उपपादकी अपेत्ता सर्व लोक

- १०४. आदेसेण णेरइएमु उक्कम्साणुक्कम्साणुभाग० केव० ? लोग० असंखे०-भागो छचोइसभागा वा देखणा । पढमपुढिव० खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि ति मोह० उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो एग०--वे--तिरिएए--चत्तारि--पंच-छ-चोइस० देखणा ।
- १०५. तिरिक्खेमु मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । अणुक्क० त्रोघं। सव्वपंचिंद्यितिरिक्ख०-सव्वमणुस्स० उक्कम्साणुक्कस्स० लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा । णविर पंचिंद्यितिरिक्ख-मणुस्सअपज्जत्ताणमुक्क० खेत्तभंगो । देव० उक्कम्साणुक्कस्माणुभाग० केव० १ लोग० त्रसंखे०भागो अट्ट-णव चोदसभागा देसुणा पोसिदा । एवं सव्वदेवाणं । णविर सग-सगपोसणं जाणिय वत्तव्वं ।

चेत्रका स्पर्शन किया है. तथा वंदना. कपाय. विहारवनस्वस्थान श्रीर वैक्रियिकसमुद्घातकी श्रपेचा वर्तमान कालमें लाकके श्रमंच्यातवें भागका स्पर्शन किया है श्रीर श्रतीत कालमें कुछ कम श्राठ वंट चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रनुन्द्रष्ट श्रनुभागवाले चूँ कि सर्व लोकमें पाये जाते हैं. श्रत: उन्होंने सम्भव पदांके द्वारा सर्वलोक चेत्रका स्पर्शन किया है।

१८४. आदंशसे नारिकयोमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग चेत्रका और लोकके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें चेत्रके समान भंग है। दृसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तक मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोने लोकके असंख्यानवे भाग चेत्रका और लोकके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम एक. दो. तीन. चार पॉच और छह भागोंका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ-सामान्यसे नारिकयोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण और अनीत स्पर्शन कुछ कम छह वटं चौद्द राजुप्रमाण है। द्वितीयादि पृथिवियोमे वर्तमान स्पर्शन तो इतना ही है और अनीत स्पर्शन कमसे कुछ कम एक वटं चौद्द राजुप्रमाण आदि है। यतः इन दोनो प्रकारके स्पर्शनके समय मोहनीयकी उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागिवभक्ति सम्भव है, अतः इनका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। पहली पृथिवीमे स्पर्शन चेत्रके समान ही है, अतः इसमे दोनो प्रकारकी विभक्तिवालोका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

§ १०५. तिर्यश्वामें माह्नीयकर्मके उन्कृष्ट अनुमागविभक्तिवाले जीवाने लोकके असंख्यातवें भाग चेत्रका और सब लोक चेत्रका म्पर्शन किया है। अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालें का म्पर्शन खोघके समान है। उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले सब पश्चे न्द्रिय तिर्यश्व और सब मनुष्याने लोकके असंख्यातवें भाग चेत्रका और सब लोकका म्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि उन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले पश्चे न्द्रियतिर्यश्वअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तको का स्पर्शन चेत्रके समान है। उ कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले देवाने कितने चेत्रका म्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग चेत्रका और चौदह भागोमसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण् चेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब देवामें स्परान कह्ना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपने अपने स्पर्शनको जानकर कथन करना चानिये।

विशेपार्थ-तिर्यञ्चोमे मारणान्तिक समुद्घात श्रीर उपपाद पदके समय भी माह्नीयकी

§ १०६ एइंदिएसु मोह० उक्कस्साणु० के० खेत्तं पोसिदं १ लोग० ग्रसंखे०-भागो सन्वलोगो वा । अणुक्कस्साणु० सन्वलोगो । एवं वादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जता-पज्जत्त-सहुमेइंदिय--सहुमेइंदियपज्जतापज्जताणं । सन्वविगलिदिय-पंचिदयअपज्ज०-तसअपज्जताणं च पंचिदियतिरिक्खअपज्जतभंगो । पंचिदिय-पंचि०पज्ज० उक्कस्साणु-क्रम्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं १ लोग० असंखे०भागो अट०चोइस० सन्वलोगो वा । एवं तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सिएए। नि ।

उन्हृष्ट अनुभागविभक्ति सम्भव है, इसलिए इनमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण कहकर भी सब लोक कहा है। इनमें अनुन्दृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन ओघके समान सब लोकप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। सब पश्चे न्द्रिय तिर्यश्च और सब ननुष्योमें दोनों प्रकारका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्शन इमी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र पश्चे न्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें ऐसे जीवोंके ही उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सम्भव है जो अनुभागका घान किये विना इन पर्यायोंमें उत्पन्न हुए है। यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागसे अधिक सम्भव नहीं है. अतः इन दोनों मार्गणश्चोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति लोकके असंख्यातवे भागसे अधिक सम्भव नहीं है। देवोमें और उनके अवान्तर भेदोंमें जो उनका अपना स्पर्शन है वह यहाँ दोनों विभक्तियोंकी अपेचा बन जाता है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है।

§ १०६. एकेन्द्रियोमें मोहनीयकर्मकी उन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है। लोकके असंख्यातवे भाग और सर्व लोकका स्पर्शन किया है। अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोने सब लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकों जानना चाहिये। सब विकलेन्द्रिय, पश्चे न्द्रियस्पर्याप्त और त्रमत्त्रपर्याप्तकोंमें पश्चे न्द्रियत्तिर्यश्चअपर्याप्तकोंके समान भंग है। उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले पश्चे न्द्रियो और पश्चे न्द्रियप्त्रपर्याप्तकोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है श लोकके असख्यातवे भाग, चौदह भागोमेसे कुछ कम आठ भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार त्रस, त्रसप्याप्त, पाँचो मनायांगी, पाँचो वचनयोगी, स्त्रीवदी, पुरुपवदी, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवो में स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेपार्थ-जो मनुष्य या निर्यश्च उत्कृष्ट अनुभागका वन्धकर नथा उसका घात किये विना उक्त एकेन्द्रियोम उत्पन्न होते हैं उन्होंके उत्कृष्ट अनुभाग सम्भव हैं। एसे जीवोका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण होता है. इमलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। किन्तु एसे एकेन्द्रियोका अतीत स्पर्शन सब लोक है, इमलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। इनमें अनुत्रुष्ट अनुभाग के बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है। विकलत्रय और त्रस अपर्धाप्तकों का भन्न पश्चे न्द्रियनियं अअपर्धाप्तकों के समान है यह भी स्पष्ट है। यो तो पश्चे न्द्रिय आरे पश्चे न्द्रिय पर्याप्तकोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है. किन्तु विहारादिकी अपचा इनका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बट चौदह राजुप्रमाण और मारणान्तिक पदकी अपचा सब लोकप्रमाण बन जाता है, इसलिए इनमें मोहनीयके उन्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त तीन प्रकारका कहा है। इसी प्रकार त्रस आदि जो शेष मार्गणाएं मूलमें गिनाई है उनमें भी यह स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। इन पश्चे न्द्रिय आदि मार्गणाश्चोंमें मोहनीयके अनुत्कृष्ट

१०७, कायाणुवादेण पुढिवि उक्कस्साणुभाग के विसं पोसिदं ? लोग असंखे भागो सन्वलोगो वा । अणुक विस्वलोगो । एवं सृहुमपुढिवि-सृहुमपुढिवि-पज्जत्तापज्जत्त-आउ व्याद्य सुहुमआउ व्याद्य प्रजत्तापज्जत्त-नाउ व्याद पुढिवि व्याद पुढिवि विस्वला स्वाद पुढिवि विस्वला साह विस्वला साह विस्वला साह विस्वला पोसिदं शाले विस्वला साह विस्वला पोसिदं । अणुक लोग व्याद स्वला पोसिदं । अणुक लोग व्याद स्वला पोसिदं । अणुक लोग व्याद स्वला पोसिदं । त्राप्त विस्वला मां सम्बलोगो वा । एवं वाद स्वला पोसिदं । वाद स्वला पोसिदं । स्वलोगो वा । एवं वाद स्वला पोसिदं । लोग वाद स्वला साल सम्बलोगो वा । एवं मणुक स्माणुभाग के विस्वला पोसिदं । लोग विस्वला स्वलोगो वा । एवं मणुक स्माणुभाग के विस्वला पोसिदं । वाद स्वले पोसिदं । लोग विस्वलोगो वा । सम्बला पा । स्वल्ला क्रिक्त भणेताणं अहिष्पाएण ते स्हचो हसभागा । वाद स्वाउ - वाद स्वाउ - अपज्ज वाद स्वाउ भगेगो । वाद स्वाउ विस्वला क्रिक्त के विव पो ? लोग विस्वला भागो सम्बला भागो सम्बला साल विस्वला साल विष्णला साल विस्वला साल साल विस्वला साल

§ १०७. कायकी ऋषेत्रा उत्कृष्ट ऋनुभागविभक्तिवाले पृथिवीकायिक जीवोने कितने त्तेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असम्यानवे भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है। ब्रानुक्रप्ट ब्रानुभागविभक्तिवालोने सव लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सक्ष्म प्रथिवीकायिक. सूक्म पृथिवीकायिकपर्याप्त. सुक्म पृथिवीकायिकअपर्याप्त. अष्कायिक. सुक्म अष्कायिक. सूक्ष्म ऋकायिकपर्याप्त, सुन्म ऋष्कायिकअपर्याप्त तेजसकायिक सुन्म नेजसकायिक. सुन्म तेजसकायिक पर्याप्त. सूक्ष्म तजसकायिक अपर्याप्त. वायुकायिक. सूक्ष्म वायुकायिक. सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त श्रीरसुक्म वायुकायिक श्रपयाप्तकोमं जानना चाहिए। मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिवाले बादर पृथिवीकायिक और वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तकोने कितन चेत्रका स्पशन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग चेत्रका और चौदह भागोंमसे कुछ कम तेरह भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोने लोकके असंख्यातवे भाग और सव लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार वादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकोमे जातना चाहिए। उत्कृष्ट ऋनुभागविभक्तिवाले बादर अकायिक और वादर अकायिक पर्याप्तक तथा वादर अकायिक अपर्याप्तकोने कितने ज्ञेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवे भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार त्रजुत्कृष्ट त्र्यनुभागविभक्तिवालोंका भी स्पर्शन कहना चाहिये। वादर तेजसकायिक त्र्योर बादर तैजसकायिक अपर्याप्तकोमें वाद्र पृथिवीकायिकोके समान भंग है। उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति-बाले बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकोने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके श्रसख्यातवें भाग न्नेत्रका स्पर्शन किया है। जो सब पृथिवियोमें उनका श्रस्तित्व मानते है उनके मतसे चौदह भागों मेसे तेरह भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। बाद्र वायुकाय त्र्योर बाद्र वायुकाय अपर्याप्तकों में बाद्र अप्कायके समान संग है । उत्कृष्ट अनुसागविसक्तिवाले वादर वायकायिक पर्याप्तकोने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है। अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालोने लोकके संख्यातवे भाग और सब लोकका काइय-सव्विणिगोदाणमेइंदियभंगा । वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जताणं वादरपुढविकाइयभंगो ।

१०८. जोगाणु०कायजोगि० उक्क० लोग० असंखे०भागो अहचोदस० सन्व-लोगो वा । अणुक्क० सन्वलोगो । एवमोरालियकायजोगि०। णविर ब्रहचोदसभागा णित्थ । ब्रोरालियमिस्स० उक्कस्साणु० के० खे० पो० १ लोग० असंखे०भागो सन्वलोगो वा । ब्राणुक्कस्साणु० सन्वलोगो । एवं कम्मइय०-णवुंस-चत्तारिकसाय--मिद्-सुदअण्णाण०-असंजद०-अचक्खु०-किएह-णील- काउ०-भविस०-अभविस०-मिच्छादिहि--असिएए।०-ब्राहारि-ब्रणाहारि ति । वेउन्विय० उक्कस्साणुक्कस्साणु० के० खे० पो० १ लोग०

स्पर्शन किया है। सब वनस्पतिकायिक और सब निगोदियामें एकेन्द्रियके समान भंग है। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्तोंमें बादर पृथिवीकायिकके समान भंग है।

विश्लोपार्थ-एकेन्द्रियांमें मोहनीयकं उन्छष्ट और अनुन्छष्ट अनुभागकं वन्धकोका जिस प्रकार स्पर्शन घटिन करके वनला आयं है उसी प्रकार पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिकोंमें तथा इन चारोकं सूक्ष्मोंमें और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्तकोंमें घटिन कर लेना चाहिये। उन्छष्ट अनुभागिवभक्तिसे युक्त वादर पृथिवीकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण और अनीन स्पर्शन नीचे कुछ कम छह और उत्तर कुछ कम माल राजु कुण कुछ कम तेरह वटे चौदह राजु सम्भव होनेसे यह उक्तप्रमाण कहा है। इनके अनुन्छष्ट अनुभागिवभक्तिवालों हा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण है. यह स्पष्ट ही है। यहाँ तक जो स्पर्शन चटिन कर लेना चाहिए। मात्र वादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंको स्पर्शन दो प्रकारसे वनलाया है। प्रथम तो उन्धृष्ट अनुभागिवभक्तिकी अपेन्द्रा लोकके असङ्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन वनलाया है। सा यह स्पर्शन वनलाते समय बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंको स्पर्शन दो प्रकारसे वनलाया है। सा यह स्पर्शन वनलाते समय बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवों का स्व पृथिवियोंमें उपलब्ध होते है यह हिष्ट सुख्य नहीं है तथा दूसरी अपेन्द्रासे जो कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है सो एसा कहते समय उन आचार्याका अभिप्राय सुख्य रहा है जो यह मानते हैं कि बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीव सब पृथिवियोंमें उपलब्ध सुगम है।

§ १० द्र. यांगकी अपंत्ता उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवालं काययांगियांने लोकके असस्यानवे भागका, चौदह भागोमेसे कुछ कम आठ भागका और मर्वलोकका स्पर्शन किया है। अनुन्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवालोने सब लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार औदारिककाययांगियोमें जानना चाहिए। किन्तु इननी विशेषना है कि उनमें चौदह भागोमेसे कुछ कम आठ भागप्रमाण स्पर्शन नहीं है। उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवाले औदारिकिमश्रकाययांगियोने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुन्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिवालेने सर्व लोकका स्पर्शन किया है। अनुन्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिवालेने सर्व लोकका स्पर्शन किया है। अनुन्कृष्ट अनुभागिवभिक्तिवालेने सर्व लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधी, मानी, मायावी, लोभी, मिनअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयत, अचश्रुदर्शनवाले, अप्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, अमंज्ञी, आहारक और अनाहारकोमें जानना चाहिए। उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवाले वैक्रियिककाययोगियोने

श्चसंखे०भागो श्रद्ध-तेरहचोदस० देसूणा । वेउव्वियमिम्स० उकस्साणुकस्साणु० के० खे० पो० १ लोग० असंखे०भागो । एवमाहार०-श्चाहारमिम्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०संजदे ति ।

् १०६. विहंगणाणि० उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० के० खे० पो०? लोग० असंखे० भागो अट्टचोदस० सव्वलोगो वा । आभिणि०-सुद्०-ओहि० उक्क० ऋणुक्क० के० खे०

कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवे भागका और चौदह भागोमेसे कुछ कम तरह और कुछ कम आठ भागका स्पर्शन किया है। उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तियाले विक्रियिकमिश्रकाययोगियोने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग चेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार आहारककाययोगी. आहारकिमश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, मन:पर्ययज्ञानी, संयत, सामाध्यकसंयत, छेदोपस्थानासंयत, परिहारिवशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसास्परायसंयत और यथाल्यातसंयतोमें जानना चाहिए।

विशापार्थ-मोहनीयकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोका वर्तमान म्पर्शन लोकके असं-ख्यातवं भागप्रमास है, विहासदिकी अपेना कुछ कम आठ वट चौदह राजु है और एसं जीव एकेन्द्रियोमं उत्पन्न होते है, अतः इस अपेचास सब लोकप्रमाण स्पर्शन सम्भव है, इसलिए यागकी ऋषेचा सामान्य काययागियोमे उत्कृष्ट ऋतुभागविभक्तिवालोका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। इनमें अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है। औदा-रिककाययो(गर्यामे इसी प्रकार स्पर्शन घटिन कर लेना चाहिए। मात्र कुछ कम ,त्र्याठ वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन देवोके विहारवन्त्वस्थान त्र्यादिकी मुख्यतासे कहा है पर देवोके त्र्यौदारिककाय-योग नहीं होता. इसलिए ऋौदारिककाययोगवालोमें इस स्पर्शनका निषेध किया है। उन्क्रष्ट अनुभागविभक्तिवाले औदारिकमिश्रकाययोगियोका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भाग-प्रमाण श्रौर श्रतीत स्पर्णन सर्व लोकप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिये इनमे यह उक्त प्रमाण कहा है। तथा औदारिकमिश्रकाययोगका स्पर्शन सर्वलोक है. इसलिए इनमे अनुस्कृष्ट अनुभागविभक्ति-वालोका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा हैं। कार्मणकाययोगी त्र्याद मृलमे गिनाई गई त्र्याय मार्गणावाले जीवोमे त्र्यौदारिकमिश्रकाययोगी जीवोके समान ही म्पर्शन प्राप्त होता है. इसलिए इनमें ऋौदारिकमिश्रकाययोगी जीवोके समान स्पर्शन कहा है। वैक्रियककाययोगियोका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागप्रमाणा. विहारादिकी अपेत्ता कुछ कम आठ वट चौदह राजु-प्रमाण और मारणान्तिक ममुद्धातकी अपेचा कुछ कम तेरह बंट चौदह राजुप्रमाण है। इनके इन सब स्वर्शनोके समय उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सम्भव है, इसलिए इनमें दोनो विभक्तिवालोका स्परीन उक्त प्रमास कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोका सब प्रकारका म्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण ही है. इमलिए इनमे दोनो विभक्तिवालोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। आगे मूतमे जो ब्याहारककाययोगी ब्रादि मार्गणाएे गिनाई हैं उनका स्पर्शन भी लाकके असंख्यातवे भागप्रमाण है. अत: उनका कथन वैक्रियकमिश्रकाययोगियोंक समान जाननेकी सूचना की है।

११०९ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले विभंगज्ञानियाने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवे भागका और सब लोकका स्पर्शन किया है । उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले आभिनिवोधिकज्ञानी.

पो० ? लो० असंखे०भागो अद्वचोदस० देमुणा । एवमोहिट्ंस० सम्मादिदि० वेदय०-खाय०-जनसम०-सम्मामिच्छादिदि ति ।

११०. संजदासंजद० उक्कस्साणुक्कस्साणु० के० खे० पो० ? लोग०
 असंखे०भागो छचोदस० देमुणा । एवं सुक्कले० । तेउ०-पम्म० सोहम्म-सण्णक्कुमार भंगो । सासण० मोह० उक्कस्साणुकस्साणु० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो
 अद्व बारहचोदसभागा देमुणा ।

एवमुक्स्सओ पोसणाणुगमी समतो।

श्रुतज्ञानी श्रौर श्रवधिज्ञानी जीवोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके श्रसंख्यातवें भागका श्रौर चौदह भागोंमेसे कुछ कम श्राठ भागका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार श्रवधि-दर्शनवाल, सम्यग्दष्टि, वेदकसम्यग्दिष्टि, चायिकसम्यग्दिष्टि, उपशमसम्यग्दिष्टि श्रौर सम्यग्मिश्या-दिष्टियोमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ-विभङ्गज्ञानियोने वर्तमानमे लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका. विहार-वस्वस्थानकी अपेचा कुछ कम आठ बट चौदह राजुका और मारणान्तिक पदकी अपेचा सब लोकका म्पर्शन किया है। इनके इन सब म्पर्शनोकं समय दोनो विभक्तियाँ सम्भव है, इसलिए इनमे दोनो विभक्तिवालोका म्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। आभिनिवोधिकज्ञानी आदि जीवोने वर्तमानमें लोकके असंख्यातवे भागका और विहारादिकी अपेचा कुछ कम आठ बट चौदह राजुका म्पर्शन किया है। इनके इन दोनो प्रकारके म्पर्शनके समय उन्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभाग-विभक्ति सम्भव है, इमलिए इनमे दोनो विभक्तियोका म्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। यद्याप इन मार्गणाओंमें उपपाद पदकी अपेचा कुछ कम छह बट चौदह राजुप्रमाण म्पर्शन भी उपलब्ध होता है, पर इमका अन्तर्भाव कुछ कम आठ बट चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन हो जाता है, इमलिए इसका अलगसे निर्देश नहीं किया है। यहाँ मूलमे अवधिदर्शनवाले आदि जो अस्य माराणाणें कही है उनमे दोनो विभक्तिवालोका स्पर्शन आभिनिवोधिकज्ञानी जीवोके समान प्राप्त होनेसे यह उनके समान कहा है।

६ ११०. उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवाल संयतासंयताने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवे भागका और चौदह भागोम से कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार शुक्रलेश्यावालोम जानना चाहिए। तेजालेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोके सीधर्म और सनत्कुमार कन्पके समान भंग होता है। मोहनीयकी उन्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवाले सामादनसम्यग्द्रष्टियोने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह भागोम से कुछ कम आठ भाग और कुछ कम वारह भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—संयतामंयतोका वर्तमान म्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण और अतीत म्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण है। इनके इन दोनो प्रकारके म्पर्शनके समय दोनो विभक्तियाँ सम्भव है.इमलिए इनमे दोनो विभक्तियाँ सम्भव है.इमलिए इनमे दोनो विभक्तियाँ सम्भव है.इमलिए इनमे दोनो विभक्तियाँ साथमें और ऐशान कन्पवालोके तथा पद्मलेश्या सनकुमार आदि कन्पवालोके होनी है. इसलिए इन दोनो लेश्यावालोमें दोनो विभक्तिवालोका स्पर्शन कमसे सौधर्म और सनकुमारके देवोके समान कहा है। सासादनसम्यग्टियॉन

- १११. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—अोघे० त्रादेसे०। ओघेण मोह०
 जहण्णाणुभाग० केव० खे० पो० ? लोग० त्र्रसंखे०भागो । अज० सव्वलोगो । एवं
 कायजोगि०-ओरालिय०-णवुंस० चत्तारिकसाय-त्र्रचक्खु०-भवसि०-त्र्याहारि ति ।
- ११२. त्रादेसेण णेरइएमु जह० खेत्तभंगो । अज० लोग० असंखे०भागो
 त्रचोदस० देमुणा । पढमपुढवि० खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि त्ति जह० खेतभंगो । अज० सगपोसणं ।

का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवं भागप्रमाण विहारवस्वस्थान आदिकी अपेचा कुछ कम आट बट चौदह राज्यमाण और मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा कुछ कम बारह बट चौदह राज्यमाण कहा है। इनके इन सब स्पर्शनोके समय दोनो विभक्तियाँ सस्भव हैं, इसलिए इनमें दोनों विभक्तिवालोका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्शनानुगम समाप्र हुआ।

१११ अय प्रकृतमें जघन्यसे प्रयोजन हैं। निर्देश दो प्रकारका है - श्रोघ और आदेश। श्रोघसे मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने कितने चेत्रका म्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवे भाग चेत्रका म्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने सर्वलोकका म्पर्शन किया है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी लोभी, अच्छुदर्शनी, भव्य और आहारकोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ - त्रांघसे मोहनीयका जघन्य अनुभाग त्रपक सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवोके होता है, इसलिए इनका म्पर्शन लोकके अमंख्यानवें भागप्रमाण कहा है और अजघन्य अनुभाग अन्य सब मोहकी सत्तावाल जीवोके होता है, इसलिए इनका म्परीन सब लोक कहा है।

\$ ११२ आदेशकी अपेदा नार्यकयोमें जघन्य अनुभागिवभक्तिवालोका भङ्ग चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालोने लोकके असंख्यातवे भागका और चौदह भागोमें से कुछ कम छह भागप्रमाण चेत्रका म्पर्शन किया है पहिली पृथ्वीमे क्षेत्रके समान भङ्ग है। दृमरी पृथिवीसे लेकर मातवी तक जघन्य अनुभागिवभक्तिवालोका म्पर्शन चेत्रके ममान है। नथा अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालोका अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थं नो हतसमुन्यस्तिक कर्मबाले असंज्ञी जीव नरकमे उत्पन्न होते हैं इनके मोहनीयका जघन्य अनुभाग होता है। यतः ऐसे जीव प्रथम नरकमे ही उत्पन्न होते हैं अतः मामान्यसे नार्गक्रयोम मोहनीयके जघन्य अनुभागवालोंका म्पर्शन सेत्रके समान लोकके असंख्यातवे भाग-प्रमाण कहा है। तथा सामान्यसे नार्राक्रयोका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण है. अतः इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन उत्त प्रमाण कहा है। प्रथम नरकमे दोनों प्रकारक अनुभागवालोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। दूसरे आदि नरकोमें जो जीव अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना करते है उनके जघन्य अनुभाग हाता है। यतः ऐसे जीवोका मारणन्तिक पदकी अपेत्रा भी स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागसे अधिक नहीं होता. अतः द्वितीयादि नरकोमें जघन्य अनुभागवालोका स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण कहा है और जिस नरकका जो स्पर्शन है वह वहाँ अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है।

११३. तिरिक्षेमु जह० अज० सव्बलोगो । एवमेइंदिय-बादरेइंदिय-बादरे-इंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइदियपज्जत्तापज्जत्त-पुढवि०--वादरपुढवि०--वादर-पुढविअपज्ज०--सुहुमपुढवि०--सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आड०-बादरआड०--बादरआड०--सुहुमआड० -सुहुमआडपज्जतापज्जत्त--तेड०--बादरतेड०--बादरतेडअपज्ज०-सुहुमतेड०--सुहुमतेडपज्जतापज्जत्त--वाड०-वादरवाडअपज्ज०--सुहुमवाड०-सुहुमवाडपज्जतापज्जत्त--सव्ववणप्पदि -- सव्वणिगोद० -- औरालियमिस्स०--कम्मइय०-मदिअण्णा०--सुद् अण्णा०--असं जद०--किण्ह--णील -- काड०--अभवसि०--मिच्छादिद्वि-असण्ण-अणाहारि ति ।

११४. सन्त्रपंचिदियतिरिक्ख मणुसअपज्ञ० ज० अज० लोग० असंखे०भागो सन्वलोगो वा । एवं सन्वविगत्तिदिय-पंचिदियअपज्ञ०--वादरपुढविपज्ज०--वादरआउ-पज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवग०फदिपत्तेयसरीरपज्ज०-तसअपज्जताणं।

् ११३. तिर्य चोमं जचन्य और अजघन्य अनुभागिवभिक्तवालाने सव लोकका स्पर्शन किया है। इसा प्रकार एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय प्रयाप्त, वादर एकेन्द्रिय श्रपयाप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय श्रपयाप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय श्रपयाप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त, वायुकायिक वादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, स्वाप्ति, स्वाप्तिक, स्व निगादिया, औदारिक-मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मितअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयत, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले, कार्यात्त लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंजी और अनाहारकोमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—तिर्यश्वोमें जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव हतसमुत्पत्तिककर्मवाले होते हैं उनके मोहनीयका जघन्य अनुभाग होता है और ये जिनमें इस अनुभागके साथ उत्पन्न होते हैं उनमें भी जघन्य अनुभाग होता है। यत: ऐसे जीवां का म्पर्शन मर्व लोकप्रमाण सम्भव है, अत: तिर्यश्वोमें जघन्य अनुभागवालोंका सर्व लोकप्रमाण म्पर्शन कहा है। तथा तिर्यश्व सर्व लोकमें पाये जात हैं, अत: इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन भी सव लोकप्रमाण कहा है। यहाँ तिर्यश्वोके समान अन्य जिन मार्गणाओं में मोहनीयके जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंके म्पर्शनके जाननेकी सूचना की है वहाँ इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए।

११४. जघन्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागविभक्तित्राले सत्र पश्चे न्द्रियतिर्यश्च श्रोर मनुष्य श्रपर्याप्तकाने लाकके श्रसंख्यातवें भागका श्रोर सर्व लाकका म्पर्शन किया है। इसी प्रकार सव विकलेन्द्रिय, पश्चेन्द्रिय श्रप्याप्त, बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर तैजस्कायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिप्रत्येकशरीर पर्याप्त श्रोर त्रस श्रपर्याप्तकोळे जानना चाहिए।

विशेषार्थ-जो हतसमुत्पत्तिकर्मवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय श्रपर्याप्त पश्चेन्द्रिय तिर्यश्चोंमें और मनुष्य श्रपर्याप्तकों में उत्पन्न होते हैं श्रीर यदि उन्होने श्रनुभागको नहीं बढ़ाया है तो उनके जयन्य श्रनुभाग होता है। ऐसे जीवों का वर्तमान स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर ११५. मणुमतियम्मि ज० खेत्तभंगो । अज० लोग० असंखे०भागो सब्ब-लोगो वा।एवं पंचिद्यि-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि ति । णवरि विहारेण अद्वचोद्दसभागा वत्तव्वा ।

११६. देवेसु ज० खेत्तं। अज० लोग० असंखे०भागो ब्रह--णवचोइसभागा देसूणा। एवं भवण०-वाण०। णविर अज० सगपोसणं। जोदिसि० ज० खेत्तं ब्रह्युह-अहचोइसभागा देसूणा। अज० खेतं अद्युह-अह-णवचोइसभागा देसूणा। सोहम्मी-साणे मोह० ज० लोग० ब्रसंखे०भागो ब्रहचोइस० देसूणा। अज० लोग० ब्रसंखे०-ब्रतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण सम्भव है, ब्रतः इनमें जघन्य ब्रनुभागवालां का स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। तथा इन मार्गणाब्रां का स्पर्शन भी इतना ही है. ब्रतः इनमें ब्रजघन्य ब्रनुभागवालां का भी स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ सब विकलिद्रय ब्रादि ब्रन्य जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह दोनो प्रकारका स्पर्शन बन जाता है. ब्रतः इनका कथन पूर्वोक्त प्रकारसे जाननेकी सचना की है।

६ ११५. जघन्य श्रनुभागविभक्तिवाले सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त श्रीर मनुष्यिनियोमें चेत्रके समान भंग है। श्रजघन्य श्रनुभागविभक्तिवालोने लोकके श्रसंख्यातवें भागका श्रीर सर्व लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पश्चेन्द्रिय,पश्चे न्द्रिय पर्याप्त,त्रस,त्रस पर्याप्त,पाँचो मनायोगी। पाँचो वचनयोगी,स्वीवेदी.पुरुपवेदी,चक्षुदर्शनी श्रीर संज्ञी जीवोमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें विहासकी श्रपंचा चौदह भागोमें से कुछ कम श्राठ भाग स्पर्शन कहना चाहिये।

विशेषार्थ-मनुष्यत्रिकमे चपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके ही जघन्य अनुभाग होता है। यतः इनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रगाण है, अतः मनुष्यत्रिकमे जघन्य अनुभागवालों का स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। तथा मनुष्यत्रिकक। वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें अजघन्य अनुभागवालोका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। यहाँ पश्चे न्द्रिय आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमे मनुष्यत्रिकके समान स्पर्शन घटित हो जाता है, अतः उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोका स्पर्शन मनुष्यत्रिकके समान कहा है। मात्र पश्चे न्द्रिय आदि मार्गणाओंमे विहारपदकी अपेचा छुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन भी सम्भव है, इसलिए इन मार्गणाओंमे अजघन्य अनुभागवाले जीवोंका स्पर्शन छुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन भी सम्भव है, इसलिए इन मार्गणाओंमे अजघन्य अनुभागवाले जीवोंका स्पर्शन छुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण भी जानना चाहिए।

§ ११६. देवांमें जघन्य अनुभागविभक्तिवालोका स्पर्शन क्षेत्रके समान हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोने लोकके असंख्यातवे भागका और चौदह भागोसे से कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तरोमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोमें अपना अपना स्पर्शन लेना चाहिए। उयोतिषी देवोमें जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन तेत्रके समान है तथा इन्होंने चौदह राजुमें से कुछ कम साढ़ेनीन और कुछ कम आठ राजुप्रमाण त्रेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभाग विभक्तिवालोका स्पर्शन त्रेत्रके समान है तथा इन्होंने चौदह भागों से कुछ कम साढ़ेतीन. कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण त्रेत्रका स्पर्शन किया है। सौधर्म और ईशानमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवे भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण त्रेत्रका स्पर्शन किया है। सौधर्म और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण त्रेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवे भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग

भागो ब्रह-णवचोदसभागा देसूणा । सणक्कुमारादि जाव ब्रारणच्चुदे ति उकस्स-भंगो । उवरि खेत्तभंगो ।

४१७. कायाणुवादेण वादरवाउकाइयपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु० लोग० संखे०भागो सव्वलोगो वा ।

प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सनत्कुमारसे लेकर ऋारण-ऋच्युत तकके देवोमें उत्कृष्ट ऋनुभाग विभक्तिवालोंके समान स्पर्शन है। ऋागेके देवोमें चेत्रके समान स्पर्शन है।

विशेषार्थ-सामान्यसे देवोमें जो हतसमुलित्तिक कर्मवाले श्रसज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होते हैं उनके जघन्य अनुभाग उपलब्ध होता है। अत: ऐसे जीवोका स्पर्शन चेत्रके समान लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक उपलब्ध नहीं होता, अत: यह चेत्रके समान कहा है। तथा देवोका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण, विहारादिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण त्रौर मारणान्तिक समुद्धातकी अपेत्रा कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण बतलाया हैं। यत: इस सब प्रकारके स्पर्शनके समय नोहनीयकी अजघन्य अनुभागविभक्ति सम्भव हैं. त्रात: इनमें त्राज्ञचन्य त्रानुभागवालोका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। भवनवासी त्र्यौर व्यन्तर देवोमें यह म्पर्शन इसी प्रकार प्राप्त होता है, अत: इनका भङ्ग सामान्य देवोंके समान कहा है। यहाँ इतनी विशेषता अवश्य है कि इन दोनों प्रकारके देवोमें वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवे-भागप्रमाण, स्वप्रत्यय विहारकी अपेक्षा कुछ कम साढ़े तीन बट चौदह राजु, परप्रत्यय विहार तथा वेदना. कपाय श्रीर वैक्रियिक समुद्धातकी श्रपंचा कुछ कम श्राठ बटे चौदह राज् श्रीर मारणान्तिक समुद्वातकी श्रपेद्धा कुछ कम नौ बट चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन जानना चाहिए । ज्योतिपी देवों में अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवालों के मोहनीयका जघन्य अनुभाग होता है । यतः ऐसे देवो का वर्तमान स्पर्शन लोकके ऋसंख्यातवें भागप्रमाण, स्वप्रत्यय विहारकी अपंत्रा कुछ कम साढ़े तीन बटे चौदह राजु ख्रौर परप्रत्ययिवहार आदिकी अपंत्रा कुछ कम त्राठ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन सम्भव है, श्रत: इनमें जघन्य श्रनुभागवालों का उक्तप्रमाण म्परान कहा है। तथा अजघन्य अनुभागवाला का यह म्परान तो होता ही है। साथ ही इनके मारणान्तिक समुद्घातके समय कुछ कम नौ वट चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन भी सस्भव है, श्रत: इनका स्पर्शन इसको मिलाकर कहा है। सौधर्भ ऋौर ऐशान कल्पमें वर्तमानकी ऋपेत्ता लोकके त्रसंख्यातवें भागप्रमा**ण, विद्यारादिकी ऋ**षेचा कुछ कम त्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण श्रीर मारणान्तिक समुद्धातकी श्रपेचा कुछ कम नौ बटं चौद्द राजुप्रमाण स्पर्शन होता है। इनमेस जघन्य ऋनुमार्गावर्माक्तरु समय कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन सम्भव नहीं है. क्योंकि जो देव एकेन्द्रियोमे मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके जघन्य अनुभागविभक्ति नही हो सकती, ऋत: इस ऋन्तरको ध्यानमें रखकर यहाँ दोनो ऋनुभागवालो का स्पर्शन कहा है । त्रागे भी इसी प्रकार स्वामित्वको ध्यानमें रखकर जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवालो का स्परान घटित कर लेना चाहिए।

§ ११७. कायकी अपेत्ता बाद्र वायुकायिकपर्याप्तकोमें मोहनीयकर्मकी जघन्य श्राँर अजघन्य श्रनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन लोकका संख्यातवां भाग श्रौर सर्वलोक है।

विशेषार्थ-बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवों ने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है, इसलिए इनमें दोनों प्रकारके श्रनुभागवालों का स्पर्शन उक्तप्रमाण बन जाता है, श्रतः वह उक्तप्रमाण कहा है।

११८. वेजिव्य० जह० सोहम्मभंगो | अज० अणुकस्सभंगो० | वेजिव्य-मिस्स०-आहार०--आहारमिस्स० जहण्णाजह० खेत्तभंगो | एवमवगद०--अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो ०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्लाद०संजदे ति |

११६. णाणाणु० विहग० मोह० ज० लो० असंखे०भागो अहचोइसभागा वा देसूणा। अज० लोग० असंखे०भागो अहचोइस० सव्वलोगो वा। आभिणि०-सुद०-त्र्योहि० मोह० ज० लोग० असंखे०भागो। अज० लोग० त्र्रसंखे०भागो अहचोइस० देसूणा। एवमोहिदंस०-सुक्कले० सम्मादि०-खइय०-वेटग०-उवसम०-सम्मा-मिच्छादिहि ति। णवरि सुक्कलेस्साए छचोइसभागा।

§ ११८. वैक्रियिककाययोगियोमें जघन्य अनुभागिवभक्तिवालोका स्परांन सौधर्मस्वर्गके समान है तथा श्रज्जघन्य अनुभागिवभक्तिवालोका स्परांन अनुःकृष्टिवभक्तिके समान है। वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, श्राहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों में जघन्य और अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार श्रपगतवदी, श्रकपायी, मनःपर्ययक्तानी, संयत, सामायिकसंयत, छंदोपस्थापनासंयत, परिहारिवग्रुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसयत और यथाख्यातसंयतों में जानना चाहिए।

विशोपार्थ-सौधर्मादिक कल्पों में जघन्य अनुभागका जो जीव स्वाभी होता है वही वैक्रियिककाययोगमें भी उसका स्वामी होता है, अतः वैक्रियिककाययोगवालों में जघन्य अनुभागवालों का स्पर्शन सौधर्म कल्पके समान कहा है। वैक्रियककाययोगियों में अजघन्य अनुभागवालों का स्पर्शन अनुन्कृष्टके समान है यह स्पष्ट ही है। वैक्रियकिमिश्रकाययोगी आदि जीवों का चेत्र लोकके असख्यातवे भागप्रमाण बतलाया है। इनका स्पर्शन भी इतना ही है, अतः इनमे दोनों अनुभागवालों का स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। मूलमें कही गई अपगतवदी आदि अन्य मार्गणाओं में भी यही स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

§ ११९. ज्ञानकी श्रापेत्ता विभंगज्ञानियों में मोहनीयकी जघन्य श्रमुभागविभक्तिवालों ने लोकके श्रसख्यातवें भागका श्रीर चौद्द भागों में से कुछ कम श्राठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्राचन्य श्रमुभागविभक्तिवालों ने लोकके श्रसंख्यातवे भागना चौद्द भागों में से कुछ कम श्राठ भागका श्रीर सर्व लोकका स्पर्शन किया है। श्राभिनिवाधिकज्ञानी, श्रु तज्ञानी श्रीर श्रवधिज्ञानिया में मोहनीयकर्मकी जघन्य श्रमुभागविभक्तिवालों ने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्राचय श्रमुभागविभक्तिवालों ने लोकके श्रसंख्यातवें भागश्रीर चौद्द भागोमें से कुछ कम श्राठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार श्रवधिदर्शनी, श्रु स्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि श्रीर सम्यग्मिण्यादृष्टियां में जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रु स्ललेश्यामें चौद्द भागोमें से कुछ कम छह भागप्रमाण स्पर्शन होता है।

विशेषार्थ—जो विभङ्गज्ञानी एकेन्द्रियों मं मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके जघन्य अनुभाग सम्भव नहीं है, अतः इनमें जघन्य अनुभागवाले जीवों का स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। तथा अजघन्य अनुभागवालों का स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण कहा है। आभिनिवोधिकज्ञानी आदिमें क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवके जघन्य अनुभाग होता

१२०. संजदासंजद० ज० लोग० असंखे०भागो । अजह० लोग० असंखे० भागो बचोइस० देसुणा । तेउ ०--पम्म० सोहम्म०-सहस्सारभंगो । सासण० जह० खेत्तं । अजह० अणुकस्सभंगो ।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

१२१. कालाणुगमा दुविहो — जहण्णओ उकस्सओ चेदि । उकस्से पयदं । दुविहो णिद्दे सो — ओघे० आदेसे० । तत्थ ओघेण मोह० उकस्साणु० ज० अंतोम्रु०, उक० पिलदो० असंग्वे॰भागो । अणुक० सव्बद्धा ।

है. इसिलये इनमें जघन्य अनुभागवालों का म्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा आभिनिबोधिकज्ञानी आदिका जो स्पर्शन है वही यहाँ अजघन्य अनुभागवालों का प्राप्त होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। यहाँ अवधिदर्शनी आदि अन्य जो भागिणाएं गिनाई हैं उनमें यह स्पर्शन बन जाता है, अतः उनका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानी आदिकं समान कहा है। मात्र शुक्ललेश्यामें कुछ कम आठ बट चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन नहीं प्राप्त होता, अतः उसका निर्देश विशेष रूपसे किया है।

ू १२०. सयतासंयतो में जघन्य अनुभागविभक्तिवालों ने लोकके श्रसंख्यातवे भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य विभक्तिवालों ने लोकके श्रसंख्यातवे भाग और चौदह भागों में से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका म्पर्शन किया है। ते शेलेश्यामें सौयर्म स्वर्गक समान और पद्मलश्यामें सहस्रारके समान भङ्ग है। सासादनसम्यग्दियों में जघन्य अनुभागविभक्ति-वालोका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालोके समान है। तथा अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालोके समान है।

विशेषार्थ-सयतासंयतों में जो दो बार उपरामश्रीण पर चढ़कर और उतर कर सयता-संयत हुए हैं उनके जघन्य अनुभाग होता है. इसलिए इनके जघन्य अनुभागवालों का स्पर्शन लोकि असस्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा सयतासयतों का जो स्पर्शन है वह यहाँ अजघन्य अनुभागवालों का वन जाता है. अतः वह उक्तप्रमाण कहा है। पीत और पद्मलेश्यामें सौधर्म और सहस्रार कल्पके समान स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है। सासादनसस्यग्द्द प्रियों में दो बार उपराम श्रीण पर चढ़कर उतरे हुए जीवके जघन्य अनुभाग होता है, अतः यह क्षेत्रके समान कहा है और अनुत्कृष्टके समान इनके अजघन्य अनुभागवालों का स्पर्शन वन जाता है अत. वह अनुत्कृष्ट के समान कहा है।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

् १२१. कालानुगम दो प्रकारका है-जघन्य श्रीर उत्तृष्ट । यहाँ उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है - श्रोघिनिर्देश श्रीर श्रादेशिनिर्देश । उनमेसे श्रोघसे मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट काल पन्योपमके श्रसंख्यातवे भाग है । श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागविभक्ति का काल सर्वदा है ।

विशेषार्थ-पहले मोहनीयकी उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका एक जीवकी अपेदा जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त बतला श्राये हैं। यह सम्भव है कि कभी कुछ ही जीव एक साथ उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिवाले हो श्रीर कभी मध्यमे श्रन्तर पड़े बिना श्रनेक जीव उत्कृष्ट श्रनुभाग- १२२. आदेसेण ऐरइएसु उक्क० ज० एगस०, उक्क० पिलदो० असंखे०भागो । अणुक्क० सम्बद्धा । एवं सम्बपेरइय-सम्बतिरिक्ख-मणुस-देव-भवणादि जार्वे सह-स्सारे ति सम्बप्इंदिय-सम्बविगलिदिय-पंचिदियअपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-पंचमण०-पंचविच०--कायजोगि--ओरालि०-आरालियमिस्स०-वेउन्विय०--तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-तिण्णिअण्णाण-ग्रसंजद--पंचले०-सिएएा-असिएएा-आहारि ति । णवरि पदि-सुद्अण्णाणि-ग्रसंजद् उक्क० जह० श्रंतासु० ।

विभक्तिवाले हों। यह देख कर यहाँ नाना जीवोंकी ऋषेत्ता उन्क्रष्ट ऋनुभागविभक्तिवालों का जघन्य काल ऋन्तर्मुहूर्त और उन्क्रष्ट काल पत्थके ऋसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्यों कि एकके बाद दूसरा इस प्रकार निरन्तर उन्क्रष्ट ऋनुभागविभक्तिवाले ऋसंख्यात जीव भी होंगे तो उन सबके कालका योग पत्थके ऋसंख्यातवें भागप्रमाण ही होगा। मोहनीयकी ऋनुन्क्रष्ट ऋनुभागविभक्तिवालों का काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है।

१२२. त्रादेशसे नारिकयों मे उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग है। अनुत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सब नारकी. सब तियेश्व. मनुष्य. सामान्य देव. भवनवासियों से लेकर सहसार स्वर्गतकके देव. सब ए हेन्द्रिय. सब विकलेन्द्रिय. पचेन्द्रिय अपर्याप्त. पाँचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, पांचों मनायागी, पाँचों वचनयोगी. काययोगी औदारिककाययोगी औदारिकिमिश्रकाययोगी. वैक्रियककाययोगी. स्वीवदी. पुरुपवेदी. नपुंसकवेदी. कोधी, मानी. मायावी,लोभी, तीनो अज्ञानी, असंयत, अङ्के सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले. सज्ञी. असंज्ञी और आहारकोम जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मतिअज्ञानी. श्रुतअज्ञानी और असयतोमे उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मु हुन है।

विशेषाथं—अन्द्रष्ट अनुभागकी सत्तावाल अन्य गतिके जीवां के उक्ष्रष्ट अनुभाग है कालमें एक समय रोप रहने पर नारिकयों में उत्पन्न होने पर नरकमें नाना जीवों की अपन्ना भी माह्नीयके उन्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है, इसिलए यहाँ उन्कृष्ट अनुभागवालों का उच्छ्य अनुभागवालों का जघन्य काल एक समय कहा है। तथा यहाँ उन्कृष्ट अनुभागवालों का उन्कृष्ट काल पर्व्यके असंख्यानवे भागप्रमाण ओघके अनुसार घटित कर लेना चाहिए, क्यों कि जितनी भी असख्यात और अनन्त संख्यावाली मार्गणाएं हैं उनमें उन्कृष्ट अनुभागका उन्कृष्ट काल उक्त प्रमाण वन जाता है। करण कि ऐसा सब मार्गणाओं में लगातार उन्कृष्ट अनुभागवाले असंख्यात जीव ही होते हैं और असंख्यात अन्तर्भृहनोंका योग पर्व्यक्ते असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता। इनमें अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले सर्वदा पाये जाते हैं, इसिलए उनका काल सर्वदा कहा है। यहाँ मूलमें सब नारकी आदि अन्य जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह प्रकृपणा अविकल बन जाती है, इसिलए उन के उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागवालों का काल सामान्य नारिकयों के समान जाननेकी सूचना की है। मात्र उन्कृष्ट अनुभाग मिध्यादृष्टिके होता है और इसका एक जीवकी अपेन्ना भिष्ठा उन्कृष्ट अनुभागवालों का काल सामान्य नारिकयों में नाना जीवों की अपेन्ना उन्कृष्ट अनुभागवालों का जघन्य काल अन्तर्भुहुर्त कहा है, क्यां कि मिध्यादृष्टिके जिस प्रकार अन्य मार्गणाएं बदल सकती हैं उस प्रकार ये मार्गणाएं नहीं बदलती।

१. ऋा॰ प्रतौ देव जाव इति पाठः।

१२२. मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु उक्क० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु०।
अणुक्क० सञ्बद्धा । मणुसत्रप्रज्ज० उक्क० अणुक्क० ज० एयस० श्रंतोसुहुनं, उक्क०
पिलदो० श्रसंखे०भागो । एवं वेउव्वियमिस्स०।

\$ १२४. आणदादि जाव सव्वहिसिद्धि ति उक्कस्साणुक्कस्स० सव्वद्धा । एव-माभिणि०--सुद०--ओहि०-मणपज्ज०--संजद--सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद-ओहिदं०-सुक्क्ले०-सम्मादि०-वेदग०-खइय०दिहि ति । णवरि--आभिणि-सुद०-च्रोहि०-ओहिदंस०--सुक्क्ले०--सम्मादिहि--वेदयसम्मादिहीसु उक्क० जह० एगसम्बो, उक्क० पलिदो० असं०भागो ।

१२२. मनुष्यपर्याप्त श्रौर मनुष्यितियामे उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है। मनुष्य श्रप्याप्तकों में उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट काल पत्थका श्रसंख्यातवां भाग है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मनुष्य पर्याप्त श्रीर मनुष्यिनियों में जघन्य काल एक समय नारिकयों के समान घटित कर लेना चाहिए। तथा इन दोनों मार्गणावालों का प्रमाण सख्यात होता है. इसिलए इनमें उन्क्रष्ट अनुभागवालों का उन्क्रष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्यों कि यहाँ संख्यात अन्तर्मुहूर्तों का योग अन्तर्मुहूर्त ही होगा। यह दोनों निरन्तर मार्गणाएं हैं, इसिलए इनमें अनुत्क्रष्ट अनुभागवालों का काल सर्वदा कहा है। यह तो सम्भव है कि जिनके उत्कृष्टमें एक समय काल शेप है ऐसे जीव मनुष्य अपर्याप्तकों में उत्पन्न हो पर उत्कृष्ट अनुभागका घात होने पर मनुष्य अपर्याप्तकों का जो काल शेप रहता है उस कालमें उनके अनुत्कृष्ट अनुभाग नियमसे पाया जाना है, इमिलए मनुष्य अपर्याप्तकों में उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। यहाँ इतना अवश्य समकता चाहिए कि मनुष्य अपर्याप्त अन्तर्मुहूर्त काल तक रहे और वादमें उनका अभाव हो जाय इस अपेचा यह अन्तर्मुहूर्त काल कहा है। तथा नाना जीवों की अपेचा मनुष्य अपर्याप्तकों का उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इमिलए इनमें उन्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालों का उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वैक्रियकिमिश्रकाययोगी यह भी मान्तर मार्गणा है, इसिलए इसमें उक्त सब काल घटित हो जानेसे उसकी प्रस्पणा मनुष्य अपर्याप्तकों के समान की है।

६ १२४. त्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त तकके देवों में उत्कृष्ट और अनुस्कृष्ट अनुभागिवभक्ति सर्वदा पाई जाती है। इसी प्रकार आभिनिवाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अविधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारिवशु द्धसयत, संयतासंयत, अविधिद्रश्तिवाले, शुकुलेश्यावाले, सम्यग्द्रष्टि, वेदकसम्यग्द्रष्टि और चायिकसम्यग्द्रष्टियामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आभिनिवाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रुवधिज्ञानी, श्रुवधिक्रानी, श्रुवधि

विशेषार्थ-त्र्यानत त्र्यादिमें उत्कृष्ट त्र्यौर त्र्यनुकृष्ट त्र्यनुभागवालों का निरन्तर सद्भाव बना

 १२५. पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मोह० उक० ज० एगस०, उक० पिल्डो० असंग्वे भागो । अणुक्क० सन्बद्धा । एव तस-तसपज्जत्त-चक्खुदंसणि ति ।

५ १२६. आहार० मेहि० उकस्साणुकस्साणु० ज० एगस०, उक्क० ऋंतोमुहूर्त । एवमवगढ०-अकसा०--सहमसांपराय०--जहाकखाटसंजढ ति । आहारमिस्स० मोह० उक्तस्साणुक्तम्स० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अचक्ख्० मोह० उक्तस्साणु० ज० अंतोमु०, उक्कः पुलिदोः असंग्वे भागो । अणुक्कः सञ्बद्धा । एवं भवसि ०-अभवसि ० मिच्छा-दिद्धि नि ।

रहता है, क्यों कि यहाँ यह सम्भव है कि किसी े उन्कृष्ट अनुभागका घान न हो और यहाँ अनुत्कृष्ट अनुभागमें वृद्धि भी सम्भव नहीं है, अतः यहाँ उद्युष्ट और अनुत्कृष्ट अनभागवाली का काल सर्वदा कहा है। यहाँ श्रामिनिवोधिकज्ञानी श्रादि श्रन्य जो मार्गणाए वतलाई हैं उनमें इसी प्रकार काल घटिन कर लेना चाहिए। मात्र ऋाभिनियाधिकज्ञानी ऋादि कुछ मार्गणाएँ इसकी अपवाद हैं। बात यह है कि इन मार्गणात्रा में यथासम्भव उत्कृष्ट अनुभागवाले मिध्या-दृष्टि भी त्राते हैं. त्रत: इनमें उत्कृष्ट अनुभागवाला का जघन्य काल एक समय और ब्लुष्ट काल पत्यके ऋसंख्यातवे भागप्रमाण कहा है। यदि जिनके उत्कृष्ट ऋनुभागमें एक समय काल शेप है ऐसे मिध्यादृष्टि इन मार्गणात्रा में त्राते हैं त्रीर दूसरे समयमें उत्कृष्ट अनुभागवाले मिथ्यादृष्टि नहीं त्राते हैं तो इन त्र्याभिनियोधिकज्ञानी त्र्यादिमें अकृष्ट त्रनुभागवालों का एक समय काल उपलब्ध होता है, स्त्रीर जिन हे उत्कृष्ट स्त्रनुभागका काल स्नन्तर्मुहूर्त है ऐसे जीव निरन्तर त्राते रहते हैं तो यहाँ उन्कृत अनुभागवालों का उन्कृष्ट काल पन्यके असम्ब्यातवें भाग-प्रमाण प्राप्त होता है। यह देखकर श्राभिनिवाधिकज्ञानी त्रादि सात मार्गणात्रों में उत्कृष्ट अनभागवालों का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पन्यके असंख्यातवें भागप्रमाए कहाँ है।

् १२५. पञ्चे द्रिय ऋौर पञ्चे न्द्रिय पर्याप्तकोमें मोहनीयकर्मकी उॡ्छ अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल पत्य है असंख्यातवे भाग है। अनुन्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार त्रस, त्रसपर्याप्त और चक्षदर्शनवालेके जानना चाहिए।

विशापार्थ-यद्यपि पञ्चे न्द्रिय जीव ही मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं, परन्तु कदाचित ऐसा सम्भव है कि कोई पश्चेन्द्रिय जीव मोहनीयका उन्क्रप्ट अनुभागवन्ध न करें और जिनके मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागके कालमे एक समय राप हो एसे जीव ही राप रहे, अत: यहाँ पञ्चे न्द्रियद्विकमे मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा इनमें उत्कृष्ट ऋनुभागवालोका उत्कृष्ट काल पल्य ऋसंख्यातवे भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार त्रसः त्रसपर्याप्त श्रौर चक्षुदर्शनी जीवोमे उक्त काल घटित कर लेना चाहिए। इन सव मार्गणात्रोम त्रानुत्कृष्ट त्रानुमागवालोंका काल सर्वदा है। यह स्पष्ट ही है।

् १२६. त्राहारककाययागियों में मो६नीयकर्मकी उत्कृष्ट त्रौर त्रातुत्कृष्ट त्रानुभागविभक्ति का जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त हैं। इसी प्रकार श्रपगतंबदी, अकपायी, सक्ष्मसाम्परायसयत श्रौर यथाख्यातसंयतोमे जानना चाहिए । श्राहारकमिश्रकाययो।गयोमे मोहनीयकर्मकी उक्तप्र और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उक्तप्र काल अन्तर्मुहूर्त है। ऋचक्षुदर्शनवानोमं मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट ऋनुभागविभक्तिका जघन्य काल ऋन्तर्मुहूर्न है और उत्कृष्ट काल पत्यके श्रसंख्यातवें भाग है। श्रनुकृष्ट का काल सर्वदा है। इसी प्रकार १२७. उवसम० उक्कस्साणुकस्साणु० ज० श्रंतोमु०, उक्क० पिट्टिने० असंखे० भागो । एवं सम्मामिच्छादिद्दीणं । सासण० उक्कस्साणुकस्साणु० ज० एगस०, उक्क० पिट्टिने० असंखे०भागो । अणाहारीमु उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० आवित्ति० असंखे०भागो । अणुक्क० सन्बद्धा । एवं कम्मइय० ।

एवमुकस्सओ कालाणुगमो समतो।

् १२८. जहराराए पयदं। दुविहो णिद्दोसो—स्त्रोघे० आदेसे०। ओघे० मोह० भव्य, स्त्रभव्य स्त्रीर मिथ्यादृष्टियोमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ-आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त होनेसे इस योगवाले जीवोंमं मोहनीयके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त कहा है। अपगतंत्रदी आदि अन्य मार्गणाओं अपने अपने स्वामित्वको ध्यानमं रखकर इसी प्रकार उक्त काल घटित कर लेना चाहिए। आहारकिमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त है, अतः इस योगवाले जीवोमं मोहनीयके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवालोका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त कहा है। अचक्षु-दर्शनवालोमं मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तर्भुहूर्त कहनेका कारण यह है कि यह मार्गणा वरावर बनी रहती है, अन्य मार्गणाओं के समान यह बदलती नहीं। शेप कथन सुगम है।

§ १२७. उपशमसम्यग्द्दष्टियोमे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग है। इसी प्रकार सम्यग्मिध्यादृष्टियोमे जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टियोमे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग है। अनाहारियोमे उत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वदा रहनी है। इसी प्रकार कार्मणकाय योगमे जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नाना जीवोकी अपेत्ता उपशामसम्यक्तवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इमिलए इसमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभाग-वालोका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इसी प्रकार सम्यग्मिध्यादृष्टियोम भी घटिन कर लेना चाहिए। नाना जीवोकी अपेत्ता सासादन-सम्यक्तवका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसिलए इसमें उत्कृष्ट और अनुत् ष्ट अनुभागवालोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। अनाहारक और कार्मण काययोगियोमें उत्कृष्ट अनुभागवाले कमसे कम एक समय तक और अधिक स्वधिक आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही होने हैं, कारण कि निरन्तर यदि असंख्यात अनाहारक जीव भी उत्कृष्ट अनुभागवाले हो तो उस सब कालका योग आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, इसिलए इतमें उत्कृष्ट अनुभाग वालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, इसिलए इतमें उत्कृष्ट अनुभाग वालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्र गण कहा है। तथा अनाहारक सर्वदा पाये जाते हैं, अत: इनमें अनुन्कृष्ट अनुभागवा ोंका काल सर्वदा कहा है।

इस प्रकार उन्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ।

§ १२-. अब जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघसे और श्रादेशसे। ११ जहराणाणुभाग० ज० एगस०, उक्क० संखेजा समया। अज० सन्वद्धा। एवं मणुसितय पंचिदिय--पंचि०पज्ज०-तस--तसपज्ज०-पंचमण०--पंचविच०--कायजोगि०--स्रोरालिय०--तिरिणवेद--चत्तारिकसाय--आभिणि०--सुद०--ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक्कले०--भवसि०--सम्मादिहि--खइय०-वेदग०-सिर्ण-आहारि ति। णवरि वेदग० जह० जहण्णेण अंतोसु०।

्र१२६, त्रादेसेण णेरइएसु ज० ज० एगसमओ, उक्क० पित्तदो० असंखे० भागो । अज० सन्वद्धा । एवं पढमपुढवि--सन्वपंचिदियतिरिक्ख०-देव०-भवण०-वाण०-सन्विगित्तिदय-पंचिदियअपज्ज०--वादरपुढिविपज्जत--वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज०-वादरवणप्फिदिपत्तेयसरीरपज्जत्त-तसअपज्जत्ता ति । विदियादि जाव सत्तिमि ति जहण्णाजहण्णाणु० सन्वद्धा । एवं तिरिक्खोधं जोइसियादि जाव सन्वद्द-सिद्धि०--सन्वएइंदिय--सन्वपंचकाय--औरात्तियिमस्स०--कम्मइय०--वेउन्विय०--मिद

श्रोघसे मोहनीयकर्मकी जयन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय पञ्चेद्रिय पर्याप्त, त्रसः त्रसप्याप्तः पाँचो मनायागीः पाँचो वयनयोगीः, काययोगीः, औदारिककाययोगीः, स्त्रीवदीः पुरुषंदीः, नपुसकःदीः क्रोधीः, मानीः मायावीः, लोभीः, आभिनियोधिकज्ञानीः, श्रुतज्ञानीः अवधिज्ञानीः, मनःपर्ययज्ञानीः संयतः, सामायिकस्यतः, खेदोपम्थापनासंयतः, चक्षुदर्शनवालेः, अचक्षुदर्शनवालेः, अवधिदर्शनवालेः, ग्रुक्लेश्यावालेः भव्यः, सम्यग्दिष्ठः, क्षाधिकसम्यग्दिष्ठः, वेदकसम्यग्दिष्ठः संज्ञी और आहारकोमं जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दिष्ठगोमे जघन्य अनुभागविभक्तिका काल जघन्यसे अन्तर्भुदृतं है।

विशेषार्थ—यह सम्भव है कि चपकश्रीण पर नाना जीव एक साथ चढ़ें और दूसरे समय में अन्तर पड़ जाय और यह भी सम्भव है कि संख्यात समय तक निरन्तर जीव क्षपकश्रेणि पर आरोहण करें। यह सब देखकर यहाँ आंघसे जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। तथा अजघन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा है, क्योंकि माहनीयकी सत्तावाले जीव सर्वदा पायं जाते हैं। मनुष्यत्रिक आदिमे यह व्यवस्था बन जाती है इसिलए उनमे आंघके समान काल कहा है। मात्र वंदकमम्यग्दृष्टियोंम दो बार उपशमश्रेणिसे उतरे हुए छतकृत्यवंदक सम्यग्दृष्टिके जघन्य अनुभाग होता है, इसिलए इनमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त कहा है।

§ १२६. श्रादेशसे नारिकयोमे जघन्य श्रानुभागिवभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल परुयका श्रसंख्यातवाँ भाग है। श्रानघन्य श्रानुभागिवभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सब पश्चि द्रियतिर्यश्च, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सब विकले- द्रिय, पश्चे न्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर श्रष्कायिक पर्याप्त, बादर तैजस्का- यिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, बादरवनस्पति प्रत्येकशरीर पर्याप्त श्रीर त्रसत्रपर्याप्तीमें जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथ्वी पर्य त जघ य श्रीर श्रजघ य श्रानुभाग- विभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सामान्य निर्यश्चोमें तथा ज्योनिपीदेवीसे लेकर सर्वार्थ- सिद्धितकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब पाँचो स्थावरकाय, श्रीदारिकिमश्रकाययांगी, कार्मणकाययोगी

अण्णाणि-सुद्अण्णाणि-विहंगणाणि-परिहार०-संजदासंजद-असंजद्-पंचले०-ग्रभवसि०-मिच्छादिहि-असण्णि-अणाहारि ति ।

१३०. मणुसत्रपञ्च० जहण्णाजहण्णाणु० ज० एगस० श्रंतोम्रहुत्तं, उक्क० पिलदो० असंखे०भागो। एवं वेउन्वियमिस्स०। आहार० मोह० जहण्णाजहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोम्र०। आहारिमस्स० जहण्णाजहण्णाणु० जह० श्रंतोम्र०, उक्क० श्रंतोम्र०। अवगद० जहण्णाणुभाग० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। श्रजह० जह० एगस०, उक्क० श्रंतोम्र०। एवमकसा० सहुमसांपराय०-जहाक्खाद०। णविर अकसा०-जहाक्खाद० जह० उक्क० श्रंतोम्र०। उवसमसम्मादिद्वि—सासण० जहण्णाणु० ज० श्रंतोम्र० एगस०, उक्क० श्रंतोम्र०। अजह० जह० श्रंतोम्र० एगस०,

वैकियिककाययोगी, मतिस्रज्ञानी, श्रुतस्रज्ञानी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, स्रसंयत, श्रुङके सिवा रोप पाँचो लेश्यावाले. स्रभव्य. मिध्यादृष्टि, स्रसंज्ञी स्रौर स्रनाहारकोंमें जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जो इतसमुत्पत्तिककर्मवालं असंज्ञी मर कर नरकम उत्पन्न होते हैं उनके जवन्य अनुमाग होता है। यह सम्भव हे कि इस अनुमागका सद्भाव एक समय तक ही हो और निरन्तर ऐसे जीव उत्पन्न हों और अन्तमुहूर्त तक वही अनुभाग रखें तो वहाँ जघन्य अनुमागका उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातचे भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसिलए नर हमे जघन्य अनुमागवालोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके आसंख्यातचे भागप्रमाण कहा है। यहाँ अजघन्य अनुमागवालोका काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके आसंख्यातचे भागप्रमाण कहा है। यहाँ अजघन्य अनुमागवालोका काल सर्वदा है उनमे यह काल अविकल बन जाता है, इमिलए उनकी प्रकृत्या सामान्य नारिकयाके समान जानने ही सूचना की है। द्वितीयादि प्रथिवियोमे अनिजानुवन्धोकी जिन्होने विसंपाजना करके जवन्य अनुमाग किया है ऐसे जीव और आजघन्य अनुमागवाले जी। सर्वदा पाये जाते है, अतः उनमे जघन्य और अजघन्य अनुमागवालोका काल सर्वदा कहा है। सामान्य तिर्यश्च आदिमे जघन्य और अजघन्य अनुमागवालोका काल सर्वदा कहा है। सामान्य तिर्यश्च आदिमे जघन्य और अजघन्य अनुमागवालोका कहा सर्वदा कहा है। सामान्य तिर्यश्च आदिमे जघन्य और अजघन्य अनुमागवालोका यह काल इसी प्रक्षर प्राप्त होता है अतः इनमे द्वितीयादि नरकोके समान जानने की सूचना की है।

११००. मनुष्य अपर्याप्रामे जघन्य अनुमागविभक्तिम जघन्य काल एक समय और अजघन्य अनुमागविभक्तिम जघन्य काल प्रत्य के अन्तर्महूर्त है तथा दोनोंका उत्कृष्ट काल प्रत्य के असंख्यातवें भाग है। इसी प्रकार वैकियिकिमिश्रकाययोगीमें जानना चाहिए। आहारककाय-योगियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुमागिविमित्तिका काल जघन्यसे एक समय है और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। आहारकिमिश्रकाययोगियोमें जघन्य और अजघन्य अनुमागिविमित्तिका काल जघन्यसे भी अन्तर्मुहूर्त है अौर उत्कृष्टसे भी अन्तर्मुहूर्त है। अपगत्येदियोंमें जघन्य अनुमागिवमित्तिका काल जघन्यसे एक समय है और उत्कृष्टसे संख्यान समय है। अजघन्य अनुमागविमित्तिका काल जघन्यसे एक समय है और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अकपायी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाख्यातसंयतोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अकपायी और यथाख्यातसंयतोंमें जघन्य अनुमागविमित्तका काल जघन्यसे अनुमागका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। उपशमसम्य-ग्रष्टियोमें जघन्य अनुमागविमित्तका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है और सासादनसम्यग्रह्रियोमें

उक्कः पिल्रदो० असंखे०भागो । सम्मामि० जहण्णाजहण्णाणु० ज० श्रंतोग्रु०, उक्क० पिल्रदो० असंखे०भागो । णविर जहण्णाणु० श्रंतोग्रहुत्तं ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

एक समय है। तथा दोनोमें उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजधन्य अनुभागिवभक्तिका जधन्य काल उपरामसम्यग्दिष्टियोमें अन्तर्मुहूर्त है और सासादनसम्यग्दिष्टियोमें एक समय है। उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग है। सम्यग्मिध्याद्दियोमे जधन्य और अजधन्य अनुभाग-विभक्तिका जधन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उन्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि जधन्य अनुभागिवभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेपार्थ-जिनके जघन्य अनुभागके कालमें एक समय शेप है ऐसे जीवोंके मनुष्य अपर्याप्तकोंम उत्पन्न होने पर वहाँ जघन्य अनुभागका एक समय काल उपलब्ध होता है और मनुष्य अपर्याप्तमे जघन्य अनुभागरं कालके सित्रा शेप अन्तर्मुहूर्त काल अजघ य अनुभागका जयन्य काल है। तथा मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त जीव यदि निरन्तर उत्पन्न हो तो पल्यका असल्यातवॉ भाग काल उपलब्ध होता है, इतने काल तक इस मार्गिणामं जघन्य ख्रौर अजघन्य दोनो श्चनुभागविभक्तियाँ सम्भव हैं. इसलिए इनमे जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रनुभागवालोका क्रमशः जघन्य काल एक समय श्रीर श्रन्तर्भुहूर्त तथा दोनोका उत्कृष्ट काल पत्यके श्रसंख्यातवे भाग-प्रमाण कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोग भी सान्तर मार्गणा है और इसमे काल सम्बन्धी प्ररूपणा मनुष्य अपर्याप्तकोके समान बन जाती है, अत: वैकिषिकिमिश्रकाययोगवालोमे मनुष्य अपर्याप्तकोके समान जाननेकी सूबना की है। आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अत: आहारककाययागवालामें जवन्य और अजवन्य अनुभाग वालोका जचन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्न कहा है। आहारकमिश्रकाययाग-का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है. अतः आहारकांभश्रकाययोगवालोमें जघन्य और अज्ञाचन्य अनुभागवालोंका दोनो प्रकारका काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। अपगर्न रदम जघन्य श्रनुभागवालोका जवन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल संस्थान समय श्रीघके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा श्रापतंत्रदका मोहसत्त्रकी श्रापत्ता जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए अपगतविद्योंमें मोहनीयके अजधन्य अनुभागवालोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्न कहा है। अकपायी, सूक्ष्मसाम्परायिक संयत और यथाख्यातसंयतोमें अपगतवेदियोके समान काल घटित कर लेना चाहिए। पर त्रकपायी श्रौर यथाख्यातसंयत मोहसत्त्वकी श्रपंत्ता उपशान्तकपायगुणस्थानवाले होते हैं। इसिलए इनमें जघन्य अनुभागवालोका उत्कृष्ट काल संख्यात समय न प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है. खत: वह उक्त प्रमाण कहा है। उपशमसम्यक्त्वका जघन्य काल खन्तर्मुहूर्त और सासादनका जघन्य काल एक समय है, ख्रत: इनमें जघन्य खनुभागवालोका जघन्य काल क्रमसे श्चन्तर्मुहूर्त श्रीर एक समय कहा है। तथा स्वामित्वको देखते हु^ट इन दोनों मार्गणाश्रोमे[:] जघन्य अनुभागवालोंका उत्क्रष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है. अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इन मार्गणात्रोके जघन्य श्रीर उत्कृष्ट कालको ध्यानमे रख कर इनमे अजधन्य श्रनुभागवालोका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल कहा है। सम्यग्मिण्यादृष्टिके जघन्य श्रौर उत्कृष्ट कालका व स्वामित्व-सम्बन्धी विशेषताको ध्यानमे रखकर वहाँ भी जघन्य श्रौर श्रजधन्य श्रनुभागवालोंका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल कहा है। मात्र इनमें भी जयन्य श्रनुभागवालोका उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त १२१. अंतराणुगमो दुविहो — जहएएाओ उकस्सओ चेदि। उकस्सए पयदं। दुविहो णिहे सां — ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० उक्कस्साणुभागंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ज० एगस०, उक्क० असंखेज्ञा लोगा। अणुक्क० णित्थ अंतरं। एवं सन्वणेरइय-सन्वतिर्वख--सन्वमणुस्स-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सन्वण्इंदिय-सन्विनिलिदिय--सन्वपंचिदिय--सन्वअक्काय--पंचमण०--पंचवचि०--कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-वेउन्विय०-वेउन्वियमिस्स-कम्मइय-तिरिण्यवेद-चत्तारिकसाय-तिर्ण्या-असंजद०--चवखु०--अचक्खु०--पंचले०--भवसि०--अभवसि०--मिन्छादिष्टि--सिण्या-असिण्या-आहारि-अणाहारि ति । णवरि मणुसअपज्ञ०-वेउन्वियमिस्स० अणुक० जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो वारस मुहुत्ता।

१३२. त्र्याणदादि जाव सव्यद्वसिद्धि ति उक्कम्साणुकस्स० णित्थ श्रंतरं । उपशमसम्यग्दृष्टियोके समान घटित कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुन्ना।

९ १३१. अन्तरानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आंदश । आंघसे मोहनीयकर्मक उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सब नारकी सब तिर्घ अ, सब मनुष्य, देव, भवनवासीसे लेक । सहस्रारस्वर्ग तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पक्षेन्द्रिय, सब छहों काय पाँचों मनायागी, पाँचो वचनयोगी, सामान्य काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकिम अन्वयोगी, वैक्रियककाययोगी, वैक्रियकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीर्दी, पुरुपवेदी, नपुंसक दी. कोधी, मानी, मायाबी, लोभी, तीनो अज्ञानी, असंयत, चक्षदर्शनी, अचक्षदर्शनी, ग्रुक्तके सिवा शेष पाँचो लेश्यावाले. भव्य, अभव्य. (मध्याद्दिष्ट, संज्ञी, असज्ञी, आहारक और अनाहारकोमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तको और वैक्रियकिमश्रकाययोगियोम अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है तथा उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है तथा उत्कृष्ट अन्तर मनुष्य अपर्याप्तकोमें पल्यके असंख्यातवे भाग और वैक्रियकिमश्रकाययोगियोमें बारह मुर्हु ते है ।

विशेषार्थ=आंघसे एक समयके अन्तरसे और परिणामोके अनुसार असंख्यात लोक-प्रमाण कालके अन्तरसे उत्कृष्ट अनु गकी सत्ता सम्भव है, अतः यहाँ उत्कृष्ट अनुभागवालोका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव सर्वदा पत्ये जाते हैं, अतः उनके अन्तर कालका निपंध किया है। यहाँ मूलमें अन्य जितनी मार्गणाएं गिनाई है उनमें यह आंघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है। मात्र मनुष्यअपर्याप्त और वैक्रियिक-मिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण और वारह मुहूर्त है, अतः इनमें अनु कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कालके समान कहा है।

६ १३२. श्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागविभक्ति-

एवं मणपज्जव-संजद-सामाइय-छेदोव-परिहारव-संजदासंजद-खइयसम्मादिहि ति । श्राहारव उक्कस्साणुव जहव एगसमओ, उक्कव वासपुथतं । एवमणुक्कस्सं पि वत्तव्यं । एवमाहारमिस्सव-अवगदव-स्त्रकसाव-सुहुमसांपरायव-जहाक्खादसंजदे ति । णविर अवगदवेद-सुहुमसांपरायव त्र्रणुक्कव उक्कव छम्मासा ।

१३३. श्राभिणि०-सुद०-ओहि० उक्कस्साणु० जह० एगस०, उक्क० असंखेजा लोगा। अणुक्क० णित्थ श्रंतरं। एवमोहिदंस०-सुक्क्लेस्सि०-सम्मादिष्टि०-वेदग०दिहि ति। उवसमसम्मा० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० असंखेजा लोगा। अणुक्क०
ज० एगस०, उक्क० सत्तरादिदियाणि। सासण० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क०
असंखेजा लोगा। अधवा उहयत्थ उक्कस्संतरमसंखेजा लोगा ति ण सम्ममवगम्मदे,
तदो जाणिय वत्तव्वं। श्रणुक्क० ज० एगस०, उक्क० पित्रदो० असंखे०भागा। सम्मामि०
का श्रन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी. संयत, सामायिकसंयत. छेदोपस्थापनासंयत.
परिहारिवशुद्धिसंयत. संयतासंयत और त्वायिकसम्यग्दिष्टियोमें जानना चाहिए। श्राहारककाययोगमें उन्कृष्ट श्रनुभागविभित्तिका जवन्य श्रन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट श्रन्तर वपप्रथन्त्व है।
इसी प्रकार श्रनुन्कृष्ट श्रनुभागविभित्तिका भी श्रन्तर कहना चाहिए। इसी प्रकार श्राहारकमिश्रकाययोगी, श्रपगतंबेदी, श्रकपायी, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, और यथाख्यातसंयतोंमे जानना
चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रपगतंबेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयतोंमे श्रनुन्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका उक्कष्ट श्रन्तरकाल छ माह है।

विशेषार्थ-आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमे उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागवाले जीव सर्वदा उपलब्ध होते हैं. अतः यहाँ दोनो प्रकारके अनुभागवालोके अन्तरकाचका निषेध किया है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी आदि मार्गणाओं में जानना चाहिए। आहारककाययोगका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर वर्षपृथकत्वप्रमाण है. इसिलए इनमें उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागवालोका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथकत्वप्रमाण कहा है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी आदि मार्गणाओं पिटत कर लेना चाहिए। मात्र ज्ञपकश्रेणिकी अपेता अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंका उन्कृष्ट अन्तर छह महीना है, इसिलए इनमें अनुन्कृष्ट अनुभागवालोंका उन्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है।

१ १३३. श्राभिनिवाधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रविधज्ञानियोमे उत्कृष्ट श्रनुभागिवभिक्तिका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रसंख्यात लांक है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागिवभिक्तिका श्रन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार श्रविधदर्शनी, शुक्रलेश्यावाल, सम्यग्दिष्ट श्रीर वेदकसम्यग्दिष्टियोमे जानना चाहिए। उपशमसम्यग्दिष्टियोमे उत्कृष्ट श्रनुभागिवभिक्तिका जघन्य श्रन्तरकाल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रसंख्यात लोक है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागिवभिक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर सात रात दिन है। सासादनसम्यग्दिष्टियोमे उत्कृष्ट श्रनुभागिवभिक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोक है। श्रथवा उपशमसम्यग्दिष्ट श्रीर सासादनसम्यग्दिष्टमे उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोक है। श्रथवा उपशमसम्यग्दिष्ट श्रीर सासादनसम्यग्दिष्टमे उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोक है यह बात भली प्रकार श्रवगत नहीं है, इसिलये उनका यह श्रन्तर जानकर कहना चाहिए। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागिवभिक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर पश्यके श्रसंख्यात वें

उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० पलिटो० असंखे०भागो ।

एवमुकस्सओ अंतराणुगमो समत्तो।

१३४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिह सो— ओघे० आदेसे० । तत्थ ओघेण मोह० जहण्णाणुभागस्स अंतरं केविचरं कालादो होदि । जह० एगस०, उक० इम्मासा । अज० णित्थ अंतरं । एवं मणुसतिय-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचविच०-कायजोगि--ओरालिय०-लोभकसा०-आभिण०-सुद्०-ओह०-मण-पज्ज०--संजद०--सामाइय--छेदो०--चक्खु०--अचक्खु०--ओहिदंस०--सुकले०--भविस०-सम्मादि०-खइय०-सण्णि-आहारि ति । णवरि मणुम्मिण०-ओह०-मणपज्जव०-ओहि-दंसणीमु जहण्णाणु० उक्करसंतरं वासपुथतं ।

भाग है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोमे उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोक है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर इत्कृष्ट श्रन्तर पल्यका श्रसंख्यातवाँ भाग है।

विशेषार्थ आभिनियोधिकज्ञानी आदि मार्गणाओं से अन्तर कालका खुलासा आधके समान कर लेना चाहिए। आगे की शेप मार्गणाओं में भी इसी प्रकार अन्तर काल घटित कर लेना चाहिए। मात्र इन सब उपशमसम्यग्द्रष्टि आदि मार्गणाओं में अनुन्कृष्ट अनुभागवालों का जो जघन्य और उन्कृष्ट अन्तर कहा है वह उस उस मार्गणाके जघन्य और उन्कृष्ट अन्तरकालको ध्यानमें रखकर कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट श्रन्तरानुगम समाप्त हुन्छा।

६ १३४. अव जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है-आंघ और आदेश। उनमेसे आंघसे मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागिवभक्तिका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छ मास है। अजघन्य अनुभागिवभक्तिका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार मामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी, पच्चे न्द्रिय, पच्चे न्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रमपर्याप्त, पाँचो मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदािककाययोगी, लोभी, आभिनिवािधकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अविध्रानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाियकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अविध्रदर्शनी, अङ्गलेश्यावाले, भव्य, सम्यग्द्रि, चाियकसम्यग्द्रि, सज्ञी और आहारक जीवोमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनी, अविध्रानी, मनःपर्ययज्ञानी और अविध्रदर्शनी जीवोमें जघन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त है।

विशोपार्थ-क्षपक सूक्ष्मसाम्परायका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह
महीना है, इसलिए आघसे मोहनीयके जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और
उत्कृष्ट अ तर छह महीना कहा है। आघसे अजघन्य अनुभागवालोंका अन्तर काल नहीं है
यह स्पष्ट ही है। यहाँ मनुष्यत्रिक आदि जितनी मार्गणाओंका निर्देश किया है उन सबमे
सपक्षेणि सम्भव है, इसलिए इनकी प्ररूपणा आघके समान जाननेकी सूचना की है। परन्तु
मनुष्यिनी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और अवधिदर्शनी ये चार मार्गणाएँ ऐसी हैं जिनमें

ः १३५. आदेसेण णेरइएसु मोह० जहण्णाणुभागंतरं जहएएोएा एगसमञ्जो, उक्त० असंखेजा लोगा। अज० णित्थ अंतरं। एवं पहमपुहिव-सञ्वपंचिदियतिरिक्ख-देव-भवण०-वाण०-सञ्वविगलिदिय-पंचिदियअपज्ज०-वादरपुहिवपज्ज०-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज० वादरवणण्फिदिकाइयपत्तेयसरीरपज्ज०-तसअपज्जते ति। विदियादि जाव सत्तमि ति जहएएगाजहण्णाणुभाग० णित्थ अंतरं। एवं तिरिक्खोधं जोदिसियादि जाव सञ्बद्दसिद्ध-सञ्बद्दंदिय-सञ्बदंचकाय-वेउिच्य०-ओरोलियमिस्स०-कम्मइय०-मिद-सुद्अएएगिए विद्यंग०-असंजद०-किएइ-णील काउ०-अभवसि०-मिच्छा-दिहि-असिएए-अणाहारि ति।

१३६. मणुसञ्चपज्ज० जहएणाणु० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० ज० एगस०, उक्क० पत्तिदो**०** असंखे०भागो । एवं वेउव्वियमिस्स०-सासण०दिद्धि

त्तपकश्रेणि कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक वर्षपृथक्तके अन्तरसे सम्भव है, अतः इन मार्गणाओमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उस्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तवप्रमाण कहा है।

६ १३५. आदेशसे नारिकयोमें मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवी। सब पश्चेद्रियित्रिश्च, सामान्य देव। भवनवासी, व्यन्तर, सब विकलेद्रिय, पश्चेद्रिय, अपयाप्त, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर अष्कायिक पर्याप्त, वादर तैजम्कायिक पर्याप्त, वादर तेजम्कायिक पर्याप्त, वादर त्राप्तकायिक पर्याप्त, वादर त्राप्तकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और त्रसञ्चपर्याप्तकोमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी पर्यन्त जघन्य और अजघ य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार मामान्य तिर्यञ्च, ज्योतिपी देवोंसे लेकर सर्वार्थासिद्धिपर्यन्त, सब एके द्रिय, सब पाँचो म्थावरकाय, वैक्रियिककाययोगी। श्रौदारिकिमिश्रकाययोगी। कार्मणकाययोगी। मित्रज्ञानी। श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, असयत, वृष्णलेश्यावाले, नीललंश्यावाले, कार्पातलेश्यावाले, अभव्य, मिध्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारकोमे जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यह सम्भव है कि नरकमं जघन्य अनुभागवाले असंज्ञी एक समयके अ तर-से उत्पन्न हों और असंख्यात लोकके अ तरसे उत्पन्न हो. अतः इनमें जघ य अनुभागवालोका जघन्य अ तर एक समय और उन्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण कहा है। इनमें अजघ य अनुभागवालोका अतर काल नहीं है यह स्पष्ट ही है। यहाँ प्रथम पृथिवीके नारकी आदि अन्य जितनी मार्गणाएं गिनाईं हैं उनमें यह अन्तर बन जाना है. अतः उनकी प्रकृषणा सामान्य नारिकयोके समान जाननेकी सूचना की है। द्वितीयादि नरकोमं जघन्य और अजघन्य अनुभाग-वाले सर्वदा उपलब्ध होते हैं. अतः वहाँ जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंके अन्तरकालका निषेध किया है।

ु १३६. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है। अजधन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भाग है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और सासादन

ति । णवरि वेउव्वियमिस्स० अजहरणाणु० बारस मुहुता । अधवा सासण० जह० उक्तस्संतरं पिलदो० असंखे०भागो । आहार० मोह० जहरणाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुथत्तं । एवमजहरणां पि । एवमाहारिमस्स० । इत्थि०-णवुंस० जहरणाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुथत्तं । अज० णित्थ अंतरं । पुरिस० जह० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० णित्थ अंतरं । अवगद० जह० ज० एगस०, उक्क० ब्रमासा । अज० ज० एगस०, उक्क० ब्रमासा ।

सम्यादृष्टियोमें जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमें अजबन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्न है। अथवा सासादनसम्यादृष्टियोमें जबन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग है। आहारककाययोगियोमें मोहनीयकर्मके जबन्य अनुभागका जबन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार अजबन्य अनुभागका भी अन्तर जानना चाहिए। इसी प्रकार आहारकिमिश्रकाययोगी जीवोंमे जानना चाहिए। स्वीवदी, और नपुसकवदीमें जबन्य अनुभागका जबन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथकत्व है। अजबन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। पुरुषवियोमें जबन्य अनुभागका जबन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष है। अजबन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। अपगतविद्योमें जबन्य अनुभागका जबन्य अन्तर काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष है। अजबन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। अपगतविद्योमें जबन्य अनुभागका जबन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है। अजबन्य अनुभागका जबन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है।

विश्रोपार्थ-मनुष्य अपर्याप्तकोमं सामान्य नार्राकयोके समान जधन्य अनुभागवालोके जघन्य श्रौर उत्हृष्ट अन्तर कालका घटिन कर लेना चाहिए। तथा इस मार्गणाके जघन्य श्रौर उत्कृष्ट अन्तर कालको देखकर इसमें अजघन्य अनुभागवालोका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वैकियिकमिश्रकाययागका उत्कृष्ट अन्तर वारह मुहूर्न है, इसलिए इसमे अजघन्य अनुभागवालोका उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त कहा है। शेप सब अन्तर काल मनुष्य अपर्याप्तकोके समान बन जानेसे वह उनके समान कहा है। सासादनमम्यग्द्रव्टियोमें मनुष्य अपर्याप्तकोक समान अन्तर काल प्राप्त होता है यह स्पष्ट हं। है । यहाँ विकल्परूपसे सासादनसम्यग्दिष्टियोमे जघन्य ऋनुभागवालोका जो उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है सो इसका विचारकर जान लेना चाहिए। त्राहारकद्विकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है, इसलिए इनमें दोनों अनुभागवालोका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तवप्रमाण कहा है। स्त्रीवेदी त्र्यौर नपुंसकवेदी जीवोमें क्षपकश्रेणिका जघन्य त्र्यन्तर एक समय त्र्यौर उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्वप्रमाण है. इसलिए इनमें जघन्य अनुभागवालोका जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमास कहा है। तथा इनमे अजघन्य श्रन्भागवालोंका श्रन्तर नहीं है यह स्पष्ट ही है। पुरुषविद्योमें क्षपकश्रीणका जघन्य अन्तर एक समय और उत्झट अन्तर साधिक एक वर्ष है, इसलिए इनमें जवन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय श्रौर उन्दृष्ट श्रन्तर साधिक एक वर्ष कहा है। तथा यह निरन्तर मार्गणा है इसलिए इसमें अजधन्य अनुभागवालोके अत्तरकालका निषेध किया है । मोहयुक्त अपगतवेदीका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, इसलिए इसमें जघन्य और अजघन्य श्रनुभागवालोंका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर छह महीना कहा है।

\$ १३७. कसायाणुवादेण कोध-माण-माया० नहण्णाणु० ज० एगसम्ओ, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० णित्थ अंतरं । अकसाय० नहण्णाजहण्णाणु० ज० एगसम्ओ, उक्क० वासपुध्रतं । एव नहाक्खाद० । परिहार० नहएणाजहएणाणु० णित्थ अंतरं । एवं संनदासंनद० । सुहुमसांपराय० नहएणाणु० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा । एव-मजहएणां पि । तेउ-एम्म० नहएणाजहएणा० णित्थ अंतरं । वेदग० नहएणाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुध्रतं । अज० णित्थ अतरं । उवसम० नह० ज० एगसम्ओ, उक्क० वासपुध्रतं । अज० ज० एगस०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि । सम्मामि० नह० अजह० नह० एगस०, उक्क० दोएहं पि पिनदो । असंक०भागो ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ **१३**८. भाव० सन्वत्य स्रोदइओ भावो ।

ह १३७. कपायकी अपेता कोघ मान और मायामें जघ य अनुभागका जघ य अत्तर एक समय है और उत्कृष्ट अतर कुछ अधिक एक वर्ष है। अजघ य अनुभागका अन्तर नहीं है। अकपायी जीवोमे जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त है। इसी प्रकार यथाख्यातसंयतोमें जानना चाहिए। परिहारिवशुद्धिसंयतोमें जघन्य और अजघ य अणुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार स्थनासंयतोमें जानना चाहिए। प्रिहारिवशुद्धिसंयतोमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागका भी अन्तर जानना चाहिए। तेजालेश्या और पद्मलेश्यावालोमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। वेदकसम्यग्र्टाण्ट्योमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। अजघन्य अनुभागका अघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। सम्यग्निध्याद्यां अनुभागका जघन्य अनुभागक। जघन्य अनुभागक। जघन्य अनुभागक। जघन्य अनुभागक। जघन्य अनुभागक। जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन है। सम्यग्निध्याद्यां अने असंख्यातवें भाग है।

विशेषार्थ-यहाँ क्रोध कपायसे लेकर जितनी मार्गणात्रोमे अन्तर कालका विचार किया है वह सुगम है, इसलिए उसका पृथल पृथल स्पष्टीकरण नहीं किया है। मात्र क्रोध, मान श्रोर माया कपायमे चपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है, इसलिए इनमे माहनीयके जघन्य अनुभागवालोका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है। शेष सब स्पष्ट ही है।

इस प्रकार ऋन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १३८. भावसे सर्वत्र श्रौद्धिक भाव है।

विशोषार्थ-श्रौदयिक भावके सद्भावमे मुख्य रूपसे मोन्नीयकर्मका बन्ध होता है जो उसकी सत्ताका कारए है, इसलिए यहाँ श्रौदयिक भाव कहा है।

§ १३६. अप्पाबहुअ० जीवे अस्सिद्ण वुच्चदे। तं दुविहं — जह० उक्क०। उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्दे सो — ओपे० आदेसे०। ओपे० सन्वत्थोवा मोह० उक्कस्साणुभाग-विहत्तिया जीवा । अणुक०विहत्तिया जीवा अणंतगुणा। एवं तिरिक्खोधिम्म । आदेसेण णेरइएसु सन्वत्थोवा उक्कस्साणु०विहत्तिया जीवा। अणुक० असंखे०गुणा। एवं सन्वणेरइय-सन्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ञ०-देव० भवणादि जाव अवराइद ति। मणुसपज्ञ०-मणुसिणी-सन्वदृसिद्धिदेवेसु सन्वत्थोवा मोह० उक्कस्साणु०विहत्तिया जीवा। अणुक० संखे०गुणा। एवं जाणिदण णेदन्वं जाव अणाहारि ति।

१४०, जहरणाए पयदं | दुविहो णिहे सो--श्रोघे० आदेसे० | ओघेण सव्वत्थोवा मोह० जहरणाणु०विहत्तिया जीवा | अज० अणंतगुणा | आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा मोह० जहरणाणु०विहत्तिया जीवा | अज० असंखे०गुणा | एवं सव्व-णेरइय--तिरिक्ख-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख--मणुस्स०-मणुस्सअपज्ज०-देव० भवणादि जाव अवराइदं ति | मणुसपज्ज०--मणुसिणी०--सव्वहसिद्धिदेवेसु सव्वत्थोवा मोह० जहरणाणु० जीवा | अज० संखे०गुणा | एवं जाणिदृण णेदव्व जाव अणा-हारि ति ।

एवं तेवीस अणियोगद्दाराणि समताणि।

्र१३९ अब जीवका आश्रय लेकर अल्पबहुत्व कहते हैं। वह दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टसे प्रयोजन हैं। निर्देश दो प्रकारका है — आघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। अनुक्ष्य अनुभागिवभक्तिवाले जीव उनसे अनन्तगुणे हैं। इसी प्रकार सामान्य निर्धश्वोमे जानना चाहिए। आदेशसे नारिक्योमे उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। अनुक्ष्य अनुभागिवभक्तिवाले उनसे असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पर्श्वोन्द्रय निर्यश्व, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपयात्र, देव और भवनवासीसे लेकर अपराजित तकके देवोमे जानना चाहिए। मनुष्य पर्यात्र, मनुष्यती और सर्वार्थसिद्धिके देवोमे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। अनुक्ष्य अनुभागिवभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। अनुक्ष्य अनुभागिवभक्तिवाले उनसे सख्यानगुणे है। इस प्रकार जानकर इस अल्प बहुत्वका अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

३ १४०. जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे मोहनायकर्मकी जघन्य श्रनुभागिवभक्तिवाल जीव सबसे थोड़ हैं। श्राजघन्य श्रनुभागिवभक्तिवाल जीव सबसे थोड़ हैं। श्राजघन्य श्रनुभागिवभक्तिवाल जीव श्रान्तगुणे हैं। श्राजघन्य श्रनुभागिवभक्तिवाल श्रां है। श्राजघन्य श्रनुभागिवभक्तिवाल श्रां है। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यश्व, सब पश्चोन्द्रयतियंश्व, सामान्य मनुष्य प्रयाप्त, देव श्रीर भवनवासीसे लेकर श्रपराजित विमान तकके देवोमे जानना चाहिए। मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी श्रीर सर्वार्थ-सिद्धिके देवोमें मोहनीयकर्मकी जघन्य श्रनुभागिवभक्तिवाल जीव सबसे थोड़े हैं। श्रजघन्य श्रनुभागिवभक्तिवाले उनसे संख्यातगुणे हैं। इस प्रकार जानकर इस श्रन्थबहुत्वको श्रनाहारी पर्यन्त ल जाना चाहिये।

इस प्रकार तेईस अनुयोगद्वार समाप्त हुए।

भुजगारविहत्ती

१४१. भ्रुजगारिवहतीए तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि णाद्व्वाणि भवंति — सम्रुक्तित्तणाद्दि जाव अप्पावहुए ति । तत्थ सम्रुक्तित्तणाणुगमेण दुविहो णिहे सो — अरेघेण आदेसेण । ओघेण अत्थि मोह० भ्रुजगार०-अप्पद्र०-अविद्वद०-विद्वतिया जीवा । एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ल-सव्वमणुस-सव्वदेवे ति । णविर आणदादि जाव सव्वद्वसिद्धि ति अत्थि अप्पद्र०-अविद्वद्विया जीवा । एवं जाणिद्ण णेद्व्वं जाव अणाहारि ति ।

§ १४२. सामित्ताणु० दुविहो०णिहे सो—श्रोघे० आदेसे०। तत्थ ओघेण मोह० भ्रुजगार० कस्स ? अण्णदरस्स मिच्छादिहिस्स । अप्पदर०-अविहद० कस्स ? अण्णदरस्स सम्मादिहिस्स मिच्छादिहिस्स वा । एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-देव०-भवणादि जाव सहस्सारे ति । णविर पंचिदियतिरिक्खश्रपज्ञ०-मणुसअपज्ञ० भुज०-अप्पदर०-अविह० कस्स ? अण्णदरस्म मिच्छादिहिस्स । आणदादि जाव णवगेवज्ञा ति अप्पदर०-अविह० कस्स ? अण्णद० सम्मादिहि० मिच्छादिहिस्स वा । अणुहिसादि जाव सव्वहिसिद्धि ति मोह० अप्प०-अविह० कस्स ? अण्णद० सम्मा

विशेषार्थ—जो जीव सत्तामें स्थित मोहनीयके अनुभागको बढ़ाते हैं व भुजगारविभक्ति-वाल कहे जाते हैं, जो घटाते हैं व अल्पतर विभक्तिवाल कहे जाते हैं, और जिनके मोहका अनुभाग तदबस्थ रहता है, न घटता है न बढ़ता है, व अवस्थितविभक्तिवाल जीव कहे जाते हैं। श्रोघसे और आदेशसे तीनो ही ,विभक्तिवाल जीव पाये जाते हैं. किन्तु आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विभान पर्यन्त भुजगार विभक्तिवाल देव नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि वहाँ मोहके जिस अनुभागको लेकर जीव उत्पन्न होते हैं, उसमे वृद्धि नहीं होती है।

े १४२. स्वामित्वानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है — श्रोघ और आदेश। उनमेसे श्रोघसे मोहनीयकर्मकी भुजगार्शवमिक किसके होती हैं ? किसी भी मिण्यादृष्टि जीवके होती हैं। श्राम्पतर और श्रावास्थतविभक्ति किसके होती हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि श्रीर मिण्यादृष्टि जीवके होती हैं। इसी प्रकार सब नारकी. सब तिर्यंश्व, सब मनुष्य, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमे जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पश्चित्रिय तिर्यंश्व अपर्याप्तक और मनुष्य अपर्याप्तकों भुजकार, श्रम्पतर और श्रवस्थितविभक्ति किसके होती हैं ? किसी भी मिण्यादृष्टि जीवके होती हैं। श्रानत स्वर्गसे लेकर नववैत्रयक तकके देवोंमे श्रम्पतर और श्रवस्थितविभक्ति किसके होती हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि और मिण्यादृष्टिके होती हैं । श्रानुदृश्मिसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मोहनीयकर्मकी श्रम्पतर और श्रवस्थितविभक्ति होती हैं ।

दिहिस्स । एवं जाणिदृण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

५ १४३. कालाणुगमेण दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० भुज०- ऋष्प० ज० एगस०, उक्क० ऋंतोमु० । अविह० केविचरं कालादो होटि ? ज० एगस०, उक्क० तेविहिसागरोवमसदं पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयं ।

१४४. आदेसेण णेरइएसु भुजगार० ज० एगस०, उक्क० त्रांतांसु० । अप्प-दर० जहण्यक्क० एगस० । त्रांतांसुहत्तकालो णेरइएसु किण्ण लद्धो ? ण, णेरइएसु

किसके होती हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टिके होती हैं। इस प्रकार जानकर इन विभक्तियोंके स्वामित्वको अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिये।

विशोपार्थ — त्रांघसे माहकी भुजगारिवभक्तिका स्वामी तो मिश्यादृष्टि ही होता है। किन्तु अल्पतर और अवस्थितविभक्तिकं स्वामी मिश्यादृष्टि भी होते हैं और सम्यन्दृष्टि भी होते हैं अर्थान् ओघसे माहके सक्तामे स्थित अनुभागकी गृद्धि तो मिश्यादृष्टि ही करता है किन्तु हानि और अवस्थान दोनोंके हो सकते हैं। इसी प्रकार आदेशसे भी जानना चाहिए। विशेष यह है कि पश्चे न्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक और मनुष्यअपर्याप्तकमे तीनों ही विभक्तियाँ मिश्यादृष्टिके ही होती हैं. क्योंकि उनमे सम्यक्त्व नहीं होता है। तथा आनतसे लेकर नौ प्रैयक तकके देवोम गृद्धि सम्भव न होनेसे वहाँ अल्पतर और अवस्थित पदका स्वामी मिश्यादृष्टि और सम्यन्दृष्टि दोनोंको कहा है। अनुदिश और अनुत्तरोम सब सम्यक्त्वी ही होते हैं. अतः दोनों विभक्तियाँ सम्यक्त्वीके ही होती है। इसी प्रकार अन्य मार्गणाओं जान लेना चाहिये।

्र १४६. कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रौर श्रादेश । श्रोघसे मोहनीय-कर्मकी मुजगार श्रौर श्रन्पतर्शवमिक्तका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है । श्रवस्थितविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल पत्यका श्रसंख्यातवाँ भाग श्रधिक एक सौ त्रेसठ सागर है ।

विशेषार्थ-सत्तामं स्थित अनुभागको आगेके समयम बढ़कर या घटाकर पुनः तद्वस्थ रह जानेसे भुजाकार और अल्पतरिवर्भाक्तका जघन्य काल एक समय होता है और लगातार प्रति समय बढ़ाते या घटाते जाने पर उन्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है। इससे अधिक काल तक न भुजगारिवर्भिक्त होती है और न अल्पतरिवर्भिक्त। किन्तु अवस्थितविभक्ति लगातार पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक एक सौ त्रंसठ सागर तक रह सकती है. क्योंकि किसी भागभूमिया मनुष्य या तिर्यञ्चने पल्यापमके असंख्यातवें भाग आयुके शेष रहने पर प्रथमोपशम सम्यक्तव प्राप्त करके अल्पतर किया किर मिध्यात्वको प्राप्त होगया और अवस्थितअनुभागविभक्तिवाला होगया। आयुके अन्तमे बेदकसम्यम्हिष्ट होकर दो छ्यासठ सागर तक बेदकसम्यम्हिष्ट व सम्यन्त्रिमध्याहिष्ट रहकर अन्तमे उपरिम अवयकमे उत्पन्न होकर मिध्यात्वको प्राप्त होगया। वहाँसे चय कर मनुष्य हुआ। इस प्रकार अवस्थित अनुभागविभक्तिका पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक १६३ सागर काल प्राप्त होता है।

६ १४४. त्रादेशसे नारिकयोंमें भुजगारिवभक्तिका जघन्य काल एक समय है त्रीर उत्कृष्ट काल त्रम्तर्मुहूर्त है। त्राल्पतरिवभक्तिका जघन्य त्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। अणुभागकंडएण विणा ओघिमव अणुसमयओवहणाए ऋष्पद्रस्स असंभवादो । ण च एगसमएण अणुभागकंडओ णिवददि अणुभागकंडयस्स जहण्णुकीरणद्धाए वि अंतोग्रुहुत्तपमाणनादो । बंधेण ऋष्पद्रस्स णिरंतरो अंतोग्रुहुत्तकालो किण्ण लब्भदे ? ण, अणुभागसंतस्स ऋणुसमयघादमंतरेण ऋष्पद्राणुववत्तीदो । ण च एत्थ ऋणुसमयघादो अतिथ, चारित्तमोहक्सववणाए चेव तस्स संभवादो । अविह० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसुणाणि । संपुण्णाणि किण्ण लब्भिति ? ण, णेरइएसुप्पाज्ञिय अंतोग्रहुत्तकालमगिय सम्मत्तग्गहणासंभवादो । मिच्छादिहिम्म अविहदस्स कालो तेत्तीससागरोवममेत्तो किण्ण गहिदो ? ण, मिच्छादिहीसु अंतोग्रहुत्ततादो उविर णियम्मण अजगार-अष्पद्राणं संभवादो । एवं सव्वणेरइयाणं । णविर सगिहदी देसुणा ।

शंका –नारिकयोंमे अल्पतर विभक्तिका उन्छष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण क्यो नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता. क्योंकि नारिकयोंमे अनुभागकाण्डकके बिना ओघके समान प्रतिसमय अपवर्तनाक द्वारा अल्पतरिवमिक्त संभव नहीं है। और एक समयमें अनुभाग-काण्डकका घात होता नहीं है. क्योंकि अनुभागकाण्डककी उन्कीरणाका जघन्य काल भी अन्तर्भुहूर्त प्रमाण है।

शंका-बन्धकी श्रपेत्रा श्रल्पतरविभक्तिका निरन्तर काल श्रन्तर्मुहूर्त क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान नहीं. क्योंकि अनुभागकी सत्ताका प्रति समय घात हुए बिना अल्पतर नहीं वन सकता है। और नरकमें प्रति समय घात होता नहीं है, क्योंकि चास्त्रिमोहनीयकी क्षपणा में ही प्रति समय घात संभव है।

अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है।

शंका-अविध्यतिवभक्तिका उत्क्रष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नारकियोमे उत्पन्न होकर श्रन्तर्मुहूर्त काल गये विना सम्यक्त्वका प्रहण संभव नहीं है।

शंका-मिण्यादृष्टिमे अवस्थिनविभक्तिका काल तेतीस सागर प्रमाण क्यों नहीं प्रहण किया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि मिण्यादृष्टियोमे अवस्थितिवभक्तिका काल अन्तर्मुहूर्त है। वहां अन्तर्मुहूर्तसे ऊपर उनमे नियमसे भुजगार या अल्पतरिवभक्तिका होना संभव है, अतः नरकमे अवस्थितिवभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर नहीं कहा है।

इसी प्रकार सब नारिकयोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्क्रष्ट काल कब्र कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ-आदेशसे नारिकयोमे भुजगारिवभिक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्भृहूर्त है। किन्तु श्राल्पतरिवभिक्तिका जघन्य काल भी एक समय है और उत्कृष्ट काल भी एक समय है, भुजगारिक समान अन्तर्भृहूर्त नहीं है। इसका कारण यह है कि जब

\$ १४४. तिरिक्षेसु भुज० ज० एगस०, उक्क० त्रंतोसु०। अप्प० जहण्णुक्क० एगस०। अविद्व ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पित्तदोवमाणि सादिरेयाणि। एवं पंचि-दियतिरिक्खितयिम्म। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तपसु भुज०-अविद्व० जह० एगस०, उक्क० अंतोसु०। अप्पदर० जहण्णुक० एगस०। एवं मणुसअपज्जत्ताणं। मणुसितयिम्म भुज०-अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु०। अविद्व० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पित्तदोवमाणि पुन्वको डितिभागगेण सादिरेयाणि। णविर मणुसिणीसु अंतोसुहुत्तेण सादिरेयाणि।

तक सत्तामे स्थित अनुभागका प्रति समय घात न हो तब तक अल्पतरविभक्तिका काल अन्तर्महर्त नहीं बन सकता। श्रीर वहाँ अनुभागका प्रतिसमय घात संभव नहीं है, क्योंकि अनुभागका प्रति समय घात चारित्रमाहकी चपणाम ही हाता है। सारांश यह है कि कमें कि अनुभागको लेकर स्पर्धक रचना होती है। उसमे जो स्पर्धक बहुत ऋनुभागवाले होते है उन सब स्पर्धकोमे श्रनन्तका भाग देकर बहुभागप्रमाण स्पर्घक आते हैं उनमेसे कुछ स्पर्धकोको छोड़कर शेप स्पर्धकोंके परमागुत्रोका एक भाग मात्र नीचेके स्पर्धकोमे परिग्रमाया जाता है। ऋर्थात् कुछ परमागुत्राको पहले समयमं परिणमातं है, कुछका दूसरं समयमें परिणमाते हैं। इस प्रकार श्चन्तमुहूर्त कालके द्वारा सब परमागुत्र्याको परिगामा कर उन ऊपरके स्पर्धकांका श्चभाव कर दिया जाता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा जो कार्य किया जाता है उसका नाम काण्डकघात है। इस प्रकार यद्यपि काण्डकघातमे प्रति समय त्र्यनुभागका घात होता है पर वह फालिरूपसे ही होता है. इसलिए काण्डकघातके कालमे अल्पतर्रावर्भाक्त सम्भव नहीं है। वह यहाँ अन्तर्मुहर्तके अन्तिम समयमे ही होती है। अत: न केवल नार्यक्योमे, किन्तु जिन मार्गणात्रोंमें चारित्रमोहकी चपणा नहीं होती उन सबमें श्रल्पतर्रावभक्तिका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय ही होता है। नारिकयोमे अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है किन्तु उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्तसे आधिक काल तक अवस्थित-पना सम्यग्दृष्टिके ही बन सकता है और नरकम सम्यग्दृष्टिका काल अधिकसे अधिक आदि श्रीर श्रन्तके तीन तीन श्रन्तर्मुहर्न कम तेनीस सागर होता है। इस प्रकार प्रत्येक नरकमे जानना चाहिए. अन्तर केवल इतना है कि प्रत्येक नरकमे अन्य विभक्तियोका काल तो सामान्य नारकीके समान ही होता है, केवल अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है।

ह १४५. तिर्यश्चोम मुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतरिवभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ श्रधिक तीन पल्य है। इसी प्रकार पश्चे न्द्रिय तिर्यश्च, पश्चेन्द्रियतिर्यश्चपर्याप्त श्रीर पश्चे निद्रयतिर्यश्चयांतिनीम जानना चाहिए। पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकों मे भुजगार श्रीर अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। अल्पतरिवभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकों जानना चाहिए। मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त श्रीर मनुष्यिनियों भुजगार श्रीर अल्पतरिवभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिका त्रिभाग श्रिष्ठिक तीन पत्य है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनयों स्वान्तर्मुहूर्त श्रीधक तीन पत्य है।

१४६. देवेसु भुज० ज० एगस०, उक० श्रंतोसु०। अप्पदर० जहण्णुक० एगस०। अविदि० ज० एगस०, उक० तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि। एवं भव-णादि जाव सहस्सारो ति। णविर सगिहदी भाणिद्व्वा। श्राणदादि जाव सव्वद्द-सिद्धि ति अप्पदर० जहण्णुक० एगस०। अविदि० ज० श्रंतोसु०, उक्क० सगिहदी। एवं चिंतिय णेदव्वं जाव श्रणाहारि ति।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

विशेपार्थ-कोई मिध्यादृष्टि तिर्यञ्च देवकुरु-उत्तरकुरुमें जनम लेकर श्रौर तीन पत्य तक रहकर मरकर देव होगया। उसके अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ श्रिक तीन पत्य होता है, क्योंकि भोगभूमिम उत्पन्न होनेवाले जीवके जन्म लेनेके कुछ समय पहलेसे उत्कृष्ट श्रनुभागका घात होकर अवस्थितपना सम्भव है। श्रपयाप्तकके सिवा तीनो प्रकारके मनुष्योंमें अल्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि यहाँ चपकश्रेणि होनेसे श्रनुभागका प्रतिसमय घात होना संभव है। तथा अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिका त्रिभाग श्रिक तीन पत्य है, क्योंकि कोई मिध्यादृष्टि मनुष्य एक पूर्वकोटिका त्रिभाग शेष रहने पर मनुष्यायुका बन्ध करके. सम्यक्त्वको प्रहण करके. दर्शनमोहनीयका चपण करके, सम्यक्त्वके साथ पूर्वकोटिका देशोन त्रिभाग विताकर उत्तरकुरुमे मरकर मनुष्य हुआ। श्रौर वहाँ तीन पत्य तक रहकर मरकर देव होगया, तो उस मनुष्यके अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल पूर्शेक्त होता है। किन्तु मनुष्यनीके अन्तुर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य काल होता है जैसा कि तिर्यश्वमे वतलाया है। शेष कथन सुगम है।

ु १४६. देवोमे भुजगार्रावभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्त-र्मुहूर्त है। अन्यतरिवभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेनीस सागर है। इसी प्रकार भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अन्यत्रिभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। इस प्रकार विचार करके इस कालका अनाहारी पर्यन्त ले जाना चहिये।

विशेषार्थ—सामान्य देवोमे अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर होता है. क्योंकि सर्वार्थसिद्धिकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है। आनतादिकमे तथा ऊपरके विमानोमे भुजगारविभक्ति नहीं होती। अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय होता है तथा अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अत्तर्भुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण होता है। यहाँ आनतादिकमे काण्डकघात करने पर उसके अन्तमे अल्पतरविभक्ति प्राप्त होती है, इसलिए उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा काण्डकघातके समय अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्भुहूर्त प्राप्त होता है, इसलिए इसका जघन्य काल अन्तर्भुहूर्त कहा है। और देवोके जीवन भर किया रहित होने पर अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है, इसलिए इसका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है। अन्य मार्गणाओंमें इसी प्रकार अर्थात् गतिमार्गणाके अनुसार विचार कर काल घटित कर लेना चाहिए।

- १४७. अंतराणुगमेण दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण। ओघेण मोह० भ्रुजगारिवहित्तयंतरं केविचरं कालादो होदि ? जह० एगस०, उक्क० तेविद्वसागरो-वमसदं तीहि पिलदोवमेहि सादिरेयं। अप्पद० ज० अंतोम्र०, उक्क० तेविद्वसागरो-वमसदं० पिलदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण सादिरेयं। अविद्वि० जह० एगस०, उक्क० अंतोम्र०।
- े १४८. आदेसेण णेरइएसु मोह० भ्रुज०-अप्प० ज० एगस० श्रंतोस्र०, उक्क० दोण्हं पि तेत्तीसं सागरोवमाणि देसुणाणि । अविष्ठि० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोस्र०। एवं सञ्चणेरइयाणं । णविर सगिंददी देसुणा ।
 - ९ १४६. तिरिक्खेसु मोह० भ्रुज० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०-
- § १४७. अन्तर तुगममे निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर आदेश। श्रोघ से मोहनीय-कर्मकी मुजगारविभक्तिका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय श्रीर उत्कृष्ट अन्तर तीन पत्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है , अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मूहूर्त श्रीर उन्कृष्ट अन्तर पत्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उन्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—श्रांघसे मोहनीयकी भुजगारविभक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय है, क्योंकि भुजगारके बाद एक समयके लिये श्रवस्थित या श्रन्थत्विभक्तिके हो जाने पर पुनः भुजगार-विभक्तिके होने पर जघन्य श्रन्तर एक समय होता है और उत्कृष्ट श्रन्तर तीन पत्य श्रधिक १६३ मागर है. क्योंकि कोई मनुष्य भुजगारविभक्तिको करके पुनः श्रन्थतरविभक्तिको करके मरकर देवकुरुमें उत्पन्न हुश्रा, वहाँ भुजगारविभक्ति नहीं होती। श्रन्त समयमे वेदकसम्यक्त्यको प्राप्त करके दो छ्वासठ सागर तक सम्यक्त्व व सम्यम्भिण्यात्वके साथ भ्रमण कर श्रन्तमे उपरिम प्रेवयकमे १३१ सागरकी स्थिति लेकर जन्मा और श्रन्तर्भृहूर्तके पश्चान मिण्यादृष्टि हो गया। मिण्यादृष्टि हो जाने पर भुजगारविभक्ति नहीं हुई, क्योंकि श्रन्युतादिकमे उसका निष्य है। इस प्रकार भुजगारविभक्तिका उत्कृष्ट श्रन्तर तीन पत्य श्रधिक एक मौ त्रेमठ मागर होता है। श्रन्य-तर्यवभक्तिका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्भृहूर्त है। श्रर्थान जिस प्रकार भुजगारविभक्ति और श्रवस्थित-विभक्ति एक समयके बाद भी हो जाती है उस तरह श्रन्थतरविभक्ति नहीं होती। तथा उत्कृष्ट श्रन्तर पहले श्रवस्थितविभक्तिका जो उत्कृष्ट काल एक सौ त्रेमठ मागर और पत्यका श्रसंख्यानवीं भाग बतलाया है उतना ही है। श्रवस्थितविभक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्भुहूर्त है; क्योंकि पहले भुजगार श्रीर श्रन्थतर्यिभक्तिका श्राप्त होता ही हता ही काल बतलाया है। वह यहाँ श्रवस्थितका श्रन्यरकाल जानना चाहिए।

§ १४८. आदेशसे नारिकयोंमे मोहनीयकर्मकी भुजगारिवभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और अल्पतरिवभक्तिका जघन्य अन्तर समय है और अल्पतरिवभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्महूर्न है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितिवभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महूर्त है। इसी प्रकार सब नारिकयोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि भुजगार और अल्पतरिवभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण लेना चाहिए।

ु १४९. तिर्य[ु]चोंमें मोहनीयकी भुजगारविभक्तिका जघन्य ऋन्तर एक समय **है ऋौ**र

भागो । अप्पद्रव जिंव श्रंतोमु०, उक्क० तिष्णि पिलदोवमाणि श्रंतोमुहुत्तेण सादि-रेयाणि । अविद्याल एगस०, उक्क० श्रंतोमु० । एवं पंचिदियतिरिक्खितयस्स । णविर मोह० भुज० ज० एगसमश्रो, उक्क० पुन्वकोडिपुधर्त । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० भुज०-अविद्यु ज० एगस०, श्रप्पद्रव ज० श्रंतोमु०, उक्क० सन्वेसिमंतोमुहुत्तं । एवं मणुसअपज्ज० । मणुसतियम्स पंचिदिय०तिरिक्खभंगो । णविर भुज० उक्क० पुन्वकोडी देसुणा ।

१५०. देवेस मोह० भुज० श्रंतरं केव० ? ज० एगस०, उक्क० श्रद्वारस-सोगरो० सादिरेयाणि । अप्पदर० ज० श्रंतोमु०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देमूणाणि । अविह० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोमु० । एवं भवणादि जाव सहस्सारो ति । णविर भुज०-अप्प० उक्क० सगिंददी देमूणा । श्राणदादि जाव णवगेवज्जा ति अप्पदर० ज० श्रंतोमु०, उक्क० सगिंददी देमुणा । अविह० जहण्णुक्क० एगस० । श्रणुहिसादि जाव सन्वहिसिद्धि ति श्रप्पदर० जहण्णुक्क० श्रंतोमु० । श्रविह० जहण्णुक्क० एगसमओ । एवं जाव अणोहारि ति चिंतिय णेदच्वं ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

उत्कृष्ट अन्तर पत्यकं अमंख्यावे भाग है। अन्वतर्गवर्भाक्तका जयन्य अन्तर अन्तर्मृहूर्त हैं और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहूर्त अधिक तीन पत्य है। अविभ्यतिवर्भाक्तका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहूर्त है। इसी प्रकार पश्चे न्द्रियतिर्यञ्च, पश्चे न्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और पश्चे न्द्रियतिर्यञ्च व्याप्त और अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पृत्रकोटिष्ट्रथवन्वप्रभाण है। पश्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोमे अजगार और अवस्थितविभक्तिका जयन्य अन्तर एक समय है. अन्तरिविभक्तिका जयन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सब विभक्तियोका उत्कृष्ट अन्तर अन्

§ १५०. देशोम मोहनीयकर्मकी मुजगारविभक्तिका अन्तर कितना है १ जवन्य अन्तर एक समय है और उन्क्रष्ट अन्तर कुछ अधिक अष्टारह सागर है। अन्यतरिवभक्तिका जवन्य अन्तर यन्तर्म हुन है और उन्क्रष्ट अन्तर कुछ कम इक्तीस सागर है। अविध्यतिवभक्तिका जवन्य अन्तर एक समय है और उन्क्रष्ट अन्तर अन्तर्म हुन है। इस प्रकार भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वगपर्यन्न जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमे भुजगार और अल्पतरिवभक्तिका उन्क्रप्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। आनत स्वर्गसे लेकर नववैवेयक तकके देवोम अन्पतरिवभक्तिका जवन्य अन्तर अन्तर्महूर्त है और उन्क्रप्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अपनिवभक्तिका जवन्य अन्तर अन्तर्महूर्त है और उन्क्रप्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अपनिवभक्तिका जवन्य और उन्क्रप्ट अन्तर एक समय है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्ध तकके देवोम अल्पतर्गवभक्तिका जवन्य और उन्क्रप्ट अन्तर अन्तर्महूर्त है। अवस्थितविभक्तिका जवन्य और उन्क्रप्ट अन्तर एक समय है। इस प्रकार अन्तर्महूर्त है। अवस्थितविभक्तिका जवन्य और उन्क्रप्ट अन्तर एक समय है। इस प्रकार अन्तर्महूर्त है। अवस्थितविभक्तिका जवन्य और उन्क्रप्ट अन्तर एक समय है। इस प्रकार अन्तर्महूर्त है।

र १५१. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिइ सो---ओघेण आदेसेण । तत्थ ओघेण मोह० भुज०-अप्पद्र०-अविह० णियमा अत्थि। एवं तिरिक्खोघं।

विशेपार्थ-त्रादेशसे सभी मार्गणात्रोमं भुजगार्यवभक्तिका जवन्य त्रान्तरकाल एक समय है। श्रन्पतरविभक्तिका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर श्रवस्थितका जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर उन्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहर्त है, जैसा कि श्राघसे वतलाया है। विशेषता केवल भूजगार श्रीर श्रन्पतर्रावभक्तिके उत्कृष्ट श्रन्तरकालमे है. जो कि इस प्रकार है—सामान्य नार्राकयोंमे दोनो विभक्तियोका उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि सातवे नरकका एक मिध्यादृष्टि नारकी भुजगार्रावभक्तिको करके पुनः अल्पतरविभक्ति करके सम्यन्द्रष्टि हुआ और थोड़ी आयु शेष रहने पर सम्यक्त्वसे च्यून होकर पुन: भिष्याहप्ट हो गया श्रौर वहाँ उसने भुजगार्यवर्मक्त की तो उसका उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम ततीस सागर होना है। इसी प्रकार अल्पतरविभक्तिका भी लगा लेना चाहिये। प्रत्येक नरकमे इसी प्रकार कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । तिर्यञ्जोंमे भूजगारविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर पन्यके असंख्यातवें भाग है. क्योंकि पञ्चे न्द्रियोमे भुजगारको करके पुन: एकेन्द्रियोमे जन्म लेकर पत्यके ऋसख्यातवें भाग काल तक भुजगारके विना अनुभागसत्कर्मको करके पुनः भुजगार करने पर भुजगारिवर्मक्तका अन्तरकाल पत्यके ऋसंख्यातवें भाग होता है और ऋल्पतरावमिक्तका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहर्त ऋधिक तीन पत्य है, क्योंकि कोई तिर्यश्च अल्पतर करके भोगभूभिमें उत्पन्न हो गया और तीन पत्यकी -प्रायुकं अन्तम काण्डकघात किया तो यह अन्तरकाल प्राप्त होना है। पञ्च निद्रय तियं च. पञ्चे -न्द्रियपर्याप्र ऋार पश्चोन्द्रियतिये अयोनिमतियोमे भुजगारका उत्कृष्ट ऋन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है, क्योंकि इनमेसे कोई तिर्यश्च संज्ञी दशामें भुजगारको करके मरकर ऋसंज्ञी पश्चीन्द्रिय तिर्यञ्च हो गया और वहाँ पूर्वकोटिपृथक्त काल तक रामान अनुभाग सत्कर्मको करके मरकर पुन: सज्जी पश्चोन्द्रिय हुन्ना त्र्यौर वहाँ उसने भुजगार्गवर्भाक्त की तो उतना अन्तरकाल होता है। तीन प्रकारके मनुष्योमे भूजगारका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि है. क्योंकि किसी मनुष्य ने त्राठ वर्षकी त्रवस्थामे भुजगारको करके पश्चान सम्यक्तवको प्राप्त किया त्र्यौर मृत्युसे कुछ काल पहले सम्यक्त्वसे च्युत होकर पुन: भुजगारिवर्भक्तिको किया नो भुजगारका उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि होता है। यहाँ शेप कथन पश्चोन्त्रिय तिर्यश्चोकं समान है। देवोमं भुजगारका उन्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अट्टारह सागर है, क्योकि कोई संज्ञी मिण्याद्दष्टि निर्यश्व या मनुष्य शतार महस्रारमे जन्म लेकर भुजगारको करके पश्चान सम्यग्द्रष्टि हो गया. मरनेके पहले सम्यक्त्वसे च्युत होकर उसने पुनः भुजगारिवर्भक्त की तो भुजगारका उन्कृष्ट अन्तर साधिक त्रद्वारह सागर होता है, इससे ऋधिक इमिलये नहीं हो मकता कि अच्युतादिकमें भुजगार नहीं होता। तथा ऋल्पतरका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस भागर उपरिम प्रैवयककी ऋपेचासे जानना चाहिए। प्रै ।यकसे ऊपरके देव सम्यन्द्रिष्ट ही होते हैं, अतः उनमे अल्पतरका अन्तर अन्तर्मुहर्तसे अधिक नहीं होता. क्योंकि एक अनुमागकाडककी अन्तिम फालिके पतनके समय अल्पतर्वभक्ति होती है। उसके बाद दूसरे अनुभागकाण्डककी अन्तिम फालिके पतन होनेमे एक अन्तर्महर्न काल लगता है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

१५५१. नाना जीवोकी अपेक्षा भंगविचय अनुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और आदेश। उनमेंसे ओघसे मोहनीय कर्मकी भुजाकार, अन्पतर और अवस्थितविभक्तिवाल जीव

आदेसेण णेरइएसु मोह० सुज०-अविह० णियमा ऋत्थि । अप्पदर० भजिद्वा । सिया एदं च अप्पदरविहित्ति छो च १ । सिया एदं च अप्पदरविहित्ति या च २ । धुवे पित्स्वते तिण्णि भंगा ३ । एव सव्वणरइय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुस-दंव-भवणादि जाव सहस्सारो ति । मणुसअपज्ञ० मोह० सव्वपदा भयणिज्ञा । भंगा छव्वीस २६ । आण्दादि जाव सव्वहिसिद्धि ति मोह० अविह० णियमा अत्थि । अप्पदर० भजियव्वा । सिया एदं च अप्पदरिवहित्यो च २ । एत्थ धुवे पित्स्वते तिण्णि भंगा ३ । एवं जाणिद्णै एोद्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो ।

नियमसे हैं। इमी प्रकार सामान्य तिर्य श्वाम जानना चाहिए। आदेशसे नारिकयोम मोहनीयकी सुजगार श्रीर श्रवस्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। श्रव्पतरिवभक्तिवाले जीव भजनीय हैं। कदाचित इन विभक्तिवालोंके साथ एक अल्पतरिवभक्तिवाला जीव होता है। कदाचित् इन विभक्तिवालोंके साथ श्रनेक अल्पतरिवभक्तिवाले जीव होते हैं। इस प्रकार इन दोनो भंगोम एक प्रुव भंगके मिलानेसे तीन भंग होते हैं। इस प्रकार सब नारकी. सब पश्चे न्द्रिय तिर्यश्च, सब मनुष्य, सामान्य देव श्रीर भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोमे जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्रकोम मोहनीयके सब पद भजनीय है। भङ्ग छर्ट्यास होते हैं। श्रानतसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त मोहनीयकी श्रवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे होते हैं। श्रव्पतरिवभक्तिवाले जीव भजनीय हैं। कदाचित इस विभक्तिवालोंके साथ एक श्रव्पतरिवभक्तिवालों जीव होता है १। कदाचित् इस विभक्तिवालोंके साथ एक श्रव्पतरिवभक्तिवालों जीव होते हैं २। इस प्रकार इन दोनो भङ्गोम प्रुव भङ्गके मिलानेसे तीन भङ्ग होते हैं ३। इस प्रकार भङ्गविचयका जानकर उसे श्रनाहारकमार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विश्षेषार्थ — त्रांवसे तीनो ही विभक्तिवालं जीव नियमसे पायं जाते हैं. उनका कभी त्रामा नहीं होता। त्रांदेशसे नार्राक्योम मुजगार त्रांर अविध्यतिवभक्तिवालं ता नियमसे पाये जाते हैं त्रीर अल्पतरिवभक्तिवालं विकल्पसे पाये जाते हैं। अतः तीन मंग होते हैं — मुजगार और अवस्थितिवभक्तिवालं जीव नियमसे होते हैं. यह एक ध्रुव मंग है तथा दो अध्रुव मंग है — कदाचित् मुजगार और अवस्थितिवभक्तिवालंकं साथ एक अल्पतरिवभक्तिवालां जीव पाया जाता है और कदाचित् इन दोनो विभक्तिवालंकं साथ अल्पतरिवभक्तिवालं अनेक जीव पायं जाते हैं। सब नारिकयों, सब पञ्च न्द्रिय तिर्यञ्चों, सब मनुष्यों, सामान्य देवां और भवनवासीसे लेकर सहसारपर्यन्त तकके देवोमं तीन मंग होते हैं। किन्तु मनुष्य अपर्याप्तक सान्तर मार्गणा है, अतः उसमे सभी पद विकल्पसे होते हैं और मंग छन्वीस होते हैं — १ कदाचित् मुजगारिवभक्तिवाला एक जीव होते हैं। २ कदाचित् अल्पतरिवभक्तिवाला एक जीव होता है। २ कदाचित् अल्पतरिवभक्तिवाला एक जीव होता है। ४ कदाचित् अल्पतरिवभक्तिवाला एक जीव होता है। ४ कदाचित् अल्पतरिवभक्तिवाला एक जीव होता है। ८ कदाचित् स्वतिस्वतिभक्तिवाला एक जीव होता है। ८ कदाचित् सुजगारवाला एक जीव स्रोर अल्पतरवाला एक जीव होता है। ८ कदाचित् सुजगारवाला एक जीव स्रोर अल्पतरवाला एक जीव होता है। ८ कदाचित् सुजगारवाला एक जीव स्रोर अल्पतरवाला एक जीव होता है। ८ कदाचित् सुजगारवाला एक जीव स्रोर अल्पतरवाला एक जीव होता है। ८ कदाचित् सुजगारवाला एक जीव स्रोर अल्पतरवाला एक जीव होते हैं। ९ कदाचित् सुजगारवाला

^{9.} आ॰ प्रतो भ्रवट्टि॰ णियमा अन्धि सिया इति पाठः । २० ता॰ प्रतो एवं सन्वर्णेरइयसन्व जाणिहुण इति पाठः ।

§ १५२. भागाभागाणु० दुविहो णिइं सो—ओघेण आदेसेण । ओघे० मोह० भुज० सव्वजीवाणं केविडओ भागो ? संखे०भागो । अप्पदर० केव० ? असंखे०-भागो । अविह० केव० ? संखेजा भागा । एवमसंखे०-अणंतजीवरासीणं वत्तव्वं । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० भुज०-अप्पदर० सव्वजीव० केव० ? संखे०भागो । अविह० संखेजा भागा । आणदादि जाव अवराइद ति अप्पदर० सव्वजी० केव० ? असंखे०-भागो । अविह० असंखेजा भागा । सव्वहिसिद्धिदेवेसु अप्पदर० सव्वजीव० केव० ?

एक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है। १० कदाचित् भुजगारवाला एक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। ११ कदाचित् भुजगारवाले अनेक जीव श्रीर अल्पनरवाला एक जीव हाता है। १२ कदाचित भुजगारवाले अनेक जीव और श्रुल्पतरवाले अनेक जीव हाते हैं। १३ कदाचित मुजगारवाले अनेक जीव श्रीर अवस्थितवाला एक जीव होता है। १४ कदा-चिन भूजगारवाल अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। १५ कदाचिन अन्यतर वाला एक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है। १६ कदाचित अल्पतरवाला एक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। १७ कदाचिन अल्पतरवाले अनेक जीव और अवस्थित वाला एक जीव होता है। १८ कदाचिन अल्पतरवाले अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। १९ कदाचिन भुजगारवाला एक जीव, अन्पतरवाला एक जीव और अर्वास्थत-वाला एक जीव होता है। २० कदाचिन भूजगारवाला एक जीव. अरुपतरवाला एक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। २१ कर्दाचित् भुजगारवाला एक जीव, अल्पतरवाले अनेक जीव श्रौर श्रवस्थितवाला एक जीव होता है। २२ कदाचिन मूजगारवाला एक जीव, श्रस्पतर-वाले अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं। २३ कटाचिन भुजगारवाले अनेक जीव. अल्पतरवाला एक जीव श्रीर अवस्थितवाला एक जीव होता है। २४ कदाचिन भूजगारवाल त्रानेक जीव त्रान्पतरवाला एक जीव त्रारे त्रावस्थितवाल त्रानेक जीव होते है। २५ कदाचित भूजगारवाल स्त्रनेक जीव, स्रत्पतरवाले स्रनेक जीव स्त्रीर स्रवस्थितवाला एक जीव होता है। ्र २६ कदाचिन भूजगारवाले स्रनेक जीव, स्रल्पनरवाले स्रनेक जीव स्रीर स्रवस्थितवाले स्रनेक जीव होते हैं। त्र्यानतसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त त्र्यवस्थिनविभक्तिवाले जीव नियमसे पाये जाते हैं। अतः यह एक प्रव भंग होता है और अल्पतरका लेकर दो अध्रव भंग होते हैं। इस प्रकार तीन भंग होते हैं। यहाँ चार गतियोंकी अपेचा ही भङ्गविचयका विचार किया है। शेष मार्ग-गात्रोंमे इसे ध्यानमे रखकर जान लेना च*ा*हिए।

इस प्रकार नाना जीवोंकी ऋपेत्ता भङ्गविचयानुगम समाप्न हुऋा ।

्र १५२ भागाभागानुगमकी ऋषेचा निर्देश दो प्रकारका है — श्रोघ श्रौर श्रादेश । श्रोघसं मोहनीयकर्मकी भुजगारविभक्तिवाल जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । श्रविभ्यतिवभक्तिवाल जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ! श्रविभ्यतिवभक्तिवाल जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ! संख्यात बहुभाग है । इसी प्रकार श्रसंख्यात श्रौर श्रनन्त जीवराशियोंका कथन करना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त श्रौर मनुष्यिनियोंमें भुजगार श्रौर श्रन्तरविभक्तिवाल जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग हैं । श्रविभ्यतिवभक्तिवाल जीव सव जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग हैं । श्रविभित्त विमान तकके देवोंमें श्रन्तरविभक्तिवाल जीव सव जीवोंके कितने भाग हैं ? श्रसंख्यातवें भाग हैं । श्रविभित्तविभक्तिवाल जीव सव जीवोंके श्रसंख्यात बहुभाग हैं । सर्वार्थिसिद्धिक देवोंमें श्रन्यतर्यविभक्तिवाल विभक्तिवाल जीव सव जीवोंके श्रसंख्यात बहुभाग हैं । सर्वार्थिसिद्धिक देवोंमें श्रन्यतर्यविभक्तिवाल

संखे॰भागो । अविह॰ संखेजा भागा । एवं जाणिदृण णेदव्वं जाव ऋणाहारि ति । एवं भागाभागाणुगमो समत्तो ।

१५३, परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्दे सो—त्र्योघेण आदेसेण । त्र्योघेण मोह० भुज०-अप्पद्रग०-अविह० दृब्यपमाणेण केविडया ? अणंता । एवं तिरिक्खोधिम्म ।

१५४. आदेसेण णेरइएसु सन्वपद्वि० असंखेजा। एवं सन्वणेरइय--सन्व-पंचिदियतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसअपज्ज०-देव०--भवणादि जाव अवराइदं ति। मणुस-पज्जत्त-मणुस्सिणि-सन्वहिसद्धिदेवेसु सन्वपद्वि० संखेज्जा। एवं जाणिद्ण णेदन्वं जाव अणाहारि ति।

एवं परिमाणाणुगमो समत्ता ।

जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग है । त्र्यवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोके संख्यात बहुभाग हैं । इस प्रकार भागाभागानुगमको जानकर ऋनाहारकमार्गणा पर्यन्त ले जाना जाहिये ।

विशेषार्थ—श्रांघसे मुजगारिवभिक्तवालं सव जीवांके सख्यातवें भाग होते हैं, श्रन्यतर-विभिक्तवालं श्रसंख्यातवें भाग होते हैं और श्रवस्थितविभिक्तिवालं संख्यात बहुभाग होते हैं। इसका कारण यह है कि श्रवस्थितविभक्तिका काल बहुत श्रिधक है। तथा मुजगारिवभिक्त श्रौर श्रम्यतरिवभिक्तिका काल यद्यिप श्रोघसे समान है फिर भी श्रम्पतरिवभिक्तिका श्रन्तमुंहूर्त काल केवल कियाविशेषके समय ही होता है। श्रमः काल ममान होने पर भी श्रम्पतरिवभिक्तवालं कम है श्रौर मुजगारिवभिक्तवालं श्रिधक है। जिन मार्गणाश्रोमं जीवराशि श्रमख्यात या श्रमन्त है उनमं इसी प्रकार भागाभाग जानना चिक्रिण। मनुष्य पर्याप्त श्रौर मनुष्यिनियोका प्रमाण सख्यात है. श्रतः उनमे संख्यातिकभाग तो मुजगार श्रौर श्रम्परिवभिक्तवालं होते है श्रौर संख्यात बहुभाग श्रवस्थितविभक्तिवालं होते है। श्रानतसे लेकर श्रपराजित विमान पर्यन्त प्रत्येकमं जीवराशि यद्यपि श्रसंख्यात है, किन्तु उनमं मुजगारिवभिक्ति बहुभागप्रमाण जीव श्रवस्थितविभक्तिवालं होते हैं श्रोर श्रसख्यात बहुभागप्रमाण जीव श्रवस्थितविभक्तिवालं होते हैं। सर्वार्थसिद्धिक देवोका श्रमाण संख्यात है, श्रतः उनमे संख्यातेकभाग जीव श्रवप्तरवालं श्रौर संख्यात बहुभाग श्रवस्थितवालं होते हैं।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुन्त्रा ।

१ १५३. परिमाणानुगमकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है — आंघ और आदेश। आंघसे मोहनीयकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले द्रव्यप्रमाण्से अर्थान् गणनाकी अपेक्षा कितने हैं १ अनन्त हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यभ्वांमे जानना चाहिए।

\$ १५४. श्रादेशसे नारिकयोमे सब विमक्तिवाले जीव श्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पश्चे न्द्रियतिर्यश्च. सामान्य मनुष्य, मनुष्य श्रपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर श्रपराजिन विमान तकके देवोमे जानना चाहिए। मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी और सर्वार्थ-सिद्धिके देवोमे सब विभक्तिवाले संख्यात हैं। इस प्रकार परिमाणानुगमको जानकर उसे श्रनाहारक मार्गणाप्यन्त ले जाना चाहिये।

१५५. खेताणुगमेण दुविहो णिहे सो—श्रोघेण आदेसेण । ओघेण मोह०
भुज०-अप्प०-अविह०विहत्तिया केव० खेते ? सन्वलोगे । एवं तिरिक्खोघं । सेसमग्गणासु मोह० सन्वपदा लोगम्स श्रसंखे०भागे । एवं जाणिद्ण णेदन्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं खेताणुगमो समतो।

१५६. पोसणाणु० दुविहो० णिइ सो — ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० तिण्णिपद्विहत्तिएहि केविडयं खेनां पोसिटं ? सव्वलोगो । एवं तिरिक्खोघं । आदे-सेण णेरइएसु सव्वपद्विहत्तिएहि केविडयं खेनां पोसटं ? लोगस्स असंखे०भागो छचोइसभागा देस्णा । पढमपुढवि० खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तिमि ति तिण्हं पदाणं सगपोसणं वत्तव्वं। सव्वपंचिदियितिर्वख-सव्वमणुस्साणं सुज०-अप०-अविड०

विशेषार्थ—भागाभागानुगममे तो यह वनलाया गया था कि अमुक विभक्तिवाले अपनी अपनी जीवराशिके कितने भाग प्रमाण हैं। पिमाणानुगममे उनका परिमाण बतलाया गया है। अंघिसे तीनो ही विमक्तिवालोका परिमाण अनन्त है। आदेशसे जिन मार्गणाओं जीवराशि असंख्यात है उनमे प्रत्येक विभक्तिवालोका परिमाण असंख्यात है. जिनमें जीवराशि संख्यात है उनमें प्रत्येक विभक्तिवालोका परिमाण संख्यात है और जिनमें जीवराशि अनन्त है उनमें प्रत्येक विभक्तिवालोका परिमाण अनन्त है।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुन्त्रा ।

६ १५५. चेत्रानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रौर श्रादेश। श्रोघसे मोहनीय कर्मकी मुजगार. श्रात्पतर श्रौर श्रवस्थितिवभक्तिवाले जीव कितने चेत्रमे पाये जाते है ? सर्व लोकमे। इसी प्रकार सामान्य तिर्यंचोमे जानना चाहिए। रोप मार्गणाश्रोमे मोहनीयकी सब विभक्तिवाले जीव लोकके श्रसंख्यानवें भागमे रहते हैं। इस प्रकार चेत्रानुगमको जानकर उसे श्रनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ-श्रांघसे तीनो पदवालोका सर्वलोक चेत्र सम्भव है इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्वोम भी घटित कर लेता चाहिए। शेष गतियोम वर्तमान चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है यह देखकर उनमे वह श्रपन श्रपने सम्भव पदोंकी श्रपेचा उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा पर्यन्त शेष भागणाश्रोमे चेत्र जानना चाहिए।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

§ १५६. स्पर्शनानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे मोहनीय कर्मकी तीनों विभक्तिवाले जीवोने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? समस्त लोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्चोंमे जानना चाहिए। श्रादेशसे नारिकयोमे सब विभक्तिवाले जीवोने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके श्रसंख्यातवें भागका श्रीर त्रसनालीके चौदह भागोमें कुछ कम छह भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पहली प्रथिवीमें चेत्रके समान भंग है। दूसरीसे लेकर सातवी प्रथिवी पर्यन्त तीनों विभक्तियोंका श्रपना श्रपना स्पर्शन कहना चाहिये। सब पश्चे न्द्रिय तिर्यश्च श्रीर सब मनुष्योंमें मुजगार, श्रन्पतर श्रीर श्रवस्थितविभक्तिन

लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । देवेसु भुज० अप्प०-अविद्वि केव० १ लोग० असंखे०भागो अह-णवचोइस० देसूणा । एवं सव्वदेवार्गा । णविर सगसगपोसण वत्तव्वं । एवं जाणिदृण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

ः १५७. कालाणुगमेण दुविहो णिद्दोसो—त्रोघेण आदेसेण य । स्रोघेण मोह० तिण्णिपद०वि० सव्वद्धा । एवं तिरिक्खोघं ।

वालोंका म्पर्शन लोकका श्रसंख्यातयाँ भाग श्रीर सर्व लोक है। देवोंमे भुजगार, श्रल्पतर श्रीर श्रवम्थितविभक्तिवालोने कितने चेत्रका म्पर्शन किया है ? लोकके श्रसख्यातवें भागका श्रीर चौदह भागोंमेंमे कुछ कम श्राठ श्रीर कुछ कम नौ भागप्रमाण चेत्रका म्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंमे जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रपना श्रपना म्पर्शन कहना चाहिये। इस प्रकार म्पर्शनानुगमको जानकर उसे श्रनाहारक मार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिए।

विशापार्थ-त्रादेशसं नरकगतिमं सब विभक्तिवाले नारिकयोंने मारणान्तिक श्रीर उपपाद के द्वारा अतीत कालमें कुछ कम छह बंट चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और शेष संभव पदोंके द्वारा अतीतकालमे तथा संभव सभी पदोंके द्वारा वर्तमान कालमे लोकके असंख्यातवें भाग चेत्रका स्पर्शन किया है। पहले नरकमे सम्भव सभी पदोके द्वारा लोकके असंख्यातवें भाग न्नेत्रका स्पर्शन किया है। दूसरे से सातवें नरक तक सभी विभक्तिवाले नारिकयोने मारणान्तिक श्रीर उपपाद पदके द्वारा श्रतीन कालमे दसरे नरकमे कुछ कम एक बटे चौदह, तीसरेमे कुछ कम दो बट चौदह, चौथेमें कुछ कम तीन बट चौदह, पॉचवेंमें कुछ कम चार बट चौदह, छटेमे कुछ कम पाँच बटे चौदह और सातवेंम कुछ कम छै बटे चौदह भाग प्रमाण चेत्रका म्पर्शन किया है तथा संभव शेप पदोके द्वारा ऋतीत कालमे ऋौर संभव सभी पदोके द्वारा वर्तमान कालमे लोकके ऋसंख्यानवें भाग चेत्रका म्पर्शन किया है। सब पश्चे न्द्रियतिर्यश्च और सब मनुष्योंमें तीनो विभक्तिवाले जीवोने मारगान्तिक और उपपाद पदके द्वारा अतीत कालमे सर्वलोकका स्पर्शन किया है ऋौर संभव शेष पदोके द्वारा ऋतीतकालमें तथा संभव सभी पदोंके द्वारा वर्तमान कालमे लोकके त्र्यसंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है। सामान्य देवोमे तीनों विभक्तिवाले जीवोने विहार वस्वस्थान, वंदना, कपाय, श्रौर विक्रियापदके द्वारा श्रतीत कालमे कुछ कम श्राठ वंट चौदह राज चेत्रका स्पर्शन किया है श्रीर मारणान्तिक पदके द्वारा श्रतीत कालमे कुछ कम नौ बट चौदह राज त्रेत्रका स्पर्शन किया है। तथा सभव पदोंके द्वारा वर्तमान कालुमे श्रीर स्वस्थानस्वस्थान पदके द्वारा अतीत कालमें लोकके असंख्यातवें भाग होत्र का म्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंमें अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये। स्रोघसे सब लोकप्रमाण स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है। इस प्रकार इस स्पर्शनको ध्यानमे रखकर भुजगार त्र्यादि पदोकी श्रपेत्ता त्र्याघसे व चारो गतियोमे स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। अन्य मार्गणाओमे भी अपना अपना स्पर्शन जानकर जिस पदकी ऋषेचा जो स्पर्शन सम्भव हो उसे जान लेना चाहिए।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुन्त्रा।

१५७. कालानुगमकी ऋषेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ऋषेच और ऋषेश। ऋषेसे मोहनीयकी तीनों विभक्तियोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्वोंमे जानना चाहिए।

१४८. आदेसेण णेरइएसु भुज०-श्रविहि० सव्बद्धा। अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० आविह्० असंखे०भागो । एवं सव्वणेरइय--सव्वपंचिदियतिरिवख--मणुस्स-देव०-भवणादि जाव सहस्सारा ति । णविर मणुस्सेसु अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोसु०। एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणी०। मणुसअपज्ज० मोह० भुज०-श्रविह० ज० एगसमओ, उक्क० पितदो० असंखे०भागो। अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० आविह० असंखे०भागो। आणदादि जाव अवराइद ति अप्पदर०-अविह० णेरइय-भंगो। सव्वहे अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अविह० सव्वद्धा। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि ति।

एवं णाणाजीवेहि कालाणुगमो समतो।

ू १५८. श्राइंशसे नारिकयों में भुजगार और श्रवस्थितिवभक्तिका काल सर्वदा है। श्रव्य-तर्विभिक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रावली के श्रसंख्यातवें भाग है। इसीप्रकार सब नारकी, सब पश्चे न्त्रिय तिर्यश्च, सामान्य मनुष्य, सामान्य देव और भवनवासी से लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवों में जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यों में श्रव्यवयीत श्रीर मनुष्यत्वय काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रव्यन्त्रिह्न है। इसी प्रकार मनुष्यपर्यात्र श्रीर मनुष्यत्वयां स्वर्णयानियां माना चाहिए। मनुष्य श्रप्यात्रका में मोहनीयकी मुजगार और श्रवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके श्रसंख्यातवें भाग है। श्रव्यत्वभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रावली के श्रसंख्यातवें भाग है। श्रानत स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवां से श्रव्यत्वर श्रीर श्रव्यत्विभक्तिका मंग नार्राकयों समान है। सर्वार्थिसिद्धिमें श्रव्यत्वभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रवस्थितिवभक्तिका काल सर्वदा है। इसप्रकार कालानुगमको जानकर उसे श्रनाहारक मार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ-श्रादेशसे सभी गतियोमे भुजगार श्रीर श्रविस्थितियभिक्तवाले जीव तो सर्वद। पाये जाते हैं, केवल मनुष्य श्रपर्याप्रकोमें इन दोनो विभक्तिवाले नाना जीवोका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल पल्यका श्रसंख्यातवाँ भाग है. क्योंकि यह सान्तर मार्गणा है श्रीर इसका उत्कृष्ट काल पल्यके श्रसंख्यातवे भागप्रमाण होता है। परन्तु श्रल्पतरिवभक्तिवाले नाना जीवोंका काल जघन्यसे एक समय श्रीर उत्कृष्टसे श्राविलका श्रसंख्यातवाँ भाग होता है। श्रथीत किसी भी गतिमे श्रल्पतरिवभक्तिवाले जीव कमसे कम एक समय तक श्रीर श्रधिक श्राविलके श्रसख्यातवें भाग काल तक ही पाये जा मकते है उसके पश्चान कुछ काल ऐसा श्राजाता है जिसमें एक भी श्रल्पतरिवभक्तिवाला जीव नहीं होता। मात्र श्रानतसे लेकर श्रपराजित तकके देवोमे भुजगारिवभक्ति नहीं होती। रोप दो होती हैं. इसलिए उनमे भुजगारिक सिवा रोप दोका काल कहा है। तथा सर्वार्थसिद्धिमें श्रल्पतरिवभक्तिवालोका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। सामान्य तिर्वश्वोंमें श्रल्पतर विभक्तवाले भी सर्वदा पाये जाते हैं. इसलिए इनमे तीनोंका काल सर्वदा कहा है श्रीर इसी श्रपेत्तासे श्रोघकी श्रपेत्ता भी तीनोंका काल सर्वदा कहा है।

\$ १५६. श्रंतराणुगमेण दुविहो णिहे सो--ओघेण आदेसेण | श्रोघेण मोह० तिण्णिपद्विहित्तियाणं णित्थ श्रंतरं । एवं तिरिक्खोघं । श्रादेसेण णेरइएसु भ्रुज०-श्रविह० णित्थ श्रंतरं । अप्प० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोमु० । एवं सव्वणेरइय-सव्व-पंचिंदियतिरिक्ख-मणुसतिय-देव भवणादि जाव सहस्सार ति । मणुसअपज्ञ० तिण्णिपदिवि० ज० एगस०, उक्क० पिट्टिं। असंखे०भागो । आणदादि जाव णवगेवज्ञा ति अप्प० ज० एगस०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि । श्रविह णित्थ श्रंतरं । श्रणुहिसादि जाव सवहिसिद्धि ति अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० वासपुथतं पित्दो० संखे०भागो । श्रविह० णित्थ श्रंतरं । एवं जाणिद्ण णेद्व्वं जाव अणाहारि ति ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

१५९ अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दे। प्रकारका है – आंघ और आदंश। आंघसे मोहनीयकी तीनो विभक्तियों का अन्तरकाल नहीं है। इसीप्रकार सामान्य निर्यक्ष्म जानना चाहिए। आदेशसे नारिक्यों में भुजगार और अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूत है। इसीप्रकार सब नारकी, सब पश्चे न्द्रिय तिर्यक्ष, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्तकामें तीनो विभक्तिस्थानों का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाए है। आनत स्वर्गसे लेकर नव प्रैं उसक कक देवामे अल्पतर्यिभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन है। अवस्थितविभक्तिका अम्तर नहीं है। अनुद्रासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों अल्पतर्यिभक्तिका अपन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन है। अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है। अनुद्रासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों अल्पतर्यिभक्तिका जघन्य अन्तर नहीं है। अर्वास्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है। अर्वास्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है। अर्वास्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है। इसप्रकार अन्तरानुगमको जानकर उसे अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशोपार्थ-श्रोघसं व श्रादेशसे सामान्य तिर्यश्चामं तो तीनों ही विभक्तिवाले सर्वदा पाये जाते हैं, श्रातः श्रान्तर नहीं है। श्राप गिनयोमं भुजगार श्रीर श्रविध्यत्वाले सर्वदा पाये जाते है, श्रातः उनका श्रान्तर नहीं है। किन्तु मनुष्य श्रप्याप्तकोमं तीनों विभक्तिवालोका जघन्य श्रान्तर एक समय श्रीर उन्कृष्ट श्रान्तर पत्यके श्रासंख्यातवे भागप्रमाण होता है, क्योंकि यह सान्तर भागणा है श्रीर उनका जघन्य श्रान्तरकाल एक समय श्रीर उन्कृष्ट श्रान्तरकाल पत्यके श्रासंख्यातवे भागप्रमाण है। श्रान्यविभक्तिका श्रान्तर सब नारिकां सब पश्चिन्द्रियातर्यश्ची, तीन प्रकारके मनुष्यो, सामान्य देवों श्रीर भवनवासीमं लेकर सहस्रारपर्यन्त तकके देवोमं जघन्य से एक समय श्रीर उन्कृष्ट श्रान्तर्माले लेकर सब प्रविचक तकके देवोमं श्रान्य समय श्रीर उन्कृष्ट श्रान्तर सात रात दिन होता है, क्योंकि उनमे प्रथमोपशमसम्यक्त्वके श्रीममुग्व हुए जीवके उन्कृष्ट हानि बतलाई है श्रीर प्रथम सम्यक्त्वका जघन्य श्रान्तरकाल एक समय श्रीर उन्कृष्ट श्रान्तर सात रात दिन बतलाया है तथा श्रानुदिशा-दिकमेसे श्रापाजित नकके देवोमे श्रान्तरश्चामार्गिका उन्कृष्ट श्रान्तरकाल वर्ष प्रथक्त श्रीर सर्वार्थसिद्धिमं पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण है। श्रेप कथन सुगम है।

१६०. भावाणु० सव्वत्थ ओदइओ भावो । एवं भावाणुगमो समत्तो ।

१६१. अप्पावहुगाणु० दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण। तत्थ ओघेण सन्बत्थोवा अप्पदरविहत्तिया जीवा। भुज०विहत्ति० असंखे०गुणा। अविहि०वि० संखे०गुणा। एवं चदुसु वि गदीसु। णविर मणुसपज्जत-मणुसिणीसु संखेज्जगुणं कायव्वं। आणदादि जाव अवराइदं ति सन्वत्थोवा अप्पदरविहत्तिया। अविहि० आसंखे०गुणा। सन्बहे सन्वत्थोवा मोह० अप्पदरविहत्तिया। अविहिदवि० संखे०गुणा। एवं जाणिद्ण णेदन्वं जाव आणाहारि ति।

एवं भुजगाराणुगमो समतो।

पदणिक्खेवो

ः १६२. पदणिक्खेवे ति तत्थ इमाणि [तिण्णि] अणिओगहाराणि— समुक्तित्तणा सामित्तमप्पाबहुद्यं चेदि । को पदणिक्खेदो १ भुजगारविसेसो । ण च पुणरुत्तदा, जहण्णुकस्सविट्ट-हाणि-अवद्वाणेसु पिडवद्धतादो ।

े १६०. भावानुगमकी ऋषेत्ता सर्वत्र ऋौदियक भाव है। इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुः ॥।

ह १६१. अल्पबह्त्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। उनमेसे श्रोघसे अल्पतरिवमिक्तवाले जीव सबसे थोड़े हैं। भुजगार्गवमिक्तवाले उनसे असंख्यातगुरेष हैं। अविश्वायमिक्तवाले उनसे असंख्यातगुरेष हैं। अविश्वायमिक्तवाले उनसे सख्यातगुरेष हैं। इसीप्रकार चारो ही गितियोम जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यपर्याप्त श्रीर मनुष्यिनयोम असंख्यातगुरेष स्थानमे संख्यातगुरेषा करना चाहिये। श्रानतसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोम अल्पनरिवमिक्तवाले सबसे थोड़े हैं। उनसेअवस्थितविमक्तिवाले असंख्यातगुरेष है। सर्वार्थिमिद्धिमे मोहनीयके अल्पतरिवमिक्तवाले सबसे थोड़े हैं। अवस्थितविमक्तिवाले उनसे सख्यातगुरेष है। इसप्रकार अल्पबहुत्वको जानकर उसे अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

इस प्रकार भुजगारानुगम समाप्त हुआ।

पदनिक्षेप

ुं १६२. श्रव पदिनन्तेपका कथन करते हैं। उसमे ये श्रनुयोगद्वार हैं—समुस्कीर्तना, स्वामित्व श्रौर श्ररुपवहुत्व।

शंका-पदनिचेप किसे कहते हैं ?

समाधान-भुजगार विशेषको पदनिचेष कहते हैं।

यदि कहा जाय कि जब पदिनक्षेप भुजगारका ही एक विशेष है तो उसके कथन करनेसे पुनरुक्त दोप आता है. क्योंकि भुजगारका कथन पीछे कर आये हैं। किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि पदिनक्षेपमे जघन्य और उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानका कथन किया जाता है, अत: पुनरुक्त दोप नहीं है।

१६३. समुक्तिनणाणुगमो दुविहो — जहण्णश्रो उकस्सओ चेदि। तत्थ उकस्सए पयदं। दुविहो णिहं सो — श्रोघेण आदेसेण। ओघेण अत्थि मोह० उकस्सिया वड्ढी उक्क० हाणी अवद्वाणं च। एवं चदुमु गदीमु। णविर आणदादि जाव सव्वद्वसिद्धि ति श्रीतथ उक्क० हाणी अवद्वाणं च। एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवमुकस्सिया समुक्तिनणा समत्ता।

१६४. जहण्णए पयदं | दुविहो णिहे सो — ओघेण आदेसेण | स्रोघेण अत्थि जहण्णिया वट्टी हाणी अवद्वाण च | एवं चदुसु वि गदीसु | णवरि आणदादि जाव सन्वद्वा ति अत्थि जहण्णिया हाणी स्रवद्वाणं च | एवं जाव अणाहारि ति |

एव समुक्तित्तणाणुगमो समत्तो ।

१६५. सामित्तं दुविहं — जहण्णमुक्कसं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहे सो — ओघेण आदेसेण । स्रोघेण मोह० उक्कस्सिया वट्टी कस्स ? अण्णदरो जो तप्पास्रोग्ग-

विशेषार्थ-यद्यपि पदिनद्वेष भुजगार अनुगमका ही एक भेद है फिर भी इसमे उससे अन्तर है। भुजगार अनुगममें तो भुजगार, अल्पतर और अविभिधतिवभक्तियोका वर्णन है और पदिनद्वेषमे उन विभक्तियोंके कारण बृद्धि, हानि और अवस्थानका वर्णन है।

ह १६३ समुन्कीर्तनानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेसे यहाँ उत्कृष्ट से प्रयोजन हैं । निर्देश दो प्रकारका है —श्रोघ श्रीर श्रादेश । श्रोघसे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि श्रीर श्रवस्थान होता है, श्रर्थान् मोहनीयकर्मकी उन्कृष्ट वृद्धि भी होती है, उन्कृष्ट हानि भी होती है श्रीर उन्कृष्ट श्रवस्थान भी हीता है । इसीप्रकार चारो गतियोम जानना चाहिए । इतनी विशेषना है कि श्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोम उत्कृष्ट हानि श्रीर उत्कृष्ट श्रवस्थान होता है । उन्कृष्ट वृद्धि नहीं होती । इसप्रकार उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि श्रीर उत्कृष्ट श्रवस्थानको जानकर उसे श्रनाहारी तक लेजाना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

ू १६४ अब जघन्यसे प्रयोजन हैं। निर्देश दो प्रकारका है— श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि श्रीर जघन्य श्रवस्थान होता है। इसप्रकार चारो गतियोसे जानना चाहिए। इननी विशेषता है कि श्राननसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंसे जघन्य हानि श्रीर जघन्य श्रवस्थान होता है, वृद्धि नहीं होती। इसप्रकार श्रनाहारी पर्यन्त जानना चाहिए।

विश्रोपार्थ-श्रोपकी तरह श्रादेशसे भी चारो गितयोम उत्क्रष्ट श्रीर जघन्य शृद्धि हानि श्रीर श्रवस्थान होते हैं, किन्तु श्रानतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि नकके देवोमे न उत्क्रिट शृद्धि होती है श्रीर न जघन्य वृद्धि, क्योंकि उनमे भुजगारका श्रभाव है।

इस प्रकार समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ।

६ १६५. स्वामित्व दो प्रकारका है -जचन्य श्रीर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है-श्रोघ श्रोर श्रादेश । श्रोघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट बृद्धि किसके होती है ? जो जहण्णाणुभागसंतकम्मादो उक्कस्साणुभागं बंधमाणओ तस्स उक्कस्सिया वट्टी। तस्सेव से काले उक्कस्सम्बद्दाणं। उक्किस्सया हाणी कस्स ? अण्णदरेण उक्कस्साणुभागकंदए हदे तस्स उक्किस्सया हाणी। एवं सन्वणेरइय-तिरिक्ख-चउक्क०-मणुस्सितिय-देव-भवणादि नाव सहस्सारकप्पो ति। पंचिदियतिरिक्खअपज्ञ० उक्क० वट्टी कस्स ? अण्णदरो जो तप्पाओग्गनहण्णाणुभागसंतकम्मादो तप्पाओग्ग-उक्कस्साणुभागवधं गदो तस्स उक्किस्सया वट्टी। उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो मणुस्सो मणुस्तिणी वा पंचिदियतिरिक्खपज्जत नाणिओ वा उक्कस्साणुभागसंतकिम्मओ उक्कस्साणुभागकंडयं घादयमाणो पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववण्णो तेण उक्कस्साणुभागकंडए हदे तस्स उक्किस्सया हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवद्दाण। एवं मणुसअपज्जताणं। आणदादि जाव णवगेवज्जा ति उक्किस्सया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जेण उक्कास्साणुभागकंडयं हदं तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवद्दाणं। अणदादि जाव पवगेवज्जा ति उक्किस्सया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जेण तप्पाओग्गउक्कस्साणुभागकंडयं हदं तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवद्दाणं। अणदादि जाव पवनेवज्जि विसंजोएमाणेण पदममणुभागसंतकिम्मयवेदगसम्मादिद्विणा अणंताणुवंधिचउक्कं विसंजोएमाणेण पदममणुभागकंडयं हदं तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवद्दाणं। एवं जाणिद्ण

अपने योग्य जघन्य अनुमानवाल सन्कर्मस उत्कृष्ट अनुभानका वन्य करता है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है और उसीक अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानि किसक होती है ? जिस जीवके उत्कृष्ट अनुमागवाल कर्मोंकी सत्ता है वह जीव जब उत्कृष्ट अनुमागकाण्डकका घात करना है ता उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार सब नारकी. सामान्य तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, पञ्चेन्द्रयतिर्यञ्चयोनिनी, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त. मनुष्यिनी, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोमे जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकांमे उत्कृष्ट शृद्धि किसके होती है ? जिसके अपने योग्य जघन्य अनुभागकी सत्तावाले कर्मीका अम्तित्व है वह जब अपने योग्य उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है ता उसके उन्कृष्ट वृद्धि होती है। उन्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिस मनुष्य. मनुष्यनी अथवा पश्चे न्द्रियतिर्यश्चके उन्कृष्ट अनुमागकी सत्तावाले कर्मीका अस्तित्व है वह उन्कृष्ट अनुभागकाण्डकका चात करता हुन्ना पञ्चोन्द्रयितर्यञ्चत्रपर्याप्रकोम उत्पन्न हुन्ना । उसके द्वारा उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर उसके अबृष्ट हानि होती है और उसीके श्रनन्तर समयमें उक्तृष्ट त्रवस्थान हाता है। इसीप्रकार त्रपर्याप्त मनुष्योंके जानना चाहिए। त्रानत स्वर्गसे लेकर नवप्रैवेयक तकके देवोमे उन्क्रष्ट हानि किसके होती है ? उन्क्रष्ट अनुभागकी सत्तावाला प्रथम सम्यक्त्वके अभिमुख जो देव पहले अनुभागकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है और उसी के अनन्तर समयमे उत्कृष्ट अवस्थान होता है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमे मोहकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? अपने योग्य उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाले जिस वंदकसम्यम्द्रष्टिने स्नाननतानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करते हुए प्रथम श्रनुभागकण्डकका घात कर किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। उसीके श्रनन्तर

१. भा॰ प्रतौ पंचिदियतिरिक्खजीशिभो इति पाठः।

णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवमुकस्सवड्रिसामित्ताणुगमो समत्तो ।

१ १६६, जहएएए पयदं। दुविहो णिहे सो — ओघेएा आदेसेरा। ओघेएा मोह० जहिएए। बही हाणी अवहाएं च कस्स ? अएए। दरस्स अणंतभागेण विहृद्ण बंधे जहिएए। बही । तिम्म चेव कंडयवादेए हदे जहिएए। हाएा। एगद्रत्थ अवहाणं। एवं चदुसु गदीसु। ए। विर आए। दा जाव सव्वहिसिद्धि ति जहिएए। या हाए। कस्स। अएए। दरस्स अणंताणुवंधिच उक्कं विसंजोएमाए। वेद्गसम्मादिहिस्स चिरमअणुभागकंडए हदे तस्स जहिएए। या हाए। । तस्सेव से काले जहुएए। मवहाएं। एवं जाए। दूण णेद्वं जाव अएए। रित्ते।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो।

समयमे उत्क्रट अवस्थान होता है। इस प्रकार जानकर उत्क्रप्ट वृद्धि आदिको अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ-श्रांघसं श्रपने यांग्य जघन्य श्रनुभाग सत्कर्मवाला जो जीव उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है उसके उत्कृष्ट बृद्धि होती है और उसीके श्रान्तर समयम उत्कृष्ट श्रान्थान होता है। तथा उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्मवाले जीवके द्वारा उत्कृष्ट श्रनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर उत्कृष्ट हानि होती है। नार्यकयों. चार प्रकारके तिर्यश्वों, तीन प्रकारके मनुष्यों, सामान्य देवों श्रीर भवनवासीसे लेकर सहस्रार नकके देवोंमं इसी प्रकार जानना चाहिए। पश्चोन्द्रय तिर्यश्व श्राप्यांत्र श्रीर मनुष्य श्रप्याप्तकांमं कुछ श्रन्तर है जो मूलमं बतलाया ही है। विशेष बात यह है कि उनमे उत्कृष्ट हानिवालेके उत्कृष्ट श्रवस्थान बतलाया है। इसका कारण यह है कि उनके उत्कृष्ट वृद्धिसे उत्कृष्ट हानिवालेके उत्कृष्ट श्रवस्थान होता है। इसी प्रकार श्रान्तसे लेकर सर्वार्थिसिद्धि तकके देवोंमं जानना चाहिए। उनमें वृद्धि तो होती ही नहीं, हानि ही होती है श्रीर उत्कृष्ट हानिवालेके ही उत्कृष्ट श्रवस्थान होता है।

इस प्रकार उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामित्वानुगम समाप्त हुन्ना।

् १६६. जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—श्राघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे मोहनीयकी जघन्य वृद्धि. जघन्य हानि श्रीर जघन्य श्रवस्थान किसके होता है ? जो श्रन्यतर जीव श्रनन्तवें भाग श्रिषक श्रनुभागका बन्ध करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है श्रीर क ण्डकघात के द्वारा उसी श्रनन्तवें भाग श्रमुभागका घात कर दिये जाने पर जघन्य हानि होती है। तथा इन दोनों वृद्धि-हानियामे से किसी एक स्थानमे जघन्य श्रवत्थान होता है। इसीप्रकार चारो गतियोंमें जानना चाहिए। कुछ विशेषता इस प्रकार है—श्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि किमके होती है ? श्रनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करनेत्राला श्रन्यतर वेदकसम्यग्दृष्टि देव जब श्रन्तिम श्रनुभागकाण्डकका घात कर देता है तब उसके जघन्य हानि होती है। उसीके श्रनन्तर समयमें जघन्य श्रवस्थान होता है। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

१६७. अप्पाबहुगं दुविहं — जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिहे सो —
 ऋोघेण आदेसंण । अंघेण सञ्बत्थोवा मोह० उक्कस्सिया हाणी। वड्डी अवटाणं चे
 दो वि सिरसाणि विसेसाहियाणि । एवं सञ्बणेरइय-सञ्वितिरवस्त-सञ्वमणुस्स-देव०
 भवणादि जाव सहस्सारो ति । णविर पंचिदियतिरिवस्वअपज्ञ०-मणुसअपज्ञ० सञ्ब तथोवा उक्कस्सिया वड्डी । हाणी अवटाणं च दो वि सिरसा अणंतगुणा । आणदादि
 जाव सञ्बद्दिसिद्ध ति हाणी अवटाणं च दो वि सिरसाणि । एवं जाणिदूण णेवञ्बं
 जाव अणाहारि ति ।

एवमुकस्सओ अप्पावहुगाणुगमो समत्तो ।

विशेषार्थ - त्रोघसे जघन्य वृद्धि श्रीर जघन्य हानिका प्रमाण समान है, अतः जघन्य वृद्धिवालेका भी जघन्य अवस्थान होता है और जघन्य हानिवालेका भी जघन्य अवस्थान होता है। इसी प्रकार चारो गतियों में जानना चाहिए। किन्तु आनतसे लेकर सर्वार्थिसिद्धि तकके देवोमें हानि ही होती है, अतः जघन्य हानिवालेके ही जघन्य अवस्थान होता है। तथा उत्कृष्ट स्वामित्वके कथनमे अनुदिशादिकमे प्रथम अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर उत्कृष्ट हानि वतलाई थी. और यहाँ चरम अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर जघन्य हानि वतलाई है. इसका कारण यह है कि चरम अनुभागकाण्डकसे प्रथम अनुभागकाण्डकमें बहुत अधिक अनुभागकी सत्ता होती है।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ।

\$ १६७ अल्पबहुत्व दो प्रकारका है — जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है — अघ और आदेश । आघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट हानि सब सबसे थोड़ी है । उससे वृद्धि और अवस्थान दोनो समान होकर कुछ अधिक है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यश्व. सब मनुष्य. मामान्य देव. और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोम जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि पश्चे न्द्रियतिर्यश्वअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तकोमे उत्कृष्ट वृद्धि सबसे थोड़ी है । उससे हानि और अवस्थान दोनो समान हो कर अनन्तगुरे है । आनतसे लेकर सर्वार्थ-सिद्धि पर्यन्त हानि और अवस्थान दोनो समान है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विश्लोषार्थ-त्रोघसे जीवके जो उत्कृष्ट हानि होती है उसका प्रमाण सबसे कम है, उसके उत्कृष्ट गृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानका प्रमाण अधिक है, किन्तु परस्परमे दोनोका बरावर है. क्योंकि स्वाभित्वानुगममे जिसके उत्कृष्ट वृद्धि बनलाई है उसीके उत्कृष्ट अवस्थान भी बनलाया है। इसी प्रकार चारो गतियोंमें जानना चाहिए। किन्तु पश्चे न्द्रियतिर्यश्चअपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमे उत्कृष्ट वृद्धिका परिमाण वम है और उत्कृष्ट हानिका प्रमाण वृद्धिसे अधिक है। तथा आनतादिकमें वृद्धि तो होती ही नहीं. अतः उत्कृष्ट हानिवालेके ही उत्कृष्ट अवस्थान होनेसे दोनोंका परिमाण समान कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ।

[🤋] ता० प्रती उक्कस्सिया वड्ढी । हायी चवट्टायां च इति पाठः ।

\$ १६८. जहण्णए पयदं | दुविहो णिहेसां— ऋषिण आदेसेण | ऋषिण मोह० जहण्णिया वड्ढी हाणी ऋवद्वाणं च तिष्णि वि सिरसाणि | एवं चदुसु गदीसु | णविर आणदादि जाव सन्वद्वसिद्धि ति जहण्णिया हाणी ऋवद्वाणं च दो वि सिरसाणि | एवं जाणिदृण णेदन्वं जाव अणाहारि ति |

एवं पटणिक्खेवो ति समत्तमणिओगदारं।

विश्वविहत्ती

१६६. बिट्टिविहत्तीए तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्तित्तणादि जाव अप्पाबहुए त्ति । का बट्टी णाम १ पदणिक्खेविविसेसो । ण पुणरुत्तदा, सामण्णादो विसेसस्स सन्वत्थ पुधत्तुवलंभादो ।

§ १६८. जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है-श्रोघ श्रौर श्रादेश। श्रोघसे मोहनीयकी जघन्य वृद्धि. जघन्य हानि श्रौर जघन्य श्रवस्थान तीनो समान हैं। इसी प्रकार चारो गतियोम जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमे जघन्य हानि श्रौर श्रवस्थान दोनों समान हैं। इस प्रकार जानकर श्रनाटारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशोपार्थ-श्रोघसे जीवके जितनी जघन्य वृद्धि होती है उतनी ही जघन्य हानि भी होती है श्रतः तीनोका परिमाण समान कहा है, कमती बढ़ती नहीं कहा है। इसी प्रकार चारो गतियोम भी जानना चाहिए। किन्तु श्रानतादिकमे वृद्धि नहीं होती, श्रतः वहां हानि श्रीर श्रव-स्थानका प्रमाण समान कहा है।

इस प्रकार पदनित्तेष अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

दृद्धिविभक्ति

् १६९. अब वृद्धिविभक्तिका कथन करते हैं। उससे समु कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व-पर्यन्त तेरह अनुयोगद्वार होते हैं।

शङ्का-वृद्धि किसे कहते हैं।

समाधान-पदिनिचेप विशेषको बृद्धि कहते हैं। ऐसा होने पर भी बृद्धिका कथन करनेमें पुनरक्त दोषकी आशङ्का नहीं करनी चाहिये. क्योंकि सर्वत्र सामान्य कथनसे विशेष कथन पृथक् उपलब्ध होता है।

विशेषार्थ-जैसे भुजगारिवभक्तिका ही एक विशेष पदानिचेष है, वैसे ही पदिनचेषका एक विशेष शृद्धिवभक्ति है। पदिनचेषमे मोहनीयके अनुभागसत्त्वमे उत्कृष्ट और जघन्य शृद्धि, उत्कृष्ट और जघन्य हानि तथा उत्कृष्ट और जघन्य अवस्थानका कथन किया है। किन्तु शृद्धिवभक्तिमे छ प्रकारकी शृद्धि, छ प्रकारकी हानि और अवस्थानका कथन किया है। सारांश यह है कि पद निचेषमे शृद्धि आदिका सामान्य सपसे कथन है और शृद्धिवभक्तिमें शृद्धि और हानिके छ छ भेदों

१. म्रा० प्रती सन्वस्थ पुरुवुत् वर्त्वभादो इति पाठः ।

\$ १७०. तत्थ समुक्तिनणाणुगमेण दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण । श्रोघेण मोहणीयस्स ऋत्थि छवड्डीओ छहाणीश्रो अविष्ठदं च । एवं चदुमु गदीमु । णविर आण-दादि जाव सन्बहिसिद्धि ति अत्थि अणंतगुणहाणी अविष्ठदं च । एव जाणिद्ण णेदन्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं समुक्तिनणाणुगमो समनो ।

\$ १७१. सामित्ताणु० दुविहो णिद्दोसी—ओघेण आदेसेण। ओघेण मोहणीयस्स छवडीओं पंचहाणीओं कस्स ? अण्णद्० मिच्छादिहिस्स। अणंतगुणहाणी अविहदं च कस्स ? अण्णद्रस्स सम्मादिहिस्स भिच्छाइहिस्स वा। एवं चदुसु गदीसु। णविर पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० छवडीओ छहाणीओ अविहदं च कस्स ? अण्णद्० मिच्छाइहिस्स। आणदादि जाव णवगेवज्जा ति अणंतगुणहाणी अविहदं च कस्स ? अण्णद्० सम्माइहिस्स मिच्छाइहिस्स वा। अणुद्दिसादि जाव सव्वहिस्सि कि अणंतगुणहाणी अवहाणं च कस्स ? अण्णद्रस्स सम्माइहिस्स। एवं जाणि-

को लेकर कथन किया है। व भेद है अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभाग-वृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि। इसीप्रकार हानिके भी छह भेद होते हैं। तथा इनके बाद होनेवाले अवस्थानका भी इसमें विचार किया गया है।

\$ १७०. उनमेसे समुन्कीर्तनानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है-स्रोध स्रीर स्रादेश । स्रोधसे मोहनीयकर्मकी छ वृद्धियाँ. छ हानियाँ स्रीर स्रवस्थान होते हैं । इसीप्रकार चारो गिनयोम जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि स्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थीमाद्ध तकके देवोमें स्नाननगुणहानि स्नीर स्रवस्थान होता है । इसप्रकार जानकर स्नाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेपार्थ-स्रांघकी नग्ह चारो गतियोमें भी मोहनीयके स्रानुभागकी छहों बुद्धियां, छहो हानियां और स्रवस्थान होते हैं। किन्तु स्रानतादिकमें केवल स्रनन्तगुणहानि और स्रवस्थान ही होते हैं।

इसप्रकार समुन्कीर्ननानुगम समाप्त हुआ।

\$ १७१. स्वाभिन्यानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—स्रोच स्रोर स्रादेश। स्रोघसे मोहनीयकी छ वृद्धियाँ स्रोर पाँच हानियाँ किसके होती हैं ? किसी एक मिण्यादृष्टि जीवके होती हैं । सनन्तगुणहानि स्रोर स्रवस्थिति किसके होती हैं ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि स्रोर मिण्यादृष्टिके होती हैं । इसीप्रकार चारों गतियोमें कथन करना चाहिए। किन्तु कुछ विशेषता है जो इसप्रकार है— पश्चेन्द्रियत्तर्यश्च स्रपर्यात्र स्रोर मनुष्य स्रपर्यात्रकोमें छ वृद्धियाँ, छ हानियाँ स्रोर स्रवस्थिति किसके होती हैं ? किसी भी मिण्यादृष्टिके होती हैं । स्रानतसे लेकर नवस्रैवेयक पर्यन्त स्रनन्त-गुणहानि स्रोर स्रवस्थिति किसके होती है । किसी भी सम्यग्दृष्टि स्रोर भिण्यादृष्टिके होती है । स्रनुदेशसे लेकर सव र्थमिद्धि तकके देवोमें स्रनन्तगुणहानि स्रोर स्रवस्थान किसके होती हैं ?

१. ता० त्रती मोहणीयस्स श्रव्धि छवहीश्रो इति पाठः। २. ता० श्रा०प्रभ्योः छहाणीश्रो इति पाठः।

दृण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं सामित्ताणुगमा समतो ।

§ १७२. कालाणु० दुविहो णिह सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० पंच-वड्ढी० केवचिरं कालादो होंति ? जह० एगसमओ, उक्क० त्रावित् असंखे०भागो । त्रणंतगुणवड्डि-हाणिओ केव० ? ज० एगसमओ, उक्क० त्रंतोमु० । पंचहाणिकालो जहण्णु-कस्सेण एगसमन्त्रो । अविद्वि० ज० एगस०, उक्क० तेविद्वसागरोवमसद पिलदो० असंखे०भागेण सादिरेयं ।

ः १७३. आदेसेण णेरइएसु मोह० पंचवट्टी केविचरं कालादो होति ? ज० एगस०, उक्क० आवल्णि० असंग्वे०भागो । अणंतगुणवट्टी ज० एगस०, उक्क० अंतोसु०। इहाणी० जहण्णुक्क० एगस० । अविद्वि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसु-णाणि । एवं सव्वणेरइयाणं । णविर सगिंददी देसुणा । एवं तिरिक्ग्वेसु । णविर्

किसी भी सम्यन्द्रष्टिके होते हैं। इस प्रकार आनकर अनाहारी एयन्त ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ-छोघसे मोहनीयके छनुभागमत्कर्ममे छहो बृद्धिया और पाँचो हानियाँ मिश्याहिष्ठ जीवके होती है किन्तु अनन्तगुग्हिश्त और अवस्थान मध्यक्षिके भी होते है और मिश्याहिष्ठके भी होते है। छादंशसे चारो गतियोमें भी यह। व्यवस्था है। किन्तु पर्ध्व न्द्रियतिर्थच्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त चूँ कि मिश्याहिष्ठ ही होते हैं। अत. उनमें मिश्याहिष्ठके ही सब बृद्धियाँ, मब हानियाँ और अवस्थान होते हैं। तथा आननादिकमें अनन्तगुग्हिश्त और अवस्थान होते हैं। तथा आननादिकमें अनन्तगुग्हिश्त और अवस्थान ही होते हैं और अनन्तगुग्हिश्त और अवस्थान दोनोंके ही होते हैं। किन्तु अदिद्शादिकमें सब सस्य-रिष्टि ही होते हैं, अतः अनन्तगुग्हिश्त और अवस्थान दोनोंके ही होते हैं। किन्तु अदिद्शादिकमें सब सस्य-रिष्टि ही होते हैं। अतः अनन्तगुग्रहानि और अवस्थान सार्थिशन सस्याहिष्ठ के ही होते हैं।

इसप्रकार स्वर्शनत्वानुगम समाप्त हुआ।

१७२. कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है - स्रोघ और अपदेश । स्रोघसे एक जीवके मोहनीयकी पाँचों वृद्धियोका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है स्रोर उन्कृष्ट काल स्वाविके स्नमध्यानमें भागप्रमाण है। स्नानतगुण्याद्वि स्रोर स्वाविको क्षमध्यानमें भागप्रमाण है। स्नानतगुण्याद्वि स्रोर स्वाविको कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है स्रोर उन्कृष्ट काल स्नम्य है । स्वाविको प्रचन्य स्रोर उन्कृष्ट काल एक समय है। स्वाविकोत्तका जघन्य काल एक समय है स्रोर उन्कृष्ट काल पत्यका स्नमध्यानयों भाग स्राधिक एकसी त्रेसठ सागर है।

् १७३ आदेशसे नारिकयोमे मोहनीयकी पाँचो वृद्धियोका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवे भागप्रमाण है। अनन्तगुण्यद्भिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवे भागप्रमाण है। अनन्तगुण्यद्भिका जघन्य काल एक समय है। अवस्थानका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब नारिकयोमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार तिर्यक्षोमें जानना चाहिए।

अविह० ज० एगस०, उक्क० तिण्णिपिलदो० सादिरेयाणि । एवं पंचिदियतिरिक्ख-चउक्कस्स ? णविर पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० अविह० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । मणुसतिएसु ओघभंगो । णविर अविह० ज० एगस०, उक्क० तिण्णिपिलदो० पुन्व-कोडितिभागेण सादिरेयाणि । मणुस्सिणीसु अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि । मणुसअपज्ज० पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । देव० भवणादि जाव सहस्सारो ति णेरइयभंगो । णविर अविह० सगसगुक्कस्सिहिदी । भवण०-वाण०-जोदिसि० देस्णा । आणदादि जाव सन्वहिसिद्धि ति अर्णतगुणहाणी जहण्णुक्क० एगस० । अविह० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगसगुक्कस्सिदिही । एव जाणिदण णेद्व्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं कालाणुगमो समतो।

टतनी विशेषता है कि अवस्थानका जघन्य काल एक समय है और उत्कष्ट काल कुछ अधिक तीन पत्य है। इसीप्रकार पर्ञ्चान्द्रियतिर्यञ्च पर्ञ्चान्द्रियतिर्यञ्च पर्ञ्चान्द्रयतिर्यञ्च पर्ञ्चान्द्रयतिर्यञ्च पर्ञ्चान्द्रयतिर्यञ्च पर्ञाप्त एञ्चे न्द्रियतिर्यञ्च योनिनी और पञ्चे न्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोमें अवस्थितका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सामान्य मनुष्य मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यितियोमें ओघके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवस्थितिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्य है। तथा मनुष्यित्योमें अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य है। मनुष्यअपर्याप्तकोमें पञ्चे न्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोके समान भग है। सामान्य देव व नवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोमे नार्राक्योक समान भग है। इतनी विशेषता है कि अवस्थानका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। किन्तु भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोमें अवस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अवन्य्योमको जिकर सर्वार्थमिद्धि तकके देवोमें अनन्तगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्व है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसप्रकार जानकर अनाहार्रा पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ-श्रांघसे एक जीवकं पाँचां वृद्धियां कमसे कम एक समय तक होती हैं श्रीर श्रांघकसे श्रांघक श्रावलिके श्रमंख्यातवे भाग कालतक होती हैं। तथा श्रमन्तगुणावृद्धि श्रीर श्रमन्तगुणहानि कमसे कम एक समय तक श्रोर श्रांघकसे श्रांघक श्रम्तमुंहूर्त तक होती हैं। श्रेष पाँच हानियाँ एक समय तक ही होती हैं। श्रवम्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल एक सौ त्रेसठ सागर श्रीर पत्यका श्रसंख्यातवाँ भाग है। इसके सम्बन्धमें भुजगार विभक्तिमें एक जीवकी श्रपेचा कालका कथन करते हुए लिख श्राय है। श्रादेशसे भी चारो गतियोंमें छहां वृद्धियों श्रीर छहां हानियोंका काल श्रांघक समान है। किन्तु नरकर्गात. तिर्यश्वनाति श्रीर देवर्गातमें श्रमन्तगुणहानिका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है. क्योंकि श्रम्तमुं हुर्त काल तक श्रमन्तगुणहानि केवल चारित्रमाहकी चपणामें ही समय है श्रीर उसका इन गतियोंमें श्रमाव है। श्रवस्थानका जघन्य काल तो श्रानतादिकके सिवा सर्वत्र एक ही समय है. केवल उत्कृष्ट काल पृथक् पृथक् है श्रीर उसका स्पष्टीकरण भुजगारविभक्तिके कालानुगममें कर दिया गया है। इस प्रकार मूलमें कही गई विशेषताको ध्यानमें रखकर चारों गतियोंमें

१७४. श्रंतराणु० दुविहो णिहे सो—ओघेण श्रादेसेण । श्रोघेण मोह० पंच-विद्व-पंचहाणीणमंतरं केविचरं कालादो होदि ? जह० एगस० श्रंतोमु०, उक्क० असं-खेज्जा लोगा । अणंतगुणवट्टीए श्रंतरं ज० एगस०, उक्क० तेविहसागरोवमसदं तीहि पिलदोवमेहि सादिरेयं । अणंतगुणहाणीए श्रंतरं केव० ? जह० श्रंतामु०, उक्क० तेविह-सागरोवमसदं पीलदो० असंखे०भागेण सादिरेयं । अविह० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोमु०।

१७५. आदेसेण णेरइएसु छवड्डि-हाणीणमंतर केव० ? ज० एगसमओ अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसुणाणि । अविदि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं सव्वणेरइयाणं । णविर सगिंदिदी देसुणा । तिरिक्य्वसु पंचवड्डि-पंचहाणीणमंतरं काल जान लेना चाहिए। आगे अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार कालका विचार कर लेना चाहिए।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

१७४ अन्तरानुगमकी अपेदा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकी पाँचो शृद्धियो और पाँचो हानियोका अन्तरकाल कितना है ? शृद्धियोका जघन्य अन्तर एक समय और हानियोका अन्तर्भृहूर्त है। तथा दोनोका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण है। अन तगुण शृद्धिका जघन्य अन्तर एक ममय है और उत्कृष्ट अन्तर तीन पन्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अनन्तगुणहानिका अन्तरकाल कितना है। जघन्य अन्तर अन्तर्भृहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यका अमन्यातवां भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अवस्थानका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहूर्त है।

विशेषार्थ-श्रांघसे पाचां ५ द्वियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और पाचां हानियां का अन्तर्मुहर्त है. क्यों कि अनुभागकी हानि जिन परिणामोसे होती है वे परिणाम तुरन्त ही नहीं होजाते। तथा दोनोका उन्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक है: क्यों कि इनने कालके लिये सून्म एकेन्द्रिय पर्यायमें चले जाने पर उक्त बृद्धियाँ हानियाँ वहाँ नहीं होती। अनन्तर्मुण्युद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय होता है और उन्कृष्ट अन्तरकाल नीन पल्य अधिक एक मौ त्रेसठ मागर है. क्योंकि तीन पत्यके लिये भोगभूमिमें. बीचमें सम्यामिश्यात्वके साथ रहकर द्वियासठ खासठ मागर तक दो बार वेदकसम्यक्त्वमे और अन्तमें ३१ मागरके लिये प्रेमकमें चले जाने पर उतने काल तक अनन्तगुण्यृद्धि नहीं हो यह सम्भव है। अनन्तगुण्यहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुह्त और उन्कृष्ट अन्तरकाल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक एक मौ त्रेसठ सागर होता है। अधिकसे अधिक उतने काल तक अवस्थितविभक्तिके हो जानेसे अनन्तगुण्यहानिम अन्तर पड़ जाता है। अवस्थितका जघन्य और उन्कृष्ट अन्तर पूर्ववन जानना चाहिए।

्र १७५ आदेशसे नारिकयोमे छ शृद्धियो और छ हानियोका अन्तर काल कितना है ? शृद्धियोका जघन्य अन्तर एक समय तथा हानियोका जघन्य अन्तर अन्तर्महूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अबस्थानका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महूर्त है। इसी प्रकार सब नारिकयोमे जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। तिर्यञ्जोंमे पाँच गृद्धियो और

केव० ? ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्ञा लोगा। अणंतगुणवट्टीए अंतरं केव० ? ज० एगस०, उक्क० पिट्टो० असंखे०भागो। अणंतगुणहाणीए अंतरं केव० ? जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पिट्टोवमाणि अंतोमुहत्तेण सादिरेयाणि। अविद्वि ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। पंचिदियतिरिक्खितयिम छवट्टि॰ पंचहाणीणमंतरं केव० चिरं० ? ज० एगस० अंतो०, उक्क० पुट्वकोडि०पुघत्तं। अणंतगुणहाणीए अंतरं केव० ? ज० अंतोमु०, उक्क० तििएए पिट्टोवमाणि अंतोमुहत्तेण सादिरेयाणि। अविद्वि ज० एगस०, उक्क० व्यंतोमु०। पंचिद्यतिरिक्खअपज्ञ०--मणुसअपज्ञ० छवट्टि०-अविद्वि ज० एगस०, छहाणीणमंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसि अंतोमुहत्तं। मणुस्सितयाणं पंचि०तिरिक्खितयभंगो। णविर अणंतगुणवट्टीए अंतरं ज० एगस०, उक्क० पुट्वकोडी देमुणा।

१७६. देवेसु छवड्डि-पंचहाणीणमंतरं केव० ? ज० एगस० अंतासु०, उक्क० अद्वारस सागरीवमाणि सादिरयाणि । अणंतगुणहाणीए अंतरं केव० ? ज० अंतोसु०,

पाँच हानियोका अन्तर काल कितना है ? बुद्धियोका जघन्य अन्तर एक समय और हानियो का जघन्य अन्तर अन्तर्भृहर्त है। तथा दोनोका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनन्तगुण्यद्विका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय और उक्कष्ट अन्तर पत्यके असस्यातवे भागप्रमाण् है। अनन्तर्गुण्हानिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्महर्त है और उन्कृष्ट अन्तर अन्तर्महर्न अधिक तीन पन्य है। अवस्थानका जघन्य अन्तर काल एक समय है और उत्क्रष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। पश्चे न्द्रियतिर्यश्च, पश्चे न्द्रियतिर्यश्च पर्यात और पश्चे न्द्रियतिर्यश्चयोनिनी जीवोमे छह बृद्धियों श्रौर पॉच हानिय का अन्तरकाल कितना है ? बुद्धियोका जघन्य अन्तर एक समय और हानियोका जघन्य अन्तर अन्तर्महर्त है। तथा दोनोंका उत्क्रष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथकत्वप्रमाण है। अनन्तर्गुणहानिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्भृहर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहर्त अधिक तीन पत्य है। अवस्थानका जधन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहर्त है। पश्चीन्द्रय-तिर्यश्व अपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तकोम छह वृद्धियो और अवस्थानका जधन्य अन्तरकाल एक ममय है. छुड हानियोका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्भुहूर्त है और मवका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्महर्त है। सामान्य मनुष्यः मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यानयोमे पञ्चे न्द्रियानये अ. पञ्चेन्द्रिय-तिर्युश्च पर्याप्त और पश्चे न्द्रियनिर्यश्च योनिनियोके समान भंग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अनन्तग्एक्द्रिक। जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है ।

विशेषार्थ-आदेशसे गतिमार्गगामे वृद्धि, हानि और अवस्थानका अन्तर भुजगार विभक्तिमें कहे गये भुजगार. अल्पतर और अवस्थानविभक्तिके अन्तरकालकी ही तरह विचारकर जान लेना चाहिये। विशेष इतना है कि तिर्यश्चोमे पाँच वृद्धियों और पाँच हानियोका उन्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है जैसा कि पहले ओघसे वतलाया है।

ः १७६. देवोमें छह् वृद्धियो श्रीर पाँच हानियोका अन्तरकाल कितना है ? वृद्धियोका जवन्य अन्तर एक समय श्रीर हानियोका जवन्य अन्तर अन्तर्महूर्त है तथा दोनोका उन्कृष्ट अन्तर कुछ श्रिषक अट्टारह सागर है। अनन्तगुणहानिका अन्तर कितना है ? जघन्य

उक्क० एकतीसं सागरोवमाणि देस्णाणि । अविह० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु० । भव-णादि जाव सहस्सारा ति छविष्ट्र-छहाणीणमंतर केव०? ज० एगस० अंतोसु०, उक्क० सगिहिदी देस्णा । अविह० ज० एगम०, उक्क० अंतोसु० । आणदादि जाव णव-गेवज्ञा ति अणंतगुणहाणि० जह० अंतोसु०, उक्क० सगिहिदी देस्णा । अविह० जह-एणुक्क० एगस० । अणुहिस्सादि जाव सन्वद्धसिद्धि ति अणंतगुणहाणि० जहएणुक्क० अंतोसु० । अविह० जहएणुक्क० एगस० । एवं जागिदृण णेद्व्वं जाव अणाहारि ति ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

१७७. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिहे सो — ओवेण आदेसण। ओवेण छविह-छहाणि-अविहिदाणि णियमा अत्थि। एवं तिरिक्खोंघे। आदेसेण णेरइएसु अणंतगुणविहु--अविहृ णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्ञा। भंगा १७७१४७ एतिया वत्तव्वा। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख मणुस्सतिय-देव० भवणादि जाव सहस्सारो ति। मणुस्सअपज्ञ० सव्वपदा भयणिज्ञा। भंगा एन्थ एतिया होति १५६४३२२। आणदादि जाव सव्वहसिद्धि ति अविह० णियमा

अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अवस्थानका जघन्य अन्तर काल एक समय है और उन्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। भवनवासीसे लेकर सहस्रार कल्पपर्यन्त छ मुद्धियों और छ हानियोंका अन्तर कितना है? मृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय और हानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। अवस्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उन्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। अन्तर स्वर्गसे लेकर नव भैं येक तकके देवोंसे अनन्तर्गुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है अौर उन्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। अवस्थानका जघन्य और उन्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। अनुदिश्से लेकर सर्वार्थसिद्ध तकके देवोंसे अनन्तर्गुणहानिका जघन्य और उन्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। अनुदिश्से लेकर सर्वार्थसिद्ध तकके देवोंसे अनन्तर्गुणहानिका जघन्य और उन्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। इस्प्रकार जानकर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थानका जघन्य और उन्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। इस्प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशोपार्थ-पहले जो खोघ ख्रौर खादेशसे खुलासा किया है ख्रौर स्वामित्व बतलाया है उसे देखकर यहाँ ख्रन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

१५७०. नाना जीवोकी अपेत्ता भङ्गविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है — श्रोघ श्रौर श्रादेश। श्रोघसे छ वृद्धियाँ, छ हानियाँ श्रौर श्रवस्थिति नियमसे होती है। इसीप्रकार सामान्य तिर्यश्चोमे जानना चाहिए। श्रादेशसे नारिकयोमे श्रनन्तगुण्यृद्धि श्रौर श्रवस्थिति नियमसे होती हैं। शेष युद्धियाँ श्रौर हानियाँ भजनीय हैं। उनके भंग १७७१४७ इतने कहने चाहिए। इसीप्रकार सब नारका, सब पश्चे न्द्रिय तिर्यश्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त. मनुष्यनी, सामान्य देव श्रौर,भवनशासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोमे जानना जाहिए। मनुष्य श्रपयाप्तकोमे सभी पद भजनीय हैं। यहाँ उनके भंग १५९४३२२ होते हैं। श्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्यसिद्धि तकके

श्रित्थ । अणंतग्रुणहाणि भयणिजा । सिया एदे च अणंतगुणहाणिविहत्तिया च । सिया एदे च अणंतगुणहाणिविहत्तिया च । धुवभंगे पविखने तिरिएए। भंगा । एवं जाणिदृण णेदन्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समतो।

देवोंमें श्रवस्थिति नियमसे होती है। श्रानन्तगुण्हानि भजनीय है। कदाचित श्रानेक जीव श्रवस्थित-वाले श्रीर एक जीव श्रानन्तगुण्हानि विभक्तिवाला होता है। कदाचित श्रानेक जीव श्रवस्थित-वाले श्रीर श्रानेक जीव श्रानन्तगुण्हानिविभक्तिवाले होते है। इसप्रकार इन दो भागोमे ध्रुवभङ्गकं मिलानेसे तीन भङ्ग होते हैं। इसप्रकार जानकर श्रानाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

विशोपार्थ-त्र्यायसे सब वृद्धिः सब हानि और त्र्यवस्थितविभक्तिवाले नाना जीव है। इसलिए वहाँ कोई पर भजनीय नहीं कहा है । इसी प्रकार श्रादेशसे सामान्य निर्वश्वोमे ६ ब्रह्मि-वाले. ६ हानिवाले और अवस्थातवाले जीव नियमसं पाये जाते है। नारिकयोमे अनःतगुण-वृद्धिवाले और अवस्थानवाले जीव तो नियमसे रहते हैं. शेष पद्वाले जीव कदाचिन पाये जाते हैं ऋौर कदाचित् नहीं पाये जाते। उनके भंग १७०१४० होते हैं जो इस प्रकार है - यहाँ पर ध्रुवपद एक है और अध्रुवपद ग्यारह है. क्योंकि पॉच वृद्धियोले और छह हानिवाले जीव विकल्पसे पाये जाते हैं। इन म्यारह अधुवपदोकं विकल्प निकालनेके लिये ^{११, १०,}९,८,७, ६, ५, ४, ३, २, १, इस प्रकार स्थापन करके नीचे स्थित १ त्र्यंक से ऊपर स्थित ११ के त्र्यंकमे ६, ७, ८, ९, १०, ११, भाग देने पर एक सर्थागी ग्यारः प्रस्तार शलाकाएँ त्रानी हैं। इसी प्रकार ऊपरके ग्यारह और दस अंकको परस्परमे गुणित करनेसे जो लब्ध आये उसमे नीचेके एक और दो अङ्कोके गुरानफलसे भाग देने पर दो सुयोगी प्रम्तार शलाकाएँ त्र्यानी है। इसी प्रकार करते जाने पर प्रस्तार शलाकात्रांका प्रमास क्रमसं ११. ५५. १६५. ३३०. ४६२. ४६२. ३३०. १६५. ५५. ११. १ होता है। इनमे एक संयोगी विकल्पोको २ से गुणा करना चाहिये. क्योकि एक सयोगमे-कदाचित अमुक हानि या वृद्धिवाला एक जीव पाया जाता है और कदाचित अनेक जीव पाये जाते हैं—ये दो ही भंग होते हैं। दो संयोगी प्रस्तार विकल्पोको ४ में गुणा करना चाहिये. क्योंकि आगे आगे गुएकारका प्रमाण दुगुना दुगुना होता जाता है। अतः पूर्वीक्त प्रस्तार विकल्पोंके २, ४, ८, १६, ३२, ६४, १२८, २५६, ५१२ १०२४, २०४८ गुगुकार होते हैं। ऋपने अपने गुण्यसे अपने अपने गुणकारको गुणा करके जोड़ देने पर सब मंगीका प्रमाण १७७१४६ होता है। इसमें एक ध्रवभंगके जोड़ देनेसे कुल भंगोंकी संख्या १७७१४० होती है। मनुष्य २, १ इस प्रकार सदृष्टि स्थापित करके ऊपर लिखे कमानुसार प्रस्तार शलाकात्र्यांको उत्पन्न करके त्रीर फिर उन्हें २, ४ त्रादि दुगुने दुगुने गुणकागेसे गुणा करके सवको जोड़ देने पर १५९४३२२ भंग होते हैं। त्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थनिद्धि तक त्रावस्थितवाल जीव नियमसे होते हैं ऋौर अनन्तगुणहानिवाले जीव विकल्पसे होते हैं, ऋतः २ अधुव भंग और एक धुव भंग इम तरह कुल तीन भंग होते हैं।

इस प्रकार नाना जीवोंकी श्रपेक्षा भङ्गविचयानुगम समाप्र हुआ।

१. छा । प्रती विवयमा ग्रस्थि सिया इति पाठः ।

ई १७८. भागाभागाणु० दुविहो णिद्दे सो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० पंचविट्ट-छहाणिविहित्तिया सन्वजीवाणं केविडियो भागो ? असंखे०भागो । अणंतगुणविट्टि-विहित्ति० संखे०भागो । अविटि० संखेज्ञा भागा । एवं सन्वणेग्इय--सन्वतिरिक्ख-पणुस्स-मणुसअपज्ञ०-देव-भवणादि जाव सहस्सारो ति । मणुस्सपज्जत्त-मणुस्सिणिसु छबट्टि-छहाणिविहित्ति० सन्वजीवाणं केव० ? संखे०भागो । अविटि० संखेज्ञा भागा । आणटादि जाव अवराइदंति अणंतगुणहाणि० सन्वजी० केव० असंखे०भागो । अविटि० संखेज्ञा भागा । सन्वटे अणंतगुणहाणि० सन्वजी० संखे०भागो । अविटि० संखेज्ञा भागा । एवं जाणिद्ण णेदन्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं भागाभागाणुगमा समत्तो ।

१७६. परिमाणाणु० दुविहा गिद्दे सो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० इविहु-छहाणि-अविद्विद्वित्तिया द्व्वपमाणेण केविद्या ? अणंता। एवं तिरिक्खोधं। आदेसेण णेरइएस सव्वपदा असंखेजा। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिद्वियतिरिक्ख-मणुस्स-मणुस्सअपज्ञ०-देव-भवणादि० जाव सहस्सारोति। मणुसपज्ज०-मणुस्सिणीसु सव्वपदा संखेजा। आणदादि जाव अवराइदं ति दोपदा असंखेजा। सव्वद्वे दोपदा संखेजा।

१ १७८ भागानागानुगमकी खंपक्षा निर्देश दो प्रकारका है—खोष और छादेश । स्रोधसे मोहनीयकर्मकी पाँच बृद्धि और छह हानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अनन्तगुण्वृद्धिवभक्तिवाले जीव सब जीवोके सख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोके सख्यात बहुभाग है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यश्च, सामान्य मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, और भवनवासीसे लेकर सहस्रारम्वर्य तकके देवोमे जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्त और मनुष्यिनियोमें छह बृद्धि और छह हानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोके कितने भाग हैं ? सख्यातवे भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोके संव्यात बहुभागप्रमाण हैं । आनत स्वर्गसे लेकर अपराजित विभान तकके देवोम अनन्तगुणाहानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोके कितने भाग हैं ? असख्यातवे भाग है । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोके कितने भाग हैं ? असख्यातवे भाग है । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोके स्वर्गन असख्यात बहुभागप्रमाण है । स्वर्थसिदिधमे अनन्तगुणाहानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोके सख्यात बहुभागप्रमाण है । अवस्थितिवभक्तिवाले सख्यात बहुभागप्रमाण है । अवस्थितिवभक्तिवाले सख्यात बहुभागप्रमाण है । अवस्थितिवभक्तिवाले संख्यात बहुभागप्रमाण है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ।

१७९ परिमाणानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—-श्रोव श्रौर श्रादेश। श्रोघसे मोह-नीयकी छह बृद्धि. छह हानि श्रौर श्रवस्थिनविमक्तिमाले जीव द्रव्य प्रमाणकी श्रपेक्षा कितने हैं ? श्रानन्त हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्वोमे जानना चाहिए। श्रादेशसे नारिकयोमे सब विभक्ति-वाले जीव श्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी. सब पश्चे न्द्रियतिर्यश्च, सामान्य मनुष्य. मनुष्य श्रपर्याप्त, सामान्य देव श्रौर भवनवासीसे लेकर महस्त्रारस्वर्ग तकके देवोमे जानीना चाहिए। मनुष्य पर्याप्त श्रौर मनुष्यिनियोमे सब विभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। श्रानत स्वर्गसे लेकर श्रपराजित विमान तकके देवोमे अनन्तरागुणहानि श्रौर श्रवस्थितविभक्तिवाले जीव श्रसंख्यात हैं।

एवं जाणिदृण णेदव्वं जाव ऋणाहारि ति । एवं परिमाणाणुगमो समत्तो ।

१८०. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिहे सो—अघिण आदेसेण य । ओघेण मोह०
सन्वपद्विहित्तिया केविड० खेत्ते ? सन्वलोगे । एवं तिरिक्खोघं । आदेसेण णेरइयादि
जाव सन्वहिसिद्धि ति मोहणीयस्स ऋष्पष्पणो सन्वपदा केव० ? लोगस्स असंखे०भागे ।
एवं जाणिदृण णेद्व्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं खेताणुगमो समतो।

\$ १८१. पोसणाणु० दुविहो णिह् सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० सव्वपदाणं खेत्तभंगो । एवं तिरिक्खोघं । आदेसेण णेरइएसु सव्वपदेहि केविहयं खेतं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो छचोइसभागा वा देसुणा । पढमपुढवि० खेतभंगो । विदियादि जाव सत्तिमि ति सगपोसणं कायव्वं । सव्वपंचिदयितिरिक्ख-सव्वमणुस्साणं सव्वपदिविहित्तिएहि केव० खे० पो० ? छोग० असंखे०भागो सव्वछोगो वा । देवेसु सव्वपदिवि० केव० खेतं पोसिदं ? छोग० असंखे०भागो अठ-णवचोइसभागा वा देसुणा । एवं सव्वदेवाणं । णविक सगपोसणं जाणिदृण णेयव्वं । एवं णेदव्वं जाव

सर्वार्थिसिद्धिमे त्र्यनन्तगुण्हानि त्र्योर त्र्यवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । इसप्रकार जानकर त्र्यनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

इस प्रकार परिभागानुगम समाप्त हुआ।

६ १८०. च्रेत्रानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोधिसे माहनीयकी सब पद विभक्तिवाले जीव कितने चेत्रमे हैं ? सर्वलोकमे हैं। इसी प्रकार सामान्य निर्यश्चोक जानना चाहिए। श्रादेशसे नारकीसे लेकर सर्वार्थीमिडि पर्यन्त मोहनीयकी श्रपनी श्रपनी सब विभक्तिवाले जीव कितने चेत्रमे हैं ? लोकके श्रमंख्यानवे भाग चेत्रमे हैं। इसप्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

इसप्रकार चेत्रानुगम समाप्त हुन्या।

\$ १८१ स्पर्शनानुगमकी ख्रंपत्ता निर्देश दे। प्रकारका है-ख्रोघ ख्रौर ख्रादेश। ख्रांघसे मोहनीयकी सब पद विभक्तियोंका स्पर्शन त्रेप्रके समान है। इसी प्रकार सामान्य निर्यश्चोम जानना चाहिये। ख्रादेशमें नार्यक्रयोंमें सब पद विभक्तिवालोंने किनने त्रेप्रका स्पर्शन किया है १ लोकके असंख्यातवें भागका ख्रौर चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्रेप्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन त्रेप्रके समान है। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी पर्यन्त अपने अपने स्पर्शनके समान कथन करना चाहिये। सब पश्च न्द्रियतिर्यश्च ख्रौर सब मनुष्योंमें सब पद विभक्तिवालोंने किनने क्षेप्रका स्पर्शन किया है १ लोकके ख्रसंख्यातवें भागका ख्रौर सब पद विभक्तिवालोंने किनने त्रेप्रका स्पर्शन किया है १ लोकके ख्रसंख्यातवें भागका ख्रौर चौदह भागोंमें से कुछ कम ख्राठ ख्रौर कुछ कम नौ भागप्रमाण त्रेप्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब देवोंमं जानना चाहिए। किन्तु ख्रपने ख्रपने स्पर्शन का

अणाहारए नि ।

एवं पासणाणुगमा समत्ता।

्र १८२. कालाणु० दुविहो णिहे सो — ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० सन्वपद्वि० केविचरं कालाठो होंति ? सन्बद्धा । एवं तिरिक्खोघं । आदेसेण णेरइएस अणंतगुणवट्टि०--अविटि०विहत्ति० केव० ? सन्बद्धा । सेसपद्वि० ज० एगस०, उक्क० आविल० असंखे०भागो । एवं सन्वणेरइय-सन्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुस्स-देव-भवणादि जाव सहस्सारो ति । णवरि मणुस्सेस अणंतगुणहाणिविहत्तियाणं ज० एगस०, उक्क० अतोसु० । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० पंचवट्टि० जह० एगस०, उक्क० आविल०असंखे०-

जानकर उसे घटिन करना चाहिये। इस प्रकार अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ-श्रोघ से छहा हानि, छहां वृद्धि श्रीर अवस्थानवाल जीवोने सर्वलाकका म्पशन किया है। इसी प्रकार तिर्यञ्चोमे जानना चाहिए। सामान्य नार्राक्योमे सब विभक्तिवाले जीवोने संभव पदोंके द्वारा वर्तमान कालमें लोकके असंख्यातवे भागका स्पर्शन किया है और त्रतीत कालमं मारगान्तिक ऋौर उपपाद पदके द्वारा कुछ कम छह वट चौदह राजु त्तेत्रका स्पशन किया है और संसव शेप पदोके द्वारा लोकके असंख्यातवे भागका म्पर्शन किया है। पहले नरकके नार्राकयोंने लोकके असंख्यातवे भागका म्पर्शन किया है तथा दुसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नारिकयोन वर्तमान कालमे लोकके श्रमंख्यातवें भागका और अतीत कालमे मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा क्रमसे कुछ कम एक वटे चौदह, कुछ कम दो वटे चौदह, कुछ कम तीन वटं चौदह, कुछ कम चार वटं चौदह. कुछ कम पॉच वटं चौदह श्रौर कुछ कम छह वटं चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। संभव शेष पदोके द्वारा लोकके असंख्यातवें भागका स्पर्शन किया है। मब पश्चे न्द्रिय तिर्यश्च श्रौर सब मनुष्योमे सब विभक्तिवाले जीवाने श्रतीत कालमे माराणान्तक ऋौर उपपादके द्वारा सर्व लोकका म्पर्शन किया है ऋौर संभव शेष पदोके द्वारा ऋतीत कालमे तथा वर्तमान कालमें लोकके असंख्यातवे भागका स्पर्शन किया है। देवोंमें सब विभक्तिवाले जीवोने वर्तमानमें लोककं असंख्यातवें भागका तथा अतीत कालमे विहारवन्त्वथान, वेदना. कपाय और विक्रिया पदके द्वारा कुछ कम त्राठ वट चौदह और मारणान्तिक पदके द्वारा कुछ कम नौ वट चौदह राजु चेत्रका न्परीन किया है। इस प्रकार इस म्परीनको जानकर यहाँ म्परीन यथायाग्य घटित कर लेना चाहिए। तथा अन्य मार्गणाओं में भी वह जान लेना चाहिए।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

\$ १८२. कालानुगमकी ऋषेचा निर्देश दो प्रकारका है — ऋषि और आदेश। श्रोधसे मोहनीयकी सब पद विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्वोमे जानना चाहिये। आदेशसे नारिकयोंमे अनन्तगुण्यृद्धि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वदा है। शेष पद विभक्तिवालोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण् है। इसी प्रकार सब नारकी सब पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व, मनुष्य, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमे जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्योंमे अनन्तगुणुहानिविभक्तिवालोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त है। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें पांचो वृद्धि विभक्तिवालोंका जधन्य

भागो । पंचहाणि० ज० एगस०, उक्क० संखेज्ञा समया । अणंतगुणविट्ट०-अविट० सन्बद्धा । अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । मणुसञ्चपज्ञ० णारय-भंगो । णविर अणंतगुणविट्ट०-अविट० ज० एगस०, उक्क० पिठदो० असंखे०भागो । आणदादि जाव अवराइदो ति अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० आवित् ० असंखे०भागो । अविटि० सन्बद्धा । सन्बद्दो अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० संखेज्ञा समया । अविटि० सन्बद्धा । एवं जाणिद्ण णेदन्वं जाव अणाहारए ति ।

एवं कालाणुगमा समत्तो ।

३ १८२. अंतराणु० दुविहो णिहे सो — ओघेण आदेसेण य । ओघे० मोह० तेरसपदाणं णित्थ अंतरं । एवं तिरिक्खोघं । आदेसेण णेरइएसु पंचविट्ट--पंचहाणी० ज० एगसमओ, उक्क० असंखेजा लोगा । अणंतगुणविट्ट--अविटि० णित्थ अंतरं । अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं सन्वणेरइय-सन्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुस्मितय--देव-भवणादि जाव सहम्सारो ति । मणुस्अपज्ञ० मणुस्सोघं । णविरे अणंतगुणविट्ट-अविटि० ज० एगस०, उक्क० पिलदो० असंखे०भागो । आणदादि [जाव]

काल एक समय है और उन्क्रष्ट काल आवर्लाक असम्बातवें भागप्रमाण है। पांच हानिविभक्तित्वालों का जघन्य काल एक समय है और उन्क्रष्ट काल संख्यात समय है। अनन्तगुण्वृद्धि और अवस्थितविभक्तिवालों का जघन्य काल एक समय है और उन्क्रष्ट काल अन्तमुंहूर्त है। मनुष्य अपर्याप्तकों मार्राक्यों के समान भंग जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अनन्तगुण्वृद्धि और अवस्थितविभक्तिवालों का जघन्य काल एक समय है और उन्क्रष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण् है। आनत स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवों में अनन्तगुण्हानिविभक्तिवालों का जघन्य काल एक समय है और उन्क्रष्ट काल आवलीं के असंख्यातवें भागप्रमाण् है। अवस्थितविभक्तिवालों का काल मर्वदा है। सर्वार्थसिद्धिमें अनन्तगुण्हानिविभक्तिवालों का जघन्य काल एक समय है और उन्क्रष्ट काल आवलीं के असंख्यातवें भागप्रमाण् है। अवस्थितविभक्तिवालों का काल मर्वदा है। सर्वार्थसिद्धिमें अनन्तगुण्हानिविभक्तिवालों का जघन्य काल एक समय है और उन्क्रष्ट काल संख्यात ममय है। अवस्थितविभक्तिवालों का काल मर्वदा है। इस प्रकार जानकर अनाहारी प्रयन्त ले जाना चाहिये।

इस प्रकार नाना जीवों की ऋषे हा कालानुगम समाप्त हुआ।

हु १८३. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और आदेश। श्रोघसे माह्नीयके तेरह पदोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार मामान्य वियंश्वोम जानना चाहिए। आदेशसे नारिकयोम पाँच बृद्धि और पाँच हानियोंका जयन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है। अनन्तगुण्युद्धि और अविध्यतिभक्तिका अन्तर काल नहीं है। अनन्तगुण्यानिविभक्तिका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर मुहूर्त है। इसी प्रकार सब नार्का, सब पश्चे निद्यविर्यश्व, मामान्य मनुष्य, मनुष्यप्याप, मनुष्यनी, मामान्य देव और भवनवासीसे लेकर महस्रार स्वर्ग तकके देवों में जानना चाहिए। मनुष्य अप्यापकाम सामान्य मनुष्याके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि अनन्तगुण्युद्धिविभक्ति और अविध्यतिभक्तिका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रत्यके असंख्याके भाग-

णवगेवज्जा ति अणंतगुणहाणी० ज० एगस०, उक्क० सत्त रादिदियाणि। अविद्वि० णित्थ अतरं । अणुदिसादि जाव सन्वद्दसिद्धि ति अणंतगुणहाणी० ज० एगस०, उक्क० वासपुथत्तं पितदो० संखे०भागो। अविद्वि० णित्थ अंतरं। एवं जाणिदृण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवमंतराणुगमा समतो ।

ु १⊏४. भाव० सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

१८५. ऋषावहुआणु० दुविहो णिद्देसो—ओवेण आदेसेण य । ओवेण सन्वत्थोवा मोह० अणंतभागहाणिविहत्तिया जीवा । ऋसंखेजनभागहाणि० जीवा असंखे०गुणा । संखेजभागहाणि० जीवा संखे०गुणा । संखे०गुणहाणि० जीवा संखे०गुणा । अणंतभागविहृ० जीवा असंखे०गुणा । अणंतभागविहृ० जीवा असंखे०गुणा । अणंतभागविहृ० जीवा संखे०गुणा । संखे०भागविहृ० जीवा संखे०गुणा । संखेजगुणविहृ० जीवा संखे०गुणा । अणंतगुणविहृ० जीवा ऋसंखे०गुणा । अणंतगुणविहृ० जीवा ऋसंखे०गुणा । अणंतगुणविहृ० जीवा असंखे०गुणा । अणंतगुणविहृ० जीवा ऋसंखे०गुणा । अणंतगुणविहृ० जीवा असंखे०गुणा । अणंतगुणविहृ ।

प्रमाण है। खानतसे लेकर नविषेत्रयक तकके देवा में खनन्तगुण्हानिवमक्तिका ज्ञधन्य छन्तर एक समय है खीर उत्कृष्ट खन्तर सात रातिद्व है। ख्रविस्थितविमक्तिका खन्तर नहीं है। ख्रविस्थितविमक्तिका खन्तर नहीं है। ख्रविद्यासे लेकर सर्वार्थीसिद्ध तकके देवोमे खनन्तगुण्हानिविमक्तिका ज्ञधन्य खन्तर एक समय है खीर उत्कृष्ट खन्तर खनुदिशसे खपराजित तकके देवोमे वर्षपृथवन्त्व खीर सर्वार्थसिद्धिमें पत्यकें संख्यातवे भागप्रमाण है। ख्रविस्थितविमक्तिका खन्तर नहीं है। इस प्रकार जानकर खनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ-नाना जीवोकी अपेक्षा काल बतलाते हुए जिन विभक्तिवालोका काल सर्वदा बनलाया है उनमे अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि वे सदा पाये जाते हैं, रोपमे अन्तर है। अपर्याप्त मनुष्योमे अनन्तराण्यवृद्धि और अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उतना ही बतलाया है जितना मनुष्य अपर्याप्तक मार्गणाका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहा है। इसी प्रकार अन्यमें भी समभ लेना चाहिये।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

६ १८४. भावानुगम की ऋषेत्ता सर्वत्र खोदायिक भाव होता है।

६ १८५ श्रल्पबहुत्वानुगमकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है – श्रोघ और श्रादेश । श्राघसे मोहनीयकी अनन्तभागहानिविमिक्तवाले जीव सबसे थांड़ है । श्रमख्यातभागहानिविमिक्तवाले जीव सबसे थांड़ है । श्रमख्यातभागहानिविमिक्तवाले जीव असंख्यातगुणे है । संख्यातगुणहानिवमिक्तवाले जीव श्रसंख्यातगुण है । अनन्तमागगृद्धिवमिक्तवाले जीव श्रसंख्यातगुण है । श्रमख्यातगागृद्धिविमिक्तवाले जीव श्रसंख्यातगुणे है । श्रसंख्यातगुणे है । श्रसंख्यातगुणे है । श्रमंख्यातगुणे है । श्रमंखाले जीव

जीवा संखे ० गुणा । एवं सञ्वणेरइय--सञ्वितिरिक्ख-मणुस्स-मणुस्सञ्चपज्ञ०--देव जाव सहस्सारो ति । मणुस्सपज्ज०-मणुस्सिणीसु एवं चेव । णविर जिम्ह असंखे ज्ञगुणं तिम्ह संखे ज्ञगुणं कायच्वं । आणदादि जाव अवराइदो ति सञ्वत्थोवा ज्ञणंतगुणहाणिवि० जीवा । अविद्विवि० जीवा असंखे ० गुणा । एवं सञ्बद्धे । णविर संखे ज्ञगुणां कायच्वं । एवं जाणिद्ण णेयच्वं जाव ज्ञणाहारि ति ।

एवं वड्डिविहत्ती समत्ता ।

१८६. ठाणपस्त्रणाए तिण्णि अणियोगद्दाराणि—पस्त्रणा पमाणमप्पावहुत्रं चिदि।तत्थ पस्त्रणा बुचदे।तं जहा~एत्थ अणुभागद्वाणाणि वंथसमुप्पत्तिय-हदसमुप्पत्तिय-हदसमुप्पत्तिय अणुभागद्वाणाभे देण तिविहाणि होति।तेमं तिविहाणं पि अणुभागद्वाणाणं जं लक्खणपदुप्पायणं सा पस्त्रणा णाम। तत्थ हदसमुप्पत्तियं कादणस्त्रिद्धसमुद्धमणिगोद्ग् जहण्णाणुभागसंतद्वाणसमाणवंथद्वाणमादि कादृण जाव सण्णिपंचिदियपज्जतसम्ब्युक्तस्माणुभागवंथद्वाणं ति ताय एदाणि असंघि०लोगमत्तद्वाणाणि वंथसमुप्पत्तियद्वाणाणि ति भण्णंति, वंधेण समुप्पण्णनाद्वा। अणुभागसंतद्वाणवादेण जमुप्पण्णमणुभागसंतद्वाणं ति पत्थ वंथद्वाणमिदि चेत्तव्यं, वंथद्वाणसमाणत्तादो। पुणा एदेसिमसंखि०लोगमत्ति छ्वाणाणं मङ्के अणंतगुणविद्व-अण्तगुणकाणिअद्वं कृष्वंकाणं विचालेसु असंखे०लोगमत्ति छ्वाणाणं मङ्के अणंतगुणविद्व-अण्तगुणकाणि विद्वालेसु असंखे०लोग

 उपाणाणं मङ्के अणंतगुणविद्व-अण्तगुणकाणिअद्वं कृष्वंकाणं विचालेसु असंखे०लोग

 उपाणाणं मङ्के अणंतगुणविद्व-अण्तगुणकाणिअद्वं कृष्वंकाणं विचालेसु असंखे०लोग

 उपाणाणं सङ्के अणंतगुणविद्वाणाणे विचालेसु असंखे०लोग

 उपाणाणं सङ्के अणंतगुणविद्वाणाणे अष्ठाणाणे विचालेसु असंखे०लोग

 उपाणाणं सङ्के अणंतगुणविद्वाणाणे अष्ठाणाणे विचालेसु असंखे०लोग

 उपाणाणं सङ्के अणंतगुणविद्वाणाणे अष्ठाणे विचालेसु असंखे०लोग

 उपाणाणे सङ्के अणंतगुणविद्वाणाणे अष्ठाणे विचालेसु असंखे०लोग

 उपाणाणे सङ्के अणंतगुणविद्वाणे स्वाणाणे स्वा

जीव संख्यातगुण है। इसी प्रकार सब नारकी. सब तिर्यश्च, सामान्य मृतुष्य, मृतुष्य श्रापर्यात. सामान्य देव श्रीर सहस्रार स्वर्ग तककं देवोम जातना चाहिए। मृतुष्य पर्याप्त श्रीर मृतुष्यानयोम इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जिस विभिक्ति असख्यातगुणा कहा है उसमें संख्यातगुणा कर लेना चाहिय। श्रानित्से लेकर अपराजित विमान तकके देवोम अनन्त गुणहानि विभक्तिवाल जीव सबसे थोड़ हैं। अवस्थिनविभक्तिवाल जीव असख्यातगुणा कर लेना प्रकार सर्वार्थीमिद्धमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उसमें संख्यातगुणा कर लेना चाहिये। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

इस प्रकार वृद्धिविभक्ति समाप्त हुई।

§ १८६ स्थान प्ररूपणामं तीन अनुयोगद्वार है – प्ररूपणाः प्रमाण और अल्प वहुत्व। उनमेसे प्ररूपणाको कहते हैं। वह इस प्रकार है – इस प्रकरणमे वन्धममुत्पत्तिक हाते हैं। इस स्वाग्ध्यान तीन प्रकारके हाते हैं। इन तीनो ही प्रकारके अनुमागस्थानोको जो लक्षण कहना मो प्ररूपणा है। उनमेसे हतसमुत्पत्तिकसत्कर्मको करके स्थित हुए सूक्ष्म निर्गादिया जीवक जघन्य अनुमागमत्त्वस्थानके समान बन्धस्थानसे लेकर सज्ञी पंचित्त्रिय पर्याप्तकके सर्वोत्त्रिष्ट अनुमागवन्धरथान पर्यन्त जो असंख्यान लोकप्रमाण पर्यस्थान है उन्हें वन्धममुत्पत्तिकस्थान कहते हैं, क्यािक व स्थान वन्ध से उत्पन्न होते हैं। अनुमागमत्त्वस्थान उत्पन्न होते हैं उन्हें भी यहां वन्धस्थान हो मानना चाहिये. क्योिक व वन्धस्थानक समान हैं। आश्य यह है कि सूक्ष्म निर्गादिया जीवसे लेकर संज्ञी पञ्चित्त्र्य पर्याप्त जीव पर्यन्त छ प्रकार की हािन-रुखियों को लिये हुए जो अनुमागदन्धस्थान होते हैं व वन्धममुत्पित्तकन्त्र छ प्रकार की हािन-रुखियों को लिये हुए जो अनुमागदन्धस्थान होते हैं व वन्धममुत्पित्तकन

मेत्त छहाणाणि हदसमुष्पित्तियसंतकम्मछहाणाणि भण्णंति । वंधहाणघादेण वंधहाणाणं विचालेसु जच्चंतरभावेण उप्पण्णतादो । पुणो एदेसिमसंग्वे०लोगमेताणं हदसमुष्पित्तिय-संतकम्महाणाणमणंतगुणविद्वि-हाणिअहं कुच्चंकाणं विचालेसु असंग्वे०लोगमेत्तछहाणाणि हदहदसमुष्पित्तियसंत्तकम्महाणाणि वुच्चंति, घादेणुष्पण्णअणुभागहाणाणि वंधाणुभागहाणेहितो विसिरसाणि घादिय वंधसमुष्पित्तय-हदसमुष्पित्तियअणुभागहाणेहितो विसिरसभावेण उपाइदत्तादो । कधमेकादो जीवद्व्यादो अणेयाणमणुभागहाणकज्जाणं समुव्यावे १ ण, अणुभागवंध-घाद-घादघादहेदुपरिणामसंजोएण णाणाकज्जाणमुष्पत्तीए विरोहाभावादो । एदेसि तिविहाणमित अणुभागहाणाणं जहा वयणभावविहाणे परूवणा कदा तहा एत्थ वि कायव्या ।

एवं परूवणा समता।

स्थान कहलाते हैं, क्यांकि जो स्थान वन्धसे उत्पन्न हो वह वन्धममुत्पत्तिक है। किन्तु पहले वँधे हुए कुछ अनुभागस्थानोम रमयात आदि होनसे भी नवीनना आ जाती है किन्तु वे वन्धस्थानके समान होने हैं. अतः उन स्थानोको भी वन्धस्थानमे ही सिम्मिलित किया जाता है। सारांश यह है कि वधनेवाले स्थानो को ही वन्धसमुत्पितकस्थान नहीं कहते किन्तु पूर्वबछ अनुभागस्थानोमे भी रसवात होनेसे परिवर्तन होकर समानता रहनी है तो वे स्थान भी वन्धस्थान ही कहे जाते हैं। इन असंख्यात लोकप्रमाण पटस्थानोके मध्यमे अष्टाक और उर्वक रूप जो अनन्तगुण्गुडियाँ और अनन्तगुण्हानियां है उनके मध्यमे जो असंख्यातलोकप्रमाण पटस्थान है उन्हें हतसमुत्पत्तिक सन्कर्मस्थान कहते हैं. क्योंकि वन्धस्थान का घात होनसे वन्धस्थानोके बीचमे ये जात्यन्तररूपसे उत्पन्न होते हैं। इन असंख्यात लोकप्रमाण् हतसमुत्पत्तिक सन्कर्मस्थानोके, जो कि अष्टाक और उर्वकरूप अनन्तगुण्गुडि और अनन्तगुण्हानि रूप है. वीचमे जा असंख्यात लोकप्रमाण् पटस्थान है उ हे हनहतसमुत्पत्तिक सन्कर्मश्यान कहते हैं। वन्धस्थानोसे विलच्ण जो अनुभागस्थान रसघातसे उत्पन्न हुए हैं उनका घात करके उत्पन्न हुए ये स्थान बन्धसमुत्पत्तिक और हनसमुत्पत्तिक आर हनसमुत्पत्तिक और हनसमुत्पत्तिक और हनसमुत्पत्तिक विलच्णाहपसे ही वे उत्पन्न किये जाते है।

शंका-एक जीवद्रव्यसे अनेक अनुभागस्थानह प कार्यों की उत्पत्ति कैसे होती है ?

समाधान—नहीं. क्योंकि अनुभागवन्ध, अनुभागका घात और उस घातितके भी पुनः घातक कारण भूत परिणामोके सयोगसे एक जीवद्रव्यसे नाना कार्यों की उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है।

इन तीनो ही प्रकारके अनुमागम्थानोका जैसा कथन वेदनाभावविधानमे किया है वेसा यहां भी कर लेना चाहिये।

विशेषार्थ-स्थान प्ररूपणामे तीन अनुयोगोके द्वारा अनुभागस्थानका कथन किया है। अनुभागस्थान तीन है -वन्धममुत्पत्तिक. हतसमुत्पत्तिक और हतहतसमुत्पत्तिक। जो अनुभागस्थान बन्धसे होते हैं उन्हें वन्धसमुत्पत्तिक कहते हैं। सूक्ष्म निगोदिया जीवके जो जचन्य अनुभागस्तकर्म होता है उसके समान जो बन्धस्थान होता है वह जघन्य बन्धसमुत्पत्तिक § १८७. संपिंह पमाणं वृच्चदे। तं जहा—वंधसमुष्पत्तिय-हटसमुष्पित्तय-हदहद-समुष्पित्तियटाणाणं तिण्हं पि पमाणमसंखेज्ञा लोगा। कुदो १ तक्करणपिरणामाण-मसंखेज्ञालोगपमाणत्तादो ।

एवं पमाणाणुगमा समत्तो ।

🛞 ऋप्पाबहुगाणुगमं वत्तइस्सामो ।

६ १८८ तं जहा—सन्वन्थोवाणि मोहवंधसमुष्पत्तियद्वाणाणि । हदसमुष्पत्तिय-मंतकम्मद्वाणाणि असंखे ॰ गुणाणि । कुदो १ असंखे ज्ञलोगमेत्तवं यसमुष्पत्तियञ्चद्वाणाण-मद्वं कुट्वंकाणं विचालेस पुध पुध असंखे ॰ लोगमेत्तहदसमुष्पत्तियसंतकम्मञ्चद्वाणाणमुष्प-

स्थान कहलाता है त्रौर संझी पचेन्द्रिय पर्याप्तकके जो सर्वोत्कृष्ट त्र्यनुभागबन्धस्थान होता है वह उत्क्रप्ट बन्धसमुत्पत्तिक स्थान होता है। जधन्यसे लेकर उत्कृष्ट पर्यन्त इन बन्धसमुत्पत्तिक स्थानो की संख्या ऋसंख्यात लोकप्रमाण है। मत्ताम स्थित श्रनुभागका घात कर दंनसे जो अनुभाग-म्थान होते हैं उनमेस भी कुछ म्थान बन्धम्थान ही कहे जाते हैं, क्योंकि उन स्थानोमे जो अनु-भाग पाया जाता है वह अनुभाग बध्यमान अनुभागम्थानके ममान होता है। किन्तु जो अनुभाग म्थान घातसे ही उत्पन्न होते हैं—बन्धसे नहीं होते, और जिनका अनुभाग बन्धसमुत्पत्तिकम्थानो से भिन्न होता है उन्हें हतममुत्पत्तिक कहते हैं। ये हतममुत्पत्तिकस्थान अनन्तगुण्यद्धि श्रीर त्रानन्तगुराहानिरूप वन्धममुत्पत्तिक त्रासस्यान लोकप्रमारा पटम्थानीमे उर्वंक त्र्योर त्रप्रांकके वीचमें उत्पन्न होते हैं। श्रीर इनका प्रमाण बन्धममुत्पत्तिक स्थानोसे श्रासंख्यातगुणा होकर भी असंख्यात लोकप्रमाण ही है। अनन्तगुण्युद्धि और अनन्तगुण्हानिरूप इन असख्यात लोक-प्रमारा हतसमुत्पत्तिक स्थानोमे उर्बंक और ऋष्टांकके बीचमे अनुभागका पुनः पुनः चात करनेसे जो अनुभागस्थान होते हैं उन्हें हतहनसमुत्पत्तिक कहते हैं। पूर्ववन इनका प्रमाण हतसमृत्पत्तिक म्थानोसे असंख्यातगुणा होकर भी असंख्यात लोकप्रभाण ही है। पट्खण्डागमके वदनाखण्डम वंदनाभावविधान नामका एक प्रकर्ण है उसमे इन अनुभागम्थानाका विस्तारसे वर्णन किया है। तथा इस बन्थके इस अनुभागविभक्ति नामक प्रकरणके अन्तमे भी वही वर्णन अन्तरशः किया गया है. अत: इसका विशेष म्पष्टीकरण वहाँसे जान लेना चाहिए।

इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई।

६ १८७ अब प्रमाणको कहते हैं। वह इस प्रकार है-बन्धममुत्पत्तिक. हतसमुत्पत्तिक और हतहत्तसमुत्पत्तिक इन तीनो ही स्थानोका प्रमाण असंख्यात लोक है. क्योंकि उनके कारणभूत परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं।

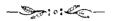
इस प्रकार प्रभागानुगम समाप्त हुन्त्रा ।

* अब अल्पबहुत्वानुगमको कहेंगे।

§ १८८. वह इस प्रकार है—मोहनीयके बन्धसमुत्पित्तकस्थान सबसे थोड़े है। इनसे हतसमुत्पित्तकसत्कर्मस्थान श्रासंख्यातगुणे हैं क्योंकि अष्टांक और उर्वकरूप श्रासंख्यात लोक-प्रमाण बन्धसमुत्पित्तक पट्स्थानोके बीचमे पृथक पृथक श्रासंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पित्तक-सत्कर्मस्थानो की उत्पत्ति होती है।

त्तीदो । को गुणगारो ? असंखेजा लोगा। हदहदसमुप्पत्तियमंतकम्महाणाणि असंखेजजन्मुणाणि । कुदा ? असंखेजजोगमेत्तहदसमुप्पत्तियछहाणाणमहं कुव्वंकाणं विश्वालेस पुध पुध असंखेजजोगमेत्तहदहदसमुप्पत्तियसंतकम्महाणाणमुप्पत्तीदो । को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा। एवं तदिय-चउत्थ-पंचमादिवारसमुप्पण्णहदहदसमुप्पत्तियसंतकम्महाणाणं पि अणंतरहेहिमहदहदसमुप्पत्तियसंतकम्महाणोहितो अणंतरउवरिमाणमसंखेजजन्मुणतं वत्तव्वं।

एवं मूलपयडिअणुभागविद्त्ती समता ।



शृङ्ग-यहाँ पर गुगाकारका प्रमागा कितना है ?

समाधान-व्यमख्यात लोक । अर्थात वन्धममुत्पत्तिक स्थानोसे इतसमुत्पत्तिकस्थान व्यमख्यातलोकगुणे हैं ।

इनसे हतहतममुत्पित्तकमत्कर्मन्थान असंख्यातगुणे हैं. क्यांकि अष्टांकसे लेकर उर्वकरूप असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पितक पट्नथानोंके बांचमे प्रथक् प्रथक् असख्यात लोकप्रमाण् हतहतममुत्पितकमत्कर्मन्थानोंकी उत्पत्ति होती है। यहाँ पर भी गुणकार असंख्यात लोक है। इस प्रकार तीसरे, चौथे. पाँचवे आदि बार उत्पन्न हतहतसमुत्पित्तकमत्कर्मन्थानोंमे भी अनन्तर पूर्व हतहतसमुत्पित्तक मत्कर्मन्थानोंसे अनन्तर पूर्व हतहतसमुत्पित्तकसत्कर्म स्थान असंख्यातगुणे कहने चाहिये।

विशेषार्थ-मोहनीयकर्मके बन्धममुत्पत्तिक म्थान सबसे थोड़े हैं। उनसे हतसमुत्पत्तिक अनुभागस्कर्मम्थान असस्यानगुणे हैं, क्योकि एक एक बन्धम्थानके मध्यमे असस्यान लोकप्रमाण घातम्थान उत्पन्न होते हैं, अतः जब बन्धम्थान असस्यान लोकप्रमाण है और एक एक बन्धममुन्धित्तकस्थान सम्बन्धी पट्म्थानके अष्टाक और उर्वकके बीचमे असंख्यात लाकप्रमाण घातम्थान होते हैं तो बन्धममुत्पत्तिकम्थानांसे घातम्थान वा हतममुत्पत्तिकम्थान असस्यातगुणे सिद्ध होते हैं। इमोप्रकार असंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकम्थान सम्बन्धी पट्म्थानोके अष्टांक और उर्वकांके अन्तरालोमेसे प्रत्येक अन्तरालमे असंख्यात लोकप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकम्थान होते हैं। अतः हतसमुत्पत्तिकम्थानसे हतहतसमुत्पत्तिकम्थानोक। प्रमाण असख्यात लोकपुणा होता है, इसलिये वे सबसे अधिक होते हैं।

इस प्रकार मृ्लप्रकृतिस्रानुभागविभक्ति समाप्त हुई।

उत्तरपयडिञ्रणुभागविहत्ती

🖇 उत्तरपयडित्रगुभागविहत्ति वत्तइस्सामो।

- ३ १८६. मोहणीयम् लपयडीए अवयवभृदमोहपयडीणमुत्तरपयि ति ववएसो । तासिमुत्तरपयडीणमणुभागस्म विहत्ति भेदं वत्तइस्सामो ति जइवसहाइरियपइज्जासुत्तमेदं। संपिह सव्वमोहृत्तरपयडीणमणुभागफदयाणं रयणाण् अणवगयाण् उविरमअहियारा ण णव्वति त्ति काउण्फ्रहयस्यणपक्त्वणद्व-मुत्तरसृत्तं भणदि ।
 - % पुत्रवं गृणिज्ञा इमा परूवणा।
- ११६०. इमा भणिम्समाणपहरयपरूवणा पढमं चेव णायव्या, अण्णहा सव्वघादि-देसघादिएगद्वाण-विद्वाण-तिद्वाण-चउद्वाणादिअणुभागवियप्पाणं जाणावणोवायाभावादो।
- सम्मंत्तस्स पढमं देसघादिफश्यमादिं कादृण जाव चरिमदेसघादि-फह्मं त्ति एदाणि फश्याणि ।
- १६१. सम्मत्तम्म जं पढमं फहयं सव्वजहण्णं तं देसघादि ति जाणावणहं 'पढमं देसघादिफहयं' इदि णिहिहं । समत्तम्स जं चरिमफहयं सव्वुक्तस्सं लदासमाण-हाणं समुल्लंघिय दारुअसमाणहाणाविद्वदं तं पि देसघादि त्ति जाणावणहं 'चरिमदेसघादिफहयं त्ति' ति भणिदं । पढमदेसघादिफहयमादि काद्ण जाव चरिमदेसघादि-

उत्तरप्रकृतिअ**नुभाग**विभक्ति

* अव उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्तिको कहते हैं।

१८९. मूल मोहनीयकर्मकी अवयवसृत मोहप्रकृतियोकी उत्तरप्रकृति संज्ञा है। उन उत्तरप्रकृतियोके अनुभागकी विभक्ति अर्थान भेदोंको कहते हैं। इस प्रकार यह आचार्य यित्रप्रभका प्रतिज्ञामप सृत्र है। अर्थान इस सूत्र के द्वारा आचार्य ने उत्तरप्रकृतिके भेदोंको कहतेकी प्रतिज्ञा की है। अर्थ मोहनीयकी सब उत्तर प्रकृतियोके अनुभागम्पर्धक्षकोकी रचनाके जाने विना आगे के अधिकार नहीं जाने जा सकते ऐसा विचार करके स्पर्धकरचनाका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* पहले इस प्ररूपणाको जानना चाहिये।

- ्१९० आगे कही जानेबाली इस स्पर्धकप्रक्षपणाको पहले ही जान लेना चाहिए. क्योंकि उसके जाने बिना अनुभागके सर्वधार्ता, देशधानी, एकस्थानिक, द्विस्थानिक, बिन्धानिक, चतुः-स्थानिक आदि मेदोंके जाननेका कोई उपाय नहीं है।
- * सम्यक्त्वप्रकृतिके प्रथम दंशघातिस्पर्धकसे लेकर अन्तिम दंशघातिस्पर्धक पर्यन्त य स्पर्धक होते हैं।
- ्र १९१. सम्यक्त्वप्रकृतिका सबसे जघन्य जो पहता स्पर्धक है वह देशघाती है यह बतलानेके लिये 'प्रथम देशघातिस्पर्धक' ऐसा कहा है। सम्यक्त्वका सबसे उत्कृष्ट जो अन्तिम स्पर्धक है जो कि लताके समान स्थानका उत्लघन करके दारुसमान स्थानमे स्थित है। अर्थान् जो लताह प न होकर दारुह है वह भी देशघाती है यह बतलानेके लिये 'अन्तिम देशघातिस्पर्धक' ऐसा कहा है। प्रथम देशघाती स्पर्धकसे लेकर अन्तिम देशघाती स्पर्धक पर्यन्त ये सब सम्यक्खके

फद्दगं ति एदागि सम्पत्तस्स फद्दयाणि होति ति घेत्तव्यं । लदासमाणजहण्णफद्दयमादिं कादृण जाव देसवादिदारु असमाणुकस्सफद्दयं ति द्विदसम्मत्ताणुभागस्स कुदो देस-घादितं ? ण, सम्मत्तस्स एगदेसं घादेंताणं तदविरोहादो । को भागो सम्मत्तस्से तेण घाइज्जदि ? थिरत्तं णिक्कंक्खत्तं ।

🕸 सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादिआदिफद्दयमादि कादण दारुअसमाणस्स अणंतभागे णिहिदं।

१६२. सम्मत्तुकस्सफदयस्स ऋणंतरज्वरिमफद्दयंै तं सव्वघादि सम्मतुकस्स-फदयादो अणंतगुणं, तप्पाओगगछहाणगुणगारेसु पविट्ठेसु उप्पण्णतादो । एदं फद्दयमादिं कादृण जाव दारुसमाणस्स अणंतिमभागो ति एदम्हि अंतरे अविद्विदं सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं । सम्मामिच्छत्तफद्दयाणं कृदो सव्वघादित्तं ? णिस्सेमसम्मत्त्रायणादो । ण च सम्मामिच्छत्ते सम्मत्तस्स गंधो वि अत्थि, मिच्छत्त-

स्पर्धक होते हैं ऐसा श्रर्थ यहाँ प्रहण करना चाहिये।

हांका-लतारूप जघन्य स्पर्धकसे लेकर देशघाती दारुए उत्कृष्टस्पर्धक पर्यन्त स्थित सम्यक्तका अनुभाग देशघाती कैसे है ?

समाधान-नहीं क्योंकि सम्यक्त्वप्रकृतिका अनुभाग सम्यन्दर्शनके एकदेशको घातता है. श्वतः उसके देशघाती होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका-सम्यक्तके कौनसे भागका सम्यक्षकृति द्वारा घान होता है ?

समाधान-उसकी स्थिरता और निष्कांचताका घात होता है। अर्थान् उसके द्वारा घाते जानेसे सम्यादर्शनका मृतसे विनाश तो नहीं होता कि तु उसमें चल मलादिक दाप आ जाते हैं।

विद्योपार्थ-शक्तिकी अपेत्त,से कर्माके अनुभागस्थानके चार विकल्प किये जाते हैं- लता-रूप, दारुहप, श्रस्थिहप श्रीर शैलुहप। लताभाग श्रीर दारुका श्रनन्तवा भाग देशघाती कह-लाता है श्रीर दारुका रोप बहुभाग तथा श्रास्थि श्रीर रोलक्ष्य अनुभाग सर्वधाती कहा जाता है। सम्यक्त प्रकृतिके स्वर्धक लता भागसे लेकर दारुक अनन्तवं भाग तक होते हैं, क्योंकि यह देश-घाती है और इसके देशघाती होनेका सबूत यह है कि यह मम्यक्त्वको नहीं घातती, क्योंकि इसके उदयम वदकसम्यक्त होता है।

🕸 सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिका अनुभागसत्कर्म प्रथम सर्वेघाती स्पर्धकसे लेकर दारुके श्चनन्तवेंभाग तक होता है।

् १९२. सम्यक्त्वके उन्कृष्ट स्पर्धकसे अनन्तरवर्ती जो श्रागेका स्पर्धक है वह सर्वधाती है जो कि सम्यक्त्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे श्रानन्तगुणी शक्तिवाला है क्योंकि उसके योग्य पट्स्थान गुणकारोंके होने पर उसकी उत्पति हुई है। अर्थान् अपने पूर्वके स्थानसे यह स्थान अपने यांग्य पदस्थान द्वियोंका लिये हुए है। इस स्पर्धकसे लेकर दारुभागके अनन्तवेंभाग पर्यन्त इस बीचमें जो स्पर्धक त्रवस्थित हैं वह सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिका श्रनुभाग सत्कर्म है।

शुङ्ग-सम्यग्मिध्यात्वके स्वर्धक सर्वधाती कैसे हैं ?

१. मा० प्रती 'को पडिभागो सम्मत्तस्त' इति पाठः । २. मा० प्रती मर्गातरउवरिमफर्म्यं ईति रारः। क्षत्राग्रेऽप्येवमेव पाठ वपचभ्यते बहुकतया । ३. ता॰ खा॰ प्रस्योः 'एवं' इति पाठः।

सम्मत्ते हिंतो जेच्चंतरभावेणुष्पण्णे सम्मामिच्छते सम्मत्त-मिच्छत्ताणमित्थत्तविरोहादो ।

ॐ मिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं जिम्म सम्मामिच्छत्तस्स अणुभाग-संतकम्मं णिद्विठदं तदो अणंतरफद्यमाढत्ता उविर अप्पडिसिद्धं।

१६३. जिम्म उद्दे से दारुअसमाणस्स अणंतिमभागं सम्मामिच्छत्तस्स अणुभाग-संतकम्मं णिहिदं तत्थ सम्मामिच्छत्तस्स सव्वधादि उक्कस्सफद्दयं होदि । तदो अणंतर-मुवरिममिच्छत्तजहण्णफद्दयं सम्मामिच्छत्तुक्कस्सफद्दयादो अणंतगुणं तमाढता तमादिं काद्ग्ण उवरि अप्पडिसिद्धं मिच्छत्ताणुभागसंतकम्मं होदि । सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्स-फद्दयादो अणंतगुणमिच्छत्तजहण्णफद्दयमादिं काद्ग्ण उवरि पिहसेहेण विणा दारुअ-समाणाणुभागस्स अणंते भागे अहिसमाण-सेलसमाणहाणाणं सयलफद्दयाणि च गत्ग्ण मिच्छत्ताणुभागसंतकम्ममवहिदं ति भणिदं होदि ।

समाधान—क्योंकि व सम्पूर्ण सम्यक्त्वका घात करते हैं। सम्यग्निध्यात्वके उद्यमें सम्यक्त्वकी गंध भी नहीं रहती. क्योंकि मिध्यात्व और सम्यक्त्वकी अपेचा जात्यन्तररूपसे उत्पन्न हुए सम्यग्निध्यात्वम सम्यक्त्व और मिध्यात्वके अस्तित्वका विरोध है। अर्थात् उस समय न सम्यक्त्व ही रहता है और न मिध्यात्व ही रहता है. किन्तु मिला हुआ दही-गुड़के समान एक विचित्र ही मिश्रभाव रहता है।

विशोपार्थ-सम्यक्त्वप्रकृतिकं उत्कृष्ट देशघाती म्पर्धकके अन्तरवर्ती जघन्य सर्वघाती स्पर्धकसे लेकर दारुके अनन्तवें भाग तक सम्यग्मिण्यात्वप्रकृतिकं ग्पर्धक होते हैं. क्योंकि यह प्रकृति जात्यन्तर सर्वघाती है। इसका उदय रहते हुए न तो सम्यक्त्वरूप ही परिगाम होते हैं और न मिण्यात्वरूप ही परिगाम होते हैं और न मिण्यात्वरूप ही परिगाम होते हैं।

* जिस स्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म समाप्त हुआ उसके अनन्तर-वर्ती स्पर्धकसे लेकर आगे विना प्रतिपेथके मिथ्यात्वसत्कर्म होता है

§ १९३. दारुह्प अनुभागके अनन्तवे भागहप जिस स्थानमे सम्यग्मिध्यात्वका अनुभाग सत्कम समाप्त हुआ है उस स्थानमे सम्यग्मिध्यात्वका सर्ववाती उत्कृष्ट स्पर्धक होता है और उससे उपर आगेका अनन्तरवर्ती स्पर्धक मिध्यात्वका जवन्य स्पर्धक है जो सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे अनन्तगुणी शक्तिवाला है। उससे लेकर आगे विना किसी हकावटके भिध्यात्यका अनुभागसत्कर्म होता है। आशय यह है कि सन्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे मिध्यात्वका जवन्य स्पर्धक अनन्तगुणा है। उस स्पर्धकसे लेकर आगे बिना किसी हकावटके अर्थात् दाह समान अनुभागका अनन्त बहुभाग तथा अस्थिहप और शैलहप स्थानोंक समस्त स्पर्धकोंका व्याप्त करके मिध्यात्वका अनुभागसत्कर्म स्थित है। अर्थात् सम्यग्मिध्यात्वक उत्कृष्ट स्पर्धकसे लेकर शैल समान अनुभागके चरम स्पर्धक पर्यन्त सब स्पर्धक मिध्यात्वके हैं।

विशेषार्थ-दारुके जिस भाग तक सम्यामिष्यात्व प्रकृतिके स्पर्धक बतलाये हैं उससे अन-न्तरवर्ती स्पर्धकसे लेकर आगेके सब स्पर्धक मिथ्यात्व प्रकृतिके होते हैं। अर्थान् दारुका अवशिष्ठ सब भाग, अस्थिरूप और शैलाह्मप सब स्पर्धक मिथ्यात्वप्रकृतिके होते हैं।

झा प्रतौ जन्चंतरभागुवेष्पणो इति पाठः ।

 श्रावासकसायाणमणुभागसंतकम्मं सञ्बचादीणं दुट्ठाणियमादि-फद्यमादिकार्रणं उवरिमप्पडिसिद्धः ।

- १६४. वारसकसायाणं ति वुत्ते अणंताणुवंधि--अपचक्खाण-पचक्खाण-कोह-माण-माया-लोहाणं गहणं। कुदो ? अण्णासि वारसपयडीणं सञ्च्छादीण-मभावादो। सञ्च्छादीणं दुद्धाणियमणुभागमादि काद्णे ति भणिदे सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णफद्दयसारसफद्दयमादि काद्णे ति चेत्तव्यं। एदं कुदो णव्यदे ? सञ्च्छादीणं दुद्धाणियमादिफद्दयं इदि मृत्तवयणादो। मिच्छत्तस्स जहण्णफद्दयमादि काद्णे ति किण्ण वृच्चदे ? ण, मिच्छत्तज्वराणफद्दयस्स दुद्धाणियसञ्च्छादिफद्दणमु जहण्णनाभावादो। एदमादि काद्ण उवित् अप्पिद्धिसद्धिमिदि वुत्ते दारुअसमाणफद्दयाणमणंते भागे अदिसेलसमाणफद्दयाण च संपुष्णाणि गंतृण वारसकसायाणमणुभागसंतकम्ममविद्वदं ति चेत्तव्यं।
- कः चदुसंजलण-- एवणोकसायाणमणुभागसंतकममं देसघादीणमादि-फद्दयमादि कादूण उचिर सञ्बघादि ति ऋष्पिडिसिद्धं।
- वारह कपायोंका अनुभागसन्कर्म सर्वेघातियोंके द्विम्थानिक पथम म्पर्धकसे लेकर आगे बिना प्रतिपेधके होता है।
- १९४ वारह कपाय ऐसा कहने पर अनन्तानुबन्धी. अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान और क्रोप क्रांच मान. माया लोभका प्रहण होता है. क्योंकि अन्य कोई वारह प्रकृतियाँ सर्वघाती नहीं हैं। सर्वघातियोंके द्विस्थानिक स्पर्धकसे लेकर ऐसा कहने पर उससे सस्यग्मिण्यात्वके जघन्य स्पर्धकसे समान स्पर्धकसे लेकर ऐसा लेना चाहिये।

शंका-यह कैसे जाना जाता है कि उक्त वाक्यसे एमा त्राशय लेना चाहिय ।

समाधान-सर्वघातियोके दिस्थानिक स्पर्धकरें लेकर ऐसा जो सूत्रका वचन है उससे जाना जाता है कि उसका ऐसा श्राशय लेना चाहिये।

्रांका—उसका मिध्यात्वके जघन्य स्पर्धकके समान स्पर्धकसे लेकर एसा ऋथे क्या नहीं कहते हो ?

र : समाधान-नहीं, क्योंकि मिण्यात्वका जघन्य स्पर्धक द्विस्थानिक सर्वधाती स्पर्धकोमे

जघन्य नहीं हैं।

इस स्पर्धक से लेकर आगे विना प्रतिषेधके हाता है. एसा कहने पर दाहरूप स्पर्धकोंके अनन्त बहुभाग तथा सम्पूर्ण अस्थिरूप और शैलरूप स्पर्धकोंके अन्त तक सब स्पर्धक मिलकर बारह कपायोका अनुभागसन्वकर्म अवस्थित है, एसा अर्थ लेना चाहिये।

विशेषार्थ-अनन्तानुबन्धी क्रांध. मान. माया और लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रांध. मान. माया और लोभ तथा प्रत्याख्यानावरण क्रांध, मान. माया और लोभ इन वारह कपायोंके सब स्पर्ध क सर्वधाती हैं। तथा दाहके जिस भागसे सर्वधाती स्पर्धक प्रारम्भ होते हैं उस भागसे लेकर शैल पर्यन्त उनक स्पर्ध क होते हैं।

चार संज्वलनो और नव नोकषायोंका अनुभागसत्वकमें देशघातियोंके प्रथम

१. त्रा॰ प्रती 'संतकम्मवादीसं हुटुासियमादिफद्य कादूस' इति पाठः । १ त्रा॰ प्रती⊸माकि फद्रयसरिसफद्यमादि इति पाठः ।

१६५. देसघादीणमादिफद्दयं इदि बुने सम्मन्तस्स आदिफद्दयसिरसफद्दयस्स गहणं। जिद एवं तो 'देसघादीणं' इदि बहुवयणणिद्देसो ण घडदे ? तेरसपयडीस एकिस्से पयडीए अणुभागे णिरुद्धे सेसतेरसपयडीओ पेक्खिद्ण पयडीणिमिटि
बहुवयणनुववत्तीदो । एदं फहममादिं कादृण उवि मञ्चघादि त्ति अप्पडिसिद्धं इदि
बुने लदासमाण-जहण्णफद्दयमादिं कादृण उवि लदा-दारु-अदि-सेलसमाणफद्दयाणि
सञ्चाणि गंतृण एदासि तेरसपयडीणमणुभागसंतकम्मं होदि ति घेन्तव्वं ? उवि
मञ्चघादि ति बुने देसघादिदारुसमाणं मोनूण सञ्चघादिदारुसमाणफहएहि सह
अदिसेलसमाणफद्दयाणि वि घेप्पंति ति कुदो णव्वदे ? उवि हाणसण्णापुरुवणाण्
चदुसंजलणाणुभागसंतकम्मं एगद्वाणियं वा दृद्वाणियं वा निद्वाणियं वा चदुद्वाणियं
वा ति सुनादो णव्वदे । संपित मिच्छनादीणं मञ्चकम्माणं जिद वि फह्याणि
उवि सुनादो णव्वदे ! संपित मिच्छनादीणं मञ्चकम्माणं जिद वि फह्याणि
उवि सुनादो णव्वदे ? महावंधसुन्तसिद्धपावहुआदो । तं जहा—मिच्छनुकस्सहाणचिरमफह्यादो सेलसमाणाटो अणंताणुवंधिलोभचिरमाणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं।
मपर्थकसे लेकर आगे विना प्रतिपेधके सर्वधाती पर्यन्त हैं।

् १९६ देशघातियोका प्रथम स्पर्धक एसा कहनेपर उससे सम्यक्त्व प्रकृतिक प्रथम स्पर्धकके समान स्पर्धकका ग्रहण करना चाहिये।

शंका यदि देशघातियोके इस पर्से केवल एक सस्यक्त्वप्रकृतिका प्रहण करते हो तो देशघातियोके ऐसा बहुबचनका निर्देश नहीं बनता है।

समाधान-नहीं. क्योंकि तेरह प्रकृतियों मेसे एक प्रकृतिके अनुभागके विविद्यति होनेपर शेष नेरह प्रकृतियों को देखते हुए प्रकृति तेकें इस प्रकार बहुबचन निर्देश बन जाता है।

इस म्पर्धकसे लंकर आगे विना प्रतिषेधके सर्वघाती पर्धन्त है ऐसा कहनेपर उससे लतारूप जबन्य स्पर्धकसे लंकर आगे लतारूप दाहरूप अस्थिरूप और शैलरूप सब स्पर्धकोंका ज्याप्त करके इन तेरह प्रकृतियोका अनुसागसत्कर्म है ऐसा लेना चाहिये।

शंका—आगे सर्वधाती है ऐसा कहनेसे दारुहप देशवानी गर्थकोका छाड़कर सब-बाती दारुहप म्पर्धकोके साथ अभ्यिहप और शेलहप म्पर्धकोका भी प्रहण करते हैं यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—त्राग स्थानसंज्ञाका कथन करते समय चार संज्वलनोका अनुभागसःकर्म एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक द्योर चतुः स्थानिक होता है । इस सूत्रसे जाना जाता है कि यहाँ सर्वघाती दारूसमान स्पर्थकोके साथ अस्थि और शेलसमान स्पर्थकोका भी प्रहण किया है ।

यहाँ यद्यपि ऐसा कहा है कि मिध्यात्व ऋादि मब कर्मीके स्पर्धक ऋागे बिना प्रतिषंधके हैं तो भी उन सबके ऋन्तिम स्पर्धक समान नहीं हैं।

शंका-यह कैसे जाना जाता है कि मिथ्यात्व आदि सब कर्मांक अन्तिम स्पर्धक समान नहीं हैं ?

समाधान-महाबन्ध नामक सूत्रप्रन्थसं सिद्ध अल्पवहुत्वसं जाना जाता है। यथा-मिध्यात्वकं उत्कृष्टम्थान शैलसमान अन्तिम स्पर्धकसं अनन्तानुबन्धी लोभका अन्तिम अनुभाग लोभचित्माणुभागफद्दयादो मायाए चित्माणुभागफद्दयं विसेसहीणं। तत्तो कोथचित्मफद्दयं विसेसहीणं। कोथचित्मफद्दयादो माणचित्मफद्दयं विसेसहीणं। तत्तो
तस्सेव मायाचित्मफद्दयं विसेसहीणं। तदो तस्सेव कोथचित्मफद्दयं विसेसहीणं।
तदो तस्सेव माणचित्मफद्दयं विसेसहीणं। तदो तस्सेव कोथचित्मफद्दयं विसेसहीणं।
तदो तस्सेव माणचित्मफद्दयं विसेसहीणं। माणसंजलणचित्मफद्दयं विसेसहीणं।
तदो तस्सेव माणचित्मफद्दयं विसेसहीणं। तदो तस्सेव माणचित्मफद्दयं विसेसहीणं।
पच्चलाणावरणमाणचित्मफद्दयं विसेसहीणं। तदो तस्सेव माणचित्मफद्दयं विसेसहीणं।
पच्चलाणावरणमाणचित्मफद्दयादो अपच्चलाव्यत्रणलोभचित्मफद्दयमणंतगुणहीणं।
तदो तस्सेव माणचित्मफद्दयं विसेसहीणं। अपच्चल्लाणावरणमाणचित्मफद्दयं विसेसहीणं
तदो तस्सेव माणचित्मफद्दयं विसेसहीणं। अपच्चल्लाणावरणमाणचित्मफद्दयमणंतगुणहीणं।
सोगचित्माणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं। भयचित्माणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं। पुरिसविदेचित्माणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं। इत्थिवदचित्माणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं। पुरिसविदेचित्माणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं। सम्मचविदेचित्माणुभागफद्दयमणंतगुणहीणं। सम्मच-

स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। लाभकं अन्तिम अनुभागम्पर्धकसे मायाका अन्तिम अनुभागस्पर्धक विशेषदीन है। उससे कोधका ऋन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। क्रांधके ऋन्तिम स्पर्धकसे मानका त्र्यन्तिम स्पर्धक विशेपहीन है। श्रनन्तानुबन्धी मानक श्रन्तिम स्पर्धकसे संज्वलनलोभका अन्तिम स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे उसीकी मायाका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसीके क्रांधका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसी े मानका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। संज्वलनमानके ऋन्तिम स्पर्ध≉से प्रत्याख्यानावरण लोभका ऋन्तिम स्पर्धक ऋनन्तगुणा हीन है। उससे उसीकी मायाका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसीके क्रोधका अन्तिम म्पर्धक विशेपहीन है। उससे उसीके मानका अन्तिम स्पर्धक विशेपहीन है। प्रत्याख्यानावरण मानके श्रन्तिम स्पर्ध कसे अप्रत्याख्यानावरण लोभका अन्तिम स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे उसाकी मायाका अन्तिम स्पर्धक विरोषहीन है। उससे उसीके क्रांधका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। उससे उसोके मानका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है। अप्रत्याख्यानावरण मानके अन्तिम म्पर्ध कसे नपुसकादका अन्तिम अनुभागरार्धक अनन्तगु हा हीन है। उससे अर्रातका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे शोकका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे भयका अन्तिम अनुभाग स्पर्धक अनन्तगृणा हीन है। उससे जुगुण्साका अन्तिम अनुभागस्पर्धं क अनन्तगुणा होन है। उससे स्त्रीवेदका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे पुरुषवदका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे रतिका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे हास्यका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है। उससे सम्यक्त्वका त्रन्तिम त्रानुभागस्पर्धक त्र्यनन्तगुणा हीन है।

१ आ॰ प्रती माणचरिमफदयाए विसेसहीणं इति पाठः।

चरिमाणुभागफद्दयम्यांतगुणहीणमिदि। एदं मोहणीयपिडवद्धत्तादो महावंधप्पाबहुत्रं ण होदि ति णासंकणिज्जं, महावंधच उसिहवदियअप्पाबहुअगब्भविणिग्गयस्स तत्तो विणिग्गयनं पिंड अविरोहादो।

एवं फद्दयपरूवणा समना।

🕸 तत्थ दुविधा सग्णा घादिसग्णा ट्ठाणसग्णा च।

§ १६६. तत्थेति बुत्ते अणेण बिहाणेण बुत्ताणुभागफद्दएसु त्ति घेत्तव्वं। सण्णा णाम अहिहाणमिदि एयद्दो। सा दुविहा-घादिसण्णा ठाणसण्णा चेदि। एदेसिं मोहाणु-भागफद्दयाणं घादि त्ति सण्णा जीवगुणघायणसीलत्तादो। एदेसिं चेव फद्दयाणं द्वाराणिदि च सएणा लद्द-दारु-अद्वि-सेलाणं सहाविम्म अवद्वाणादो। जा सा घादि-

शंका-यह अल्पबहुःव केवल मोहनीयकमेसे सम्बद्ध है. अतः यह महाबन्धका अल्पबहुत्व नहीं हो सकता।

समाधान—ऐसी आराङ्का नहीं करनी चाहिये. क्योंकि यह अल्पबहुत्व महाबन्धके चौसठ पदिक अल्पबहुत्वके भीतरसे निकला है. श्रतः इसे महाबन्धसे निकला हुए माननेमे कोई विरोध नहीं आता है।

विशेषाध-संज्वलन क्रांध, मान, माया, और लांभ तथा नव नांकपाया के स्पर्धक देशघातीसे लेकर सर्वघाती पर्यन्त होते हैं। ऋर्थान् लता समान जघन्य म्पर्धकसे लेकर लतारूप, दारुरूप, अस्थिरूप और शैलरूप अनुभाग सत्कर्म इन तरहों प्रवृतियोके हाते हैं। चूर्णिसूत्रमे केवल इतना कहा गया है कि इन तेरह प्रकृतियोंके अनुभागसत्कर्म देशघातीके प्रथम स्पर्धकसे लेकर आगे सर्वघातीपर्यन्त होते हैं। उस परसे यह शंका होती है कि सर्वघातीसे शैलपर्यन्तका प्रहरा क्यो किया गया ? सर्वघातीसे दाहके सर्वघाती स्पर्धकके समान स्पर्धकका भी तो प्रहण हो सकता है। इसका उत्तर यह दिया गया है कि ऋागे स्थानसंज्ञाके प्रकरणमे 'चार सञ्बलन कपायोका श्रनुभाग सन्कर्म एक स्थानिक, दो स्थानिक, त्रिस्थानिक श्रीर चतुस्थानिक होता है।' ऐसा कहा है उससे यह निष्कर्प निकलता है कि 'सर्वघाती' से शैलपर्यन्तका ही। प्रहर्ण इप्र हैं। यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि यद्यपि मिथ्यात्व. बारह कपाय. चार संज्वलन और नौ नोकपायोका ऋनुभाग सत्कर्भ शैलपर्यन्त कहा है फिर भी उन सबके अन्तिम स्पर्धक समान नहीं हैं. उनके अन्भाग मत्कर्ममे श्रन्तर है जैसा कि श्रागे दियं गये महायन्ध नामक सिद्धान्तवस्थके श्रह्मबहत्वसे स्प्रष्ट होता है। इस परसे यह शंका की गई है कि महावंध नामक सिद्धान्तप्रन्थमें सभी कर्मीका निरूपण है और यह अल्पबहुत्व केवल मोहनीयकर्मका है, अतः इसे महावन्धका अल्पबहुत्व नहीं कहा जा सकता। तो इसका यह समाधान किया गया कि ६४ स्थानों के भीतरसे केवल मोहनीयका यह ऋन्पबहुत्व निकाला है, ऋतः इसे महाबन्धका ही जानना चाहिए।

इस प्रकार स्पर्ध क प्ररूपणा समाप्त हुई 📙

🕸 उनमें संज्ञा दो प्रकार की है-घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा।

ुं १९६. उनमे ऐसा कहनेसे इस विधिसे कहे गये अनुभागस्पर्धकोंमें एस। अर्थ लेना चाहिये। संज्ञा. नाम और अभिधान ये शब्द एकार्थक हैं। वह संज्ञा दो प्रकारकी है—घाति संज्ञा और स्थानसंज्ञा। इन मोहनीयके अनुभागस्पर्धकोकी घाती यह संज्ञा है, क्योंकि जीवके गुणोंको घातना उनका स्वभाव है। तथा इन्हीं स्पर्धकों की स्थान यह संज्ञा भी है, क्योंकि वे लतारूप. दाहरूप, अस्थिरूप और शैन्रूरूप स्वभावमें अवस्थित हैं। वह घातिसंज्ञा भी सर्वघाती और

सण्णा सा द्विहा--मञ्ज्वादि-देसघादिभेएण । ठाणसण्णा चडव्विहा लदा-दारु अहि-मेलभेएण ।

श्रु नाम्रो दो वि एकदो णिज्जंति ।

१६७, जाओ हो नि सण्णाओ पुर्व्य परूविदाओ नाओ एकहो एकवार चेव णिडजंति कहिडजंति परुविडजंति ति येत्तव्यं ।

🕸 मिच्छत्तस्स ऋगुभागसंतकम्मं जहगण्यं सव्वघादि दुट्ठाणियं।

१८८ समकम्मप्रिसेहफलो मिच्छत्तणिहोसो । द्विदि-परेससंतकम्मादिप्रि-सहफलोअणभागासंतकम्मणिद्देसो। उक्कम्सपिडसेहफलो जहण्णयं ति णिद्देसो। देस-चादिपहिसेहफलो सन्वचादिणिइदेसो । मिच्छत्ताणुभागफद्दयरयणाए मिच्छत्तम्स जहण्ण-फद्दयं मञ्चपादि ति पुट्वं परूविदं चेव । बुदो ? सञ्चपादित्तणेण सक्खा [सखा] परूविदसम्मामिच्छत्तकस्सफद्दयं पेक्खिद्ण अर्णनगुणत्तादो । तदो मिच्छत्तजहण्णाणु-मागसंतकम्मं सञ्च्यादि त्ति ण वत्तव्विमिदि ? एत्थ परिहारो बुचदे - फहुद्यरयणा णाम सव्वचादित्तमसञ्बचादितं च ण परूबेदि किंतु केवलं फदुदयरयणं चेव परूबेदि. देशघातीके भेदमं दो प्रकारकी है। तथा स्थानसज्ञा लता. दार. अस्थि और शैलके भेदसे चार

प्रकारकी है।

🦔 आगे उन दोनों संज्ञाओंको एक साथ कहते हैं।

१९७, जो दो संज्ञा पहले कही है. उन्हें एक साथ ही बनलाते हैं अथान कहते है श्रहपामा करते हैं ऐसा अर्थ यहाँ लेना चाहिये। अर्थान आगे उन दोनो संज्ञाओंका एक साथ कथन करते हैं।

विशापार्थ-माहनीयकर्मके अनुभागम्पर्धको की दो संज्ञाए है-धानी और स्थान । यत: व अनुभागम्पर्धक जीवके गर्गा का घान करने हैं. अत: उन्हें घाती कहते हैं और यत: व लता. दार अस्थि और शैलका जैसा स्वभाव है वैसे स्वभावको लिए हुए है, अत: ान्हे स्थान कहते है। वातीसंज्ञाक दो भेद है—सर्वघाती और देशवाती। तथा स्थानसंज्ञाक चार भेद हैं—लता. दारु. अस्थि और शैल । आगे इन दोनों संज्ञाओं का एकसाथ कथन करते है ।

अ मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानिक है ।

६ १९८. शेप कर्मीका प्रतिपंथ करनेके लिये मिध्यात्व पदका निर्देश किया है। स्थिति सत्कर्म और प्रदेशसन्कर्म आदिका प्रतिषेध करनेके लिये अनुभागसन्कर्म पदका निर्देश किया है। उत्क्रष्टका प्रतिषेध करनेके लिये जधन्यपदका निर्देश किया है। देशघातीका प्रतिषेध करनेके लिये मर्बघाती पदका निर्देश किया है।

शंका-मिण्यात्वके अनुभागम्पर्धकोकी रचनामे मिण्यात्वका जघन्य म्पर्धक सर्वघाती है ऐसा पहले कहा ही है. क्योंकि पहले सर्वधातिरूपसे कहे गये सम्यग्मिध्यात्वके उत्क्रष्ट अनुभागकी अपेत्ता इसका अनुभाग अनन्तगुणा है. अत: यहाँ मिश्यात्वका जघन्य अनुभाग सत्कर्म सर्वधाती है ऐसा नहीं कहना चाहिए ?

समाधान-यहाँ परिहार करते हैं-स्पर्धकरचना सर्वधातित्व श्रीर असर्वधातित्वको नहीं चतलाती है, किन्तु केवल स्पर्धकरचनाका ही कथन करती है. क्योंकि उसीमें इसका व्यापार तस्मे तन्थ वावागदो । जदि वि जुत्तीण सञ्च्यादित्तमवगयं तो वि सा एत्थ ण पहाणा, अहं अवायम्मि तिण्णहिसिम्माणं तन्थ अणुगाहकारित्ताभावादो । तदो मिच्छत्त नहण्णाणुभागसंतकम्मं सञ्च्यादि ति वत्तव्यं चेव । कि च जहा चारित्तमोहक्खवणाण चदुग्रहं सजलणाणं पुट्यफद्दयाणि ओहिट्ट्य तेमि जहण्णफद्दयादो अणंतगुणहीणाणि अपुट्यफद्दयाणि काञ्जण पुणो ताणि वि याद्य सगजहण्णफद्दयादो अणंतगुणहीणाओं किट्टिओ कटाओ, तहा एत्थ टंसणमोहणीयक्खवणाण मिच्छत्ताणुभागम्स अपुट्यफद्दयादिकिरियाओं काञ्जण टंसयाइविहाणं णिन्धि ति जाणावणहं वा सञ्च्यादिणिद्देसो कदो । सृहुमणिगोदम्स मिच्छत्तजहण्णाणुभागसंतकम्मादो अणातगुणेण अणुभागसंतकम्मेण दंसणमोहक्खवणाण् किट्टीकरणादिविहाणेण विणा मिच्छत्तं खिवज्ञिद ति जाणाक्णहं वा । टाक्समाणाणुभागफद्दयाणमणंतिमभागे सृहुमणिगोदेसु जेण मिच्छत्ताणुभागसंतकम्मं जहण्णं जादं तेण तं दृहाणियं। एदेण एगद्दाण-तिहाण-चउहाणाणं पहिन्तिहो कदो । मिच्छत्ताणुभागम्म दाक-अिट्ट-सिल्यभाणाणि ति तिष्णि चेव हाणाणि स्ताममाणफद्दयाणि उन्लंचिय टाकसमाणिम्म अविद्यसम्मामिच्छत्तुकस्मफद्दयादो अणंतगुणभावेण मिच्छत्तजहण्णफद्दयम्म अवद्यालादो । तदो मिच्छत्तम्म जहण्णाणुभागसंतकम्मं दृहाणियमिदि यते दाक-अदि-समाणफद्दयाणं गहणं कायव्वं, अएणहा

है। यद्यपि युक्तिसे उसका सर्वयानित्व जान लिया गया है तो भी यहा युक्ति प्रधान नहीं है. क्योंकि श्रहेतुबाद रूप श्रागमें श्रद्धा रखनेवाले शिष्योंका युक्ति कोई उपकार नहीं कर सकती। अतः मिश्यात्यका जयन्य अनुभागमत्कर्म सर्वयाती हैं? ऐसा यहाँ कहना ही चाहिये। दूसरे, जैसे चारित्रमोहकी च्रपण्यों चारों संख्वलनकपायोंके पूर्वस्पर्धकोंका श्रपकपेण करके उनके जयन्य स्पर्धकसे भी श्रानत्वगुणे हीन अपूर्वस्पर्धक किये जाते हैं और फिर श्रपृर्व स्पर्धकोंका भी घात करके श्रपृर्वस्पर्धक श्रप्वत्य स्पर्धकोंका भी घात करके श्रपृर्वस्पर्धक श्रपृर्वस्पर्धक श्रादि क्रियाश्रोंको करके मिश्यात्वके श्रानुभागका देशवातियान नहीं है। श्रर्थात मिश्यात्वके श्रानुभागको क्रियाद्यारा देशवातीरूप नहीं किया जा सकता है, वह सर्वधाती ही रहता है, यह वतलानेके लिये सूत्रमें मर्वधारी पदका निर्देश क्रिया है। श्रय्या, दर्शनमोहक चपण् कालमें सूक्ष्म निर्मादिया जीवके मिश्यात्वके जवन्य श्रमुभागमत्कर्मसे श्रमन्तगुणे श्रमुभागमत्कर्मके रहते हुण कृष्टिकरण श्रादि क्रियाके विना ही मिश्यात्वका च्युण करता है यह वतलानेके लिये सूत्रमें सर्वधाती पद दिया है। यतः सूक्ष्मनिर्मादिया जीवों में मिश्यात्वका श्रमुभागमत्कर्म जवन्य है श्रीर वह दारममान श्रमुभागमपर्धकों के श्रनत्वे भागमें स्थित है श्रवः वह दिस्थानिक है। इससे वह एक स्थानिक, विस्थानिक श्रीर चतुःस्थानिक है इस वातका निर्मय कर दिया है।

शंका-मिश्यात्वके अनुभागके दारके समानः अस्थिके समान और शैलके समान इस प्रकार तीन हा स्थान हैं, क्यों कि लतासमान स्पर्धकों का उल्लंघन कर े दारसमान अनुभागमें स्थित सम्यक्तिश्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे भिश्यात्वका जघन्य स्पर्धक अनन्तगुणा है। अतः मिश्यात्वका जघन्य अनुभागसन्दर्भ दिस्थानिक है ऐसा कहने पर दारसमान और अस्थिसमान स्पर्धकों का ब्रह्ण करना चाहिये. अन्यथा यह दिस्थानिक नहीं वन सकता है। तस्स दुद्दाणियत्ताणुववत्तीदो ? ण एम दोसो, ववएसिवव्भावेण दारुसमाणफद्द्याणं केवलाणं पि दुद्दाणियत्तुववत्तीदो । कृतो व्यपदेशिवज्ञावः ? लता-दारुसमानस्थानाभ्यां केनिचिदंशान्तरेण समानतया एकत्वमापन्नस्य दारुसमानस्थानस्य तद्व्यपदेशोपपत्तेः । सम्रुदाये श्वतस्य शब्दस्य तद्वयवेऽपि प्रवृत्युपत्स्भादा ।

समाधान-यह कोई दोप नहीं हैं: क्यों कि ज्यपदेशिवज्ञावसे केवल दारममान स्पर्धकोका भी द्विस्थानिकपना बन जाता है :

शंका-व्यपदेशिवद्भाव ैसे हैं १

समाधान किमी खंशान्तरकी अपेदा समान होनेकं कारण लतासमान और दारुभूमान स्थानोसे दारुसमान स्थान हो। स्थान स्थान स्थानको प्रतिस्थानिक कहा जा सकता है।

विशेषार्थ-चूर्णिसूत्रमं मिध्यात्वकं जघन्य त्रानुभागमत्कर्मका मर्वधाना और द्विस्थानिक कहा है। इस पर यह शंका की गई कि मिध्यात्वके अनुमागस्पर्धको की रचनाका कथन करते हुए सम्यग्निध्यात्व प्रवृति । अनुभागम्पर्धको को स्पष्टमप्से सर्वधानी बतलाकर उससे आगेके सूत्रमें सम्यग्मिथणन्य प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागनपर्धकके अनन्तरवर्धी स्पर्धकसे लेकर आगेके सब रार्धक मिध्यात्वके बतल ये हैं। इससे सिद्ध हे कि भिध्यात्वका जधन्य अनुमानस्तकमे सर्वधाती है. श्रत: उक्त सुत्रमं पुन: उसको सर्वधाती बतलाना व्यर्थ है। इसका समाधान तीन प्रकारसे किया गया है। पहला-स्पर्धक स्चनाका उद्देश केवल स्पर्धकरचनाको वनलाना है. सर्वघातित्व श्रीर त्र्यसर्वघातित्वका वतलाना उसका उद्देश्य नहीं है। यदाप यूनिसे यह मालुम हो जाता है कि मिध्यात्वका जघन्य अनुसागम्पर्धक सर्वघाती है किन्तु इस आगामिक प्रन्थेम यक्ति प्रधान नहीं है, किन्तु कंटोक्तर भी जो कहा जाय वही प्रधान है, अत: भिष्यात्वका जयन्य श्चनुभागसंखर्म सर्वधानी है यह बचन कहना ही चाहिये। दूसरे, जैसे चारित्रभोहकी चूपणाम संज्वलनकपायोका पूर्वस्पर्धक, अपूर्वस्पर्धक और कृष्टीकरणक द्वारा देशवातिविधान वतलाया है वैसे दशेनमोहकी चपरामे मिथ्यात्वक अनुभागका देशघातिविधान नहीं डोता यह वतलानेके लिये मिध्यात्व रे जघन्य अनुभागमत्कर्मको सर्ववानी वनलाया है। तीमरे सुद्भनिगोदिया जीवके मिध्यात्वका जो जवन्य अनुभागमन्कर्म रहता है उससे अनन्तगरे। अनुभागमन्कर्मके रहते हुए मिध्यात्त्रका चपण होता है यह बतलानेके लिये मिध्यात्वका जवन्य अनुभागमन्कर्म मर्बघाती होता है यह बनलाया है। तथा मिध्यात्वका जघन्य अनुसागमत्कर्स दिन्थानिक हाता है क्यों कि सम्योग्मध्यात्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभारासत्कर्म दारूप होता है और उसके अनन्तर-वर्ती स्पर्धकसे मिण्यात्वका अनुभागमःकर्म प्रारम्भ होता है अत. वह भी दिस्थानिक है। इस पर यह रांका की गई कि मिध्यात्वका जघन्य अनुभाग सन्कर्म दाहरूप है और यत: उसे द्विस्थानिक कहा है श्रत: दो स्थानों से ट्रार श्रीर श्रीस्थका ग्रहरण करना चाहिये लताका तो ब्रह्मण हो ही नहीं सकता. क्योंकि मिध्यात्वका अनुभागसन्कर्म जतास्य नहीं वनलाया है । इसका यह समाधान किया गया है कि जो स्पर्ध क केवल दारुसमान है उन्हें भी द्विस्थानिक कह सकते हैं, क्योंकि द्विस्थानिक संज्ञा लनासमान ऋौर दारुसमान स्पर्धकोंकी है। किन्तु जो स्पर्ध के केवल दाहसमान हैं व दाहरूपसे लता-दाह स्थानके समान है। अर्थान उनकी परम्परमे दाहरूपसे ममानता है अत: लता-दारु समान स्पर्ध कके लिये व्यवहृतकी जानेवाली दिस्थानिक सज्जा केवल

११६. लदा--दारु--अिंड--सेलसण्णाओं माणाणुभागफद्दयाणं लयाओ, कर्षं मिच्छत्तम्मि पयट्टंति ? ण, माणम्मि अविद्विचदुण्हं सण्णाणमणुभागाविभागपलिच्छे-देहि समाणत्तं पेक्खिद्ण पयडिविरुद्धमिच्छनादिफद्दएसु वि पबुत्तीए विरोहाभावादो ।

🖇 उक्कस्सयमणुभागसंतकम्मं सन्वघादिचदुरुठाणियं।

२००. उक्कस्सणिह मा जहण्णपिहसिहफलो । अणुभागसैतकम्मणिह सो हििट-पदसपिहसिहफलो । सञ्ज्ञादिणिह मो देसचादिपिहसिहफलो । चढुहाणियणिह सो तिहा-णादिपिहसिहफलो । सिच्छत्तम्स ति अइक्कंतसृत्तादो अणुवहदे । कुदो सञ्ज्ञचादित्तं ? सम्मत्तासेसावयविणासणेण । अग्रुत्तस्स सम्मत्तपज्ञायस्स कथं सावयवत्तं ? ण, सायारसावयवजीवदञ्जं सञ्ज्ञपणा पिह्नगिहिय अविदिद्स्म णिर्वयवणिरायारत्तिरो-हादो । लदासमाणफहएहि विणा कथं मिच्छत्ताणुभागस्स चढुहाणियत्तं ? ण, पुन्तं ब

दारुच स्पर्ध कके निये नी व्यवहृत हो सकती है। अथवा लता और दारुके समुदायमे व्यवहृत होनेवाली हिम्थानिक संज्ञाका व्यवहार उसके एक अरा दारुम भी हा सकता है।

१९९. शंका -लता. दारु. अस्थि श्रीर शेल संज्ञाए मानकपायके अनुमागस्पर्धकोमे क गर्द है. ऐसी दरामें वे संज्ञाएँ मिध्यात्वमे कैसे प्र_यत्त हो सकती हैं ?

समाधान-नहाः तथा कि मानकपाय और निष्यात्वके अनुभागके अविभागीप्रतिच्छेदों की परस्त्रपमे समानतः देखकर मानकपायमे हानेप्राली चारी संज्ञाओं की मानकपायसे विकद्ध प्रकृतिवाले मिठवात्वादिक स्पर्धका में भी प्रशृत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है।

विशेषार्थ-यद्यपि कठोरता यह मानकपायका गुरा है। अन्य प्रकृतियों में यह धर्म नहीं पाया जाता. तथापि मानकपायक समान शक्तियों अन्य प्रकृतियों के म्पर्ध के होते हैं, यह देखकर यहाँ भिरुपाल आदि कमीके म्पर्धकों की लतासमान आदि संज्ञाण रखी है, यह उक्त कथनका ताल्पर्य है।

मिथ्यान्वका उत्कृष्ट अनुभाग सन्कर्म सर्वघाती और चतुः स्थानिक है ।

२०० जवन्यका प्रतिषेव करनेके लिये उन्कृष्ट पदका निर्देश किया है। स्थिति और प्रदेशका प्रतिषेव करनेके लिये अनुभागभरकर्म पदका निर्देश किया है। देशघातीका प्रतिषेव करनेके लिये सर्वधानी पदका निर्देश किया है। जिस्थानिक आदिका प्रतिषेव करनेके लिये चतुःस्थानिक पदका निर्देश किया है। भिण्यान्य इस पदकी पिछले सूत्र से अनुगृत्ति होती है।

शंका-यह मर्वधानी क्यों है ?

समाधान- क्यांकि यह सम्यक्तकं सब अवयवोक। विनाश करता है. अतः सर्वधाती है शंका-सम्यक्त पर्याय अमूर्त है. अतः उसके अवयव कैसे हो सकते है ?

समाधान- ऐसी शका करना ठीक नहीं है. क्योंकि जो सस्यक्त साकार और सावयव जीव द्रव्यको सर्वात्मना पकड़ करके बैठा हुआ है उसके निरवयव और निराकार होनेमें विरोध है। अर्थान जीव द्रव्य साकार और सावयव है, अतः उससे अभिन्न या तत्स्वरूप सस्यक्त्व सर्वया निरवयव और निराकार नहीं हो सकता।

शंका- उत्र मिण्यात्वके स्वर्धक लतासमान नहीं होते तो उसका अनुभाग चतुःस्थानिक कैसे हे ?

दोहि पयारेहि चदुद्दाणियत्तसिद्धीदो । अथवा मिच्छतुकस्सफद्द्यम्म लदा-दारु--अिट-सेलसमाणद्दाणाणि चत्तारि वि अत्थि, तेसि फद्द्याविभागपिलच्छेदाणं संखाए एत्थु-वलंभादो । ण च बहुएसु अविभागपिलच्छेदेसु थोवाविभागपिलच्छेदाणमसंभवो, एगादिसंखाए विणा तस्स बहुत्ताणुववत्तीदो । तम्हा मिच्छतुक्कम्सफद्द्यम्म चत्तारि वि द्वाणाणि अत्थि ति तस्म चद्द्दाणियत्तं ण विरुज्भदे । मिच्छतुक्कम्सणुभागसंतकम्मं चदुद्दाणियमिदि वृत्ते मिच्छत्तेगुक्कम्सफद्द्यम्सेव कथं गहणं १ ण, मिच्छतुक्कम्सफद्द्यण्चित्तम्मणाए एगपरमाणुणा यिद्वअणंताविभागपिलच्छेदिणपण्णञ्चणतफद्द्याण-मुक्कस्साणुभागसंतकम्मववएसादो । ण च तत्थ अविद्याचिभागपिलच्छेदे मु फद्दयाणि णित्थ अविभागपिलच्छेदे न्यंतिस्य अणंतवास्बिद्धियाणं फद्दयभावविसोहादो । एसो अत्थे उविभ सव्वत्थ जहावसरं संभिरय वत्त्वो ।

समाधान-जिस प्रकार पहले हो तरीकेसे भिष्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मकी द्विस्थानिक सिद्ध हिया है वैसे ही उन्कृष्ट अनुभागसत्कर्मभी चतुः स्थानिक सिद्ध होता है। अथवा, भिष्यात्वके उन्कृष्ट स्पर्धकमे लतासमान दारुसमान, अस्थिसमान और शैलसमान चारो के स्थान है, क्योंकि उनके रपर्धकोंके आवभागी प्रतिच्छेदोकी संख्या यहा पाई जाती है और यहुत अवभागप्रतिच्छेदोमें स्ताक आवभागप्रतिच्छेदोकी होना असमय नहीं है क्योंकि एक प्रादि सख्याके विना अविभागप्रतिच्छेदोकी सस्या बहुत नहीं हो सकती है। अर्थात बहुत सख्यास थोड़ी सख्या हानी हो है, अन्यथा वह बहुत ही नहीं हो सकती अत., भिष्यात्वके उन्कृष्ट स्पर्धकम चारा हा स्थान होते हैं, इसिलये उसके चतुःस्थानिक होनेसे कोई विरोध नहीं थाता।

হাঁকা ুনিওয়াল চা उन्कृष्ट अनुमानसारुक चनुःस्थानिक है एसा कहने पर मिध्यान्वके एक उन्कृष्ट स्पर्शकका ही प्रहण् कैसे हाला है ?

सम्भित- नहीं, क्योंकि मिरवान्त्रके उन्हेष्ट स्वतंत्रकी आंत्तम वर्गणाम एक परमाणुके द्वारा धारण किये गये अनन्त अविभागी प्रतिन्छतीसे निष्यत्र अनन्त स्वतंत्रकों उन्हेष्ट अनुभाग- सकर्म यह सज्ञा है। यदि कहा जाय कि उन्हेष्ट स्वकिकी अन्तिम वर्गणामें जो आविभागी प्रतिन्छेद है उनमें स्वकि नहीं है, सा यह कहन भा ठीक नहीं है, क्योंकि अनन्त आविमागी प्रतिन्छेद्दका अन्तर दे दे कर उत्तरीत्तर अविभागीप्रतिन्छेद्दक क्रमसे अन्तर दे दे कर उत्तरीत्तर अविभागीप्रतिन्छेदके क्रमसे अन्तर वार जिनमें युद्धि नहीं होती उनके सर्वक हानेस विराध है। उत्तर वर्षत्र प्रस्ता उसार इस अर्थका स्मरण करके कथन कर लेना चाहिये।

विशेषार्थ -चूर्णिसूत्रमे कहा है कि मिल्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागमत्कर्म सर्वधानी और पतुःस्थानिक होता है। इसपर जब यह शंका की गई कि मिल्यात्वके अनुभागमे लना समान स्पर्ध के तो पाये नहीं जाते तब यह चतुःस्थानिक कैसे हैं। तो कहा गया कि मिल्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्ध कमें लतासमान दारुसमान अस्थिसमान और रोलसमान चारो स्पर्ध के पाये जाते है। इस समाधान परसे यह शका की गई कि सूत्रम तो भिल्यात्वके उत्कृष्ट अनुमागमत्कर्मको चतुःस्थानिक कहा है और समाधानमें कहा गया है कि मिल्यात्वका उत्कृष्ट स्पर्ध के चतुःस्थानिक तो उत्कृष्ट अनुभागमत्कर्मसे एक उत्कृष्ट स्पर्ध कका ही प्रहृग्ण क्यों किया गया है ? इसका जो

समाधान किया गया है उसे समक्ते के लिये स्पर्ध कका स्वरूप जानना आवश्यक है जो इस प्रकार है -एक अनुभागस्थानके सब परमाण् आंको एक जगह स्थापित करके उनमेसे सबसे जवन्य अनुभागवाले परमासुका लो । उस परभासुमें पाये जानेवाले रूप. रस और रांधको छाड़कर म्पर्शगुराके बुद्धिके द्वारा छंद करो । छंद करते करते जो अन्तिम अछंद राण्ड अवशेष रह उसकी अविभागीप्रतिच्छेद संज्ञा है। उस अविभागी प्रतिच्छेदरूपसे स्पर्शगुणका छेदन करने पर एक परमागुमे सब जीवोसे अनन्तगुणुं अविभागीप्रतिच्छेद पाये जाते हैं । इन सबको वर्ग कहते हैं । यद्यपि एक वर्गमे अनन्त अविभागीप्रतिच्छेद होते है तथापि समभनेके लिये उनकी संख्या ८ कल्पना कर लेनी चाहिये। पुन. उन परमागुत्र्यामेसे उस एक परमागुके समान दूसरे परमागुको लो । उसके म्पर्शरासके भी पहलेके समान वृद्धिके द्वारा छेद करने पर उसमे भी उनने ही अवि-भागीप्रतिच्छेद् पाये जाते हैं। इस दूसरे वर्गकी सहनानी भी ८ सममना चाहिये। इस क्रमसे उन परमाणुत्रोमेसे पहले परमाणुके समान एक एक परमाणुको लेकर उनमेसे प्रत्येकके अविभागी-प्रतिच्छेद करने पर एक एक वर्ग उत्पन्न होता है. उनकी सदृष्टि इस प्रकार समभनी चाहिये ८. ८, ८.८। अर्थान अविभागीप्रतिच्छेदोके समृहको वर्ग कहते है और चूंकि एक एक परमागुमे व्यनन्त व्यविभागीप्रतिच्छेद् पार्थ जाये है, व्यन प्रत्येक परमागा एक एक वर्ग है । इन वर्गोके समृह को वर्गगा कहते है। इस वर्गणाको एक स्रोर स्थापित करके उन परमागुस्रोमेसे पुन. एक परमाग् को लो छौर बुद्धिके द्वारा पहलेकी नरह उसके छेद करो । छंद करने पर इस परमाण्मेसे पहले परमानाुत्र्योसे एक र्याधक र्व्यावमार्गाप्रतिच्छेद पाये जाते है जिसकी सहनानी ९ है । इस एक वर्ग को अलग स्थापित करो । इस क्रमसे इस एक परमाणुके सभान जितने परमाणु उन परमाणुत्री मेसे पाये जाये उन्हें लेकर श्रीर चुद्धिके द्वारा प्रत्येकका छेदन करके वर्गीकी उत्पत्ति कर लेनी चाहिये । उनका जनाम् इस प्रकार है--९, ९, ९ । यह दूसरी वर्मणा हुई । इस प्रकार एक एक आविक अविमानोप्रतिच्छेदवाले परमाणुद्र्यासे तीमरी. चौथी. पाचर्वा आदि वर्गणाए उत्पन्न कर लेनी चाहिये। इसप्रकार उत्पन्न की गर्ह अभव्यराशिसे अनन्तगुनी और सिद्धराशिके अनन्तये सागप्रमाण् वर्गणात्र्योका एक स्पर्धक होता है । इस स्पर्धकको पृथक् व्यापित करके पृत्रीक्त परमा-गुत्रोमेसे पुनः एक परमागुको लो । बुद्धिके द्वारा उसके छेद करनेपर सब जीबोसे अनन्तगुण् अधिभागीप्रतिच्छेदोका अन्तर दंकर दूसरे स्पर्धकका प्रथम वर्ग उत्पन्न होता है। सदृष्टिरूपमे उसका प्रमास १६ सममता चाहिये। इस क्रमसे अमन्यराशिसे अनन्तगुरो और सिद्धराशिके अनन्तव नागप्रमाण् अविनागीप्रतिच्छेद्वाले परमागुओको प्रहण करके परमाणुमात्र वर्गीक उत्पन्न करने पर दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणा होती है। इसे प्रथम स्पर्धककी आन्तमवर्गणाके आगे अन्तराल देकर स्थापित करना चाहिये। इस क्रमसे वर्ग वर्गणा और स्पर्शकको जानकर तव तक स्पर्धक उत्पन्न करना चाहिये जब तक पृत्रीक परमाग्य समाप्त न हो जाय । इसप्रकार म्पर्शक रचनाके करनेपर अभव्यगाशिसे अनन्तगुगे। और मिद्धगाशके अनन्तवे भागप्रमाण स्पर्धक और वर्गणाएँ उत्पन्न होती है । इनमेसे अन्तिम वर्गणाके एक परमागुमे जो अनुभाग पाया जाता है उसीको अनुमागस्थान कहते हैं। इस परसे यह शंका हो सकर्ता ह कि अविभागी प्रतिच्छेदांकं समृहको वर्गः वर्गोकं समृहको वर्गणाः वर्गणात्र्योकं समृहका स्पर्धक त्र्यौर स्पर्धकोकं समूहको अनुसागस्थान कहते हैं. किन्तु ऊपर अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुम जो ऋनुमार्ग पाय। जाता है उसे ही ऋनुमार्गस्थान क्यों कहा है। इसका समाधान यह है कि प्रथम-वर्गसे लेकर क्रमसे बढ़ते हुए सब ऋविमार्गाप्रतिच्छेद उस एक परग्राग्यमे पाय जाते हैं, ऋत: सब अनुभागका स्थान होनेसे अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गगाका एक परमागु अनुभागस्थान कहा जाता है। जैसे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थित ७० कोटी कोटी सागर होती है। यह उत्कृष्टस्थित

🛞 एवं बारसकसायछुण्णोकसायाणं ।

२०१. कुदो ? जहण्णाणुभागसंतकस्मं सञ्वद्यादिदुद्वाणियं उक्कम्साणुभागसंतकस्मं सञ्वद्यादिचदुद्वाणियमिच्चेदेण एदासिमणुभागस्स मिच्छत्ताणुभागादो भेदाभावा । वारसकसायजहण्णाणुभागस्य सञ्वद्यादित्तं होदु णाम, तेसि जहण्णाक द्दयप्पहुडि जाव उक्कम्सफद्दय ति सञ्बद्यादित्तं मोतृण तेसु देसद्यादित्ताणुवलंभादो । किंतु छण्णो-कसायफद्दयाणं सञ्बद्यादित्तं ण जुज्जदे ? सम्मतजहण्णफद्दयसमाणफद्दयाणुभाग-प्पहुडि उवि दाक्समाणफद्दयाणमणंतिमभागो ति णिरंतरं तत्थ देसद्यादिफद्दयाणं पि उवलंभादो ति ? ण एस दोसो, अणियद्विक्यवष्ण वादिद्विसहछण्णोकसाय-चिरमफाळीण चिरमफद्दयचिरमवग्गणेगपरमाणुणी धरिदाविभागपळिच्छेदाणं संगिदिदासेमफद्दयभावेण दुद्वाणियत्तमुवगयाणमिहयाविभागपळिच्छेदसंवंधेण सञ्बद्यादितं

सब निषंकोकी नहीं होनी किन्तु अन्तिम निषंककी होती है फिर भी वह सब निषंकोकी स्थित कही जाती है क्योंकि उसमें सब निषंकोकी स्थित गमित है. वैसे हो अन्तिमन्धिककी अन्तिम वर्गगाके एक परमागुके अविभागीप्रतिच्छेद में रोप सब परमागुओंके अविभागीप्रतिच्छेद गमित है. अनः वहीं अनुभागस्थान है और उसमें द्रव्यार्थिकनयकी अपंचा वर्ग-वर्गगा और स्पर्भक सभी वन जाते हैं। उसपर पुनः यह शङ्का हो सकती है कि जब अन्तिमस्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमागुमें जो अनुभाग है उसीको अनुभागस्थान कहते हैं तो इसप्रकार पृथक् पृथक् स्पर्धक रचना क्यों की जाती है ? इसका सभाधन यह है कि इस एक परमागुमें जो अनुभागस्थिक पाये जाते हैं उसीके अविभागी प्रतिच्छेदोंका कथन उत्तप्रकारसे किया जाता है। इसी कारणसे चूर्णिम्त्रमें आवे उत्कृष्ट अनुभागस्थित एक उत्कृष्टम्पर्धकका ही प्रहण् किया है। आगे भी जहां कहीं उस्प्रकारका कथन आये वहाँ उसका यही अर्थ सम्भन्न चाहिये।

🐲 इसीपकार बारह कपाय और छ नोकषायोंका अनुभागसन्कर्म है ।

् २०१. क्योंकि उनका जघन्य अनुभागमःकर्म सर्वघाती और दिस्थानिक है तथा उत्कृष्ट अनुभागमःकर्म सर्वघाती और चतुःस्थानिक है. इस हर्ष्ट्रिस उन[्]र अनुभागका मिथ्यात्वके अनु-भागमे कोई भेद नहीं है।

शंका व्याप्त कपायोक। जयन्य अनुमाग सर्वधाती होत्रा. क्योंकि जयन्य स्थांकसे लेकर उत्कृष्ट स्पर्शक पर्यन्त सर्वधातीपने हैं सियाय उनमें देशधातिपना नहीं पाया जाता है। किन्तु छह नोकपायो है स्पर्शकोका सर्वयातीपना नहीं बनता है, क्योंकि सम्यक्त्व है जघन्य स्पर्धक है समान स्पर्धक के अनुभागसे लेकर आगे दाक्रममान स्पर्शकोके अनन्तवें भाग पर्यन्त उनमें निरन्तर देशधाती स्पर्शक भी पाये जाते हैं।

समाधान- यह कोई दोप नहीं है, क्योंकि नीवे गुणस्थानवती चपकके द्वारा घात किये जानसे अवशिष्ठ रहे छह नोकपायोकी अन्तिम फालीमें अन्तिम स्पर्वककी अन्तिम वर्गणाके एक परमागुके सम्बन्धमें जिनमें अविभागप्रतिच्छेद स्वीकार किये गये हैं, अशेष स्पर्वकपनेका सप्रह होनेसे जा दिस्यानिक निका पाप है और अधिक आवमागप्रतिच्छेदोंके सम्बन्धसे जी सर्वधाति-

त्रा० प्रतो चरिसकटप्रचरिमवस्माणेण परमाणुमा इति पाठः !

पत्तजहण्णफद्द्याणं जहण्णद्दाणत्तव्भुवगमादो ।

अः सम्मत्तस्स अणुभागसतकम्मं देसघादि एगट्ठाणियं वा दुट्ठाणियं वा ।

्रे००. दंसणमोहणीयक्खवणाण् मिच्छत्त-सम्मामिच्छताणि खड्य पुणो सम्मतं पि विणासिय कदकरणिज्ञो होदण तस्स कदकरणिज्ञम्स चिरमसमण् सम्मत्मम् नस्स जहण्णमणुभागसंतक्षमः तं च देसघादि एगृहाणियं उक्कम्सं पुण देसघादि विहाणियं । दाकसमाणसम्मत्तचिरमफद्दयचिरमवग्गणेगपरमाणुम्मि अविभागपिलच्छेद-संखाण् लदासमाणफद्दयाणं पि संभवादो दृहाणियतं ण विक्ज्क्कदे । 'सम्मत्तम्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं देसघादि एगृहाणियं । उक्कम्माणुभागसंतकम्मं देसघादि वेहाणियं । ति एवमभणिद्ण सम्मत्तस्य अणुभागसंतकम्मं देसघादि एगृहाणियं वा दृहाणियं वा विकिमिदि वृत्तं ? सम्मत्ताणुभागसंतकम्मम् अजहण्णस्स अवत्थाविसेसपदुष्पायणहः । ते जहा— जं सम्मत्तम्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कदकरणिज्ञम्स अपिच्छम् उदयणिसेग्विद्यम् सम्मत्तम्य निह्यमणुम्मयमोवृहणाण् घादिदाविमिहः ते देसघादि एगृहाणिय । जं पुण अजहण्णं ते देसघादि एगृहाणिय । जं पुण अजहण्णं ते देसघादि एगृहाणियं पि अत्थि, अहवस्सिहिद्संतकम्मं सम्मत्तम्म सेमं तदणुभागसंत-प्रकेशे प्राप्त हण् हे ऐसे जघन्य न्पश्चिका यहाँ जघन्य म्थान ग्वीकार क्रिया गया है ।

🐲 सम्यवत्वका अनुभागसत्कर्ष देशघाती है और एक स्थानिक तथा द्विस्थानिक है ।

्२०२. दर्शनमोहनीयकी स्पर्णाके समय मिश्यात्व और सम्यग्मिश्यात्वका स्य कर हे पुन: सम्यक्त्व प्रकृतिका भी नाश कर के, कृतकृत्य होकर, उस कृतकृत्यके अन्तिम समयमे सम्यक्त्वका जबन्य अनुभाग सत्कर्म होता है। वह जबन्य अनुभागसन्कर्म देशवानी और एक-स्थानिक होता है तथा उन्कृष्ट अनुभागसन्कर्म देशवानी और दिस्थानिक होता है। सम्यक्त्वके दाकसमान अन्तिम स्पर्भक्की अन्तिम वर्गाणाके एक प्रमाणामे जो अविधागी प्रतिच्छे देकि। संख्या है उसमे ल्वासमान स्पर्धक भी संभव है अतः उसके दिस्थानिक होनेमे कोई विरोध नहीं है।

शंका - सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसन्तम देशघाती और एकस्थानिक है और उत्कृष्ट्र अनुभागसन्तर्भ देशघाती और द्विस्थानिक है एसा र कहकर सम्यक्त्वका अनुभागसन्तर्भ देशघानी और एकस्थानिक तथा हिस्थानिक है ऐसा क्यों कहा है ?

समाधान—सम्यक्त्वके अजघन्य अनुभागमन्कर्मकी अवस्था विशेष बतलानेके लिये उम प्रकार नहीं कहा है। यह अवस्था विशेष इस प्रकार है— इतकृत्य जीवके सम्यक्त्वका जो जघन्य अनुभागमन्कर्म उद्याप्राप्त अन्तिम निषेकमे स्थित है जो कि प्रतिसमय अववर्तनाके द्वारा घान होते होते अवशिष्ट रहा है. वह देशघाती और एकस्थानिक है। किन्तु जो अजघन्य अनुभाग सन्कर्म है वह देशघाती और एकस्थानिक भी है. क्योंकि सम्यक्त्वमे आठ वर्ष प्रमाण स्थित-सन्कर्मके शेष रह जाने पर उसका अनुभागमन्कर्म लेनासमान स्पर्धकोमे ही स्थित पाया जाना है. किन्तु उससे ऊपके स्थित सन्कर्मोंम सम्यक्त्वका अनुभागमन्कर्म है तो देशघाती ही किन्तु दिस्थानिक है। साराश यह है कि सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागमन्कर्म तो देशघाती और एक स्थानिक ही है किन्तु अजघन्य अनुभागमन्कर्म देशघाती होने पर भी एकस्थानिक भी है कम्मम्स लढासमाणफददणम् चेत्र अवहाणुवलंभादो । तदुविमहिद्धिसंतकम्मेस् सम्म-चाणुभागसतकम्मं देसवादि चेत्र कितु वेहाणियं । एवंविहित्सिसनाणावणहं ण कदं जहण्णुकम्सविसेसणं ।

🆇 सम्मामिच्छुत्तस्स त्रणुभागसंतक्तम्मं सव्वचादि दुट्टाणियं ।

२०३. एत्थ जहण्णुक्तस्माणुभागसंतकम्मविसेसणं किण्ण कयं ? ण, तस्स फलाभावादो । सम्मामिच्छने खिळ्जमाणे चिरमाणुभागकंदण सम्मामिच्छनस्य जह-ण्णमणुभाग-संतकम्म तं पि सञ्च्यादि दृहाणियं चेव । तद्णुभागफद्दण्मु अवख्वणा-वत्थाण खवणावत्थाण् वा देसवादीर्णं फद्द्याणमभावादो । उक्तम्साणुभागसंतकम्मं पि सञ्च्यादि दृहाणियं चेव, तेण जहण्णुक्तस्माणुभागाणं दृहाणियसञ्ज्वादिन्णेहि विसेसो णित्थ नि ण कयं जहण्णुक्तस्मविसेसणं ।

🏶 एक्क चेव टठाणं सम्मामिच्छताणुभागस्स ।

२०४, एक्कं दारुसमाणाणुभागद्दाणं चेव होदि, त्रदा--त्र्राह-संत्रसमाणाणु--भागफद्दयाणं तत्थ त्रभावादो । एगद्दाणमिदि वुने सम्बन्ध लदासमाणफद्दयाणं चेव जेण गद्दणं तेणेत्थ वि 'एक्कं चेव द्वाणं' इदि वुन्ते त्रदासमाणफद्दयाणं गद्दणं किरास कीग्दे १ ण, त्रासंतगद्वकंतसुनेण 'सम्मामिच्छनाणुभागसंतकम्मं सम्बद्धादि दुद्दाणियं'

न्त्रीर दिस्थानिक सी है। संस्थतत्वकी ब्राठ वर्ष प्रमाण स्थित रोष रहनेपर एकस्थानिक होता है. ब्रीर उससे ब्राधिक स्थित रोष रहने पर दिस्थानिक होता है। यह विरोष बतलानेके लिथ जघन्य ब्रीर उत्क्रष्ट विशेषण नहीं लगाये।

🔆 सम्यग्मिथ्यात्वका ब्यनुभागसन्कर्म सर्ववाती और द्विस्थानिक है ।

२०३, शंका-यहाँ अनुमार्गसन्कर्मके साथ जघन्य और उत्द्रष्ट विशेषण क्यो नहीं लगाये ? समाधान-नहीं, क्योंकि उसका कुछ फल नहीं हैं।

२०३ सम्याग्मिण्यात्वका ज्ञपण् करने पर ज्ञानिम अनुमागकाण्डकमे सम्याग्मिण्यात्वका जो ज्ञपन्य अनुमागमत्कम है वह भी सर्वधानी और दिस्थानिक ही है। उसके अनुमागम्पर्शकोंमें अज्ञ्ञपण्यात्मधामें अथवा अपणावस्थामें देशवानी सार्शककोंका अभाव है। तथा उन्क्रप्ट अनुभाग सन्कर्म भी सर्व याती और दिस्थानिक ही है। अतः ज्ञ्ञपन्य और उन्क्रप्ट अनुमागोंमें द्विस्थानिक पने और सर्वधानिपनेकी अपना कार्ट अन्तर नहीं है अर्थात दोनों ही अनुमाग सर्वधानी और दिस्थानिक है. इसलियं ज्ञ्यस्य और उन्क्रप्ट विशेषण नहीं लगाये।

असम्यामिश्यात्वके अनुभागका एक ही स्थान होता है ।

२०४. सम्यांभध्यात्वका एक दारुसमान अनुभागम्थान ही होना है क्योंकि लनासमान. अस्थिसमान और शैवसमान अनुभाग स्पर्धकोका उसमे अभाव है ।

शंका—'एकस्थान' ऐसा कहने पर उससे सब जगह लतासमान स्पर्धकोका ही ब्रहण् होता है ब्यत. यहा पर भी 'एकही स्थान' ऐस्र। कहनेसे लनासमान स्पर्धकोका ब्रहण् क्यो नर्श किया जाना है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि ऐसा ऋर्ष प्रहाग् करने पर पहले कहे गये सम्योग्मध्यात्वका

इच्चेदेण सह विरोहादो । ण च लदासमाणफद्दएसु सव्वधादित्तमित्थ, तहाणुलंभादो ।
तेण 'एक्कं चेव द्वाणं' इदि वुत्ते दारुसमाणफद्दयाणं चेव गहणं कायव्वं । अद्विसमाणफद्दयाणं सेलसमाणफद्दयाणं वा गहणं किएणा कीरदे ? ण, अणंतरादीदसुत्तम्म समुद्दिद्वद्वद्वाणियणिद्देसेण सह विरोहादो । जिद्द अद्विसमाणमेकद्वाणिमिद्द घेष्पदि तो सम्मामिच्छत्ताणुभागसंतकम्मं तिद्वाणियं होज्ज, लदा--दारु--अद्विसमाणफद्दयाणु--भागाविभागपलिच्छेदसंखाए बहिसत्तिं पद्च फद्दयभावमुवगयाणं तत्थुवलंभादो । जिद्द सेलसमाणद्वाणमेक्कं द्वाणिमिद्द घेष्पदि तो वि तेण सह विरोहो, चदुद्वाणियस्स दृद्वाणियत्त्वरोहादो । जिद्द सम्मामिच्छत्ताणुभागसंतकम्मं दुद्वाणियं चेव तो 'एक्कं चेव द्वाणं' इदि किमद्व' भण्णदे ? सम्मामिच्छत्तफद्दएसु लदासमाणफद्दयाणं पिटु-सेहद्व' । जिद्द एवं तो मिच्छत्तजहण्णाणुभागसनकम्मस्स सच्वधादिदुद्वाणियम्स वि एक्कं द्वाणमिदि वत्तव्वं ? ण, एदम्हादो चेव मिच्छत्त-वारसकसायाणं जहएए॥णुभागस्स एग-द्वाणनं णव्वदि त्ति तत्थ तद्णुवदेसादो ।

त्रानुभाग सन्कर्म मर्बघानी और द्विस्थानिक होता हैं इस सूत्रके साथ विरोध त्राता है। यदि कहा जाय कि लुतासमान स्पर्धकों में भी सर्वघातीपना है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि लता-समान स्पर्धकों में सर्वघातीपना नहीं पाया जाता है। त्रात: एक ही स्थान' होता है ऐसा कहने पर दाकसमान स्पर्धकोंका ही प्रहण करना चाहिये।

हांका-'एक स्थान' से ऋस्थिसमान स्पर्धकोका ऋथवा शैलसमान स्पर्धकोका ग्रहण क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान – नहीं, क्योंकि इस कथनका अनन्तर अतीत सूत्रमें कहे गये द्विस्थानिक निर्देश के साथ विरोध आता है। उसीको स्पष्ट करते हैं — यदि एक स्थानसे अस्थिसमानका प्रहरण किया जाता है तो सम्यागिश्यात्वका अनुभागसन्दर्भ त्रिस्थानिक हो जायगा. क्योंकि लतासमान दारुसमान और अस्थिसमान स्पर्धकों अनुभागके अविभागीप्रतिच्छेदोकी संख्यामें बढ़ी हुई शक्तिकी अपेक्षा स्पर्धकमावको प्राप्त हुए निषेक वहां पाये जाते है। यदि एक स्थानसे शैलसमान स्थानका प्रहर्ण किया जाता है तो भी पूर्व सुत्रवचनके साथ इसका विरोध आता है. क्योंकि चतुः स्थानिक हे दिस्थानिक होने में विरोध है।

शंका-यदि सम्यग्मिश्यात्वका अनुभागमत्कमे द्विम्थानिक ही है नो सूत्रमे एक ही स्थान' ऐसा क्यो कहा है ?

समाधान-सम्यक्तिभ्यात्वके स्पर्धकोमे लतासमान स्पर्धकोका प्रतिषेध करनेके लिये ऐसा कहा है।

शंका-यदि ऐसा है तो मिश्यात्वका जघन्य अनुभागसन्कम भी सर्वधाती और द्विस्थानिक है. अत: उसको भी एकस्थानिक ऐसा कहना चाहिये।

समाधान-नहीं, क्योंकि इसीसे मिध्यात्व और वारह कपायोका जघन्य अनुभाग एक स्थानिक है, यह जान लिया जाता है श्रत: उसका कथन करते समय इस वातका निर्देश नहीं किया है।

क्ष चदुसंजलणाणमणुभागसंतकम्मं सञ्चघादी वा देसघादी वा एग-द्वाणियं वा दुर्ठाणियं वा तिर्ठाणियं वा चउर्ठाणियं वा।

२०५. एत्थ जहण्णुकस्सविसेसणमणुभागसंतकम्मस्स काऊण पह्नवणा किण्ण कदा ? ण, अणुभागसंतस्स विसेसपदुष्पायणहं तद्करणादो । त्ववणाए किट्टीकरणादो हेटा सन्वत्थ संसारावत्थाए चदुसंजलणाणुभागसंतकम्मं सन्ववादी चेव, संतकम्मचरिम-फद्मचरिमक्गणाए एगपरमाणुधरिदाविभागपिलच्छेटाणं गहणादो । तेण चदुसंजल-णाणुभागसंतकम्मं सन्ववादि ति सुत्तवयणं सुसमंजसं । त्ववगसेहीए किट्टिकरणे णिट्टिदे मोहणीयमुवरि सन्वत्थ जेण देसघादी तेणे चदुसंजलणाणुभागसंतकम्मं देसघादि ति मुत्तम्मि पह्नविदं । त्ववगसेहीए पुन्वापुन्वफहण्सु णवकवंधवज्जेमु किट्टिसह्रवेण परिण-देसु ततो प्पहुंि लटासमाणाणुभागमंतकम्मं चेव जेणुवलक्भिट तेण एगटाणियमिदि चदुसंजलणसंतकम्मं पह्नविदं । हेटा अणुभागसंतकम्मधादवसण एगटाणियं मोत्णु सेसहाणाणि लब्भंति ति दुटाणियं निद्दाणियं चउटाणियं वा ति भणिदं । सन्वे 'वा' सद्दा 'च' महत्थे दहन्वा ।

🕸 इत्थिवेदस्स अग्रुभागसंतकम्मं सन्वधादी दुद्वाणियं वा तिट्ठाणियं

* चार संज्वलन कषायोंका अनुभागसन्कर्म सर्वेद्याती और देशवाती तथा एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है।

े २०५. **शंका** – यहाँ अनुभागमत्कर्मके साथ जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण लगाकर कथन क्यो नहीं किया ?

समाधान—नहीं क्योंकि अनुभागसन्कर्मका विशेष वतलानेके लिये उसके साथ जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण नहीं लगाये हैं।

त्रपण्यांका ऋनुभागस्कर्म सर्वधानी ही होता है. क्योंकि यहां सरक्षके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गण्यके एक परमागुमे स्थित अविभागीप्रतिच्छेद्यका प्रहण्य किया है। प्रत. चार संज्ञलन कपायोंका ऋनुभागस्कर्म सर्वधानी है यह सूत्रवचन विल्कुल ठीक है। तथा अपक-अणीमें कृष्टिकरण्यिक्याके निष्पन्न हो जाने पर आगे सर्वत्र मोहनीयकर्म देशधानी ही होता है. खतः चार सज्बलन कपायोंका ऋनुभागस्कर्म देशधानी है ऐसा सूत्रमें कहा है। चपकश्रेणीमें नवक्षधकों छोड़कर शेष पूर्व स्पर्धक और ऋपूर्व स्पर्धकोंका ऋष्टिकरण्यांने हो जाने पर वहाँसे लेकर उनमें लता समान ऋनुभाग सकर्म ही पाया जाना है. अतः चार सज्बलन कपायोंक ऋनुभागस्कर्मको एकस्थानिक कहा है। तथा इससे पूर्व अनुभागस्कर्मको धात हो जानेक कारस जो एकस्थानिक ऋनुभाग होता है उसे छोड़कर शेष स्थान पाये जाते है. इसलिये उसे डिस्थानिक विस्थानिक और चतुःस्थानिक कहा है। सूत्रमें ऋषे हुए सब चा शब्द च शब्द अर्थमें जानने चाहिये।

* स्त्रीवेदका अनुभागसन्कर्म सर्वेघाती तथा द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और

ता॰ प्रती जेगा सन्वधादी तेगा इति पाठः ।

वा चउरुठाणियं वा।

२०६. इत्थिवेदस्साणुभागसंतकम्मं सन्वत्थ सन्वचादी चेव । कुदो ? श्रणियहिन्ववगम्स इत्थिवेदचरिमाणुभागकंडयप्पहृिह हेहा सन्वावन्थासु हिद्जीवस्स इत्थिवेदाणुभागमिम चादिङ्जंतिम्म वि देसचादित्ताणुवलंभादो । किमहं चादिज्जमाणं पि इत्थि-वेदाणुभागसंतकम्मं देसचादिफदयाणमुहं सं ण पावेदि ? सहावदो । ण सहावो पिहजोयणारुहां, सहावो ण तक्षगोयगो ति आरिसादो । सन्वे 'वा' सद्दा 'च' सद्द्या ति । तं सन्वव्यादी इत्थिवेदाणुभागसंतकम्मं दुहाणियं च तिहाणियं च चदुहाणियं चेदि संबंधो कायन्वो । एगहाणियं किण्ण होदि ? ण, तत्थ सन्वचादित्ताभावादो । इत्थिवेदाणुभागेण जहण्णेण वि सन्वचादिणा होदन्वं, अणंतरिमित्थिवेदाणुभागो सन्वचादी चेवे ति णिह्नविद्यादो । इत्थिवेदाणुभागसंतकम्मं सन्वचादी चदुहाणियमिदि सुत्तं कायन्वं, चदुहाणियमंतकम्मम्म एगहाणिय-दुहाणिय-तिहाणियाणुभागसंतकम्माणमुवलंभादो । ण च एवं, संसागवन्थाण् इत्थिवेदाणुभागमंतकम्मम्म सन्वकालं चदुहाणियम्म कया वि तिहाणियस्स चदुहाणियम्म कया वि तिहाणियस्स चदुहाणियम्म वा उवलंभादो । एदम्स मृत्तस्स विसयपह्वणहं उत्तरसुत्तं भणदि—

चतुःस्थानिक होता है।

् २०६. स्त्रीवद्का अनुमागमन्कर्म सर्वत्र सर्वचाता ही हैं: क्योकि आन्यत्तिकरण चपकके स्त्रीवदके अन्तिम अनुमागकाण्डकसे लेकर पूर्वकी सब अवस्थाओं में स्थित जीवके स्त्रीवदके अनुभागका बात होनेपर भी देशवातीपना नहीं पाया जाता हु।

रांका घात होने पर भी स्त्रीवेदका अनुभागसन्कर्म देशघातिस्पर्शकोंके स्थानको क्यो

समाधान- उसका ऐसा स्वभाव ही है। और स्वभावके विषयमे प्रश्न नहीं किया जा सकता. क्योंकि 'स्वभाव तर्कका विषय नहीं है' ऐसा आर्षवचन है।

सूत्रमे त्राये हुए सब वा शब्दोका ऋर्थ ऋौर है । ऋतः म्त्रीवदका वह सर्वघाती ऋतुभाग-सन्कर्म द्विस्थानिक त्रिम्थानिक और चतुःम्थानिक है ऐसा सम्बन्ध लगाना चाहिये ।

शंका- एकस्थानिक क्यो नहीं है ?

समाधान— नहीं. क्योंकि एकस्थानिकमें सर्वघातीपनेका अभाव है। तथा स्त्रीवेदका जबन्य अनुभाग भी सर्वघाती होना चाहियेः क्यों कि अनन्तर ही स्त्रीवेदका अनुभाग-सर्वघाती ही हैं ऐसा कह आये हैं।

रांका— 'स्त्रीवदका अनुभागसन्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानिक होता है' ऐसा सूत्र बनाना चाहिये; क्योंकि चतुःस्थानिक अनुभागसन्कर्ममें एकस्थानिक द्विस्थानिक और त्रिस्थानिक अनुभागसन्कर्म पाये ही जाते हैं।

स्माधान— नहीं; क्योंकि ऐसा सूत्र होनेपर :स्त्रीवदके ऋतुभागसंकर्मको सदा चतु:-स्थानिक होनेका प्रसंग ऋाता है। किःतु वह सदा चतु:स्थानिक नहीं होता.क्योंकि संसार ऋवस्था में स्त्रीवदका ऋतुभागसंकर्म कभी द्विस्थानिक.कभी त्रिस्थानिक श्रीर कभी चतु:स्थानिक पाया

[.] १. ता० प्रती सा (इ) व्यिबेदासुभागेसा, प्रा० प्रती साध्यि वेदासुभागेसा इति पाठः ।

🟶 मोत्तृण खवगचरिमसमयइत्थिवेदयं उदयणिसेगं।

\$ २०७. मोत्तूण सन्विमित्थिवेद्पदेससंतकम्मं परसरूवेण संकामिय अविदिशे चरिमसभयइत्थिवेदओ णाम तं मोत्तृण हेटा इत्थिवेदाणुभागसंतकम्मं सन्वत्थ सन्व-घादी दुटाणियं तिटाणियं चदुटाणियं वा होदि । चिम्मसमयइत्थिवेदियम्स अणुभाग-संतकम्मसरूवपरूवणहम्रत्तरम्ननं भणदि —

🕸 तस्स देसघादी एगट्ठाणियं।

२०८. तस्स चरिमसमयसवेदयम्स इत्थिवेदाणुभागसंतकम्मं देसघादी एगद्दाणियं च होदि, उदयसक्त्वचादो । उदयणिसंगाणुभागसंतकम्मं देसघादि चि कुदो णव्वदे ? ण, संजदासंजदप्पहुडि उवरिमगुणद्दाणेसु चहुसंजळण-णवणोकसायाणुभाग-संतकम्मस्स देसघादिफहयाणमुद्दयाभावे तत्थ अणुव्वय-महव्वयाणमित्थिचिरोहादो । एगद्दाणियमिदि कुदो णव्वदे ? अंतरकरणकदपदमसमए मोहणीयम्स एगद्दाणिओ वंधो एगद्दाणिओ उद्यो चि सूचणिहे सादो ।

जाता है। श्रव इस सूत्रका विषय कहनेके लियं श्रागेका सूत्र कहते हैं—

* मात्र अन्तिम समयवर्त्ता त्तपक स्त्रीवेदीके उदयगत निपेकको छोड़कर शेप
अनुभाग सर्वघाती तथा द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है।

्२०७. छोड़कर. अर्थात क्षपकश्रेशिम स्वावदका जो प्रदेशमन्कर्म पररूपसे संक्रामित होकर स्थित है उसे अन्तिमसमयवर्ती स्वीवेद कहते है. उसे छोड़कर इससे पूर्व स्वावदका जो अनुभागसन्कर्म है वह सर्वत्र सर्वधानी तथा द्विस्थानिक त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है। अब अन्तिम समयवर्ती स्वीवेदके अनुभागसन्कर्मका स्वरूप बनलानेक लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

🛞 किन्तु उसका अनुभागसत्कर्म देशघाती द्यौर एकस्थानिक होता है ।

्र २०८, उसका अर्थात अन्तिम समयवर्ती संबद्धका स्त्रीबदसम्बन्धी अनुभागसत्कर्म देश-घाती और एकस्थानिक होता है; क्योंकि वह उद्यम्बरूप है।

शंका-उदयप्राप्त निषेकका अनुभागसन्कर्म देशघानी होता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं क्यों कि संयतासयतमें लेकर आगे के गुण्म्थानों में चार संज्वलन और नव नोकपायों के अनुभागसत्कर्मके देशघानी म्पर्धकों के उदयके अभावमें अणुत्रत और महात्रनका अम्तित्व नहीं हो सकता। अर्थान यदि इन गुण्म्थानों में संज्वलन और नौ नोकपायों के देशघाती स्पर्धकों का उदय न होता तो उनमें अणुत्रत और महात्रत भी न होते। इससे जाना जाना है कि अन्तिम समयवर्ती संवद्कके स्वीवद्के उद्यगत निषेक देशघाती होते हैं।

शंका-वह अनुभागसःकर्म एकस्थानिक होता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्तरकरण कर चुकनेके प्रथम समयमे मोहनीय कर्मका एकस्थानिक बन्ध श्रीर एकस्थानिक उदय होता है इस सूत्र बचनके निर्देशसे जाना जाता है कि श्रन्तिम समयवर्ती संबद्कके स्त्रीवेदका उदयगत निपंक एकस्थानिक होता है।

१ ता० प्रती उदयशिसेगं इति पाठः सूत्रीशस्वेन नोपलभ्यते ।

🕸 पुरिसवेदस्स अणुभागसंतकम्मं जहण्णयं देसघादी एगट्ठाणियं।

इ २०६. कुदो ? पुरिसवेदोदएण खवगसेढिमारूढेण चरिमसमयसवेदेण वर्षेअणुभागसंतकम्मिम्म पुरिसवेदस्स जहण्णनागहणादो । दुचरिमादिसमएस बद्धाणुभागसंतकम्मं जहण्णमिदि किण्ण गिहदं ? ण, चरिमसमयबद्धअणुभागादो दुचरिमादिसमएस्र बद्धाणुभागाणमणंतगुणनादो । तं कुदो णव्वदे ? चरिमसमयबद्धाणुभागादो
तत्थेव उदयगदगोवुच्छाए अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं, तत्तो मवेदयस्स दुचरिमाणुभागबंधो अणंतगुणो, तत्थेव उदयगदगोउच्छाए अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । एवं हेढा
कमेण ख्रोदारेदव्वं जाव पढमसमयअपुव्वकरणो ति एदमहादो अप्पाबहुअसुन्तादो ।
पुरिसवेदचरिमाणुभागकंडयचरिमफाळीए जहण्णमणुभागसंतकम्ममिदि किण्ण घेष्पदि ?
ण, तत्थतणाणुभागस्स सव्वधादिवेद्वाणियस्स जहण्णनाणुववनीदो । पुरिसवेदचरिमवंशो
देसघादी एगढाणिओ ति कुदो णव्वदे ? ख्रंतरकरणकटपढमसमयप्पहुडि मोहणीयम्म
वंशो उदओ च देसघादी एगढाणिओ नि सुन्तादो ।

अपुरुपवेदका जघन्य अनुभागसन्धर्म देशघाती और एकस्थानिक होता है। १२०९ क्योंकि पुरुपवेदके उदयसे चपकश्रीण पर चढ़े हुए श्रन्तिम समयवर्ता संवदकके द्वारा वांघा गया जो श्रानुभागसन्कर्म है उसमे पुरुपवेदका जघन्यपना उपलब्ध होता है।

शंका-उपान्त्य आदि समयोमे बांधा गया जो ऋनुभागमत्कर्म है वह जघन्य है एसा क्यो

नहीं ग्रहण किया [?]

समाधान - नहीं. क्योंकि अन्तिम समयमे बढ़ अनुभागसे द्विचरम आदि समयोमे बन्धको प्राप्त हुआ अनुभाग अनन्तगुणा होता है. अतः उसका प्रहण नहीं किया।

शंका-यह कैसे जाना कि श्रन्तिम समयमे होनेवाले श्रनुभागवन्धसे उपान्त्य समयमे होनेवाला श्रनुभागवन्ध श्रनन्तगुणा है ?

समाधान-"अन्तिम समयमे बद्ध अनुभागमे वही उद्यगत गोपुच्छाका अनुभागसन्कर्म अनन्तगुणा है। उससे द्विचरम समयमे होनेवाला अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है। उससे वही उद्यगत गोपुच्छाका अनुभागसन्कर्म अनन्तगुणा है। इस प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समय पर्यन्त क्रमसे नीचे उतारना चाहिये। इस अन्यवहुत्वको बनलानेवाले सूत्रसे जाना कि अन्तिम समयमे होनेवाले अनुभागबन्धसे उपान्त्य समयमे होनेवालो अनुभागबन्धसे उपान्त्य समयमे

शंका-पुरुपरेदके अन्तिम अनुभागकाण्डककी अन्तिम फालीमे जो अनुभागसन्कर्म है वह

जघन्य है ऐसा क्यो नहीं ग्रहण किया ?

समाधान-नहीं. क्योंकि उसमें जो अनुभाग है वह सर्वधाती और द्विस्थानिक है. अत: वह जघन्य नहीं हो सकता।

शंका-पुरुपविदका अन्तिम बन्ध देशघाती और एकस्थानिक है यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान-अन्तरकरण कर चुकनेके प्रथम समयमे लेकर मोहनीयका बन्ध और उदय देशधानी और एकस्थानिक होता है इस सूत्रसे जाना ।

श्रा० प्रतौ चिरमसमयवेदगगद इति पाठः । २. श्रा० प्रतौ दुचिरमसमग्म इति पाठः ।

🟶 उक्कस्साणुभागसंतकम्म सब्बघादी चदुरुठाणियं।

२१०. जहण्णुकस्सिविसंणमकाऊण इत्थिवेदस्सैव किण्ण वृत्तं ? ण, एग-हाणियाणुभागस्स संभवे संते दृहाण--ितहाण--चडहाणअणुभागसंतकस्माणं णियमेण संभवो अन्धि त्ति तहाविहपस्रवणाए फलाभावादो । जिद् एवं तो इन्धिवेद-चदुसंजल-णाणं पि तहा पस्रवणा ण कायच्वा, एगहाणियाणुभागस्स अन्धितं पिंड विसेसा-भावादो ति ? ण एस दोसो, तेहि सुत्तेहि अवसेसे जाणाविदे संते पुणो तहापस्रवणाए फलाभावादो । सेसं सुगमं ।

अण्वंसयवेदयस्स अणुभागसंतकम्मं जहरण्यं सन्वघादी दुट्ठाणियं। २११. एटमाघनहण्णं ण होदि किंतु आदेसनहण्णं, णवंसयवेदादण्ण खवग-सेढिमारूढम्स चिग्मसमयसर्वेदियम्स उदयगदेगगोवुच्छिम्म नहण्णाणुभागत्तादो। एदं नहण्णाणुभागसंतकम्मं पुण कत्थ गिहदं ? णवंसयवेदचिग्माणुभागकंडयिम्म । एत्थेव गहिदमिदि कुदो णव्वदं ? देसघादी एगद्दाणियं ति अभणिदृण सव्वदादी दुद्दाणिय-

अतथा उन्क्रष्ट अनुभागसन्कर्भ सर्वधाती और चतुःस्थानिक होता है । ६२१० शंका- जघन्य और उन्क्रष्ट विशेषण न लगाकर स्त्रीवेदके समान निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान - नहीं, क्योंकि पुरुषबद्में एकस्थानिक अनुभागके संभव होने पर द्विस्थानिक। त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक अनुभागसन्कर्म नियमसे सभव है. इसिन्। उसप्रकारसे कथन करने में कोई फल नहीं होनेसे वैसा निर्देश नहीं किया।

शंका—यदि एसा है तो स्त्रीवेद और चार संज्वलनकपायोका भी उसप्रकारमे कथन नहीं करना चाहिए, क्योंकि एकस्थानिक अनुभाग उनमें भी सभव है, इसलिये एकस्थानिक अनुभागके अस्तित्वकी अपेस्त उनमें और पुरुषवेदमें कोई अन्तर नहीं है। अर्थात पुरुषयेदकी तरह स्त्रीवेद और सज्वलनकपायमें भी एकस्थानिक अनुभाग पाया जाता है और जिसमें एकस्थानिक अनुभाग संभव है उसमें द्विस्थानिक आदि अनुभाग नियमसे सभव है. अत. स्त्रीवेद और चार सज्वलनोंके अनुभागसन्कर्मका कथन जिसप्रकार पिछले सूत्रोमें कर आये हैं उसप्रकार नहीं करना चाहिए था।

समाधान-यह दोप ठीक नहीं है. क्योंकि उन सूत्रोसे अवशेष वातोका ज्ञान करा देनेपर पनः उन प्रकारसे कथन करनेमें कोई फल नहीं हैं। रोप सुगम हैं।

* नपुंसकवेदका जधन्य अनुभागसत्कम सर्वधाती ऋौर द्विम्थानिक होता है । ६२११ यह स्रोध जधन्य नहीं है किन्तु ऋदिश जधन्य है. क्योंकि स्रोधसे नपुंसक वेदके उदयसे चपकश्रेणी पर चढ़े हुए ऋन्तिम समयवर्ती सोदी जीवके उदयगत एक गोपुच्छामे जधन्य ऋनुभाग होता है।

दांका-ना फिर यह सूत्रोक्त जघन्य अनुभागसन्कर्म कहां प्रहण किया है।

समाधान-नपुंसकादके अन्तिम अनुभागकाण्डकमे यह जघन्य अनुभागसत्कर्म प्रहण किया है।

शंका-उसे यहां ही बहुए किया है यह किस प्रमाणसे जाना ?

१. भा० प्रती पुरमोघभंगी जहराणं इति पाठः । २. ता० प्रती चरिमसमवेहयस्स इति पाठः ।

मिदि भणिदत्तादो ।

- 🕸 उक्कस्सयमणुभागसंतकम्मं सन्वघादी चउट्ठाणियं ।
- 🤋 २१२. सुगममेटं, असइं परूविटत्तादो ।
- २१३. संपिंह बुनदोमुत्ताणं विसयपरूवणदुवारेण अपवादपरूवणहमुत्तरसुत्तं भणदि---
- अ एवरि खवगस्स चित्रमसमयणवृंसयवेदयस्स अगुभागसंतकमां
 देसघादी एगट्ठाणियं ।
- २१४. कुटो ? चरिमफालि परसरुवेण मंकामिय उदयगदणगगुणसेहिगो-वुच्छाण् हिद्ञणुभागमंतकम्मम्स ग्गहणाटो ।
- २१५. एवं जङ्बसहाडरियपस्विद्जहण्णुक्कस्साणुभागविसयघादिसण्णाद्धाण-मण्णाणं पस्त्वणं काऊण संपहि उच्चारणाडरियवक्खाणक्कमं पस्त्वेमा—
- २२६, तत्थ मण्णा दुविहा—घादिसण्णा द्वाणसण्णा चेदि । घादिसण्णा दुविहा—जहण्णा उक्कम्सा चेदि । उक्कम्सए पयदं । दुविहो णिद्दे मो—ओघेण आदे-सण । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सम्मामि०-वारसक०-छण्णोक० उक्क० अणुक्क० सम्बद्यादी । सम्मत्त० उक्क० अणुक्क० देसघादी । चदुसंजलण-तिण्णिवेद० उक्क० सम्बद्यादी अणुक्क०

समाधान क्योंकि सूत्रमे देशघाती और एकस्थानिक न कह कर सर्वघाती और दिकस्थानिक कहा है इससे जाना कि यह सृत्रोक्त जबन्य अनुसाग नपुंसकदेदके श्रन्तिम अनुसागकाण्डकमे ब्रहण किया है।

- अतथा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानिक होता है ।
- ्२१२ इस सृत्रका ऋर्थ सुगम है. क्योंकि ऋनेक वार उसे कह चुके है।
- ्२१३. त्राव उक्त दो सुत्र के विषयकी प्ररूपगाके द्वारा त्र्यपवादका कथन करनेके लिये त्रारोका सूत्र कहते हैं
- क्ष इतना विशेष है कि अन्तिम समयवर्ता नपुंसकवेदी चपकका अनुभाग-सत्कमें देशवाती और एकस्थानिक होता है ।
- § २१४. क्योंकि अन्तिम फालीको परसपसे सकमाकर उदयगत एक गुरगश्रेणिगोपुरुछामे स्थित अनुभागसन्धर्मका यहाँ प्रदर्ग किया है।
- ्रे२१५. इस प्रकार आचार्य यतिवृष्यके द्वारा प्रस्तित जघन्य और उन्कृष्ट श्रमुभाग विषयक घातिसज्ञा और स्थानसज्ञाका कथन करके श्रव उचारणाचार्यके द्वारा किये गये व्याख्यानकमको कहते हैं —
- ्र २१६ संज्ञा दो प्रकारकी है—घातिसंज्ञा त्रोर स्थानसंज्ञा। घातिसंज्ञा दो प्रकारकी है—जघन्य त्रीर उत्कृष्ट। उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—त्र्यांच श्रीर त्र्यादेश। उन्मेसे त्र्यावसे निध्यात्व. सस्यिग्धथात्व. वारह कपाय श्रीर छ नोकपायोका उत्कृष्ट श्रीर श्रनु-त्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्म सर्वधाती है। सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट श्रीर श्रनुन्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्म
 - श्रात प्रतो -सर्गाट्टाग्रमरगागं इति पाठः । २ तात प्रतो -वक्ताग्रकमं इति पाठः ।

सव्वघादी वा देमघादी वा ।

इत् १९०, आदेसेण णेरइएस छव्वीसं पयडीणसुक् ० अणुक ० सव्वधादी । सम्मत्त ० उक्क ० अणुक ० देसवादी । सम्मामि ० उक्क ० सव्वधादी । अणुक्कस्साणुभागसंतकम्मं णित्थ, दंसणमोहक्खवणं मोत्तूण अण्णत्थ सम्मत--सम्मामिच्छताणमणुभागकंडयघादा-भावादो । एवं पढमपुढिव-ितिरक्ख-पंचिदियितिरक्ख-पंचि० तिरि ० पळ्ळ ० -देव०-सोह-म्मादि जाव सव्वहसिद्धि नि । विदियादि जाव सत्तिमि ति एवं चेव । णविर सम्मत्त ० अणुक्क ० णित्थ, कदकरणिज्ञाणं तत्थुववादाभावादो । एवं पंचिदियितिरक्खजोणिणी-पंचि० तिरि ० अपज्ञ ० --मणुसअपज्ञ ० --भण ० --चाण ० - जोदिसिय नि । मणुसतियस्स ओघभंगो । णविर मणुसपज्जत्त एस इत्थि ० उक्क ० अणुक ० सव्वधादी । कुदो १ परोदएण खवगसेढीए णिल्लेविदत्तादो । मणुस्सिणीसु पुरिस०-णवुंस० उक्क० अणुक ० सव्वधादी । कुदो १ खवगसेढीए परोदएण णहत्तादो । एवं जाणिदण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

६ २१८, जहण्णए पयदं । दुवि०—श्रोघे० श्रादे० । तत्थ ओघेण मिच्छत्त०-सम्मामि०--बारसक०--छण्णोक० ज० श्रज० सञ्चघादी । सम्मत्त० ज० श्रज० देस-घादी । पुरिस०-चदुसंज० ज० देसघादी । अज० देसघादी सञ्बघादी वा । चदुण्हं देशघाती है । चार संज्वलन कपाय श्रीर तीनो वेदोका उन्कृष्ट श्रनुभागसन्कर्म मर्वघाती है श्रीर श्रनुकुष्ट श्रनुभागसन्कर्म मर्वघाती श्रीर देशघाती है ।

ू २१७. ब्रादेशसे नार्गकयोम मोहनीयकी छ्रत्वीस प्रकृतियोका उत्कृष्ट और ब्रनुत्कृष्ट ब्रनुभाग सत्कर्म सर्वघाती है। सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट और ब्रनुत्कृष्ट ब्रनुभागसत्कर्म देशघाती है। सम्यम्भध्यात्वका उत्कृष्ट ब्रनुभागस्कर्म सर्वघाती है। किन्तु नरकम उसका ब्रनुतृष्ट ब्रनुभागस्कर्म नहीं है; क्योंकि दर्शनमीहके चपएके सिवाय ब्रन्यत्र सम्यक्त्व और सम्यम्भध्यात्वका ब्रनुभागकाण्डकघान नहीं होता। इसी प्रकार पहली पृथिवी सामान्य तिर्यच्य पत्र्ये निर्वच तिर्यच पत्र्ये स्वाप देश और सौधर्म स्वर्गस लेकर सवार्थीमिद्ध तकके देशोम जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सात्र्या पृथिवी तक भी एसा ही समक्रना चाहिए। किन्तु इतना विरोप है कि यहां सम्यक्त्वका ब्रनुत्कृष्ट ब्रनुभागस्कर्म नहीं होता; क्योंकि क्रतकृत्यवेदक सम्यक्ष्यिका वहां उत्पाद नहीं होता। इसी प्रकार पत्र्येन्द्रियित्यं व्योगिनी, पत्र्येन्द्रिय निर्यच्य ब्रप्यांप्त; मनुष्य ब्रप्यांप्त. भवनवासा, व्यन्तर और ज्योतिषी देशोम जानना चाहिए। तीन प्रकारक मनुष्योम ब्राघक समान भङ्ग है। इतना विशेप है कि मनुष्य पर्याप्तकोम स्त्रीवेदका उत्कृष्ट और ब्रनुत्कृष्ट ब्रनुभागस्कर्म सर्वघाती है, क्योंकि इनके च्यक्षेणीम पराद्यसे उसका विनाश होता है। तथा मनुष्यित्यामे प्रक्रपंद ब्रीर नपुंसकवेदका उत्कृष्ट ब्रीर ब्रनुत्कृष्ट ब्रनुभागसत्कर्म सर्वघाती है, क्योंकि इनके च्यक्षेणीम पराद्यसे उन दोनोका विनाश होता है। इस प्रकार जानकर ब्रनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

्र २१८. श्रव जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश । उनमें से श्रोघसे मिथ्यात्व, सर्म्याग्मथ्यात्व. बारह कपाय श्रीर छ नोकपायोका जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभाग सत्कर्म सर्वघाती है । सम्यक्त्वका जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागसत्कर्म देशघाती है । संजलणाणं किहित्तमुवणिमय विणद्वाणमजहण्णाणुभागस्स होदु णाम देसघादित्तं, ण पुरिसवेदस्स, फद्दयसरूवेण विणद्वताद्वा ? ण, पुरिसवेदस्स वि दुसमयूणदोआविलय-मेत्तकालं देसघादिअजहण्णाणुभागफद्दयाणमुवलंभादो । इत्थि॰-णवुस० जह० देस-घादी । अजहण्णं सञ्वघादी । एवं मणुमतियम्मि । णविर मणुसपज्ज० इत्थि० जहण्णा-जहण्ण० सञ्वघादी । मणुसिणीसु पुरिस०-णवुंस० जहण्णाजहण्ण० सञ्वघादी ।

§ २१६. आदेसेण णिरयादि जाव सन्वद्वसिद्धि त्ति उक्कस्सभंगो । णवरि जहण्णाजहण्णं ति भाणिदन्त्रं । एवं जाणिद्ण णेयन्त्रं जाव अणाहारि ति ।

ह २२०. द्वाणसण्णा दुविहा—जहण्णा उक्कस्सा चेदि। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्दे सो—जोघेण आदेसेण य। ज्रोघेण मिच्छत—बारसक०-छण्णोक० उक्क० चउ-द्वाणियं। अणुक्क० चउद्वाणियं तिद्वाणियं वेद्वाणियं वा। सम्मत् उक्क० वेद्वाणियं। अणुक्क० वेद्वाणियं एगद्वाणियं वा। सम्मामि० उक्कस्साणुक्कस्सं० वेद्वाणियं। चदुण्णं संजलणाणं तिण्हं वेदाणमुक्क० चदुद्वाणियं। अणुक्क० चदुद्वाणियं वा तिद्वाणियं वा विद्वाणियं वा एगद्वाणियं वा। एवं मणुमतियं। णविर मणमपज्ञ० इन्थिवेद्स्स एग-पुरुपवेद और चार संज्वतन कपायोका जधन्य अनुभाग देशधाती है और अजधन्य अनुभाग देशधाती है।

शंका—चारो संज्वलन कपाय क्रष्टिपने को प्राप्त होकर नष्ट होती है, अतः उनका अज-यन्य अनु र ग देशवाती होत्रो, किन्तु पुरुषवेदका अजयन्य अनुमाग देशवानी नहीं हो सकता. क्योंकि पर्ध करूपसे उसका विनाश होता है।

समाधान नहीं क्यों कि पुरुपवेदके भी दो समय कम दो आवली मात्र काल तक देश-याती अजघन्य अनुभागस्पर्धक पाये जाते हैं।

स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसन्कर्म देशघाती है और अजघन्य अनुभागसन्कर्म सर्वधाती है। इसी प्रकार मनुष्यके तीन भेदोमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि मनुष्य पर्याप्रकोंमे स्त्रीवेदका जघन्य और अजघन्य अनुभागसन्कर्म सर्वधाती है और मनुष्यितियोमे पुरुषवेद और नपुं किवेदका जघन्य और अजघन्य अनुभागसन्कर्म सर्वधाती है।

२१९ आदेशमे नरकसे लेकर सर्वार्थिसिद्धि तकके जीवोमे उन्क्रष्टके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि उन्क्रष्ट और अनुन्क्रष्टके स्थानमे जघन्य और अजघन्य कहना चाहिए। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

् २२०. स्थानसंज्ञा दो प्रकारकी है—जघन्य खौर उन्कृष्ट । पहां उन्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दा प्रकारका है—खोघ खौर खादेश । खोघसे भिष्यात्व. वारह कपाय खौर छ नोकपायों का उन्कृष्ट खनुभागसन्कर्म चतुःस्थानिक है। खनुन्कृष्ट खनुभागसन्कर्म चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक हो। सम्यक्त्वका उन्कृष्ट खनुभागसन्कर्म दिस्थानिक हो। सम्यक्त्वका उन्कृष्ट खनुभागसन्कर्म दिस्थानिक खौर एकस्थानिक है। सम्यम्भिष्यात्वका उन्कृष्ट खोर खनुन्कृष्ट खनुभागसन्कर्म दिस्थानिक हो। चार संज्ञ्ञलन कपाय और तीन वदोका उन्कृष्ट खनुभागसन्कर्म चतुःस्थानिक हो। अनुन्कृष्ट खनुभागसन्कर्म चतुःस्थानिक हो। अनुन्कृष्ट खनुभागसन्कर्म चतुःस्थानिक हो। अनुन्कृष्ट खनुभागसन्कर्म चतुःस्थानिक, विस्थानिक, दिस्थानिक खोर एकस्थानिक हो। इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्यांमे जानना चाहिये। इतनी विशेषता हो कि मनुष्यपर्याप्तकोम

हाणियं णत्थि । मणुसिणीमु पुरिस०-णउंसय० एगहाणियं णत्थि ।

२२१. आदेसंण णेरइएसु भिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० चउद्दाणियं। अणुक्क० चउद्दाणियं निद्दाणियं विद्दाणियं वा। सम्मन० उक्क० विद्दाणियं। अणुक्क० एगद्दाणियं। सम्मामि० उक्कम्माणुक्कम्म० वेद्दाणियं। एवं पदमपुद्रवि-निरिक्ख-पंचिद्रिय-निरिक्ख-पंचिठितरि०पज्ज०--देव-मोहम्मादि जाव सहम्सारो ति। विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव। णविर सम्मन० अणुक्क० एगद्दाणं णित्थ। एवं पंचिद्रयितिरिक्ख-जोणिणी-पंचिठितरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-जोदिसए ति। आण्वद्रदि जाव सव्यद्दसिद्धि ति छ्व्दीसं पयदीणं उक्क० अणुक्क० वेद्दाणियं। सम्मत्त-सम्मामिच्छताणं देवोघभंगो। एवं जाणिदण णेद्दवं जाव अणाद्दारि ति।

\$ २२२. जहण्णए पयदं। दुविहो णिहे सो — ओयेण आदेसण। श्रोयेण मिच्छत्त-वारसक०-छण्णोक० जहण्णाणु० वेद्याणियं। अज० वेद्याणियं तिद्याणियं चउद्याणियं वा। सम्मान० ज० एगद्याणियं। अज० एगद्याणियं विद्याणियं वा। सम्मामि जहण्ण० अजहएएां पि विद्याणियं। पुरिस०-चदुसंज० जह० एगद्याणियं। अज० एगद्याणियं विद्याणियं तिद्याणियं चउद्याणियं वा। इत्थि०-णवुंस० ज० एगद्यागियं। अज० वेद्याणियं म्त्रीवेदका अनुभागसन्कर्म एकम्थानिक नदी है। तथा मनुश्यिनयोमे पुरुषवेद और नपुंसक-वेदका अनुभागसन्कर्म एकम्थानिक नदी है।

्रेश्, ख्रादेशमे नार्गक्योमे मिश्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायोका उन्कृष्ट अनुभागमन्तर्म चतु स्थानिक है और अनुन्कृष्ट अनुभागमन्तर्म चतु स्थानिक है। सम्यक्त्वका उन्कृष्ट अणुभागमन्तर्म हिस्थानिक है से अनुन्कृष्ट अनुभाग मन्तर्म एकस्थानिक है। सम्यग्निश्यात्वका उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभाग मन्तर्म एकस्थानिक है। सम्यग्निश्यात्वका उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागमन्तर्म हिस्थानिक है। इमी प्रकार पहली पृथिती, सामान्य तिर्य च पत्री निक्रं निक्रं विविध्व तिर्य च पर्याप्त, सामान्य देव और सौर्य निवर्ण लेकर सहसार स्वर्ग तकके देवामे जानना चाहिए। दूमरीसे लेकर साववा पृथिवी तकके नारिकयोमे इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमे सम्यग्नवका अनुन्कृष्ट अनुभागमन्तर्भ एकस्थानिक नहीं है। इसी प्रकार प्रजेन्द्रिय निर्य च्योनिनी, पत्री निक्रं स्थानिक स्वर्थ अपयोप्त, मनुष्य अपयोप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषयोम जानना चाहिए। आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थिसिंह पर्यन्त छव्वीम प्रकृतियोका उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागमन्तर्भ हिस्थानिक है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्निश्यात्वका सामान्य देवाके समान भंग है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिय।

उ २२२ जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और आदेश। श्रोघसे मिण्यात्व वारह कपाय और छह नोकपायोका जघन्य अनुभागसन्त्रमं द्विस्थानिक है। अजघन्य अनुभागसन्त्रमं द्विस्थानिक है। अजघन्य अनुभागसन्त्रमं द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक श्रोर चतु.स्थानिक है। सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसन्त्रमं एकस्थानिक है। द्विस्थानिक है। सम्यग्निश्यात्वका जघन्य श्रोर अजघन्य अनुभागसन्त्रमं द्विस्थानिक है। पुरुपवेद और चार संज्वलन कपायोका जघन्य अनुभागसन्त्रमं एकस्थानिक है और अजघन्य अनुभागसन्त्रमं एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक त्रिस्थानिक और चतु:स्थानिक है। स्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य

तिहाणियं चउहाणियं वा । एवं मणुसतियः । णविर मणुसपज्जत्तेसु इत्थिवेदः जहण्णः वेहाणियं । अजहण्णः वेहाणियं तिहाणियं चउहाणियं वा । मणुसिणीसु पुरिसः -णवुंसः जिं वेहाणियं । अजः वेहाणियं तिहाणियं चउहाणियं वा ।

२२३. आदेसेण णेरइएमु छ्वासं पयडीणं ज० विद्वाणियं। अज० तिद्वा-णियं चउद्वाणियं वा। सम्मत्त ज० एगद्वाणियं। अज० एगद्वाणियं विद्वाणियं वा। सम्मामि० ओद्यं। णविर् जहण्णाजहण्णभेदो णित्थ। एवं पदमपुद्धवि-तिरिक्ख-पंचि-दियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देव--सोहम्मादि जाव सहस्सारकप्पो ति। विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव। णविर सम्मत्त० जहण्णं णित्थ। एवं जोणिणी-पचि०-तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिओं ति। आणदादि जाव सव्वद्व-मिद्धि ति छ्वीसं पयडीणं ज० अज० वेद्वाणियं। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमोद्यभंगो। एवं जाणिदण णेदव्वं जाव अणाद्वारि ति।

हाणसण्णा समता।

् २२४. उत्तरपयिंड ऋणुभागिवहत्तीए तत्थ इमाणि अणियोगद्दाराणि । तं जहा--मन्त्राणुभागिवहत्ती णोसन्त्राणुभागिवहत्ती उक्कस्साणुभागिवहत्ती ऋणुक्कस्साणुभागिवहत्ती

अनुभागसन्तर्भ एकस्थानिक है। अज्ञघन्य अनुभागसन्तर्भ द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनिय मे जानना चाहिए।
इनना विशेष है कि मनुष्यपर्याप्रकोम स्वीवेदका जघन्य अनुभागसन्तर्भ द्विस्थानिक है। अजघन्य अनुभागसन्तर्भ द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक है। मनुष्यिनियोम पुरुषवेद और
नपुसकवेदका जघन्य अनुभागसन्तर्भ द्विस्थानिक है। अज्ञघन्य अनुभागसन्तर्भ द्विस्थानिक,
त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक है।

्रश् आदेशसे नार्श्वयोमे छ्व्बाम प्रकृतियोका जवन्य अनुभागसन्कर्म द्विस्थानिक है। अजवन्य अनुभागसन्कर्म प्रमथानिक और चतुःस्थानिक है। सम्यक्त्वका जवन्य अनुभागसन्कर्म एकस्थानिक है। अजवन्य अनुभागसन्कर्म एकस्थानिक और दिस्थानिक है। सम्यग्निध्यात्व का खोचके समान जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ उसमे जवन्य और अजवन्यका भद् नहीं है। इसी प्रकार पहली प्रथिवी, सामान्य तिर्यञ्च पर्याप्त, देव और सौधम स्वगंसे लेकर सहस्रार कन्य तकके देवोमे जानना चाहिए। दूमरीसे लेकर सातवी प्रथिवी तकके नार्शक्योमे इसी प्रकार जानना चाहिए।इतना विशेष है कि सम्यक्त्व अपर्याप्त, सनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और उद्योगिनी, पञ्चेत्र्यविश्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और उद्योगिपयोमें जानना चाहिए। आनत स्वर्यसे लेकर सर्वार्थ सिद्धि तकके देवोमे छ्व्बीस प्रकृतियोका जघन्य और अजवन्य अनुभाग सन्कर्म दिस्थानिक है। सम्यक्त्व और सम्यग्निक प्रविश्वानिक है। सम्यक्त्व और सम्यग्निक क्रियानिक है। सम्यक्त्व और सम्यग्निक स्वर्यानिक है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

म्थानसंज्ञा समाप्त हुई।

्र २२४. उत्तरप्रकृति अनुभागविभक्तिमे ये अनुयोगद्वार होते हे । यथा-सर्वानुभागविभक्ति सोमर्वानुभागविभक्तिः उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति, अनुरहृष्ट अनुभागविभक्ति, जघन्य अनुभागविभक्ति, नहण्णाणुभागविहत्ती अनहण्णाणुभागविहत्ती सादियअणुभागविहत्ती अणादियअणुभागविहत्ती धुवाणुभागविहत्ती अद्भुवाणुभागविहत्ती एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागाणुगमो परिमाणाणुगमो खेताणुगमो पोसणाणुगमो कालो अंतरं सिएए।यासो भावो अप्पाबहुअं चेदि । अनगार-पदणिक्खेव-विद्विविहित्ति हाणाणि ति ।

२२५. तत्थ सञ्विवहत्ति-णोसञ्विवहत्तियाणुगमेण दुविहो णिहे सो—ओघेण ब्रादेसेण य । ओघेण अद्वावीसं पयडीणं सञ्वाणि फदयाणि सञ्विवहत्ती । तद्णाणि णोसञ्विवहत्ती । एवं जाणिद्ण णेदञ्वं जाव अणाहारि ति ।

२२६. उकस्सिविहत्ति-अणुकस्सिविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिद्देसो — ऋोघेण आदेसेण य। ओघेण अहावीसं पयडीणं सच्चुकस्सचरिमफद्दयचरिमवग्गणाणुभागो उकस्स-विहत्ती । तद्गो अणुकस्सिविहत्ती । एवं जाणिद्ण णेदच्वं जाव अणाहारि ति ।

२२७. जहण्णाजहण्णविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिहेसो—अघिण आदेसण य। अघिण सन्वासि पयडीणं सन्वजहण्णद्वाणस्स चरिमवम्गणाणुभागो चिरमिकिटि-अणुभागो वा जहएणविहत्ती। तदुवरिमजहण्णविहत्ती। एवं जाणिदृण णेदन्वं जाव अणाहारि ति।

२२८. सादि-अणादि-धुव--अद्धुवाणुगमेण दुविहा णिइ सो—-च्रोघेण द्यादे-सेण । च्रोघेण मिच्छत्त-सम्मत--सम्मामि०--अद्वक० उक्क० च्रणुक्क० ज० अज० कि

अजवन्य अनुभागविभक्तिः सादि अनुभागविभक्तिः अनादि अनुभागविभक्तिः ध्रुव अनुभागविभक्तिः अध्रुव अनुभागविभक्तिः स्व जीव की अपदा स्वाभित्वः कालः अन्तरः, नानाः जीवोकी अपदा भङ्गाविचयः भागाभागानुगमः परिमाणानुगमः द्वीत्रानुगमः स्वर्शनानुगमः कालः अन्तरः सन्निकपः भाव और अलाव हुत्व । तथा भुजगारः पदिन होतः हिद्धावैभक्ति और स्थान ।

्र २२५. उनमेमे सर्वाव निक्त श्रीर नामर्वविभक्तिक श्रानु गमकी श्रापेद्धा निर्देश दो प्रकारका है –श्रीय श्रीर श्राद्धा । श्रायसे श्रद्धाईन प्रकृतियोके सब स्पर्धक मर्वाव नांक हैं । उनसे कम स्पर्धक नामर्वाव निक्त है । इस प्रकार जानकर श्रानःह री पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

१२२६ उत्कृष्टिविमक्ति और अनुस्कृष्टिविमक्ति अनुगमकी अपंचा ।नर्देग दो प्रकारका है—आंघ और आदेश । आघसे अहारस प्रकृतियोके सबसे उत्कृष्ट अन्तिम स्पर्वकोकी अन्तिम वर्गणाओका अनुमाग उत्कृष्टिविभक्ति है । उससे कम अनुमाग अनुन्कृष्टिविभक्ति है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

्र २२७ जघन्य और श्रजघन्य विभक्तिश्रनुगमकी श्रपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— श्रोघ और श्रादेश । श्रोघसे सब प्रकृतियोके सबसे जघन्य स्थानकी श्रान्तम वर्गशाका श्रनुमाग श्रथवा श्रान्तिम कृष्टिका श्रनुमाग जघन्य विभक्ति है । उससे उपरका श्रनुमाग श्रजघन्यविभक्ति है । इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

२२८. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनुगमकी अपना निर्देश दो प्रकारका है— श्रोध और आदेश। श्रोधसे मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और आठ कपायोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जधन्य और अजधन्य अनुभाग क्या मादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या सादिओं किमणादिओं कि धुनो किमद्धुनो वा ? सादी अद्धुनो । चदुसंजल०--णव-णोकसाय० उक्क० त्रणुक्क० ज० कि सादिया किमणादिया कि धुना किमद्धुना ? सादि॰ अद्धुना । अज० कि सादिया किमणादिया कि धुना किमद्धुना ? अणादिया धुना त्रद्धुना । त्रणंताणु०चउक्क० उक्क० अणुक्क० ज० कि सादिया अणादिया धुना त्रद्धुना ? सादि-अद्धुना । त्रज्ञ कि सादि० त्रणादि० धुना अद्धुना ? सादि० अणादि० धुना अद्धुना ? सादि० अणादि० धुना अद्धुना । योदेसम्मि सञ्चपयदीणं सञ्चपदा० सादि-अद्धुना । एवं जाणिदृण णेदञ्चं जाव अणाहारि ति ।

🕸 एगजीवेण सामितः।

२२६, सन्विवहितयादिश्रहियारे अभिणद्ण एगजीवेण सामित्तं चेव किमिदि जइवसहाइरियो भणदि ? ण, जहएणुक्रस्ससामित्तेष्ठ परूविदेष्ठ तेसि पि अवगमा होदि ति तदपरूवणादो । ण च अवगयअत्थपरूवयं सुत्तं भवदि, अङ्प्यसंगादो ।

🛞 मिच्छत्तस्स उक्क्साणुभागसंतकम्मं कस्स ?

२२३०. एदं पुच्छासुत्तं सञ्चयगगणाहि सञ्चोगहणाहि विसेसिदर्जीवं उवेक्खदे।ससंसुगमं।

क्या अध्रव है ? सादि और अध्रव है। चार सञ्चलन और नव नांकपायों का उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जयन्य अनुभाग क्या सादि है. क्या अनादि है. क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है। अजयन्य अनुभाग क्या सादि है. क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? अनिहान क्या सादि है. क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? अनिहान प्रविच अनुभाग क्या सादि है. क्या अनादि है क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है। अज्यव्य अनुभाग क्या सादि है. क्या अनादि है क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है। आदि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है। अपनिवच्या सादि है क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

🛞 एक जीवकी ऋषेज्ञा स्वामित्वका प्रकरण है।

् २२९ **शंका** -सर्वावभक्ति त्यादि अधिकारोको न कहकर आचार्य यति ४पम एक जीवकी अपेद्मा स्वामित्वको ही क्यों कहते हैं ?

समाधान—नहीं. क्योंकि जवन्य और उत्कृष्ट म्यामित्व का कथन कर देने पर उनका भी ज्ञान होजाता है, इमिल्ये रोप अधिकारोका प्ररूपण नहीं किया है। यदि कहा जाय कि म्वामित्व के प्ररूपण्से उनका ज्ञान होजाने पर भी उनका कथन कर देते तो क्या हानि थी। किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि यह सूत्र यन्थ है और जो जाने हुए अर्थ का कथन करता है वह सूत्र नहीं हो सकता, अत्यथा अतिप्रसंग दोप आयेगा, अर्थान् यदि जाने हुए अर्थ का कथन करनेवाला प्रनथ भी सूत्र कहा जा सकता है तो फिर कोई सर्यादा ही नहीं रहेगी।

मिध्यात्व का उत्कृष्ट अनुभागसत्कम किसके होता है ?

् २३० यह पुच्छासूत्र सब मार्गणात्रो और सब अवगाहनात्रो से युक्त जीव की उपेचा करता है। अर्थात् सामान्य जीव की अपेचा करता है। शेप अर्थ मुगम है।

🕸 उक्कस्साणुभागं बंधिदृण जाव ए हण्दि।

२३१. उक्रम्बसंकिलेसेण उक्रस्समणुभागं वंधिदृण जाव तं कंडयघादेण ण हणदि ताव तम्य उक्षस्साणुभागमंतकम्मं होदि । सो उक्षस्साणुभागवधो कस्स होदि १ सिण्णिपंचिदियपज्जनसञ्चुक्षम्यसंकिलेमिष्ट्याइहिम्स । जदि एवं तो एवंविधो उक्ष्साणुभागवंधओ नि किण्ण परुविदं १ ण, अनुने वि आइण्यियोवदेसादेव जाणिज्जिदि नि तदपरुवणादो । सो जाव तमुक्षम्साणुभागमंतकम्मं कंडयघादेण ण हणदि ताव तेण कत्थ कत्थ उप्पज्जिदि नि वुने तिण्णण्णयत्थमुन्तरमुनं भणदि ।

अ ताव सो होजा एइंदिश्रो वा वेइंदिश्रो वा तेइंदिश्रो वा चउरिंदिश्रो वा श्रसण्णी वा सण्णी वा।

२३२. तेणुकस्मसंतकम्मेण सह कालं कादण एइंदिओ होज्ज, बीइंदिओ तीइंदिओ चर्जारिद्यो स्थापणपंचिदिओ सिण्णपंचिदिओ वा होज्जः उकस्साणुभाग-संतकम्मेण सह एदेसि विरोहाभावादो । एइंदिया बहुविहा बादर-सुहुम-पज्जतापज्जत-भेयेण । तत्थ केसि गहणं ? सब्वेसि पि । कुदो ? सुत्तम्मि विसेसणिइ साभावादो । एवं बेइंदियादीणं पि बत्तब्वं । एदस्य सुत्तस्स अपवादहसुत्तरसुत्तं भणदि ।

अनुभागका वंध करके जब तक उसका घात नहीं करता है। २३१ उन्हाप्ट मंह शसे उन्हाप्ट अनुभागका वंध करके जब तक उसे काण्डकवातक द्वारा नहीं घातता है तब तक उसके (4०थान्वका उन्हाप्ट अनुभागसन्तर्भ होता है।

शंका-वह उत्कृष्ट अनुभागवन्ध किसके होता है ?

समाधान-सर्वोत्कृष्ट संहं शवाले सजी पश्चे न्द्रिय पर्याप्त मिध्यादृष्टिके होता है।

शंका—यदि ऐसा है तो 'तो इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागका वधक है उसके मिण्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसकार्य होता है' इस प्रकार क्या नहीं कहा ?

संगाधान-नदी. वयोकि नहीं कहने पर भी अचार्यके उपदेशसे ही यह बात ज्ञात है। जाती है, अत. उसका कथन नहीं किया है।

बह जीव जब तक उस उन्कृष्ट त्य्रनुमागमन्यर्मका काण्डकघानके द्वारा नहीं घानता है तब तक वह कहां कहा उत्पन्न होता है ऐसा प्रश्न करने पर उसका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

ै % तत्र तक वह एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चोइन्द्रिय, असंज्ञी अथवा संज्ञी होता है, उसके मिथ्यात्वका उन्कृष्ट अनुभागसन्कर्म होता है।

्रे २३२ उत्कृष्ट अनुभाग मन्कर्मके साथ भरग् करके वह जीव एकेन्द्रिय होता है.दे।इन्द्रिय. तेइन्द्रिय, चीइन्द्रिय, अमुझी पश्चे न्द्रिय अथवा मुझी पश्चे न्द्रिय होता है. क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग संकर्मके साथ इन पर्यायोका कोई विरोध नहीं हैं।

शंका—बादर सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे एकेन्द्रिय जीव अनेक प्रकारके हैं। उनमेसे किसका प्रहण किया है ?

समाधान- मभीका प्रह्मा किया है: क्योंकि सूत्रमें किसी विशेषका निर्देश नहीं है। इसी प्रकार दोइन्द्रियादिकके सम्बन्धमें भी कहना चाहिये। अब इस सूत्रके अपबादके

🏶 त्रसंखेज्जवस्साउएसु मणुस्सोववादियदेवेसु च णित्धः

२३३. असंखेजनस्साउएमु ति बुत्ते भोगभूमियतिरिक्ख-मणुस्साणं ग्रहणं, ण देव-णरइयाणं । कुदो ? रुहिवमादो । भोगभूमं सु आसिष्णी-उसिष्पणीणमवसाणे आदीए च सखेज्जवस्माउअतिरिक्ख-मणुस्साणं पि अदो चेव असंखेज्जवस्साउअतं । वुष्पत्तिणिरवेक्खो असंखेज्जवस्साउअसदो भोगभूमियतिरिक्ख-मणुस्सेसु संखंज्ज-वस्साउएसु च बद्ददि ति भणिदं होदि ।

२३४. मणुस्सोववादियदेवेसु त्ति बुत्ते आणदादि उवरिमसव्वदेवाणं गहणं, मणु-स्सेसु चेव तेसिसुष्पत्तीदो । कुदोवहारणोवलद्भी ? मणुम्सोववादियदेवेसु ति विसेसणादो । तं जहा — सञ्वे देवा मणुस्सोववादिया, पडिसेहाभावादो । तदो फलाभावादो ण विसेसणं लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* किन्तु वह असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें और केवल मनुष्योमें उत्पन्न होने-वाले देवोमें उत्पन्न नहीं होता है।

विश्पार्थ असंख्यातवर्षायुष्क राटद्से मोगभूमियोका प्रहण् किया जाता है। किन्तु भरत और एरावतमे अवस्पिणी और उत्सिर्णी कालका परिणामन सदा होता रहता है तथा अवर पिणी कालके प्रारम्भके तीन कालों से और उत्सिर्णी कालके अन्तके तीन कालों मागभूमि रहती है. अतः जब अवस्पिणी कालका तीमरा काल समाप्त हाने लगता है तो उस सभयके तिर्थश्व मनुष्योकी आयु असख्यात वर्षकी न होकर सख्यात वपकी होने लगती है। इसी प्रकार उत्सिर्णी कालके चौथे कालके प्रारम्भमें भी जब कि भोगभूमि प्रारम्भ हार्ता है भरत और ऐरावतके निर्यश्व और मनुष्योकी आयु सख्यात वर्षकी होती है. अतः असंख्यातवर्षायुष्क शद्दका जा व्युत्पत्ति अर्थ असंख्यात वर्षकी आयुवाला किया है. यदि वह अर्थ लिया जाता है तो संख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियोका प्रहण् नहीं होता है. अतः व्युत्पत्ति अर्थकी अपेक्षा न करके असंख्यातवर्षायुष्क शद्दसे भोगभूमिया मनुष्य और विर्थ चौका प्रहण् करना चाहिये चाहे वे संख्यात वर्षकी आयुवाले हो या असंख्यात वर्षकी आयुवाले हो। उनमें भिण्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जीव जन्म नहीं लेता।

३ २३४. मनुष्योमे उत्पन्न होनेवाले देवोमे ऐसा कहने पर त्यानत स्वर्गसे लेकर ऊपरके सब देवोका ब्रह्मण होता है. क्योंकि उनकी उत्पत्ति मनुष्योमे ही होती है।

शंका –मनुष्योमे ही उत्पन्न होनेबाते देवोका श्रहण् किया है. इस प्रकारका श्रवधारण् कहाँसे लिया ?

समाधान-'मनुष्योमे उत्पन्न होनेवाले देवोमे इस विशेषण्यसे। इसका खुलासा इस प्रकार है—सभी देव मनुष्योमे उत्पन्न हो सकते हैं. वयोकि मनुष्योमे उनकी उत्पत्तिका निषेध नहीं हैं. फलवंतिमिदि। ण च णिष्फलं सुत्तं होदि, अञ्चवत्थावत्तीदो। तम्हा अवहारणस्स अत्थित्त-मवगम्मिदि ति। एदेसु उकस्साणुभागसंतकम्मं णित्थि, तं चादिय विद्वाणियं करिय पच्छा एदेसुष्पत्तीदो। ण च तत्थ उक्कम्साणुभागवंथा वि अन्थि, तेष-पम्म-सुक्कलेम्साहि तिरिक्ख-मणुस्सेसु सुक्कलेम्साए देवेसु च उक्कस्साणुभागवंथाभावादो।

अ एवं सोलसकसाय णवणोकसायाणं।

२३५. जहा मिच्छत्तउकस्साणुभागम्स मामितं परूविदं तहा सोलसकसाय-णवणोकसायाणं पि परूवेदव्वं, विसेसाभावादो । एत्थं 'च' महो समुचयहो किण्ण परूविदो १ ण. तेण विणा वि तदहोवलद्धीदो ।

असम्मत्त सम्मामिच्छ्रताणसुक्षस्साणुभागसंतकम्मं कस्स ? २३६. सगमेवं।

🕸 दंसणमोहक्खवगं मोत्त् ए सव्वस्स उक्कस्सयं।

२३७, कुटो ? दंसणमाहक्षवयं भोतृण अण्णत्थ सम्मत्त-सम्मामिच्छताण-मणुभागखंडयघादाभावादो । पढमसम्मतुष्पत्तीए अणंताणुवंधिविसं नोयणाए चारित्तमोह-ख्रतः दूसरा काई फल न होनेसे विशेषण निष्फल हो जायगा । ख्रौर सूत्र निष्फल नहीं होता. क्योकि इससे खन्यवस्थाकी ख्रापित ख्राती है, इसलिए इस सत्रमे ख्रवधारणके ख्रस्तित्वका जान होता है।

इन जीवों में उन्कृष्ट अनुभागसन्कर्म नहीं है, क्योंकि उसका घात करके उसे द्विस्थानिक कर लेनेके पश्चान ही इनमें उन्पत्ति होती है। और उनमें उन्कृष्ट अनुभागवन्ध भी नहीं होता। इसका कारण यह है कि भागभूभिमें पर्याप्त अवस्थामें तीन ग्रुम लेश्याएं ही हैं और आनत स्वर्ग से लेकर उपरके देवों में केवल शुक्त लेश्या ही हैं। तथा तेज, पर्म और शुक्रलेश्या के रहते हुए तिर्यश्च मनुष्योमें और शुक्रलेश्या के रहते हुए तिर्यश्च मनुष्योमें और शुक्रलेश्या के रहते हुए देवोमें उन्कृष्ट अनुभागवन्ध नहीं हो सकता।

* इसी प्रकार सोलह कपाय और नत्र नोकपायोंके भी स्वामित्वका कथन कर् लेना चाहिये ।

्र ३३५. जैसे मिण्यात्वके उत्क्रष्ट अनुभागके स्वामीका कथन किया उसी प्रकार सोलह कपाय खीर नव नोकपायोके स्वामित्वका भी कथन कर लेना चाहिये. उससे इसमे कोई भेद नहीं है।

शंका-इस सूत्रमे समुचत्रार्थक च राष्ट्र क्यो नहीं कहा ?

समाधान-नहीं, वधोकि उसके विना भी उसके अर्थका ज्ञान हो जाता है।

- असम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?
 २३६ यह स्थ सरल है।
- * दर्शनमोहके चपकको छोड़कर शेप सबके उत्कर्प अनुभागसत्कर्म होता है । ् २३७ यथोकि दर्शनमोहके चपकको छोड़कर अन्यत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिश्यात्वके अनुभागःत काण्डकवान नहीं होता है ।

जांका-प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति, अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना स्त्रौर चरित्रमोहकी

उवसामणाए सन्वपयडीणं दिदि-अणुभागकंडएसु णिवदमाणेसु कथमेदासिं दोण्हं चेव पयडीणमणुभागघादो णित्य १ ण, भिण्णजाइतादो । अपुन्व-अणियदिभावेण सरिस-परिणामेहितो कथं भिण्णाणं कज्जाणं समुष्पत्ती १ ण, कज्जभेदण्णहाणुववत्तीदो कार-णाणं पि भेदसिद्धीए ।

एवमुकस्साणुभागसामित्तं समत्तं।

अ मिच्छुत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

३ २३८. सुगममेदं।

ॐ सुहुमस्स ?

\$ २३६. एइंदियग्गहणमेत्थ किण्ण कयं ? ण, एइंदिए मोत्तूण अण्णत्थ सुहुम-भावो णितथ ति एइंदियविण्णाणुष्पत्तीदो ! जिद एवं, तो णिगोदग्गहणां कायव्वं, अण्णत्थ जहण्णाणुभागसंतकम्माभावादो ? ण, सुहुमणिद सादो चेव तदुवलंभादो । तं जहा—जो सुहुमेइंदिओ ति वुत्ते पासिदियणाणेण सुहुमणामकम्मोदएण च जो सुहुमतं उपशामनाम जब सब प्रकृतियोके म्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकका घात होता है तो इन दो प्रकृतियोके अनुभागका घात क्यों नहीं होता ?

समाधान-नहीं। क्योंकि अन्य प्रकृतियोंसे इनकी जाति भिन्न है।

शंका-अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण्ह्य महश परिणामोसे भिन्न कार्योंकी उत्पित कैसे होती है। अर्थात् दर्शनमाहके चपणमं भी ये परिणाम होते हैं और प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति आदि के समय भी ये परिणाम होते हैं। किन्तु एक जगह तो वे परिणाम सभी प्रकृतियोंके स्थिति -अनुभागका घात करते हैं और दूसरी जगह नहीं करते एसा भेद क्यो है ?

समाधान—दोनो जगहके कार्यम भेद है। इससे सिद्ध है कि कारणमें भी भेद श्रवश्य है, दोनो जगहके परिणामों में भेद न होता तो कार्यमें भेद न होता। श्रर्थान् दर्शनमाहके क्षपण-कालमें जैसे परिणाम होते हैं वैसे परिणाम प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति श्रादिमें श्रन्यत्र नहीं होते।

इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागका स्वामित्व समाप्त हुआ।

* मिथ्यात्वका जघन्य अनुभामसत्कर्म किसके होता है ? १२३-. यह सुत्र सुगम है।

* सूक्ष्म जीवके होता है।

§२३६ **शंका-**इस सूत्रमें एकेन्द्रिय पदका ग्रहण क्यों नहीं किया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि एकेन्द्रियको छोड़कर अन्यत्र सूक्ष्मपना नहीं है, इसलिये 'सूक्ष्म' पदसे ही एकेन्द्रियका ज्ञान हो जाता है, अत: एकेन्द्रिय पदका प्रहण नहीं किया।

शंका-यदि ऐसा है तो निगोदका प्रहण करना चाहिये, क्योंकि निगोदियाके सिवा अन्यत्र जघन्य अनुमागसकर्मका अभाव है।

समाधान—नहीं. क्योंकि 'सूक्ष्म' पदके निर्देशसे ही उनका प्रहण हो जाता है। इसका खुलासा इस प्रकार है—यहाँ सूक्ष्म ए न्द्रिय ऐसा कहनेसे स्पर्शन इन्द्रियजन्य ज्ञानसे और सूक्ष्म नामकर्मके उदयसे जो सूक्ष्मपने को प्राप्त है अर्थान् जो ज्ञानसे भी सूक्ष्म है और पर्यायसे

पत्तो तस्स एत्थ गगहण कदं। ण च सुहुमणिगोदं मोत्तूण अण्णत्थ दोण्हं पि सुहुमतं संभवित, अणुवलंभादो। तम्हा सुहुमणिगोदएइंदियस्से ति सिद्धं। तो क्विह अपज्जत-गगहणं कायव्वं ? ण, तस्स वि सुहुमणिहे सादो चेव सिद्धीदो। जिद सव्वविसुद्ध-सुहुमेइंदियअपज्जत्तयस्स जहण्णाणुभागवंधो जहण्णाणुभागो ति घेष्पिद तो अपज्जत्त-विसोहीदो पज्जतिसोही अणंतगुणा ति सुहुमेइंदियपज्जत्तजहण्णाणुभागवंधो किण्ण घेष्पिद ? ण, घादिदृण सेसअणुभागसंतकम्मस्स एत्थ गगहणादो। ण च एत्थ पच्चग्य-बंधस्स पहाणतं, जहण्णाणुभागसंतकम्म पेविखदृण तस्स अणंतगुणहीणत्तादो। सुहुमेइंदियपज्जत्तयस्स अपज्जतिसोहीदो अणंतगुणिवसोहिणा हदावसेसाणुभागो किण्ण घेष्पिद ? ण, जादिविसेसेण सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स थोविवसोहीए घादिदावसिद्धाणुभागस्स सुहुमपज्जत्तजहण्णाणुभागं पेविखदृण अणंतगुणहीणत्तादो। जादिविसेसेण थोविस्ताहीए वि अणुभागघादेण थोवमणुभागसंतकम्म कीरिद त्ति कुदो णव्वदे ? दंसण-मोहक्खवणाए मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्म कीरिद त्ति कुदो णव्वदे ? दंसण-मोहक्खवणाए मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मभणिदृण सुहुमणिगोदेसु परूविय-

भी सूक्ष्म है उसका ब्रह्ण किया है। सूक्ष्म निर्गादिया को छोड़कर ब्रन्यत्र दोनों प्रकार की सूक्ष्मता संभव नहीं है, क्योंकि वह ब्रान्य जीवमे नहीं पाई जाती। ब्रातः सूक्ष्मका ब्रार्थ सूक्ष्म निर्गादिया एकेन्द्रिय जीव है ऐसा सिद्ध हुद्या।

वांका-तो फिर यहां अपर्याप्त पदका प्रहण करना चाहिये?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म पदके निर्देशसे ही उसके प्रहणकी सिद्धि हो जाती है। शंका—यदि सर्वविशुद्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके जो जघन्य अनुभागवन्य होता है उसे जघन्य अनुभाग स्वीकार करते हो तो अपर्याप्त जीवकी विशुद्धिसे पर्याप्त जीवकी विशुद्धि अनन्तगुणी होती है, अतः सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके जो जघन्य अनुभागवन्य होता है उसे क्यों नहीं स्वीकार करते ?

समाधान – नहीं, क्योंकि घाते गयं अनुभागमें बचे हुए शेष अनुभागसःकर्मका यहाँ प्रहण किया है। यहाँ पर नवीन बंधकी प्रधानता नहीं है, क्योंकि जघन्य अनुभागसत्कर्मको देखते हुए वह अनन्तगुणा हीन है।

भंका –सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके ऋपर्याप्त जीवकी विशुद्धिसे ऋनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा घात करनेसे बचा हुआ जो शेष ऋनुभाग है उसका क्यो नहीं ग्रहण किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जातिविशेषके कारण् सूक्ष्म निर्गादिया ऋपर्याप्त जीवके थोड़ी विशुद्धिके होने पर भी घात करनेसे जो ऋनुभाग शेष रहता है वह सूक्ष्म पर्याप्तके जवन्य ऋनुभागको देखने हुए ऋनन्तगुणा हीन है, ऋतः यहाँ सूक्ष्म पर्याप्तके ऋनुभागका ब्रह्ण नहीं किया।

शंका—थोड़ी विशुद्धिके होते हुए भी जातिविशेषके कारण ऋपर्याप्त जीव ऋनुभाग वातके द्वारा ऋपना ऋनुभागसन्कर्म थोड़ा कर लेता है यह कैसे जाना ?

समाधान - सूत्रमे मिध्यात्वका जघन्य श्रनुभागसत्कर्म दर्शनमोहकी चपणामे न बतला-कर जो सूक्ष्मिनगोदियाके बतलाया है उससे जाना जाता है कि श्रपर्याप्त निगोदिया जीव श्रनुभाग-घातके द्वारा थोड़ा श्रनुभाग कर लेता है। म्रुतादो णव्वदे । संपिह एदेण जहण्णाणुभागसंतकम्मेण सह उप्पज्जमाणजीविसेस-परूवणद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

इदसमुप्पत्तिय क्रम्मेण अण्णदरो एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइं-दिओ वा चउरिंदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा सुहुमो वा बादरो वा पज्जतो वा अपज्जतो वा जहण्णागुभागसंतकिम्मओ होदि।

इ २४०. हते घातितं समुत्पत्तिर्यस्य तद्धतसमुत्पत्तिकं कर्म । अणुभागसंत-कम्मे घादिदे जमुन्वरिदं जहण्णाणुभागसंतकम्मं तस्स हदसमुप्पत्तियकम्ममिदि सण्णा त्ति भणिदं होदि । तेण हदसमुप्पत्तियकम्मेण सह अण्णदरो एइंदिओ वा अण्णदरो वेइंदिओ वा अण्णदरो तेइंदिओ वा अण्णदरो चडिरंदिओ वा अण्णदरो असण्णी वा अण्णदरो सण्णी वा अण्णदरो सुहुमो वा अण्णदरो बादरो वा अण्णदरो पज्जतो वा अण्णदरो अपज्जत्तो वा होदि । एवं जादे सो जीवो जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ जायदे। एदं सन्वे वि जहण्णाणुभागसंतकम्मस्स सामिणो होति त्ति भणिदं होदि । देवा णेरइया

विशेषार्थ-सूक्ष्म निर्गादिया अपर्याप्त जीव जब भिष्यात्वके अनुभागसत्कर्मका घात कर देता है तो उसके भिष्यात्वका जघन्य अनुभाग पाया जाता है। यद्यपि उस जीवके जो अनुभागवन्ध होता है वह सत्ताम स्थित अनुभागसे अनन्तगुणा हीन होता है किन्तु इस अनुभागविभक्तिम सत्ताम स्थित अनुभाग की ही विवक्ता है, अतः उमका प्रहण् नहीं किया है। तथा यद्यपि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके अपर्याप्त जीवसे विशेष विशुद्धि होती है तथापि थोड़ी विशुद्धिके होते हुए भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव जातिविशेषके कारण पर्याप्त जीवकी अपेत्ता अनुभागका अधिक घात कर डालता है और यह बात इससे सिद्ध है कि मिष्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म दर्शनमाहके त्त्वकके न वतलाकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके बतलाया है।

त्रव इस जघन्य त्रजुभागसन्कर्मके साथ उत्पन्न होनेवाले जीवके विषयमे विशेष कथन करनेकं लिये त्रागेका सूत्र कहते हैं—

साथ ही जब वह हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ अन्यतर एकेन्द्रिय, दीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी, अथवा संज्ञी, सूक्ष्म, अथवा बादर, पर्याप्त अथवा अपर्याप्त जीव होता है तब वह भी जघन्य अनुभागसत्कर्मवाला होता है।

इत्थिं, ह्न अर्थान् घात किये जाने पर जिसकी उत्पत्ति होती है उस कर्मको हतसमुत्पत्तिककर्म कहते हैं। श्राशय यह है कि अनुभागसन्कर्मका घात होने पर जो जघन्य अनुभागसन्कर्म अविशिष्ट रहता है उसकी 'हतसमुत्पितिक कर्म' संज्ञा है। उस हतसमुत्पत्तिककर्मक साथ
कोई भी एकेन्द्रिय. अथवा कोई भी दो इन्द्रिय, अथवा कोई भी तेइन्द्रिय, अथवा कोई भी चौइन्द्री,
अथवा कोई भी असंज्ञी, अथवा कोई भी संज्ञी, कोई भी सुक्ष्म, अथवा कोई भी बादर, कोई भी
पर्याप्त, अथवा कोई भी अपर्याप्त होता है। ऐसा होने पर वह जीव जघन्य अनुभागसन्कर्मवाला
होता है। सारांश यह है कि जघन्य अनुभागसन्कर्मवाल। सूक्ष्म निगोदिया जीव मरकर उक्त
एकेन्द्रियादिकमें उत्पन्न हो सकता है, अतः ये सब जीव जघन्य अनुभागसन्कर्मके स्वामी होते

रै. ता॰प्रती तस्ममुखिनकं भा॰प्रती तदुतसमुखिनकं इति पाटः ।

असंखेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुस्सा च भिच्छत्तजहण्णाणुभागस्स ण होति सामिणो, तत्थ सुहुमेइंदियाणमुप्पत्तीए अभावादो।

ॐ एवमट्ठकसायाणं ।

ः २४१. जहा मिच्छत्त जहण्णाणुभागसंतकम्मस्स परूवणा कदा तहा अहकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मस्स वि परूवणा कायव्वा, अविसेसादो । अहकसायाणं खवणाए जहण्णसामित्तं किण्ण दिज्जदि ? ण, ग्रांतरे अकदे जाणि कम्माणि विणद्वाणि तेसि-मणुभागसंतकम्मं पेविखद्ण सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मस्स जादिविसेसेण अणंत-गुणहीणन्वत्तंभादो ।

- **अ सम्मत्तस्य जहरण्यमणुभागसंतकममं कस्स ?**
- ६ २४२. सुगमं।
- 🛞 चरिमसमयश्रवाणदंसणमोहणीयस्स ।
- १२४३. दंसणमोहक्खवणाए अधापमत्तकरण-अपुन्वकरणाणि करिय अणियद्दि-है। देव, नारकी और असख्यातवर्ष की आयुवाले निर्यश्व और मनुष्य मिध्यात्वके जघन्य अनुभागके स्वामी नहीं होते, क्योंकि उनमें सूक्ष्म एकेन्द्रियोकी उत्पत्ति नहीं होती।

शंका—श्राठ कपायोंकी चपणावस्थामें उनके जघन्य श्रनुमागमत्कर्मका म्वामित्व क्यो नहीं बतलाया ? श्रथान् श्राठ कपायोका चपण करनेवाले जीव को जघन्य श्रनुमागसत्कर्मका स्वामी क्यो नहीं वतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्तरकरण किय विना जो कमें नष्ट होते हैं उनके अनुभाग सत्कमेको देखते हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवका जघन्य अनुभागसत्कर्म जातिविशेषके कारण अनन्तगुणा हीन पाया जाता है।

विशेषार्थ-- उदय प्राप्त प्रकृतिके नीचे श्रीर उपरके निषेकोको छोड़कर श्रन्तर्मुहूर्न प्रमाण बीचकं निषेकों को श्रपने स्थानसे उठाकर नीचे श्रीर उपरके निषेकों में चेपण करनेके द्वारा उनके श्रभाव कर देने को श्रन्तरकरण कहते हैं। इस श्रन्तरकरण कालमे हजारो श्रनुभागकाण्डक यात होते हैं, श्रतः यह श्रन्तरकरण हुए बिना ही जिन प्रकृतियोका विनाश होता है उनका चपणा-कालमें जितना श्रनुभाग पाया जाता है उससे सूक्ष्म एकेन्द्रियमे श्रनुभागका घात कर चुकने पर कम श्रनुभाग पाया जाता है, श्रतः श्राठ कपायोके जघन्य श्रनुभागसन्त्रमंका स्वाभी सूक्ष्म एकेन्द्रियको वतलाया है।

- * सम्यक्तका जधन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?
- § २४२. यह सूत्र सुगम है।
- * अन्तिम समयवर्ती त्राचीणदर्शनमोही जीवके सम्यवत्वका जघन्य अनुभाग सत्कर्म होता है।
 - § २४३. दर्शनमोहके चयके लिये श्राध:प्रवृत्तकरण श्रीर श्रापूर्वकरणको करके श्रानिवृत्ति-

श्रद्धाए संखेजनेषु भागेषु गदेषु मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तम्म संछुभिय पुणो सम्मामिच्छत्तं पि श्रंतोष्ठहुत्तेण सम्मतिम्म संछुहिय अद्वतिस्सयं द्विदिसंतकम्मं काऊण श्रणु-समयओवदृणाए सम्मताणुभागसंतकम्मं ताव घादेदि जाव चिरमसमयश्रक्त्वीणदंसण-मोहणीओ ति। तस्स उद्यमागद्रएगगुणसेदिगांचुच्छाए श्रणुभागो जहण्णश्रो, सञ्चक्रस्स-घादं पाविय द्विदत्तादो।

- 🕸 सम्मामिच्छुत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?
- 🕫 २४४. सुगमं ।
- 🕸 त्रवणिज्ञमाणए त्रपचित्रमे त्रणुभागकंडए वट्टमाणस्स ।
- ः २४५. अवणिज्ञयाणए अपच्छिमे हिदिकंडए त्ति किण्ण वृत्तं १ ण, उच्वे-ल्लणचरिमहिदिखंडयचरिमफालीए वि वद्टमाणस्स जहण्णाणुभागत्तपसंगादो । ण च

करण्के कालमे संख्यात भाग बीतने पर मिथ्यात्वका सम्यग्मिथ्यात्वमे सेपण् कर पुनः अन्त-मृहूर्तमे सम्यग्मिथ्यात्वका भी सम्यक्त्वमे सेपण् कर, सम्यक्त्व प्रकृतिके म्थितिसकर्मको आठ वर्ष प्रमाण करके, प्रतिसमय अपवर्तनाके द्वारा सम्यक्त्वके अनुभागसन्कर्मको तब तक घातता है जब तक उस असीण्दर्शनमोहीके दर्शनमोहके स्पण्का अन्तिम समय आता है उस चरम समयवर्ती असीण्दर्शनमोहीके उद्यको प्राप्त एक गुण्श्रीण्गोपुच्छाका अनुभाग जयभ्य होता है, क्योंकि सम्यक्त्वके अनुभगमन्कर्मका सर्वोत्कृष्ट घात होते होते वह अनुभाग अवशिष्ट रहता है।

विशेषार्थ--अनिश्चिकरणके कालमसे संख्यात माग बीत जाने पर जब दर्शनमोहकी क्षपण का प्रस्था के जीव मिण्यात्वका सम्यग्मिण्यात्वमें और सम्यग्मिण्यात्वका सम्यक्त्वप्रकृति में सक्रमण करक सम्यक्त्व प्रशृतिकी स्थितिका घटाकर आठ वर्ष प्रमाण कर लेता है तो सम्यक्त्व द्विस्थानिक अनुभागको एक स्थानिकह्मप करनेके लिये प्रति समय अपवर्तन्यात करता है। अर्थात पहले तो अन्तर्भुहूर्त कालके द्वारा अनुभागका काण्डकघात करता था अब उसका उपसंहार करके सम्यक्त्वके अनुभागको प्रति समय अनन्तर्भुणा हीन अन्तर्भुणा हीन करता है। जिसका यह आश्य हुआ कि पिछले अनन्तर्वता समयमे जो अनुभागसत्कर्म था वर्तमान समयमे उदयावली बाह्य अनुभागसत्कर्मको उससे अनन्तर्भुणा हीन करता है। उदयाविल बाह्य अनुभागसक्त्रमसे उदयावली के भीतर प्रविष्ट अनुभागसत्कर्मको अनन्तर्भुणा हीन करता है। ऐसा करते हुए जिस अन्तिम समयके परचात ही जीव स्थायकसम्यग्हिष्ट हा जाता है उस समयमे सम्यक्त्व प्रकृतिक जो निषक उदयम आते है उनमें सबसे कम अनुभाग होता है. क्योंकि वह अनुभाग सबसे अधिक घाता जाकर अवशिष्ट ग्रहता है, अतः सम्यक्त्व प्रकृतिके जघन्य अनुभागका स्वामी चरम समयवर्गी असीणदर्शनमोही जीव होता है।

* सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? ६२४४. यह सूत्र सुगम है।

अपनीयमान अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान जीवके सम्याग्मिध्यात्वका
 जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है ।

६ २४४. शंका—'अपनीयमान अन्तिम स्थितकाण्डकमे' ऐसा क्यो नहीं कहा ? समाधान—नहीं, क्योंकि ऐसा कहने पर इंद्रेलनाको प्राप्त हुए अन्तिम स्थितिकाण्डक की एवं, अणुभागखंडयघादाभावेण तत्थ उक्कस्साणुभागसंतकम्मियम्मि जहण्णत्तविरोहादो । तम्हा अवणिज्ञमाणए अपच्छिमे अणुभागखंडए वट्टमाणयस्से ति सुहासियं।

- 🕸 त्रणंताणुवंधीणं जहरण्यमणुभागसंतकम्मं कस्स ?
- ६ २४६. सुगमं ।
- 🕸 पढमसमयसंजुत्तस्स ।

अनितम फालीमे भी वर्तमान जीवके जघन्य अनुभागका प्रसंग आता है। किन्तु ऐसा है नहीं, क्यािक अनुभागकाण्डकका घात न होतेसे वहां उन्कृष्ट अनुभागसत्कर्म पाया जाता है, अतः वह जघन्य नहीं हो सकता। इसिलिये अपनीयमान अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान जीवके यह सूत्रवचन ठीक है।

विशोपार्थ—स्थितिको घटानेके लिये स्थिनिका काण्डकघात किया जाता है और अनुभागको घटानेके लिये अनुभागका काण्डकघात किया जाता है। काण्डकघातका विधान इस प्रकार है— कल्पना काजिये कि उद्यस्त्ररूप किसी कर्म की स्थित ४८ समय की है और चूं कि एक समयम एक निपेकका उद्य होता है, अतः उसके ४८ ही निपेक हैं। अब उसमेसे = समयकी स्थिति घटानी है तो ऊपरके ८ निपेकोंके परमागुओंको लेकर राप ४० निपेकोंमेसे आठ निपेकोंके पासके दो निपेकोंको छोड़कर बाकींके ३८ निपेकोंमे मिलाना चाहिये। कुछ परमागु पहले समयमे मिलाये इस तरह अन्तर्मुहूर्त काल तक ऊपरके आठ निपेकोंके परमागुओंको नीचंके निपेकोंमें मिलाते भिलाते उनका अभाव कर देनेसे प्रकृत कर्म की स्थिति ४८ समयसे घटकर ४० समयकी रह जाती है। यह एक स्थितिकाण्डक घात हुआ। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये। जैसे स्थितिकाण्डकके द्वारा स्थितिका घात किया जाता है वैसे ही उपरके अधिक अनुभागवाले स्पर्धकोंका नीचंके कम अनुभागवाले स्पर्धकोंमें चेपण करके अनुभागवाण्डकके द्वारा अनुभागवाल स्पर्धकोंका नीचंके कम अनुभागवाले स्पर्धकोंमें चेपण करके अनुभागवाण्डकके द्वारा अनुभागवा घात किया जाता है। तथा प्रथम समयमे जितने द्रव्यको अन्य निपेकोंमे मिलाया जाता है उसे प्रथम फाली कहते हैं। इसी प्रकार अन्तिम समयमे जितने द्रव्यको अन्य निपेकोंमे मिलाया जाता है उसे दितीय फाली कहते हैं। इसी प्रकार अन्तिम समयमे जितने द्रव्यको अन्य निपेकोंमे मिलाया जाता है उसे वित्रय फाली कहते हैं।

मृलमें बतलाया है कि जब मिश्र प्रकृतिके अन्तिम अनुभागकाण्डकका अपनयन किया जाना है तो उस समयमे उसका जघन्य अनुभाग होता है. इस पर यह शंका की गई कि जब अन्तिम स्थितिकाण्डकका घात किया जाता है तब मिश्र प्रकृतिका जघन्य अनुभाग क्यो नहीं होता ? तो इसका यह समाधान किया गया कि यदि ऐसा माना जायगा तो मिश्र प्रकृति की उद्वेलना करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके भी जब वह मिश्र प्रकृतिके अन्तिम स्थितकाण्डक की अन्तिम फालीमें वर्तमान रहता है तब मिश्र प्रकृतिका जघन्य अनुभाग हो जायगा, किन्तु ऐसा नहीं है, उसके स्थिति जक्रर घट जाती है किन्तु अनुभाग नहीं घटता। अतः दर्शनमोहका चपण करनेवाला जीव जब मिश्रप्रकृतिके अन्तिम अपनीयमान अनुभागकाण्डकमें वर्तमान रहता है तब उसके मिश्र प्रकृतिका जघन्य अनुभागसकर्म होता है।

अनन्तानुबन्धीका जघन्य त्र्यनुभागसत्कर्म किसके होता है ?
 ५२४६. यह सूत्र सुगम है।

प्रथम समयवर्ती संयुक्त जीवके होता है।

२४७. सहुमेइंदिएस जहएएसामितं किण्ण दिएएं ? ण, पढमसमयसंजुत्तस्स पचग्गाणुभागवंधं पेक्खिद्ण सहुमणिगोद जहएए।एपुभागसंतकम्मस्स अणंतगुणत्तादो । पढमसमयसंजुतस्स पचग्गाणुभागम्मि सेसकसायाणुभागफद्द संकंतएस अ्रणंताणु-वंधीणमणुभागो सहुमेइंदियजहएए।एपुभागसंतकम्मादो अणंतगुणो किएए। होदि ? ण, 'वंधे संकमिद' ति वज्भमाणाणुभागसरूवेण संकामिज्जमाणाणुभागस्स पिरणामिज्ज-माणतादो । संजुत्तविदियसमए जहण्णसामित्तं किण्ण दिज्जिदि ? ण, पढमसमए बद्धाणु-भागादो विदियसमए अणंतगुणसंकिलोसण बज्भमाणाणुभागस्स अणंतगुणतादो ।

६२४७. **शंका-स्**रम एकेन्द्रियोमे जघन्य अनुभागका स्वामीपना क्यो नहीं बतलाया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि प्रथम समयमे अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त हुए जीवके जो नबीन अनुभागबन्ध होता है उसे देखते हुए सूक्ष्म निगोदिया जीवका जघन्य अनुभागमन्कर्म अनन्त गुणा है।

शंका--प्रथम समयमे अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त हुए जीवकं नवीन अनुभागमे शेष कपायो के अनुभाग म्पर्धकोका संक्रमण होने पर अनन्तानुबन्धीका अनुभाग सूक्ष्म एकेन्द्रिय के जघन्य अनुभागसत्कर्मसे अनन्तगुणा क्यों नहीं होता ?

समाधान--नहीं, क्योंकि, बन्ध अवस्थाम ही संक्रमण होता है' इस नियमके अनुसार जिस अनुभागका संक्रमण होता है वह बध्यमान अनुभागक्षपसे ही परिण्मा दिया जाता है, इसिलिए उस समय अनन्तानुबन्धीका अनुभाग सूक्ष्म एकेन्द्रियके जघन्य अनुभागसत्कर्मसे अनन्तगुणा नहीं हो सकता।

शंका-अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होनेके दूसरे समयमे अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुनाग का स्वामीयना क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि प्रथम समयमे वॅधनेवाले अनुभागसे दूसरे समयमे अनन्तगुरो संक्लेशसे वॅथनेवाला अनुभाग अनन्तगुरा। होता है।

विश्रोपार्थ - अनन्तानुबन्धी कपायका विसंयोजन करने के पश्चान् जो जीव मिण्यात्वकों प्राप्त होता है उसके यद्यपि पहले समयसे ही अनन्तानुबन्धीका बन्ध होने लगता है तथा अन्य कपायों के सन्त्रमें स्थित निषंक भी अनन्तानुबन्धीक्ष संक्रमित होने लगते हैं. फिर भी उसके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका जो अनुभागसत्कर्म होता है वह सबसे जघन्य होता है। मूलमे एकेन्द्रिय को लेकर जो शंका समाधान किया गया है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि यह अनुभागबन्धका प्रकरण नहीं है किन्तु अनुभागकी सत्त्राका प्रकरण है, फिरभी यहाँ जघन्य अनुभागस्त्रकर्मके स्वामित्वको बतलाते हुये संयुक्त जीवके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका जो नवीन अनुभागवन्य होता है उसीकी मुख्यता है जो अन्य कपायोंके परमागु अनन्तानुबन्धीक्ष परिण्यम करते हैं उनकी मुख्यता नहीं ली गई है. क्योंकि जब यह शंका की गई कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवको अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुभागस्कर्मका स्वामी क्यों नहीं कहा तो उसका समाधान किया गया कि संयुक्त जीवके प्रथम समयमें जो नवीन अनुभागबन्ध होता है उसको देखते हुए सूक्ष्म निगोदियाका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। तब पुनः यह शंका की गई कि संयुक्त जीवके जो नवीन अनुभागबन्ध पहले समयमे होता है उसमें शेष कपायोंके अनुभागस्पर्धक भी तो संक्रमित होते हैं, अतः नवीन अनुभाग और संक्रमित अनुभाग मिलकर एकेन्द्रियके अनुभागसे अधिक

- 😵 कोधसंजलणस्स जहरणयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?
- § २४=. सुगमं।
- अवगस्स चित्रमसमयञ्जसंकामयस्स ।

\$ २४६. को घोदण खवगसेढिं चिढय अस्सकण्णकरणद्धाए अपुञ्चफद्दयाणि करिय पुणो किट्टीकरणद्धाए पुच्चापुञ्चप्फद्दयाणि वारहसंगहिकट्टीओ काऊण पच्छा को घपढम--विद्य-तिद्यिकट्टीओ वेदयमाणो समयं पि द्यंतोमुहुत्तकालं बंध-संताणु-भागाणमणंतगुणहाणि कादृण तदो तिद्यिकिट्टिवेदयचिरमसमए जं बद्धमणुभागसंतकम्मं तं समयूणदो आविल्यमेत्तद्धाणमुविर गंतूण चिरमसमयपबद्धस्स चिरमाणुभागफालि धरेदूण द्विदखवगो चिरमसमयअसकामओ णाम तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं। परोदएण खवगसेढिं चिडदस्स जहण्णमणुभागसंतकम्मं ण होदि, तन्ध चिरमाणुभाग-फालीए सव्वचादिफद्दयभावेण किट्टीहितो अणंतगुणाए जहण्णत्तिरोहादो। सुत्तिम्म सोदएण खवगसेढिं चिडदस्से ति [किं] ण वृत्तमिदि णासंकणिज्ञं, चिरमसमय-

हो जायेंगे तो उत्तर दिया गया कि शेष कपायोका जो अनुभाग अन-तानुबन्धीस्य सक्रमण करता है उसका परिण्मन वॅथनेवाल अनुभागके अनुस्य ही हो जाता है अथान् सक्रान्त अनुभाग उतना ही हो जाता है जितना बद्ध अनुभाग होता है. अतः अनुभाग बढ़ नहीं पाता । किन्तु बात ऐसी नहीं है, क्योंकि मत्ताके प्रकरणमें बन्धकी मुख्यता नहीं हा सकर्ता । यथार्थमें तो जो अन्य कषायोके परमाणु अनन्तानुबन्धीस्य संक्रान्त होते हैं उनमे जो अनुभाग होता है उसीकी मुख्यता है, किन्तु उसका अनुभाग उतना ही रहता है जितना उस समयमें बॅथनेवाल परमाणुओं होता है, अतः अनुभागवन्थको लक्ष्यमें रखकर शंका-समाधान करना पड़ा है।

* क्रोधसंज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्ष किसके होता है ?

् २४८ यह सूत्र सुगम है।

* अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक चपकके होता है।

§ २४९, क्रोधके उदयसे चपकश्रीण चढ़कर, अश्वकर्णकरणके कालमे अपूर्वस्पर्धकोको करके पुनः कृष्टिकरणके कालमे पूर्वस्पर्धक और अपूर्वस्पर्धकोको वारह संग्रह कृष्टियाँ करके परचान् क्रोध की पहली, दूसरी और तीसरी कृष्टियोका वदन करता हुआ जीव प्रति समय अन्तर्मुहूर्न काल तक अनुभागवन्ध और अनुभागसत्त्व की अनन्तगुर्णी हानि करने के परचान् तीसरी कृष्टिका वदन करने के अन्तिम समयमे जो बाँधा हुआ अनुभागक्त है उससे एक समयकम दो आवलीमात्र काल जाकर अन्तिम समयमबद्ध की अन्तिम अनुभागफाली को प्रह्ण कर स्थित है उस चपक को अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक कहते हैं। उसके क्रोध संज्वलनका जघन्य अनुभागसन्कर्म होता है। जो क्रांधके सिवा किसी अन्य कपायके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके क्रोध संज्वलनका जघन्य अनुभागसन्कर्म होता है। जो क्रांधके सिवा किसी अन्य कपायके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके क्रांध संज्वलनका जघन्य अनुभागसन्कर्म होता, क्योंकि उसकी अन्तिम अनुभागफालीम सर्वचातिस्पर्धक होनेसे वह कृष्टियों की अपे द्या अनन्तगुणी होती है, अत: उसके जघन्य होनेमे विरोध आता है।

हांका - चूर्णिसू रमे 'स्वादयसे चपकश्रेणि पर चढ़नेवालेके' ऐसा क्यों नहीं कहा ? समाधान-ऐसी त्राशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि 'चरम समयवर्ती त्रसकामकके' इस असंकामयस्से ित सुत्तादो सोदएण जहराएां होदि ित अवगमुष्पत्तीदो । तं जहा— सो चरिमसमओ असंकामओ णाम जो सोदएण खवगसेढिं चिडदो, तत्तो उविर संका- म्याणमभावादो । परोदएण चिडदो पुण ण चिरमसमयसंकामओ, तत्तो उविरि पि संकामयाणमुवलंभादो । सोदय-परोदयकयभेदिववक्खाए विणा संकामयसामण्णमेव पत्थ विविक्खियमिदि कत्तो णव्वदे १ अण्णहा जहराएाताणुववैत्तीदो । दुचरिमसमय-संकामियम्मि जहराएासामित्तं किण्ण दिज्जिदि १ ण, चिरमसमयवंधाणुभागादो दुचरिम-समयवंधाणुभागस्स अणंतगुणस्स तत्थुवलभादो । समयं पित्त अणंतरहेदिमहेदिमअणु-भागवंधाणमणंतगुणत्तं कुदो णव्वदे १ वट्टमाणवंधादो अणतगुणवट्टमाणुद्यं पेविखद्ण अणंतरहेदिमवंधस्स अणंतगुणत्तादो । उद्याणमणंतगुणहीणत्तं कत्तो णव्वदे १ समयं पित्त विसोहीए अणंतगुणत्तराणुववत्तीदो ।

सूत्रसे ही यह ज्ञात हो जाता है कि म्बंदियसे श्रेणि चढ़नेत्रालेके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। सुजासा इस प्रकार है — जो स्वादयसे चप्तक्रिण पर चढ़ता है वह चरमसमयवर्ती असंक्रामक कहलाता है, क्योंकि उससे आगे संक्रमण करनेत्रालोका आभाव है। किन्तु जो परोदयसे श्रेणि पर चढ़ा है वह चरम समयवर्ती संक्रामक नहीं है, क्योंकि उसके ऊपर भी सक्रमणः करनेवाले पाये जाते हैं।

शंका-स्वोदय और परोदयकृत भेदकी विवक्षाके विना यहाँ संक्रामक सामान्य की ही

विवत्ता है यह कैसे जाना ?

समाधान-यदि ऐसा न होता तो उसके जघन्य श्रनुभागसकर्म नहीं वन सकता था। शंका-चरम समयसे पूर्व समयवर्ती संक्रामकको जघन्य श्रनुभागका स्वामी क्यों नहीं कहा ?

समाधान-नर्दा, क्योंकि चरम समयमे होने तले श्रनुभागबन्धसे द्विचरम समयमें होने

वाला अनुभागबन्ध वहाँ अनन्तगुराग पाया जाता है।

शंका—चरम समयसे लगातार पूर्व पूर्व प्रतिसमय होनेवाला अनुभागबन्ध अनन्तगुणा होता है यह कैसे जाना ?

समाधान—वर्तमान बन्धसे वर्तमान उदयको अनन्तगुराा देखकर अनन्तर पूर्व समय-वर्ती बन्ध अनन्तगुरा। होता है, यह जाना।

शंका-प्रति समय उदय अनन्तगुणा हीन होता है यह कैसे जाना ?

समाधान-यदि उदय अनन्तगुणा हीन न होता तो प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि नहीं होती. इससे जाना कि प्रति समय उदय अनन्तगुणा हीन होता है।

विशोपार्थ—जो जीव क्रांध कपायके उद्यसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ा वह अनि तिकरण गुण-स्थानमें नोकपायोका चपण करके और अपगत उदी हाकर संज्वलन क्रांधका चपण करने के लिये सबसे प्रथम अश्वकर्ण नामका करण करना है। अर्थान् जैसे अश्व अर्थान् घोड़ेका कर्ण-कान मूलसे लेकर क्रमसे घटता हुआ देखा जाता है, उसी प्रकार यह करण भी क्रांध संज्वलनसे लेकर लोभसंज्वलन पर्यन्त अनुभागम्पर्धकों को क्रमसे अनन्तरगुणा हीन करनेम कारण है, इसलिये उसे अश्वकर्णकरण कहते हैं। इस करण के प्रथम समयसे ही अपूर्व स्तर्धकों का होना आरम्भ हो जाता है। जो अनुभागम्पर्धक पहले कभी प्राप्त नरी हुए, चपकश्रेणिमें अश्वकर्णकरण कालके द्वारा

ही जिनकी प्राप्ति होती है तथा पूर्व स्पर्धकोसे जिनमे अनन्तगुरणा हीन अनुभाग पाया जाता है उन्हें श्रपूर्व स्पर्धक कहते हैं। श्रश्नकर्णकरण कालके समाप्त होनेके श्रनन्तर समयसे ही कृष्टि-कर्गा काल प्रारम्भ हो जाता है। कृष्टिकरणके प्रथम समयसे ही क्रोधकपायके पूर्व स्पर्धक श्रीर श्रपूर्व स्पर्धकोंमेंसे असंख्यातवे भाग प्रदेशों का अपकर्षण करके क्रोधकी कृष्टियां करता है। वे कृष्टियां ऋपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणासे अनन्तवं भाग हीन होती हैं। तथा एक एक कषायकी तीन तीन कृष्टियां होनेसे चारों कपायों की वारह संग्रहकृष्टियां होती हैं। जिस समय यह जीव कृष्टियोंको करता है उस समय पूर्वस्पर्धक और अपूर्वस्पर्धकोका तो वेदन करता है किन्तु कृष्टियोंका वेदन नहीं करता है। कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयमे वेदामान उदयस्थिति को ब्रोडकर उससे ऊपर क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थिति श्रावलिप्रमाण शेप रहने पर कृष्टिकरणकाल क्रमसे समाप्त हो जाता है। पीछे कृष्टियोंका वेदनकाल प्रारम्भ होता है। कृष्टिवेदनके प्रथम समयम श्रनन्तगुर्गी विद्युद्धिसे बढ़ता हुआ कृष्टिवेदक जीव बारहों संप्रह कृष्टियों में से उत्कृष्ट कृष्टिसे लेकर एक एक संग्रह कृष्टिके असंख्यातवें भाग अनन्त कृष्टियोंका अपवर्तन घातके द्वारा एक समय में नष्ट कर देता है. अर्थान उत्पर की कृष्टियों का अपवर्तन घात करके उन्हें नीचे की कृष्टिरूपसे परिगात कर देता है। श्रीर इस प्रकार पहले की गई कृष्टियों के नीचे श्रीर उनके अन्तरालमे अन्य अपूर्व कृष्टियां करता है। ये कृष्टियां मान, माया और लोभकी प्रथम तीन संप्रहक्रष्टियोंमे तो वंधनेवाल और संक्रमित होकर आनेवाल प्रदेशोसे बनती हैं और क्रोध की प्रथम संप्रहकुष्टिमें बध्यमान प्रदेशोसे ही बनती हैं, क्योंकि उसमे सक्रमित होकर त्रानेवाले प्रदेशों का ऋभाव है। तथा शेप संबहकृष्टियोंम संक्रमित होकर ऋानेवाल प्रदेशोसे ही बनती है। इस प्रकार कृष्टियोका वेदन करते हुए क्रोधकी प्रथम संप्रहकृष्टिंग दो समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रवद्ध श्रौर उच्छिष्टावली छोड़कर रोप द्रव्य दसरी संब्रहकृष्टिमें संक्रमित हो जाता है। बादको नवकबन्ध तथा उच्छिष्टावलीका द्रव्य भी यथाक्रम दूसरी संग्रहकुष्टिमे संक्रमित हो जाता है। जिस विधिसे क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिका वेदन करता है उसी विधिसे दूसरी श्रीर तीसरी संग्रहकृष्टिका वेदन करता है। तीसरी कृष्टिक वेदनकालके श्रन्तिम समयमें जो अनुभागसन्तर्भ बद्ध होता है, समय कम दा आवली मात्र कालके पश्चात् उसे अन्तिम अनुभाग फालीमें जब डाल देता है तो वह चपक अन्तिम समयवर्ती संक्रामक कह ताता है, क्योंकि उसके पश्चात कोधका अन्त हो जाता है, उसके कोध संज्वलनका जघन्य अनभागसन्कर्म होता है। यहाँ जो कोध कपायके उदयसे श्रेणि पर चढ़ता है उसीका प्रहण किया है, जो अन्य कपायके उदयसे ज्ञपकश्रेणिपर चढ़ता है उसका प्रहण नहीं किया है, क्योंकि अन्य कपायके उदयसे श्रेणि पर चढनेवाला जीव उसी स्थानमे चरिम समयवर्ता संक्रामक नहीं होता जिस स्थानमे स्वोदयसे चढनेवाला जीव चरिम समयवर्ती संक्रामक होता है, क्योंकि क्रोधकपायके उदयसे चढनेवाला जीव जिस स्थानमे श्रश्वकर्णकरण करता है मानकपायके उदयसे चढनेवाला जीव उस स्थानमें क्रोधका चपए करता है। क्रोधके उदयसे श्रीए पर चढ़नेवालका जो दृष्टिकरएकाल है मानकषाय के उदयसे चढ़नेवालेका वह अश्वकर्णकरणकाल है। क्रांधसे चढ़नेवालेका जो क्रोधका चपणकाल है, मानके उदयसे चढ़नेवालेका वह कृष्टिकरण काल है। इसी प्रकार क्रोधसे चढ़नेवाला जहाँ त्रश्वकर्णकरण् करता है मायाके उदयसे चढ़नेवाला वहाँ क्रोधका क्षपण् करता है। क्रोध**से** चढ़ने वाला जहाँ कृष्टियां करता है मायासे चढ़नेवाला वहाँ मानका चप्पा करता है। ऋत: ऋन्य कषाय के उदयसे श्रेगिपर चढ़नेवाला चरिमसमयवर्ती संक्रामक त्रागेत्रागे होता है। तथा अन्य कषायके उदयसे श्रेणिपर चढ़नेवाले के क्रोधका स्पर्धकरूपसे ही विनाश होता है कृष्टिरूपसे विनाश नहीं होता, अतः अन्य कपायके उद्यसे श्रेणिपर चढ़नेवालेके क्रोधका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता।

🟶 एवं माण-मायासंजलणाणं।

२५०. जहा कोहसंजलणस्स चरिमसमयअसंकामयम्मि जहएएासामितं वुत्तं
तहा माण-मायासंजललाणं पि वत्तव्वं । णविर सोदएण हेडिमकसाओदएण च खवगसेढिं चिद्रदस्स जहएए।सामितं वत्तव्वं ।

- **अ लोभसंजलणस्स जहण्णयमगुभागसंतकम्मं कस्स** ?
- 🖇 २५१. सगमं।
- **अ खवगस्स चरिमसमयसकसायिस्स ?**

२५२. कुदो ? बादरिकटीिहंतो अणंतगुणहीणसुहुमिकटीए अणुसमयओवट-णाए अंतोसुहुत्तमेत्तकालमर्णंतगुणहीणाए सेटीए पत्तार्णंतभागघादाए सुहुमसांपराइय-चरिमसमए वट्टमाणाए सुट्ठु थोवत्तादो ।

* इसी प्रकार संज्वलनमान और संज्वलनमायाके जघन्य स्वामित्वका कथन कर लेना चाहिये।

\$ २५०. जैसे संज्वलन क्रोधके जघन्य अनुभागका म्वामी अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक को बतलाया है, वैसे ही संज्वलन मान और संज्वलन मायाका भी कहना चाहिये। इतना विशेष व है कि स्वादयसे और पूर्व की कषायके उदयसे चपकश्रेणि पर चढ़नेवाले जीवके जघन्य स्वामित्व , कहना चाहिये।

विशोषार्थ—जैसं सञ्चलन क्रांधका जघन्य अनुभागसत्कर्म स्वादयसे चपकश्रेणि पर चढ़ने वाले चरिम समयवर्ती संक्रामककं बतलाया है वैसे ही मान और मायाका भी समभना चाहिए। विशेषना केवल इतनी है कि जो म्वादयसे चपकश्रेणि पर चढ़ा है या पूर्वकी क्रोधादि कपायके उदयसे चपकश्रेणि पर चढ़ा है, दोनोंक जघन्य अनुभागसन्कम होता है, क्योंकि क्रोध कपायके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवाला जिस कालमे मान, माया और लोभका चपण करता है, मान, माया और लोभके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवाला भी उसी कालमें मान, माया और लोभका चपण करता है, दोनोंमे कालका अन्तर नहीं पड़ता।

संज्वलन लोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

६ २५१. यह सूत्र सुगम है।

* अन्तिम समयवर्ती सकषाय चपककं होता है।

§ २५२. क्योंकि, एक तो सूक्ष्म कृष्टि बाद्र कृष्टियोसे अनन्तगुणी हीन होती है दूसरे उसमें प्रति समय अपवर्तनचात होता है और इस प्रकार अन्तर्भुहूर्त काल तक अनन्तगुणी हीन गुणिश्रे णिरूपसे उसके अनन्तभाग अनुभागका घात हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समयमे वर्तमान वह सबसे स्तोक है, इसिलये सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समयमे संज्वलन लाभका जघन्य अनुभागसन्दर्भ कहा है।

विशोषार्थ-जैसे अपूर्व स्पर्धकोसे नीचे अनन्तगुणा घटता हुआ अनुभाग लिये क्रोध की प्रथम संप्रहकृष्टि होती है वैसे ही बादर कृष्टिसे नीचे अनन्तगुणा घटता हुआ अनुभाग लिये सूक्ष्मकृष्टिकी रचना होती है। लोभ की द्वितीय कृष्टिका वेदन करते हुए जब उसकी प्रथम

१. ता० प्रतौ पत्तार्यातवादाए इति पाठः ।

अ इत्थिवेदस्स जहरण्यमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

६ २४३. सुगमं।

🕸 खवयस्स चरिमसमयइत्थिवेदयस्स ।

२५४. जो इत्थिवदोदएण खवगसेढिं चढिदो श्रंतरकरणं काऊण श्रंतो-ग्रुहुत्तकालेण पुरिसवेदिम्म संकामिदणवुंसयवेदो सवेददुचरिमसमयिम्म इत्थिवदिविदय-दिदिं घरेद्ण उविरमसमए कयणिस्संतो इत्थिवदम्स उदयगदगोवुच्छावसेसो तस्स जह-ण्णयमणुभागसंतकम्मं । कुदो ? देमघादिएगद्वाणियत्तादो । ण चेदमिसद्धं, श्रंतरकरणे कदे मोद्दणीयस्स एगद्वाणिश्रो बंघो एगद्वाणिश्रो उदश्रो ति सत्तादो । तस्स सिद्धीए दुचरिमसमयसवेदिम्म जहएणसामित्तं किएण दिण्णं? ण, तत्थ सन्वधादिदुद्वाणिय-श्रणुभागस्स जहएणत्विरोहादो ।

🕸 पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ?

स्थितिमें समय अधिक आवली राप रहती है तो लोभ की तीसरी कृष्टिका सब द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिमें संकान्त हो जाता है तथा द्वितीय संप्रह्कृष्टिका उच्छिष्टावली तथा समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्धको छोड़कर रोप द्रव्य सूक्ष्म कृष्टियोंमें सकान्त हो जाता है। तब जीव सूक्ष्म-साम्परायगुणस्थानमें आता है। वहाँ सूक्ष्मवृष्टि सम्बन्धी द्रव्य को अपकर्षण भागहारका भाग देकर एक भागकी गुण्योंणि करता है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। इस तरह करते करते जब सूक्ष्मसाम्परायका जितना काल रोप रहता है उतना ही लोभका स्थितिसच्च रहता है और वह प्रति समय अपवर्तनचातक द्वारा सूक्ष्मकृष्टिल अनुभागका प्राप्त होता है। उसके एक एक निषेक को एक एक समय भोगते भोगते जब वह जीव सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयको प्राप्त होता है तब उमके संज्ञलनलोभका जघन्य अनुभागसन्कम होता है।

* स्तीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

ः २५३. यह सूत्र सुगम है।

🐲 अन्तिम समयवर्ती चपक स्त्रीवेदी जीवके होता है।

\$ २५४. जो स्त्रीवद्के उद्यसे चपकश्रे िए पर चढ़ा है और जिसने श्रन्तरकरए करके श्रन्तमुंहूर्त कालके द्वारा पुरुष गद्मे नपुंसवद्का सक्रमण किया है तथा सबेद भागके उपान्त्य समय में स्त्रीवद्की द्वितीय स्थितको प्रहण कर श्रागेक समयमे उसे निःसच्च कर दिया है और जिसके स्त्रीवद्का केवल उद्य प्राप्त गोपुच्छ बाकी रहा है उसके स्त्रीवद्का जघन्य श्रनुभागसत्कर्म होता है, क्योंकि उसके देशघाती एकस्थानिक स्पर्धक होते हैं। श्रीर यह बान श्रसिद्ध नहीं है. क्योंकि श्रम्तरकरण करने पर मोहनीयका एकस्थानिक बन्ध होता है श्रीर एकस्थानिक उदय होता है? इस सुत्रसे सिद्ध है।

शंका—जब यह बात सिद्ध है तो सर्वेदभागके द्विचरम समयमे स्वीवेदके जघन्य श्रनुभागका स्वामित्व क्यों नहीं दिया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, द्विचरम समयमे सर्वघाती द्विस्थानिक श्रातुभागका सत्त्व है, श्रात: उसे जघन्य माननेमे विरोध श्राता है।

अध्यक्ष्यवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्प किसके होता है ?

§ २५५. सुगमं।

🕸 पुरिसवेदेण उवद्विदस्स चरिमसमयश्रसंकामयस्स ।

१ २५६. पुरिसवेदोदएण खवगसेढिं चिढय अहकसाए खिवदूण अंतोम्रहुत्तेण अंतरकरणं करिय पुणा अतोम्रहुत्तेण णवृंसयवेदं पुरिसवेदिम्म संछुद्धिय तदो उविर अंतोम्रहुत्तं गंतूण इत्थिवेदं पि पुरिसवेदसरूवेण संकामिय तत्तो उविर अंतोम्रहुत्तं गंतूण छएणोकसाएि सह पुरिसवेदिचराणसंतकम्मं कोधसंजलणे संकामिय समयूणदो-आविलयमेत्तकालम्रविर चिढद्ण हिदो चिरमसमयअसंकामओ णाम । तस्स जहएणाय-मणुभागसंतकम्मं । कुदो ? देसघादिएगद्दाणियत्तादो । दचरिमसमयअसंकायिम्म किएण जहएणसामित्तं दिएणं ? ण, चिरमाणुभागवंधं पेक्खिद्ण दुचरिमादिअणुभागवंधाणमणंतगुणतादो । परोदएण किएण दिएणं ? ण, तत्थ चिरमसमयसंका-मयस्स सन्वधादिवेद्दाणियअणुभागस्स जहण्णत्तिरोहादो । एत्थ पुरिसवेदेण उविद्दस्से ति ण वत्तव्वं, कोथसंजलणस्सेव चिरमसमयअसंकायमस्से त्ति वत्तव्वं ? ण एस दोसो, विसेसालंवणाए सोदयगाहणेण विणा जहएणाणुभागसिद्धी चिरमसमयअसंकामयिम

६२५५. यह सूत्र सुगम है।

अपुरुपवेदके उद्यसे त्तपकश्रेणि पर चढ़े हुए अन्तिम समयवर्ता असंक्रामकके होता है।

न्प६. पुरुषादके उदयमे क्षपकश्रीण पर चढ़कर, श्राठ कपायोंका चपण करके, अन्त-मुहूर्तम अन्तरकरण करके पुन. अन्तर्मुहूर्तमे नपुंसकदेदको पुरुषवदमे चेपण करके, उसके वाद अन्तर्मुहूर्त विताकर स्त्रीयदको भी पुरुषवद्रूषमे सक्रमाकर, उसके वाद अन्तर्मुहूर्त विताकर छ नोकपायोके साथ पुरुषादके प्राचीन सत्कर्मका संज्वलन कोधमे संक्रमण करके जो एक समय कम दो आवलीमात्र काल ऊपर चढ़कर स्थित है उसे अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक कहते हैं। उसके पुरुषादका जघन्य अनुमागसन्कर्म होता है, क्योंकि वह देशघाती और एकस्थानिक हाता है।

शंका-उपान्त्य समयवर्ती ऋसंक्रामकको जघन्य ऋनुभागका स्वामित्व क्यों नहीं दिया ? समाधान-नहीं. क्योंकि ऋन्तिम ऋनुभागवन्धको देग्यते हुए उपान्त्य ऋदि समयमे होनेवाला ऋनुभागवन्ध ऋनन्तगुणा होता है।

शंका-परके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवालेको पुरुषवेदका जघन्य स्वामित्व क्यो नहीं दिया? समाधान-नहीं. क्योंकि वहां चरमसमयवर्ती संक्रामकके सर्वघाती द्विस्थानिक अनुभाग

रहता है, ख्रतः उसके जघन्य ख्रनभागके होनेमें विरोध ख्राता है।

शंका—यहाँ 'पुरुपवेदके उदयसे श्रीण पर चढ़नेवालके' ऐसा नहीं कहना चाहिए. किन्तु मंज्वलन क्रोधके समान 'अन्तिम समयवर्ती असंकामकके' ऐसा कहना चाहिये।

समाधान-यह कोई दोप नहीं है, क्योंकि विशेषकी विवक्षामें 'स्वोदयसे' ऐसा प्रहण किये विना श्रन्तिम समयवर्ती श्रसंक्रामकमें जघन्य श्रनुभागकी सिद्धि नहीं होती है श्रर्थान् जब तक वह स्वादयसे श्रेणि पर नहीं चढ़ेगा तब तक उसके श्रन्तिम समयवर्ती श्रसंक्रामक श्रवस्थामें जघन्यश्रनुभाग नहीं पाया जायेगा. यह बनलानेके लिए ही विशेष प्रकारका श्रवलम्बन लिया है। ण होदि त्ति पदुष्पायणफलत्तादो ।

- ॐ णवुं सथवेदयस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ?
- 🖇 २५७. सुगमं।
- 🛞 खबगस्स चरिमसमयणवुं सयवेदयस्स ?
- ३ २५८. एदस्स सुत्तस्स अत्थो जहा इत्थिवेदस्स परूविदो तहा परूवेद्व्यो । णविर णवुंसयवेदोदण्ण खवगसेढि चिढय चिरमसमयणवुंसयवेदस्स जहण्णसामितं वत्तव्यं ।

त्र्यथात् 'त्र्यन्तिम समयवतीं त्र्यसंक्रामकके' न कहकर 'पुरुषवेदके उदयसे श्रेणी पर चढ़नेवाले त्र्यन्तिम समयवर्ती त्र्यसंक्रामकके' कहा है ।

अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

६२५७. यह सूत्र सुगम है।

🔅 अन्तिम समयवर्ती चपक नपुंसकवेदीके होता है।

६२५८. जैसे स्नीवेदके जघन्य ऋनुभागसत्कर्मके स्वामित्वका कथन किया है वैसे ही इस सूत्रका ऋर्थ कहना चाहिये। इतना विशेष है कि नपुंसकवदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़नेपर

त्र_{ितम} समयवर्ती नपुंसकवेदीके जघन्य अनुभागका स्वामित्व कहना चाहिये।

विशेषार्थ-तीनो मेंसे किसी भी वदके उदयसे क्षपक श्रेगीपर जीव चढ़ सकता है। चपक श्रेगीपर चढ़नेपर अधःकरणः अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण होते ही हैं। अनिवृत्तिकरणमें चार संज्वलन ऋौर नव नोकपायों का ऋन्तरकरण करता है। नीचे ऋौर ऊपरके निषकों को छोड़-कर बीचके अन्तर्महर्तमात्र निपंकां के अभाव करनेकां अन्तरकरण कहते है। अन्तरकरण जब तक नहीं करता तब तक तो तीनो मेसे किसी भी वदके उदयसे चपकश्रेणि पर चढ़नेवाल जीवका सब कथन समान ही जानना चाहिए। अन्तरकरण करने पर जो जिस वंद और जिस संज्वलनकपायक उदयसे श्रीण पर चढ़ता है उसकी प्रथम स्थिति अन्तर्महर्तमात्र स्थापित करके अन्तरकरण करता है । जैसे म्त्रीवंद्कं ्द्यसं श्रेणि पर चढ़नेवाला जीव स्त्रीवंद्की ही प्रथम स्थित स्थापित करता है। उस प्रथम स्थितिका प्रमाण पुरुपवेदके उदय सहित श्रेणि पर चढ़नेवाले जीवके जितना नपुंसक वेदके क्षपणकाल सहिन स्त्रीवेदका चपणकाल होता है उतना है। पुरुपवेदके उदयसे श्रेणि पर चढ़ने वाला जीव तो पुरुपत्रेद्के उद्यसे युक्त होता हुआ ही सात नोकपायोके क्षपण कालमें सात नोक-पायोका चपण करता है। वादको एक समय कम दो त्र्यावलिकालमें पुरुष बदके नवक समयप्रबद्धोको ख़वाता है। किन्तु म्त्रीवदके उदयसे श्रेणी पर चढ़नेवाला जीव वेदके उदयसे रहित होकर ही सात नोकपायोका क्षपण करता है। अत: पुरुषवेदकी प्रथम स्थित नपुंसकवेद, स्त्रीवेद ऋौर छ नोक-पायोका जितना चपणकाल है उतनी होती है । जो जीव स्त्रीबंदके उदयसे श्रेणि पर चढ़ता है वह जब स्त्रीवेदका अन्तरकरण करकं सबेद भागके उपान्त्य समयमे स्त्रीवेदकी द्वितीय स्थितिको खपाकर अन्तिम समयमे पहुँचता है और उसके स्त्रीवेदका केवल उदयगत गोपुच्छ अवशेष रहता है तब उसके स्त्रीवदका जघन्य ऋनुभागसत्कर्म होता है। किन्तु ऋन्त समयसे पहले समयमें उसके स्त्रीवदके सर्वघाती द्विस्थानिक निपंक रहते हैं अतः उसमें जघन्य सत्त्व नहीं बतलाया। तथा पुरुषंबद्के उदयसे श्रेणि पर चढ्नेत्राला नपुंसकत्रंद; स्त्रीबेद, छ नोकषाय श्रीर पुरुषबेदका संक्रमण करके, पुरुषवेदके नवक समयप्रबद्धोंका खपानेके लिए जब एक समय कम दो आविल कालके ऋन्तिम समयमे वर्तमान रहता है तब उसके पुरुषवेदका जघन्य ऋनुभागसःकर्म होता है।

- 🛞 द्वरणोकसायाणं जहरणाणुभागसंतकम्मं कस्स ?
- § २५६. सुगमं ।
- 🕸 खबगस्स चरिमे अणुभागखंडए बटुमाण्यस्स ।
- § २६०. चरिमाणुभागकंडयस्स चरिमफालीए वट्टमाणस्से ति किण्ण वुत्तं १ ण, चरिमाणुभागखंडयसञ्त्रफालीसु अणुभागस्स विसेसाभावादो । सञ्वुकस्सविसोहिस्सं ति किएए। वुत्तं १ ण, अणियट्टिपरिणामाणं समाणसमयवट्टमाणसञ्जविसु समाणतादो ।
 - ॐ णिरयगदीए मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ?
 - ६ २६१. सुगमं।
 - 🛞 असरिणस्स हदसमुष्पत्तियकम्मेण आगदस्स ।
 - ३ २६२, जाव हेडा संतकम्मस्स बंधिद तार्व हदसम्रुप्पत्तियकम्मं विसोहीए

यहाँ पुरुपवेदके उदयसे ही श्रीण पर चढ़नेवालेक पुरुपवेदका जघन्य अनुभागसंकर्भ बतलानेका यह कारण है कि इतर वेदक उदयसे श्रीण पर चढ़नेवाला अपने वेदका जब अन्तिम संक्रमण करता है तब पुरुपवेदका उसके सर्वघाती द्विस्थानिक अनुभाग रहता है और सर्वघाती द्विस्थानिक अनुभाग जघन्य हो नहीं सकता, अतः पुरुपवेदके उदयसे श्रीण पर चढ़नेवाला जब पुरुपवेदका अन्तिम संक्रमण करनेका उद्यत होता है तब उसके पुरुपवेदका जघन्य अनुभागमत्कर्म होता है । म्त्री-वेदके समान ही नपुंसकवेदका भी समभना चाहिये।

अबह नोकपायोंका जधन्य अनुभागसन्कर्म किसके होता है ?

§ २५९ यह सूत्र सुगम है।

अन्तिम अनुभागकाण्डकमं वर्तमान चपकके होता है ।

समाधान—नहीं; क्योंकि अन्तिम अनुभागकाण्डककी सब फालियोंमें जो अनुभाग है उसमें कोई अन्तर नहीं है। जैसा एक फालीमें अनुभाग है वैसा ही दूसरीमें हैं, इसलिए अन्तिम अनुभागकाण्डककी अन्तिम फालिमें वर्तमान क्षपकके होता है ऐसा नहीं कहा।

शंका-'सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिवाले जीवकं' जघन्य श्रनुभाग होता है ऐसा क्यो नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ऋनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होनेवाले परिएाम समान समय-वर्ती सब जीवा के समान ही होते हैं. अत: सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिवाले जीवके जघन्य ऋनुभाग होना है ऐसा कहीं कहा ।

- * नरकगतिमें मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? १२६१. यह सूत्र सुगम है।
- - १, ता॰ प्रती जाव हेट्टा संतकम्मस्स बंधदि ताव इत्वेतत् सूत्रांशत्वेन निर्दिष्टम् ।

ब्रिणुभागविहत्ती ४

उप्पज्जदि। पुणो सो विसुद्धो संतो कथं णेरइएसु समुष्पज्जदे १ण, पुन्वबद्धणिरयाउअस्स संकिलेस-विसोहिअद्धासु कमेण परियद्दं तस्स विसोहिअद्धाए भीणाए तप्पायोग्ग-संकिलेसेणाणुभागवंधबुट्टीए विणा खीणभुं जमाणाउत्रस्स णेरइएसु उप्पत्तं पिट विरोहा-भावादो । जिद्द एवं तो सिएएएपंचिदिओ सन्विवसुद्धो जहएएएएणुभागसंतकिम्मयो मिच्छादिद्दी किएए। उप्पाइदो १ण, सिएए।मिच्छाइहिजहएए।एणुभागसंतकम्म पेविखदूण असिएए।जहएए।एणुभागसंतकम्मस्स अणंतगुणहीणनादो । तं कुदो णन्वदे १ विसंजोइद-अणंताणुवंधिचउक्किम्म णेरइयसम्माइहिम्म मिच्छन्ताणुभागस्स जहएए।सामिन्तमदादृण असिएए।पच्छायदिम्च सामिन्तं पदुष्पाययसुन्तादो । ण च हदससुप्पत्तिय-कम्मो विसुद्धो चेव होदि नि णियमो, संकिलिट्टस्स वि सगजहएए।।एणुभागसंतकम्मादो हेद्दा बंधमाणस्स हदससुप्पन्तियकम्मन्तं पिट विरोहाभावादो । जाव संतकम्मस्स हेटा बंधदि तावे नि किमद्दं कालिण्हे सो कदो १ जहएए।एणुभागसंतकम्मेण सह णेरइएसु झंतोसुहुनमच्छदि नि जाणावण्डं।

हुआ वह हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला जीव नरकमे कैसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं. क्योंकि जिसने पहले नरकायुका बंध कर लिया है वह जीव क्रमसे संक्षेश और विशुद्धिके कालमे परिभ्रमण करता हुआ अर्थान संक्षेशसे विशुद्धिमें और विशुद्धिसे संक्षेशमें परिवर्तन करता हुआ विशुद्धिकालके चीण हो जाने पर तत्प्रायाग्य संक्षेशवश अनुभागवन्धमें वृद्धि हुए विना भुज्यमान आयुके चीण होने पर नरकगतिमें उत्पन्न होता है इसमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—यदि ऐसा है तो मबसे विशुद्ध और जघन्य ऋनुभागसन्कर्मकी सत्तावाले संज्ञी पंच्चे न्द्रिय मिध्यादृष्टिको क्यो नहीं उत्पन्न कराया। ऋर्थात् ऋसंज्ञीको नरकमे उत्पन्न कराकर जो उसे मिध्यात्वके जघन्य ऋनुभागका स्वामी वतलाया है उसकी ऋषक्षा संज्ञीको नरकमे उत्पन्न कराकर उसके जघन्य स्वामित्व क्यो नहीं वतलाया।

समाधान-नहीं, क्योंकि संज्ञी मिध्याहष्टिके जघन्य अनुभागसन्कर्मकी अपेचा असंज्ञीका जघन्य अनुभागसन्कर्म अनन्तगुणा हीन हैं।

शंका-यह किस प्रमाणसे जाना ?

स्माधान-त्र्यनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना कर चुकनेवाले नारक सम्यग्दृष्टिमे मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका स्वामित्व न बतलाकर असंज्ञी पर्यायसे आये हुए नारक मिथ्या- दृष्टिमे स्वामित्व वतलानेवाले सुत्रसे जाना।

तथा इतसमुत्पत्तिककर्मवाला जीव विशुद्ध ही होना है ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि श्रपने जघन्य श्रमुभागमत्कर्मसे कम बाँधनेवाले संक्लिप्ट जीवके भी इतसमुत्पत्तिककर्म हो सकता है इसमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—'जब तक सत्कर्मसे कम बॉधता है तभी तक' इस प्रकार कालका निर्देश क्यो किया है ?

समाधान-जघन्य अनुभागसत्कर्मके साथ जीव नारिकयोमे अन्तर्मुहूर्त काल तक

^{1.} श्रा॰ प्रशी ख्निमो संकिसेसस्स विस्मजङ्ग्यासुभागसंवकम्मादी इति पाठः ।

🕸 एवं बारसकसाय-णवणोकसायाणं।

- **अ सम्मत्तस्य जहरणाणुभागसंतकम्मं कस्स ?**
- 🖇 २६४. सुगमं।
- **अ चरिमसमयश्रव्खीणदंसणमोहणीयस्स** ।
- १२६५. सुगममेदं सुत्तं, ओघम्मि परूविदत्तादो । णिरयगईए दंसणमोहणीय-ग्हता है यह बतलानेके लिये किया है।

विश्लोषार्थ-जो श्रमजी पञ्चीन्द्रय पहले नरकायका बन्ध करके पीछे मत्तामे स्थित मिध्यात्वके ऋनुभागका घात कर डालता है वह जब मरकर नरकमें जन्म लेता है नो उसके मिध्यात्व का जघन्य अनुभागमन्त्रम् तब तक होता है जब तक वह मिध्यात्वके सत्तामें स्थित श्रवभागसे श्रधिक श्रवभागका बन्ध नहीं करता। जब वह अधिक श्रवभागवन्ध करने लगता है तो फिर उसके जघन्य अनुभाग नहीं रहता । अतः नरकमें मिध्यात्वके जघन्य अनुभागकी मत्ता अन्तर्महर्त काल तक ही रहती है। इस पर एक शङ्का यह की गई है कि सत्ताम स्थित अनुभागक। चात विशुद्ध परिणामोसे हाता है, अतः विशुद्ध परिणामवाला मरकर नरकमं कैसे उत्पन्न हो सकता है ? इसका यह समाधान किया गया है कि पहले ता वह जीव नरक की आय बांध चुकता है, अत: जब भुज्यभान आयु चीए होती है तो यांग्य संक्लेश परिएमोसे मरकर नरकमे जन्म लेता है। किन्तू इतना म्मरण रखना चाहिये कि उसके संक्षेश परिएम्प ऐसे नहीं होते जिनसे सत्तामे स्थित मिथ्यात्वके अनुभागसे अधिक अनुभागवन्ध हो । दुसरी शंका यह की गई है कि असैनी पश्चोन्दिय मिध्यादृष्टिके परिएाम अधिक विशुद्ध होते हैं. अतः उससे उसके जघन्य अनुभागमन्त्रम् अधिक हीन होंगे. इसलिये सैनी मिध्यादृष्टिको नरकमें उत्पन्न क्यो नही कराया। सो इसका समाधान यह किया गया है कि संज्ञी मिध्यादृष्टिके जघन्य अनुभाग सकर्मसे असंज्ञी पश्चे न्द्रियका जबन्य अनुमागसकर्म अनन्तगुणा हीन होता है और इसका सबुत यह है कि अनन्तानबन्धीचतुष्क की विसंयोजना कर दंनेवाल सम्यर्द्धाए नारकीम मिण्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म न बनलाकर असंज्ञी पर्यायसे आकर नरकमे जन्म लेनेवाल मिध्यादृष्टिके उसका जघन्य अनुभाग बतलाया है, अतः सिद्ध है कि मंत्री मिध्यादृष्टिसे असंजी पश्चे न्द्रियका जघन्य अनुभागमःकर्म अनन्तगुणा हीन होता है।

* इसी प्रकार बारह कपाय और नव नोकपायोंके जघन्य अनुभागके स्वामित्वका कथन करना चिहिये।

§ २६३. जैसे हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले श्रसंझी जीवके नरकमे उत्पन्न होने पर उसके
मिश्यात्वके जघन्य श्रमुमागकेःस्वामित्वका कथन किया है वैसे ही इन प्रकृतियोका भी कथन कर
लेना चाहिये, क्यों कि उससे इनमें कोई विशेषता नहीं है।

- * सम्यक्तका जघन्य अनुभागसन्तर्भ किसके होता है ?
- ६ २६४. यह सूत्र सुगम है।
- * दर्शनमोहनीयका ज्ञय करनेवालेके अन्तिम समयमें होता है।
- २६५. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि खोघ प्ररूपणामें इसका कथन कर खाये हैं।

क्खवणाभावादों णेदं घडदि नि णामंकणिज्ञं: टंसणमोहणीयं मणुस्सेसु खविय कद-करणिज्ञो होद्ण णेरइएसुप्पएएएस्स जहण्णाणुभागुवलंभादो । जहा सम्मत्तं पुव्वबद्ध-दीहाउद्विदिं खिंदिद्ण देसूणसागरोवममेत्तं संग्वेज्जवाससेत्तं वा करेदि नहा णिरआउस्म णिम्मूलविणासं किएए। करेदि ? ण, नम्स नहाविहसत्तीए अभावादो । ण च सहात्रो पडिबोहणारुहो, अइप्पसंगादो ।

🏶 सम्मामिच्छ्वत्तस्स जहरूणयं एत्थि ।

३ २६६. कुदो १ दंसणमोहक्खवणं मोत्तूण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमएएात्थ अणु-भागखंडयघादाभावादो । पढमसम्मत्तुष्पतीए ऋणंनाणुवंधीणं विसंजोयणाए चारित्तमाह-णीयस्स उवसामणाए च सम्मत्त-सम्मामिच्छताणं हिद्खंडयघाटं संत कथमणुभाग-खंडयस्सेव घादो णित्थ १ ण, भिएएाजाइत्योण एगसहावत्तविरोहादो । अविरोह वा अणुभागघादं संते णियमेण हिद्दिघादेण वि होद्द्वं। ण च एवं, खवणाए एगहिदि-

द्यांका—नरकगतिमें दर्शनमोहनीयका चय नहीं होता है, अतः यह स्वासिन्त्र नरकमें घटित नहीं होता ?

समाधान-ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि मनुष्योंमे दर्शनमोहनीयका क्षय करके, कृतकृत्य होकर जा नारिकयों में उत्पन्न होता है उसके सम्यक्त्यका जघन्य अनुभाग पाया जाता है।

शंका—जैसे सम्यक्त्वकी पहले बांधी हुई लम्बी म्थितिका छेदन करके उसे छुछ कम सागर प्रमाण अथवा संख्यातवर्ष प्रमाण करता है वैसे ही बांधी हुई नरकायुका निर्मूल विनाश क्यों नहीं करता १

समाधान—नहीं. क्योंकि उसमें इस प्रकारकी शक्ति नहीं है। यदि कोई कहे कि शक्ति क्यों नहीं है तो उसका यह प्रश्न ठीक नहीं है क्योंकि शक्तिका होना न होना पदार्थोका म्बभाव सिद्ध धर्म है और स्वभाव प्रतिबोधनके अयोग्य है, उसमें इस प्रकारका तर्क नहीं किया जा सकता कि ऐसा बयो है ? यदि स्वभावके विषयमें भी इस प्रकारका तर्क किया जाने लगे तो अतिप्रसंग दोष उपस्थित होगा। वस्तुमात्रके स्वभाव के विषयमें इस प्रकारका तर्क किया जाने लगेगा।

* सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं है ?

२६६ **शंका**-सम्यग्मिण्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म क्या नहीं है ?

समाथान-क्योंकि दर्शनमोहके चपणको छोड़कर अन्यत्र सम्यक्त और सम्यग्मि-थ्यात्वका अनुभागकाण्डकघात नहीं होता। और नरकगितमे दर्शनमोहका चपण नहीं होता। इसिलए वहां]सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका निषेध किया है।

द्यंदा—प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति, श्रनन्तानुबन्धीका विसंयोजन श्रौर चरित्रमोहनीयकी उप्भानाके समय जब सम्यक्त्व श्रौर सम्यक्त्यका म्थितिकण्डकघात होता है तो वहां श्रनुभागकाण्डकघात ही क्यो नहीं होता ?

समाधान-नहीं. क्योंकि स्थिति और अनुभाग भिन्न जातीय है. श्रतः दोनोका एक स्वभाव होनेमे विरोध है। यदि विशेष न हो नो अनुभागका घात होने पर नियमसे स्थितिका घात भी

१ श्रा० प्रतौ खवगाए द्विदि- इति पाठः ।

खंडयज्कीरणकालब्भंतरे संखेज्जसहस्सअणुभागखंडयाणं पदणविरोहादो । अणुसमओ-वृहणाए अणुभागस्सेव हिदीए वि होद्व्वं, एगसहावत्तादो । ण च एवं, तहाणुवलंभादो ।

🛞 ऋणंतागुबंधीणमोघं।

२६७. जहा आंघम्मि संजुत्तपढमसमए अणंताणुवंधीणं जहएए।सामित्तं बुत्तं तथा एत्थ वि वत्तव्वं ।

🛞 एवं सञ्वत्थ ऐदञ्वं।

६ २६८. एदंण वयणेण जइवसहाइरिएण एद्स्स मुत्तस्स देसामासियत्तं जाणा-विदं । संपिंह एत्थुद्देसे उच्चारणा वुचदे—

२६६. सामित्ताणुगमो दुविहो — जहण्णओ उक्कस्सत्रो चेदि । उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिइ सो — ओघेण आदेसेण । त्रोघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्सा-

हाना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर चपणावस्थामें एक स्थितिकाण्डकके उत्कीरण कालके भीनर संख्यात हजार अनुभाग काण्डकोंकापतन होनेमें विरोध आता है। तथा यदि स्थिति और अनुभागका एक स्वभाव है तो जिस प्रकार प्रति समय अनुभागका अपवर्तन घात होता है उस तरह स्थितिका भी होना चाहिए। क्योंकि दोनो एकस्वभाव है। किन्तु ऐसा होता नहीं है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता।

विश्वेषार्थ—सम्याग्मध्यात्व यक्कांतिका जघन्य अनुभागसंत्रक्ष अनुभागकाण्डकघात हुए विना नहीं होता। और सम्याग्मध्यात्वक अनुभागका काण्डकघात दर्शनमाहके चपण्के सिवा अन्यत्र होना नहीं तथा नरकगितमे दर्शनमाहका चपण् नहीं होता। अतः नरकमे सम्याग्मध्यात्व प्रकृतिका जघन्य अनुभागसंत्रकमें नहीं होता। इस पर यह शंका की गई कि सम्याग्मध्यात्वकी स्थितिका काण्डकघात तो अन्य अवसरों पर भी होता है तब अनुभागका ही काण्डकघात क्यों केवल दर्शनमोहक चपण्के समय ही होता है. अन्यत्र नहीं होता ? इसका समाधान किया गया कि स्थिति और अनुभाग दोनों दो जुदी चीजे हैं. अतः एकके होने पर दूसरेका होना अविनाभावी नहीं है। यहां इतना विशेष जानना चाहिये कि यद्योप कृतकृत्यवदकसम्यग्दृष्टि मरकर नरकम जन्म ले सकता है किन्तु वह कृतकृत्य होनेसे पहले ही सम्याग्मध्यात्वका जघन्य अनुभागसन्तर्भ कर लेता है. अतः नरकमें नहीं हो सकता।

🖇 अनन्तानुबन्धीके जधन्य अनुभागका स्वामित्व ओधके समान कहना चाहिये ।

इसी प्रकार सब मार्गणाओंमं मोहनीयकी प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके म्वामित्वको कहना चाहिए।

२६८ इस कथनसे त्र्याचार्य यति उपभने यह बतलाया है कि यह सूत्र देशामर्पक है । अब इस विषयमे उच्चारणाको कहते है ।

्र२६९. स्वामित्वानुगम दो प्रकारका है-जघन्य श्रौर उत्कृष्ट । उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दा प्रकारका है-श्रोघ श्रौर श्रादेश । श्रोघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय श्रौर नव नोकप्रयोका णुभागसंतकम्मं कस्स ? अएए।दरस्स जो तप्पाओग्गजहण्णाणुभागसंतकिम्मओ तेण उक्कस्साणुभागे वंधे जाव तं ण हणिंद् ताव सो होज्ज एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चर्डादिओ वा सएए।। वा असएए।। वा पज्जतो वा अपज्जतो वा संखेज्जवस्साउओ वा असंखेज्जवस्साउओ वा। असंखेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुस्से मणुस्सोववादियदेवे च मोतृण । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्क कस्स ? अएए।दरस्स संतकिम्मयस्स दसणमोहक्खवयं मोतृण ।

२७०. त्रादेसेण णेरइएसु व्रज्वीसंपयडीणमुक्क० कस्स ? अएए।द० जेण उक्कस्साणुभागो पवद्धा सो जाव तएए। हणदि ताव । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमोघं। एवं पढमाए तिरिवख-पंचिदियतिरिवख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देव सोहम्मीसाणादि जाव सहस्सारकप्पो ति । विदियादि जाव सत्तिमि ति एवं चेव । णवरि सम्मामिच्छत्तस्सेव सम्मतस्स णित्थ त्र्यणुक्कस्ससंतकम्मं । एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणी--पंचि०तिरि०--

उन्कृष्ट अनुभागसन्तर्भ किसके होता है ? एसे किसी भी जीवके होता है जो अपने योग्य जघन्य अनुभागकी सत्तावाला जीव उन्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके जब तक उमका घात नहीं करता है तब तक वह एकेन्द्रिय हो, द्वीन्द्रिय हो, तेइन्द्रिय हो, चौडिन्द्रिय हो, संज्ञी हो, प्रयाप्त हा, अपर्याप्त हो, मन्यान वर्षकी आयुवाला हो या असंख्यात वर्षकी आयुवाला हो; उसके उन्कृष्ट अनुभागमन्तर्भ होता है। किन्तु असख्यात वर्षकी आयुवाले निर्यच्चो और मनुष्योको तथा जहांके देव केवल मनुष्योम ही उत्पन्न होते हैं उन देवोको छोड़कर अन्य सबके यह उन्कृष्ट अनुभागमन्तर्भ होता है। सम्यक्त और सम्यग्निथ्यान्वका उन्कृष्ट अनुभागमन्तर्भ होता है। सम्यक्त और सम्यग्निथ्यान्वका उन्कृष्ट अनुभागमन्तर्भ किसके होता है। सम्यक्त छोड़कर उनकी सत्तावाले किसी भी जीवके होता है।

विशेषार्थ-श्रपने अपने योग्य जवन्य अनुभागसन्तर्भवाला जो जीव उन्कृष्ट अनुभागका वृष्य करके जब तक उसका चात नहीं करता तब तक वह किसी भी पर्यायमें संख्यातवर्प या असंख्यात वर्षकी आयुके साथ जन्म ले उसके मोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियोका उन्कृष्ट अनुभाग गहता है। किन्तु भोगम्मिज तिर्यश्व और मनुष्य तथा आनतादिक करपके देवोम मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियोके उन्कृष्ट अनुभागका सन्त्व नहीं होता, इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए। पर यह कथन मोहनीयकी २६ प्रकृतियोकी अपेचासे किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्निध्यात्वकी अपेचासे कुछ विशेषता है। बात यह है कि इन दोका बन्च नहीं होता, अतः इनकी सत्तावालेके इनका उन्कृष्ट अनुभाग रहता है। केवल दर्शनमोहके क्ष्यकको छोड़ देना चाहिये, क्योंकि उसके इनका जवन्य अनुभाग भी होता है और बादको ये नष्ट हो जाती हैं। आंच की ही तरह आदेश से भी जानना चाहिए। उसमे जो विशेषता है सो मुलमे बतलाई ही है।

ूर्ण. आदेशसे नारिकयों में छव्बीस प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जिसने उत्कृष्ट अनुभागका बंध किया वह जब तक उसका घात नहीं करना है तब तक उस जीवके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्निण्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका स्वाभित्व श्रोधके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवो, सामान्य तिर्यश्व., पश्चे न्द्रिय तिर्यश्व, पश्चे न्द्रिय तिर्यश्व पर्याप्त. सामान्य देव और सौधर्म ईशान स्वर्गसे लेकर महस्वार कल्प तकके देवों में जानना चाहिये। दूसरीसे लेकर मात्वी पृथिवी तक इसी प्रकार स्वाभित्व है। इतना विशेष है कि वहां सम्यग्निण्यात्वके समान सम्यक्त्वका भी अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। इसी प्रकार

अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०--वाण०--जोदिसिए ति । णर्वार पंचिदियतिरिक्ख--अपज्ज०--मणुसअपज्ज० उक्तस्साणुभागसंतकिम्मओ तिरिक्खो मणुस्सो वा अप्पिद-अपज्जत्तपसु उप्पज्जिद्ण जाव तं ण हणदि ताव सो उक्तस्साणुभागस्य सामिओ।

२०१. मणुस-मणुसपज्ञ०-मणुसिणी० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक-स्साणु० कस्स ? अण्णद० उक्कस्साणुभागं वंधिद्ण जाव ण हणदि ताव । सम्मत-सम्मामिच्छताणं उक्कस्साणुभाग० कस्स ? दंसणमोहक्खवगं मोतूण सञ्चस्स संत-कम्मियस्स । आणदादि जाव उवित्मगेवज्जे ति मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्णदरो जो दञ्चलिंगी तप्पाओग्गउक्कस्साणुभागसंतकम्मेण उववण्णो सो जाव ण हणदि ताव उक्कस्साणुभागसंतकम्मिश्रो । सम्मत्त० ओघं । सम्मामि० देवोघं । अणुदिसादि जाव सञ्चद्दसिद्धि ति मिच्छत्त-सोलसक० -णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्णद० वेद्यसम्माइद्विम्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मेण उववण्णल्लयस्स जाव ण हणदि ताव । सम्मत्त० श्रोघं । सम्मामि० देवोघं । एवं जाणिद्ण णेद्व्व जाव अणाहारि ति ।

२७२. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहे सो — ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्तअद्यक्त जह अणु ह संतक्षमं कस्स ? अण्णद ह सहुमेइंदियस्स कट्हट्ममुप्पत्तियपञ्चे न्ट्रिय तिर्यञ्च योनिनी. पञ्चे न्ट्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भननवासी. हयन्तर और ज्योतिपी देवोमें जानना चाहिए। पञ्चे न्ट्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला निर्यञ्च अथवा मनुष्य विवत्तित अपर्याप्तकोंमे उत्पन्न होकर जब तक उमका घात नहीं करता है तब तक वह उत्कृष्ट अनुभागसन्कर्मका स्वामी है।

ू २०१ सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त श्रीर मनुष्यिनीमं मिण्यान्य. सोलह कपाय, श्रीर नव नोकपाय।का उत्कृष्ट श्रनुभागमत्कर्म किसके होता है ? जो उत्कृष्ट श्रनुभागको बांधकर जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक उसके उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्म होता है । सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिण्यात्वका उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्म किसके होता है ? दर्शनमोहके चपकको छोड़कर सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिण्यात्वकी सत्तावाले सब जीवांके होता है । श्रानत स्वर्गसे लेकर उपरिम प्रैवंयक तकके देवोंमें मिण्यात्व. सोलह कपाय. श्रीर नव नोकपायोका उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जो दृष्यित्व होता है । करना है तब तक उसके उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्म होता है । सम्यक्त्वके उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्मको लेकर वहा उत्पन्न हुश्रा है वह जब तक उसका घात नहीं करना है तब तक उसके उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्म होता है । सम्यक्त्वके उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्मको स्वामी श्रीघकी तरह समभना चाहिए । सम्यग्मिण्यात्वका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है । श्रनुदिशसे लेकर सर्वार्थमिद्धि तकके देवोमे भिण्यात्व, सोलह कपाय श्रीर नव नोकपायोका उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्म किसके होता है ? उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्मक साथ उत्पन्न हुश्रा जो वदकसम्यग्दिष्ट जीव जब तक उसका घात नहीं करता तव तक उसके उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्म होता है । सम्यक्त्वके उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्मको स्वामित्व श्रोघकी तरह है । इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए ।

९ २७२. त्राव जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है। त्र्योघ श्रीर त्रादेश। श्रोघसे मिध्यात्व श्रीर त्राठ कपायोंका जघन्य श्रनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जिस सूक्ष्म एकेन्द्रिय

कम्मस्स, सो तेण जहण्णाणुभागसंतकम्मेण एइंदिश्रो वा बेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चर्डारंदिओ वा सण्णी वा असण्णी वा सुहुमो वा वादरा वा पज्जतो वा अपज्जतो वा होदि जाव तण्ण बहुदि ताव तस्स विहत्तिओ। सम्मत्त जहण्णाणु कस्स ? अण्णद व् विस्मसमय अविद्यस्य । सम्मामि जहण्णाणु कस्स ? अण्णद व् दंसणमोहणीयक्षवयस्य अपिच्छमे अणुभागखंडए बहुमाणस्स । अणंताणु चडक वहण्णाणु कम्स ? विसंजाएद्ण पहमसमयसंजुतस्स तत्वाओग्गविष्ठद्धस्स जहण्णाणु भागसंतकम्मं होदि । कोध-माण-मायासंजलण जह विस्मसमय असंकामयस्स । लोभ-संजल जहण्णाणु कस्स ? खवगस्स चरिमसमय सक्सायिस्स । पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरिमसमय सक्सायिस्स । पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ? पुरिसवेदक्षवयस्स चरिमसमय अणुभागवंघं पि चरिमसमय अण्ञागवंघं पि चरिमसमय असंकामयस्स । इत्थि ज कस्स ? अण्णद व् खवयस्स इत्थिवेदोदएण उविद्रस्स चरिमसमय इत्थिवेदयस्स । ण्युंसयवेद् जह कस्स ? अण्णद ण्युंसयवेदोदएण उविद्रस्स चरिमसमय पुरिसवेदयस्स । खण्णोकसाय ज क कस्स ? अण्णद व् खवास्स चरिमसमय पुरिसवेदयस्स । खण्णोकसाय ज क कस्स ? अण्णद व् खवास्स चरिमे अणुभागत्वंड ए वट्टमाणस्स ।

२७३. त्रादेसेण णेरइएस पिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जह० कस्स ? जो जीवन अनुभागका वात करके जघन्य अनुभागमत्कर्म उत्पन्न किया है उसके होता है। तथा वह उस अधन्य अनुभागमत्कर्भके माथ भरकर एकेन्द्रिय अथवा दोईन्द्रिय, अथवा तेईन्द्रिय, अथवा चौइन्द्रियः अथवा असंज्ञी, अथवा संज्ञी, सूक्ष्म अथवा बाद्रः पर्याप्त अथवा अपर्याप्त होकर जब नक उसे नहीं बढ़ाता है तब तक उसका म्बामी होता है। सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किमके होता है ? अज्ञीणदर्शनमोहीके अन्तिम समयमे होता है। सम्यग्मिश्यात्वका जघन्य श्रन्भागसन्दर्भ किसके होता है ? श्रन्तिम अनुभागकाण्डकमे वर्तमान दर्शनमोहके स्नाकके होता है। अनन्तानुबर्न्धा चतुष्कका जघन्य अनुभागसन्कर्म किसके होता है ? अनन्ता-नुबन्धाका विस्योजन करके पुनः उससे संयुक्त हुए निःश्रायाग्य विशुद्ध परिणामवाले प्रथम समय-वर्ता जीवके जबन्य अनुभागमत्कर्म होता है। संज्वलन क्रोध. संज्वलन मान और संज्वलन मायाका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? क्रोध, मान और मायाका बदन करनेवाल तथा अन्तिम समयमे होनेवाले अनुभागबन्धकी अपेक्षा अन्तिम समयवर्ती असकामक क्षपक जीवके होता है । संज्वलन लोमका जयन्य ऋनुभागसत्कर्म किसके होता है ? श्रान्तम समयवर्ती चपक सकपायिक जीवके होता है। पुरुपवेदका जघन्य अनुभागसकर्म किसके होता है ? अन्तिम समयमं होनेवालं अनभागबन्धकी ऋषेक्षा अन्तिम समयवर्ती असकामक पुरुपंरदीकं होता है। स्त्रीवंदका जघन्य अनुभागसन्कर्म किसके हाता है ? स्त्रीवंदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़नेवाले अन्तिम समयवर्ती स्त्रीवेदी क्षयक जीवके होता है। नपुंसकवद्का जवन्य अनुभागमस्कर्म किसके होता है ? नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणी पर चढ़नेवाले ऋन्तिम समयवर्ती नपुंसकवेदी चवक जीव**के** होता है। छ नोकपायोका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अन्तिम अनुभागकण्डकमे वर्तमान चपकके होता है।

ू २७३ त्रादेशसे नारिकयोमे मिध्यात्व, बारह कषाय त्र्यौर नव नोकपायोंका जघन्य १ श्रा० प्रती चरिमसमयं श्रसंकामयस्स । लोभसंजल० जङ्गणागु० कस्म० पुश्सियेद्वस्ववयस्स इति पाठः। असण्णी हदसमुष्पत्तियक्षम्मेण आगदो जाव संतकम्मादो हेटा बंधदि ताव तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं । सम्मत्त० जह० कस्स ? चौरमसमयश्रक्ष्वीणदंसणमोहणी-यस्स । सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो णित्थ । अणंताणु० ज० कस्स ? अण्णद० पढमसमयसंज्ञतस्स तप्पाओग्गविमुद्धस्स । एवं पढमाए पुढवीए । विदियादि जाव सत्तिमि ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० ज० कस्स ? अण्णद० सम्माइिटस्स अणंताणु-बंधिचउक्कं विसंजोइदस्स । अणंताणु०चउक्क० ज० कस्स ? अण्णद० पढमसमय-संज्ञतस्स तप्पाश्रोग्गविमुद्धस्स ।

२०४. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० ज० कस्स ? अण्णद० सुहुमेइंदियस्स हदसमुप्पत्तियकम्मियस्स जाव ण बहुावेदि ताव । सम्मत्त० ओघं। सम्मामिच्छत्तस्स णित्थ जहण्णं। अणंताणु०चउक्क० ओघं। पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० क० ? अण्णद० सुहुमेइंदिय-पच्छायदस्स हदसमुप्पत्तियकम्मियस्स जाव ण बहुदि ताव। सम्मत्त--अणंताणु० चउक्क० तिरिक्खोघं। सम्मामिच्छत्त० जहण्णं णित्थ। एवं जोणिणी०। णवरि सम्मत्त०

अनुभागसन्तर्भ किसके होता है ? जो असंज्ञी जीव हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ नरकमे जन्मा है वह जब तक सत्तामे स्थित अनुभागसे कम अनुभागका बन्ध करता है तब तक उमके जघन्य अनुभागसन्तर्भ होता है । सम्यक्ष्वका जघन्य अनुभागसन्तर्भ किमके होता है ? दर्शनमोहका स्थ करनेवाले जीवके अन्तिम समयमे होता है । सम्यग्मिश्यात्वका जघन्य अनुभागमन्तर्भ नरकमें नहीं होता । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अनुभागसन्तर्भ किमके होता है ? अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः उससे संयुक्त हुए तत्यायोग्य विशुद्ध परिणामवाले अथम समयवर्ती जीवके होता है । इसी प्रकार पहली प्रथिवीमे जानना चाहिए । दृमरीमे लंकर मातवी प्रथिवी तकके नारिकयोमे भिश्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायोका जघन्य अनुभागमन्तर्भ किमके होता है ? जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसे अन्यतर सम्यदृष्टिके होता है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अनुभागमन्तर्भ किसके होता है ? अनन्तानुबन्धीचितुष्कका जघन्य अनुभागमन्तर्भ किसके होता है ? अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके पुनः उमसे संयुक्त हुए तत्यायोग्य विशुद्ध परिणामवाले प्रथम समयवर्ती जीवक होता है ।

्र २७४. निर्यश्चर्गातमे तिर्यश्चोंमे मिण्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायोंक। जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है १ जो ह्तसमुत्पत्तिक कर्मवाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव जब तक जघन्य अनुभागसत्कर्मको नहीं बहाता है तब तक उसके होता है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मको नहीं बहाता है तब तक उसके होता है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्म तिर्यश्चर्गातमे नहीं होता। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका म्वाभी श्रोघकी तरह है। पश्चिन्द्रिय तिर्यश्च श्रोर पश्चिन्द्रिय तिर्यश्च पर्याप्तकोंमे भिण्यात्व, बारह कपाय श्रोर नव नोकपायोका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है १ जो हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायसे मरकर श्राया है वह जब तक वर्तमान श्रनुभागको नहीं बढ़ाता है तब तक उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। सम्यक्त्व श्रीर श्रनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभाग सत्कर्मका स्वामी सामान्य तिर्यश्चके समान है। सम्यग्न्थ्यात्वका जघन्य अनुभागमत्कर्म यहाँ नहीं होता। पश्चिन्द्रिय तिर्यश्च योनिनी जीवोमे इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि

जहण्णं णत्थि । पंचिद्यितिग्विखअपज्ज० मणुसअपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० पंचिदियतिरिक्त्वभंगो । णवरि अणंताणु०चडकः सुहूमेइंदियपच्छायदस्स हदसमु-प्पत्तियकस्मियस्म जहण्णं वत्तव्वं ।

२२७५ मणुसगदीए मणुम्सेस् ओघं। णवरि मिच्छत्त-अद्वकसायाणं पंचि-दियतिरिक्खभंगो । मणुसपज्ज० एवं चेव । णवरि इत्थि० छण्णोकसायभंगो । मणु-सिणीस मणुस्योघं । णवरि पुरिस-णवुंसयवेदाणं छण्णोकसायभंगो ।

ं २७६, देवगढि ० देवाणं पढमपुढविभंगो | एवं भवण०-वाण० | णवरि सम्मत्तु जहण्णं णन्थि । जोदिसिय० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव उर्वारम-गेवज्जा ति मिच्छत्त० ज० कम्स ? ऋण्णद० जो चडवीससंतकम्मिऋो दोवारं कसाए उवसामिरण अप्पष्पणो देवेसु उववण्णो तस्स जहण्णयं। बारसक०-णवणोक० ज० कस्स ? अण्णद् जो वेद्यसम्माइही दंसणमोहणीयमुवसामिय दोवारमुवसमसेहि-मारूढो पच्छा दंसणमोहणीयं खवेदण अप्पष्पणो देवेसु उववण्णो तस्स जहण्णमणुभाग-संतकम्मं । सम्मत्त-अणंताणु०च उक्त० देवाणं भंगो । अणुहिसादि जाव सन्बहिसिद्धि ति एवं चेव । णवरि अणंताणु०चउक्क० ज० कस्स ? अण्णद० अणंताणु० चउक्क०

उनमे सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागमन्कर्म नहीं होता। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य श्चपर्याप्तकोमे मिध्यात्व, सोलह[ँ]कपाय श्रौर नव नोकपायोके जघन्य श्रनुभागसत्कर्मका स्वामित्व पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान होता है । इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभाग सन्कर्मका स्वामी सूक्ष्म एकेन्द्रियसे मरकर त्राये हुए हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले जीवके कहना चाहिये ।

६ २७५ मनुष्यगतिमे मनुष्योमे श्रोघके समान समभता चाहिए। इतना विशेष है कि मिध्यात्व द्यौर त्र्याठ कपायोके जबन्य त्रानुभागसन्कर्मका स्वामित्व पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान है। मनष्य पर्याप्तकांमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें स्त्रीवेदका भङ्ग छह नोकपायोके समान है। मनुष्यिनियोमे सामान्य मनुष्योक समान स्वामित्व है। इतना विशेष है कि इनमें पुरुषपद और नपुसकवेदकं जघन्य अनुभागसकर्मका स्वामित्व छह नोकपायके समान है।

[ू] २७६ देवगतिमे देवोमे पहली पृथिवीके समान भग है । इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तरोमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमे सम्यक्त्वका जघन्य ऋनुभागसत्कर्म नहीं होता । ज्योतिपादेवोमे दूसरी पृथिवीके समान भंग है । सीधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देवोंम मिण्यात्वको जधन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अनन्तानुबन्धीचतुष्कके सिवाय चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव दो बार कपायोका उपशमन करके उन उन देवोंमे उत्पन्न हुआ है उसके जघन्य ऋनुभागसत्कर्म होता है। बारह कपाय ऋौर नव नोकपायोका जघन्य अनुभागमत्कर्म किसके होता है ? जो वेदकसम्यग्द्रष्टि जीव दर्शनमोहनीयका उपशम करके दो बार उपशम श्रेणीपर चढ़ा. पीछं दुर्शनमोहनीयका चय करके उन उन देवोमे उत्पन्न हुन्ना है उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म हाता है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग सामान्य देवोंके समान होता है। अनुदिशासे लंकर सर्वार्थीसद्धि पर्यन्त इसी प्रकार होता है। अनन्तान-

विसंजोएंतस्स चरिमे त्रणुभागकंडए वट्टमाणस्स । एवं जाणिद्ण णेदन्वं जाव त्रणा-

🕸 कालागुगमेण।

- इञ्जासुत्तमेदं ।
 उञ्जासुत्तमेदं ।
 - अ मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकिमिश्रो केविनिरं कालादो होदि ? १ २७८. सुगमं ।

बन्धीचनुष्कके जघन्य ऋतुभागके म्वामित्वके विषयमे इतना विशेष है कि ऋनन्तानुबन्धीचनुष्क का विसंयोजन करनेवाला जीव जब ऋन्तिम ऋनुभागकाण्डकमें वर्तमान होता है तब उसके जघन्य ऋनुभागमन्कर्म होता है। इस प्रकार जानकर ऋनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विश्रोपार्थ-त्रोपसे माहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंके त्रानुभागमत्कर्मका स्वामित्व जैसे पहले बतला आयं हैं वैसे ही जानना चाहिये। और त्यादेशसं भी प्रायः उसी प्रकार है किन्तु हतसमु-न्पत्तिक कर्मवाला असंज्ञी पञ्चोन्द्रिय पहले नरककं सिवा अन्य नरकोमे जन्म नहीं लेता, खतः दूसरे ऋादि नरकोमे मिथ्यात्व, वारह कपाय और नव नोकपायोंके जघन्य अनुभागसन्कर्मका म्यामी अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला सम्यग्दृष्टि होता है। सामान्य तिर्यञ्चोमे सुक्ष्म एकेन्द्रिय हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला स्वामी होता है । शेप तिर्यश्चोम मरकर जन्म लेनेवाला वही हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला सुक्ष्म एकेन्द्रिय जीव स्वामी होता है। सामान्यसे चारों ही गतियो मे अनन्तानुबन्बीचतुष्कके जबन्य अनुभागसन्कर्मका स्वामी अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करनेवाला जब पुनः अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होता है तब उसके प्रथम समयमें होता है। किन्तु निर्य च अवर्याप्र और मनुष्य अपर्याप्रमें अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन नहीं होता, अतः जो हत-ममुर्गात्तक कर्मवाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव मरकर उनमे जन्म लेता है वही स्वामी होता है। तथा देवगतिमे अनुदिशादिक विमानोमे अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाला जब अनन्तानुबन्धी के त्रान्तिम त्रातुमामकाण्डककी विसयोजना करता है तब उसके त्रानन्तानुबन्धीका जघन्य त्रानु-मागमन्द्रमें होता है, क्योंकि वहाँ अनन्तानुबन्धीका पुन: संयोजन समय नहीं है। सम्यग्मिण्यात्व का जधन्य अनुभागसत्कर्म केवल मनुष्यगतिमें ही होता है, क्योंकि सम्यग्मिश्यात्वका चपण मनुष्य ही करता है। मन्यक्त्व प्रकृतिका जघन्य अनुभागसन्कर्म पहले नरकमे, सामान्य तिर्यश्च, पञ्चीन्द्रयतिर्घञ्च त्र्यौर पञ्चीन्द्रय पर्याप्त तिर्घञ्चोमे. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त त्र्यौर मन्ष्यिनियोंन तथा भवनित्रकको छोड़कर शेप देवोंने होता है. क्योंकि इनमे या तो कृतकृत्यवेदक-सम्यन्द्रष्टी उत्पन्न हो सकता है। या इनमेसे किन्हींमे होता है। वैमानिक देवोंमे मिण्यात्व. बारह कपाय और नव नोकपायों के जघन्य अनुभागसन्कर्मके स्वामित्वके विषयमे जो विशेषता वह मुलमें बतलाई ही है।)

* कालका प्ररूपण करते हैं ।

ु २७७. म्वामित्वको कहकर द्याव एक जीवकी त्रपंक्षा कालका कथन करते हैं। यह प्रतिज्ञा सुत्र है त्राथान इस सूत्रमे कालका कथन करनेकी प्रतिज्ञा की गई है।

अमिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागमत्कर्मका कितना काल है ?

१ २७८. यह सूत्र सुगम है।

🟶 जहण्णुकस्सेण श्रंतोमुहुत्तं ।

९ २७६. उकस्साणुभागं वंधिय सव्वजहण्णेण कालेण घादिदस्स जहण्णकालो
 सव्युकस्सेण कालेण घादिदस्स सव्युक्तस्सकालो ति घेत्तव्वं ।

अ अणुक्तस्तअणुभागसंतकम्मं केवचिरं कालादो होदि ?

§ २८०. सुगमं।

🏶 जहरूणेण अंतोमुहर्स ।

§ २८१. कुदो १ उकस्साणुभागं घादिय सञ्जनहण्णमंतोम्रहुत्तकालमच्छिय पुणो उकस्साणुभागे पबद्धे तदुवलंभादो ।

🕸 उक्कस्सेण असंखेजा पोगलपरियदा।

§ २८२. कुदो ? उक्कस्साणुभागसंतकम्मं चादियूणं ऋणुक्कस्सम्मि णिवदिय अणुक्कस्साणुभागसंतकम्मेण पंचिदिएसु तप्याओग्गुक्कस्सकालमच्छिय पुणो एइंदिएसु गंत्ण ऋसंखे०पोग्गलपरियट्टे गमिय पच्छा पंचिदियं गंतूण बद्धुक्कस्साणुभागस्स तदुवर्त्जभादो ।

* जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है।

§ २७९, उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके यदि उसका घात सबसे जघन्य कालमे अर्थात् जन्दी ही कर दिया जाता है तो जघन्य काल होता है और यदि उसका घात सबसे उन्कृष्ट काल में किया जाता है तो सबसे उत्कृष्ट काल होता है, ऐसा अर्थ लेना चाहिये।

अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है।

§ २८० यह सूत्र सुगम है।

अन्तर्महर्त है।

\$ २=१ **मंका**—मिण्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक क्यो रहता है १

समाधान-इत्क्रष्ट अनुभागका घात करके सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर पुनः इत्क्रष्ट अनुभागका बन्ध करने पर अनुत्क्रष्ट अनुभागमत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है।

🛪 उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है ।

§ २८२. शंका मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसन्कर्मका उत्कृष्ट काल असंख्यातपुद्गत परावर्तनप्रमाण कैसे है ?

समाधान—उन्कृष्ट श्रनुभागसन्तर्मका घात करके. श्रनुन्कृष्टमं गिरकर श्रनुन्कृष्ट श्रनुभाग के साथ पश्चेन्द्रियोमें श्रिधिकसे श्रधिक जितने काल तक रह सकते हैं उतने काल तक ठहरकर पुनः एकेन्द्रियोमें जाकर श्रसंख्यात पुद्गल परावर्तन काल विताकर पीछं पश्चेन्द्रिय होकर जो उन्कृष्ट श्रनुभागका,वन्ध करता है उसके उन्कृष्ट काल श्रसंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण पाया जाता है।

१, आ० प्रती घादियाया इति पाठः।

🕸 एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं।

- ः २८३. जहा मिच्छत्तस्स जहण्णुकस्सकालपरूवणा <mark>कदा तहा एदेसिं पणु-</mark> बीसकसायाणं कायव्वा, विसेसाभावादो ।
- असम्मत्त सम्मामिच्छताणमुकस्साणुभागसंतकम्मिक्को केवचिरं कालादो होदि ?
 - ६ २⊏४. सुगमं ।
 - 🕸 जहरणेण अंतोमुहुत्तं ।
- २८५. णिस्संतकिम्मयमिच्छादिहिणा पढमे सम्मत्ते पिडवएऐ। सम्मत्त-सम्मा-मिच्छताणमुक्कस्साणुभागस्स आदी जादा। पुणो अंतोमुहुत्तकालमिच्छय उवसम-सम्मत्तकालकात्रेते अणंताणुविधिचउकं विसंजोइय वेदगं गंतूण सञ्चलहण्णकालेण दंसणमोहणीयं खवेंतेण अपुञ्चकरणद्धाए पढमे अणुभागखंडगे हदे सम्मत्त-सम्मामिच्छ-ताणमणुभागो जेण अणुक्कस्सो होदि तेण उक्कस्साणुभागकालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तमेत्तो होदि। अणंताणुविधिचउकं विसजोएं तस्स आउअवज्ञाणं कम्माणं हिदिअणुभागखंडऐं णिवदमाणे सम्मत्त-सम्मामिच्छताणं चेव किमिदि अणुभागखंडओ ण णिवदिदें ? ण,
 - * इसीप्रकार सोलह कपाय और नव नोकषायोंका जानना चाहिये।
- े २८३. जैसे मिथ्यात्वके उन्क्रष्ट और अनुन्क्रष्ट अनुभागसत्कर्मक जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन किया है वैसे हो इन पचीस कषायोंका भी कर लेना चाहिये। दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है।
- * सम्यक्त और सम्यग्निथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ?
 - २८४ यह सूत्र सुगम है।
 - * जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।
- ३ २८५ जिस मिध्यादृष्टिकं सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व की सत्ता नहीं है उसके प्रथमापशम सम्यक्त्वके प्राप्त करने पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व के उत्कृष्ट अनुभागका प्रारम्भ हुआ। पुनः अन्तमुहूर्तकाल तक ठहरकर उपशमसम्यक्त्वके कालके अन्दर ही अनन्तानु-वन्धीचतुष्कका विसंयोजन करके. वेदकसम्यक्त्वका प्राप्त करके उस जीवने सबसे जघन्य कालमे अर्थान् जितना शीघ हो सकता था उतना शीघ दर्शनमोहनीयका चपण करते हुए अपूर्वकरणके कालमे प्रथम अनुभागकाण्डकका घात किया। उस जीवकं सम्यक्त्व और सम्यग्निक्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है, अतः उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तमुहूर्त मात्र होता है।

शंका-अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवालेके जब आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकका घात होता है तब सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके ही अनुभागकाण्डकका घात क्यों नहीं होता ?

१. मा॰ प्रती म्रणुभागलंडचो णिवददि इति पाठः ।

साहावियादो ।

🛞 उक्कस्सेण वेछावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेय।णि 🖟

२८६. कुदो ? छर्व।ससंतकिम्यियिच्छाइिहस्स पहमसम्मतं येत्पूण्पाइदसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसंतकम्मस्स तत्थ अंतोम्रहुत्तमिच्छय वेदगसम्मतं पिडविज्ञिय पहमछाविहं गिमय पुणो सम्मामिच्छतं गंतृण तत्थ अंतोम्रहुत्तमिच्छय पुणो वेदगसम्मतं
येत्तृण विदियछाविहं भिमय तत्थ अंतोम्रहुत्तावसेसे मिच्छतं गंतृण पिछदो० असंखे०
भागमेत्तकालेण उव्वेद्धिदसम्मत्त-सम्मामिच्छतस्स पिछदो० असंखे०भागेणव्यहियवेद्धाविहिसागरोवममेत्ततदुक्कस्सकालुवलंभादो। अथवा तीहि पिछदोवमस्स अमंखे०भागेहि सादिरेयाणि वेद्धाविहसागरोवमाणि त्ति के वि आइरिया भणित। तं जहा—
उवसमसम्मतं येत्तृण पुणो मिच्छतं पिडविज्ञिय एइंदिएस् सम्मत्तिहिं पिछदो०
असंखे०भागमेतं ठिवय पुणो असण्णिपंचिदिएसुप्पिज्ञिय तत्थ अंतोम्रहुत्तेण देवाउअ
विधिय कमेण कालं करिय दसवस्ससहस्साउअदेवेसुप्पिज्ञिय पुणो पज्जत्त्वदो होदूण
उवसमसम्मतं पिडविज्ञिय पहमद्वाविहं भिषय मिच्छत्तं गंतृण पुणो दीहुव्वेद्धणकालेण
सम्मत्तिदिं चिरमफािलमेतं ठिवय पुणो उवसमसम्मतं पिडविज्ञिय विदियछाविहं
भिषय मिच्छत्तं गंतूण दीहुव्वेद्धणकालेण सम्मत्त-सम्मािमच्छत्ताण उव्विद्धिदं तीिह

समाधान-नहीं होता, क्योंकि ऐसा उसका स्वभाव हैं।

* उत्कृष्ट काल कुछ अधिक दो छियाछठ सागर है।

्र २८६. **शंका**—सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिण्यात्वके उत्कृष्ट श्रतुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कैसे हैं ?

समाधान-मोहनीय की छ्रव्यास प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिण्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त को प्रहार करके. सम्यक्त्व श्रीर सम्याग्मध्यात्वकी सत्ताको उत्पन्न करके प्रथम सम्यक्त्वमें श्रन्तर्मुहर्न काल तक ठहर कर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम छियासठ सागर विताता है। पुनः तीसरे गुणस्थानमे जाकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त तक ठहरकर पुनः वेदकसम्यक्त्वको प्रहण करके दूसरे छियासठ सागरमें जब ब्रन्तर्मुहूर्त काल वाकी रह जाता है तो भिष्यात्वको प्राप्त करके पत्यके असंख्यातवें भागमात्र कालम सम्यक्त्व और सम्यग्मिण्यात्वकी उद्गलना कर देता है. ऋतः उसके उत्कृष्ट ऋनुभागका उत्कृष्ट काल पत्यके ऋसख्यातवे भागमे ऋधिक दो छियासठ सागर पाया जाता है। ऋथवा किन्हीं ऋाचार्योका कहना है कि पन्यके तीन ऋसंख्यात भागोसे ऋधिक दो छियासठ सागर प्रमाण उत्कृष्ट काल है। वह इस प्रकार हे---उपशमसम्यक्त्व को प्रहण करके पुन: मिथ्यात्वको प्राप्त करके एकेन्द्रियोम सम्यक्त्वप्रकृतिकी स्थितिको प्रत्यके असंख्यातवे भागमात्र काल प्रमाण करके पुनः श्रसंज्ञी पञ्चेन्द्रियोम उत्पन्न होकर वहाँ स्त्रन्त-र्मुहर्तमे देवायुका बंध करके. कमसे काल पूरा करके दस हजार वर्ष की ऋायुवाले देवोमे उत्पन्न हुआ। वहाँ पर्याप्तक होकर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम छियासठ सागर काल तक भ्रमण करके मिण्यात्वमे जाकर पुन: दीवं उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्त्व की स्थिति श्रन्तिम फाली प्रमाण करके, पुनः उपशमसम्यक्त्वका प्राप्त करके दूसरे छियामठ मागर काल तक भ्रमण करके. मिध्यात्वमं जाकर दीर्घ उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्तव और सम्यग्निध्यात्वकी

पिंदो॰ असंखे॰भागेहि सादिरेयाणि वेद्याविद्यागरोवमाणि । अधवा अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि त्ति के वि भणंति । एदं सन्वं पि जाणिय वत्तन्वं ।

- अ अणुकस्सत्रगुभागसंतकम्मित्रो केवचिरं कालादो होदि ?
- ६२८७. सुगमं।
- 🕸 जहण्णुकस्सेण त्रंतोमुहुत्तं ।
- २== दंसणमाहणीयं खर्वेतेण अपुव्यकरणद्धाए पढमे अणुभागखंडए घादिदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणुकस्समणुभागसंतकम्मं ।तदो पहुडि श्रंतोग्रहुत्तकालमणुकस्सं चेव श्रणुभागसंतकम्मं होदि जाव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि णिल्लेविदाणि ति ।
- § २८६. संपिं उचारणमिस्सिर्ण कालाणुगमं भिणस्सामो । कालाणुगमो दुविहो नहण्णओ उकस्सञ्चो चेदि । उकस्सए पयदं । दुविहो णिद्दे सो त्रोघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० अणुभाग० केवचिगं? जह-ण्णुक्क० त्रंतोमु०। त्रणुक्क० न० त्रंतोमु०, उक्क० त्रणंतकालमसंखेजा पोग्गलपिरयद्दा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० न० त्रंतोमु०, उक्क० वेद्याविद्यागरो० सादिरेयाणि । अणुक्क० नहण्णुक्क० श्रंतोमुहुत्तं ।
- \$ २६०. आदेसेण णेरइएसु छब्बीसं पयडीणं उक्क० ज० एगस०, उक्क० उद्वेलना कर देने पर पत्यके तीन असंख्यातवें भागोसे अधिक दो छियासठ सागर प्रमाण उत्कृष्ट काल होना है। अथवा विन्हींका कहना है कि अन्तर्मुहूर्त अधिक दो छियासठ सागर व्कृष्ट काल है। इस सबको जानकर कथन करना चाहिये।
 - अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ?
 ६२८० यह सूत्र सुगम है।
 - 🔅 जवन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्प्रहूर्त है।
- ्र८८ दशेनमोहनीयका चपण करनेवाले जीवके द्वारा श्रपूर्वकरणके कालमे प्रथम श्रमुभागकाण्डकका घात कर देने पर सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्निध्यात्वका श्रमुत्कृष्ट श्रमुभाग-सत्कर्म होता है। श्रीर तबसे लेकर सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्निध्यात्वका विनाश होने तक श्रन्त-र्मुहूर्त काल पर्यन्त श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागसत्कर्म ही रहना है, श्रतः जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है।
- ू २८९, अब उचारणावृत्तिक। आश्रय लेकर कालानुगमको कहेंगे। कालानुगम दो प्रकारका है— जघन्य और उन्कृष्ट । श्रकृतमे उन्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है— श्रोघ और आदेश। स्रोघसे भिष्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायोक उन्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका किनना काल है ? जघन्य और उन्कृष्ट काल अन्तमृहूर्न है। अनुन्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मृहूर्न और उन्कृष्ट काल अनन्तकाल अथान् असस्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। सम्यक्त्य और सम्यग्मिष्यात्वके उन्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल खन्तर्मृहूर्न और उन्कृष्ट काल कुछ अधिक दो छियासठ सागर प्रमाण है। अनुन्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उन्कृष्ट काल अन्तर्मृहूर्न है।
 - ू २९०. आदेशसे नार्राक्योमें छव्बीस प्रकृतियोके ब्ल्कुष्ट अनुभागसन्कर्मका जघन्य

श्रंतोग्रुः । श्रणुक्कः जिं एगसः , उक्कः तेतीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि । सम्मत्तः उक्कः जिं एगसः , उक्कः तेतीसं सागरोवमाणि सगलाणि । अणुक्कः जिं एगसः , उक्कः श्रंतोग्रुः । सम्मामिः उक्कः मिच्छताणुक्कस्सभंगो । अणुक्कस्सं णित्थः । एवं पढमादि जाव सत्ति । णवरि सगसगुक्कस्सिट्टदी वत्तव्वा । विदियादि जाव सत्तिमि ति सम्मतः अणुकः णित्थः ।

इत्रश्. तिरिक्तेसु छ्वीसं पयडीणसुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु०। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंत्रेज्ञा पोग्गलपरियद्दा। सम्मत्त० उक्क० अणुभाग० ज० एगस०, उक्क० तिष्णि पिलदोवमाणि पिलदो० असंत्रे०भागेण सादिरेयाणि। अणुक्क० णेरइयभंगो। सम्मामि० उक्क० अणुभाग० ज० एगस०, उक्क० तिष्णि पिलदोवमाणि पिलदोव असंत्रे०भागेण सादिरेयाणि। अणुक्क० णेरइयभंगो। सम्मामि० उक्क० अणुभा० जह० एगस०, उक्क० तिष्णि पिलदोवमाणि पिलदोवमस्स असंत्रेज्ञिदभागेण सादिरेयाणि। अणुक्कस्सं णित्य। पंचिदियतिरिक्त्वितियम्म छ्विसंपयडीणं उक्क० तिरिक्त्वभंगो। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगिद्दि। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुभाग० जह० एगसमओ, उक्क० सगिद्दि। सम्मत्त० अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु०। णवरि जोणिणीसु सम्मत्त० अणुक्क० णित्य।

काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागमत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है। सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिण्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल मिण्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागके कालकी तरह है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नरकमें नहीं होता। इस प्रकार पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं तक होता है। इतना विशेष है कि प्रत्येक पृथिवीमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थित कहनी चाहिये। दृसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं तक सम्यक्त्वका अनुतकृष्ट अनुभाग नहीं रहता।

इ २९१. तिर्यश्चोमे छन्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्महूर्त है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तरकाल अर्थान् असंख्यात पुर्गल परावर्तनप्रमाण् है। सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन पत्य है। अनुत्कृष्टका नारिकयोंके समान भंग है। सम्यिमध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन पत्य है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। पश्चे न्द्रियतिर्यश्च, पश्चे न्द्रियतिर्यश्च पर्याप्त और पश्चे न्द्रिय तिर्यश्च यानिनी जीवोमे छन्वीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल सामान्य तिर्यश्चोके समान है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण् है। सम्यक्त्व और सम्यिमध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण् है। सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण् है। सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण्यात्वके उत्कृष्ट काल अनुतकृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वके अनुतकृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। इतना विशेष है कि तिर्यश्वयोनिनियोम

पंचिदियतिरिक्तः अपज्ञा०-मणुस्सत्रपञ्ज० अद्वावीसं पयडीणं उक्कस्साणुभाग० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोग्र० । अणुक्क० जहण्णुक० त्रंतोग्र० । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क० णित्थ । मणुसतिय० पंचिदियतिरिक्त्वतियभंगो । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क० ओघं । मणुसपज्जतेग्र सम्मत्त० त्रणुक्कस्साणुभाग० ज० एगस० ।

२६२. देवाणं णेरइयभंगो । एवं भवणादि जाव सहस्सार ति । णविर सगसगुक्तस्सिहिदी वर्चा । भवण०--वाण०--जोदिसि० सम्मन् अणुक्त० णित्थ । आणदादि जाव णवगेवज्ञा ति भिच्छन्त--बारसक०--णवणोक० उक्तस्साणुक्त० ज० स्रंतोष्ठ०, उक्क० सगिहिदी । सम्मन्त० उक्तस्साणुभाग० ज० एगस०, उक्क० सगिहिदी । एवं सम्मामि० । सम्मन्त० अणुक्त० देवोघं । अणंताणु०चउक्क० उक्क० जह् स्रंतोष्ठ० एगसमओ, उक्क० सगिहिदी । अणुहिसादि जाव सन्वहिसिद्धि ति इच्चीसं प्यडीणं उक्तस्साणुक्तस्स० ज० स्रंतोष्ठ०, उक्क० सगिहिदी । सम्मन्त० उक्क० ज० जहण्णहिदी, उक्क० उक्तस्सिहिदी । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० स्रंतोष्ठ० । एवं सम्मामि० । णविर अणुक्क० णित्थ । एवं जाणिदृण णेदन्वं जाव स्रणाहारि ति ।

सम्यक्त्वका अनुन्कृष्ट अनुभागसन्कर्भ नहीं होता। पश्चे न्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्त और मनुष्य-अपर्याप्तकोमे अट्टाईस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुन्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिण्यात्वका अनुन्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमे पश्चे न्द्रियतिर्यश्च, पश्चेन्द्रियतिर्यश्चपर्याप्त और पश्चेन्द्रियतिर्यश्चयोनिनीके समान भंग है। इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिण्यात्व के अनुन्कृष्ट अनुभागसन्कर्मका काल आघकी तरह है। मात्र मनुष्यपर्याप्तकोमे सम्यक्त्वके अनुन्कृष्ट अनुभागसन्कर्मका जघन्य काल एक समय है।

६ २९२. सामान्य देवोंमं नारकियोके समान भंग है। इसी प्रकार भवनवासीसे <mark>लेकर</mark> सहस्रार स्वर्गतकके देवामे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि अपनी अपनी उस्कृष्ट स्थित कहनी चाहिये। भवनवासी, व्यन्तर श्रीर ज्यातिषियोंमें सम्यक्त्वका श्रतुत्कृष्ट श्रतुभागसत्कर्म नहीं होता। त्र्यानत स्वर्गसे लेकर नवप्रैंबयक तकके द्वामे मिथ्यात्व, वारह कपाय और नव नोकपायोके उत्कृष्ट त्रीर त्र्यनुत्कृष्ट त्र्यनुभागसन्कर्मका जवन्य काल त्र्यन्तर्भुहूर्त त्रीर उत्कृष्ट काल त्र्यपनी त्रपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अन्मागसन्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल त्रपनी त्रपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यत्वका समभना चाहिए। सम्यक्त्व**के** अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल सामान्य देवोंकी तरह जानना चाहिए। अनन्तानुबन्धीचतुरकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जधन्य काल क्रमशः अन्तर्मुहूर्त और एक समय है और उन्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमास है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थमिद्धि तकके देवोमे छन्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल त्रपुनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वके उत्कृष्ट त्रानुभागसत्कर्मका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण श्रीर उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय त्र्यौर उत्कृष्ट काल ऋ तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सम्यग्मिश्यात्वका जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उसका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिय।

अ मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकिम्मिक्रो केवचिरं कालादो होदि ? ऽ २६३, सुगमं ।

विशेपार्थ-छव्बीस प्रकृतियोम से किसी का भी उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करके मरकर नरकमं जन्म लेकर यदि दूसरे समयमे ही उसका घात कर देता है या नरकमे अन्तिम समय उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करके दूसरे समयमें अन्य गतिमे चला जाता है तो नरकमें उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागमत्कर्मका जघन्य काल एक ममय होता है। श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमहूर्त है, क्योंकि अन्तर्महूर्तसे अधिक काल तक उनका उत्क्रष्ट अनुभाग नहीं ठहरता। तथा कोई नारकी उक्तप्र अनुभागका घात करके यदि आयुके चय हो जानेमं दूसरे समयमे मर जाता है तो उसके उक्त प्रकृतियोंके अनुकृष्ट अनुभागका जवन्य काल एक समय होता है तथा उत्कृष्ट काल सामान्य से सम्पूर्ण ततीस सागर जानना चाहिए श्रौर विशेषसे प्रत्येक नरककी जितनी जितनी उन्कृष्ट स्थिति है उतना जानना चाहिए। सम्यक्त्व प्रकृतिकं उत्कृष्ट अनुभागसन्कर्मका जघन्य काल एक समय उद्वलनाकी अपेक्षासे होता है और उक्तप्ट काल नरकमे अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रभाग होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल जानना चाहिए। सम्योगिध्यात्व तथा सम्यक्तव प्रकृतिका अनुतकृष्ट अनुभागसन्कर्म दुर्शनमाहके ज्ञपकके अपूर्व-करण कालमे प्रथम अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर हाता है, अतः कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि मरकर नरकमें जन्म लेकर यदि दूसरे समयमें सम्यक्त्वका चपण कर देता है तो सम्यक्त्वके अनुन्कृष्ट अनुभागसन्कर्मका जघन्य काल एक समय होता है. अन्यथा अन्तर्मृहर्त हाता है, क्योंकि नरकमें भी कृतकृत्यवेदकका उत्क्रष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है। सम्यग्निध्यात्व प्रकृतिका अनुक्षष्ट अनुभागसत्कर्म केवल मनुष्यगतिम ही सम्भव है. क्योंकि कृतकृत्य होने पर ही मरण होता है और सम्यग्मिण्यात्वका चप्ण इससे पहले हो चुकता है। सामान्य निर्यञ्चामे छन्बीस प्रकृतियोके अनुःकृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परावर्तनप्रमाण है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागसन्तर्भका यात करके, अनुत्कृष्ट अनुभागसन्तर्भके साथ पश्चे न्द्रियोमे उनके योग्य उत्कृष्ट काल तक रहकर, पुनः एकेन्द्रियोमे जाकर असंख्यात पुट्गल परावर्तन तक रह कर, पीछे पञ्चेन्द्रिय होकर, उत्कृष्ट अनभागबन्ध कर लेने पर उतना काल होता है। सम्यक्त्व छौर सम्य-ग्मिण्यात्व प्रकृतिके उन्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उन्कृष्ट काल पत्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन पस्य है, क्योंकि कोई तिर्यश्व उपशम सम्यक्त्वको प्रहण करके पुन: मिध्यात्वमे ब्राकर एकेन्द्रियो में कुछ कम पत्यके असल्यातवे भाग काल तक ठहर कर, पुन: पर्श्वन्द्रिय होकर उपशम सम्यक्त को प्राप्त करके मिध्यात्वमें जाकर तीन पत्यकी म्थिति लेकर भागभूमिमें उत्पन्न हुआ श्रीर वहाँ पर वेदकसम्यग्द्रष्टि होगया । फिर भोगभूमिसे निकलकर वह देव होगा, श्रतः (तर्य बोसे सम्यक्तव त्रीर सम्याग्मध्यात्व प्रकृतिकं उत्कृष्ट त्रानुभाग का उत्कृष्ट काल पत्यका त्रासंख्यातवाँ भाग ऋधिक तीन पत्य होता है। पञ्चीन्द्रय तिर्यञ्चीत्रकमें मूलमें कहे श्रनुसार जानना चाहिए तथा उन्हींकं समान मनुष्यित्रकमें समभ लेना चाहिए। देवगतिमें भी पूर्वमें कही गई प्रक्रियाके श्रनुसार कालकी योजना कर लेनी चाहिए। श्रनुदिशादिकमें जो सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्नि-ध्यात्वके उत्हृष्ट ऋनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समग्र न वतलाकर ऋपनी ऋपनी जघन्य स्थिति प्रमाण बतलाया है उनका कारण यह है कि वहाँ इन दोनो प्रकृतियोकी उद्वेलना नहीं होती, क्योंकि इनकी उद्वेलना मिध्यात्वमें ही होती है।

मिथ्यात्वकं जघन्य अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ? ६ २९३. यह सूत्र सुगम है।

अ जहण्युकस्सेण श्रंतोमुहत्तं।

् २६४. कुदो ? सुहुमम्स हदसमुष्पत्तियकम्मेणावद्दाणकालस्स जहण्णुकस्स-विसेसिदस्स गहणादो '

🟶 एवं सम्मामिच्छुत्त श्रद्धकसाय छुण्णोकसायाण् ।

६२९५. जहा मिच्छत्तम्स जहण्णाणुभागकालपरूवणा कदा तहा एदंसि पि कायव्वा, विसेसाभावादो ।

असम्मत्त-अणंताणुबंधि चदुसंजलण तिरिणवेदाणं जहण्णाणुभाग संतकम्मित्रो केवचिरं कालादो होदि ?

ः २६६. सुगमं ।

🕸 जहणुकस्सेण एगसमञ्जो।

§ २६७. सम्मन्तस्स चरिमसमयअक्ष्वीणदंसणमोहणीयस्मि कोथ-माण-माया संजलणाणं तेसि चरिमसमयपबद्धस्म चरिमसमयसंकामियस्मि लोभसंजलणस्स चरिम-समयसकसायस्मि इत्थि-णवृंसयवेदाणं चरिमसमयसवेदस्मि पुरिसवेदस्स चरिमसमय-णवकवंथसंकामयस्मि जेण जएणाणुभागसंतकस्मं जादं तेणेदेसि जहण्णुकस्सेण एगसम्ब्रो नि जुज्जदे। णाणंताणुवंथीणं, तेसि विदियादिसमण् संतविणासाभावादो ति १ ण एस

* जवन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है ?

२८४ क्योंकि सूझ्म एकेन्द्रिय जीवके हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ रहनेके जघन्य श्रौर उत्कृष्ट कालका यहाँ प्रहण् किया है।

 इसी प्रकार सम्यग्निष्ठवात्व, आठ कपाय और छह नोकपायोंके ज्ञान्य अनुभागमन्कमेका काल कहना चाहिये।

२९५. जैसे मिश्यात्वके जघन्य अनुमागमत्कर्मके कालका कथन किया है वैसे ही इनके भी कालका कथन करना चाहिये। उससे इनवें कोई विशेषता नहीं हैं।

* सम्यक्त, अनन्तानुबन्धिचतुष्क, मंज्वलनचतुष्क और तीनों वेदोंके जघन्य अनुभागमत्कभका कितना काल हे ?

् २९६ यह सूत्र सुगम है .

अज्ञानिय और उत्कृष्ट काल एक समय है।

्रहे अद्योत सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसन्तर्म दर्शनमोहका क्षय करने वालेके अन्तिम समयमे होता है. मंज्ञलन क्रोध मान और भायाका जघन्य अनुभागसन्तर्भ उनके अन्तिम समयप्रबद्धका सकत्मण करनेवालेके अन्तिम समयमे होता है। संज्ञलन लोभका जघन्य अनुभागसन्तर्भ स्कृतमान्यराय गुण्नथानके अन्तिम समयमे होता है। स्त्रीवेद और नपुसक वेदका जघन्य अनुभागसन्तर्भ उनका वेदन करनेवालेके अन्तिम समयमें होता है और पुरुष-वेदका जघन्य अनुभागसन्तर्भ पुरुषवेदके नये समयप्रबद्धका संक्रमण करनेवालेके अन्तिम समयमें होता है। कन्तु अनन्तानुबन्धीका एक समय काल युक्त नहीं है, क्योंकि एक समय के पश्चान द्वितीय आदि समयमें उनकी सत्ताका

दोसो, समयं पिंड अणंतगुणाए सेंडीए तदणुभागवंधे वड्डमाणे संज्ञत्तविदयादिसमएसु जहण्णाणुभागाणुववत्तीदो । संज्ञतपढमसमए संसकसाएहितो अणंताणुवंधीसु संकंताणुभागं पेक्खिद्ण विदियादिसमएसु संकंताणुभागो सिरसो ति जहण्णाणुभागकालो अंतोमुहुत्तमेतो किएए। जायदे ? ण, 'वंधे संकमिद' ति संसकसायाणुभागस्स अणंताणुवंधीणमणुभागसक्त्वेण परिणयस्स पहाणताभावादो । जहा बज्भमाणदहरिदिशि उविर संकममाणमहन्नसंतिहिदीए वंधिहिदिसक्त्वेण परिणामो णित्थ तहा अणुभागसंतस्स वि बज्भमाणाणुभागसक्त्वेण परिणामो णित्थ ति किएए। घेष्पदे ? ण, हिदिसंतादो अणुभागसंतस्स भिएए। जादित्तादो । जं जाए जाईए पिंडवएएं तं ताए चेव जाईए होदि ति अञ्भुवगंतुं जुतं, ण अएए। अङ्पसंगादो । अणुभागम्मि हिदिक्कमो णित्थ ति कुदो णव्वदे ? पढमसमयसंज्ञत्तस्से ति सामित्तसुत्तादो णव्वदे । हिदिसंतोवटणाए विणा अणुभागसंतस्स जिद बज्भमाणाणुभागसक्त्वेण संकममाणस्स अणंतगुणहीण-

समाधान-यह दोप उचित नहीं हैं. क्योंकि जब प्रति समय अनन्तगुराश्रेणीरूपसे अनन्तानुबन्धीका अनुभागबन्ध हो रहा है तो अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होनेके दूसरे आदि समयोंमें उसका जघन्य अनुभाग नहीं बन सकता।

शंका –संयुक्त होनेके प्रथम समयमें शेष कपायोसे अनन्तानुबन्धी कपायोमे संक्रान्त हुए अनुभागका देखते हुए दूसरे आदि समयोमें जो अनुभाग मंक्रान्त होता है वह पहलेके समान है, अतः अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुभागका काल अन्तर्मुहूर्त क्यां नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'बन्ध अवस्थामें संक्रमण होता है' ऐसा कहा है। अतः शेष कपायोंका जो अनुभाग अनन्तानुबन्धीके अनुभागक्ष्यसे परिणमन करता है उसकी यहाँ प्रधानता नहीं है। अर्थान् यद्यपि द्विनीयादि समयोमें सकान्त होनेवाला अनुभाग भी प्रथम समय सम्बन्धी अनुभागके समान नहीं है किन्तु संक्रान्त हुए अनुभागकी वहाँ प्रधानता नहीं है अपितु बंधनेगले अनुभागकी प्रधानता है।

शंका – जैसे जघन्य स्थितिका बन्ध होने हुए. ऊपर संक्रमित होनेवाली सत्तामें विद्यमान उक्कष्ट स्थितिका बंधनेवाली स्थितिके रूपमें परिग्णमन नहीं होता है उसीप्रकार सत्तामें विद्यमान अनुपागका भी वध्यमान अनुपागक्त्रसे प्रग्णमन नहीं होता ऐसा क्यों नहीं मानते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्थितिसत्त्वसे अनुभागसत्त्वकी जाति भिन्न है। जो बात जिस जातिमें प्राप्त है वह इसी जातिमें होती है ऐसा मानना योग्य है, अन्यत्र नहीं, क्योंकि एक जाति की बात दूसरी जातिमें माननेपर अतिप्रसङ्ग दोष आता है।

शंका-अनुभागमें स्थितिका क्रम नहीं है यह कैसे जाना ?

समाधान-अनन्तानुब धीका जघन्य अनुषागस कर्म संयुक्त जीवके प्रथम समयमें होता है, इस स्वामित्वको वनलानेवाले सूत्रसे जाना ।

शंका-यदि सत्तामें विद्यमान स्थितिकी अपवर्तनाके विना सत्तामें विद्यमान अनुभाग

^{1.} ता० प्रतौ संकंतासु श्रग्रुभागं इति पाठः ।

त्रणेण परिणामो होदि तो अणुभागसंतादो वज्भमाणाणुभागे अणंतगुणे संत संतिहदीए अणुभागेग अणंतगुणेण होदन्वमिदि सच्चं, इच्छिज्जमाणतादो । एवं होदि ति कुदो णन्वदे ? सजोगिकेविलिम्ह पुन्वकोडिविहरिदम्मि सादावेदणीयस्स उक्कस्साणुभागुव-लंभादो । सुहुममांपराइयस्स उक्कस्साणुभागेण सह वज्भमाणचिरमिहिदिवंधो बारस-मुहुत्तमेतो । तिम्म बारसमुहुत्तेसु अथिहिद्गेष्ठणाए गिलिदेसु उक्कस्साणुभागाभावेण वि होदन्वं, पदेसेहि विणा अणुभागस्स अत्थित्तविरोहादो । अत्थि च उक्कस्साणुभागो मजोगिम्हि, तदो णन्वदे नहा संतिहिदिपदेसा बज्भमाणाणुभागसक्त्वेण उक्कि ज्ञांति ति तम्हा अणंताणुबंधीणं वि एगसमयत्त ज्ञादि ति । एवं चुण्णिसुत्तमिस्सद्ण अोध-काळाणुगमं पक्षविय संपिह उच्चारणमिस्सदृण पक्षवेमो ।

बध्यमान अनुमागरूपसे सक्रमण करता है और इस तरह वह अनन्तगुणे हीन रूपसे परिणमन करता है अर्थान् उसका अनुमाग अनन्तगुणा हीन हो जाता है तो सत्तामे विद्यमान अनुभाग से वध्यमान अनुभाग अनन्तगुणा होने पर सत्तामें स्थित अनु गण अनन्तगुणा हो जाना चाहिये। अर्थान् जब बध्यमान अनुमागरूपसे परिणमन करनेपर सत्तामें स्थित अनुभाग घट सकता है तो बहना भी चाहिये?

समाधान-आपका कहना सत्य है। यह तो इष्ट ही है। शंका-अनुमाग बढ़ भी जाता है यह कैसे जाना ?

समाधान एक पूर्वकोटि तक विहार करनेवाल सयोगकेवलीमें साताबेदनीयका उत्कृष्ट अनुभाग पाया जाता है। इसका खुजामा इसप्रकार है सूक्ष्मसाम्पराय नामक द्सवे गुण्म्थानवर्ती जीवके उत्कृष्ट अनुभागके साथ वंधनेवाला साताबेदनीयका अन्तिम स्थितिवन्ध बारह मुहूर्त मात्र होता है। अधःस्थितिगलनाके द्वारा उन बारह मुहूर्ताका चय हो जानेपर उत्कृष्ट अनुभागका भी अभाव होना चाहिये; क्योंकि प्रदेशोंक विना अनुभागकी सत्ता नहा रह सकती। किन्तु सयोग वेलीमें उत्कृष्ट अनुभाग रहता है. अतः जाना जाता है कि सत्तामें विद्यमान स्थितिसत्कर्म बध्यमान अनुभागक्ष्म उत्कर्षको प्राप्त हो जाते हैं, अतः अनन्तानुबन्धीका भी एक समय काल युक्त है।

इस प्रकार चूर्णिसूत्रका त्राश्रय लेकर श्रोधसे कालानुगमको कहकर श्रव उच्चारगाका त्राश्रय लेकर कालको कहते हैं—

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धी कपायका विसंयोजन करक सम्यक्ति च्युत होकर जो अनन्तानुबन्धीका बन्ध करता है उसके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। उसका काल एक समय है. क्यों कि दूसरे समयमें सक्छेशके बढ़ जानेसे अनुभागबन्ध तीत्र होने लगता है। इसपर शकांकारका कहना है कि प्रथम समयसे ही सनामें स्थित अन्य कपायों परमाणु अनन्तानुबन्धीन पसे सक्षमण करने लगते हैं सो जैसे प्रथम समयमें सक्षमण करने हैं बैसे ही दूसरे समयमें संक्षमण करते हैं, उनके अनुभागमें कोई अन्तर नहीं हैं, अतः जघन्य अनुभागकी सत्ताका काल अन्तर्भुहूर्त क्यों नहीं कहा तो उसका उत्तर दिया गया कि यहाँ संक्रमित अनुभागकी प्रधानता नहीं है किन्तु बध्यमान अनुभागकी प्रधानता है। अर्थान् संकान्त अनुभाग वध्यमान अनुभाग सकान्त

१. ता॰ प्रतौ उक्कस्साणुभागो जोगिम्हि इति पाठः।

्र २६८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहं सो—अघिण आदेसेण य । ओघेण मिच्छना-अहक जहण्णाणु जहण्णुक च्रांतोमु । अजहण्णाणु ज च्रांतोमु , उक्क असंखेज्ञा लोगा । सम्मन्त जहण्णाणु जहण्णुक एगम । अजहण्णाणु ज च्रांतोमु , उक्क वेद्याविहिसागरोवमाणि तिण्णि पिलदोवमम्स असंखेज्जिदिभागेहि सादिरेयाणि । सम्मामि जहण्णाणु जहण्णुक च्रांतोमु । अज सम्मन्तभंगो । अणंताणु च चक्क जहण्णाणु जहण्णुक ण्यसमओ । अज तिण्णि भंगा । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स ज च्रांतोमु , उक्क च च्रुंपोग्गलपियटं । च दुसंज -ितिण्यिवेद जहण्णाणु जहण्णुक ण्यस । अज अणादिओ अपज्जविसदो अणादिओ सपज्जवसिदो । अण्णोक जहण्णाणु जहण्णुक च्रांतोमु । अज अणादिओ अपज्जविसदो अणादिओ सपज्जवसिदो । अण्णोक जहण्णाणु जहण्णुक च्रांतोमु । अज कोथसंजलणभंगो ।

अनुभागरूपसे नहीं परिणमन करता। आगे इसीके सम्बन्धमे जो शकःसमाधान किया गया है वह स्पष्ट है। अतः अनन्तानुबन्धीके जधन्य अनुभागसन्दर्भके जधन्य और उन्कृष्ट दोनों काल एक समय मात्र है।

्र९८ जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है - श्रोघ श्रोर श्रादेश। श्रोघसे मिण्यात श्रोर श्राठ कपायोके जघन्य श्रनुभागमत्कर्मका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुहूर्त है। श्रजघन्य श्रनुभागसत्कर्मका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रमंख्यात लोक प्रम ए है। सम्यक प्रे जघन्य श्रनुभागमन्कर्मका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागसकर्मका जघन्य काल श्रन्तमुहूर्त श्रीर उद्घृष्ट काल पत्योपमक तीन श्रमंख्यात भागांसे श्रिष्ठ दो श्रियासठ सागरप्रमाण है। सम्यग्निश्यात्वके जघन्य श्रनुभागसत्कर्मका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुहूर्त है। श्रजघन्य श्रनुभागस कर्मका भङ्ग सम्यक्त्य समान है। श्रजघन्य श्रनुभागमन्कर्ममें तीन भङ्ग होते है—श्रनादि—श्रनत, श्रनादि—सानत श्रीर सादि—सानत। उनमें से जो सादि—सानत भङ्ग है उमका जघन्य काल श्रन्तमुहूर्त श्रीर अकृष्ट काल कुछ कम श्रिष्ठ प्रतापरावर्तनप्रमाण् है। चार मञ्जलन कपाय श्रीर तीना वदो ज्ञचन्य श्रनुभागसन्कर्म श्रनादि श्राप्त व्यवस्थ श्रनुभागसन्कर्म श्रनादि श्रनावन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागसन्कर्म श्रनादि श्रनावन्य श्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रजघन्य श्रनुभागसन्कर्म श्रनादि श्रनावन्य श्रीर अनादि—सानत है। श्रनघन्य श्रनुभागसन्कर्मका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुहूर्त है। श्रजघन्य श्रनुभागसन्कर्मका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुहूर्त है। श्रजघन्य श्रनुभागसन्कर्मका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुहूर्त है। श्रजघन्य श्रनुभागसन्कर्मका भङ्ग संज्ञ्यलनक्रोधके समान है।

विशेषार्थ-श्रोघसं मिण्यात्व. त्राठ कपाय. त्रमन्तानुबन्धी. सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिध्यात्व के जघन्य श्रमुभागका काल चूर्णिसूत्रमे वतलाये गये कालके श्रमुमार समक्ष लेना चाहिये। तथा श्रजघन्य श्रमुभागका काल उत्कृष्ट श्रमुभागक कालकी ही तरह जानना। श्रमन्तानुबन्धी हे श्रजघन्य श्रमुभागमत्कर्ममे तीनो विकल्प होते हैं. क्यों कि उसका विसंयोजन होकर भी पुनः बन्ध हो सकता है। किन्तु चारों संज्ञलन श्रीर तीनो बदोमे मादि—सान्त भंग नहीं होता क्योंकि इनका विनाश क्षपकश्र गिमे ही होता है। ६ नोकपायों के जघन्य श्रमुभागमत्कर्मका काल भी पूर्ववन् जानना।

[।] ता० प्रतो [प्र] जहरुगागु०, স্থা০ प्रतो ग्रमहरुगागु० इति पाटः।

३ २६६. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त--बारसक०--णवणोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० त्रंतोसु०। अज० ज० दसवस्समहस्साणि श्रंतोसुहुनूणाणि, उक्क० तेतीसं सागरोवमाणि संपुएएगाणि । सम्मत० जहएएगाणु० जहएएगुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० तेतीसं सागरो० संपुएएगाणि । एवमणंताणु०चउक०। सम्मामि० सम्मत्त-भंगो । णवरि जहएएगं णित्थ । एवं देवोघं । पहमपुढवि० एवं चेव । णविर सगिहदी भाणिद्व्वा । विदियादि जाव सत्तमि ति वावीसप्पयडीणं जहण्णाणु० ज० श्रंतोसु०, उक्क० सगिहदी देसूणा । अज० ज० श्रंतोसु०, उक्क० सगिहदी संपुएएगा । सम्मत०-सम्मामि० उक्कस्सभंगो । अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० जहएएगुक्क० ओधं । अज० ज० एगस०, सत्तमीए श्रंतोसुहुत्तं, उक्क० सगिहदी ।

३००. तिरिक्षेसु मिच्छत्त--वारसक०--णवणोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० त्रंतोसुहुत्तं । अज० ज० एगसमओ, उक्क० असंखेजा लोगा । सम्मत्त० जह-एणाणु० जहएणुक० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० तिरिएए पिलद्रोवमाणि पिलद्रोव असंखे०भागेण सादिरेयाणि । एवं सम्मामि०। णवि जहएएां णित्थ । अणं-ताणु०चउक्क० जहएए। एणु जहएणुक्क० एगम०। अज० ज० एगम०, उक्क० अणंत-

् २९९ श्रादेशसे नारिकयोमें मिण्यात्व, वारह कपाय और नव नोकपायोक जघन्य अनुभागसन्तर्भका जघन्य काल एक रामय है और उत्कृष्ट काल सन्तर्महूर्त है। श्रजघन्य श्रनुभाग
सन्तर्भका जघन्य काल श्रक्त मुहुर्त का दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेनीस सागर
प्रमाण है। सम्यक्तके जघन्य श्रनुभागसन्तर्भका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेनीस सागर प्रमाण
है। इसीप्रकार श्रननानुबन्धीचनुष्कका भद्ग है। सम्यग्मिण्यात्वमे सम्यक्तके समान भंग है।
इतना विशेष है कि नरकमें उनका जघन्य श्रनुभागस्त्रम्म नहीं रहता। सामान्य देवोमें इसी
प्रकार समसना चाहिए। पहनी पृथिवीमें इसी प्रकार होता है। इतना विशेष है कि वहाँ जो श्रपनी
स्थिति है वहीं कहनी चाहिये। दूसरीसे लेकर सानवी पृथिवी पर्यन्त बाईस प्रकृतियोक जघन्य
श्रनुभागस कर्मका जघन्य काल श्रन्तमुहृते और उक्षण्ट काल कुछक्त श्रपनी स्थित प्रभाण है।
श्रजघन्य श्रनुभागसित्कर्मका जघन्य काल श्रन्तमुहृते और उक्षण्ट काल श्रदनी सम्पूर्ण स्थित
प्रभाण है। सम्यक्त श्रीर सम्यग्मिण्यात्वमे उक्षण्ट श्रनुभागसक्तक समान भग है। श्रन्तनानुवन्धीचनुष्कके जघन्य श्रनुभागसक्तक जघन्य श्रनुभागसक्तक जघन्य श्रनुभागसक्तक समान भग है। श्रन्तनाच चाहिए। श्रजघन्य श्रनुभागसत्क्रमका जघन्य काल एक समय और सातवी पृथिवीमें श्रन्त पृहुर्त है तथा उन्त्रष्ट काल श्रवनी स्थितिष्रमाण है।

३००. तिर्यश्चोमें मिण्यात्व, वारह कपाय और नव नाकपायों के जयत्य अनुभाग-सत्कर्मका जयत्य काल एक समय और उन्कृष्ट काल अन्तर्महूर्त है। अजयत्य अनुभागस्कर्मका जयत्य काल एक समय और उन्नृष्ट काल असंख्यात लाकप्रभाग है। सम्यक्ष्यके जयत्य अनुभागस्कर्मका जयत्य और उन्नृष्ट काल एक समय है। अजयत्य अनुभागस्कर्मका जयत्य काल एक समय और उत्मृष्ट काल पत्यके असम्ब्यातवे भागसे अधिक तीन पत्य है। इसा प्रकार सम्याग्मिण्यात्वमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तिर्यश्चोमें उसका जयत्य अनुभाग नहीं होता। अनत्तानुबन्धीचतुष्कके जयत्य अनुभागस्कर्मका जयत्य और उत्मृष्ट कालमसंस्रेज्ञा पोग्गलपरियद्दा । पंचिदियतिरिक्खितय० णेरइयभंगो । णबरि मिच्छत-वारसक०-णवणोक० अज० ज० अंतोष्ठ० । सम्मत्त—अ्रणंताणु०चडक० अज० ज० एगस०, उक्क० सन्वेसिं सगिंदिदी । णविर जोणिणीसु सम्मत्त० ज० णित्थ । सम्मामि० सम्मत्तभंगो । णविर जहएएां णित्थ । पंचिदियतिरिक्खअपज्ञ०-मणुसअपज्ञ० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोष्ठ० । अज० जहएएणुक० अंतोष्ठ० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्सभंगो ।

३०१. मणुसतिय० मिच्छत्त-अहकसाय० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोष्ठ०। अज० ज० अंतोष्ठ०, उक्क० तिण्णि पिलदोवमाणि सगदालपुन्वकोडीहि सादिरंयाणि। णवरि [मणुस] पज्जत-मणुसिणीसु पण्णारस-सत्तपुन्वकोडीहि सादिरं-याणि। सम्मत्त०-अणंताणु०चउक्क० पंचिदियतिरिक्खभंगो। सम्मामि० ज० जह-एणुक० अंतोष्ठ०। अज० ज० एगस०, उक्क० सगिहदी। चहुसंज०-तिण्णिवेद० ज० जहण्णुक० एगस०। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोष्ठुहुत्तं, उक्क० सगिहदी। छएणोक० जहण्णाणु० जहण्णुक० अंतोष्ठ०। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोष्ठ०,

काल एक समय है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और दख्टि काल अनन्तकाल अर्थान् असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण् है। पश्चे द्विय तिर्यश्च पर्याप्त और पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च पर्याप्त और नव नोकपायोक अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और सबका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण् है। इतना विशेष है कि पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च योगिनियोमें सम्यक्त्वका अघन्य अनुभाग नहीं होता। सम्याग्मध्यात्वमें सम्यक्त्वके समान भंग है। इतना विशेष है कि उसका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता है। पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोमें मिध्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायोक जघन्य अनुभागसत्कर्मका अघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मध्यात्वका उत्कृष्टकं समान भग है।

\$ ३०१ सामान्य मनुष्य. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियांमें मिण्यात्व और आठ कपायांक जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मृहूर्त है। अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मृहूर्त और उत्कृष्ट काल संतालीस पूर्वकांटि अधिक तीन पत्य है। इतना विशेष है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमे पन्द्रह पूर्वकांटा अधिक तीन पत्य है और मनुष्यिनियामे सात पूर्वकांटि अधिक तीन पत्य है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका पश्चीन्द्रय तिर्य अके समान भंग है। सम्यम्भिण्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मृहूर्त है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। चार संज्वलन और तीनों वेदोके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल सामान्य मनुष्यमे क्षुद्रभव प्रह्णप्रमाण और मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यपर्याप्त और अनुष्यिनियोंमें अन्तर्मृहूर्त प्रमाण है। तथा उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। इ नाकपायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मृहूर्त

उक्कः सगिंदिरी । णवरि मणुसपज्जः इत्थि० हस्सभंगो । मणुसिणी० पुरिस०-णवुंस० हस्सभंगो ।

६३०२. भवण०-वाण० पढमपुढविभंगो । णविर सगिडिदी । सम्मत्त० जहरणां णित्थ । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव णवगंवज्ञा ति मिच्छत्त०-वारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणुभाग० जहण्णुकस्सिडिदी । सम्मत्त०-अणंताणु० चडक० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० सगिडिदी । सम्मामि० उक्कस्सभंगो । अणुहिसादि जाव सव्वडिसिद्धि ति मिच्छत्त०--वारसक०--णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० जहण्णुक० द्विदी । सम्मत्त० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० सगिडिदी । अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० ज० उक्क० संतोमु०। अज० ज० स्रंतोमु०, उक्क० सगिडिदी । एवं जाणिदृण णेद्व्वं जाव अणा-हारि ति ।

है। अजधन्य अनुभागसत्कर्मका सामान्य मनुष्योम क्षुद्रभवष्रहण्प्रमाण और मनुष्यपर्याप्त तथा मनुष्यिनियोमे अन्तर्भुहूर्त है। उत्कृष्ट काल अपनी भिथतिष्रमाण है। इतना विराप है कि मनुष्यप्याप्तकामे स्त्रीवेदके अनुभागका काल हास्यकी तरह जानना चाहिए और मनुष्यिनियोमे पुरुपवेद और नपुंसक्रवेदके अनुभागका काल हास्यकी तरह जानना चाहिए।

ई ३०२. भवनवासी और व्यन्तरों में पहले नरकके समान भङ्ग होता है। इतना विशेष है कि उनमें नरककी स्थितिके स्थानमें अपनी स्थिति लेनी चाहिए। तथा सस्यक्तका जयन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता। ज्योतिषी देवों में दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग होता है। मौधर्मसे नवन्नेवेयक तकके देवों में मिध्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायों के जयन्य और अजयन्य अनुभागसत्कर्मका काल अपनी जयन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जयन्य अनुभागसत्कर्मका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजयन्य अनुभागसत्कर्मका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यन्तिध्यात्वका उत्कृष्टके समान भङ्ग है। अन दशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मिध्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायोंके जयन्य और अजयन्य अनुभागसत्कर्मका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजयन्य अति उत्कृष्ट काल एक समय है। अजयन्य अनुभागसत्कर्मका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजयन्य अनुभागसत्कर्मका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजयन्य अनुभागसत्कर्मका जयन्य और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। अन-तानुबन्धीचतुष्कके जयन्य अनुभागसत्कर्मका जयन्य और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। अजयन्य अनुभागसत्कर्मका जयन्य अनुभागसत्कर्मका जयन्य और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त को जाना चाहिये।

विशेषार्थ-श्रादेशसे नारिकयां में मिश्यात्व, बारह कपाय श्रीर नव नोकपायों का जघन्य श्रातुभागसंकर्म हतसमुत्पिक्त कर्मवाला जो श्रसं श्री पश्चेन्द्रिय जन्म लेता है उसि होता है श्रातः उसका जघन्य काल एक समय श्रीर उन्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त पूर्ववन् जानना। श्रन्तर्मुहूर्त तक जघन्य श्रातुभाग रहकर पुनः श्रिधिक श्रातुभागवन्य करने पर श्राजघन्य श्रातुभाग होता है जो कि श्रायुक्ते श्रान्त तक रहता है, श्रातः श्राजघन्य श्रातुभागका जघन्य काल श्रन्तर्महूर्त कम दस हजार वर्ष होता है श्रीर उन्कृष्ट काल नरककी पृरी श्रायु प्रमाण होता है। सम्यवन्व प्रकृतिका जघन्य श्रामाण दर्शनमोहके स्वपक्के श्रन्तिम समयमें होता है श्रातः उसका जघन्य श्रीर

उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य अनुभागका काल उन्कृष्ट अनुभागके कालकी तरह जानता । दूसरे नरकसे लेकर सानवे नरक पर्यन्त हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला असंज्ञी पश्चेन्द्रिय तो उत्पन्न हो नहीं सकता त्रात: त्रानन्तानुबन्धी की विसंयोजना करनेवाले सम्यर्दाष्ट्रके वाईस प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग होता है । अत: उसका जघन्य काल अन्तर्भृहूर्न और ब्ल्कुष्ट काल कुछ कम श्रपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्र श्रौर सम्याग्मिण्यान्य प्रकृतिका केवल अजवन्य अनुभाग ही होता है। उसका काल उन्कृष्ट अनुभागक काल की तरह जानना। अनन्तानुबन्धी कपायका जघन्य अनुभाग विगयोजन करके पुनः उसका बंध करनेत्रालके प्रथम समयमें होता है, अत. उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनन्तानुबंधी ी विसंयोजनायाला ऋायुके दो समय शेप रहने पर सासादनगुरास्थानको प्राप्त हो गया वह संयुर होनेके प्रथम समयमे जघन्य और दूसरे समयमे अजघन्य अनुमाग करके मरणको प्राप्त हो गया त्रतः त्रज्ञचन्यका जघन्य काल एक समय होता है परन्तु सातवीं प्रथिवीसे सासादनसे निर्गमन नहीं होता और मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्भृहूने है अत: सात्र्या पृथ्वीम अनन्तनुबन्धीके अजधन्य अनुभागका जधन्य काल अन्तर्भुहर्त्त कहा है। सामान्य तिर्यश्चोमे सभी प्रकृतियोके जघन्य और श्रजघन्य अनुभागका काल पूर्ववत् विचार लेना चाहिय। पश्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चित्रिकमें नारिकयोके समान काल होता है किन्तु उनकी जघन्य आयु अन्तर्मुहर्त होनेसे बाईस प्रकृतियोकं अजधन्य अनुभागका जधन्य काल अन्तर्भृहत् है। तिर्यश्व योनितियामे दर्शन-मोहका क्षपण नहीं होता और न कृतकृत्यवंदक उनमें उत्पन्न ही होता है, अन: सम्यव व और सम्यग्मिश्यात्वका जवन्य अनुभाग उनमे नहीं होता। हतसमुख्यित्तक कर्मवाला एकेन्द्रिय जीव पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च ऋपर्याप्त या मनुष्य ऋपर्याप्तमे जन्म लेकर यदि दूसरे समयमे ऋनुभागको बढ़ा लेता है तो जय य अनुभागका जधन्य काल एक समय होता है और उन्कृष्ट काल अन्तर्भृहर्त होता है। श्रजघन्य श्रनुभागका भी जवन्य श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहर्त है जितनी कि रापर्याप्तक की जघन्य या उन्कृष्ट स्थिति होती है। मनुष्यित्रक्रमे अजघन्यानुभागका जो उन्कृष्ट काल कहा है सो सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनी मार्गणाका एक जीवकी ऋषक्षा जिनना काल होता है उतना ही कहा है, उतने काल तक मनुष्यके बराबर अजघन्य अनुभाग रह सकता है। जो सम्यग्मिण्यात्वकी क्षपणा कर रहा है उस मनुष्यके ऋन्तिम ऋनभागकाण्टक अनुप्तागकाण्डक का काल अन्तर्मुहूर्त होना है अतः उसका जघन्य श्रीर उन्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है। अजयन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेत्ता होता है। चारो सञ्चलन और तीनो देदो का जघन्य अनुमाग चपकर्शिएमे अपने अपने चपण कातके अन्तिम समयमे होता है अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट कान एक समय है। छ नोकपायोंक जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्महर्त कहा है सो सम्यग्निश्यात्वके जघन्य अनिवागके कालकी तरह घटा लेना चाहिये। अजवन्य अनुभागका जवन्य और उत्कृष्टकाल अपनी जवन्य और उक्कृष्ट स्थितिप्रमाण् होता है। हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला ऋसज्ञी पश्चेन्द्रिय भवनवासी और व्यन्तरोम ही जन्म लेता है, ज्योतिष्कोमे जन्म नहीं लेता। अतः भवनवासी श्रीर व्यन्तरोम प्रथम नरकके समान काल कहा है ऋौर अ्योतिष्क देवोंमें दूसरे नरकके समान काल कहा है। सौधर्मसे लेकर सर्वार्थार्साद्व पर्यन्त बार्डम प्रवृतियोके दोनो अनुभागोका जघन्य काल जघन्य म्थितिप्रमाण और उन्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है जो कि पहले बतलाये गये स्वामित्वसे स्पष्ट है। सस्यक्तवप्रकृतिके दोनों ऋनुभागोंका काल पूर्ववन् जानना । सौधर्मसे लेकर नवप्रैंशयक पर्यन्त ऋनन्तानुबन्धीका जघन्य त्रानुभाग त्रानन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः उससे संयुक्त होनेवालेके प्रथम समयमें होता है, अतः उसका जघन्य और उन्कृष्ट काल एक समय कहा है। किन्तु अनुदिशसे लेकर मर्वार्थीर्माद्ध पर्यन्त अनन्तानबन्धीका विसयोजन करनेवाला जब उसके अन्तिम अनभाग

अ अंतरं।

- 🔍 ३०३. कालाणियोगहारं परूविय संपहि मंदमेहाविजणाणुग्गहद्वमंतरं परूवेमि त्ति भणिदं होदि।
- अश्विक्षः अस्ति अस् यंतरं केवचिरं कालादो होदि ?
 - 💲 ३०४. सुगमं।
 - 🕸 जहरुणेण अंतोमुहुत्तं।
- ३ ३०५. उक्कस्साणुभागसंतकम्मिएण तमणुभागखंडयद्यादेण द्यादिय अणुक-स्साणुभागेण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तकालमंतिस्य संकिलेसमावृश्यि उक्कस्साणुभागे पबद्धे सब्बजहण्णंतामुह्त्तमेत्तत्रांतरकालुवलंभादो ।
 - 🕸 उक्कस्सेण ऋसंखेजा पोग्गलपरियद्या।
- ३०६, उक्कस्साणुभागसंतकम्मियस्स तं घादिय अणुक्कस्साणुभागसंतकम्म-मुवणमिय एइंदिएशुप्पज्जिय आवलियाए असंखे०भागमंत्रपोग्गलपरियहे परियहिद्ण

काण्डकमे वर्तमान रहता है तब अनन्तानुबन्धीका जबन्य अनुभाग होता है, क्योंकि यहाँ विसंयोजन करके पुन: सयोजन नहीं होता. अत: उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है। मौधर्मादिकमे अनन्तानुबन्धीके अजयन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय मरणकी अपनासे हैं, क्योंकि संयुक्त होनेके प्रथम समयमे जघन्य अनुभाग होता है। दूसरे समयमे अजघन्य श्रनुभाग करके यदि मर जावे तो एक समय काल होता है। तथा श्रनदिशादिकमे श्रन्तमुहर्न काल कहा है, क्यांकि अजधन्य अनुभागवाला देव पर्याप्त होकर चिद् अनन्तानवन्धीका विसयोजन कर डालता है तो जघन्य काल अन्तर्भृहर्न होता है।

अब अन्तर कहते हैं।

६३०३. कालानियोगद्वारको कहकर अब मन्द्वृद्धि जनोके अनुप्रहके लिये अन्तर कहता हूँ ऐसा इस सूत्रका ताल्पर्य है।

* मिध्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ?

§ ३०४. यह सूत्र सुगम है। * जघन्य अन्तर अन्तर्भृहूर्त है।

६३०५ उत्कृष्ट त्र्रनुभागकी सत्तावाला जीव उम उत्कृष्टका त्र्रनुभागकाण्डकघातके द्वारा घात करके अनुत्कृष्ट अनुभाग करता है और सबसे जघन्य अन्तर्मुहर्न काल तक उसका अन्तर देकर संक्लेश परिएाम करके पुन: उसके द्वारा उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने पर उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर काल सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण पाया जाता है।

* उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरावतेनप्रमाण है ।

🞙 ३०६. उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जीव उत्कृष्ट अनुभागका घात करके उसे अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्भ बनाकर एकेन्द्रियोंमे उत्पन्न हुआ। वहां आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र पुरुगल ततो णिष्फिडिय पंचिदिएसु उप्पिज्जिय संकिलेसमावृश्यि बद्धुकस्साणुभागस्स असंखेज्ज-पोग्गलपरियद्दमेतुकस्संतरकालुवलंभादो ।

🕸 सम्मत्त सम्मामिच्छत्ताणं जहापयडि श्रंतरं।

- ः २०७. जहा पयडीणं पयडिविहत्तीए अंतरं परूविदं तहा एत्थ परूवेयव्वं । तं जहा—जहण्णेण एगसमञ्चो, उक्क० उवहृषोग्गलपरियट्टं । एवं चुण्णिसृत्तमस्सिदृण अंतरपरूवणं करिय संपिह उच्चारणमस्सिदृण अंतरपरूवणं कस्सामो ।
- § २०८. अंतरं दुविहं जहण्णमुक्तस्सयं चेदि। उक्तस्सए पयदं। दुविहो णिहे मो ओघेण आदेसेण। ओघेण मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० उक्तस्साणुभागंतरं के० १ ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्ञा पोग्गलपरियद्वा। अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवमणंताणु०चउक्क०। णविर अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० वेद्याविद्याग० देसूणाणि। सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियद्वं देसूणं। अणुक्क० णित्थ अंतरं।

परावर्तन काल तक भ्रमण् करके. वहाँसे निकलकर पंचेन्द्रियोमे उत्पन्न होकर संङ्घेश परिणामींको करके उसने उत्कृष्ट ऋनुभागका बन्ध किया । इस प्रकार उत्कृष्ट ऋनुभागका उत्कृष्ट श्रन्तर काल ऋसंख्यात पुरुगलपरावर्तन मात्र पाया जाना है ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर प्रकृतिके समान है।

- ३.७. जैसे प्रकृतिविभक्ति नामक अधिकारमे प्रकृतियोका अन्तर कहा है वैसे ही यहाँ भी कहना चाहिये। यथा—जघन्य अन्तर एक समय और उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुट्गल परावर्तन प्रमाण है। इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे सामान्य अन्तरका कथन करके अब उच्चारणाक आश्रयसे अन्तरका कथन करते है।
- § ३.८. अन्तर दो प्रकारका है जघन्य और उन्कृष्ट । उन्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है अघ और आदेश । श्राघसे मिध्यात्व. वारह कपाय श्रीर नव नोकपायोक उन्कृष्ट अनुभागसन्दर्भका अन्तरकाल किनना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्भहूर्न और उन्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल अर्थान असंख्यात पुरगलपरावर्तनप्रमाण है । अनुन्कृष्ट अनभागका जघन्य और उन्कृष्ट अन्तर अन्तर्भहूर्न है । इसीप्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तरकाल कहना चाहिए। इतना विशेष है कि अनुन्कृष्ट अनुभागसन्दर्भका जघन्य अन्तर अन्तर्भहूर्त है और उन्कृष्ट अनुभागसन्दर्भका जघन्य अन्तर अन्तर्भहूर्त है और उन्कृष्ट अनुभागसन्दर्भका जघन्य अन्तरकाल एक सभय है और उन्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अर्थपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । अनुन्कृष्ट अनुभागसन्दर्भका अन्तरकाल कुछकम अर्थपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । अनुन्कृष्ट अनुभागसन्दर्भका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ-वार्टम प्रकृतियों के उन्दृष्ट अनुमागका जघन्य और उन्दृष्ट अन्तर जैसे चूर्णि सूत्रमे बतलाया है वैसे ही जानना चाहिए। अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उन्दृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्यों कि किसी अनुकृष्ट अनुमागवाल जीवने उन्दृष्ट अनुमागका बन्ध किया और अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् उसका घात करके किर अनुकृष्ट अनुभागवाला हो गया तो अनुकृष्ट अनुभागका अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है। अनन्तानुबन्धिक अनुकृष्ट अनुभागका उन्दृष्ट अनुभागका अनुकृष्ट अनुभागका उन्दृष्ट अनुभागका अनुकृष्ट अनुभागका उन्दृष्ट अनुभागका उन्दृष्ट अनुभागका उन्दृष्ट अनुभागका अनुकृष्ट अनुभागका उन्दृष्ट अनुभागका अनुकृष्ट अनुकृष्ट अनुभागका अनुकृष्ट अनुकृष्ट अनुकृष्ट अनुकृष्ट अनुभागका अनुकृष्ट अनुकृष्ट

- \$ २०६. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणु० ज० ख्रंतोसु०, उक्क० तेतीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अणुक्क० जहण्णुक्क० ख्रंतोसु० । णविर अणंताणु०चउक्क० अणुक्क० ज० ख्रंतोसु०, उक्क० तेतीसं सागरो० देसूणाणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० तेतीसं सागरो० देसूणाणि । सम्मत्त० अणुक्क० णित्थ ख्रंतरं । एवं पढमपुढवि० । णविर सागरोवमं देसूणं । एवं छसु पुढवीसु । णविर सगसगिहदी देसूणा । सम्मत्त० अणुक्कस्साणुभागो णित्थ ।
- 🔋 ३१०. तिरक्लेसु मिच्छन-सोलसक०-णवणोक० उकस्साणु० ज० त्र्यंतोम्र०. उक्कः अणंतकालमसंखेजा पोग्गलपरियद्वा । अणुक्कः जहण्णुक्कः स्रंतोमुः । णवरि सागर काल विताकर, तीसरे गुणम्थानमं जाकर, अन्तर्भुहूर्न काल तक ठहरकर, पुन. वदक सम्यक्त प्राप्त करके दूसरी बार छित्रासठ सागर काल बिताये। जब उसमे अन्तर्म हर्न काल शेप रहे तो मिथ्यादृष्टि होकर अनन्तान्वन्वीका वन्ध करके दूसरे समयमे अनुकृष्ट अनभागवाला हो जाये तो अनुकुष्ट अनुमागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर होता है। सम्यक्त्व श्रीर सम्यामिश्यात्व प्रवृतिके उत्कृष्ट श्रनभागसन्तर्भका जघन्य श्रन्तर एक समय है, क्योंकि इन दोनोकी सत्तावाला कोई मिण्यादृष्टि इन दोनो प्रकृतियोके उद्वेलन कालमे व्यन्तर्मुहर्त वाकी रहने पर उपशम सम्यक्तवके अभिमुख होकर मिध्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरिम समयमे सम्यक्त या सम्यामध्यात्वकी उद्घेलना करके अन्तिम समयमे उनसे रहित होकर उपरामसभ्यक्तको ब्रह्ण करके पुनः दोनोकी मत्ताको उत्पन्न करना है, अनः एक समय अन्तर पाया जाना है। नथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्डपुद्गलपरावर्तन है, क्योंकि श्रनादि मिध्यादृष्टि श्रर्धपुद्गलपरावर्तन कालके प्रथम समयमे उपशमसम्यक्त्वको प्रहण करके इन दोनों प्रवृतियों की सत्ताको उत्पन्न करता है। उसके वाद सबसे जघन्य पल्योपमके त्र्यसंख्यातवें भाग कालमे इनकी उद्वेलना करके इनका अभाव कर देता है, अर्धपुद्गलपरावर्तन तक भ्रमण करके जब ससारका श्रन्त होनेंग श्रन्तर्मुहूर्न काल बाकी रहे तो उपशम सम्यक्त्वका प्राप्त करके पुन: सम्यक्त्व ऋौर सम्यामिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवाला हो जाता है। इस तरह उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन होता है । इन दोनो प्रकृतियोका अनुत्कृष्ट अनभाग दर्शनमोहके क्षपण कालमे होता है, श्रतः उसका श्रन्तर नहीं है।
- \$ २०९. आदेशसे नारिकयोमे मिश्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायोके उन्कृष्ट अनुभागसंकर्मका जघन्य अन्तर्रकाल अन्तर्महूर्त है और उन्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम तेतीस सागर है। अनुत्कृष्ट अनुभागसंकर्मका जघन्य और उन्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्महूर्त है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अनुन्कृष्ट अनुभागसंकर्मका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्महूर्त है और उन्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम तेतीस सागर है। सम्यक्त्व और सम्याग्धियात्वके उन्कृष्ट अनुभाग संत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उन्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम तेतीस सागर है। सम्यक्त्वके अनुन्कृष्ट अनुभागसंकर्मका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवीम जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उन्कृष्ट अन्तर कुछकम एक सागर है। इसी प्रकार छ पृथिवियोमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उन्कृष्ट अन्तर कुछकम अपनी अपनी उन्कृष्ट स्थिति प्रमाण है तथा सम्यक्त्वका अनुन्कृष्ट अनुभागसंकर्म वहाँ नहीं है।

§ ३१०. तिर्यञ्चोमें मिध्यात्व, सोलह कषाय श्रौर नव नोकषायोके उत्कृष्ट श्रनुभागसत्कर्मका जघन्य श्रन्तरकाल श्रन्तर्मुहूर्त श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तरकाल श्रनन्तकाल श्रर्थान् श्रसंख्यात पुद्गल अणंताणु त्चउक्क अणुक्क जिल्हे जिल्हे जिल्हे विश्व पित्रों वेस्णाणि । सम्मत्त-सम्मामि उक्कस्साणु जिल्हे एगस्ट, उक्क ग्रद्धपोग्गलपरियट्टं देस्णं । त्रणुक्क णित्थ ग्रंतरं । णवरि सम्मामि अणुक्कस्सं णित्थ ।

् ३११. पंचिदियतिरिक्खितयिम्म मिच्छत्त-सोलसक -- णवणोक ० उक्कस्साणु ० जिल्लामु ०, उक्क ० पुट्वकोडिपुधत्तं । अणुक ० जहण्णुक ० अंतोमु ० । णविर अणंताणु ० च उक्क ० अणुक ० ज० अंतोमु ०, उक्क ० तिण्णि पिलदोवमाणि देसूणाणि । सम्मतसम्मामि ० उक्कस्साणु ० ज० एगस ०, उक्क ० तिण्णि पिलदोवमाणि पुट्वकोडिपुधत्तेणब्भिट्टियाणि । अणुक्क ० णित्य अंतरं । णविर सम्मामि ० अणुक्कस्सं णित्य । जोणीणीमु
सम्मत्त ० अणुक्कस्साणुभागो णित्य । पंचिदियतिरिक्ख अपज्ज ० मिच्छत्तसोलसक ० - णवणोक ० उक्कस्साणुक्कस्साणुभागं णित्य अंतरं । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छताणं पि । णविर अणुक्क ० णित्य । मणुसतिय ० पंचिदियतिरिक्खितगभंगो । णविर
सम्मत्त ० - सम्मामि ० उक्कस्साणु ० ज० एगस ०, उक्क ० सगिटिदी देसूणा । अणुक्क ० णित्य अंतरं ।

\$ 3१२. देवगदीए देवेसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणु० ज० परावर्तनप्रमाण है। अनुःकृष्ट अनुभागसन्कर्मका जघन्य और ःकृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मृहूर्त है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अनुःकृष्ट अनुभागमन्कर्मका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मृहूर्त है और उन्कृष्ट अन्तरकाल अक्ष्रकम तीन पत्य है। सम्यक्ष्य और सम्याग्मिण्यात्वके उन्कृष्ट अनुभागमन्कर्मका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उन्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनुःकृष्ट अनुभागसन्कर्मका अन्तर नहीं है। इतना विशेष है कि सम्याग्मिण्यात्वका अनुःकृष्ट तियंश्वाम नहीं होता।

् ३११. पश्चीन्द्रय तिर्यश्च, पश्चीन्द्रय तिर्यश्च पर्याप्त और पश्चीन्द्रय तिर्यश्च योतिनियोमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायों उत्कृष्ट अनुभागमत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथवत्वप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागमत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतना विशेष हैं कि अनन्तानुवन्धीचतुष्कं अनुत्कृष्ट अनुभागमत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त हे और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है। सम्यवत्व और सम्यिम्थयात्वके उत्कृष्ट अनुभागमत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागमत्कर्मका अवन्तर नहीं है। इतना विशेष है कि इनमें सम्यिम्थयात्वका अनुत्कृष्ट अनुभागमत्कर्म नहीं होता। तथा तिर्यश्च योत्तिनयोमें सम्यवत्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग भी नहीं हाता। पश्चीन्द्रय तिर्यश्च अप्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकों में मिथ्यात्व, मालह कपाय और नव नोकपायोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागकों लेकर अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सम्यवत्व और सम्यिम्थयात्वका भी जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनका अनुत्कृष्ट अनुभाग इन जीवोम नहीं होता। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोमें पश्चीन्द्रयितयेश्च, पश्चीन्द्रयितर्यश्च पर्याप्त और पश्चीन्द्रयित्यश्च समान मंग है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यिम्थयात्वके उत्कृष्ट अनुभागमक्तर्मका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्टका अन्तर नहीं है।

९ ३१२. देवगतिमें देवोमे मिथ्यात्व. सोलह कपाय और नव नोकपायोके उत्कृष्ट अनुभाग

त्रांतोसु०, उक्क० अद्वारस सागरो० सादिरेयाणि । अणुक्क० जहण्णुक्क० त्रांतोसुन्तं । णविर त्राणंताणु०चउक्क० अणुक्क० ज० त्रांतोसु०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देस्-णाणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देस्-णाणि । णविर सम्मामि० अणुक्कस्सं णित्थ । एवं भवणादि जाव सहम्सारो ति । णविर सगिद्दि देस्णा। भवण०-वाण०-जाइसि० सम्मत्तः अणुक्क० णित्थ । आणदादि जाव णवगेवज्ञा ति मिच्छत-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणुक्कम्साणुभाग० णित्थ द्यंतरं । णविर अणंताणु०चउक्क० अणुक्क० ज० त्रांतोसु०, उक्क० सगिद्दि देस्णा । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगसम्त्रां, उक्क० सगिद्दि देस्णा । अणुक्क० णित्थ त्रांतरं । णविर सम्मामि० अणुक्क० णित्थ । अथवा सम्मामिच्छत्तअणुक्कस्माभावे सम्बत्थ उक्कस्सं पि णित्थि ति वत्तव्वं, ताणमण्णोण्णसव्वपेक्खत्तादो । एसो उच्चारणाइरि-यम्साद्दिष्यायो सव्वत्थ जोजयव्वो । अणुद्दिसाद्दि जाव सव्वद्दसिद्धि ति अद्वावीसं प्यडीणं उक्कम्साणुक्कस्साणुभागं णित्थ द्यंतरं । एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणा-हारि ति ।

का जवन्य अन्तर अन्तर्मु हुर्त है और उन्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अठारह सागर है। अनुत्कृष्ट अनुमागमकर्मका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त है। इतना विशेष है कि अनन्तानुः वन्धीचतुःकके अनुन्द्रस्ट अनुभागमन्कर्मका जघन्य अन्तरं अन्तर्मुहूर्त है और स्हारट अन्तर कुछ कम इक्तीम सागर है। सम्बक्त श्रीर सम्बन्धियात्वकं उत्कृष्ट श्रनुभागसन्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। इतना विशेष है कि मामान्य देवोमे सम्याग्मिश्यात्वका अनुत्वृष्ट अनुमागसन्कर्म नहीं होता । इसी प्रकार भवनवासी-से लेकर सहस्रार) कल्प तकके देवोमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इतमे अकुष्ट व्यन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। भवनवासी, ब्यन्तर और ज्योतिषी देवोमे सस्यवत्वका त्रानुत्कृष्ट ऋनुभागसन्कर्म नहीं होता । श्रानत**से** लेकर नव प्रैययक तकके देवोंमे मिण्यात्व, सोलह कपाँय और नव नोकपायोके उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागसन्कर्मका अन्तरकाल नहीं है। इतना विशेष है कि अनःतानुबन्धीचतुष्कके अनुस्कृष्ट अनुभागसन्कर्मका जघन्य अन्तर अन्त-र्मुहूर्त है खौर उत्कृत्ट ब्रम्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिश्यात्वके उन्कुट अनुमागमत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कुट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण् है। अनुन्कृत्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। तथा सम्यन्मिण्यात्वका अनुन्कृत्ट यहाँ नहीं होता । अथवा सँम्यामाण्यात्वकं अनुन्द्वत्टकं अभावमं सर्वत्र उसका उन्द्वत्ट भी नहीं होता एमा कहना चिह्यं, स्योकि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों परम्पर मापेत्त हैं. जहा एक नही होता वहाँ दृसरा भी नहीं होता। उचारणाचार्यका यह अभिप्राय सर्वत्र लगा लेना चाहिये। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थीसिद्ध पर्यन्त अष्टाईस प्रकृतियांके उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागसन्कर्मको लेकर अन्तरकाल नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशोषार्थ-आदेशसे नारिकयोमे छन्त्रीम प्रकृतियोके उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम नेतीस सागर है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागवाला कोई नारकी उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हुआ और अन्तमे उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके पुनः उत्कृष्ट अनुभागवाला हो गया तो उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है। अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और

- जहण्णाणुभागसंतकिम्मयंतरं केवचिरं कालादो होदि ?
 ३१३. सुगमं ।
- अ मिच्छत्त अद्वक्तसाय-अणताणु वंधीणं च मोतृण सेसाणं णित्थ अंतरं। ३१४. कुदो १ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-चदुसं जल्लण-णवणोकसायाणं खवणाए जहण्णाणुभागसंतकम्मम्स णिम्मूलं विणद्दस्स पुणरुपत्तिविज्ञयस्स अंतरावणे उवाया-

उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्न ने। स्पष्ट ही है । विशेष यह है कि अनन्तानुबन्धीके अनुत्कृष्ट अनुभागका उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम नेतीम सागर है. क्यांकि अनुन्कृष्ट अनुभागवाला जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके वेदक्रमस्यक्त्वी हुआ. अन्तमे सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिण्यादृष्टि होकर पुनः अनन्तानुबर्न्याका वन्य करके अनुस्कृष्ट अनुमागवाला हो गर्या । इसी प्रकार प्रत्येक नरकमे लगा लेना चाहिये। सामान्य तिर्यभ्बोमे भी इसी प्रकार घटा लेना चाहिये। श्रनन्तानुबन्धीके अनुत्दृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम नीन पत्य उत्कृष्ट भोगभूमि<mark>मे विसंयोजनाकी</mark> त्रपंत्रा नरककी तरह घटा लेना चाहिये। पश्चेन्द्रिय निर्यश्चित्रिकमे छव्बीस प्रवृतियोके उत्कृष्ट अनुभागका उन्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व कहा है सो एक जीवकी अपेत्ता इन तीनो मार्गणाओ का जितना काल है उसमे तीन पत्य कम उतना ही अन्तर होता है, क्योंकि भागभूमिम उत्कृष्ट अनुमागसन्कर्मका श्रमाव है। इसी प्रकार श्रागे भी जानना चाहिए। तथा सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है सो इन दोनो प्रकृतियोकी सत्तावाला कोई जीव पश्चेन्द्रियतिर्यश्च आदिमे से किसी एकमे जन्म लंकर इनकी उद्वेलना कर दे और इस प्रकार इनसे रहित होकर कुछ कम उक्त काल पर्यन्त पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च आदिमे ही श्रमण करता रहे । ऋन्तमे उपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करके पुनः उक्त दोनो प्रकृतियोके उत्कृष्ट अनुभागसन्कर्मवाला हो जाये। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर आता है। मनुष्य ऋपर्याप्त और निर्यश्व ऋपर्याप्त में ऋन्तर नहीं होता, क्योंकि इनमें उत्कृष्ट ऋनुभाग बन्ध नहीं होता। पूर्वभवसे उन्कृष्ट अनुभाग लाया जा सकता है मगर उसका घातकर देनेपर पुनः उसका सत्त्र समय नहीं है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागमें भी समभ लेना चाहिये। देवर्गातमे देवोमे छन्त्रीस प्रकृतियाके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक श्रठारह सागर है. क्योंकि देवगतिमे उत्हृष्ट श्रनुभागका बन्ध श्रोर सत्त्व बारहवें स्वर्ग तक ही पाया जाता है और उमकी उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक अठारह सागर है. श्रत: उत्कृष्ट श्रनुभागवाला कोई जीव बारहवे स्वर्गमे जन्म लेकर उत्कृष्ट अनुभागका घान करके अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हुआ। जब थोड़ी ऋायु शेप रही तो। पुन: उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके। उत्कृष्ट अनुभागवाला हो गया। इस तरह उन्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर होता है। अनन्तानुबन्धीके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम इकतीम सागर नव प्रैत्रयककी श्रपेचासे कहा है. क्यों कि आगे तो सब सम्यर्ग्हाष्ट्र ही होते हैं अतः वहाँ अन्तर होता ही नहीं है। इसी तरह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका भी अन्तर जानना चाहिए।

* जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ? . ३१३ यह सूत्र सुगम है ।

मिथ्याव, आठ कपाय और अनन्तानुबन्धीचतुष्कको छोड़कर शेष प्रकृतियों
 के जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है ।

् ३१४. क्योंकि सम्यक्त्व, सम्यग्निध्यात्व, चार संज्वलन कषाय और नव नोकषायोंका क्षपण होने पर जघन्य अनुभागसत्कर्म मूलसे ही नष्ट हो जाता है, उसकी पुन: उत्पत्ति नहीं

भावादो । णिस्संतकम्मियम्मि अंतरमुवलक्भिदि त्ति ण पचवहादुं जुत्तं, पुच्युत्तरजहणणाणुभागाणं विचालमंतरं । ण च तमेत्थित्थि, स्वविद्जहण्णाणुभागस्स पुणरूपत्तीए
अभावादो । स्वविदाणमणंताणुवंधीणं व पुणरूपत्ती एदासि पयडीणमणुभागस्स
किण्ण जायदे ? ण, अणंताणुवंधीणं व संजल्लादीणं विसंजोयणाभावेण पुणरूपत्तीए
विरोहादो । ण स्वविदाणं पुणरूप्पत्ती, णिब्युआणं पि पुणो संसारित्तप्पसगादो । ण च
एवं, णिरासवाणं संसारुप्पतिविरोहादो । अणंताणुवंधीणं पि स्ववणा चेव ण विसंजोयणा,
लक्खणभेदाणुवसंभादो । ण कम्मंतरभावेण कम्माणं पिरणामो विसंजोयणा, संझोहणेण
स्वविदाससकम्माणं पि विसंजोयणप्पसंगादो । ण च एवं, तेसिमणंताणुवंधीणं व पुणरूपत्तिप्पसंगादो । ण च अकम्मसङ्खेण परिणामो विसंजोयणा, लोभसंजलणस्स वि
विसंजोयणत्तप्संगादो ति । एत्थ परिहारो वुच्चदे — कम्मंतरसङ्खेण संकामय अवहाणं

होती, खतः उसके अन्तरको प्राप्त करानेका कोई उपाय नहीं है। जिन प्रकृतियों की सत्ताका अभाव हो जाता है उनमें भी अन्तर पाया जाता है. ऐसा निश्चय करना युक्त नहीं है, क्योंकि पहलेके जघन्य अनुभाग और वादके जघन्य अनुभागके बीचका जो फरक होता है उसे अन्तर कहते हैं। अर्थात् पहले जघन्य अनुभाग हुआ वह नष्ट हो गया। पुनः कालान्तरम जघन्य अनुभाग हुआ। इन दोनोंके बीचमें जघन्य अनुभाग रहित जो काल होता है उसे अन्तरकाल कहते हैं। वह अन्तर यहाँ नहीं है. क्योंकि इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका चय हो जाने पर उसकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती।

शंका-जैसे अनन्तानुबन्धीका चपण हो जाने पर उसकी पुनः उत्पत्ति हो जाती है वैसे इन प्रकृतियोंके अनुभाग की पुनः उत्पत्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनन्तानुबन्धी कपायों की तरह सज्बलन आदिके विसंयोजनका अभाव होकर उनकी पुन: उत्पत्ति होनेम विरोध हैं। यदि कहा जाय कि नाट होने पर भी उनकी पुन: उत्पत्ति हो जाय तो क्या हानि हैं ? किन्तु ऐसा कहना योग्य नहीं हैं, क्योंकि क्षयकों प्राप्त हुई प्रकृतियोको पुन: उत्पत्ति नहीं होती, यदि होने लगे ता मुक्त हुए जीवोको पुन: संसारी होनेका प्रसंग उपस्थित होगा। किन्तु मुक्त जीव पुन: संसारी नहीं होते. क्योंकि जिनके कर्मीका आश्रव नहीं होता उनके संसार की उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है।

शंका—अनन्तानुबन्धी कपायोकी भी चपणा ही होती है, विसंयोजना नहीं होती, क्योंकि चपणा और विसंयोजनाके लच्चणोंमें भेद नहीं हैं। शायद कहा जाय कि कमींका कमान्तर रूपसे जो परिण्यम होता है उसे विसंयोजना कहते हैं. किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है. क्योंकि इस प्रकार तो एक प्रकृतिके प्रदेशोका अन्य प्रकृतिमें चेपणा करनेसे नष्ट हुए सभी कमीं की विसंयोजनाका प्रसंग उपस्थित होगा। किन्तु अन्य प्रकृतियों की विसंयोजना नहीं होती. यदि हो तो अनन्तानुबन्धी की तरह उनकी भी पुनः उपित्तका प्रसंग आयंगा। शायद कहा जाय कि अवर्म रूपसे परिण्यमन हानेको विसंयोजना कहते हैं सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि विसंयोजनाका ऐसा लक्षण करनेसे संख्वलन लोभको भी विसंयोजनाका प्रसंग उपस्थित होगा।

समाधान-अब परिहार कहते हैं-किसी कर्मका दूसरे कर्मकूपमे संक्रमण करके ठहरे

विसंजोयणा, णोकम्मसक्त्वेण परिणामो खवणा ति ऋत्थि दोण्हं पि लक्खणभेदो । ण च अणंताणुवंशीणं व संझोहणाए वि णद्वासेसकम्माणं विसंजोयणं पि भेदाभावादो पुणक्ष्पत्ती, आणुपुन्वीसंकमवसेण लोभभावं गंतृण ऋकम्मसक्त्वेण परिणमिय खवण-भावमुवगयाणं पुणक्ष्पत्तिविरोहादो । अणंताणुवंशीणं व मिच्छत्तादीणं विसंजोयण-पयिष्ठभावो ऋहिरएहि किण्ण इच्छिक्जदे ? ण, विसंजोयणभावं गंतूण पुणो णियमेण खवणभावमुवणमंति ति तत्थ तद्णुब्भुवगमादो । ण च अणंताणुवंशीमु विसंजोइदामु ऋंतोमुहुत्तकालुबंतरे तासिमकम्मभावगमणियमो अत्थि जेण तासि विसंजोयणाए खवणसण्णा होक्ज । तदो अणंताणुवंशीणं व सेसविसंजोइदपयडीणं ण पुणक्ष्पत्ती अत्थि ति सिद्धं ।

भिच्छत्त -श्रट्ठकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

रहना विसंयोजना है। श्रीर कर्मका नोकर्म श्रर्थान् कर्माभावरूपसे परिण्मन होना चपणा है। इसप्रकार दोनोके लच्छोंमं भंद है। यदि कहा जाय कि प्रदेश चेपण्से नष्ट हुए. अशेप कर्मीम विसंयोजनाके प्रति कोई भेद नहीं है अतः श्रनन्तानुबन्धीकी तरह उन कर्मीकी भी पुनः उत्पति हो जायेगी सो यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि श्रानुपूर्वीसंक्रमके कारण लोभपनेको प्राप्त होकर श्रकर्मकृपसे परिण्मन करके नष्ट हुई उन प्रकृतियोंकी पुनः उत्पत्ति होनेमें विरोध है।

शंका—अनन्तानुबन्धीकी तरह मिथ्यात्व आदि अङ्क्तियोको भी आचार्यांने विसंयोजना प्रकृति क्यो नहीं माना ?

समाथान—नहीं, क्योंकि निश्यात्व आदि प्रकृतियाँ विसंयोजनपनेको प्राप्त होकर अनन्तर नियमसे चय अवस्थाको प्राप्त होती हैं, इसलिये उनमे विसंयोजनपना नहीं माना गया। किन्तु अनन्तानुबन्धी कपायोका विसयोजन होनेपर अन्तर्सुहूर्त कालके भीतर उनके अकर्मपनेको प्राप्त होनेका नियम नहीं है जिससे उनकी विसंयोजनाकी चपणसंज्ञा हो जाय। अतः अनन्तानुन्धीकी तरह शेष विसंयोजित प्रकृतियोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती, यह सिद्ध हुआ।

विशेपार्थ ज्ञाचन्य अनुमागसन्कर्मका अन्तर सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व, चार संज्ञ्ञलन और नव नोकपायों में नहीं होता, क्यांकि इनका ज्ञाचन्य अनुमाग क्षपणकालमें होता है अतः एक बार नष्ट होकर पुनः वह उत्पन्न नहीं हो सकता। इस पर यह शंका की गई कि अनन्तानुबन्धीकी तरह इन प्रकृतियोका चपण हो जाने पर भी पुनः उत्पति हो जानी चाहिये। इसका उत्तर दिया गया कि अन्तानुबन्धीकी क्षपणा नहीं होती. विसंयोजना होती है। तब पुनः शंका हुई कि दोनों में अन्तर क्या है तो उत्तर दिया गया कि एक कर्मके अन्य कर्मक्षपसे संक्रमण करके अवस्थित रहनेको विसंयोजना कहते हैं। और कर्मका अभाव हो जानेको क्षपणा कहते हैं। यद्यपि संज्ञ्ञलन काथ मानक्ष्यसे, मान मायाक्षपसे और माया लोभ रूपसे संक्रमण करते हैं किन्तु संक्रमण करके व अवस्थित नहीं रहते किन्तु उनका विनाश हो जाता है परन्तु अनन्तानुबन्धीमें यह बात नहीं है अतः अनन्तानुबन्धीकी तरह उक्त पन्द्रह प्रकृतियोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती. इसलिये उनके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तर भी नहीं होता।

* मिथ्यात्व, और आठ कषायोंकं जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ?

- 🖇 ३१५. सुगमं।
- 🕸 जहरुणेण अंतोमुहुत्तं ।
- \$ ३१६. कुदो ? जहण्णाणुभागसंतकिम्मएण सुहुमणिगोदेण मिच्छत्तहकसा-याणमजहण्णाणुभागं बंधिद्ण अंतरिदेण अणुभागखंडयं घादिय पुणो जहण्णाणुभाग-संतकम्मे कदे पुच्चतरजहण्णाणुभागसंतकम्माणं विचालस्स सच्वजहण्णंतोसुहुत्तमेत्तस्स उवलंभादो ।
 - 🕸 उक्तस्सेण असंखेजा लोगा ।
- § ३१७. जहण्णाणुभागसंतकिम्मयस्स सुहुमेइंदियस्स परिणामपच्चएण बद्ध-मिच्छत्तहकसायअजहण्णाणुभागसंतकम्मस्स असंखेज्जलोगमेत्तघादद्वाणपरिणामेसु असंखेज्जलोगमेत्तकालं परिभमिय पुणो जहण्णाणुभागद्वाणपाओग्गघादपरिणामेहि अणु-भागसंतकम्मं घादिय जहण्णाणुभागसंतकम्मसक्त्वेण परिणयस्स असंखेज्जलोगमेत्त-श्रंतरकालुवलंभादो ।
- अणंताणुषंधीणं जहण्णाणुभागसंतकिम्मयंतरं केवचिरं कालादो होदि?

§ ३१८. सुगमं।

🕸 जहरुणेण अंतोमुहत्तं ।

§ ३१५. यह सूत्र सुगम है।

अन्तरकाल अन्तर्ग्रहर्त है ।

े ३१६. क्योंकि जघन्य अनुभागसंकर्मसे युक्त सूक्ष्म निगादिया जीवके भिध्यात्व और आठ कपायोका अजघन्य अनुभाग बॉधकर अनुभागका काण्डकघात करके पुन: जघन्य अनुभागसंकर्म करने पर पूर्व जघन्य अनुभागसंकर्म और उत्तर जघन्य अनुभागसंकर्मकं बीचमें सबसे जघन्य अनुभूहर्त मात्र अन्तरकाल पाया जाता है।

विशेषार्थ-इन कर्मांका जघन्य अनुभाग सूक्ष्म निगोदिया जीव करता है। अनन्तर वह अजघन्य अनुभागका बन्ध कर और पुनः अन्तर्भृहूर्त कालके भीतर उसका घात करके जघन्य अनुभाग कर सकता है, इसलिए इन नौ कर्मांके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर र्म्हूर्त कहा है।

अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है ।

- - * अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ? § ३१८. यह सूत्र सुगम है।
 - * जघन्य अन्तरकाळ अन्तर्ग्रहृते है।

3 ३१६. कुदो १ श्रणंताणुवंधिच उनकं विसंजोइय संजुत्तपटमसमए तेसिमणं-ताणुवंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मं कादृण विदियसमए श्रांतिरय सन्वजहण्णमंतोग्रुहुत-मच्छिय सम्मतं येत्ण तथ्य अतोग्रहुत्तमच्छिय अणंताणुवंधिच उनकं विसंजोइय सजुत-पटमसमए बद्ध बहण्णाणुभागस्स अंतोग्रहुत्तमेत्तजहएशांतरका लुवलभादो ।

🕸 उक्कस्सेण उबडुपोग्गलपरियदः ।

३२०. कुदो ? अणादियमिच्छाइहिम्मि समयाविरोहेण पिडवण्णपदमसम्मन्तिम्म पदमसम्मत्तालकभंतरे अणंताणुवंधिचउक्तं विसंजोइय संज्ञत्तपदमसमए अणताणुवंधिचउक्ताणुभागं जहण्णं काऊण विदियसमए अंतिरय कमेण उवहृषोग्गलपियदृं पिरयदिय त्थोवावसेसे संसारे पदमसम्मत्तं घेतूण अणंताणुवंधिचउक्तं विसंजोइय संज्ञत्तपदमसमए अंतरसुष्पाइय पुणो अंतोस्रहुत्तेण णिव्वुअम्मि उवहृषोग्गलपियदृ-मेत्तंतरकाजुवलंभादो । एवं देसामासियचुिएए।सुत्तमवलंबिय जहण्णाणुभागंतरपरूवणं काऊण संपित उचारणमिस्सदृण परूवेमो ।

१३२१. जहएएएए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्त-अद्यक्त जहण्णाणु० ज० ऋंतोमु०, उक्क० ऋसंखेज्ञा लोगा । अज० जह-ण्णुक्क० ऋंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० जहण्णाणु० णित्थ ऋंतरं । अज० ज० एगस०,

§ ३१९. क्योंकि श्रनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करके पुनः संयुक्त होनेके प्रथम समयमें उन श्रनन्तानुबन्धी कपायोंके जघन्य श्रनुभागसन्कर्मको करके, दृसरे समयमे श्रन्तर श्रारम्भ करके सबसे जघन्य श्रन्तर्मुहूर्त कालतक ठहर कर, सम्यक्ष्यको ग्रह्ण करके, सम्यक्ष्य दशामें श्रन्तर्मुहूर्त तक रहकर, श्रनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजन करके पुनः संयुक्त होनेक प्रथम समयमे श्रन्ततानुबन्धीका जघन्य श्रनुभागवन्ध करनेपर श्रन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य श्रन्तरक्राल पाया जाता है।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है ?

§ ३२०. क्योंकि अनादि निश्यादृष्टि जीवके आगमके अविरुद्ध प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करके. प्रथम सम्यक्त्वके कालके भीतर अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजन करके, संयुक्त होनेके प्रथम समयमे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अनुभाग करके तथा दूसरे समयमे अन्तर प्रारम्भ करा क्रमसे अवस्य अर्धपुद्गलपरावर्तन कालतक पश्चिमण करके, संसार अमणका काल यांड़ा अवशेष रहने पर प्रथम सम्यक्त्वको प्रह्ण करके, अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजन करके. पुनः संयुक्त होनेके प्रथम सम्यक्त्यको प्रह्ण करके, अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजन करके. पुनः संयुक्त होनेके प्रथम समयमे जघन्य अनुभागके अन्त कालको उत्पन्न करके पुनः अन्तर्महृत वाद भोत्त चले जाने र कुछकम अर्धपुद्गल परावर्तन मात्र अन्तरकाल पाया जाता है। इस प्रकार देशामर्पक चूिंग्सू गिका अवलम्बन लेकर जघन्य अनुभागसकर्मः अन्तरका कथन किया। अब उद्यारणाको अवलम्बन लेकर कहते हैं।

् २२१. प्रकृतमें जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे भिध्यात्व श्रीर श्राठ कपायोंके जघन्य श्रनुभागसत्कर्भका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर्मृहृते है श्रीर उन्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है। श्रजघन्य श्रनुभागसत्कर्भका जघन्य श्रीर उन्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्मु हूर्त है। सम्यक्त श्रीर सम्यग्मिध्यात्वके जघन्य श्रनुभागसत्कर्भका श्रन्तरकाल उक्कः अद्ध्योग्गलपरियद्वं देसूणं । अणंताणु०चउक्कः जहण्णा० ज० अंतोग्रु०, उक्कः उवदृषोग्गलपरियद्वं । अज० ज० अंतोग्रु०, उक्कः वेद्याविद्यागरो० देसूणाणि । चदुसंजलण-णवणोकः जहण्णाजहण्णाणु० णित्थं अंतरं ।

ई २२२. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० णित्थ त्रांतरं। अणंताणु०चउक० जहण्णाजहण्णाणु० ज० झंतोसु॰, उक० तेतीसं सागरो० देसूणाणि। सम्मत्त० जहएणाणु० णित्थ त्रांतरं। सम्मत्त०-सम्मामि० अज० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो॰ देसूणाणि। एवं पढमाए। णविर सगिहिदी देसूणा। विदियादि जाव सत्तमि त्ति मिच्छत्त-सोलसक०--णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० ज० अंतोसु०, उक्क० सगिहिदी देसूणा।

१३२३. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जहण्णाणु० जह॰ अंतोष्ठ०, उक्क० असंखेजा लोगा। अज० जहण्णुक० अंतोसु०। सम्मत्त० ज० णित्थ अंतरं। सम्मत्त०-सम्मामि० अज० ज० एगस०, उक्क० अद्ध्योग्गलपरियद्दं देसुणं। अर्णताणु०चउक्क० जह० ज० अंतोसु०, उक्क० अद्ध्यो०परियद्दं देसुणं।

नहीं है। अजघन्य अनुभागसंकर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनन्तानु बन्धी चतुष्कके जघन्य अनुभागसंकर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्म हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अजघन्य अनुभागसंकर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम दो छियासठ सागर है। चारों संब्वलन कषायों और नव नाकषायों के जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है।

इ २२२. श्रादेशसे नारिकयों में भिण्यात, बारह कपाय और नव नोकपायों के जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रानुमागसर्कर्मका श्रन्तर नहीं है। श्रानन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य श्रौर श्रजघन्य श्रानुमागसर्कर्मका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर हि श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछकम नेतीस सागर है। सम्यक्त्वके जघन्य श्रानुमागसर्कर्मका श्रम्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर कुछकम नेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट श्रन्तर कुछकम श्रपनी स्थितिप्रमाण है। दूसरीसे लेकर सानवी पृथिवी तकके नारिकयोंने मिण्यात्व, सोलह कषाय और नव नाकपायोंके जघन्य और श्रजघन्य श्रम्नी स्थितिप्रमाण है। इतना कुछकम श्रम्नी श्रमनी स्थितिप्रमाण है।

े ३२३. तिर्यश्वगितमं तिर्यश्वोमं निष्यात, बारह कषाय त्रौर नव नोकपायों के जघन्य अनुमागका जघन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लाकप्रमाण है। अजघन्य अनुमागसःकर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुमागका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्निष्यात्वके अजघन्य अनुमागसःकर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनन्तानुपन्धी चतुष्कके जघन्य अनुभागसःकर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरावतनप्रमाण है। अजघन्य अनुभागसःकर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और

अजि जिं श्रंतोष्ठि, उक्कि तिरिया पिल्रिदोवमाणि देसुणाणि । पंचिदियतिरिक्खतियः मिच्छत्त-वारसकः - णवणोकः जहण्णाजहण्णाणुः णित्थि श्रंतरं । सम्मतः
जहण्णाणुः णित्थि श्रंतरं । [सम्मत्त-सम्मामिः] अजि जिं एगसः, उक्कः सगिद्वि ।
अणंताणुः चउक्कः जहरायाणुः जिं श्रंतोष्ठः, उक्कः सगिद्वि । श्रजः जिं
श्रंतोष्ठः तं, उक्कः तिरिया पिलदोः देसुणाणि । णवि जोणिणीसु सम्मतः जहण्णाणुः
णित्थः । पंचिदियतिरिक्ष्वश्रपज्जः - मणुसश्रपज्जः मिच्छत्त-सोलसकः - णवणोकः जः
अजिः णित्थः श्रंतरं । मणुसतियः पंचिदियतिरिक्ष्वतियभंगोः । णवि सम्मामिः
सम्मत्तभंगोः ।

3 २२४. देवगदीए देवेसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० णित्थ अंतरं। सम्मत्त० जहण्णाणु० एत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० अज० ज० एगस०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अणंताणु०चडक० जहण्णाजहण्णाणु० ज० अंतोसु०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देसूणाणि। भवण०-वाण० णेरइयभंगो। णविर सगिहदी। सम्मत्तस्स जहण्णं णित्थ। जोदिसि० विदियपुढविभंगो। णविर सगिहदी। सोहम्मादि जाव उविर्मगेवज्ञा ति मिच्छत्त--बारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु०

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है। पश्चि न्द्रिय तिर्यश्चि न्द्रिय तिर्यश्च पर्याप्त और पश्चि न्द्रिय तिर्यश्च योतिनी जीवोमे मिण्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायोके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्वक जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्वक अपन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कक जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कक जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है। इतना विशेष है कि पश्चिन्द्रियत्विप्य योनिनिया में सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता। पश्चिन्द्रियत्विश्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिण्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकपायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है। मनुष्यके शेष तीन भेदों में पश्चिन्द्रियनिर्यश्वित्रकके समान भेग, हैं। इतना विशेष है कि सम्यिग्यक्ति भंग सम्यक्त्वके समान है।

[ू] ३२४. देवगतिम सामान्य देवोंम मिध्यात्व, बारह कषाय, और नव नोकपायों के जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इक्तीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क ह जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इक्तीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क ह जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर्म है। इतना विशेष है की उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है। वहाँ सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता। ज्योतिषी देवोंमे दूसरी पृथिवीकी तरह भंग है। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर ज्योतिषी देवोंकी स्थितिप्रमाण है। सीधर्मसे लेकर उपरिमर्पेवयक तकके देवोंम मिध्यात्व, बारह क्षाय और नव नोकपायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है।

णित्य श्रंतरं । अणंताणु॰चउक्क० जहण्णाजहण्णाणु० ज० श्रंतोम्च०, उक्क० सगिहदी देसूणा । सम्मत्त ० जहएणाणु० णित्य श्रंतरं । सम्मत-सम्मामि० अज० ज० एगस०, उक्क० सगिहदी देसूणा । श्रणुदिसादि जाव सन्वद्वसिद्धि ति सन्वपयडीणं जहएणा-जहएएणाणु० णित्य श्रंतरं । एवं जाणिद्ण णेदन्वं जाव अणाहारि ति ।

🕸 णाणाजीवेहि भंगविचयो ।

६ ३२५. अहियारसंभालणसुत्तमेदं । सुगमं ।

अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जवन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्तके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यिग्धियात्वके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अपन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवाम सब प्रकृतियोके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तरकाल नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ-श्रादेशसे सामान्य नारिकयोमे बाईस प्रकृतियोकं जधन्य श्रीर श्रजधन्य अनुभागका अन्तर नहीं है, क्योंकि जघन्य अनुभाग जो असंज्ञी पश्चेन्द्रिय नरकमे जन्म लेता है उसके होता है अत: जब वह नरकमे जन्म लंकर उस अनुभागको बढ़ा लेता है तो पुनः जधन्य नहीं कर सकता, श्रतः श्रन्तर नहीं है। श्रनन्तानुबन्धीकं जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका श्रन्तर उसीकं उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागकं श्रन्तरकी तरह जानना चाहिए। तथा सम्यक्त श्रीर सम्यग्मिध्यात्वके श्रज्ञघन्य श्रनुभागका श्रन्तर उन्होंके उत्कृष्ट श्रनुभागके श्रन्तरकी तरह जानना चाहिए। दूसरे त्रादि नरकोमे छुट्वीस प्रकृतियोंके जघन्य त्र्यौर श्रजघन्य त्र्यनुभागका त्र्यन्तर जघन्यसं अन्तर्महर्त है, क्योंकि इनका जघन्य अनुभाग अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाल सम्यग्द्दष्टि नारकीके होता है. अत: जघन्य अनुभागवाला सम्यक्त्वसे च्युत होकर अजघन्य अनुभागवाला होकर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहरकर पुनः सम्यक्त को प्राप्त करके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके जघन्य अनुभागवाला हो गया तो जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्न हुआ।इसी प्रकार अजघन्य अनुभागका भी जघन्य अन्तर विचार लेना चाहिये। सामान्य तिर्युची मे तो बाईस प्रकृतियोके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका श्रन्तर होता है, क्योंकि उनमे इनका जघन्य श्रनुभाग हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके होता है, त्र्यतः छुटकर पुनः प्राप्त हो सकनेके कारण वहाँ अन्तराल संभव है किन्तु पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च त्रादि तीन भेदोम उन प्रकृतियो के उक्त ऋनुभागोका ऋन्तर नहीं है, क्योंकि इनका जघन्य ऋनुभाग जो हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला एकेन्द्रिय इनमें जन्म लेता है उसीके होता है, अत: इन पर्यायोम जवन्य अनुभागका बढ़ा लेने पर पुनः उसका जघन्य होना संभव नहीं है इसलिये अन्तर नहीं है। इसी प्रकार इनके अपर्याप्त तथा मनुष्योंमे भी घटा लेना चाहिये। देवगतिमे सामान्य देवोमे तथा सौधर्मसे लेकर उपरिम प्रैवयक पर्यन्त बाईम प्रकृतियों र तथा उत्पर सभी प्रकृतियोके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है, क्योंकि उनमे जघन्य अनुभागके नष्ट होनेपर पुन: उसकी उत्पत्ति नहीं होती या प्रारम्भमें जो अनुभाग रहता है अन्ततक वही रहता है। अन्य प्रकृतियांके अन्तरका पहले कहे गये उत्कृष्ट-अनुकृष्ट अनुभागके अन्तरकी तरह घटा लेना चाहिये 🗍

श्रीमा जीवों की अपेक्षा भंगविचयका अधिकार है।
 ३३२५. अधिकारकी सम्हालके लिए यह सुत्र आया है। इसका अर्थ सुगम है।

🛞 तत्थ घटुठपदं ।

- § ३२६, तत्थ णाणाजीवभंगविचए अद्वपदं बुच्चदे । किमद्वपदं णाम ? जेण अवगएण भंगा अवगम्मति तमद्वपदं।
 - 🕸 जे उक्कस्साणुभागविहत्तिया ते ऋणुक्रस्सऋणुभागस्स ऋविहत्तिया।
 - ३२७. कदो ? उकस्साणुकस्साणुभागाणं सहाणवद्वाणस्रव्याविरोहादो ।
- 🕸 जे अणुकस्तअणुभागस्स विहत्तिया ते उक्कस्सअणुभागस्स अविहत्तिया।
 - 🐒 ३२८. अणुकस्साणुभागम्मि उकस्साणुभागस्स संभवविरोहादो ।
 - अ जेसिं पयडी अव्धि तेस पयदं, अकम्मे अञ्चवहारो ।
- ६ ३२६. जेसि जीवाण मोहरुउत्तरपयढीओ अत्थि तेस्र जीवेस्र पयदं अहि-यारो ! अकम्मे मोहकम्मविज्ञाए अव्ववहारो ववहारो णितथे खीणकसायादिउविरम-जीवेहि णात्थि ववहारो, मंग्हणीयकम्माभावादो ति भणिदं होदि ।

級 एदेण ऋट्ठपदेण ।

अध्यास अध्या

६३२६. उसमे ऋर्थात् नाना जीवोको ऋषेत्ता भंगविवय नामके ऋधिकारमे ऋर्थपदको कहते है।

शंका-अर्थपद किसे कहते हैं।

समाधान-जिसके जान लेने पर भंगोका ज्ञान हो जाता है इसे अर्थपद कहते हैं।

- * जो उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव हैं वे अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले नहीं होते।
- ् ३२७. क्योकि उत्कृष्ट ऋौर ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागोंमें सहानवस्थान रूप विरोध पाया जाता है। अर्थान ये दोनो एक साथ नहीं रह सकते है।
- * जो अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव हैं वे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले नहीं है।

§ ३२८. क्योंकि अनुन्कृष्ट अनुभागके रहते हुए उख्दृष्ट अनुभागके होनेमें विरोध है।

- अ जिन जीवोंके मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियाँ पाई जाती हैं वे प्रकृत हैं। जो मोहसे रहित हैं उनमें व्यवहार नहीं होता।
- ६ ३२९ जिन जीवोंके मोहनीय की उत्तर प्रकृतियाँ हैं उन जीवोंका प्रकरण है अर्थात् उनका अधिकार है। जो मोहकर्मसे रहित हैं उनका अव्यवहार है अर्थान् उनका व्यवहार नहीं है। तात्पर्य यह है कि बारहवें गुणस्थानसे लेकर ऊपरके जीवांकी अपेत्ता व्यवहार नहीं है, क्योंकि उनके मोहनीयकर्मका स्रभाव है।

* इस अथेपदके अनुसार—

¹ ता॰ मती भ्रव्ववहारी गरिय इति पाठः ।

§ ३३०. एदेण अणंतरं परूविदश्रहपदेण करणभूदेण णाणाजीवेहि भंगविचओ वुचदे।

 सब्वे जीवा मिच्छत्तस्स उक्कस्सम्रणुभागस्स सिया सब्वे म्रवि-हत्तिया ।

३३१. मिच्छत्तस्से ति णिइ सेण सेसकम्मपिडसंहा कदो। उक्कस्सअणु-भागस्से ति णिइ सो अणुक्कस्साणुभागादीणं पिडसेहफलो। सिया किम्ह वि काले सन्त्रे जीवा मिच्छतस्स उक्कस्साणुभागस्स अविहत्तिया होति, उक्कस्साणुभागसंत-कम्मेण सह अवहाणकालादो तेण विणा अवहाणकालस्स वहुत्तुवलंभादो। सन्त्रे जीवा सन्त्रे अविहत्तिया ति दोवारं सन्त्रिणा सो ण कायन्त्रो, प्रजणक्तिदोस-प्रसंगादो ति? ण एस दोसो, दोण्हं सन्त्रसद्दाणं पुत्रभूद् अत्थेमु वृहमाणाण प्रजणक्तियत्त्रविरोहादो । तं जहा-पदमो सन्त्रसद्दो जीवाणं विसेसणं, विदिओ अविहत्तियाणं विसेसणं। ण च भिएणात्थाहारवहुत्ते वृहमाणाणं दोण्हं सन्त्रपदाणमेयत्थे बुत्ती, अइप्य-संगादो। ण च जीवाविहत्तियाणमेयत्तं, भिएणाविसेसणविसिद्दाणमेयत्त्रविरोहादो । विसेसिज्जमाणसुभयत्थ एयमिदि पुणक्तदोसो किएण जायदे १ होदु णाम तहाविह-

* कदाचित सब जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागत्र्यविभक्तिवाले हैं।

् ३३१ मिध्यात्वपदके निर्देशसे शेष कर्मीका प्रतिषेध कर दिया। क्रिकुष्ट अनुभाग पदके निर्देशसे अनुक्ष्य अनुभागादिकका प्रतिषेध कर दिया। सिया अर्थात् किसी भी समय सब जीव मिध्या व की अक्ष्यट अनुभागअविभक्तिवाले होते हैं; क्योंकि उन्क्राट अनुभाग सत्कर्मके साथ रहनेका जितना काल है उस कालसे उसके विना रहनेका काल बहुत पाया जाता है।

शंका—'सब्ये जीवा, सब्ये अविहतियः' इस प्रकार दो बार 'सर्व' शब्दका निर्देश नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे पुनहाक्तदोषका प्रमङ्ग आता है।

समाधान—पुनरुक्ति दोप नहीं आता है, क्योंकि निम्न निम्न प्रथमि वर्तमान दो 'सर्व' शब्दों के पुनरुक्त होनेने विरोध है। खुतासा इस प्रकार है — पहला सर्व' शब्द जीवांका विरोपण है और दूसरा 'सर्व' शब्द अविभित्तियों का विशेषण है। इस प्रकार जब दोनों सर्व शब्द भिन्न भिन्न अर्थोंके बहुत्वमें विद्यमान हैं तो उनकी एक अथमें श्रीत्त नहीं हो सकती, अन्यथा अतिप्रसङ्ग दोप आयोग। अर्थान् यदि भिन्न निम्न अर्थम वर्तमान शब्द भी एकार्थ कि कहे जायेगे तो घट पट आदि सभी शब्द एकार्थ कि हो जायेगे और उस अवस्थाम घट पट शब्दके भी एक साथ कहं से पुनरुक्ति दोपका प्रसङ्ग उपस्थित होगा। यदि वहा जाय कि जीव शब्द और अविभित्तिक शब्द एक हैं सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि जो शब्द भिन्न भिन्न विशेषणोंसे विशिष्ट हैं अर्थान जब उन दोनोंके साथ अलग अलग विशेषण लगा हिंदुआ है तो उनके एक होनेमें विरोध है।

३३० इस पहले कहे गये करणभूत अर्थनदके अनुसार नाना जीवो की अपेचा भंग-विचयको कहते हैं।

१ भा० प्रती पदाग्रहत्तिय त्ति विरोहादो इति पाठः।

विवक्खाए, ण पुण एत्थ, पहाणीकयविसेसणत्तादो, तम्हा ण पुणरुत्तदोसो ति सद्दरेयव्वं ।

🕸 सिया ऋविहत्तिया च विहत्तिक्रो च ।

💲 ३३२. कम्हिं वि काले मिच्छत्तउकस्साणु०अविहत्तिगेहि सह एकस्स-उकस्साणुभागविहत्तियजीवस्स संभवो होदि, णिम्मूलाभावे उवलंभमाणे एकस्स उकस्साणुभागविहत्तियजीवस्स संभवं पांड विरोहाभावादो ।

ि सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ।

🖇 ३३३. कम्हि वि काले उक्कस्सार्गुभागस्स अविहत्तिएहि सह उक्कस्साणुभाग-विहत्तियजीवाणं संभवा होदि, विरोहाभावादो ।

अणुक्कस्सत्रणुभागस्स सिया सन्वे जीवा विहत्तिया। ६ ३३४. पुव्वसुतादा मिच्छत्तस्से ति अणुवृद्दे। अणुकस्सअणुभागस्से ति णिदे सो उकस्साणुभागपिडसेहफलो । कम्टि वि काले मिच्छत्तस्स अणुकस्साणु-भागस्स सब्वे जीवा विहत्तिया चेव होंति, उक्कस्साणुभागसंतकम्मियाणं जीवाणं सांतर-भावेण पउत्तिदंसणादो ।

🛞 सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च ।

शंका-दोनों जगह विशेष्य तो एक ही है अत: पुनरुक्त दोष क्यो नहीं आता ? समाधान-उस प्रकारकी विवज्ञाके होने पर पुनरुक्त दोप होस्रो, किन्तु यहाँ वह नहीं है, क्योंकि यहाँ विशेषण् ही प्रधान हैं, श्रतः पुनरुक्त दोष नहीं है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये।

🗴 कदाचित नाना जीव अविभक्तिवाले हें और एक जीव विभक्तिवाला है ।

इ ३३२. किसी भी समय मिथ्यात्व की उत्क्रुप्ट श्रनुभाग श्रविभक्तिवाले जीवोके साथ एक उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला जीव संभव है, क्योंकि जब कदाचित उत्कृष्ट अनुभाग विभक्ति-वाले जीवोका कर्तई स्रभाव पाया जाता है तो एक उत्कृष्ट स्रमुभागविभक्तिवाले जीवके रहनेमे कोई विरोध नहीं है। अर्थान् उनके निर्मृत अभावमें भी कमसे कम एक जीव उत्कृष्ट अनुभाग-वाला रह सकता है।

उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं।

६ ३३३. किसी भी समय उत्हृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाले जीवो के साथ उत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिवाले जीव होते हैं इसमे कोई विरोध नहीं है।

कदाचित् सव जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं।

इ ३२४. पहलके सूत्रसे मिथ्यात्व पद की अनुवृत्ति होती है। उत्कृष्ट अनुभागका निषेध करनेके लिए अनुत्कृष्टअनुभागका निर्देश किया है। किसी भी समय सब जीव मिध्यात्वक अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले ही होते है, क्यों कि उत्कृष्ट अनुभाग की सत्तावाले जीवों की प्रशृत्ति सान्तर रूपसे देखी जाती है।

🛪 कदाचित् बहुत जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं और एक जीव **अनुत्कृष्ट** अनुभागअविभक्तिवाला है।

- ३३५. कुदो १ बहुएिंह मिच्छत्ताणुकस्साणुभागविहित्तएिंह सह एकस्स मिच्छत्त्वस्साणुभागविहित्तयजीवस्मुवलंभादो ।
 - 🏶 सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च।
- § ३३६. मिच्छत्तस्स अणुकस्साणुभागविहत्तिएहि सह वहुत्र्याणमुकस्साणुभाग-विहत्तियाणं संभवुवलंभादो ।
 - 🏶 एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्तसम्मामिच्छत्तवज्जाणं।
- ३३७. जहा मिच्छत्तस्स भंगाणं मीमांसा कदा तहा सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-वज्जाणं सेसकम्माणं पि कायव्वा, विसेसाभावादो ।
- अ सम्मत्तसम्मामिच्छताणमुद्धस्सत्रगुभागस्स सिया सब्वे जीवा विष्टत्तिया।
- § ३३८. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणग्रुकस्साणुभागसंतक्रिमयाणं व अविद्वत्तियाणं
 पि सन्वकालसंभवो अत्थि, छन्बीससंतक्ष्मियाणं जीवाणं सन्वकालमाणंतियभावेण
 अविद्विष्णग्रुवलंभादो ति १ ण, अकम्मे ववद्यारो णित्थि ति पुन्वं परूविदत्तादो। मिच्छत्ता-
- § ३३५. क्यों कि मिश्यात्व की अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवाले बहुत जीवों के साथ मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला एक जीव पाया जाता है।
- क्ष कदाचित् वहुत जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले और बहुत जीव अनुत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले हैं।
- ् ३३६. क्यों कि मिण्यात्वकी अनुत्कृष्ट अनुमागविभक्तिवालों के साथ ब**हुतसे** उत्कृष्ट अनुमागविभक्तिवाले जीव पाये जाते हैं।
- इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिश्यात्वको छोड़कर शेप कमोंका भी जान लेना चाहिये।
- ृ ३३७. जैसे मिण्यात्वके भंगों की भीमांसा की है वैसे ही सम्यक्त्व श्रौर सम्य-ग्मिण्यात्वको छोड़कर शेष कर्मों की कर लेनी चाहिये. क्यों कि उससे इसमें कुछ विशेष नहीं है।
- * सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अपेन्ना कदाचित् सव जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले होते हैं।
- § ३३८. शंका—सम्यक्त्व और सम्यग्मिण्यात्वके उन्छष्ट अनुभागकी सत्तावाले जीवो के समान उन्छष्ट अनुभागकी अविभक्तिवाले जीव भी सदा संभव हैं, क्यां कि सम्यक्त्व और सम्यग्निध्यात्वके सिवाय मोहनीयकी शेष छव्वीस प्रकृतियोंकी सतावाले जीव सदा अनन्तरूपसे अवस्थित पाये जाते हैं। अतः उन्छष्ट अनुभागसे सहित जीवोंके समान उससे रहिन जीवोंको भी कहना चाहिय।

समाधान-नहीं, क्योंकि पहले कह आये हैं कि जिन जीवोंके मोहनीयकी प्रकृतियां नहीं

१ आ० प्रतो अणुणागिवहत्तिएहि इति पाटः। २ ता० प्रतो संतकम्मियाणं पि अतिहत्तियाणं पि सन्वकालसमिवो अतिय सन्वकालजीवाणं इति पाटः।

णुक्रस्साणुभागस्य विहत्तिया इव अविहत्तिया वि सन्दकारुमित्य ति तत्थ एगो चेव भंगो किण्ण परूविदो १ अकम्मेहि ववहाराभावेण एगभंगाणुष्पत्तीए।

₩ एवं तिरिए भंगा।

 १३२. सिया विहत्तिया चे अविहत्तिओ च । सिया विहत्तिया च अवि-हत्तिया च । एवमेदे मृलिल्लभंगेण सह तिण्णि भंगा ।

अ अगुक्करसञ्जगुभागस्स सिया सब्वे श्रविहत्तिया।

ः ३४०. खवणं मोत्तृण अण्णत्य सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणुकस्साणुभागस्स संभवाभावादो । ण च दंसणमोहणीयवस्वया सन्वकालमन्थि, तेसिमुक्षस्सेण छम्मासं-तस्वलंभादो ।

ि एवं तिरिण भंगा।

्र ३४१. सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च । सिया अविहत्तिया च विह-त्तिया च । एवं पुव्विन्त्यमंगेण सह तिष्णि भंगा । देसामासियं चुष्णिचुत्तमस्सियूण

है उनका यहां ऋधिकार नहीं हैं। अनः सम्यक्त्व और सम्यग्मिश्यात्वकी सत्तासे रहिन जीवोकी अपेदा भङ्ग नहीं वनलाया।

शंका—मिथ्यात्वके अनुःकृष्ट अनुसागविभक्तिवाले जीवोकी तरह अनुःकृष्ट अनुसाग अविभक्तिवाले जीव भी सदा रहते हैं. अत: वहां एक ही भड़ क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कर्मसे रहिन जीवोसे भङ्गका व्यवहार नहीं होता, अतः एक भङ्ग नहीं होता।

* इस प्रकार तीन भङ्ग होते हैं।

\$ ३३९. कदाचित अनेक जीव क्ष्मष्ट अनुमागविभाक्तवालं हैं और एक जीव उत्कृष्ट अनुमाग अविभक्तिवाला है। कदाचित अनेक जीव उत्कृष्ट अनुमागविभाक्तवालं है और अनेक जीव उत्कृष्ट अनुमाग अविभक्तिवालं है। इस प्रकार ये दोनों पहले कहें हुए मूल भड़के साथ मिलकर तीन भड़ होते हैं।

कदाचिन सव जीव अनुत्कृष्ट अनुभागत्र्यविभक्तिवालं हं।

् ३४०. क्योंकि त्तरम् अवस्थाको छोड़कर अन्यत्र मन्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके अनु-कृष्ट अनुभागका अभाव है। शायद कहा जाय कि दर्शनमोहनीयका त्तरम् करनेवाले जीव मदा रहते हैं, अनः सभी जीव अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिमे रहित नहीं हो मकते, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि दर्शनमोहके त्तरको का उन्कृष्टसे अमास अन्तरकाल पाया जाना है।

* इस प्रकार तीन भंग होते हैं।

६ २४१, कदाचित अनेक जीव अनुन्कष्ट अनुभागअविभक्तिवाले और एक जीव उन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला है। कदाचित अनेक जीव अनुन्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले और अनेक जीव अनुन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले है। इस प्रकार पहले कहे गए एक भङ्गके साथ ये दो भङ्ग

१ श्वा० प्रती विहस्तिश्रो च इति पाटः ॥

णाणा जीवभंगविचयपरूवणं करिय संपित उच्चारणमस्सिद्ण णाणाजीवभंगविचयपरूवणं कस्सामो---

३ ३४२. णाणाजीविह भगविचओ दुविहो — जहएए ओ उक्कस्सम्रां चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहे सां — ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्तस्स उक्कस्साणु-भागविहित्तया भजियव्या । अणुक्रस्सविहित्तया णियमा अत्थि । सिया एदं च उक्कस्साणु-भागविहित्यो च । सिया एदं च उक्कस्साणुभागविहित्यो च । धुवभंगे पिक्स्सवे विण्णि भंगा । एवमणुक्कस्सम्स वि । णविर विवरीयं वत्तव्यं । एवं सोलसक् णवणोकस्यायां । सम्मत सम्मामि उक्कस्साणुभागस्स सिया सव्यं जीवा विहित्तया । सिया विहित्या च अविहित्या च । धुवेण सह विण्णिभंगा । अणुक्कस्सम्स सिया सव्यं जीवा अविहित्या । एवमेत्थ वि विण्णिभंगा वत्तव्या । मणुसित्यिम्म स्रोधभंगो ।

3 883. आदेसेण णेरइएमु एवं चेव । णवरि सम्मामिच्छत्तस्स अणुकस्सं णित्थ । एवं पढमपुडिव-तिभिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख पंचि ०तिरि०पज्ज ०-देव-सोहम्मादि मिलानेसे तीन भङ्ग हाते हैं । देशामप् क चूर्णिसूत्र के अल्लासे नाना जीवों की अपेचा भङ्गविचय का कथन करके अब उचारणाके आल्लासे नाना जीवों की अपेचा भंगविचयका कथन करते हैं—

् ३४२. नाना जीवो की ऋषेक्षा भङ्गांवय दो प्रकारका है—जबन्य और उत्कृष्ट । प्रकृतमे उक्तप्रसे प्रयाजन है। निर्देश दो प्रकारका है-श्रोघ और अदेश। अग्रेयसे मिण्यात्वके उत्क्रप्ट त्रातुमागविमिक्तिशले जीव मिजितव्य हैं -कदाचित् होते भी हैं त्रीर कदाचित् नहीं भी होते। अनुकृष्ट अनुनागविनिक्त्राले जीव नियमसे होते है। कदाचित् अने ह जीव अनुकृष्ट विमाक्त-वाले ख्रीर एक जीव उन्कृष्ट अनुमार्गावर्माक्तवाला होता है। कदाचिन खनेक जीव अनुन्कृष्ट अनु-भागविभक्तिवाले और अनेक जीव उन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले होते हैं। इन दो भङ्गां म अनुन्कृष्ट विभक्तित्राले नियमसे होते हैं। इस ध्रव भङ्ग के भिज्ञानसे तीन भङ्ग हाते है। इसी प्रकार अनुन्कृष्टके भी तीन भङ्ग होते हैं। इतना विशेष है कि उन भङ्गा का उक्कप्रके भङ्गा से विश्रीत कहना चाहिये। अर्थात् कदाचित् सब जीव अनुःख्ट अनुभागविभक्तिवाले होते हैं । कदाचित् एक जीव उ.कुष्ट अतु-भागविमक्तित्राला और अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुमाग विमक्तित्राले होते है। कदाचिन् अनेक जीव उक्तर अनुभागविभक्तिवाले और अनेक जीव अनुस्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हाते हैं। इसी प्रकार सोलह कपाय त्र्योर नव नाकपाया के मङ्ग होते हैं। सम्यक्त त्र्यौर सम्यग्निध्यात्वकी ऋषेता कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट अनुमागविमक्तिवाले हाते हैं। कदावित् अनेक जीव उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिवाले और एक जीव उत्कृष्ट विभक्तिसे रहित होता है। कदाचिन् श्र**नेक जीव** उक्छ अनुमागविभक्तिवाले और अनेक जीव उससे रहित होते हैं। ध्रुव भङ्गके साथ तीन भङ्ग हाते हैं। अनुकुष्ठी अपेक्षा कदाचिन् सब जीव अनुकुष्ट अनुमागविमक्तिसे रहित हाते हैं। इस प्रकार अनुक्कृटके भी तीन मङ्ग कहने चाहिए। सामान्य मनुःय, मनुष्य पर्याप्त और मनु-रियनियों में श्रोघके समान भङ्ग हाते हैं।

ु २४३. श्रादेशसे नारकिया में इसी प्रकार भ उ है ते हैं । इतना विशेष है कि उनमें सम्य-ग्मिथ्यालका श्रतुकार श्रतुकार स्वामा नहीं होता । इसी प्रकार पहली पृथियी, सामान्य तिर्यंख, पश्चे • जाव सहस्सारो ति । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णविर सम्मत्तस्स एको चेव भंगो, अणुक्कस्साणुभागाभावादो । एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणी-पंचि०तिरि०--अपज्ञ०-भवण०-जोदिमि०। मणुसञ्चपज्ञ० छव्वीसं पयडीणमुक्कस्साणुक्कस्साणुक्कस्साणुक्तम्साणु-भागस्स अह भंगा वतव्वा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं उक्कस्साणुभागस्स दो भंगा । आणदादि जाव सव्वहसिद्धि ति छव्वीसं पयडीणमुक्कस्साणुक्कस्साणु०णियमा अत्थि । सम्मत्तस्स ओघभंगो । सम्मामि० उक्कस्साणु० णियमा अत्थि । भंगो एको चेव । एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

२ ३४४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्दे सो—ओवेण आदसेण । स्रोघेण मिच्छत्त-अहकसा० जहण्णाजहण्णाणु० णियमा अत्थि । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु-चउक्क०-चदुसंज०-णवणोक० जहण्णाणुभागस्स सिया सच्वे जीवा अविहत्तिया । एत्थ तिण्णि भंगा । अज० अणुभागस्स सिया सच्वे जीवा विहत्तिया । एत्थ वि तिण्णि भंगा वत्व्वा ।

६ ३४५. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसं पयडीणं जहण्णाजहण्णाणुभागस्स तिण्णि भंगा । एवं पढमपुढवि--पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज० देवोघं च । विदियादि

न्द्रियतिर्यश्च, पश्चे न्द्रियतिर्यश्च पर्याप्त, सामान्य देव और सीधर्मसे लेकर सहस्रार तकके देवों में जातना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातर्वा पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष हैं कि सम्प्रक्त्यका एक ही भङ्ग होता है क्यों कि इन नरकों में उसका अनुकृष्ट अनुभाग नहीं होता। इसीप्रकार पश्चे न्द्रियतिर्यश्चे योनिर्ना, पश्चे न्द्रियतिर्यश्चे अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और उयोतिर्पा देवों में जानना चाहिए। मनुष्य अपर्याप्तकों में छव्वीम प्रकृतियों के उक्ष्य और अनुकृष्ट अनुभागके दो भङ्ग होते हैं। आनत स्वगंसे लेकर सर्वार्थिसिद्धपर्यन्त छ्व्योस प्रकृतियों का उक्ष्य और अनुरकृष्ट अनुभाग नियमसे होता है सम्यक्त्वके भंग आघ की तरह होते हैं। सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग नियमसे होता है। भग एक ही है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

ई २४४, श्रव जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है —श्रोघ और आदेश। श्रोघसे मिण्यात्व श्रोर श्राठ कपायों के जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवाले नियमसे होते हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिण्यात्व, श्रननतानुबन्धी चतुरक. चारों सञ्चलन श्रीर नव नोकपायों के जघन्य श्रनुभागक के कदाचित सब जीव श्रविभक्तिक श्रशीत् जघन्य श्रनुभागसे रिहत होते हैं। यहाँ तीन भंग होते हैं—एक भंग पूर्वोक्त श्रीर दो चे—कदाचित् श्रानेक जाव जघन्य श्रनुभागविभक्तिसे रिहत श्रीर एक जीव उससे सहित होते हैं। अजधन्यकी श्रपेक्षा कदाचित् सब जीव श्रजघन्य श्रनुभागविभक्तियों हों। सिहत होते हैं। श्रजघन्यकी श्रपेक्षा कदाचित् सब जीव श्रजघन्य श्रनुभागविभक्तियाले हैं। यहाँ भी तीन भंग कहने चाहिये।

\$ २४५, आदेशसे नारिकयों में सत्ताईस प्रकृतियों के जधन्य श्रीर अजधन्य अनुभागके तीन भंग हाते हैं। कदावित् सब जोब जधन्य अनुभागसे रिह्न, कदाबित् अने ह जीब रिह्न श्रीर एक जोब सिह्न, कदाबित् अने ह जोब रिह्न श्रीर अने ह जोब सिह्न। अजबन्य हे इससे जाव सत्तमि ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणंक० जहण्णाजहण्णाणु० णियमा अत्थि। सम्मत्त-सम्मामि० एको चेव भंगो, अजहण्णाणुभागविहत्तिएहि मोत्तृण अण्णेसि तत्था-भावादो । तत्थ जहण्णाणुभागण विणा कथमजहण्णत्तमणुभागस्स । ण, ववएसिवब्भा-वेण तत्थ तस्स सिद्धीदा । अणंताणु०चउक्क० ओघं । एवं जोदिसि० । तिरिक्खा एवं चेव । णविर सम्मत्त० ओघं । जोणिणी० पंचिद्यितिरिक्खभंगो । णविर सम्मत्त० जहण्णं णित्थ । पंचिद्यितिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० उक्कस्सभंगो । भवण०-वाण० पढमपुढवि०भंगो । णविर सम्मत्त० जहण्णं णित्थ । सोहम्मादि जाव सव्वहसिद्धि ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्ण० णियमा अत्थि । सम्मत्त-अणंताणु० चउक्क० ओघं । एवं जाणिदृण णेद्व्वं जाव अणाहारए ति ।

§ ३४६. भागाभागो दुविहो — जहण्णओ उकस्सओ चेदि । उकस्से पयदं । दुविहो णिदं सो — ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसपयडीणमुकस्साणुभागविह-विपरीत समभता । इसी प्रकार पह ती पृथिवी, पर्व्वान्द्रिय तिर्यश्च पर्याप्त और सामान्य देवों में जानना चाहिए । दृसरीस लेकर सातवी पृथिवी पर्यन्त मिण्यात्व, वारह कपाय और नव नोकपायो का जवन्य और अजवन्य अनुभाग नियमसे होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिण्यात्वका एक ही भंग होता है, क्यों कि अजघन्य अनुभागविभक्तिसे सहित जीवों को छोड़कर अन्य भंगों का वहाँ अभाव है ।

शंका—जब जघन्य अनुमागका अमाब है तो उसके विना वहाँके अनुमागका अजघन्य-पना कैसे सम्भव है ^१

समाधान-ऐसी शंका उचित नहीं है. क्योंकि व्यपदेशिवद्वावसे अर्थान अज्ञघन्य अनुभागके समान अनुभागमे अज्ञघन्यका व्यपदेश कर लेनेसे वहा अज्ञघन्य अनुभाग पद संभव है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके भंग आघके समान होते हैं। इसी प्रकार ज्योतिषयोमे जानना चाहिए। तिर्यश्चोमे भी इसीप्रकार भंग होते हैं। इतना विशेष है कि सम्यक्ष्वके भंग आघकी तरह जान लेना चाहिए। तिर्यश्चयोनिनयोमे पश्चिन्द्रिय तिर्यश्चो के समान भंग होते हैं। इतना विशेष है कि उनमे सम्यक्ष्वका जघन्य अनुभाग नहीं होता। पश्चिन्द्रियित्र्यश्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोमे उत्कृष्टके समान भंग होते हैं। भवनवासी और व्यन्तरोमे पहली पृथिवीके समान भंग होते हैं। इतना विशेष है कि उनमे सम्यक्ष्यका जघन्य नहीं होता। सीधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मिण्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायोका जघन्य और अज्ञघन्य अनुभाग नियमसे होता है। सम्यक्ष्य और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओषके समान है। उम प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिय।

विशेषार्थ-यद्यपि जघन्य और अजघन्य दानां सांपक्ष है और इसलियं जघन्यके अभावमे अजघन्यका व्यवहार नहीं हो सकता तथापि दृसरे आदि नरकोमे सम्यक्त और सम्यम्भिध्याख प्रकृतिका जो अनुभाग पाया जाता है वह अन्यत्र पाये जानेवाले अजघन्य अनुभागके समान होता है, अत: उसे अजघन्य कह देते हैं।

६ ३४५. भागामाग दो प्रकारका है-जयन्य और उत्कृष्ट । प्रकृतमे उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है —आय और आदेत। आयसे छन्त्रीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिकाले जीव सब जीवोंके कि तने भाग साला हैं ? अनन्तों भागप्रमाण हैं और अनुस्कृष्ट

त्तिया सन्वजीवाणं केविडओ भागो ? अणंतिमभागो । अणुक्क० अणंता भागा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणुभागविहत्तिया सन्वजीवाणं केविडओ भागो ? असंखेळा भागा । अणुक्क० केव० ? असंखे०भागो । एवं तिरिक्खाणं । णविर सम्मामि० णित्थि भागाभागं ।

् ३४७. आदेसेण णेरइएस छन्त्रीमप्पयडीणमुक्कस्साणु० सन्वजीवा के० १ असंखं०भागो । अणुक्क० असंखेजा भागा । सम्मत्त० श्रोघं । सम्मामि० णित्थ भागाभागं । एवं पढमपुढवि-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मादि जाव अवराइदो ति । विदियादि जाव सत्तिषि ति एवं चेव । णवरि समत्त० भागाभागं णित्थ । एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणी--पंचिदियतिरि०अपज्ज०--मणुस्सअपज्ज०--भवण०-जोदिसिए ति । मणुस्साणं णेरइयभंगो । णवरि सम्मामि० ओघं । एवं मिणुस्त पज्जत-मणुस्सिणीसु । णवरि संखेज्जं कायव्वं । एवं सव्वद्वसिद्धि ति देवाणं । णवरि सम्मामिच्छत्तवज्जं । एवं जाणिदण णेद्व्वं जाव अणाहारि ति ।

ु ३४८. जहएएए पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अद्वकसाय० जहएए।।एए० सव्वजी० के०१ असंखे०भागो ।

अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्त बहुमागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्दृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोक कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यात बहुमागप्रमाण हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं। असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार तिर्यभ्वोमे जानना चाहिए। इतना विशेष हैं कि उनमे सम्यग्मिध्यात्वके अनुभागकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है।

् ३४६. आदंशसे नार्यकयां में छर्वास प्रकृतियांकी उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवाले जांव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवे भागप्रमाण हैं । अनुकृष्ट अनुभागिवभक्तिवाले असंख्यात वहुभागप्रमाण है । सम्यक्त्वका भागाभाग ओघकी तरह जानना चाहिए। सम्यिग्ध्यात्वका भागाभाग नहीं है । इसी प्रकार पहली पृथिवी. पश्चिन्द्रियतिर्यश्च, पश्चिन्द्रियतिर्यश्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौवर्म स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोम जानना चाहिए। दुसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नार्यक्रयोग इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमे सम्यक्त्वका भागाभाग नहीं है । इसी प्रकार पश्चिन्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्त, मनुष्य अपयोग्त, भवनवासी. त्यन्तर और उथोतिर्य। देवामे जानना चाहिए। सामान्य मनुष्योमे नार्यकर्योकी तरह भग है । इतना विशेष है कि सम्यग्निर्याक्ति जगह सख्यात करना चाहिए। इसी प्रकार सर्वार्थ। सिमान्य विशेष है कि वहाँ असंख्यातकी जगह सख्यात करना चाहिय। इसी प्रकार सर्वार्थ। सिद्धतकके देवोमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ असंख्यातकी है कि सम्यग्निर्याक्त होड़ देना चाहिए। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिय। है कि सम्यग्निर्याक्त होड़ देना चाहिए। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषोर्थ-जहाँ सम्यक्त्व या सम्यग्मिध्यात्वका, अनुभाग ही पाया जाता है वहाँ उनकी अपेन्ना भागाभाग नहीं बतलाया है, जैसे नरकमे ।

§ ३४७. श्रव जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रौर श्रादेश। श्रोघछे मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व श्रौर श्राठ कषायोंके जघन्य श्रातुमागिवमिकाले जोव सव अज० अप्पप्पणो सन्वजी० के० ? असंखेज्जा भागा । अणंताणु०चउक्क०-चदुसंज०-णवणोक० जहरूरााणु० अणंतिमभागो । अज० अणंता भागा ।

ः ३४६. आदेसेण णेरइएसु मनावीसं पयडीणं जहएए।। ग्रु॰ असंखे०भागो । अज० असंखेजा भागा । सम्मामि० णित्थ भागाभागं । एवं पढमपुढवि-पंचिदिय-तिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०--देव-सोहम्मादि जाव अवराइदो ति । विदियादि जाव सत्तिमि चि एवं चेव । णवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं जोणिणी-पंचिदिय-तिरिक्ख० अपज्जन-मणुम्मे अपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिए ति ।

्र ३५०. तिग्विख० मिच्छन-सम्मत-बारसक०-णवणोक० जहण्णाणु० के० १ असंखे०भागो । अञ् असंखेजा भागा । अणंताणु०चउक० जहण्णाणु० अणंतिम-भागो । अञ् अणंता भागा । मणुम्म० अद्यावीस० जहण्णाणु० असंखे०भागो । अञ० असंखेजा भागा । एवं मणुमपज्ज०-मणुमिणी०। णवि संखेजां कायव्वं । एवं सव्वद्व-सिद्धिदेवाणं । णवि सम्मामिच्छत्तवज्ञं । एवं जाणिदृण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

जीवोके किनने भागप्रमाण हैं ? असम्यानवें भागपमाण है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण है ? असंख्यान बहुभागप्रमाण हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चारो संख्वलन कपाय और नव नोकपायोके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं और अजघन्य अनु गगविभक्तिव ले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण हैं।

् ३४९. श्रादेशसे नारिकयोमे सत्तार्धस प्रवृतियोके जघन्य श्रानुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोके श्रसंख्यातवे भाग प्रमागा हैं श्रीर श्रज्ञचन्य श्रानुभागविभक्तिवाले जीव श्रसंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। सन्यग्मिध्यात्वका भागाभाग नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च, पश्चेन्द्रिय निर्यश्च पर्याप्त, सामान्य देव श्रीर सौधर्म स्वर्गसे लेकर श्रपगतित विमान नकके देवोमे ज्ञानना चाहिए। दुसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नागिकयोमे भी इसी प्रकार ज्ञानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वका भागाभाग सम्यग्निध्यात्व की नरह है। इसी प्रकार तिर्यश्चयोनिनी, पश्चेन्द्रिय निर्यश्च श्रपयाप्त, भनुष्य श्रपयाप्त, भननवासी, ज्यन्तर श्रीर ज्योतिषी देवोने ज्ञानना चाहिए।

ृ ३५० सामान्य तिर्यन्त्रोमं मिण्यात्व. मन्यकव, वाग्ह कपाय और तव नोकपायोंकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाल जीव हितने भागप्रभाग हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्क की जघन्य अनुभागविभक्तिवाल जीव असंख्यात बहुमागप्रभाग है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क की जघन्य अनुभागविभक्तिवाल जीव असन्तवें भागप्रभाग है । अज्ञान्य अनुभागविभक्तिवाल जीव असन्तवहुभाग प्रमाग हैं । सनुष्योमे अद्वाहेस प्रकृतियों की जघन्य अनुभागविभक्तिवाल जीव असंख्यातवें भागप्रमाग है । अज्ञान्य अनुभागविभक्तिवाल जीव असंख्यात वहुभागप्रमाग है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और म प्यितियोमें ज्ञानना चाहिए । इतना विशेष है कि असंख्यातके स्थानमें संख्यात कर लेना चाहिये । इसी प्रकार सर्वाधीसिद्धके देवोमे ज्ञानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यग्मिण्यात्वको छोड़ देना चाहिए । इस प्रकार ज्ञानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

^{1,} श्रा० प्रती तिरिक्ख॰ मगुस्स० इनि पाटः।

- § ३५१, परिमाणं दुविहं जहण्णमुकस्सयं चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्दे सो अग्रेषेण आदेसेण। ओपेण इन्वीसं पयडीणमुक्कस्साणुभागविहत्तिया केतिया? असंखेज्ञा । अणुक्कस्साणुभागविहत्तिया दव्वपमाणेण केविडया ? अणंता । सम्मत्त-सम्मामिच्छताणमुक्कस्साणुभागविहत्तिया दव्वपमाणेण केविडया ? असंखेज्ञा । अणुक्क संखेज्ञा । एवं निरिक्खोदं । णवरि सम्मामि० अणुक्कस्साणु० णित्थ ।
- ३ ३५२. आदेसेण णेरइएस छन्त्रीसं पयडीणमुक्कस्साणुक्कस्साणु० के० ? असंखेजा। सम्मत्त० ओघं। एवं पहमपुटवि-पंचिदियतिरिवख-पंचि०तिरि०पज्ञ०-देव-सोहम्मादि जाव अवराइद त्ति। एवं विदियादि जाव सत्तिमित्त। णविर सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तर्भगो। एवं जोणिणी-पंचिदियतिरिवख० [अपज्ञत्त-] मणुसअपज्ञ०-भवण-वाण०-जोदिसिए ति। मणुस्साणं णेरइयभंगो। णविर सम्मामि० ओघं। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु। णविर सन्वपयडीणमुक्क० अणुक्क० संखेज्ञा। एवं सन्वद-सिद्धिदेवाणं। एवं जाणिदण णेदन्वं जाव अणाहारि ति।
- ३५३, जहण्णए पयदं। दुविहो णिहेसो---ओघेण आर्सेण। ओघेण मिच्छत्त०-ग्रहक० ज० अज० दच्चपमाणेण केव० ? त्रणंता। सम्मत्त ०-सम्मामि० ज०
- § ३५१. परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृश्का प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और आदेश । आघसे छ्रद्यीम प्रकृतियों की उत्कृष्ट अनुमागिवमिक्तवाले जीव कितने हैं ? असंख्यान हैं । अनुत्कृष्ट अनुमागिवमिक्तवाले जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यान हैं । सम्यक्तव और सम्यिमिक्यात्व की उत्कृष्ट अनुभागिवमिक्तवाले जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यान है । अनुत्कृष्ट अनुभागिवमिक्तवाले जीव संख्यान हैं । इसी प्रकार सामान्य निर्यक्षोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि निर्यक्षोंमें सम्यिमिक्यात्वकी अनुत्कृष्ट अनुभागिवमिक्तवाले नहीं है ।
- ६ ३५२ त्रादेशसे नारिकयोमें छुट्वीम प्रकृतियों की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिवाल जीव किनने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्त्वका ख्रांच की तरह भक्त जानना चाहिए । इमी प्रकार पहली गृथिवी, पश्चिन्त्रिय तिर्यश्च, पश्चिन्त्रियतिर्यश्च पयाप्त, सामान्य देव और मौधमं स्वर्गसे लेकर ख्रपराजित विमान तकके देवोमें जानना चाहिए । इसी प्रकार दृसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी तक जानना चाहिए । इतना विशेष हैं कि सम्यक्त्वका भक्त सम्यमिश्वात्व की तरह है । इसी प्रकार पश्चिन्त्रिय तिर्यश्चयोनिनी, पश्चिन्त्रिय तिर्यश्च ख्रपर्याप्त, मनुष्य ख्रपर्याप्त, भवनवासी, ज्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें जानना चाहिए । सामान्य मनुष्यांमं नारिकयोंके समान भंग है । इतना विशेष है कि सम्यम्भिश्वात्वमें ख्रांच की तरह भक्त है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमें सब प्रकृतियों की उत्कृष्ट ख्रीर अनुत्कृष्ट ख्रनुभागविभक्तिवाल जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार मर्वार्थसिद्धिके देवोंमें जानना चाहिए । इस प्रकार जानकर ख्रनाहारी प्रयन्त लेजाना चाहिए ।
- ु ३५३, जधन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रौर श्रादेश। श्रोघसे मिध्यात्व श्रौर श्राठ कपायोंकी जधन्य श्रौर श्राजधन्य श्रानुभागिवभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं १ श्रानन्त हैं। सम्यक्त्व श्रौर सम्मिश्यात्वकी जधन्य श्रानुभागिवभक्तिवाले जीव संख्यात

संखेजा। अजि असंखेजा। अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० केत्तिया ? असंखेजा। अजह० के० अणंता। चदु०संज०-णवणोक० जहण्णाणु० संखेजा। अज० अणंता।

§ ३५४. आदेसेण णेरइए सु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० असंखेजा। सम्मत्त० जहण्णाणु० संखेजा। अज० असंखेजा। सम्मामि० अज० असंखेजा। एवं पढमपुढवि०--पंचिद्यितिरिवख--पंचि०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मादि जाव अवराइदो ति। विद्यादि जाव सत्तमि ति एवं चेव। णविर सम्मत्त० सम्मा-मिच्छत्तभंगो। एवं जोणिणी-पंचिद्यितिरिवखअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिए ति।

§ ३५५. तिरिक्ख० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० केत्तिया ? अणंता । अणंताणु०चडक० जहण्णाणु० असंखेजा । अज० अणंता । सम्मत्त० ज० संखेजा । अज० असंखेजा । सम्मामि० अज० असंखेजा ।

३५६. मणुस्सेमु मिच्छत्त अद्यक्त जहण्णाजहण्णाणु० असंखेळा । सम्मतसम्मामि०--अणंताणु०चउक्क०--चद्संज०--णवणोक० जहण्णाणु० संखेळा । अज०

हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाने जीव असंख्यात है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य अनुभाग विभक्तिवाले जीव कितने हैं १ असख्यात हैं। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं १ अनन्त हैं। चार संज्वलन और नव नोकपायोकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्त है।

६ ३५४. आदेशसे नारिकयोमं मिण्यात्व, सीलह् कपाय और नव नीकपायोकी जघन्य और अजघन्य अनुभागिवभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यक्तिव्वी जघन्य अनुभागिवभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यक्तिव्यी अजघन्य अनुभागिवभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवी. पश्चिन्द्रयतिर्यश्च, पश्चेन्द्रयतिर्यश्च पर्याप्त, सामान्य देव और सीधर्म स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोमे जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नारिकयोमे ऐसे ही जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वका भङ्ग सम्यक्तियाल्यके समान है। इसी प्रकार पश्चेन्द्रयतिर्यश्च योनिनी, पश्चेन्द्रयतिर्यश्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंमं जानना चाहिए।

§ ३५५. सामान्य तिर्यश्चोमं मिण्यात्व, वारह कपाय और तव नोकपायोकी जघन्य और अजघन्य अनुभागिवभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य अनुभागिवभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागिवभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यक्तिकी जघन्य अनुभागिवभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यक्तिकी जघन्य अनुभागिवभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यग्मिण्यात्वकी अजघन्य अनुभागिवभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं।

§ ३५६. सामान्य मनुष्योंमें मिथ्यात्व और आठ कपायोंकी जघन्य श्रीर अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव श्रसंख्यात हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, श्रनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन श्रीर नव नोकपायोंकी जघन्य श्रनुभागविभक्तिवाले, जीव संख्यात हैं। अजघन्य

असं खेळा । मणुसपक्रतः मणुसिणीसु अद्वावीसं पयहीणं जहण्णाजहण्ण० संखेळा । एवं सन्वद्वसिद्धिम्म । णवरि सम्मामि० जहएणाणुभागो णित्थ । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ३५७. खेतं दुविहं — जहण्णभुकस्सयं चेदि । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिदे सो — ओघेण आदेसेण य। ओघेण इच्बीसं पयडीण भुक्करसाणु०विहत्तिया जीवा केविह खेते ? लोगरस असंखे०भागे । अणुक्क० वे० खेते ? सच्चलोगे । सम्मत्त-सम्मामि० इक्करसा- णुक्करसविहत्तिया के० ? लोग० असंखे०भागे । एवं तिरिवखोगं । णविर सम्मामि० अणुक्करसाणु० णित्य । सेससच्वादेसपदेशु सच्चपयडीण भुक्करसाणुकरसाणुभागविहत्तिया जीवा केविह खेते ? लोग० असंखे०भागे । णविर सम्मत्त-सम्मामिच्छत्राणं पदिवसेसो जाणियच्यो । एवं जाव जणाहारि ति ।

् ३५ द्र. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहे सो— ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-श्रद्धकः जहण्णाजहण्णाणुः के० खेते ? सव्वछोए। सम्मत्त-सम्मामि० जहण्णा-जहण्णाणुः के० खेते ? छोगः श्रसंखे०भागे। अणंताणुः चडकः चदुसंजः णवणोकः जहण्णाणुः के० खेले? लोगस्स असंखे०भागे। अज० सव्वलोगे। एवं तिरिक्खोघं।

श्रनुभागविभक्तिवाले जीव श्रसस्यात है। मनुष्य पर्याप्त श्रीर मनुष्यिनियामे श्रष्टाईस प्रवृतियोंकी जघन्य श्रीर श्रजधन्य श्रमुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थिसिद्धिमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ सम्यग्मिश्यात्वका जघन्य श्रमुभाग नहीं है। इस प्रकार जानकर श्रमाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ ३५७. चेत्र दो प्रकारका है—जघन्य श्रीर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश । श्रोघसे छन्वीस प्रकृतियों की उत्कृष्ट श्रनुभागिविक्तवाले जीवोंका कितना चेत्र है ? लोक के श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है । श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागिवभक्ति-वाले जीवोंका कितना चेत्र है सर्व लोक चेत्र है । सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिध्यात्व की उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागिवभक्तिवाले जीवोंका कितना चेत्र है लोक के श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्वोमे जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमे सम्यग्मिध्यात्व की श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागिवभक्ति नहीं है । श्रादेश की श्रपेचा शेष सब स्थानोंम सब प्रकृतियों की उत्कृष्ट श्रनुभागिवभक्तिवाले जीवों का कितना चेत्र है ? लोक श्रसंख्यातवेंभाग प्रमाण चेत्र है । इतना विशेष है कि सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिध्यात्वके पदों में कुछ विशेषता है सो जान लेना चाहिये । इस प्रकार श्रनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

§ ३५८. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और श्रादेश। श्रोघसे मिध्यात्व श्रीर श्राठ कपायों की जघन्य श्रीर श्राठम्य श्रम्भागिवभक्तिवाल जीवोंका कितना चेत्र है ! सर्व लोक चेत्र है । सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिध्यात्व की जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रम्भागिवभक्तिवाले जीवोंका कितना चेत्र है ! लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है । श्रनन्तानुबन्धी चतुष्क, चार संज्वलन श्रीर नव नोकपायोंकी जघन्य श्रम्भागविभक्तिवाले जीवोंका कितना चेत्र है ! लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है । श्रजघन्य श्रम्भागविभक्तिवाले जीवोंका सर्व लोक- श्रमाण चेत्र है । इसी प्रकार सामान्य निर्यश्वोंमं जानना चाहिए। इतना विशेष हैं कि चार

णवरि चदुसंज०-णवणोकसायाणं मिच्छत्तभंगो । सम्मामि० जहण्णं णित्थ । सेसमग्ग-णासु सव्वपयडीणं जहएणाजहएणाणु॰ लोग० असंखे०भागे । एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ३५६, पोसणं दुविहं—जहएण मुकस्सं च । उक्कस्सं पयदं । दुविहो णिइ सो— ओघंण आदेसेण य । ओघंण छन्वीसं पयडीण मुक्कस्साणुभागविहतिएहि केविडयं खेतं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अह चोइसभागा वा देस्णा सन्वलोगो वा । अणु-क्कस्सविहत्तिएहि के० खे० पोसिदं ? सन्वलोगो । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० लाग० असंखे०भागो अहचोइ० देसुणा सन्वलोगो वा । अणुक्क० लोग० असंखे०भागो ।

\$ ३६०. त्रादेसेण णेरइएसु छन्दीसंपयडीणं उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०-भागो छचोदसभागा वा देसूणा । सम्मामि० उक्क० लोग० असंखेभागो छचोदस० देसूणा । सम्मत्त० उक्क० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा । अणुक्क० लोग० सञ्चलन और नव नांकपायोका मिश्यात्वकी तरह भंग है। यहाँ सम्यग्निथ्यात्वका जर्बेन्य अनुभाग नहीं है। शेष मार्गणात्रोमे सब प्रकृतियोकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण चेत्र है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

् ३५९. म्पर्शन दो प्रकार का है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है-योघ और आदश । योघसे छन्दीस प्रकृतिय की उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिय ले जीवोने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असम्यातवे भागप्रमाण, चौदह भागोम से छछ कम आठ भागप्रमाण और सर्वलाकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है । अनुन्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवालोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? सर्वलोकका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्र और सम्यामण्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवे भाग, चौदह भागों में से छछ कम आठ भाग और सर्व लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है । अनुन्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवे भाग, चौदह भागों में से छछ कम आठ भाग और सर्व लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है । अनुन्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—श्राघसे छव्वीस प्रकृतियों उन्कृष्ट अनुभागसत्कर्म के स्वाभी एकंन्द्रियसे लेकर पश्चे न्ट्रिय तक होते हैं, अतः श्रोघसे मारणान्तिक और उपपादकी अपंचा सर्वलाक विहार-विस्वस्थान, वेदना, कपाय और विक्रियाकी अपंक्षा कुछ कम आठ वट चौदह राजु और इतरकी अपंचा लोकका असख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। अनुन्कृष्ट अनुभागवाले जीव सर्वत्र पाये जाते हैं, अतः उनका स्पर्शन सर्वलों के है। सम्यक्त्व और सम्यिगध्यात्व प्रकृतिके उन्कृष्ट अनुभागवालों का स्पर्शन पूर्ववन् लोकका असंख्यातवाँ भाग, आठ वट चौदह राजु और सर्वलांक है। तथा अनुन्कृष्ट अनुभागवालोंका स्पर्शन लोकका असंख्यातवाँ भाग, है, क्योंकि उनका अनुन्कृष्ट अनुभागसन्कर्म दर्शनमोहके क्षयक है। होता है।

§ ३६०. आदेशसे नारिकयोंमे छ्व्बीस प्रकृतियोकी उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिन्वालों ने लोकके असंख्यातवे भाग और चौदह भागों मसे कुछ कम छ भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यग्निध्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालों ने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागों मसे कुछ कम छ भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यम्त्वकी उत्कृष्ट अनुभागिवभक्तिवालों ने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागों मसे कुछ कम छ भागप्रमाण चेत्रका

१. छा॰ प्रता देनुषा । सम्मत-सम्मामि० इति पाठः ।

असंखे०भागो । पढमपुढवि० खेतं । विदियादि जाव सत्तमि ति छव्वीसंपयडीणं उक-स्साणुकस्स० लोग० असंखे०भागो एक-वे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छचोइसभागा वा देसूणा। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० उकस्साणुभागस्स मिच्छत्तभंगो ।

\$ ३६१. तिरिक्षेसु छन्त्रीसंपयडीणसुक्तस्साणु० लोग० असंखे०भागो सन्व-लोगो वा । अणुक्क० सन्वलोगो । सम्मत्त० उक्क० मिन्छत्तभंगो । अणुक्क० लोग० असंखे०भागो । सम्मामि० उक्क० सम्मत्तभंगो । पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०नोणिणीयु छन्त्रीसंपयडीणसुक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सन्व-लोगो वा । सम्मत्त-सम्मामिन्छत्ताणं तिरिक्खाघं । णविर नोणिणीसु सम्मत्त० अणुक्कस्सा० णित्थ । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० छन्त्रीसंपयडीणसुक्कस्साणु० लोग० असंखे०भागो । अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सन्वलोगो वा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० लोग० असंखे०भागो । एवं मणुसअपज्ज० । मणुसतिय०पंचिदियतिरिक्ख-लोग० असंखे०भागो सन्वलोगो वा । एवं मणुसअपज्ज० । मणुसतिय०पंचिदियतिरिक्ख-

स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागिवमिक्तवालां ने लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीम चेत्रके समान भंग है। दृसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नार्राक्यों में छव्वीस प्रकृतियां की उत्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागिवमिक्तवालों ने लोकके असंख्यातवें भागप्रम ए और चौदह भागों में से कमराः कुछ कम एक. दो, तीन, चार, पांच और छह भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सस्प्रका और सस्यग्मिण्यात्पके उन्कृष्ट अनुभाग विभक्तियालोंका स्पर्शन मिण्यात्व की तरह है।

६ ३६१. तिर्यभ्बोमे छन्त्रीस प्रकृतियोकी उत्कृष्ट अनुमागविमक्तिवालोने लोकके असंख्या-तवें भागप्रमाण और सर्व ला ध्रमाण चेत्रका सर्शन किया है। अनुकुष्ट अनुमाग्विमक्तित्रालाने सर्व लोकप्रमास चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी ज्कुष्ट अनुभागविभक्तिवालोका स्पर्शन मिथ्यात्वकी तरह है। अनुकृष्ट अनुमार्गावमिक्तवालोंने लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यामिण्यात्वकी उन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोका स्पर्शन सम्यवन्वकी तरह है। पञ्चेन्द्रयतिर्यञ्च. पञ्चेन्द्रयतिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रय तिर्यञ्चयोनिनियोमे छ्ट्वीस प्रकृतियोकी उत्कृष्ट और अनुष्कृष्ट अनुभागिवभक्तित्रालोने लोकके असख्यातवे भागप्रमाण और सर्व लोक-त्रमाण नेत्रका स्वर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यव्भिष्यात्वका स्वर्शन सामान्य तिर्वञ्चोकी तरह है। इतना विरोप है कि यानिनी निर्यश्चीम सम्यक्त्यका अनुक्रष्ट अनुनाग नहीं है। पर्श्वन्द्रयतिर्यभ्य अपर्याप्तकोमं छव्वीस प्रकृतियोकी उन्कृष्ट अनुभागविभक्तिवातीने लोकके असंख्तातंषे भागप्रमाण चेत्रका स्वर्शन किया है। अनुकुष्ट अनुभागविभक्तिशालोंने लोकके श्रसख्यातवे भागप्रमाण श्रीर सर्व लाकप्रमाण होत्रका स्वरान किया है। सम्यक्त्व श्रीर सम्यागिध्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालां ने लाकके असङ्यातवे भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाए चेत्रक। स्पर्शन किया है। इसी प्रकार मनुख्य अपर्याप्रकों में जानना चाहिए। सामान्य मन्त्य,मनुष्य पर्यात्र और मन्तियानया म पश्चान्द्रयतिर्यश्च पश्चिन्द्रयतिर्यश्च पर्यात्र और पश्चीन्द्रयातयेश्व यानिनिया के समान भंग है। इतना विशेष है कि सम्याग्मध्यात्वका स्पर्शन

श्रा॰ प्रती सम्बद्धोगो वा । सम्मामि उक्क सम्मत्तभंगो । पश्चिद्दिवतिरिक्ख पचि० तिरि॰
 पञ्च० सम्मत्त इति पाट ।

तियभंगो । णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो ।

६६२. देवेसु छव्वीसंपयडीणं उक्तस्साणुक्तस्स० लोग० असंखे०भागो अहणवचोदसभागा वा देसूणा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्तस्साणु० लोग० असंखे०भागो अहणव चोदस० देसूणा । सम्मत्त० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो । एवं सव्वदेवाणं ।
णवि सग-सगपोसणं वत्तव्वं । भवण०-वाण०-जोदिसि० सम्मत्त० अणुक्क० णित्थ ।
एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

१ ३६३. जहएएए पयदं । दुविहो णिहेसो — ओघेण आदेसेण य । त्रोघेण मिच्छत्त--अहकसाय० जहएएाजहएए।० सव्वलोगो । सम्मत्त-सम्माभि० जह० खेतं०। अज० लोग० असंखे०भागो अहचोहसभागा वा देसुणा सव्वलोगो वा । संसपयडीणं

सम्यक्त्वकी तरह है।

ई २६२ देवोमे छव्वीम प्रकृतियोकी उन्कृष्ट और अतु-कृष्ट अनुमागिवमिक्ति गलोने लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण और चौदह भागोमंस कुछ कम आठ और तब भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त और सम्यग्मिश्यात्व की उक्कष्ट अनुमागिवमिक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण और चौदह भागोमंसे कुछ कम आठ और नौ भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व की अनु कृष्ट अनुमागिवमिक्तिग्नोने लाकके असंख्यातवे भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व की अनु कृष्ट अनुमागिवमिक्तिग्नोने लाकके असंख्यातवे भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोम जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सबसे पृथक पृथ अञ्चलना अपना स्पर्शन कहना चाहिये। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिवी देवोंमे सम्य स्वका अनुकृष्ट अनुमाग नहीं है। इस प्रकार ज्ञानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विश्रापार्थ—नारिकयोमे छुट्यीस प्रकृतियोके दोनों अनुमाग्याले जीयोने तथा सम्यक्त्व और सम्यम्भिध्यात्वके उन्कृष्ट अनुमाग्याले जीयोने अयोतकालम मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा कुछ कम छह यट चौदह राजू म्यर्गन किया है और अतीत नथा वर्तमान कालमे संभव श्रेष पदोके द्वारा लोकके असंख्यातवे भागका म्पर्शन किया है। सम्यग्निध्यात्वका अनुस्कृष्ट अनुमाग नरकमे नहीं होता। सम्यक्त्यका अनुस्कृष्ट अनुमाग केमल प्रथम नरकम होता है, अतः उसका स्पर्शन लोकका असंख्यातवाँ भाग है। दूसरेस लेकर मातवें नरक तक छुट्यीस प्रकृतियोके दोनो अनुभागवाले जीवोका म्पर्शन लोकका असंख्यातवाँ भाग पूर्ववत् है तथा अतिकालमे मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा कमशः एक बटे चौदह आदि भाग है। इसी प्रकार तिर्यश्व और उसके भेद प्रभेदोमे यथायोग्य लोकका असंख्यातवाँ भाग और सर्वजोक म्पर्शन समकता चाहिए। देवोमे छुट्यीस प्रकृतियोके दोनो अनुभागवालो तथा सम्यक्त और सम्यग्निध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवालोका स्पर्शन अतीतकालमे विहारवन्स्वस्थान, वेदना, कपाय और विक्रिया पदके द्वारा कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और मारणान्तिक पदके द्वारा नीचे दा करर सात इस तरह कुछ कम आठ वटे चौदह राजु है और अतीत तथा वर्तमान कालमे शेप सभव पदोके द्वारा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है।

§ ३६३ जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और श्रादेश। श्रोघसे मिध्यात्व श्रीर श्राठ कपायोकी जघन्य श्रीर श्राज्यन्य श्रातुभागिवभक्तिवालोंने सर्वलोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्निध्यात्व की जघन्य विभक्तिवालोंका स्पर्शन चेत्र की तरह है श्राशीन् जा उनका चेत्र है वहीं स्पर्शन है। इनके श्राज्यन्य श्रानुभागवालोंने लाकके श्राख्यात्वें भाग, चौदह भागोंनंसे कुछ कम श्राठ भाग श्रीर सर्व लाक प्रमाण चेत्रका

जहराणाणु० खेतं । अज० सन्वलोगो । णवरि अणंताणु०चडक्क० जहराणाणु० लोग० असंखे०भागो अहचोद० देमुणा । अज० सन्वलोगो ।

- § ३६४. त्रादेसेण णेरएसु छब्बीसंपयडीणं जहएए।। ग्रु० खेतं । अज० लोग० असंखे०भागो छचोइसभागा देमुणा । पढमाए खेतं । विद्यादि जाव सितिमि ति छब्बीसं पथडीणं जहएए।। ग्रु० खेतं । अज० लोग० असंखे०भागो एक-वे-तिएएए-चत्तारि-पंच-छचोइसभागा देमुणा । सम्मत्त-सम्मामि० अजह० उक्कस्सभंगो ।
- § ३६५. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-वारसक०--णवणोक० जहएणा-जहएणाणु० सन्वलोगो। सम्मत्ता० ज० खेतं। अज० लोग० असंखे०भागो सन्वलोगो वा। एवं सम्मामि०। णविर जहएणं णितथ। अर्णताणु०च उक्क० ज० लोग० असंखे०-

स्पर्शन किया है। शेप प्रकृतियोके जघन्य अनुभागिवभक्तित्रालोका स्पर्शन चेत्रकी तरह है। अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालोने सर्व लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क की जघन्य अनुभागिवभक्तिवालोने लोकके असंख्यातवे भाग और चौद्ह भाग मसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालोने सर्व लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ-श्रांवसे मिण्यात्व श्रीर श्राठ कपायांके जवन्य श्रीर श्रजवन्य श्रनुभागवालों का स्पर्शन सर्वलांक है, क्यों कि हतसमुन्पत्तिक कर्मवाल एकेन्द्रिय जीवके उस पर्यायमे तथा जहाँ जहाँ वह जन्म लेता है उन उन पर्याया में जबन्य श्रनुभागसन्कर्म होता है श्रीर उसका बढ़ा लेने पर श्रजवन्य श्रनुभागसन्कर्म होता है सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिण्यात्वके श्रजवन्य श्रनुभागवालों का स्पर्शन उन्होंके उत्कृष्ट श्रनुभागवालों के स्पर्शनकी तरह है। श्रेप कथन स्पष्ट ही है।

§ ३६४ त्रादेशसे नारिकयोमें छ्र्चीस प्रकृतियों की जयन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजयन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लाकके असख्यातवें भाग और चौदह भागोंमसे कुछ कम छह भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें चेत्र की तरह स्परान है। दूसरीसे सातवा पृथिवी तकके नारिकयोंमें छ्र्चीस प्रकृतियों की जयन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजयन्य अनुभागविभक्तिवालोंके लाकके असंख्यातवे भाग और चौदह भागोंमसे क्रमशः कुछ कम एक, दो, तीन, चार, पाँच और छः भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अजयन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन उत्कृष्ट की तरह है।

६ ३६५. तिर्यश्चातिमें तिर्यश्चोमे मिध्यत्व, बारह कवाय आरे नव नोकपायोंकी जघन्य श्रीर श्रज्ञचन्य अनुभागविभक्तिशालांने सर्व लाकप्रमाण चेत्रका स्वर्शन किया है। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालांका स्वर्शन चेत्रका तरह है। अजबन्य अनुभागविभक्तिशालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लाकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सम्यमिष्ध्यातवें भाग और सर्व लाकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सम्यमिष्ध्यात्वका स्पर्शन जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ सम्यग्मिध्यात्व की जघन्य अनुभागविभक्ति नहीं है। अनन्तानुबन्धी चतुष्क की जघन्य अनुभागविभक्तिशालोंने लाकके असंख्यातवें भाग प्रमाण चेत्रका स्वरंग क्षित्र की क्षित्र अनुमागविभक्तिशालोंने सर्व लाकप्रमाण चेत्रका

१ ता॰ प्रती पथडीयां जहरासाजहरासाखु० खेतं इति पाठः ।

भागो । अजि सञ्चलोगो वा । पंचिदियतिरिक्खितयिम्म इन्त्रीसं पयडीणं जहरासाजह-ण्णाणु० लोग० असंखे०भागो सञ्चलोगो वा । णविर अणंताणु०चडकः० ज० खेतं । सम्मत्त०-सम्मामि० तिरिक्खोद्यं । णविर जोणिणीसु सम्मत्त० जहण्णं णित्थ । पंचि० तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० इन्त्रीसं पयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० लोग० असंखे०-भागो सञ्चलोगो वा । सम्मत्त-सम्मामि० अज० उक्कस्सभंगो ।

§ ३६६. मणुसतियम्मि मिच्छत्त-अद्दक्त० जहण्णाजहण्णाणु० स्रोग० असंखे०भागो सच्वलोगो वा। सेसाणं पयडीणं ज० खेतं। अज० लोग० असंखे०भागो सव्वस्रोगो वा।

\$ २६७. देवेसु मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसक०--णवणोक० जह० खेत्तं । अज० लोग० असंखे०भागो अह--णवचोइसभागा देसूणा । अणंताणु०चउक० ज० लोग० असंखे०भागो अहचोइसभागा देसूणा । अज० लोग० असंखे०भागो अह--णवचोइस-भागा वा देसूणा । एवं भवण०-वाण० । णविर सगपोसणं । सम्मत्त० जहण्णं णित्थ । जोदिसियदेवेसु छब्वीसं पयडीणं जहण्णाणु० लोग० असंखे०भागो अद्धुह-अहचो०

स्पर्शन किया है। पश्चेन्द्रियतिर्यश्च, पश्चेन्द्रियतिर्यश्चपर्याप्त ख्रौर पश्चेन्द्रियितर्यश्चर्यात्रनी जीवोमें छुट्बीस प्रकृतियां की जघन्य ख्रौर अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग ख्रौर सर्व लोकप्रमाण् चेत्रका स्पर्शन किया है। इतना विराप है कि ख्रनन्तानुबन्धी चतुष्क की जघन्य अनुभागिवभक्तिवालोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। सम्यक्त्व ख्रौर सम्यिम्ध्यात्वका स्पर्शन सामान्य तिर्यश्चों की तरह है। इतना विराप है कि योनिनियों में सम्यक्त्व की जघन्य अनुभागिवभक्ति नहीं है। पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च श्रप्याप्त ख्रौर मनुष्य अपर्याप्तकों में छुट्बीस प्रकृतियों की जघन्य ख्रौर अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालों ने लोकके असंख्यातवे भाग और सर्व लोकप्रमाण् क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व ख्रौर सम्यिम्ध्यात्व की श्रजघन्य अनुभागिवभक्तिवालों की तरह है।

\$ ३६६ सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियों में मिथ्यात्व और आठ कपायों की जघन्य और अजघन्य अनुभागिवभिक्तवालों ने लोकके असंख्यातवें भाग और सवलोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। रोप प्रकृतियां की जघन्य अनुभागिवभिक्तवालों का स्पर्शन क्षेत्र की तरह है। अजघन्य अनुभागिवभिक्तवालों ने लोकके असंख्यातवें भाग और मर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

\$ ३६७. देवों में मिश्यान्य, सम्यक्त्व. वारह कपाय और नव नोकपायों की जघन्य अनुभागिवभक्तिवालों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालों ने लोक के असंख्यातवें भाग और चौदह भागों मसे कुछ कम आठ और कुछ कम नो भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य अनुभागिवभक्तिवालों ने लोक के असंख्यातवें भाग और चौदह भागों मसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागिवभक्तिवालों ने लोक के असंख्यातवें भाग और चौदह भागों मसे कुछ कम आठ और कुछ कम नो भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार भवनवाभी और व्यन्तरां मं जानना चाहिए। इतना (वशेप है कि उनमें अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिए। उनमें सम्यक्त्व की जघन्य अनुभाग

देस्णा । अज० लोग० असंखे०भागो अद्धुह--अह--णवचोहसभागा देस्णा । सम्मत्त-सम्मामिन्ह्नाणमेवं चेव । णविर जहण्णं णित्थ । सोहम्मीसाणदेवेसु छव्वीसंपयहीणं जहण्णाणु० लोग० असंखे०भागो अहचोहस० देस्णा । अज० लोग० असंखे०भागो अह-णवचोहसभागा देसुणा । सम्मत्त० देवोघं । एवं सम्मामि० । सणक्कुमारादि जाव अच्छुद्कप्पो ति एवं चेव । णविर सगपोसणं । उविर खेत्तभंगो । एवं जाणिदूणं णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

विभक्तिवालों ने लोकके असंख्यानवें भाग आंग चौदह भागों मेसे कुछ कम साढ़े तीन तथा कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका म्पर्शन किया है। अजचन्य अनुभागिवभक्तिवालों ने लोकके असंख्यानवें भाग तथा कुछ कम माढ़े तीन कुछ कम अठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका म्पर्शन किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिश्यात्वका म्पर्शन इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि इनमें उनका जचन्य नहीं है। मौधम और हेशान म्वर्गके देवों में छुन्बीस प्रकृतियां की जचन्य अनुभागिवभक्तिवालों ने लोकके असंख्यात्व भाग और चौदह भागोम से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजचन्य अनुभागिवभक्तिवालों ने लोकके असंख्यात्व भाग और चौदह भागों मेसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजचन्य अनुभागिवभक्तिवालों ने लोकके असंख्यात्व मांग और चौदह भागों मेसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वका स्पर्शन सामान्य देवों की तरह है। इसी प्रकार सम्यग्मिश्यात्वका जानना चाहिए। सानत्कुमार स्वर्गसे लेकर अच्युतकल्प पर्यन्त स्पर्शन इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए। अच्युत कल्पसे उत्तर क्षेत्रके समान स्पर्शन है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विद्योपार्थ-त्रादेशसे नार्कियों में अजवन्य अनुभागवालों का स्पर्शन उत्युष्ट अनुभाग-बालों के म्पर्शनकी तरह घटा लेना चाहिये। सामान्य तिर्यंचों में छट्वीस प्रकृतियों के दोनों त्रानुभागवालो'का स्पर्शन सर्वलोक त्रोघकी तरह जानना चाहिए। सम्यक्व त्रौर सम्य- मिर्ध्यात्वके श्रज्ञचन्य अनुभागवालां ने मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा सर्वलाक और शेपके द्वारा लोकका ऋसंख्यातवाँ भाग स्पष्ट किया है । पश्चेन्द्रियतिर्यचित्रकमे छन्वीस प्रकृतियों के दोनों अनुभागवालाने वर्नमानकी अपंत्रा लोकका असंख्यातवाँ भाग न्त्रीर त्र्यतीतकी त्र्रपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है। मनुष्यत्रिकमे मिध्यात्व त्र्रौर त्र्राट कपायों के दोनों अनुभागवालों ने तथा शेष प्रकृतियों के अजवन्य अनुभागवालों ने स्वस्थान स्वस्थान, विहारव स्वस्थान, वेदना, कपाय और विक्रिया पदके द्वारा लोकका असंख्यातवॉ भाग और मारणान्तिक तथा ध्यपाद पदके द्वारा मर्वलाक स्पर्श किया है। देवां में छव्बीस प्रशृतियां के अजघन्य अनुभागवालों का स्पर्शन वर्तमानकी अपेन्हा लाकका असल्यातवाँ भाग है और अतीत कालकी अपना विहारकस्यान, वदना, कपाय और विकियाकी अपेक्षा कुछ कम आठ बट चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्धातकी अपना नौ बट चौदह राजु है। ज्योतिष्क देवों में छन्वीस प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवालों और अजयन्य अनुभागवालों का स्पर्शन वर्तमानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग है अौर अतीतकालकी अपेक्षा विहारव स्व-स्थान, बेदना, कपाय और विकिया पद्के द्वारा चौदह राजुनेसे कुछ कम साढ़े तीन अथवा कुछ कम आठ राजू है तथा अजवन्य अनुभागवालों का स्पर्शन मारणान्तिक पद के द्वारा कुछ कम नौ बटे चौदह राजु है। इसी प्रकार सौधर्मादिकमें भी लगा लेना चाहिये।

र. ता॰ प्रती एवं [खेत्तभंगो] जाणिदृश इति पाठः ।

- 🕸 णाणाजीवेहि कालो।
- [§] ३६*⊏. अहियारसंभालणमुत्तमेदं । सुगमं ।*
- 🕸 मिच्छत्तस्य उक्तस्याणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होति ?
- § ३६६. एदं पि सुत्तं सुगमं, पुच्छासुत्ततादो ।
- 🕸 जहरुणेण श्रंतोमुहत्तं ।
- \$ २७०. कुदो ? सत्तर्रजीवेस वंधुकस्साणुभागेस सव्वजहण्णेणंतोसुहुत्तकालेण घादिदाणुभागखंडएस उक्तस्साणुभागस्स सव्वजहण्णंतोसुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो ।
 - 🏶 उक्स्सेण पितदोवमस्स श्रसंखेजादिभागो।
- § २७१. कुटो ? एगजीवस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मद्धमंतोम्रहुत्तमेतं ठविय पितदो० असंखे०भागमेत्ताहि उक्कस्साणुभागपवेससलागाहि गुणिदे पिट्टियो० असंखे० भागमेत्तकालुवलंभादो ।
 - 🏶 एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्ञाणं।
- ६ ३७२. जहा मिच्छत्कम्साणुभागम्स णाणाजीव अस्सिद्ग जहण्णुकस्सकाल-परूवणा कदा तहा सेसकम्माणं पि कायव्वा, विसेसाभावादो । सम्मत्तसम्मामिच्छत्त-
 - अनाना जीवों की अपेक्षा कालका अधिकार है।
 - § ३६८ अधिकार की सम्हाल करना इस सूत्रका कार्य है। इसका अर्थ सुगम है।
 - # मिथ्यात्वके उत्हृष्ट अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ।
 - § ३६९. यह सूत्र भी सुगम है. क्यां कि यह पृच्छासूत्र है।
 - * जघन्य काल अन्तर्भृहर्त है।
- ६ ३७०, क्यों कि सात चार जीवों के उन्हृष्ट चनुभागका बंध करके और सबसे जधन्य च्यन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा चनुभागकाण्डकों का चात कर देने पर उन्हृष्ट चनुभागका सबसे जधन्य च्यन्तर्मृहूर्त काल पाया जाता है।
 - अ उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।
- \$ ३७१. क्यों कि एक जीवके उन्हुष्ट अनुभागसन्कर्मका काल अन्तर्महूर्त मात्र है और उन्हुष्ट अनुभागमें प्रवेश करने ही शलाकाएँ पत्यके अमंख्यातव भागप्रमाण हैं अर्थात् लगातार इतनी वार जीव उन्हुष्ट अनुभागमें प्रवेश कर सकते हैं, अत. अन्तमुहूर्त भात्र कालको पत्यके असंख्यातवें भागमे गुणा करने पर नाना जीवोकी अपेता उन्हुष्ट अनुभागसन्कर्मका उन्हुष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग एत्र पाया जाता है।
- * सम्यक्त्व और सम्यग्निध्यात्व को छोड़कर इसी प्रकार शेष कर्मी के अनुभागसन्कर्मका काल कहना चाहिये।
- ह ३७२. जैसे नाना जीवो की अपेचा मिध्यात्वके छक्ष्य अनुभागके जघन्य और छक्ष्य कालका कथन किया है वैसे ही शेष कर्मों का भी कथन कर लेना चाहिये, क्योंकि दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

वज्जाणं इदि ण परूवेदच्वं, उवरिमसुत्तादो चेव तव्वज्जणावगमादो १ ण, उत्तावलसिस्स-मइवाउलविणासणद्वं तप्परूवणादो ।

क्ष सम्मत्त---सम्मामिच्छताणमुक्षस्साणुभागसंतकम्मिया केवचिरं
 कालादो होति ?

§ ३७३. सुगमं० ।

₩ सव्बद्धा ।

§ ३७४. कुदो १ एगजीवस्मि उकस्साणुभागस्मि अवटाणकालं पेविखद्ण तं
पिडविज्जमाणजीवाणमंतरकालस्स असंखे०गुणहीणत्तदंसणादो । संपिह चुण्णिसत्तमिस्सिदृण उकस्साणुभागकालपरूवणं करिय उच्चारणमिस्सिद्ण कस्सामो ।

६ ३७५. कालो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छन्वीसंपयडीणं उक्कस्साणुभागस्स कालो केविचिरं ? जह० श्रंतोमु०, उक्क० पल्दिगे० असंखे०भागो। अणुक्क० सन्वद्धा। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० सन्वद्धा। अणुक्क० ज० उक्क० श्रंतोमु०।

शंका-सम्यक्त और सम्यग्मिध्यात्वको छोड़कर ऐसा नहीं कहना चाहिये. क्यों कि आगेके सूत्रमें जो उन दोनोंके कालका अलगसे प्ररूपण किया है उससे ही जात हो जाता है कि यहाँ सम्यक्त और सम्यग्मिध्यात्व को छोड़ दिया है।

समाधान—नहीं.क्यों कि उताबले शिष्यों की वुद्धिकी व्याकुलताको नष्ट करनेके लिये यह कथन किया है।

* सम्यक्त और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट त्रानुभागसत्कर्मवाले जीवोंका
कितना काल है ?

§ ३७३. यह सूत्र सुगम है।

* सर्वदा है।

६३०४. क्योंकि एक जीवमें उत्कृष्ट अनुमानके अवस्थान कालकी अपेक्षा उसकी प्राप्त करनेवाले जीवा का अन्तरकाल असंख्यातगुणा होन देखा जाता है। अर्थात् एक जीवके उत्कृष्ट अनुभागमें रहनेका जितना काल है उसकी अपेक्षा उसके उन्कृष्ट अनुभागमें न रहनेका काल असंख्यातगुणा हीन है, अतः जब अवस्थान कालसे अन्तर काल बहुत कम है तो नाना जीवांकी अपेसा उत्कृष्ट अनुभाग सर्वदा बना रह सकता है। अब चूर्णिसूत्रकी अपेस् उत्कृष्ट अनुभाग कालका कथन करके उचारणाकी अपेसा उसका कथन करते हैं।

§ ३७५ काल दो प्रकारका है-जघन्य और उत्तृष्ट । उत्तृष्टकं कथनका अवसर है । निर्देश दो प्रकारका है-अग्रेघ और आदेश । आग्रेघसे छुटबीस प्रकृतियों के उत्तृष्ट अनुभागका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्महूर्त और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनुकुष्ट अनुभागका काल सर्वदा है । सम्यक्त और सम्यग्मिश्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है । अनुकुष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्महूर्त है ।

१३७६, त्रादेसेण णेरइएसु छन्त्रीसंपयडीणसुक्तस्साणुभागो केव० १ ज० एगस०, उक्क० पित्रदो० असंखे०भागो । अणुक्क० सन्बद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० सन्बद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० सन्बद्धा । सम्मत्त- त्र्रणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० श्रंतोसु० । एवं पढमपुढवि०- तिरिक्खितय-सोहम्मादि जाव सहस्सारे ति । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णविर सम्मत्त० अणुक्क० णित्थ । एवं जोणिणी-पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०--भवण०-- वाण०-जोदिसिए ति ।

\$ २७७. मणुस्तेस सन्वपयडीणसुक अणुक ओघं। णविर उक्क जहण्णेण एगसमओ ल्रुबीसंपयडीणं। मणुमपज्जत्त-मणुसिणीस ल्रुबीसंपयडीणसुक ज० एगस०, उक्क स्रंतामु०। त्रणुक सन्बद्धा। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क सन्बद्धा। अणुक जहण्णुक त्रंतामु०। णविर मणुसपज्जत्त एस सम्मत्त० अणुक ज० एगस०। भणुक्तिणीस सम्मत्तअणुभागस्स एगसमओ णित्थ। मणुसत्रपञ्ज० ल्रुबीसं पयडीणं उक्क० ज० एगस०। अणुक ज० त्रंतो०, उक्क० दोण्हं पि पित्रदो० त्रसंखे०भागो। आगदादि जाव सन्बद्धा। सम्मत-सम्मामि० देशोवं। एवं जाणिद्ग णेद्वं जाव अणाहारि ति।

१३७६ आदेरासे नारिक ते मे छव्वीस प्रकृतियों के उन्कृष्ट अनुभागका कितना काल है ? जयन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल पन्यके असंख्यानवें भागप्रमाए है। अनुन्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्र्य और सम्यिग्ध्यात्वके उन्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्र्य और सम्यक्त्र्य अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्र्यके अनुत्कृष्ट अनुभागका जयन्य एक समय है और उन्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी अकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्य अ, पन्त्रीन्द्रय तिर्य अ, पन्त्रीत्र्य तिर्य अ पर्याप्त, मामान्य देव और सौयर्न स्वर्यसे लेकर सहस्रार कन्य तकके देवा मे जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नार्रक्या में इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्रका अनु कृष्ट अनुभाग वहाँ नहीं होता। इसी प्रकार पन्त्रीन्द्रय तिय अयोगनी, पन्त्रीन्द्रय तिर्य अपन्तरा, भवनवासा, व्यन्तर और उयोतिर्य देवों म जानना चाहिए।

\$ ३७७ सामान्य मनुत्याम सब प्रकृतियोक उन्कृष्ट और अनुन्कृष्ट अनुभागका काल श्रोघ की तरह है। इतना विशेष है कि इन्बीस प्रकृतियों के उन्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यित्यों में इन्बीस प्रकृतियों के उन्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है। मनुष्यपर्याप्त और उन्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त है। अनुन्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और सम्यन्य कि उन्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उन्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त है। अनुन्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उन्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त है। इतना विशेष है कि मनुष्यपर्याप्तकों में सम्यक्त्व अनुन्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है। मनुष्य अपर्याप्तकों में इन्बीस प्रशृतियों के उन्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है। अनुन्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तर्भुहूर्त है और दानों का उन्कृष्ट काल पन्य के असख्यात्वे भाग-प्रभाण है। अनुन्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तर्भुहूर्त है और दानों का उन्कृष्ट काल पन्य के असख्यात्वे भाग-प्रभाण है। अनित स्थास लेक स्मार्थ है। सम्यक्ष्य और सम्यक्ष्य स्थान काल सामान्य द्वोकी नरह है। इस प्रकृत काल पन्य के असख्यात्वे पर्वाचित्र अनुन्कृष्ट अनुभागका काल सामान्य द्वोकी नरह है। इस प्रकृत जनकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

- भिच्छत्त-श्रद्धकसायाणं जहण्णाणुभागसंतक्रिमया केवचिरं कालादो
 शिति।
 - § ३७८. सुगमं।
 - 🏶 सव्बद्धा ।
- § २७६. कुदो ? एदेसिं वृत्त रुम्माणं जहण्णाणुभागस्स तिसु वि कालेसु विरहाभावादो ।
- असम्मत्तः अणंताणु यंधिचत्तारि-चदु संजलण-तिवेशणं जहण्णाणु भाग कम्मंसिया केवचिरं कालादो होति ।
 - § ३८०. सुगमं।
 - 🏶 जहरुणेण एगसमञ्जो ।
- § ३८१. कुदो ? सम्मन--चरुमं जलण-तिवेदाणं णिल्लेविज्ञमाणचरिमसमए उप्पण्णजहण्णाणुभागस्स एगममयावद्वाणं पिड विरोहाभावादो । संजुत्तपढमसमए सम्रु-प्पण्णअणंताणुवंधिचउक्क० जहण्णाणुभागस्स वि एगसम्यावद्वाणं पिड विरोहाभावादो ।

विशेषार्थ-आदेशसे नारिकयों में सम्यक्त प्रकृतिके अनुकृष्ट अनुभागवालों का काल जघन्यसे एक समय है, क्यों कि जो इनकृष्यांदक मरण करके नरकमें जनमें लेते हैं उनके सम्यक्तका अनुकृष्ट अनुभाग होता है। एक साथ कई एक इनकृष्य दि मरकर नरकमें उपन हुए, दूसरे समयमें सम्यक्त प्रकृति नष्ट करके । क्ष्रियकसम्यक्ति हो गये, अत. एक समय जघन्य काल हुआ। और उ १९ काल अन्तर्भुहृते हैं। सामान्य मनुष्यों में सब प्रश्रीतया के उक्रष्ट अनुभागवालों का काल जघन्यसे एक समय कहा है सा छन्त्रीस प्रकृतियों के उन्कृष्ट अनुभागका दूसरे समयमे घात करनेकी अपक्षा और सम्यक्त व सम्यग्निक्यात्वका उद्धलनाकी अपक्षा जानना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

* मिथ्यात्व और आठ कपायोंके जबन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ?

\$ ३७८. यह सूत्र सुगम है।

* सर्वदा है।

\$ ३७९. क्योंकि इन उक्त कर्मों के जवन्य अनुभागका तीनों ही कालों में विरह नहीं होता है।

क्ष सम्यक्त्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चारों संज्वलन कपाय और तीनों वेदोंके जधन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ?

९ ३८०. यह सूत्र सुगम है।

अ जघन्य काल एक समय है ।

ह ३८१. क्यां कि सम्यक्त्व, चार संज्यत्तन और तीन बेदोका जघन्य श्रानुमाग स्वयक्ते श्रान्तिम समयमे हाना है श्रानः उसके एक समय तक रउनेने कोई विरोध नहीं है। तथा विसंयो-जनके पश्चात् श्रात्य कपायोंके प्रदेशांको पुनः श्रानन्तानुबन्धः हृत परिएक ने हे प्रथम समयमें श्रानन्तानुबन्धी चतुरकका जघन्य श्रानुमाग उत्पन्त होता है, श्रातः उसके भी एक समय सक

🕸 उक्कस्सेण संखेजा समया।

\$ ३=२. कुदो ? संखेजेमु जीवेसु कर्मण बुतकम्माणं जहण्णाणुभागं कुणमाणेसु संखेजाणं चेव समयाणं जहण्णाणुभागसंवंत्राणसुवलंभादा । असखेजा जीवा कर्मण जहण्णाणुभागं किण्ण पडिवज्जिति ? ण, मणुमपज्जताणमसंखेजाणमभावादो । ण च मणुसपज्जते मोतृण अण्णत्थ कम्माणं खवणा आत्थ, विरोहादो ।

अ एवरि अएंतागुवं नीणमुक्तस्तेण आवित्वयाए असंखेज्जदिभागो।

ई २८२. कुद् ? अणंताशुवंधिच उक्कं विसंजोइदसम्माइद्दीहितो कमेण संजु-ज्ञमाणाणमुत्रकमणकालस्स उक्कस्सस्स आवित्याए असंखे०भागपमाणनुवृत्तंभादो । संखेज्ञावित्यमेचो किण्ण होदि ? ण, एवं विद्सुताशुवत्तंभादो ।

अ सम्मामिच्छत्त-छुग्णोकसायाणं जहण्णाग्रुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होति ?

§ ३८४. सुगमं।

🕸 जहरुणुक्कस्सेण त्रांतोमुहुतं।

ठहरनेमें कोई विरोध नहीं है।

अ उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ?

९ ३८२. क्योंकि उक्त कर्मीका जघन्य अनुभाग लगातार संख्यात जीव ही करते हैं. अतः जघन्य अनुभाग सम्बन्धी काल सख्यात समय ही पाया जाता है।

शंका-असंख्यात जीव जघन्य अनुमागको क्या नरी प्राप्त होते है ।

समाधान-नहीं, क्यों कि मनुष्य पर्याप्त असंख्यात नहीं है। श्रीर मनुष्य पर्याप्तकों को छोड़कर अन्यक कर्मीका क्ष गण नहीं होता है, को कि अन्यत्र उसके होनेने विरोध है।

% किन्तु अनन्तानुबन्धियों के जबन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यामें भागपमाण है।

§ २८२. क्योंकि अनन्तानुबन्यो बतुःकका विसंयोजन करनेवाले सम्यग्द्रियोंमेंसे क्रमसे अन्य कपायोंके परमाणुओंको पुनः अनन्तानुबन्यी रूप परिणमानेवालोंके उपक्रमण्का उत्कृष्ट काल आवलींके असंख्यातवे भाग प्रमाण पाया जाता है। अर्थान् यदि विसंयोजक सम्यग्द्रिष्टि लगातार एक एक करके अनन्तानुबन्धीका पुनः संयोजन करं तो आवलींके असंख्यातवे भाग काल तक ही ऐमा कर सकते हैं, अतः उसके जचन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल उतना ही है।

शंका-संस्थात आवर्ला प्रमाण काल क्यो नहीं है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि इस प्रकारका सूत्र नहीं पाया जाता है जो इतना काल बत-लाता हो।

* सम्यग्निध्यात्व और छः नोका।यांके जयन्य अतुभागसत्कर्मवाले जीवाँका]
कितना काल है ?

ु ३८४ यह सूत्र सुगम है।

* जवन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हुर्त है ।

§ ३८५. कुदो अप्पष्पणो स्ववणाए चिरमाणुभागसंडयम्म जादजहण्णाणु--भागस्स अंतोमुहुतं मोत्तृण अहियकालाणुवलंभादो । तं पि कुदो ? उक्कीरगद्धाए उक्क-स्साए वि अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो । उक्कस्मकालो असंखेळाविलयमेत्तो किण्ण होदि ? ण, संखेळुकीरणद्धाणं सम्हिम्म असंखेळाविलयाणं संभवविरोहादो । तं पि कुदो णव्वदे ? अंतोमुहुत्तमिदि सुत्तिणिहेसादो । एवं चुिएए।सुतमिस्सर्ग जहएए।। खुभाग-कालपङ्वणं करिय संपहि उच्चारणमिस्सर्ग कस्सामो ।

§ ३८६. जहरणाए पयदं । दुविहो णिद्दे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अद्वकः जहरणाजहरणाणुः सन्बद्धा । सम्मत्तः जहरणाणुः जः एगसः, उक्कः संखेजा समया । अजः सन्बद्धा । सम्मामिः जहरणाणुः जहरणाुकः श्रंतोष्ठः । अजः सन्बद्धा । अणंताणुः चउक्कः जहः जः एगसः, उक्कः श्रावितः असंखेःभागो । अजः सन्बद्धा । छएणोकः जहरणाणुः जहरणाुकः श्रंतोष्ठः । श्रजः सन्बद्धा । चदुसजः-तिरिणावेदः जहरणाणुः जः एगसः, उक्कः सखेजा समया । अजः सन्बद्धा ।

 ३८५. क्योंकि अपनी अपनी च्वागावस्थाके अन्तिम अनुमागकाण्डकमे इन प्रकृतियों-का जघन्य अनुमाग होता है, अत: उसका काल अन्तमुहूर्नसे अधिक नहीं पाया जाता है।

शंका-उसका काल अन्तर्भुहूर्नसे अधिक क्यों नहीं पाया जाता है।

समाधान-क्योंकि उन्कीरणका उन्क्रष्ट काल भी व्यन्तर्मुहूर्न प्रमाण ही है।

शंका-उत्कृष्ट काल असम्ब्यात आवली प्रमाण क्या नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योक संख्यात उन्कीर्णकालोके समृद्मे असंख्यात आविलयां नहीं हो। सकती हैं।

शंका-यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान-क्योंकि सूत्रमें अन्तर्मुहूर्त कालका निर्देश किया है।

इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे जवन्य अनुमागकं कालका कथन करके अब उचारणांके आश्रयसे कथन करने हैं।

इ ३८६. जघन्यके कथनका अवसर है। निर्देश दे! प्रकारका है — आय और आदेश। श्रांघसे मिध्यात्व और आठ कपायों के जघन्य और अजघन्य अनुमागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्वके जघन्य अनुमागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुमागका काल सर्वदा है। सम्यिग्ध्यात्वके जघन्य अनुमागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्महूर्त है। अजघन्य अनुमागका काल सर्वदा है। अन्वत्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुमागका जघन्य काल एक समय हे और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य अनुमागका काल सर्वदा है। छह नोकपायों के जघन्य अनुमागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु ते है। अजघन्य अनुमागका काल सर्वदा है। छह नोकपायों के जघन्य अनुमागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु ते है। अजघन्य अनुमागका काल सर्वदा है। उत्कृष्ट काल सर्वदा है। चार सञ्जतन और तीन वेदों के जघन्य अनुमागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुमागका काल सर्वदा है।

- § ३८७. आदेसेण णेरइएमु मिच्छत-वारसक०णवणोक० जहराणाणु० ज० एगस०, उक्क० पिलदो० असंखे०भागो। अज० सव्बद्धा। सम्मत्त-अणंताणु०-चउक्क० ओघं। सम्मामि० ओघं। णविर जहण्णाणु० णिन्थ। एवं पढमपुढवि०-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देवोघं ति। विदियादि जाव सत्तमि त्ति वावीस-पयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० सव्बद्धा। अणंताणु०चउक्क० ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० ओघं। णविर जहरणाणु० णित्थ। एवं जोदिसि०।
- ३८८. तिरिक्षेमु वोवीसंपयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० सन्बद्धाः । सम्मत्तप्रणंताणु०चउक्क० ओघं । सम्मामि० ओघं । णविर जहण्णं णित्था पंचिदियतिरिक्खजोणिणीणं पढमपुढविभंगो । णविर सम्मत्त० ज० णित्था एवं भवण०-वाणवेंतरा ति ।
 पंचि०तिरि०त्र्यपज्ज० छव्वीसंपयडीणं जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० पित्रदो०
 असंखे०भागो । अज० सन्बद्धा । सम्मा०-सम्मामि० जोणिणीभंगो ।
- ह ३८० आदेशसे नारिकयोम मिण्यात्व, वाग्ह कपाय और नव ने कपायोके जयन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और त्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुरक्का भङ्ग श्रोघ की तरह है। सम्यिग्धियात्वका भङ्ग श्रोघ की तरह है। सम्यिग्धियात्वका भङ्ग श्रोघ की तरह है। इतना विशेष है कि नग्कम उसका जघन्य अनुभाग नहीं, है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पश्चिन्द्रिय तिर्घ च, पश्चिन्द्रिय तिर्घ च पर्याप्त और सामान्य देवों में जानना चाहिए। इसरी में लेकर सातवी पृथिवी तकके नारिकयोम बाईस प्रकृतियों के जघन्य और अजघन अनुभागका काल सर्वदा है। अनन्तानुबन्धी चतुरक्का भङ्ग श्रोघ की तरह है। इनना विशेष है कि उनमे जघन्य अनुभाग नहीं है। इसी प्रकार ज्योतिषी देवोमे जानना चाहिए।
- ६ ३८८ सामान्य तिर्यश्वोमं वार्ट्स प्रकृतियोके जघन्य श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागका काल मर्वदा है। मन्यवस्य श्रीर श्रजनतानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग श्रोघ की तरह है। सन्यामिण्यात्वका भङ्ग श्रोघ की तरह है। इनना विशेष है कि तिर्यश्वोमं उसका जघ य श्रनुभाग नहीं है। पश्चिन्द्रियिवर्यथानिनयोमं पहली पृथिवीके समान भंग है। इतना विशेष है कि इनमे सम्यन्वत्वका जघन्य श्रनुभाग नहीं है। इसी प्रकार भवनवासी श्रीर व्य तरोम जानना चाहिए। पश्चिन्द्रियिवर्यश्वश्रपयाप्तकोमे छ्रव्वीस प्रकृतियोके जघन्य श्रनुभागका जघन्य काल एक समय है श्रीर उन्कृष्ट काल पत्यके श्रसम्यात्वे भागप्रमाण् है। श्रजघन्य श्रनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व श्रीर सम्यिग्मण्यात्वका भङ्ग योगिनियोके समान है।

मजि सन्वद्धा । एवं [मणुस] पज्जत्त-मणुसिणीणं । णविर जिम्ह पित्तदो० असंखे० भागो तिम्ह अंतोष्ठि । मणुसपज्ज० इत्थि० जहण्णाणु० जहण्णुक० अंतोष्ठि । मणु-सिणी० पुरिस०-णवंस० छण्णोक०भंगो । मणुसअपज्ज० छव्वीसंपयडीणं जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० पित्तदो० असंखे०भागो । अज० ज० अंतोष्ठ०, उक्क० पित्तदो० असंखे०भागो ।

§ ३६०. सोहम्मादि जाव णवगेवज्ञा ति वावीसंपयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० सन्बद्धा। सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० ओघं। एवमणुहिसादि जाव अवराइद ति। णविर अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० ज० झंतोमु०, उक्क० पिट्टिने० असंवे०भागो। एवं सन्बहे । णविर अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० झंतोमु०। एवं जाणिदृण णेदन्बं जाव अणाहारि ति।

र्मुहूर्त है। सब प्रः तियोके अजधन्य अनुभागका काल सर्वदा है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि जिसका काल पत्यके असम्ब्यातव भाग बनलाया है उसका यहाँ अन्तर्मुहूर्न जानना चाहिए। मनुष्यपर्याप्तकोंगे स्विविद् । जधन्य अनुभागका जधन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्न है। मनुष्यिनियोमे पुरुषवेद और नपुंसकदेदका भङ्ग छह नोकपायों की तरह है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमे छन्त्रीस प्रकृतियोके जधन्य अनुभागका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंस्थातवे भाग प्रमाग्ग है। अजधन्य अनुभागका जधन्य काल अन्तर्मुहूर्न है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंस्थातवे भाग प्रमाग्ग है।

§ ३९० सीधर्म स्वर्गसे लेकर नव प्रैवयक तकके देवा में बाईम प्रकृतियों के जघन्य और अज्ञज्ञचन्य अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवा में जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ठ काल पत्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार सर्वार्थीमिद्धमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ अनन्तानुबन्धी चतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य और उन्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

विशेषार्थ - आदेशसे सामान्य नारिकयों में वाईस प्रकृतियों का जवन्य अनुभाग मरकर नरकमें जन्म लेनेवाल हतसमुत्पत्तिककर्मा असझी पश्चे न्टियक होता है। एक साथ अनेक ऐसे जीव जन्म लें और दूसरे समयमें अनुभागको यदि बढ़ा लें तो जवन्य काल एक समय होता है और यदि लगातार ऐसे जीव उत्पन्न हाते जांय तो उन्कृष्ट काल पत्यके असंस्थातव भागप्रमाण होता है। इसी प्रकार पश्चे न्ट्रिय तिर्थच अपर्याप्तकों में लगा लेना। मनुष्यों में मिध्यात्व आदि नौ प्रकृतियों के जवन्य अनुभागके जवन्य और उन्कृष्ट कालका भी इसी तरह घटा लेना चाहिये। अनन्तानुबन्धीका जवन्य अनुभाग सयुक्त होनेके प्रथम समयमें होता है, अतः नाना जीवां की अपेता भी उसका जवन्य काल एक समय और उन्कृष्ट काल संस्थात समय है। देवों में अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अनन्तानुब धीका जवन्य अनुभाग विसंयोजकके होता है, अतः उसका जवन्य काल अन्तर्भुहूर्त है और उन्कृष्ट काल अपराजित पर्यन्त पत्यका असंस्थाता भाग है और सर्वार्थसिद्धिमें अन्तर्भुहूर्त है।

- 🕸 णाणाजीवेहि श्रंतरं।
- § ३६१. सुगममेदं, अहियारसंभालणतादो ।
- भिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मंसियाणमंतर केवचिरं कालादो होदि ?
 - १ ३६२. सुगममेदं।
 - 🕸 जहरुषेण एगसमञ्जो ।
- § ३६३. कुदो ? उक्कस्साणुभागेण विणा तिहुवणासेसजीवेसु एगसमयमच्छि-देसु विदियसमए तत्थ केतिएहि वि उक्कस्माणुभागे बंधे एगसमयअंतस्वलंभादो ।
 - **अ उक्करसेण असंखे**जा लोगा !
- § ३६४. कुदो ? उक्तस्साणुभागेण विणा असंखे०लोगमेत्तकालमच्छिय पुणो तिहुवणजीवेसु केत्तिएसु वि उक्तस्साणुभागसुवगएस असंखेज्जलोगमेत्तुक्तस्संतरुवलंभादो। अणंतमंतरं किण्ण जादं ? ण, परिणामेसु आणंतियाभावादो । अणुभागबंधज्भ-वसाणहाणाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि चेवे ति कुदो णव्वदे ? अणुभागवंधहाणाण-मसंखेज्जलोगपमाणत्तण्णहाणुववत्तीदो। ण च कारणेसु अ्रणंतेसु संतेसु कज्जाणि असंखेज्ज-
 - नाना जीवोंकी अपेक्ता अन्तरका प्रकरण है।
 - र ३९१. यह सूत्र सुगम है. क्यो कि इसके द्वारा ऋधिकारकी सम्हाल की गई है।
 - * मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तरकाल कितना है ?
 - ् ३९२. यह सूत्र सुगम है।
 - * जवन्य अन्तरकाल एक समय है ।
- ् ३९३. क्योंकि तीनो लोकोके समस्त जीवोके एक समय तक उत्वृष्ट अनुभागके बिना रहने पर और दूसरे समयमे उनमेसे कितने ही जीवोके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने पर एक समय अन्तर पाया जाता है।
 - अ उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है।

शंका-अनन्त काल अन्तर क्या नहीं होता ?

समाधान--नर्हा, क्योंकि परिसाम अनन्त नर्हा है।

शंका-अनुभागवन्धाध्यवसाय स्थान असस्यात लोक भात्र ही हैं यह कैसे जाना ?

समाधान-यदि अनुभागवन्धाध्यवसाय म्थान असंख्यात लोकमात्र न होते तो अनुभाग-बन्धके स्थान असंख्यात लोकप्रमाण नहीं होते। यदि कहा जाय कि अनुभागवन्धाध्यवसाय स्थान अनन्त रहें और अनुभागवन्धस्थान असंख्यात लोक मात्र रहें। किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि कारणके अनन्त होने पर कार्य असख्यात लोकमात्र नहीं हो राक्ते, क्योंकि

¹ ता॰ प्रती श्राणंतिय (या) भावादो, স্থা॰ प्रती श्राणंतियभावादो इति पाठः।

लोगमेत्ताणि चेव होंति, विरोहादो ।

ॐ एवं सेसकम्माणं

३६५. जहा मिच्छत्तस्स जहण्णग्रकस्सं च उक्कस्साणुभागंतरं परूविदं तहा सेसा-सेसकम्माणं परूवेदव्वं, विसेसाभावादो । एत्थतणविसेसपरूवणहग्रुत्तरसृतं भणदि ।

🕸 एवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं एतिय अंतरं।

- § ३६७. त्रंतरं दुविहं जहण्णमुकस्सं च । उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिहोसो त्रोघेण आदेसेण य । ओघेण अव्वीसंपयडीणमुक्कस्साणु०त्रंतरं केव० १ ज० एगस०, उक्क० असंखेजा लोगा । अणुक्क० णित्थ अंतरं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्क० णित्थ अंतरं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा ।
 - ४ ३६=. श्रादेसेण णेरइएसु एवं चेव ⊦णवरि सम्मत्त० अणुक्क० ज० एगस०,

अनन्त कारणोसे असंख्यात कार्योके होनेमे विरोध है।

* इसी प्रकार शेप कर्मों के उन्कृष्ट अनुभागवालोंका अन्तरकाल कहना चाहिये । § ३९५ जैसे मिध्यान्वके उन्कृष्ट अनुभागका जयन्य और उन्कृष्ट अन्तर कहा वैसे ही बाकी सभी कर्मीका कहना चाहिये. उससे उनके अन्तरकालमें कोई विशेष नहीं हैं। जो कुछ विशेष हैं उसका कथन करनेक लिये आगेका सूत्र कहते हैं --

* किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तरकाल नहीं है।

६२९६. क्योंकि सम्यग्हष्टियोमे से मिध्यान्वको प्राप्त होनेवाले जीवोके अन्तरकालकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी सत्ताकं साथ मिध्याहिष्टियों और सम्यग्हिष्ट्योंके रहनेका काल असंख्यात गुणा है। इस प्रकार चूर्णिसूत्रकं आश्रयसे अन्तरको कहकर अब उच्चारणाके आश्रयसे अन्तरका कथन करते हैं—

\$ २८७. श्रन्तर दो प्रकारका है—जघन्य श्रोर उत्कृष्ट । उत्कृष्ट श्रवसर प्राप्त है । निर्देश दो प्रकारका है - श्रोघ श्रोर आदेश । श्रोघसे छव्वीस प्रकृतियोके उत्कृष्ट श्रनुभागका श्रन्तर कितना है ? जघन्य श्रन्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण है । श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका श्रन्तर नहीं है । सम्यक्त्व श्रोर सम्याग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट श्रनुभागका श्रन्तर नहीं है । श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर उत्कृष्ट श्रन्तर छह मास है ।

§ ३९८. त्रादेशसे नारिकयोमे इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वके त्रानुन्कृष्ट त्रानुभागका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उन्कृष्ट त्रान्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है। सम्यग्मि-

१, ता॰ प्रती सेसायां कम्मायां इति पाठः ।

उक्क वासपुधतं । सम्मामि० उक्क० णित्थ अतंतरं । एवं पढमपुढिव--तिरिक्खितय-देवोधं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णवि सम्मत्त० अणुक्कस्साणु० णित्थ । एवं जोणिणी--पंचिदियतिरिक्खश्रपज्जत्त-भवण०-वाण०-जोदिसिश्चो ति ।

\$ २६६. मणुसतिय० ओघं । णवरि मणुसिणीसु सम्मत्त-सम्मामि० ऋणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । मणुसअपज्ज० छन्बीसंपयडीणं उक्क० ओघं । अणुक्क० सम्मत-सम्मामि० उक्क० ज० एगस०, उक्क० पिठदो० असंखे०भागो ।

६ ४००. आणदादि जाव सन्बद्दसिद्धि ति छन्त्रीसंपयडीणमुक्क० अणुक्क० णित्थ अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० णित्थ अंतरं । सम्मत्त० अणुक्क० जह० एगम०, उक्क० वासपुधत्तं । णविर सन्बद्धे पिलदो० असंखे०भागो । एवं जाणिदृण णेद्व्यं जाव अणाहारि ति ।

ध्यात्वकं उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यश्च, पश्चे-न्द्रियतिर्यश्च, पश्चेन्द्रियतिर्यश्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गमें लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोमे जानना चाहिये। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी नकके नारिक्योंस भी इसी प्रकार जानना चाहिये। इतना विशेष है कि सस्यक्त्वका अनुन्दृष्ट अनुभाग उनमें नहीं है। इसी प्रकार पश्चे-न्द्रियतिर्यश्च योनिनी, पश्चेन्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्त. भवनवासी, व्यन्तर और उयोतिष्योमे जानना चाहिए।

् ३९९. सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यितयों में ओघकी तरह भङ्ग है। इतना विशेष है कि मनुष्यित्तयों में सम्यक्त आंर सम्यक्तिक अनुन्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त प्रमाण है। मनुष्य अपर्याप्त में में छ्ट्वीस प्रकृतियों के उन्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघकी तरह है। उनके अनुन्कृष्ट अनुभागका तथा सम्यक्त्व और सम्यिमिध्यात्वके उन्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर पल्यके अमंख्यात्वें भागप्रमाण है।

§ ४००. त्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों में छव्वीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर अनुन्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। मन्यक्त्व और सन्यग्निध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है। मन्यक्त्वके अनुन्कृष्ट अनुभागका अवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। इतना विशोप है कि मर्वार्थसिद्धिमें उन्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यान्तवे भागप्रमाण है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशोपार्थ-श्रांघसे सम्यक्त श्रीर सम्यग्निध्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग दर्शनमोहके चपक के हाता है, ख्रतः नाना जीवों की ख्रपंचा चपकका जितना अन्तर है उतना ही अन्तर इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका भी होता है। आदेशसे नार्राक्रयों में सम्यक्त्व प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर जघन्यसे तो एक ही समय है किन्तु छ्रुष्टसे वर्षपृथक्त्व है, अर्थान् कोई क्रुतकृत्यवेदक इतने काल तक नरकमें नहीं पाया जाता। मनुष्यिनियों में भी उत्कृष्ट अन्तर इतना ही है,क्यां कि मनुष्यिनियों में चपकका भी अन्तरकाल इतना ही वतलाया है। मनुष्य अपर्याप्तकों में छ्रव्वीस प्रकृतियों के अनुत्कृष्ट अनुभागका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके चत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यात्वे भाग है, क्यों कि यह सान्तर मार्गणा

- 🛞 जहरणाणुभागकम्मंसियंतरं णाणाजीवेहि ।
- § ४०१. सुगममेदं अहियारसंभालणसुत्ततादो ।
- अः मिच्छुत्त-श्रद्धकसायाणं णितथ श्रंतरं ।
- 🖇 ४०२, कदो ? आणंतियादो ।
- 級 सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-लोभसंजलण-छुग्णोकसायाणं जहग्णाणु-भागकम्मंसियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?
 - 🖇 ४०३. सुगमं।
 - 🏶 जहरुणेण एगसमञ्रो ।
 - ६ ४०४. सुगम ।
 - 🏶 उक्कस्सेण छम्मासा ।

§ ४०५. खवगसेहीए एदासि पयडीणं जहण्णाणुभागसमुष्पत्तीदो । का खवग-सेढी णाम ? कम्मखवणपरिणामपंती । जिंद एवं तो अणंताणुवंधिच उक्त० विसंजोयण-परिणामपंतीए वि खवगसेढी सण्णा पावदे ? ण, तेसि पुणरूष्पज्जमाणसहावाणं

है श्रौर उसका ऋन्तरकाल भी इतना ही वतलाया है। श्रानतसे लेकर सर्वार्थीसद्धि तक छन्वीस प्रकृ-तियों का उत्कृष्ट तथा अनुन्कृष्ट अनुभाग और सम्यक्त्र तथा सम्यग्मिश्यान्वका उत्कृष्ट अनुभाग सदा पाया जाता है. अतः अन्तर नहीं है। मस्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त है जो कि वहां उत्पन्न होनेवाले ुनकृत्यवेदक सम्यग्मि-टिष्टियों की ऋषेचा जानना, क्यों कि उन्हींके सम्यक्त्वका धनत्कृष्ट अनुभाग होता है। इतना विशेष है कि सर्वार्थसिद्धिमें यह अन्तरकाल पत्यके असंख्यातवे भागप्रभाग है।

नाना जीवोंकी त्र्रापेत्ता जघन्य अनुभागसन्कर्मवालोंका अन्तर कहते हैं।

॥ ४०१. यह सूत्र सुगम है. क्या कि इसमें अधिकारका सम्भाला गया है।

* मिध्यात्व और आठ कपायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तर नहीं है। ६४०२. क्यों कि इनका प्रमाण त्र्यनन्त है।

 # सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्वलन लोभ, और छ नोकपायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तरकाल कितना है ?

६ ४०३. यह सूत्र सुगम है।

* जचन्य अन्तर एक समय है।

६४०४ यह सूत्र सुगम है।

* उत्कृष्ट अन्तर छह मास है ?

💲 ४०५. क्यों कि इन प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग चपकश्रेणीमें उत्पन्न होता है। शंका-चपकश्रेगी किसे कहते हैं ?

समाधान-कर्मीके चपणके कारणभूत परिणामां की पंक्तिको क्षपकश्रेणी कहते हैं।

शंका-यदि क्षपकश्रेणीका यह लक्षण है तो अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करने-ाले रिएएमा की पंक्तिका भी चपकश्रेणी नाम प्राप्त होता है ?

खीणत्तविरोहादो ।

- अण्राणुषंधीणं जहण्णाणुभागसंतकस्मियंतरं केविचरं कालादो होदि ?
 - 🖇 ४०६. सुगमं ।
 - 🕸 जहरुणेण एगसमञ्रो ।
 - ५ ४६७. सुगमं ।
 - 🕸 उक्कस्सेण श्रसंखेजा लोगा।
- ं ४०८. कुदो ? संजुज्जमाणपरिणामाणमसंखे०लोगपमाणतादो । ण च सन्वेहि परिणामेहि संजुज्जंनस्स जहण्णाणुभागो होदि, सन्वविमुद्धपरिणामं मोत्तूण अएएान्य तदणुवलंभादो ।
- इत्थि णवुं सयवेदजहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?
 - ५४०६. सुगमं ।
 - 🕸 जहण्णेण एगसमञ्जो।
 - ४१०. सुगम ।
 - 🕸 उक्कस्सेण संखेजाणि वस्साणि !

समाधान-नहीं, धयो कि वे पुनः उत्पन्न स्वभाववाली हैं स्रतः उन्हें क्षीण माननेवे विरोध स्राता है।

- अनन्तानुबन्धी क गयांके जघन्य अनुभागसत्कर्भवालोंका अन्तर काल कितना है ?
 - ् ४८६ यह सूत्र सुगम है।
 - # जघन्य अन्तर एक समय है ।
 - १४०७ यह सूत्र सुगम है।
 - * उत्क्रष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है ।
- ं ४०८. क्यों कि अनन्तानुबन्धीके सयो जनके कारण मृत परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं। और सभी परिणामोसे संयुक्त होनेवालोके अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभाग नहीं होता. क्यों कि सर्वविद्युद्ध परिणामको छोड़कर अन्यत्र वह नहीं पात्रा जाता है।
- ऋबिवेद और नषु सकवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मवालांका अन्तरकाल कितना है।
 - २४०९, यह सूत्र सुगम है।
 - * जघन्य अन्तर एक समय है।
 - ६४१०, यह सूत्र सुगम है।
 - 🔅 उत्कृष्ट अन्तर संख्यात वर्ष है ।

- ः ४११. कुदो ? इत्थि--णवुंसयवेदोदएण खवगसेढिमारुहंताणं वासपुधत्तंतरुव-लंभादो ।
- ॐ तिसंजलण-पुरिसवेदाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?
 - ५ ४१२. सुगमं ।
 - 🕸 जहण्णेण एगसमञ्जो।
 - 🖇 ४१३. सुगमं।
 - 🕸 उक्कस्सेण वस्सं सादिरेयं।

४१४. पुरिसनेदम्म ताव उच्चदे । तं जहा—पुरिसनेदोदएण खनगसेहिं चहिय
तम्म जहण्णाणुभागसंतकममं काऊण छम्मासमंतिरय पुणो इत्थिवेदेण खनगसेहिं चिहय
छम्मासमंतिरय पुणो णवुंमयवेदोदएण खनगसेहिं चहावेदच्वो । एवं संखेळोसु वारेसु
गदेसु पच्छा पुरिसनेदोदएण खनगसेहिं चिहय तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मे कदे
सादिरंगेगवस्समेत्तमुक्कस्संतरं होदि । संखेळाणि वस्साणि किण्णे होति १ ण, सन्वेसि-मंतराणं छम्मासपमाणताभावादो । सन्वाणि आणंताणि छम्मासपमाणाणि ण होति
त्ति कुदो णन्वदे १ वासं सादिरेयमंतरिमदि सुत्तिण्हे सादो । एवं तिण्हं संजल्णाणं

ु ४१२. यह सूत्र सुगम है।

» ज्ञानिय अन्तर एक समय है।

् ४१३ यह सूत्र सुगम है।

🗱 उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष है।

् ४१४. पहले पुरुष बद्का अन्तर कहते हैं. जा इस प्रकार है — पुरुष बद्के उद्यसे चपक श्रीण पर चढ़कर और उसका जयन्य अनुभागसन्तर्भ करके चपकश्रीणिका छह मासका अन्तर दिया पुनः स्त्रीवदके उदयसे चाकश्रीण पर चढ़कर छह मासका अन्तर दिया पुनः नपुंसकवदके उदयसे चाकश्रीण पर चढ़कर छह मासका अन्तर दिया पुनः नपुंसकवदके उदयसे अणिपर चढ़ाना चाहिए। इस प्रकार संख्यात वार होनेपर पीछे पुरुषवदके उदयसे चपक श्रीणिपर चढ़कर पुरुष बदके जयन्य अनुभागसन्तर्भ होने गर पुरुषवदके जयन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष होता है।

द्मांका-संख्यात वर्ष अन्तर क्यों नहीं होता ?

समाधान-नहीं, क्यों कि सभी अन्तरोका प्रमाख छ: मास नहीं है।

शंका-सभी अन्तरोका प्रभाण छः मास नहीं है यह कैसे जाना ?

४११ क्यां कि स्रोतिद तथा नपुंसकादके उदयसे चपकश्रेणी पर चढ़नेवालों का अन्तर वर्षप्रथक्त पाया जाता है।

अतीन संज्वलन त्रोर पुरुपवेदके जघन्य त्रानुभागसन्कर्मवालोंका अन्तर काल कितना है ?

ता॰ प्रती बस्ससहस्साणि किएण इति पाठः।

वत्तव्वं, सादिरेयवस्संनरंत्तेण विसेसाभावादो । कोधसंजलणस्स दो वस्साणि श्रंतरं किण्ण होदि ? ण, सन्वेसिमंनराणमेगादिसंजोगजणिदाणं छम्मासणियमाभावादो । एवं चुण्णिसुत्तमस्सिद्ण श्रंतरपरूणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिद्ण परूवेमो ।

\$ ४१५. जहण्णए पयदं। दुविहो णिहेसो — ओघेण आदंसेण य । ओघेण मिच्छत्तअह-कसा० जहण्णाजहण्णाणु० णित्थ अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि०-लोभसंज०- छणोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा। अज० णित्थ अंतरं। अणं- ताणुचउक्क० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क असंखे० लोगा। अज० णित्थ अंतरं। तिण्णिसंज०-पुरिस० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं। अज० णित्थ अंतरं। इत्थि-णवुंस० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। अज० णित्थ अंतरं। एवं मणुस्सोधं। णविर मिच्छत्त-अहकसा० जह० ज० एगस०, उक्क० असंखे०लोगा। - ४१६. आदेसेण णेरइएमु छठवीसं पयडीणं जहएणाणु० ज० एगस०, उक्क०

समाधान—क्यों कि सूत्रमें पुरुषरेदके जधन्य अनुभागसन्दर्भका उन्क्रष्ट अन्तर एक वर्षसे हुछ अधिक बतलाया है। इससे जाना कि सभी अन्तरां का प्रमाण छ: माम नहीं होता। इसी प्रकार तीनों सज्बलन कषायोका भी अन्तर कहना चाहिये. क्योंकि साधिक एक वषप्रमाण अन्तरमें उसमें कुछ विशेषता नहीं है।

शंका-संज्वलन क्रोधका अन्तर दो वर्ष क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्यों कि एक।दि संयोगसे उत्पन्न हुए सभी अन्तर छह भासप्रभाग होते हैं ऐसा कोई नियम नहीं हैं। तात्पर्य यह हैं कि कोध, मान, माय और लोभके उदयसे छह छह माहके अन्तरसे चपकश्रीण पर चढ़ता है ऐसा कोई नियम नहीं हैं, अतः तीनों संज्वलनों के जघन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर दो वर्ष न कह कर साधिक एक वर्ष कहा है।

इस प्रकार चूर्गिसूत्रके आश्रयसे अन्तरका कथन करके अब उचारणाके आश्रयसे अन्तर का कथन करते हैं—

§ ३१५ जघन्यका कथन अवसर प्राप्त है। निर्देश दो प्रकारका है— आय और आदंश। आपसे मिण्यात्व और आठ कपायों के जघन्य और अजघन्य अनुभागका अतर नहीं है। सम्यक्त्व, सम्यम्भिण्यात्व, सज्वलनलों में और छह नोकपायों के जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। अनन्तानुबन्धी चतुष्क के जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। तीन संख्यान कपाय और पुरुष देखे जघन्य अनुभागका जघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। तीन संख्यान कपाय और पुरुष देखे जघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। स्थावंद और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। स्थावंद और नपुंसक वदं जघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्यों में जानना चाहिए। इतना विशेष है कि मिण्यात्व और आठ कपायों के जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है।

🗘 ४१६, श्रादेशसे नारिकयो में छव्वीस प्रकृतियोंके जघन्य त्रानुभागका जघन्य त्रान्तर

असंखे बोगा। अज णित्थ ऋंतरं। सम्मत्तव जहण्णाणुव जव एगसव, उक्कव वास-पुधत्तं । ऋज० णत्थि ऋंतरं । सम्मामि० अज० णत्थि ऋंतरं । एवं पढमपुढवि०-पंचि-दियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-देवोघं ति । विदियादि जाव सत्तमि ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्त० जहण्णाजहण्णाणु० णन्धि द्यांतरं । अणंताणु०चउक्क० जहण्लाणु० ज० एगस०, उक्क० असंखे० लोगा । अज० णत्थि अंतरं । एवं जोदिसि० ।

- ४१७. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेमु वावीसंपयडीणं जहएगाजहएगाए० णित्थ श्रंतरं । सम्मत्त ॰ जहण्णाणु ॰ ज ॰ एगस ॰, उक्क ॰ वासपुधत्तं । अज ॰ णित्य श्रंतरं । एवं सम्मामिक । णवरि जहण्णं णित्थ । अणंताणुक्च उक्क जहण्णाणुक जक एगसक, उक्क असंखेज्जा लोगा। अज॰ णित्थ स्रंतरं। एवं सोहम्मादि जाव णवगेवज्जा ति। जोणिणी० छन्वीसंपयडीणं जहण्णाणु० जह० एगम०, उक्क० असंखे० लोगा । अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त सम्मामि० अञ्च० णन्थि अंतरं । एवं पचिदियतिरिक्खअपज्ज०-भवण०-वाणवेतराणं । मणुसपज्ज० मणुस्योधं । णवरि इत्थि० हस्सभंगो । मणसिणी० एवं चेव । णवरि खबगपयडीणमंतरं वासपुधत्तं । मणुसअपज्ज ० छव्वीसंपयडीणं ज० जह० एगस०, उक्क० असंखेजा लोगा । अज० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०-

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रम गा है। अजधन्य अनुसागका अन्तर नहीं है। सम्यक्तकं जघन्य अनुसारका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर, वर्षपृथकव प्रमाग है। अजवन्य अनुमागका अन्तर नहीं है। सम्यग्मिश्यात्वके अजघन्य अनुमागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिबी, पश्चेन्द्रियतिर्यश्च, पश्चेन्द्रियतिर्यश्च पर्याप्त और सामान्य देवों में जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नारकियों में मिथ्यात्व. बारह कपाय श्रीर नव नोकपायों के जवन्य श्रीर श्रजपन्य श्रनमागका श्रन्तर नहीं है। श्रनन्ता-नुबन्धी बतुःक ८ जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है। और उत्कृष्ट अन्तर अमुख्यात लांकप्रमागुँ है। अजवन्य अनेमागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार ज्योतिपीद्वों में जानना चाहिए।

। ४१७. तिर्याखनिर्में तिर्याखों में बार्टस प्रकृतियों के जबन्य और अजधन्य अनुमानका अन्तर नहीं है। सम्यक्षिके जघन्य अनुभागका जघन्य। अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्षयप्रमाण् है। व्यजवन्य प्रतुमानका व्यन्तर नहीं है। इसी प्रकार संस्थरिमध्यात्वका श्रन्तर जानना चाहिए। इतना विशेष है कि निर्धिचा में उसका जबन्य श्रनुसार नहीं होता। त्रनन्तानुबन्धीच पुरुकं जवन्य अनुसागका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असम्बात लाकप्रमाण है। अजधन्य अनुमागका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सौधर्म स्वर्गसे लेकर नवपैवेयक तक हरेवों में जानना चाहिए। योनिनियों में छव्वीम प्रकृतियों के जघन्य अनभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर अमंख्यात लोक प्रमाण् है। अजघन्य श्रनेमागका श्रन्तर नहीं है। सम्यकव श्रौर सम्यग्मिध्यात्वके श्रज्ञघत्य श्रनभागका श्रन्तर नहीं है। इसी प्रकार पर्व्वत्विय निर्यश्व अपर्याप्त, भवनवासी और व्यन्तरोमें जानना चाहिए । मनष्य-पर्याप्तको में सामान्य भन्त्यों के समान भङ्ग हैं । इतना विशेष है कि स्त्रीवेदके जघन्य ब्रानभागका श्चन्तर हास्यके समान[े] हैं । मन्ष्यिनियों में भी इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि इनमें चपक-श्रंिणमे जिन प्रकृतियों का जबन्य अनुभाग होता है उनका अन्तर धर्पपृथक्त्व है। मन्त्य अपयाप्तको में छुट्यीस प्रकृतियो के जघन्य अनुभागसन्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और

भागो । अणुद्दिसादि जाव सव्वद्दसिद्धि ति भिच्छत-बारसक०-णवणोक०ज० अज० णित्थ श्रंतरं । सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुधतं । सन्वद्दे पिलदो० संखे०भागो । अजह० णित्थ श्रंतरं । एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ४१८. सिण्णियासो दुविहो — जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्दे सो — ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छनस्स जो उक्कस्साणुभागविहिन ओ सो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सिया विहिन ओ सिया अविहिन ओ। जिद्द विहिन ऋो णियमा उक्कस्सिविहिन ओ। सोटसक०--णवणोक० णियमा विहिन्त ओ। तं तु छुट्ठाणपिददो। एवं सोटसक०--णवणोकसायाणं। सम्मत्त० उक्कस्साणुभागस्स जो विहिन ओ सो सम्मामिच्छत्तस्स णियमा उक्कस्सविहिन्त ओ। मिच्छत्त—बारसक०-णवणोक० णिय०

उत्कृष्ट अन्तर श्रसंख्यात लोक है। अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिध्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। सम्यक्त और अनन्तानुबन्धीचनुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथकत्वप्रमाण है। सर्वार्थसिद्धिमे इनका उत्कृष्ट अन्तर पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विश्रोपार्थ—जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तर जिस प्रकार चूर्णिसूत्रोंमं कहा है वैसे ही आघसे और आदेशसे भी जानना चाहिए। आदेशसे कहा कहां कुछ विशेषता है, जैसे तिर्यभ्वयोनिनयोंमं और मनुष्य अपर्याप्तकोमें छव्बीस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक कहा है सो इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग इन पर्यायोंमें मरकर जन्म लेनेवाले हतसमुत्पत्तिककर्मा यथायोग्य एकेन्द्रियादिक जीवोंके होता है, उन्हांकी उत्पत्तिकी अपेत्तासे यह अन्तर काल कहा है। सम्यक्त प्रकृतिके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त उसी प्रकृतिके अनुत्कृष्ट अनुभागके अन्तरकी तरह जानना।

§ ४१८, सिन्नकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य श्रीर उत्कृष्ट । उन्कृष्टका श्रवसर है । निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश । श्रोघसे जो जीव मिध्यात्वकी उत्कृष्ट श्रानुभागिवभक्तिन वाला है वह कदाचित् सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्गिध्यात्वकी विभक्तिवाला होता है कदाचित् श्रविभक्तिवाला होता है। यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। तथा वह । सोलह कषाय श्रीर नव नोकपायोंकी श्रानुभागिवभक्तिवाला नियमसे होता है किन्तु वह उत्कृष्ट भी होती है श्रीर श्रानुकृष्ट भी । यदि श्रानुकृष्ट होती है तो नियमसे षट्स्थानपतित होती है। इसी प्रकार सालह कषाय श्रीर नव नोकपायों की श्रपेत्ता जानना चाहिए। जो जीव सम्यक्त्वके उत्कृष्ट श्रानुभागकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सम्यग्गिध्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। तथा वह मिध्यात्व वारह कषाय श्रीर नव नोकपायों की श्रानुभागविभक्तिवाला नियमसे होता है। तथा वह मिध्यात्व वारह कषाय श्रीर नव नोकपायों की श्रानुभागविभक्तिवाला नियमसे होता है। जो उत्कृष्ट श्रानुभागविभक्तिवाला होता है। यदि श्रानुकृष्ट श्रानुभागविभक्तिवाला

तं तु इहाणपदिदो । त्र्रणंताणु०चउक्क० सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ । जिद् विहत्तिओ तं तु इहाणपदिदो । एवं सम्मामिच्छत्तस्स । णवरि सम्मत्त० सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ । जिद् विहत्तिओ णियमा उक्कस्सविहत्तिओ । एवं मणुसतियस्स वत्तव्वं ।

§ ४१६. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त० उक्क० जो विहत्तिश्रो सो सम्म०सम्मामि० सिया विहत्तिओ, सिया श्रविहत्तिओ । जिद्द विहत्तिओ णियमा
उक्कस्सविहत्तिओ । सोलसक०-णवणोक० णियमा० तंतु छट्टाणपिददो । एवं सोलसक०-णवणोकसायाणं । सम्मत्त० जो उक्क० विहत्तिओ सो सम्मामि० णियमा उक्क०
विहत्तिश्रो । मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० तं तु छट्टाणपिददो । अणंताणु०चउकक०
सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ । तंतु छट्टाणपिददो । एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि ।
णविर सम्मत्तस्स सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिश्रो । जिद्द विहत्तिओ णियमा
उक्कस्सविहत्तिश्रो । एवं पढमपुढवि-तिरिक्खितय-देवोधं सोहम्मादि जाव सहस्सार

होता है तो वह पट्म्थान पतित होता है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी कदाचिन् विभक्तिबाला होता है और कदाचिन् अविभक्तिबाला होता है यदि विभक्तिबाला होता है तो वह उक्ष्य भी होता है। श्रीर अनुत्कृष्ट भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट होता है तो वह पट्म्थान पतित होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिण्यात्वकी अपेक्षा भी सिन्नकर्प जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वह कदाचिन् सम्यक्तिकी विभक्तिबाला होता है और कदाचिन् अविभक्तिबाला होता है। यदि विभक्तिबाला होता है तो नियमसे उत्कृष्टविभक्तिबाला होता है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनयोंमे कहना चाहिए।

§ ४१९. त्रादेशसे नारिकयोंमं जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट त्र्यनुभागविभक्तिवाला है वह कदाचित सम्यक्त त्रौर सम्यग्मिध्यात्वकी अनुभागविभक्तिवाला होता है त्रौर कदाचित् स्त्रवि-भक्तिवाला होता है। यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। वह सोलह कपाय श्रीर नव नोकपायों की नियमसे विभक्तिवाला होता है। किन्तु वह उत्कृष्ट विभक्ति-वाला होता है, और अनुन्कृष्टविभक्तिवाला होता है। यदि अनुस्कृष्टविभक्तिवाला होता है तो वह पटस्थान पतित होता है। इसी प्रकार सोलह कपाय और नव नोकपायोंकी अपेक्षा सन्निकर्प होता है। जो सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाला है वह नियमसे सम्यग्मिण्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। वह मिध्यात्व, बारह कपाय श्रीर नव नोकपायोंकी नियमसे विभक्तिवाला होता है। किन्तु वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है श्रीर श्रमुन्कृष्टविभक्तिवाला भी हाता है। यदि श्रनुकुष्ट विभक्तित्राला होता है तो वह पटस्थान पतित होता है। श्रनन्तानुबन्धी चतुष्ककी कदाचिन् विभक्तिवाला होता है और कदाचिन त्र्यविभक्तिवाला होता है। यदि विभक्तिवाला होता है तो वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है। यदि अनुःकृष्ट विभक्तिवाला होता है तो वह पट्म्थान पतित विभक्तिवाला होता है । इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी ऋपेक्षा भी जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला कदाचिन् सम्यक्तवकी विभक्तिवाला होता हैं श्रीर कदाचित् श्रविभक्तिवाला होता है। यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्ट िमक्तिवाला होता है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय

त्ति । विदियादि जाव सत्तिम् ति एवं चेव । एवं जोणिणी०--पंचिदियतिरिक्खत्रपञ्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण-वाण०-जोदिसिया त्ति । णवरि पंचिदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज० सम्मत्त०-सम्मामि० उक्कस्साणु०विहत्ति ० अणंताणु०चउक्क० वारसकसायभंगो ।

§ ४२०. त्राणदादि जाव उवरिमगेवज्ञा ति मिच्छत्त० उक्कस्साणुभागविहित्तओ सम्मत--सम्मामि० सिया विहित्तिओ सिया अविहित्तिओ। जिद विहित्तिओ णियमा उक्कस्सा। सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० १ रिगयमा उक्क०। एवं सोलसक०-णवणोकसायाणं। सम्मत्त० उक्क० विहित्ति० मिच्छत्त--वारसक०--णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० तं तु अणंतगुणहीणा। अणंताणु० चउक्क० सिया विहित्तिओ सिया अविहित्तिओ। जिद विहित्तिओ तं तु अणंतगुणहीणा। सम्मामि० रिगयमा उक्क० विहित्तिओ। एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि वत्तव्वं। णविर सम्मत्तस्स सिया विहित्तियो सिया अविहित्तिओ। जिद विहित्तिओ णियमा उक्कस्सविहित्तिओ।

§ ४२१. अणुदिसादि जाव सव्वद्वसिद्धि ति मिच्छत्त० उक्कस्साणुभागविद्दत्तिओ

तियंश्व पर्याप्त, सामान्य देव श्रीर सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नार्राकयोमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व यानिनी. पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व श्रपर्याप्त, मनुष्य श्रपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर श्रीर ज्यांतिपी देवोंमे जावना चाहिए। इतना विरोप है कि पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व श्रपर्याप्त श्रीर मनुष्य श्रपर्याप्तकों सम्यश्च श्रीर सम्यग्निथ्यात्वकी उत्कृष्ट श्रनुभागविभक्तिवालोके श्रनन्तानुबन्धीचतुष्कका मङ्ग बारह कपायोक समान है।

६ ४२० त्र्यानत स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैंबयक तकके देवोमे जो मिथ्यात्वकी उत्क्रष्ट अनुभागविभक्तिवाला है वह कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व शी विभक्तिवाला होता है श्रीर कदाचित श्रविभक्तियाला होता है। यदि विभक्तियाला होता है तो नियमसे उत्कर विभक्ति-वाला होता है। मोलह कपायो और नव नोकपायकी क्या उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है अथवा श्रनुःकृष्ट विभक्तिवाला होता है ? नियमसे उःकृष्ट विभक्तिवाला होता है । इसी प्रकार सोलह कषाय श्रीर नव नोकप योकी अपेन्ना जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला मिध्यात्व, बारह कपाय श्रीर नव नोकपायोकी क्या उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है या अनुस्कृष्ट विभक्तिवाला होता है ? वह उक्कष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुकुष्ट विभक्तिवाला भी होता है यदि अनुकुष्ट विभक्तिवाला होता है तो वह अनन्तगुणी हीन विभक्तिवाला होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी कदाचिन् विभक्तिवाला होता है छौर कदाचिन् अविभक्तिवाला होता है। अदि विभक्तिवाला होता है तो उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुस्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है। यदि अनुस्कृष्ट विभक्तित्राला होता है तो वह नियमसे अनन्तगुण हीन विभक्तित्राला होता है। तथा वह नियमसे सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी ऋपेक्षा भी सिन्नकर्ष कहना चाहिये। इतना विशेष है कि सम्यग्मिण्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला कदाचित् सम्यक्त्वकी विभक्तित्राला होता है और कदाचित् अविभक्तित्राला होता है यदि विभक्तित्राला होता है तो नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है।

§ ४२१. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवामें मिण्यात्वकी उत्क्रव श्रानुभाग विभक्ति-

सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क०१ णियमा उक्कस्सविहित्तिओ । एवं सोलसकसाय--णवणोकसायाणं । सम्मत्त० उक्क० विहित्तिओ मिच्छ०--बारसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० १ तं तु अणंतगुणहीणा । अणंताणु०४ सिया अत्थि सिया णित्थ । जिद्द अत्थि तं तु अणंतगुणहीणा । सम्मामि० णियमा उक्कस्सविहित्तिओ । एवं सम्मामिच्छत्त्तस्स वि वत्तव्वं । एवं जाणिद्ण णेद्व्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ४२२, जहण्णए पयदं । दुविहो णिइ सो— ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्तस्स जो जहएणाणुभागविहित्तओ तस्स सम्मत--सम्मामिच्छताणि सिया अत्थि सिया णित्थ । जिद्द अत्थि णियमा अजहण्णा अणंतगुणक्भिहया । अणंताणु०चउक्क०-चदुसंज०-णवणोक० णियमा अज० ऋणंतगुणक्भिहया । ऋदक० णियमा तं तु छद्दाण-पिददा । एवं अहकसायाणं । सम्मत्त० जहण्णाणु०विहित्ति० वारसक०--णवणोक० णियमा अज० ऋणंतगुणक्भिहया । सेसपयडीओ णित्थ । सम्मामि० जहएणाणु०विहित्ति० सम्मत्त०--वारसक०--णवणोक० णियमा अज० अणंतगुणक्भिहया । अणंताणु०कोथ०

वाला सम्यक्त्व, सम्यग्मिण्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायोंकी क्या उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सोलह कपाय और नव नोकपायोंकी अपेना सिन्नकर्प जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सोलह कपाय और नव नोकपायोंकी अपेना सिन्नकर्प जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला सिण्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायोंकी क्या उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है या अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है ? वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला सी होता है। यदि अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है वो वह अनन्तगुण हीन विभक्तिवाला होता है। उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् होता है कदाचित् नहीं होता। यदि होता है तो वह उत्कृष्ट भी होता है और अनुत्कृष्ट भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट होता है तो वह अनन्तगुण हीन होता है। वह सम्यग्मिण्यात्वकी नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिण्यात्वकी अपेना भी कहना चाहिए। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

६ ४२२. अब जघन्य अवसरप्राप्त है। निर्देश दो प्रकारका है- श्रोध और आदंश। श्रोध-से जो मिध्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाला है उसके सम्यक्त और सम्यिमध्यात्व कदाचिन् होते है और कदाचिन् नहीं होते। यदि होते हैं तो नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होते हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्क, चार संज्वलन और नव नोकपाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होते हैं। आठ कषाय नियमसे होती हैं किन्तु व जघन्य भी होती हैं और अजघन्य भी होती हैं। यदि अजघन्य होती हैं तो नियमसे षटस्थान पतित अनुभागको लिये हुए होती हैं। इसी प्रकार आठ कपायोकी अपेन्ना सिक्षक जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके बारह कपाय और नव नोकषाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। उसके शेष प्रकृतियां अर्थात् अनन्तानुबन्धी चतुष्क, मिध्यात्व और सम्यग्मध्यात्व ये प्रकृतियाँ नहीं होतीं। सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके सम्यक्त्व, बारह कपाय और नव नोकषाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। अनन्तानुबन्धी कोधकी जहण्णाणु०विहत्ति० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०--बारसक०--णवणोक० णियमा अज० अणंतगुण्यमिहिया । माण-माया-लोभाणं किं ज० किमज० ? तं तु छहाणपदिदा । एवं सेसितण्हं कसायाणं । कोधसंजठ० जहण्णाणु०विहत्ति० तिएहं संजत० किं ज० अज० ? णि० अज० अणंतगुण्यमिहिया । माणसंज० ज० विहत्ति० माया-लोभसंज०- किं ज० अज० ? णियमा अज० अणंतगुण्यमिहिया । कोधसंजतणादिहेहिमपयहीओ णित्थ। मायसंज०ज० विहत्ति० लोभसंज० णियमा अज० अणंतगुण्यमिहिया । लोभसंज० जहएणाणु० सत्तणोक०-चदुसंज० णियमा अज० अणंतगुण्यमिहिया । एवं णवुंसयवेदस्स । प्रुरिस० जहएणाणु०विहत्ति० चदु-संज० णियमा अज० अणंतगुण्यमिहिया । एवं णवुंसयवेदस्स । प्रुरिस० जहएणाणु०वि० प्रिरस०-चदुसंज० णि० अज० अणंतगुण्यमिहिया । एवं णवेतगुण्यमिहिया । एवं णवेतगुण्य

जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्तव, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजधन्य अनुभागका लिये हुए होती हैं। उसके अनन्ता-नुबन्धी मान, माया और लोभका क्या जघन्य अनुभाग होता है या अजघन्य अनुभाग होता है ? उनका जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है। यदि अजघन्य होता है तो षट्स्थानपतित श्रनुभाग होता है। इसी प्रकार शेप तीन कपायोंकी श्रपंक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए। संज्वलन क्रोधकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके मान, माया और लोभ संज्वलनका क्या जघन्य होता है या क्या अजघन्य होता है ? नियमसे अजघन्य अनुभाग होता है जो अनन्तरारणा अधिक होता है। मान संज्वलनकी जघन्य विभक्तिवालेके माया संज्वलन श्रीर लोभ संज्वलनका क्या जघन्य होता है या अजघन्य होता है ? नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य होता है। नीचेकी क्रोध संज्वलन आदि प्रकृतियाँ उसके नहीं होती। माया संज्वलनकी जघन्य विभक्तिवालेके लोभ संज्वलन नियमसे अनन्तगुरो अधिक अजधन्य अनुभागको लिये हुए होता है। लाभ संज्वलनकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके शेप प्रकृतियाँ नहीं होतीं। स्रीवेदकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके सात नोकपाय और चारों संज्वलन कपाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी अपेचा सन्निकर्ष जानना चाहिए । पुरुषवेदकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके चार संज्वलनकषाय नियमसे अनन्तगुरो अधिक अजधन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। हास्यकी जधन्य अनुभागविभक्तिवालेके पुरुष-वद श्रीर चारों संज्वलन नियमसे श्रानन्तगुणे श्रधिक अजधन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं। पांच नोकषाय नियमसे जघन्य होती हैं। इसी प्रकार शेष पांची नोकषायोंकी अपेचा सन्निकर्ष जानना चाहिए।

§ ४२३. श्रादेशसे नारिकयोंमें मिध्यात्वकी जघन्य श्रनुभागविभक्तिवालेके सम्यक्त्व कदाचित् होता है कदाचित् नहीं होता। यदि हाता है तो नियमसे श्रनन्तगुणे श्रधिक श्रजघन्य श्रनुभागको लिये हुए होता है। श्रनन्तानुबन्धी चतुष्क नियमसे श्रनन्तगुणे श्रधिक श्रजघन्य श्रनुभागको लिये हुए होता है। बारह कषाय श्रौर नव नोकपायका क्या जघन्य होता है या एवं बारसक०-णवणोकसायाणं । सम्मत्तः जहएएगाणु० वारसक०-णवणोक० कि ज० अज० १ णि० अज० अणंतगुणम्भिह्या । अणंताणु०कोध० जहएएगाणु० मिच्छत्त ०-सम्मत्त ०-बारसक०-णवणोक० णि अजहएएगा अणंतगुणम्भिहया । तिरिएणक० तं तु छहाणपदिदा । एवं तिएहमएांताणुवंधीएां । पढमपुढवि० देवोघं । भवण०--वाणवेतराणं णेरइयभंगो । णवरि भवण०-वाणवे० सम्म० जहएएां णत्थि ।

§ ४२४. विदियादि जाव सत्तिमि ति मिच्छत्त० जहएए।। णु० अणंताणु० चडक० सिया अत्थि सिया णित्थ । जिद अत्थि किं ज० अज०? तं तु छहाणपिददा । वारसक०-णवणोक० णियमा जहएए।। एवं वारसक०-णवणोकसायाणं । अणंताणु०कोध० जह० मिच्छ०-बारसक०--णवणोक० किं ज० अज० ? ए। जहण्णा । माण--माया--लोभ० किं ज० किमज० ? तं तु छहाणपिददा । एवं माण-माया-लोभाणं ।

§ ४२५. तिरिक्खगदीए तिरिक्ख--पंचिदियतिरिक्ख--पंचि०तिरि०पज्ज० मिच्छत्त ॰ जहरासासु० सम्मत्त० सिया अत्थि सिया पन्थि। जदि अत्थि णियमा अज०

श्रज्ञचन्य होता है ? वह जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है। यदि अजघन्य होता है तो वह पट्म्थान पितत होता है । इसी प्रकार वारह कपाय और नव नोकपायोंकी अपेना सिन्नकर्य जानना चाहिए । सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागिवभक्तिवालके बारह कषाय और नव नोकपायोंका क्या जघन्य होता है या अजघन्य ? (नयमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य होता है । अनन्तानुबन्धी कोधकी जघन्य अनुभागिवभक्तिवालके मिध्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकपायोंका नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य होता है । अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभका जघन्य भी हाता है और अजघन्य भी होता है । यदि अजघन्य होता है तो वह पट्म्थान पितत होता है । इसी प्रकार रोप तीन अनन्तानुबन्धीकी अपेना सिन्नकर्य जानना चाहिए । पहली पृथिवी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तरोमें नारिकयोंके समान भंग होता है । इतना विराप है कि भवनवासी और व्यन्तरोमे सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग नहीं होता।

§ ४२४. दूसरी पृथिवीसे लंकर सातर्वा पृथिवी तकके नारिकयों में मिध्यात्वकी जघन्य अनुभागिवभक्तिवालके अनन्तानुबन्धी चतुष्क कदाचिन् होता है और कदाचिन् नहीं होता। यदि होता है तो जघन्य होता है या अजघन्य? वह जघन्य होता है और अजघन्य भी। यदि अजघन्य होता है तो वह पट्स्थानपितत होता है। वारह कपाय और नव नोकपाय नियमसे जघन्य अनुभागको लिये हुए होती है। इसी प्रकार वारह कपाय और नव नोकपायोकी अपेक्षा सिक्त कर्व जानना चाहिए। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य अनुभागिवभक्तिवाले के मिध्यात्व, वारह कपाय, और नव नोकपायोका कथन्य होता है या अजघन्य? नियमसे जघन्य होता है। अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभका क्या जघन्य होता है या अजघन्य? वह जघन्य होता है और अजघन्य भी। यदि अजघन्य होता है तो वह पट्स्थान पतित होता है। इसी प्रकार मान, माया और लोभकी अपेक्षा सिक्तकर्य जानना चाहिये।

§ ४२५. तिर्यञ्चगतिमें सामान्य तिर्यञ्च,पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्तकोमे मिध्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तित्रालेके सम्यक्त्व कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता। यदि होता है तो नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजवन्य अनुभागको लिये हुए होता है। अणंतगुणव्महिया। अणंताणु०चउक्क० णियमा अज०अग्रांतगुणव्महिया। बारसक०-णव-णोक० किं ज० अज०? तं तु छहाणपदिदा। एवं बारसक०-णवणोकसायाणं। सम्मत्त० जहण्णाणु० वारसक०-णवणोक० किं ज० अज०? णियमा अज० अणंतगुणव्महिया। अणंताणु०कोथ० जहण्णाणु० मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसक०-णवणोक० किं ज० अज०? णि० अज० अग्रांतगुणव्महिया। तिण्णिकसाय० किं ज० किमज०? तं तु छहाणपदिदा। एवं सेसतिण्हमणंताणुवंधीणं। एवं जोणिणी०। णविर सम्मत्त० जहण्णं णितथ। पंचि०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त० जहण्णाणु० सोस्रसक०--णवणोक०--णियमा तं तु छहाणपदिदा। एवं सोलसक०-णवणोक०। मणुसअपज्जत्ताणं पंचिदियतिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो।

§ ४२६, मणुस्साणमोघ | मणुसपज्ज० एवं चेव | णविर इत्थिवेद-जहण्णाणु-भागविहत्तियस्स णवुंस० सिया अन्थि सिया णित्थ | जिद् अन्थि णियमा अज० ऋणंतगुणव्भिहिया | मणुसिणीणमोघं | णविर णवुंस० जहण्णाणु० इत्थि० णि० अज० ऋणंतगुणव्भिहिया | पुरिस० छण्णोकसायभंगो |

श्रनन्तानुबन्धी चतुष्कका नियमसे श्रनन्तगुणा श्रधिक श्रजघन्य श्रनुभाग होता है। बारह कपाय श्रीर नव नोकपायका क्या जघन्य होता है या अजघन्य ? वह जघन्य होता है श्रीर श्रजघन्य भी। यदि श्रजघन्य होना है तो वह पटम्थान पतित होता है। इसी प्रकार बारह कपाय श्रीर नव नोकपायोंकी श्रपंता सन्निकर्प जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी जघन्य श्रनुभागविभक्तिवालेके वारह कपाय और नव नोकपायोंका क्या जघन्य होता है या श्रजघन्य ? नियमसे अनन्तग्रा। अधिक अजधन्य अनुभाग होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जधन्य अनुभागविभक्तिवालेके मिथ्यात्व. सम्यदत्व. बारहकपाय श्रीर नव नोकपायोंका क्या जघन्य होता है या ऋजघन्य ? नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य अनुभाग होता है। अनन्तानुबन्धी मान, माया श्रीर लोभका क्या जवन्य होता है या अजधन्य? वह जधन्य होता है श्रीर अजघन्य भी। यदि अजघ य होता है तो वह पट्स्थान पतित होता है। इसी प्रकार शेप तीन अनन्तानुबन्धिकपायोंकी अपेद्या सन्निकर्प जानना चाहिए। इसी प्रकार पश्चेन्टिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्वका जघन्य नहीं होता । पञ्चेन्द्रियनिर्यञ्च अपर्यातकोमें मिध्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके सोलह कपाय और नव नोकपायोका अनुमागसत्कर्म नियमसे होता है किन्तु वह जघन्य भी होता है त्रीर अजधन्य भी। यदि अजधन्य होता है तो वह पट्म्थान पतित होता है। इसी प्रकार सोलह कपाय श्रीर नव नोकपायोकी अपेत्रा सन्निकर्प जानना चाहिए। मनप्य श्रपयाप्तकोंमें पश्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भंग है।

§ ४२६, सामान्य मनुष्योंमे खोघवत् जानना चाहिए। मनुष्य पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि स्त्रीवेदकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके नपुंसकवेद कदा-वित् होता है ख्रीर कदाचित् नहीं होता। यदि होता है तो नियमसे अनन्तगुरा अधिक अनुभागको लिए हुए अजघन्य होता है। मनुष्यिनियोमे ख्रोघवत् जानना चाहिए। इतना विशेष है कि नपुसकवेदकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके स्त्रीवेदका नियमसे अनन्तगुणे अधिक अनुभागको लिए हुए अजघन्य होता है तथा पुरुषवेदका भङ्ग छ नोकपायके समान है।

§ ४२७. जोदिसि० विदियपुढिविभंगो । सोहम्मादि० जाव णवगेवज्ञ० मिच्छत्त० जहएए।। ए० सम्मत्त-बारसक०-णवणोक० णि० अज० अणंतगुण अमिहया। सम्मत्त० जहएए।। ए० वारसक०-णवणोक० किं ज० किमज० १ तं तु अणंतगुण-अमिहया। अणंताणु०कोध० ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसक०-णवणोक० णि० अज० अणंतगुण अमिहया। तिण्हमणंताणु बंधीणं तं तु छडाणपिददा। एवं सेसितिण्हमणंताणु-बंधीणं। अपचक्ताणकोध० ज० एकारसक० णवणोक० णि० जहएए।। सम्मत्त० सिया अत्थि सिया णित्थ। जिद अत्थि तं तु अणंतगुण अमिहयं। एवमेकारसक० णवणोकसायाणं। अणुदिसादि जाव सव्वडिसिद्धि ति एवं चेव। णविर अणंताणु-कोध० ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसक०-णवणोक० शियमा० अज० अणंतगुण अमिहया। तििएगाक० णि० जहएए।। एवं सेसितिएहं कसायाणं। एवं जाणिदूण णेद्वं जाव अणाहारि ति।

§ ४२८. भावाणु० सच्वत्थ ओदइत्रो भावो ।

🕸 अप्पाबहुअमुझस्सयं जहा उद्यस्सवंघो तहा।

६ ४२७ ज्योतिपियोंमे दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। सौधर्म स्वर्गसे लेकर नव प्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य श्रनुभाग विभक्तिवालेके सम्यक्त्व, बारह कपाय श्रीर नव नोक-षायोंका नियमसे अनन्तगुरो अधिक अनुभागको लिए हुए अजघन्य होता है। सम्यक्त्वकी जघन्य श्रनुभाग विभक्तिवालके बारह कपाय त्र्यौर नव नोकपायोंका क्या जघन्य होता है या श्रजघन्य ? वह जघन्य भी होता है श्रौर श्रजघन्य भी। यदि श्रजघन्य होता है तो वह अनन्तगुर्णे अधिक अनुभागको लिए हुए होता है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य श्चनुभाग विभक्तिवालेके मिध्यात्व, सम्यक्त्व, वारह कपाय श्रौर नव नोकपायोका नियमसे अजघन्य होता है जो अनन्तगुणे अधिक अनुभागको लिए हुए होता है। शेप तीनों अनन्ता-नुबन्धी कपायोंका जघन्य भी होता है श्रीर श्रजघन्य भी। यदि श्रजघन्य होता है तो वह षट् स्थान पतित होता है। इसी प्रकार शेप तीनों ऋनन्तानुबन्धियोकी ऋपक्षा सन्निकर्ष जानेना चाहिए । अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोधकी जघन्य अनुभाग विभक्तित्रालेके शेप ग्यारह कपाय श्रीर नव नोकपायों का नियमसे जघन्य होता है। सम्यक्त्र कदाचिन् होता है कदाचित् नहीं होता। यदि होता है तो जघन्य भी होता है और अजघन्य भी। यदि अजघन्य होता है तो वह अनन्तगुणे अधिक अनुभागको लिए हुये होता है। इसी प्रकार ग्यारह कपाय ऋौर नव नोकपायोंकी ऋपेक्षा सन्निकर्प जानना चाहिये। ऋनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें ऐसे ही जानना चाहिये। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कपाय और नव नोकपायोंका नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य अनुभाग होता है। शेप तीनों अनन्तानुवन्धियों का नियमसे जघन्य होता है। इसी प्रकार शेप तीनों अनन्तानुबन्धी कपायों की अपेक्षा सन्तिकर्प जानना चाहिए। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

[§] ४२८ भावानुगमकी अपेक्षा सब विभक्तिवालोंके श्रीदियक भाव होता है।

^{*} जैसे उत्कृष्ट अनुभागवन्थका अन्यबद्धत्व है वैसे ही उत्कृष्ट सत्कर्मका अन्य-

\$ ४२६. जहा उकस्साणुभागवंधे उकस्साणुभागस्स अप्पावहुश्चं परूविदं तहा परूवेयव्वं, विसंसाभावादा । तं जहा—सञ्वितव्वा मिच्छतुक्कस्साणुभागवंधो । अण-ताणुवंधिलोभाणुभागवंधो अणंनगुणहीणो । मायाए उक्कस्साणुभागवंधो विसंसहीणो । कोधुक्कस्साणु० विसंसहीणो । मायाए उक्कस्साणुभागवंधो विरंसहीणो । मायाए उक्कस्साणु० विसंसहीणो । पच्चक्वाणलोभ० अणंतगुणहीणो । माया० विसंसहीणो । कोधुक्क० विसंसहीणो । माणुक्कस्साणु० अणंतगुणहीणो । माया० विसंसहीणो । कोधुक्क० विसंसहीणो । माणुक्कस्साणु० अणंतगुणहीणो । कोधुक्क० विसंसहीणो । माणुक्कस्साणु० अणंतगुणहीणो । कोधुक्क० विसंसहीणो । माणुक्कस्साणु० अणंतगुणहीणो । अरिद् उक्क० अणंतगुणहीणो । सोग०उक्कस्साणु० अणंतगुणहीणो । भय० उक्क० अणंतगुणहीणो । दुगुंछाए उक्क० अणंतगुणहीणो । इत्थि० उक्क० अणंतगुणहीणो । पुरिस० उक्क० अणंतगुणहीणो । एद- गुक्कस्साचुम्स अप्पावहुश्चं उक्कस्साणुभागसंनस्स कधं होदि ? कधं च ण होदि ? वंधावित्यादिक्कंतिहदीणं व अण्णोगगणसंनस्स अणुभागस्स सरिसतुवलंभादो ।

बहुत्ब है।

🖇 ४२९ 🏻 जैसे उत्कृष्ट अनुभागवन्धमें उत्कृष्ट अनुमागका अन्पबहुत्व कहा है वैसे ही यहाँ भी कहना चाहिए । दोनो मे कोई अन्तर नहीं है । वह अल्पबहुत्व इस प्रकार है--मिध्यात्वका उत्कृष्ट श्रन्भागवन्य सबसे तीत्र है। उससे श्रनन्तान्वन्धी लोभका उक्कष्ट श्रनुभागवन्ध श्रन-न्तगुर्णा हीन है। उससे मायाका उत्कृष्ट अनभागवन्य विशेष हीन है। उससे क्रांधका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे मानका उक्षेष्ठ श्रनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे संज्वलन लोभका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अनन्तर्गुणा हीन है। उससे मायाका उत्कृष्ट अनभागवन्ध विशेष हीन है। उससे क्रोनका उन्क्रष्ट अनुभागवन्ध विशेष हीत है। उससे मानका उन्क्रष्ट अनुभागवन्ध विशेष हीन है। उससे प्रत्याच्यानावरण लोभका उत्पृष्ट ऋनुमणवन्ध ऋनन्त गुणा हीन है। उससे मायाका उन्कृत्व अनुभागवन्य विशेष हीन है। उससे क्रोधका उन्कृष्ट अनुभागवन्य विशेष हीन है। उससे मानका उन्ह्रष्ट अनुभागवन्य विशेष हीन है। उससे अप्रत्याख्यानावरण लोमका उत्कृष्ट ऋनुभागबन्ध ऋनन्तगुणाहीन हैं। उससे भाषाका उत्कृष्ट ऋनुभागवन्ध विशेष दीन है। **उससे** कोचका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन हैं। उससे सानका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशेष हीन है। उससे नपुंसकवेदका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अनन्तगुगा हीन है उससे अरितका उत्कृष्ट अनभागवन्ध अनन्तगुणा हीन हैं। उससे शाकका उत्कृष्ट अनुभागवन्य अनन्तगुणा हीन है। उससे भयका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अनन्तगृणा हीन है । उससे जुगृप्नाका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अनन्तगुणा हीन है। उससे स्वीवदका उत्स्य अनुमागवन्य अनन्तगुणा हीन है। उससे पुरुप-वेदका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अनन्तगुणा हीन है। उससे गतका उन्कृष्ट अनुभागवन्ध अनन्त-गुणा हीन हैं। उससे हास्यका ःकृष्ट अनुभागवन्य अनन्त्गुणा हीन हैं।

शंका-यह तो उत्कृष्ट अनुभागवन्यका अन्पवहुत्व है। यह अन्प बहुत्व उत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्मका कैसे हो सकता है ?

समाधान ईक्यों नहीं हो सकता ? जैसे बन्धावलीसे वाह्य कमेकि स्थितियाँ परस्परके

होदु णाम संक्रमेण वंधाविल्यादिक तिहिदीणं सिरसत्तं णाणुभागस्स सगवज्भमाणाणु-भागसक्त्रेण संक्रामिज्जमाणपदेसाणुभागाणं परिणामुवलंभादो । वंधाणुसारी श्रणु-भागसंतकम्मो त्ति कुदो णव्वदे ? जहा उक्कम्सवंथी तहा उक्कस्साणुभागअप्पावहुत्र्यं णेदव्वमिदि चुण्णिसुत्तादो । वंधप्पावहुत्र्यादो एदस्स अप्पावहुअस्स विसेसपक्ष्वणद्व-मुत्तरसुत्तं भणदि ।

णविर सव्वपच्छा सम्मामिच्छ्त्तमण्तगुणहीणः ।

४३०. सन्वपच्छा वंधुकस्साणुभागसन्वप्पावहुण्हितो पच्छा हस्मुकस्साणुभागादो सम्मामिच्छनुकस्साणुभागो अणंतगुणहीणो ति वत्तन्वं। कुदो ? सम्मामिच्छनुकस्साणुभागसंतकम्मं दारुसमाणपदयाणमणंतिमभागे अविहदं हम्मुकस्साणुभाग-वंधो पुण सेलसमाणपदएसु अविहदो तेण हम्मुकस्साणुभागादो सम्मामिच्छनुकस्साणुभागो अणंतगुणहीणो। वंधे सम्मामिच्छन्तप्यावहुत्रं किण्ण कयं ? ण, संतपयडीए वंधिम्म अहियाराभावादो।

संक्रमण्से समान हो जाती है वैसे ही वन्यवलीसे बाद्य अनुसाग भी परम्परके संक्रमण्से समान हो जाता है। यदि कहा जाय कि संक्रमण्से बन्धावलीसे बाद्य स्थितियाँ भले ही समान हो जाओ, किन्तु अनुभाग समान कैसे हो सकता है; सो यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि संक्रमको प्राप्त होनेवाले प्रदेशों का अनुभाग, बॅधनेवाले अपने कर्मों के अनुभागन पसे परिण्मन करता हुआ उपलब्ध होता है। तात्पर्य यह है कि विविक्षत कर्मका बन्ध होते समय बन्धाविल बाह्य विविद्यंत कर्मका द्रव्य संक्रमण् करता है. इसिलए उसमें अनुभागसंक्रमण् भी हो जाता है, इसमें कोई बाधा नहीं है।

शंका—अनुभागमत्कर्म अनुभागदन्यके अनुसार हो रोता है यह किसप्रवास्ते जाना ? समाधान—जैसे उन्कृष्ट अनुभागवाधका जन्य वहुन्व है वैसे ही उन्कृष्ट अनुभाग-सत्कर्मका, अन्पबहुन्व जानना चाहिए इस चूर्णि सूत्रसे जाना।

उत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्पबहु वसे इस अन्पबहुत्वका अन्तर वतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं —

* किन्तु सबसे ब्रान्तिम अनुभागसे सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग
 अनन्तगुणा हीन है।

् ४३०. सवपरचात् अथात् उन्हृष्ट अनुभागवन्धके सत्र अन्ववहुन्वामे अन्तिम हास्यक उन्हृष्ट अनुभागसे सम्यमिध्यात्वका उन्हृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा हीन है एसा कहना चाहिये, क्योंकि सम्यम्भिध्यात्वका उन्हृष्ट अनुभागसत्कर्म वाक समान स्पर्धकोके अनन्तवभाग मे अवस्थित है और हास्यका उन्हृष्ट अनुभागवन्ध शैल समान स्पर्धकोके अवस्थित है अतः हास्यके उन्हृष्ट अनुभागसे सम्यग्मिध्यात्वका उन्हृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।

शंका -वन्ध प्रकरणमें सम्यरिमध्यात्वका अरुपबहुत्व त्यों नहीं कहा ?

समाधान - नहीं कहा वयोकि मन्त्र प्रकृतिका बन्धमे छि कार नहीं है। छर्थात् सम्य-ग्मिथ्यात्व प्रकृतिका बन्ध नहीं होता किन्तु वह सन्त्र प्रकृति है, छतः उसका व धमें कथन नहीं किया।

🕸 सम्मत्तमणंतगुणहीणं।

ं ४२१. कुदो ? सम्मामिच्छत्त जहण्णाणुभागफद्दयादो हंटा अणंतगुणहीणं होदूण सम्मत्तुकस्सफद्दयस्स अवट्टाणादो । जथा ओघप्पाबहुऋं परूविदं तहा चदुस्र वि गदीमु णेयव्वं, विसेसाभावादो । एत्रमुविर जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

🏶 जहरूणाणुभागसंतकम्मंसियदंडम्रो ।

४३२. जहण्णाणुभागसंतकम्मंसियजीवाणमणुभागमस्सिद्ण अप्पाबहुत्र-दंडओ कीरदि ति भणिदं होदि ।

🕸 सव्वमंदाणुभागं लोभसंजलणस्स अणुभागसंतक्रमां।

४२२. कुदा ? कोधिकिहिवेद्यपहमसमयप्पहुडि अणंतगुणहीणाए संहीए अणुसमयमोवहणघादमुवणिमय पुणो सुहुमसांपरायचरिमसमए सुहुमिकिहिसरूवाणु-भागम्मि जहण्णतुवलंभादो ।

🕸 मायासंजलएस्स ऋणुभागसंतकम्ममणंतगुणं।

४३४, कुदो ? मायावेदगचरिमसमयम्मि वद्धस्म मायावेदगतिदयबादर-संगहिकिट्टिमरूवस्म णवगवंधस्स गहणादो । लोभवादरितिण्णसंगहिकट्टीहितो अणंत-

* सम्यक्त्वका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।

§ ४३४ क्यों कि सम्यागिक्यात्व । जयन्य छानुमान मर्घकों से नीचे छानन्तगुणे हीन होकर सम्यक्त्वके उन्कृष्ट छानुमानमर्थक छ्वास्थित हैं। छाथन सम्यक्त्वके उन्कृष्ट छानुमानमर्थक छावस्थित हैं। छाथन सम्यक्त्वके उन्कृष्ट छानुभाग मन्धिक सम्यागिक हो छोर वह भी छानन्त गुणे हीन हा कर छात: उसका उन्कृष्ट छानुभाग सम्यागिक्यात्वके उन्कृष्ट छानुभागसे छानन्त गुणे। हीन है। जैसे छो। यसे छान्यबहुत्व कहा है हैसे ही छादेशसे भी चारों ही गतियों में जानना चाहिये, दानोमे कोई विशेषता नहा है। इस प्रकार जानकर छागे छानाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

अ जघन्य अनुभागसन्कर्मवाले जीवोंके आश्रयसं दण्डक कहते हैं।

े ४३२. जबन्य अनुसानसन्दर्भवाले जीयोके अनुसानका आश्रय लेकर अस्पबहुत्व-दण्डकका कथन कहते हैं. ऐसा इस सूत्रका जासप्राय है।

🕸 लोभ संज्यलनका अनुभागसत्कर्म सबसे मन्द अनुभागवाला है।

ः ४३३. ज्याकि काषकृष्टिके वेदकके प्रथम समयसे लेकर प्रति समय अनन्तगुण हीन श्रेणि रूपसे अववर्तन घातको प्राप्त होकर सूक्ष्म साम्परायके अन्तिम समयमे सूक्ष्म कृष्टिरूप अनुभागके रहते हुए जघन्यपना पाया जाता है, अतः वह सबसे मन्द है।

अससे संज्वलनमायाका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है ।

§ ४३४. क्योंकि यहाँ पर माया दिक कालके अन्तिम समयमे बांधा गया जो नवक
समयप्रवद्ध है जो कि माया वेदककी तीसरी बादर संग्रहकृष्टि स्वरूप है उसका यहण किया है।
क्योंकि माया दिक कालके अन्तिम समयमे बद्ध नवक समयप्रवद्धका अनुभाग लोभ कषाय की
तीनो बादर संगृह कृष्टियोंसे अनन्तरगुणा है और लोभकी उन तीनों बादर संग्रह कृष्टियोंसे

गुणो मायावेदगचरिमसमयणवकवंघाणुभागो तेहिंतो अणंतगुणहीणलोभसुहुमिकिटिं पेक्सिवरूण णिच्छएर्गो अणंतगुणो ति घेत्तव्वं ।

अ माणसंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं।

§ ४३५. कुदो ? तिद्यमाणसंगहिकिट्टिवेदगचरिमसमयिम बद्धणवकवंधिमम माणसंजलणाणुभागस्य जहण्णत्तवभुवगमादो । मायायंजलणजहण्णाणुभागादो माण-संजलणजहण्णाणुभागस्य त्र्यणंतगुणतं कुदो णव्वदे ? किट्टीणमप्पावहुआदो । तं जहा-सव्वत्थोवो मायासंजलणचरिमसमयणवकवंधाणुभागो । मायाण् तिद्यविद्यपदमसंगह-किट्टीणमणुभागो जहाकमेण अणंतगुणो । मायावेदगपदमसंगहिकिट्टिअणुभागादो माण-णवकवंधाणुभागो अणंतगुणो ति ।

🕸 कोधसंजलणस्स श्रणुभागसंतकम्ममण्तगण्ं।

४३६. कुटो १ चरिमसमयकोधत्रेदगेण बद्धाणुभागस्स गहणादो । एत्थ वि अणंतगुणतं पुत्वं व किट्टीणमप्पावहुआदो साहेयव्वं ।

🏶 सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्ममणंतगुणं ।

लोभ की सूक्ष्मर्ह्याष्ट्र अनन्त गुणी हीन है। अतः लोभ कपायके सूक्ष्म ऋष्टिह्रप जवन्य अनुमागसे संज्वलन सावाका जवन्य अनुमागम कर्म नियमसे अनन्तगुणा है ऐसा यहाँ समकना चाहिये।

अ उससे संज्वलन मानका अनुभागसन्कर्म अनन्तगुणा है ।

, ४३५. क्योंकि भान कपाय की तीसरी संब्रह् क्राप्टिके देवक कालके ऋन्तिम समयमे बद्ध नवक समय प्रवद्धमें जो ऋनुभाग है उसे जवन्य भाना गया है।

शंका-माया संज्वलनके जघन्य ब्रमुभागसे मान सञ्जलनका जघन्य ब्रमुभाग ब्रमन्त गुणा है यह किस प्रमाणसे जाना १

समायान-कृष्टियोकं अलप चहुत्वसे जाना । खुलामा इस प्रकार है--अन्तिम समयमें भाया संज्वलनका जो नवक बन्ध होता है, उसका अनुभाग सबसे थोड़ा है । उससे भाया की तीसरी. दूसरी और पहली सप्रह ्ष्टियोका अनुभाग कमशाः अनन्त गुणा है । और भायाके वेदक कालकी प्रथम संप्रह कुष्टिके अनुभागसे मान कपायके नवकवन्धका अनुभाग अनन्त गणा है ।

अ उससे संज्यलन क्रोधका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है ।

्र ४३६ क्योंकि काथका चेदन करनेपाले क्षापक के द्वारा अन्तिम समयमे जो अनुभाग-बन्ध किया जाता है उनका यहाँ प्रहम् किया जाता है। यहाँ परमी पहलेकी तरह कृष्टियों के अल्पबहु वसे अनन्तगुम्मव्य साथ लेना चाहिये। अर्थान हैं में पहले मायासञ्जलनके जघन्य अनु-भागसे मानसंज्वलनके जघन्य अनुभागको अनन्तगुम्मा सिद्ध किया है वैसेही यहाँ परभी सिद्ध करना चाहिए।

अससे सम्यक्तका जचन्य अनुभागसत्कर्म अनन्त गुणा है ।

१. ता प्रतो णिच्छएण ऋणतगुणहीयो चि इति पाठः।

\$ ४३७. कुदो ? कोधवादरिकिष्टिणवकवंधाणुभागं पेविखद्ण सम्मत्तजहण्णाणुभागस्स फद्दयगद्स्स अणंतगुणतं पिड विरोहाभावादो । अणंतगुणहीणकमेण अंतोमुहुत्तकालमणुसमयमोवट्टणाए पत्त्वादो सम्मत्ताणुभागो सगजहण्णफद्दयादो किट्टीणमणुभागो व्व हेद्दा णिवद्दि दारुसमाणस्सणंतिमभागे लदासमाणफद्दण्सु च छ्द्दाणाणमभावादो । ण च छ्द्दाणेहि विगा अणंतगुणहाणीए घादिज्जमाणाणुभागो फद्दयभावं
पिडविज्जदि, विरोहादो ति ? ण एम दोसो, तत्थ वि अणेयाणं छ्द्दाणाणं संभवादो ।
सम्मत्तस्स वंधाभावे कथं तत्थ छ्द्दाणाणं संभवो ? ण, मिच्छत्तकम्मक्तंधाणं विसोहिवसेण घादं पाविद्णा अणंतगुणाहीणाणुभागेणा पिरणामिय सम्मत्तकम्मभावमुवणामणाकाले चेव तेण सरूवेण अवदाणादो । किंच ण देसघादिफद्दयाणुभागो अणुसमयआवट्टणाए घादिज्जमाणो सगजहण्णाफद्द्यादो हेद्दा णिवद्दि, चारित्तमोहक्तव्वणाए
चदुसंजल्णापच्चगवंधोदयाणमणुसमयओवट्टणाए घादिज्जमाणाणं पि किट्टितपसंगादो ।
ण च एवं तहाणुवलंभादो ।

🕸 पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागो ऋणंतग्णो।

§ ४३=. खवगसेढीए अपुव्वकरणापढममम्पर्णसृढि अणंतगुगाहीगाकमेगा

शंका - जैसे प्रतिसमय अनन्तगुणं ीन कमसे होनेवाले अपवर्तन घानके द्वारा कृष्टियोंका अनुभाग उत्तरोत्तर होन होकर नीचे गिरता है वैसेही अन्तर्भुहूर्त कालतक अनन्तगुणे हीन कमसे प्रति समय अपवर्तनाके द्वारा घानका प्राप्त होने पर सम्यक्तवका अनुभाग अपने जघन्य स्पर्धकसे नीचे गिर जाता है अर्थात् उससे भी कम हो जाता है दार समानके अनन्तवें भागमें तथा लता समान स्पर्धकामे पदम्थान नहीं होते है और पद्म्थानोंके बिना अनन्तगुण हानिके द्वारा घाता हुआ अनुभाग स्पर्धक अपनेकों नहीं शाप्त हो सकता. क्योंकि ऐसा होनेमें विरोध है।

समाधान-यह टोप ठीक नहीं है क्योंकि सम्यक्त्वके अनुमागमें भी अनेक पट्स्थानों का होना संभव है

शंका—जब सम्यक्त्व प्रकृतिका बन्ध ही नहीं होता तो उसमें पट्स्थान केसे हो सकते हैं।

समाधान—नहीं मिथ्यात्वके कर्मस्कन्ध विशुद्ध परिणामों के वशसे घाने जाकर अनि तगुणे
हीन अनुभागरूपसे परिणामन करके जिस समय सम्यक्त्वकर्भपनेको प्राप्त होते हैं उसी समय
वे पट्स्थानरूपसे अवस्थित रहते हैं। दृसरे, देशघानीस्पर्धकोका अनुभाग प्रति समय अपवर्तनाके
द्वारा घाता जाकर अपने जघन्य मार्थकसे नीचे नहीं जाता। यदि ऐसा हो तो चारित्रमोहकी
चप्रणामें चारो संज्वलकपायोके नवक बन्ध और उद्यके भी प्रतिसमय अपवर्तनाके द्वारा घाते
जाकर कृष्टि रूपताको प्राप्त होनेका प्रसंग उपस्थित होगा। किन्तु ऐसा नहीं है, क्यांकि वैसा
पाया नहीं जाता है।

* पुरुपवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । ४३८. क्रोका -क्षपकश्रेणिमे अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अनन्तगुणे हीन कमसे हाइद्ण गदसवेदिचरिमसमय पुरिमवेदणावकवंधो कथं सम्मत्त जहण्णाणुभागादो अणंत-गुणो १ ण, पुरिसवेदणावकवंधस्स अणुसमयओवष्टणाकालादो सम्मत्त अणुसमय-ओवष्टणाकालस्स संखेळगुणातादो ।

🕸 इत्थिवेदस्स जहरणाणुभागो ऋणंतग्णो।

४२६. कुदो ? पुरिसनेदस्स जहण्णाणुभागेण निसईकयसमयं पेक्खिर्ण हेटा अंतोमुहुत्तमोसिर्य हिद्इत्थिवंदुद्याणुभागगहणादो । तं जहा,चिरमसमयसवेदेण बद्धपुरिसनेदाणुभागो थोनो । तत्थेन तस्येन वेदम्स उद्याणुभागो अणंतगुणो । तत्तो दुचिरमनंथो अणंतगुणो । तत्थेन तदुन्नो अणंतगुणो । तत्तो तिचिर्मतन्वंथो अणंतगुणो । तत्थेन उद्मो अणंतगुणो । एदेण कमेण हेटा गंतृण इत्थिनेदजहण्णाणुभागेण निसयीकयसमण् पुरिसनेदोदण्ण खनगसेति चिद्दम्स पचग्गनंथो उनिरमतदुद्यादो अणंतगुणो । तत्था चिप्पत्रमनेदोदण्ण खनगसेति चिद्दम्स पचग्गनंथो उनिरमतदुद्यादो अणंतगुणो । तत्था इत्थिनेदोदण्ण खनगसेति चिद्दम्स चरिमसमयउद्भो अणंतगुणो, मुम्मुरिग्गसमाणतादो । तेण पुरिसनेदे चिद्दम्स चरिमसमयउद्भो अणंतगुणो, सुम्मुरिग्गसमाणतादो । तेण पुरिसनेदे जहण्णाणुभागादो इत्थिनेद जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ति सिद्धं ।

कम करके सबेद भागके अन्तिम लभयमे पुरुषबेदका जो नवकवन्य प्राप्त होता है वह सम्यक्त्वके जघन्य अनुमागसे अन तमुणा कैसे हा सकता है ? अर्थात् पुरुषबेदका वन्ध अपूर्वकरणगुण स्थानके पहले समयसे ही अतन्तगुण हीन अनन्तगुण हीन अनुमागको लेकर होता है तब सबेदभागके अन्तिम समयमे उसका जा नवकवन्य हाता है वह सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसे अनन्तगुणा कैसे है।

समाधान-नहीं, क्योंकि पुरुषोदके नक्कबन्धका प्रति समय व्यावर्तन धात होनेका जितना काल है उससे सम्यात्वके प्रति समय व्यावर्तन धात होनेका काल सख्यातगुणा है। व्यतः सम्यक्तके जवस्य व्यतुमागसे पुरुषोदका जधस्य व्यतुमाग व्यनन्तगुणा है।

अससे स्त्रीवंदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

\$ १३९९ क्यों कि जिस्स समयमे पुरुष देका जवन्य अनुभाग होता है उससे पीछे एक अन्त मृहूर्त जाकर उद्य प्राप्त स्विवेदका जो अनुभाग पाया जाता है उस अनुभागका यहाँ पर प्रह्ण किया है। खुलासा इस प्रकार है—संदी जीवके द्वारा अन्तिम समयम पुरुष वेदका जो अनुभाग वॅथना है वह थोड़ा है। ससे वहां पर पुरुष वेदका जो अनुभाग उदयमें आता है वह अनन्त गृणा है। उससे विचरम समयमे जो अनुभाग वॅथना है वह अनन्त गृणा है। उससे विचरम समयमें होनेवाला पुरुष वेदका जो अनुभाग उदयमें आता है वह अनन्त गृणा है। उससे विचरम समयमें होनेवाला पुरुष वेदका अनुभाग वेदमें अनन्त गुणा है। उससे वहां पर उदयागत अनुभाग अनन्त गुणा है। इस कमसे पीछे जाकर, जिस समयमें स्विवेदका जवन्य अनुभाग होता है उस समयमें पुरुष वेदके उदयसे चाक श्रेण चढ़ने याले जीवके जो नवीन अनुभागवन्थ होता है वह उससे अगले समयमें उदयागत पुरुष वेदके अनुभागसे अनन्त गुणा है। उससे क्यों कि स्वीवेदका जवन्त गुणा है। उससे स्विवेदका जवन्त गुणा है। उससे होनेवाला पुरुष वेदका जवन्त गुणा है। उससे स्विवेदका उदय अनन्त गुणा है। उससे स्विवेदका जवन्त गुणा है। अतः पुरुष वेदके जवन्य अनुभागोदय अनन्त गुणा है। क्यों कि स्वीवेद कण्डे की अग्निके समान है। अतः पुरुष वेदके जवन्य अनुभागसे स्वीवेदका जवन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, यह सिद्ध हुआ।।

🏶 णवुं सयवेदस्स जहण्णाणभागो श्रणंतग्णा।

\$ ४४०. जत्थ इत्थिवदोदएण स्ववगसिदि चिढदस्स जहण्णाणुभागो इत्थिवदस्स जादो । जदि वि तत्थेव एखुंसयवदोदएण खवगसिदि चिढदस्स णबुंसयवदाणुभागो जहण्णो जादो तो वि अणतगुणो, इट्टाविग्यसमाणतादो । तं पि कुदो १ पयिड-विसेसादो ।

🏶 सम्मामिच्छत्तस्स जहराणाणुभागो ऋगंतगुणो ।

\$ ४४१. कुदो १ सन्वधादिवेद्दाणियत्तातो । ण्युंसयवेद्जहण्णाणुभागो जेण देसघादी एगद्वाणिओ तेण सन्वधादि-वेद्वाणियसम्मः मिच्छत्तजहण्णाणुभागो अणंत-सुणो ति भणिदं होदि ।

🏶 अणंताणुवधिमाणजहरणाणुभागो अणंतगुणो ।

५ ४४२. सम्मामिच्छत्तजहण्णाणुभागो व्य अणंताणुर्याधमाणाणुभागो सव्यघादी विद्वाणिओ संतो कथमणंतगुर्णा जादो ? उच्चदे—सम्मामिच्छत्तजहण्णपदयप्पहुढि अणंता-णुर्वधीणं पदयरचणा अविद्वा, सव्यघादित्तादो । तेण पदमसमयसंजुत्तस्स जहण्णाणु-भागवंधपदयाणं रचणा वि सम्मामिच्छत्तजहण्णाणुभागपदयप्पदृढि होदि । होती वि

🕸 उससे नपुंसकवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

१४४० जिस स्थानमें स्त्रीवंदके उदयसे चपक श्रेणि चढ़नेवाले जीवके स्त्रांबंदका जघन्य अनुभाग होता है. यद्यपि उसी स्थानमें नपुंसकवेदके उदयमें चपकश्रेणि चढ़नेवाले जीवके नपुंसक वंदका जघन्य अनुभाग होता है। फिर भी स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागसे नपुसकवदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है. क्यांकि नपुसकवद इष्ट पत्कवी व्यक्तिके सभाग हाता है।

शंका-नपुंसकवेद इष्ट पाककी अध्यक्ते समान क्यो हाता है ?

समाधान-क्योंकि वह एक विशेष प्रश्ति है।

* उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग अनन्त गुणा है ।

, 8 88८ क्योंकि वह सर्ववाती खोर दिस्थानिक होता है। तान्वर्य यह है कि नपुंसकवद का जघन्य अनुभाग देशवाती खोर एकस्थानिक है, खौर सम्यामिक्यात्वका जघन्य अनुभाग सर्वधाती खौर दिस्थानिक है, अतः वह उससे अनन्तगुरा है।

🕸 उससे अनन्तानुवन्धिमानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

१४४२. शंका-सम्यग्निध्यात्वके जघन्य अनुमान की तरह सर्वघाती ख्रीर दिम्थानिक होता हुआ भी अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा कैसे हैं ?

समाधान-सम्यग्मिण्यात्वके जघन्य स्पर्धकसे लेकर अनन्तानुबन्धी कपायोकी स्पर्धक रचना अवस्थित है, क्योंकि वह सर्वघानी है। अतः अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होनेके प्रथम समयमे नघन्य अनुभागबन्धके स्पर्धकोकी रचना भी सम्यग्मिण्यात्वके जघन्य अनुभागस्पर्धकसे प्रारम्भ होती है। इस प्रकार प्रारम्भ होकर भी अनन्तानुबन्धी कपायोके जघन्य अनुभाग मिच्छत्तजहण्णफद्दयादो उवरिमणंताणि फद्दयाणि गंतूणाणंताणुवंधीणं जहण्णाणुभागहाणस्स फद्दयरयणा परिसमप्पदि। कुदो एदं णव्वदे? उवरिमञ्चादेसप्पाबहुअसुत्तादो।
सम्मामिच्छत्तज्वकस्साणुभागो पुण मिच्छत्तजहण्णफद्दयाणुभागादो अणंतगुणहीणो; तत्तो
हेहिमज्ववंकावहाणादो। सम्मामिच्छत्तजहण्णाणुभागो पुणो सगुक्कस्साणुभागादो अणंतगुणहीणो, संखे ज्ञेस अणंतगुणहाणिकंडएस पदिदेस पत्तजहण्णभावादो । तदो सम्मामिच्छत्तजहण्णाणुभागादो अणंताणुवंधिमाणजहण्णाणुभागो अणंतगुणो ति सिद्ध।

- 🏶 कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिस्रो।
- § ४४३. केत्तियमेत्रेण १ अर्णातफद्दयमेत्रेण । सेसं सुगमं ।
- 🕸 मायाए जहएणाणुभागो विसेसाहिस्रो।
- § ४४४. केत्तियमेत्तो विसेसो ? अणंतफइयमेत्तो ।
- 🏶 लोभस्स जहण्णश्रो अणुभागो विसेसाहिश्रो।
- § ४४५, केत्रियमेनो विसेसो ? अणंतफद्दयमेनो । कुदो ? साभावियादो ।

स्थानके स्पर्धकोंकी रचना मिश्यात्वके जघन्य स्पर्धकसे ऊपर श्रानन्त स्पर्धक जाकर समाप्त हाती है।

शंका - यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान-त्रागे त्रादेश की त्रपेक्षा त्रलपबहुत्वका प्रतिपादन करनेवाले सूत्रसे जाना।

सम्यग्गिथ्यात्वका स्टब्स्ट अनुभाग ता मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागस्पर्धकसे अनन्तगुणा हीन है, क्योंकि वह उससे अधस्तन उर्बङ्कमे अवस्थित है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग अपने उट्कस्ट अनुभागसे अनन्तगुणा हीन है, क्योंकि सख्यात अनन्तगुणहानि काण्डकों के हानेपर उसे जघन्यपना प्राप्त होता है। अर्थात् उट्कप्ट अनुभागमें जब संख्यात अनन्तगुण हानि काण्डक होते है तब वह उट्कप्ट अनुभाग जघन्यपनेको प्राप्त होता है अत: उससे वह अनन्तगुण हीन है। अत: सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्त गुणा है यह सिद्ध हुआ।

* उससे अनन्तानुवन्धी क्रोधका जघन्य अनुभाग विशोष अधिक है।

समाधान-अनन्त स्पर्धकमात्र अधिक है।

शंव सुगम है।

* उससे अनन्तानुबन्धि मायाका जधन्य अनुभाग विशेष अधिक है।

_३ ४४४ **शंका**–कितना ऋधिक है ।

समाधान-अनन्त स्पर्धकमात्र अधिक है।

लोभका जवन्य अनुभाग विशेष अधिक है।

९ ४४५ **शंका** - कितना विशेष अधिक है ?

समाधान-श्रनन्त स्पर्धकमात्र श्रिधक है ? क्योंकि ऐसा होना स्वाभाविक है।

१. भ्रा० प्रती पत्तजहरागामावादो इति पाठः ।

🟶 हस्सस्य जहण्णाणुभागो अणंतगुणो।

§ ४४६. कुदो १ पुन्विद्यस्स पच्चगवंधत्तादो । खवगसेढीए अणतगुणहाणिकमेण संखेळवारं पत्तधादहस्साणुभागादो अणंताणुवंधिलोभनहण्णाणुभागो कथमणंतगुणहीणो १ ण, हस्सस्स अणंतगुणहाणिवारेहितो अणंताणुवंधिलोभाणुभागवंधस्स
अणंतगुणहाणिवाराणमसंखेळगुणतादो । तं जहा—मुहुमअणंताणुवंधिलोभसव्वजहण्णाणुभागवंधादो तप्पाओग्गविमुद्धवादरेइदियस्स अणंताणुवंधिलोभजहण्णाणुभागवंधो
पढमसमइश्रो अणंतगुणहीणो । विदियसमए तस्सेव जहण्णाणुभागवंधो तत्तो अणंतगुणहीणो । एवं णेदव्वं जाव उविर अंतोमुहुत्तं गंतूण हिदसव्विविमुद्धवादरेइदियचित्मसमयजकस्सिविसोहीए बद्धलोभजहण्णाणुभागवंधो ति । तत्तो तप्पाओग्गविमुद्धवेइंदियजहण्णाणुभागवंधो अणंतगुणहीणो । एवं विदियसमयप्पहुि अंतोमुहुत्तकालमणंतगुणहीणाए सेढीए णेदव्वं जाव सव्विवमुद्धवेइंदिएण बद्धजहण्णाणुभागवंधो ति । एवं
तेइदिय-चर्डिदिय-असण्णिपंचिदिएसु पादेकमंतोमुहुत्तकालमणंतगुणहीणाए सेढीए

इससे हास्यका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

रू ४४६. क्योंकि अनन्तानुबन्धी लोभका नवीन अनुभागबन्ध है इसलिए उसका हास्यसे जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

शंका-त्तपक श्रेणीमें श्रनन्तगुणहानिक्रमसे संख्यानबार घातको प्राप्त हुए हास्यके श्रनु-भागसे श्रनन्तानुबन्धी लोभका जघन्य श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन कैसे है ?

समाधान -नहीं, क्योंकि हास्यमें जितनीबार अनन्तगुगाहानि हाती है उन बारोसे अन-न्तानुबन्धी लोभके अनुभागबन्धमें अनन्तगुणहानि होनेके बार असंख्यातगुणे हैं। खुलासा इस प्रकार हं-सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके अनन्तानुबन्धी लोभका जो सबसे जघन्य अनुभागवन्ध होता है उससे अपने योग्य विशुद्ध परिणामवाले बादर एकेन्द्रियके प्रथम समयम अनन्तानुबन्धी लाभका जो जघन्य अनुभागबन्ध होता है वह अनन्तगुणा हीन है। दूसरे समयमे उसी बादर एविद्रिय जीवके जो जघन्य श्रनुभागवन्ध होता है वह प्रथम समयम हानेवाले श्रनुभागवन्धसे श्रनन्त-गुणा हीन है। इस प्रकार इस कमसे ऊपर एक एक समय बढ़ाते बढ़ाते अन्तर्मुहूर्त प्रमाण समय बिताकर स्थित हुए सबसे विशुद्ध बादर एकेन्द्रियके अन्तिम समयमे होनेवाली उत्कृष्ट विशुद्धिसे बाँधे गये लोभके जघन्य श्रनुभागबन्ध पर्यन्त ले जाना चाहिये। सबसे विशुद्ध बाद्र एकेन्द्रियके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट विशुद्धिसे लोभका जो जघन्य अनुभागबन्ध होता है उससे अपने योग्य विशुद्ध परिणामी दो इन्द्रिय जीवके प्रथम समयमें होनेवाला जवन्य श्रनुभागबन्ध श्रनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार दूसरे समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण समय विताकर स्थित हुए सबसे विशुद्ध दो इन्द्रिय जीवके द्वारा बाँधे गये जघन्य अनुभागबन्ध पर्यन्त अनन्तगृणी हीन श्रेणिरूप से ले जाना चाहिये। त्रार्थात् उक्त प्रकारके दो इन्द्रियके प्रथम समयमें होनेवाले जघन्य अनुभाग-बन्धसे दूसरे समयमें होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तग्णा हीन है। उससे तीसरे समय में होनेवाला जघन्य श्रनुभागबन्ध श्रनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार श्रागे भी श्रन्तिम समय पर्यन्त जानना चाहिए। इस प्रकार तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय ख्रौर श्रसंक्षिपश्चेन्द्रियोमेसे प्रत्येकमें

१. ता॰ प्रती कुदो इति पाठो नास्ति । २. घा॰ प्रती मर्यातगुया एवं इति पाठः । ३. घा॰ प्रती मर्यातगुयाए सेवीए इति पाठः ।

अणुसंधिय णेद्व्वं जाव असण्णिपंचिद्वियसव्युक्कस्सविसोहीए वद्धजहण्णाणुभागवंधो ति। पुणो ग्रसण्णिपंचिद्वियचित्रमिविसोहीए वद्धजहण्णाणुभागवंधादो तत्पाओग्गविसुद्ध-सिण्णिपंचिद्विएण पढमसमयसंजुनेण बद्धजहण्णाणुभागो अण्तंतगुणहीणो ति। एदासि पंचएहमद्धाणं जित्या समया तित्तया चेव जेण अणंतगुणहाणिवारा तेण तत्तो असंखेज्ज-गुणतं सिद्धं। हस्साणुभागस्स श्रंतरकरणे कदं पच्छा सुहुमणिगोदजहण्णाणुभागेण सिरसत्तमुवगयस्स अणंतगुणहाणिवारा असंखेज्जा किएणा होति?ण, हस्साणुभागसंतस्स अणुसमश्चोवहणाए श्रभावादो। ण च कंडयघादेण समुत्पण्णअणंतगुणहाणीणं वारा असंखेज्जा अत्थि, खवगसेढिअद्धाए असंखेज्जअणुभागकंडयउक्कीरणद्धाणमभावादो।

- 🕸 रदीए जहरणाणुभागो ऋणंतग्णो।
- § ४४७. कुदो ? पयडिविसेसेण संसारावत्थाए अणंतगुणक्रमेण अवहाणादो ।
- 🕸 दुगुंद्धाएं जहरापाणुभागो अणंतग्यो।
- § ४४८. कुदो १ पयडिविसेसादो ।
- 🏶 भयस्स जहण्णाणुभागो ऋणंतग्यो।
- § ४४६. सुगमं।

प्रथम समयसे लगाकर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त, अनन्तगुणहीन गुणश्रेणि क्रमसे होनेवाले जघन्य अनुभागवन्धको असंज्ञी पश्चेन्द्रियके सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिसे वाध गये जघन्य अनुभागवन्ध पर्यन्त ले जाना चाहिये। पुनः असंज्ञी पश्चेन्द्रियके अन्तिम विशुद्धिसे वाध गये जघन्य अनुभाग-वन्धसे तत्प्रायाग्य विशुद्ध परिणामवाले संज्ञी पश्चेन्द्रियके द्वारा सयुक्त होनेके प्रथम समयमे बांधा गया जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा हीन होता है। एकेन्द्रियसे लेकर पश्चेन्द्रिय पर्यन्त इन पाँचों अन्तर्मृहूर्तोंके जितने समय होते हैं यतः उतने ही अनन्तगुणहानिके वार है अतः हास्यकी अनन्तगुणहानिके बारोंसे अनन्तानुबन्धी लाभके जघन्य अनुमागवन्यका अनन्तगुणहानिके बारोंसे अनन्तानुबन्धी लाभके जघन्य अनुमागवन्यका अनन्तगुणहानिके बारोंसे अनन्तगुणहानिके बार असंख्यातगुणे हैं यह सिद्ध हुआ।

श्का-हास्यके अनुभागका अन्तरकरण करने पर पाँछे वह अनुभाग सूक्ष्म निगोदिया जीवके जधन्य अनुभागके समान हो जाता है, अतः उसकी अनन्तगुण्हानिक बार असंख्यात क्यों नहीं होते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि हास्यके अनुभागसत्कर्मका प्रति समय अपवर्तनघात नहीं होता है। और काण्डकघातसे उत्पन्न अनन्तगुणहानिके बार असंख्यात हो नहीं सकते. क्यांकि चपक-श्रेणिके कालमे असंख्यात अनुभागकाण्डकोंके उत्कीरणकालका अभाव है।

*** उससे रतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।**

४४७. क्योंकि प्रकृति विशेष होनेके कारण संसार अवस्थामे रितकर्म अनन्तगुणरूपसे अवस्थित है।

- उससे जुगुप्साका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।
- § ४४८. क्योंकि जुगुप्सा भी एक प्रकृति विशेष हैं।
- उससे भयका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।
- § ४४९, यह सूत्र सुगम है।

असोगस्स जहरणाणुभागो अर्णतगुणो । १४४०. सुगमं ।

🕸 अरदीए जहरुणागुभागो अर्णतगुणो।

् ४५१. एदेसि छण्णोकसायाणं जिंद वि एकम्मि चेव हाणे जहण्णमणुभाग-संतकम्मं जादं तो वि अण्णोण्णं पेविखळण अणंतगुणा जादा, पयिडिविसेसादो । मह-ल्लाणुभागाणं महल्ले अणुभागखंडए पदिदे वि अवसेसाणुभागो खवगसेढीए वि अणंतगुणकमेणेव चेहदि ति भणिदं होति ।

🏶 श्रपचक्खाणमाणस्स जहरूणाणुभागो श्रणंतगुणो।

४४२. कुदो ? सुहुमिणगादेसु पत्तजहण्णाणुभागतादो । खवगसेढीए अह-कसायागां जहण्णमामितं किण्ण दिण्णं ? श्रंतरकरणे अकदे चेव विणहत्तादो । श्रंतर-करणे कदे जाणि कम्माणि अच्छंति तेसिमणुभागसंतकम्मं सुहुमेइंदियसव्वजहण्णाणु-भागसंतकम्मादो अणांतगुणहीणं होदि, ण अण्णेसिमिदि भणिदं होदि ।

🏶 कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहित्रो ।

ऽ ४५३. केत्तियमंत्रेण ? अणंतफद्दयमेत्रेण।

* उससे शोकका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। १४५० यह सूत्र सुगम है।

अ उससे अर्तिका जवन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

े ४५१ यद्यपि इन छ नोकपायोका जघन्य अनुभागसत्कर्म एक ही स्थानपर हो जाता है तो भी एक दूसरेको देखते हुए अनन्तगुणा है, क्योंकि प्रत्येक प्रकृति भिन्न है। तात्पर्य यह है कि बड़े अनुभागोका बड़े छानुभाग काण्डकोमे चेपण कर देने पर भी वाकी बचा हुआ अनुभाग चपक श्रेणीमे भी अनन्तगुण स्वसं हा स्थित रहता है।

उससे अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

६ ४५२ क्योंकि सूक्ष्म निगादिया जीवोंमे उसका जघन्य श्रनुभाग पाया जाता है। श्रर्थात् छ नोकपायोका जघन्य श्रनुभाग क्षपकश्रेणीम पाया जाता है और श्रप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य श्रनुभाग सूक्ष्म निगादियाके पाया जाता है, अत: वह श्रनन्तगुणा है।

शंका-आठ कपायोका जघन्य स्वामित्व क्षपकश्रेणीमं क्यो नहीं दिया ?

समाधान-क्यों कि अन्तरकरण किये विना ही आठों कपाय नष्ट हो जाती हैं। तात्पर्य यह है कि अन्तरकरण करनेपर जो कर्म रहते है उनका अनुभागसत्कर्म सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके सबसे जयन्य अनुभागसत्कर्मसे अनन्तगुणा हीन है, अन्यका नहीं।

* उससे अपत्याच्यानावरण क्रोधका जधन्य अनुभाग विशेष अधिक है।

ु ४५३ शंका-कितना ऋधिक है ? समाधान-अनन्त स्पर्धकमात्र ऋधिक है ।

```
🛞 मायाए जहएणाणुभागो विसेसाहिचो।
```

६ ४५४. सुगमं । 🥫

🏶 लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहियो ।

🕫 ४५५. सुगमं ।

🕸 पचक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागो ऋणंतगुणो ।

ः ४५६. कुदो १ देससंजमघादिअपचक्खाणावरणाणुभागादो पचक्खाणावरणा-णुभागस्स अएांतगुणत्ताभावे तस्स देससंजमादो अणंतगुणसयलसंजमघाइताणुववत्तीदो ।

- 🕸 कोधस्स जहरुणाणुभागो विसेसाहिस्रो।
- ४४५७, केत्तियमेत्तेण १ अणंतफद्दयमेत्तेण ।
- # मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिको।
 १४५. सुगमं।
- 🟶 लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहियो।

🖇 ४५६. सुगमं ।

🏶 मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहियो।

१४६०, पञ्चक्खाणावरणाणुभागादो मिच्छत्ताणुभागेण समाणेण होदव्वं, सव्व

* उससे अमत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। ६ ४५४. यह सूत्र सुगम है।

अससे अमत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। १४५५. यह सूत्र सुगम है।

अ उससे प्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

६ ४५६. क्यां कि देशसयमके घानी अप्रत्याख्यानावरण कषायके अनुभागसे प्रत्याख्या-- नावरण कपायका अनुभाग यदि अनन्तगुणा न हो तो वह देशसयमसे अनन्तगुणे सकलसयमका घाती नहीं हो सकता है।

उससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है।

् ४५७ **शका**-कितना अधिक है ?

समाधान-अनन्त स्पर्धक मात्र अधिक है।

* उससे प्रत्याख्यानावरण मायाका जधन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५८ यह सूत्र मुगम है।

अससे प्रत्याख्यानाव्रण लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है।

§ ४।९. यह सूत्र सुगम है।

उससे मिध्यात्वका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

९ ४६०. **शंका**-मिध्यात्वका ऋनुभाग प्रत्याख्यानावरणके ऋनुभागके समान होना चाहिए,

ता० आ। प्रत्योः श्रणंतफद्यमेरोण इति स्थाने पयडिविसेसेग इति पाठः ।

दन्वपज्जयविसयसम्मत्त-संजमभदित्तणेण दोण्हं समाणतुवलंभादो ति १ ण एस दोसो, सित पडुच अणंतगुणत्तं पिंड विरोहाभावादो । कज्जदुवारेण दोण्हमणुभागाणं समाणत्ते संते सत्तीए सगकज्जमकुणंतीए अत्थितं कुदो णव्वदे १ पमेयादो सव्वपज्जयस्स अणंत-गुणतं व जिणवयणादो णव्वदे ।

- ® णिरयगईए जहण्णयमणुभागसतकम्मं।
- ६ ४६१. सुगममेदं, अहियारसँभात्तणहत्तादो । **अस्वमंदाणभागं सम्मत्त**ं।
- ः ४६२. कुदो ? अणुसमयमोवद्दणकुणंतुप्पण्णकदकरणिज्जचरिमसमयसम्म-त्ताणुभागस्य गुणसेढिचरिमणिसेगाविद्दस्स गहणादो ।

🕸 सम्मामिच्छत्तस्स जहरूणाणुभागो अर्णतगुर्खो ।

४६३. कुदो १ सन्वचादिविद्वाणियत्तादो । सम्मत्तनहण्णाणुभागो वि सन्व चादी विद्वाणियो ति णासंकणिज्ञं, तस्स देसघादिएगद्वाणियत्तादो । कथमेत्थ सम्मा मिच्बत्तुकस्साणुभागस्स नहण्णववएसो ति णासंकणिज्ञं, ववएसिवन्भावमस्सिज्ञण
 तस्स तन्ववएसोववतीदो ।

क्योंकि मिध्यात्व सव^रद्रव्य श्रौर पर्यायोंको विषय करनेवाले सम्यक्त्वका घातक है श्रौर प्रत्याख्यानावरण कपाय सब द्रव्य-पर्यायविषयक संयमका घातक है, श्रात: दोनोमें समानता पाई जाती है।

समाधान-यह दोष ठीक नहीं है क्योंकि शक्तिकी श्रपेत्ता प्रत्याख्यानावरएके श्रनुभागसे मिथ्यात्वके श्रनुभागके श्रनन्तगुरो होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका-कार्यकी श्रपंत्ता जब दोनो कर्मोंका श्रनुभाग समान है तो मिध्यात्वमे उस शक्तिका श्रस्तित्व कैसे जाना जा सकता है जो कि श्रपना कार्य ही नहीं करती है।

समाधान—जैसे जिनवचनसे पदार्थों से उनकी सब पर्यायों का श्रनन्तगुण्य जाना जाता है उसी प्रकार उसी जिनवचनसे यह भी जाना जाता है।

अ अब नरकगतिमें जघन्य अनुभागसत्कर्मको कहते हैं।

९ ४६१ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधिकार की सम्हाल करना इसका काय है।

😵 सम्यक्त्व प्रकृतिका जधन्य अनुभाग सबसे मृन्द है।

ह ४६२ क्योंकि यहाँ पर प्रति समय अपवर्तन घातके करनेसे कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टिके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वका जो अनुभाग उत्पन्न होता है अर्थात् शेष बचता है जो कि गुण श्रेणिके अन्तिम निपंकमें अवस्थित है, उसका ब्रह्ण किया है।

अससे सम्यग्मिध्यात्वका जधन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

६ ४६३. क्योंकि वह सर्वघाती और द्विस्थानिक है। सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग भी सर्वघाती और द्विस्थानिक है ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि वह देशघाती और एकस्थानिक है। चूर्णिसूत्रमें सम्यग्निध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य शब्दसे व्यपदेश क्यों किया ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि व्यपदेशिवद्वाव की अपेत्ता उत्कृष्टका जघन्य

🛞 त्रणंताणुबंधिमाणस्स जहण्णाणुभागो ऋणंतगुणो ।

४६४. सम्मामिच्छत्तुकस्सफद्दयाणुभागादो अणंतगुणो होद्णाविद्दिमिच्छत्त-जहण्णफद्दएण समाणं होद्ण पुणो उविर वि अणंतेसु फद्दएसु अणंताणुवंधिमाणाणु-भागस्स फद्दयरयणाए उवलंभादो । ण च संज्ञत्तपढमसमए बज्भमाणजहण्णाणुभागो । जहण्णेगफद्दयमेत्रो, असंखेज्जलोगमेत्तछ्दाणसहियस्स एगफद्दयत्तविरोहादो ।

- 🏶 कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिंद्यो।
- ५ ४६५. सुगमं।
- 🕸 मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिस्रो।
- ६ ४६६. सुगमं।
- 🏶 लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहियो ।
- 🖇 ४६७. सुगमं।
- क्षे सेसाणि जधा सम्मादिहीए बंधे तथा णेदव्वाणि ।
- § ४६ द्र. एदस्स अत्थो वुच्चदे, तं जहा—सम्मादिहित्रणुभागवंधस्स जहा

शब्दसे व्यपदेश हो सकता है अर्थान उत्कृष्टमे जघन्यपनेका आरोप करके उत्कृष्ट को जघन्य कह दिया है।

🕸 उससे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है।

६ ४६४. क्योंकि सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागस्पर्धकोंके अनुभागसे अनन्तगुणा होकर अवस्थित हुए मिध्यात्वके जवन्य स्पर्धकसे समान होकर पुनः आगे भी अनन्त स्पर्धकोंमें अनन्तानुवन्धी मानके अनुभागकी स्पर्धक रचना पाई जाती है, अतः सम्यग्मिध्यात्वके जवन्य अनुभागसे अनन्तानुवन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। शायद कहा जाय कि अनन्तानुवन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। शायद कहा जाय कि अनन्तानुवन्धीका पुनः संयोजन होनेके प्रथम समयमें वँधनेवाला जघन्य अनुभाग जघन्य एक स्पर्धकमात्र है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जो अनुभाग असंख्यात लोक मात्र पट्म्थान महित है उसके एक स्पर्धक मात्र होनेमें विरोध है।

- अनस्तानुबन्धी क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है।
 ४६५ यह सूत्र सुनम है।
- * उसमे अनन्तानुबन्धी मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। ऽ ४६६. यह सूत्र सुगम है।
- * उससे अनन्तानुबन्धी लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। १४६०. यह सूत्र सुगम है।
- * शेप कर्मोंका जैसे सम्यग्दृष्टिके वन्थमें अल्पबहुत्व है वैसे ही यहाँ भी जानना चाहिये।
 - § ४६८. इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि के अनुभागबन्धका

१. ता॰ प्रती जहरायाणुभागे (गो), श्रा॰ प्रती जहरायाणुभागेण इति पाठः ।

अप्पाबहुत्रं परूविदं तहा एत्थ वि परूवेयव्वं, अविसेसादो । संपिह वंधप्पावहुआदो थोवयरविसेसाणुविद्धं संतकम्ममप्पाहुअमेवमणुगंतव्वं। तं जहा—-अणंताणुवंधिलोभ-जहण्णाणुभागस्सुवरि हस्सजहण्णाणुभागो अणंतगुणो, असण्णिपच्छायदणेरइयहद-सम्रुप्पत्तियजहण्णाणुभागगगहणादो । रदीए जहण्णाणुभागो अर्णतगुणो । पुरिस० जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । इत्थि० जहएसारिएभागो अणंतगुणो । दुर्गुछा० ऋणंतगुणो । भय० अणंतगुणो । सोग० जह० अणंतगुणो । अरइ० जह० अणंतगुणो । णबुंसयचेदस्स जह० अणंतगुणो । अपचनस्वाणमाण० जह० अणंतगुणो । कोह० जहएए।।ग्रुभागो विसेसाहिओ । माया० जह० विसे०। लोभ० जह० विसे०। पचक्खाणमाण० जहरुए।।एपुभागो अणंतगुणी । कोह० जह० विसेसाहित्रो । माया० जह० विसे० । लोभ० जह० विसे ा माणसंजल्लण ॰ जहरूणाणुभागो अणंतग्रुणो । कोहसंजल ॰ जहरूणाणुभागो विसेसाहिओ । मायासंज० जह० विसे० । छोभसंज० जह० विसे० । मिच्छत्तजह-एलार्गुभागो अ्रणंतग्रुणो । एवं चुिएलासुत्तमस्सिद्ण जहएलार्गुभागस्स अप्पाबहुअ-परूवणं करिय संपिह उचारणमिससऊण परूवेमो ।

जिस प्रकार श्रह्पबहुत्व कहा है उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये, क्योकि दोनोमें कोई श्रन्तर नहीं है। फिर भी अनुभागबंधके अल्पबहुत्वसे थोड़ी सी विशेषताको लिये हुए अनुभागसन्कर्मका श्ररुपबहुत्व जानना चाहिये। यथा-श्रनन्तानुबन्धी लोभके जघन्य अनुभागके ऊपर हास्यका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, क्योंकि यहाँ असंज्ञी पञ्चिन्द्रियसं आकर उत्पन्न हुए नारकीकं हतसमुत्पत्तिक जघन्य श्रनुभागका प्रहर्ण किया है। उससे रतिका जघन्य श्रनुभाग श्रनन्तगुर्णा है। उससे पुरुषवेदका जघन्य ऋनुभाग अनन्तगुणा है। उससे स्त्रीवेदका जघन्य ऋनुभाग श्रनन्तगुरा। है। उससे जुगुप्साका जघन्य श्रानुभाग श्रनन्तगुरा। है। उससे भयका जघन्य श्रनुभाग श्रनन्तगुरा। है। उससे शोकका जघन्य श्रनुभाग श्रनन्तगुरा। है। उससे श्ररांतका जवन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे नपुंसकवेदका जवन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे श्रप्रत्याख्यानावरण् मानका जघन्य श्रनुभागं श्रनन्तगुणा है। उससे श्रप्रत्याख्यानावरण् कोधका जघन्य श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। उससे श्रप्रत्याख्यानावरण माया का जघन्य श्रनुभाग विशेष श्रिधिक है। उससे श्रप्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य श्रनुभाग विशेष श्रिधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य ऋनुभाग ऋनन्तगुणा है। उससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभाग विशेष श्रिधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य श्रनुभाग विशेष श्रीधक है। उससे संज्वलन मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे संज्वलन क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष श्रिधिक है। उससे संज्वलन मायाका जघन्य श्रनुमाग विशेष श्रिधिक है। उससे संज्वलन लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है। उससे मिध्यात्व का जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे जघन्य अनुभागके अल्पबहुत्वका कथन करके अब उच्चारणाका श्राश्रय लेकर कथन करते हैं।

१ ता । आ । प्रत्योः तं कथं इति स्थाने तं जहा इति पाठः ।

§ ४६६. जहएएए पयदं । दुविहो णिह सो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघमस्सिद्ण भएएामाणे जहा चुिएए। सुने परूपणा कदा तहा एत्थ वि कायव्वा, विसेसाभावादो । एवं मणुसतियस्स । णविर मणुसपज्जत्तप्पाबहुए भएए। माणे पुरिसवेद जहण्णाणुभागस्युविर णवुंस्य० जहएए। गुभागो अणंतगुणो । सम्मामि० जह० अणंतगुणो । अणंताणुवंधिमाण० जहएए। गुभागो अणंतगुणो । कोधे० विसेसा० । मायाए विसे० । लोहे० विसे० । तदो हस्सादिपिरवाडीए खण्णोकसाया जहाकममणंतगुणा होऊण पुणो इत्थि० जहएए। गुभागो अणंतगुणो । कुदो १ चिरमाणुभागखंडए जादजहएए। गुभागतादो । अपचक्खाणमाणजहएए। गुभागो अणंतगुणो । सेसं पुच्वं व । मणुसिणीसु सम्मत्तजहएए। गुभागस्सुविर इत्थि० जहएए। गुभागो अणंतगुणो । सम्मामि० जह० अणंतगुणो । अणंताणुवंधिमाण० जह० अणंतगुणो । कोहे० विसे० । मायाए विसे० । लोहे० विसे० । तदो छएए। कुरागि स्मादिपिरवाडीए जहाकममणंतगुणा होऊण पुणो पुरिस० जहएए। गुभागो अणंतगुणो । णवुंस० जह० अणंतगुणो । अपचक्खाणमाण० जह० अणंतगुणो । उविरे णित्थ विसेसो ।

६ ४७०. आदेसंण णिरयगईए णेरइएसु जहा चुिएगासुत्तम्मि णेरइश्रोघण्या-बहुश्रपरूवणा कदा तहा एत्थ वि कायन्वा, विसेसाभावादो । एवं पढमपुढवि०-तिरि-

हु ४७०. श्रादेशसे नरकगितमे नारिकयोंमें जैसे चुर्णिसूत्रमे सामान्य नारिकयोंमें श्राल्प-बहुत्वका कथन किया है वैसा ही यहाँ भी करना चाहिये, उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

४६९. जघन्यके कथनका अवसर है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रांघ और आदेश। उनमेसे स्रोधकी ऋषेक्षा कथन करने पर जैसा चूर्शिसूत्रमे कथन किया है वैसा ही यहाँ भी करना चाहिये। उससे इसमे कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त श्रौर मनुष्यिनियोंमे जानना चाहिए। किन्तु मनुष्यपर्याप्तकोंमे श्रल्पबहुत्वका कथन करते हुए इतना विशेष जानना चाहिए कि पुरुषवद्के जघन्य अनुभागसे आगे नपुंसकवद्का जघन्य अनुभाग श्चनन्तगृणा है। उससे सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य अनुभाग श्चनन्तगृणा है। उससे श्चनन्ता-नुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे कोधका विशेष अधिक है। उससे मायाका विशेष श्रिधिक है। उससे लोभका विशेष श्रिधिक है। उससे हास्य श्रादिके क्रमसे छः नोकषायोंका जघन्य ऋनुभाग कमानुसार श्रानन्तगुणा श्रानन्तगुणा होता हुत्रा पुनः स्त्रीवदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, क्योंकि उसका अन्तिम अनुभागकाण्डकमें जघन्य अनुभाग प्राप्त होता है। उससे अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। शेष पूर्ववत् जानना चाहिए। मनुष्यिनियोम सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसे आगे स्वीवदका जघन्य अनुभाग श्चनन्तगुर्णा है। उससे सम्यग्मिश्यात्वका जधन्य श्चनुभाग श्चनन्तगुर्णा है। उससे श्चनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे कोधका विशेष अधिक है। उससे मायाका विशेष अधिक है। उससे लोभका विशेष अधिक है। उससे हास्य आदिके क्रमसे छह नोकषायों का जघन्य अनुभाग कमानुसार अनन्तगुणा होता हुआ पुनः पुरुषवदका जघन्य अनुभाग श्चनन्तगुणा है। उससे नपुसकवदका जधन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अप्रत्याख्याना-वरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। आगे कोई विशेषता नर्ता है।

क्खोधं पंचिदियतिरिक्खदुग-[देव] सोहम्मादि जाव सव्बद्धसिद्धि ति । विदियादि जाव सत्तिमि ति एवं चेव । णवार सम्मत्त० जहराएां णत्थि । एवं पंचितिरि० जोणिणी-पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोइसिए ति ।

एवमप्पाबहुआणुगमो समतो।

* जहा बंधे भुजगार--पदिणक्खेव-बड्ढीओ तहा संतकम्मे वि काय-

\$ ४७१, अणुभागबंधे जहा अजगार-पदणिक्खेव-बहुणि परूवणा कदा तहा एत्थ वि कायव्वा, विसेसाभावादो । एवं चुिएए सुत्तेण सुइद्अत्थाणं उच्चारणमिस्स-द्ण परूवणं कस्सामो । अजगारविहर्त्ताए तत्थ इमाणि तरस अणियोगहाराणि णाद-व्वाणि भवंति—समुक्तित्तणादि जाव अप्पावहुए ति । तत्थ समुक्तित्तणाए दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसण य । ओघेण मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० अत्थि अज०-अप्पद्र०-अविद्व० । सम्मत्त०-सम्मामि० अत्थि अप्पद्र-अविद्व०-अवत्तव्व० । अणं-ताणु०चउक० अत्थि भुज०-अप्पद्र०-अविद्व० ।

४७२. आद्सेण णेरइ एसु सत्तावीसपयडीणमांघं। सम्मामि० अत्थि अविह ०-अवत्तव्व०। एवं पढमपुढवि०-तिरिक्खित्य-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारा ति। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य निर्यश्व, पश्चिन्द्रिय तिर्यश्व, पश्चिन्द्रियातिर्यश्व पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म न्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंगे जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमे सम्यक्त्वका जघन्य श्रमुभाग नहीं होता। इसी प्रकार पश्चिन्द्रियतिर्यश्वयोनिनी, पश्चिन्द्रियतिर्यश्व श्रपर्याप्त, मनुष्य श्रपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर श्रीर ज्योतिषी देवोंमे जानना चाहिए।

इस प्रकार ऋल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ।

* जैसे बन्धमें भुजकार, पदिनक्षेप और दृद्धिका कथन किया वैसे ही सत्तामें भी करना चाहिये।

§ ४७१. अनुभागवन्धमं जैसे भुजकार, पदिन त्तेप और वृद्धिका कथन किया है वैसे ही यहाँ भी करना चाहिये, दानोमे कोई विशेष नहीं है। इस प्रकार चूिणसूत्रसं सूचित अर्थका उश्वारणाका आलम्बन लेकर कथन करते हैं। भुजकार विभक्तिमे ये तेरह अनुयोगद्वार जानने चाहिये —समुन्कीर्तनासे लेकर अन्यवहुन्वपर्यन्त। उनमेसे समुन्कीर्तना की अपेत्ता निर्देश द्रां प्रकारका है—आव और आदेश। आंधसे मिध्यात्व, बाग्ह कपाय और नव नाकपायों की भुजगार, अन्पतर और अवस्थितविभक्तियां होती हैं। सम्यक्त्व और सम्यिमध्यात्वकी अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तियाँ होती हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्क की भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तियाँ होती हैं।

§ ४७२. त्रादेशसे नार्राक्योम सत्ताईस प्रकृतियो की त्रोचके समान विभक्तियाँ होती हैं। सम्यग्मिध्यात्व की त्राविध्यत त्रीर अवक्तव्य विभक्तियाँ हाती हैं। इसी प्रकार पहली प्रथिवी, सामान्य तिर्यश्व, पश्चेन्द्रियतिर्यश्व, पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व पर्याप्त, सामान्य देव त्रीर सीधर्म स्वर्गस

[🤱] धा० प्रती कायस्वी इति पाठः ।

विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णविर सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए ति ।

§ ४७३. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०--मणुसअपज्जत्त एसु छब्बीसं पयडीणमित्थ स्रुज०-अप्पद्र०--अविडिं। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमित्थ अविडिदं। मणुसितयस्स ओपभंगो। आणदादि जाव णवगेवज्जा ति वाबीसं पयडीणमित्थ अविडि०-अप्पद्र०। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं देवोघभंगो। अणंताणु०चउक्क० अत्थि स्रुज०-श्रप्पद्र०-अविडि०-अवत्तव्व०। अणुदिसादि जाव सव्वहिसिद्धि ति सत्तावीसं पयडीणमित्थ श्रप्पद्र०-अविडि०। सम्मामि० अत्थि अविडिद्विहित्त्या। एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति।

लेकर सहस्रार तकके देवोंमे जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातर्वा पृथिवी तकके नारिकयोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ सम्यक्त्वका भङ्ग सम्यग्मिश्यात्व की तरह होता है। इसी प्रकार पश्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर श्रौर ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

§ ४७३. पश्चेन्द्रियतिर्यश्च श्रापर्याप्त श्रीर मनुष्य श्रापर्याप्तकों में छ्ट्बीस प्रकृतियों की भुज-गार, श्रन्पतर श्रीर श्रवस्थितविभक्तियाँ होती हैं। सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिण्यात्वकी श्रवस्थित विभक्ति होती हैं। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त श्रीर मनुष्यित्यों में श्रोचके समान भंग है। श्रानत स्वर्गसे लेकर नवप्रैवेयक तकके देवों में वाईस प्रकृतियों की श्रवम्थित श्रीर श्रन्पतर-विभक्तियाँ होती हैं। सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिण्यात्वका सामान्य देवों के समान भंग है। श्रनन्ता-नुबन्धीचतुष्क की भुजगार, श्रन्पतर, श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तव्य विभक्तियाँ होती हैं। श्रनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों में सत्ताईस प्रकृतियों की श्रन्पतर श्रीर श्रवस्थित विभक्तियाँ होती हैं। सम्यग्मिण्यात्व की श्रवस्थितविभक्ति होती है। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ-श्राघसे श्रवक्तव्यविभक्ति सम्यक्त्व. सम्यग्मिध्यात्व श्रोर श्रनन्तानुवन्धीमे ही होती है, क्यांकि श्रनन्तानुवन्धीका विसंयोजन होकर पुनः उसका सक्त्व हो जाता है। तथा रोष दोनों प्रकृतियोका भी श्रनादि मिध्यादृष्टिके श्रसक्त्व होता है श्रौर सम्यक्त्वके होने पर सक्त्व हो जाता है। तथा सादि भिध्यादृष्टिके भी उद्वेतना कर देने पर इनका श्रसक्त्व हो जाता है श्रौर सम्यक्त्वके होने पर पुनः सक्त्व हो जाता है श्रम्य प्रकृतियोंमे यह बात नहीं है। सम्यक्त्व श्रौर सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतियोंमे भुजकारिवभक्ति नहीं होती, क्योंकि इनका जा श्रनुभाग रहता है दर्शनमोह के स्वयण कालमे वह घट तो जाता है. किन्तु बढ़ता कभी भी नहीं है, क्योंकि ये बन्ध प्रकृतियां नहीं हैं। श्रादेशसे नारिकयोंमे सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिमें श्रन्यत्विभक्ति नहीं होती, क्योंकि वहाँ दर्शनमोह का स्वयण नहीं होता। सम्यक्त्व प्रकृतिमें श्रन्यत्वदक की श्रपेक्षा श्रन्यत्व विभक्ति वहाँ होती है। जहाँ कृतकृत्यवदक जन्म नहीं लेता, जैसे दूसरे श्रादि नरक श्रौर भवनित्रकमे वहाँ सम्यक्त्व प्रकृतिमे भा श्रन्यत्विभक्ति नहीं होती। मनुष्य श्रप्याप्त श्रौर तिर्यच श्रपर्याप्तकों में सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिमे श्रवक्तव्य विभक्ति भी नहीं होती, क्योंकि वहाँ सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता। श्रानत से लेकर उपरिम प्रवेयक पर्यन्त श्रनन्तानुबन्धी कथाय में तो भुजकार विभक्ति होती है, क्यों कि श्रनन्तानुबन्धीका विसंयाजक मिध्यात्वमे श्राकर पुनः उसका स्थाजन करने पर श्रनुभाग को बढ़ाता है किन्तु श्रन्य किसी भी प्रकृति मे भुजगार

§ ४७४. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिहे सो— ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० भुज० कस्स १ अण्णदरस्स मिच्छाइहिस्स । अप्पदर०-अविह० कस्स १ अण्णदर० सम्मादिहिस्स मिच्छाइहिस्स वा । सम्मत्त-सम्मा-मिच्छताणं अप्पदर०-अवत्तव्व० कस्स १ सम्माइहिस्स । अविहद० अण्णद० सम्मादिहिस्स मिच्छाइहिस्स वा । अणंताणु०चउक० मिच्छत्तभंगो । णवरि अवत्तव्व० कस्स १ मिच्छादिहिस्स ।

§ ४७५. आदेसेण णेरइएस सत्तावीसंपयढीणमोघभंगो। सम्मामि० अविह०अवत्तव्व० ओघभंगो। एवं पढमपुढवि०-तिरिक्खितय--देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारे ति । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव। णविर सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो। एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणी--भवण०--वाण०--जोदिसिए ति । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०--मणुसअपज्ज० छ्व्वीसंपयडीणं भ्रज०-अप्पद्र०-अविह० सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमविह० कस्स १ अएएएद० मिच्छादिहिस्स । मणुसितयस्स ओघभंगो।
आणदि जाव णवगेवज्जा ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० अप्पद्०-अविह० ओघं।
सम्मत-सम्मामिच्छत्त० देवोघं। अणंताणु०चउक० भ्रज०-अवत्तव्व० कस्स १ मिच्छा-

विभक्ति नहीं होती और अनुदिश से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक तो केवल दो ही विभक्तियाँ होती हैं अल्पतर और अवस्थित।

§ ४७४. स्वामिन्वानुगमकी ऋषेत्वा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और श्रादेश। श्रोघसे मिण्यात्व, बारह कपाय और नव नोकषायोकी भुजकारिवभक्ति किसके होती है ? किसी एक मिण्यादृष्टि जीवके होती है। अल्पतर और अवस्थित विभक्ति किसके होती है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि अथवा मिण्यादृष्टि जीवके होती है। सम्यन्द्व और सम्यग्मिण्यात्वकी अल्पतर और अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है ? सम्यग्दृष्टि जीवके होती है। अवस्थितविभक्ति किसी भी सम्यग्दृष्टि अथवा मिण्यादृष्टि जीवके होती है । अनःतानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिण्यात्वकी तरह है। इतना विशेष है कि अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है ? मिण्यादृष्टिके होती है ।

् ४७५. त्रादेशसे नारिकयों में सत्ताईस प्रकृतियोंका त्राघ के समान है। सम्यिमध्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तिका भङ्ग श्रोघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यश्व, पश्चेन्द्रियिन्यंश्व, पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवों में जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नारिकयों में इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त प्रकृतिका भङ्ग सम्यिमध्यात्वके समान है। इसी प्रकार पश्चेन्द्रियतिर्यश्वयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों में जानना चाहिए। पश्चेन्द्रियतिर्यश्व अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकों सं छव्वीस प्रकृतियों की मुजगार, अल्पतर और अवस्थित तथा सम्यक्त और सम्यिमध्यात्वकी अवस्थितविभक्ति किसके होती है? किसी भी मिध्यादिष्ट जीवके होती है। तीन प्रकारके मनुष्यों आंघके समान भंग है। ज्ञानत स्वर्गसे लेकर नवप्रवेचक तकके देवों में मिध्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायों की अल्पतर और अवस्थितविभक्तिका भङ्ग छोषके समान है। सम्यक्त्व और सम्यिमध्यात्व, बारह कपाय और सम्यिमध्यात्व का भंग सामान्य देवोंकी तरह है। अनन्तानुबन्धी

इहिस्स १ सेसपदाणमोघभंगो । अणुदिसादि जाव सव्वहसिद्धि ति सत्तावीसंपयहीण-मप्पदर० स्रविह० सम्मामि० अविह० कस्स १ ऋण्णद० । एवं जीणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

३७६. कालाणुगमेण दुविहो णिद्दे सो— ओघेण आदेसंण य। ओघेण मिच्छत्तअहकसाय--अहणोक० भ्रुज ज० एगसमओ, उक्क० संतोम्ग०। अप्पदर० जहण्णुक०
एगस०। अविह० ज० एगस०, उक्क० तेविहिसागरोवमसदं पिलदो० असंखे०भागेण
सादिरेयं। एवमणंताणु०चउक्क०। णविर अवत्तव्व० जहण्णुक० एगस०। सम्मत०
अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० खंतोमु०। सम्मामि० अप्पदर० जहण्णुक० एगस०,
दोण्हं पि अविह० ज० खंतोमु०, उक्क० वेद्याविहसागरो० तीहि पिलदोवमस्स असंखे०
भागेहि सादिरेयाणि। दोण्हं पि अवत्तव्व० जहण्णुक० एगस०। चहुसंज० भ्रुज०अप्पद० ज० एगस०, उक्क० खंतोमु०। अविह० मिच्छत्तभंगो, धुवबंधितादो। सम्मादिहिम्मि णिरंतरं बज्भमाणचदुसंजलणाणमणुभागस्स कथमविहदत्तं, अणुभागखंडय-

चतुष्ककी भुजगार और अवक्तव्य विभक्तियां किसके होती हैं ? मिध्यादृष्टिके होता हैं। शेष पदोंका भंग श्रोधके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थिसिट्ड तकके देवोम सत्ताईस प्रकृतियोंकी अल्पतर श्रीर अवस्थित विभक्ति तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? किसीके भी होती है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ-सम्यक्त और सम्यग्मिध्यात्व की अल्पतर विभक्ति दर्शनमाहके क्षपकके होती है और अवक्तव्य विभक्ति प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिके होती है, अतः दोनो विभक्तियाँ सम्यदृष्टिके बतलाई हैं। अन्नतानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्ति अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके मिध्यात्वमे आकर पुनः संयोजन करनेवाले के होती है अतः उसका स्वामी मिध्यादृष्टि को बतलाया है। शेष बाईस प्रकृतियों की भुजगार विभक्ति तो मिध्यादृष्टिके ही होती है, क्यों कि इनका अनुभाग मिध्यादृष्टि ही बढ़ा सकता है। और अल्पतर तथा अवस्थित विभक्ति सम्यग्दृष्टि के भी होती है और मिध्यादृष्टिके भी। इसी प्रकार आदेशसे भी लगा लेना चाहिये।

१८७६. कालानुगमकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है - श्रांघ श्रौर श्रादेश। श्रोंघसे मिध्यात्व, श्राठ कपाय श्रौर श्राठ नांकपायोकी मुजकार्यवमिक्तका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रुन्तर्मुहूर्त है। श्रव्यस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल पत्यापमका श्रसख्यात्वां भाग श्राधक एक सौ त्रेसठ सागर है। इसी प्रकार श्रनन्तानुबन्धीचतुष्कका काल जानना चाहिए। इतना विशेष है कि श्रवक्तव्य विभक्तिका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी श्रन्परिवमिक्त का जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यग्निक का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। दोनों ही प्रकृतियों की श्रवस्थित विभक्तिका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है। दोनों ही प्रकृतियों की श्रवस्थित विभक्तिका जघन्य काल श्रन्तर्मुहूर्त है। दोनों ही प्रकृतियाकी श्रवक्तयविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। चार संज्वलनोंकी भुजगार श्रौर अत्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रौर उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मुहूर्त है। श्रवस्थितविभक्तिका भङ्ग मिध्यात्वके समान है, क्योंकि संज्वलन कपाय ध्रववन्धी है। श्रवक्ति—सम्यग्रह्मिं निरन्तर वधनेवाली चारों संज्वलन कपायोका श्रनुभाग श्रवस्थित

घादाभावेण सगाणुभागसंतादो उविर बंधेणाणुभागफद्दयबुट्टीए वि अभावादो च । सिरसथिणयपरमाणुअणुभागे बंधमिस्सिद्ण वट्टमाणे अधिद्विगलणाए गलमाणे च कथमविद्वतं संभवइ १ ण, अणुभागद्वाणस्स दव्वद्वियणयावलंवणाए चिरमफद्दय-चिरमवग्गणेगपरमाणुम्हि अविद्वस्स सगंतोविखत्तसरिसधिणयाणुभागत्तणेण अणोसा-रियअणुभागकंडयफालिस्स अवद्वाणविरोहादो । एवं पुरिस०। णविर अप्पद० ज० एगस०, उक्क० दो आविल्याओ समऊणाओ।

कैसे है ?

समाधान—एकतो वहाँ अनुभागका काण्डक घात नहीं होता है, दूसरे उसके जो अनुभाग की सत्ता होती है उससे ऊपर बन्धके द्वारा अनुभाग स्पर्धकों की वृद्धि नहीं होती. इसलिए वहाँ संज्वलन कपायोके अनुभागका अवस्थितपना बन जाता है।

शंका—बन्ध की ऋषेत्रा समान धनवाले परमासुत्रोंके ऋनुभागकी वृद्धि होते हुए श्रौर ऋधःस्थितिगलनाके द्वारा उसका गलन होने पर ऋवस्थितपना हैसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा अनितम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणु में जो अनुभाग अवस्थित है और अपने भीरत सहश धनवाले परमाणु मोके अनुभाग का गर्भित कर लेनेसे जिसके अनुभागकाण्डकोंकी फालियोका अनुभाग अपसारित नहीं हुआ है उसका अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है।

इसी प्रकार पुरुपवद्का जानना चाहिए। इतना विशेष है कि पुरुपवदकी अल्पतर विभ-क्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय कम दो आवली है।

विशेषार्थ-एक जीवके अनुभाग की लगातार वृद्धि कमसे कम एक समय आँर अधिक से ऋधिक अन्तर्मुहूर्त तक हो सकती है, इसीलिये भुजकार विभक्तिका जधन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहर्त बतलाया है। श्रन्पतर विभक्तिमें भी यही बात है अर्थान एक जीवके अनुभाग की लगातार हानि कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहर्त तक होती है किन्तु अन्तर्मुहर्त तक अनुभाग की हानि काण्डकवातके बाद ही होती है। अत: जहाँ जिन प्रकृतियोंका काण्डकघातके पश्चात् प्रति समय अनुभाग घटता जाकर क्षय होता है वहाँ ही उन प्रकृतियोमे अल्पतर विभक्तिका उत्पृष्ट काल अन्तर्मुहुर्न होता है। अवक्तव्य विभक्ति का काल तो एक समयमे अधिक हो ही नहीं सकता, वर्याक प्रथम समयमे ही अविद्यमान प्रकृतिका सत्त्व होजाने पर अवक्तव्य विभक्ति होती है। अवस्थित विभक्तिका काल सम्यवस्व श्रीर सम्यामिण्यात्वमे जघन्यसे श्रन्तर्मुहूर्त है. बयोकि श्रनादि मिण्यादृष्टि उपशमसम्यक्त्वका प्राप्तकर सम्यक् व श्रीर सम्यामिण्यात्व की सत्ताको करके यदि वेदकसम्यग्दृष्टि होकर दर्शन मोहका चपण कर देता है तो अन्तर्महर्त काल होता है। उन्दृष्ट काल दो छियासठ सागर और पल्यके तीन असंख्यातवें भाग है जो कि पत्ले वतला श्राये हैं। शेप प्रकृतियों में अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल परुयका श्रसंख्यातवां भाग त्र्राधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। वह भी पहले , बतला त्राये हैं। संज्वलन कपायकं विषयमं यह शंका की गई कि जब सम्यग्दृष्टिमं निरन्तर संज्वलन कपायका बंध होता है तो उसका श्रनुभाग त्रवस्थित कैसे रहता है, तो उत्तर दिया गया कि काण्डकघात नहीं होता, इस लिए तो अनुभाग घटता नहीं और सत्तामें स्थित अनुभागसे श्रिधिक अनुभागबन्ध नहीं होता, इसलिये अनुभाग बढ़ता नहीं है श्रातः अवस्थित रहता है।

भ्रा० प्रतौ भ्रवट्टाण्विरोहादो इति पाठः ।

§ ४७७. त्रादेसंण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक॰ भुज० ज एगस०, उक० त्रंतोसु० । अप्पद० जहण्णुक० एगस०। अविह० ज० एगस०, उक० तेत्तीसं सागरोवपाणि देस्णाणि । अणंताणु०चउक० अवत्तन्व० ओघभंगो । सम्सत्त-सम्मा-मिच्छत्त० सन्वपदाणमोघं । णविर सम्मामि० अप्पद० णित्थ। दोण्हं पि अविह० ज० एगस०, उक० तेत्तीसं सागरो० संपुण्णाणि । एवं पढमपुढवि० । णविर सगिहिदी । विदियादि जाव सत्तमि ति छब्बीसंपयडीणमेवं चेव। णविर सगिहिदी देस्णा । सम्मत्तसम्मामि० अविह० ज० एगस०, उक्क० सगिहिदी संपुण्णा । अवत्त० ओघं ।

ई ४७८. तिर्विक्षि णेरइयभंगो। णविर सञ्चासि पयडीणमविद्वदं ज० एगस०, उक्क० अञ्बीसंपयडीणमंतोम्रहुतेण सादिरेयाणि तिण्णि पिलदोवमाणि। सम्मत्त-सम्मा-मिच्छताणं पिलदो० असंखे०भागेण सादिरेयाणि तिण्णि पिलदोवमाणि। पंचिदिय-तिरिक्खदुगस्स एवं चेव। णविर सम्मत्त-सम्मामि० अविदि० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पिलदोवमाणि पुञ्चकोडिपुभत्तेण सादिरेयाणि। पंचिदियतिरिक्खजोणिणीण-मेवं चेव। णविर सम्म० अप्पद्र० णित्थ। पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० अञ्बीसंपयडीणं भुज०-अविदि० सम्मत्त०-सम्मामि० अविदि० ज० एगस०, उक्क० अंतोम्र०। सम्मत्त-

§ ४७७ त्रादेशसे नारिकयोमे मिण्यात्व, सालह कपाय और नव नोकपायोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछकम नेतीस सागर है। अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिका भक्त ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिण्यात्वकी सब विभक्तियोंका भक्त ओघकी तरह है। इतना विशेष है कि सम्यग्मिण्यात्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती। दोनों ही प्रवृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण नेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट काल पहले नरककी स्थिति प्रमाण है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारिकयोंमें छुट्यीस प्रकृतियोंकी विभक्तियोंका काल इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट काल कुछकम अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिण्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी सम्पूर्ण स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्व

\$ ४७८ सामान्य तिर्यश्वोंमं नारिकयोंके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि सव प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और छव्बीस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पर्ल्य है। सम्यक्त और सम्यग्मिण्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल पर्ल्यके असंख्यातवें भाग अधिक तीन पर्ल्य है। पश्विन्द्रियतिर्यश्व और पश्विन्द्रिय तिर्यश्व पर्याप्तके भी ऐसे ही जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त और सम्यग्मिण्यात्व की अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकाटि पृथक्त अधिक तीन पर्ल्य है। पश्विन्द्रियतिर्यश्वयोनिनियोमं भी ऐसे ही जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त प्रकृतियोंकी सम्यक्त प्रकृतिकी अरुपतर विभक्ति नहीं है। पश्विन्द्रिय तिर्यश्व अपर्याप्तकोमे छव्बीस प्रकृतियोंकी मुजगार और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिण्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिण्यात्वकी

सम्मामिच्छत्तवज्ञाणमप्पदर० जहण्णुक० एमस०। एवं मणुसअपज्ज०।

§ ४७६. मणुस्साणमोघं । णविर सन्वेसिमविद्वः पंचिदियतिरिक्खभंगो । एवं
मणुसपज्जत्त-मणुसिणीस्त । णविर मणुसिणीस्त पुरिस० अप्पद० जहण्णुकः एगस० ।

§ ४८०. दंबाणं णेरइयभंगो । णविर ऋहावीसंपयडीणमविह० उक्क० तेतीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि । भवणा०-वाणा०-जोइसि० एवं चेव । एविर सगिहदी देसुणा । सम्मत्त-सम्मामि० अविह० सगिहिदी । सम्मत्त० अप्पद्र० णित्य । सोहम्मादि जाव सहस्सारे त्ति देवोघं । णविर सगिहिदी । आणादादि जाव णवगेवज्ञ० छ्व्वीसंपयडीणमप्पद० जहण्णुक० एगस० । अविह० ज० ऋंतोसु० । अणंताणु०चउक्कस्स एगस०, उक्क० सव्वासि सगिहिदी । ऋणंताणुचउक्क० सुज०-अवत्तव्व० ओघं । सम्मत्त० अप्पद० ओघं । अविह० ज० एगस०, उक्क० सगिहिदी । अवत्तव्व० ओघं । सम्मामि० एवं चेव । णविर अप्पद० णित्य । अणुदिसादि जाव सव्वहसिद्धि ति छ्व्वीसं पयडीणमप्पद० जहण्णुकक० एगस०। अविह० ज० श्रंतोसु०, उक्क० सगिहिदी । सम्मत्त० अप्पद० ओघं । सम्मत्त-सम्मामि०

छोड़कर रोष छव्बीस प्रकृतियोंकी ऋरपतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार मनुष्य ऋपर्याप्तकोंमे जानना चाहिए।

§ ४७९. सामान्य मनुष्योंमें श्रोघकी तरह जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें सब प्रकृतियोकी श्रवस्थित विभक्तिका काल पश्चेन्द्रिय तिर्यश्चोंक समान है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त श्रोर मनुष्यिनयोमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि मनुष्यिनियोमें पुरुषयदकी श्रन्यत्तर विभक्तिका जघन्य श्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है।

६ ४८० देवोंके नारिकयोंके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि ब्राट्टाईस प्रकृतियोकी ब्राव-स्थित विभक्तिका उत्क्रष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है। भवनवासी, व्यन्तर श्रीर ज्योतिपियोंमे इसी प्रकार जानना चाहिये। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट काल कुछकम अपनी अपनी स्थित प्रमाण है। सम्यक्त और सम्यग्मिश्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल अपनी स्थिति प्रमाण है। सम्यक्तकी अल्पतर विभक्ति नहीं है। सौधर्मसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोमें सामान्य देवोंकी तरह काल है। इतना विशेष है कि अपनी अपनी स्थित कहनी चाहिए। आनतसे लेकर नवप्रैवयक तकके देवोंमें छव्बीस प्रकृतियोकी अल्यतरियभिक्तिका जयन्य अपर उत्कृष्ट एक समय है। श्रवस्थित विभक्तिका जघन्य काल श्रन्तर्मृहर्त है। श्रनन्तानुबन्धी चतुष्ककी श्रवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल सबका अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। श्चनन्तानबन्धी चतुष्ककी भूजगार श्रीर श्रवक्तव्य विभक्तिका काल श्रोधकी तरह है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्तिका काल श्रोघकी तरह है। श्रवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। अवक्तव्य विभक्तिका काल ओव की तरह है। सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि अल्पतर विभक्ति नहीं है। अनिदेशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छव्बीस प्रकृतियोकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य भीर उन्कृष्ट काल एक समय है। श्रवस्थित विभक्तिका जघन्य काल श्रन्तर्महर्त है श्रीर उन्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है। सम्बन्त्व प्रकृतिकी अल्पतरविभक्तिका काल श्रीघके समान अविह० जहण्णुकस्सिहिदी । एवं जाणिदृण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

\$ ४८१. श्रंतराणु० दुविहो णिइ सो— ओघेण श्रादेसेण य । ओघेण वावीसं पयडीणं भ्रुजगारस्स श्रंतरं ज० एगस०, उक्क० तेविहसागरावमसदं श्रंतोम्रहुत्तमब्भ- हियतीहि पिलदोवमेहि सादिरंयं । अप्पदर० ज० श्रंतोम्र०, उक्क० तेविहसागरावमसदं पिलदो० असंखे०भागेण सादिरंयं । श्रविह० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोम्र० । सम्मत्त- सम्मामिच्छत्ताणमप्पदर० जहण्णुक० श्रंतोम्र०, चिरम-दुचिरमकंडयाणं पढम-विदिय- है। सम्यक्त्व श्रौर सम्यग्मिध्यात्वकी श्रविस्थित विभक्तिका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट काल श्रपनी श्रपनी उक्रष्ट स्थिति प्रमाणु है। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

बिजोषार्थ-श्रांघ की तरह आदेशसे भी काल को लगा लेना चाहिये। नरकमे छन्बीस प्रकृतियों मे अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, क्यों कि नरकम जन्म लेकर सम्यन्द्रष्टि होने पर इतना काल पाया जाता है। सम्यक्त्व और सम्यन्मिण्यात्वमे अवस्थित विभक्तिका काल पूर्ण तेतीस सागर है, क्यों कि वह सम्यग्दृष्टिके भी होती है और मिध्यादृष्टिके भी होती है। इसी प्रकार प्रत्येक नरकमे यथायांग्य समभना। सामान्य तिर्यञ्चां में छुन्बीस प्रकृतियों की अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पर्ल्य है, क्यों कि कोई तिर्यश्व तिर्यश्वकी त्रायु बाँधकर देवकुरु उत्तरकुरुमें तीन पत्यकी त्रायु लेकर उत्पन्न हुत्रा तो उसके अन्त्रमुंहर्त अधिक तीन पत्य काल अवस्थित विभक्तिका होता है। तथा सम्यक्त और सम्यग्मिध्यात्वकी श्रवस्थितविभक्तिका काल पत्यका श्रसंख्यातवां भाग श्रिधिक तीन पत्य होता है, क्योंकि एक मिथ्याद्दष्टि उपशमसम्यक्त्वको प्रहण् करके सम्यक्व ऋौर सम्य-ग्मिथ्यात्व की सत्तावाला हुन्ना। पुन: मिथ्यात्वमें त्राकर पत्यकं त्रसंख्वातवे भाग काल तक तिर्यञ्च पर्यायमें भ्रमण करके जब सम्यक्तवकं उद्वेलना कालमें श्रन्तर्मृहत बाकी रहा ता मर कर तीन पत्य की स्थिति लेकर देवकुरु-उत्तरकुरुमें उत्पन्न हुन्ना न्त्रीर सम्यक्तको प्राप्त हो गया तो सम्यक्त श्रौर सम्यग्मिध्यात्व की श्रवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल पत्यका त्र्रसंख्यातवां भाग ऋधिक तीन पत्य होता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च ऋौर पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च पर्योप्तमें इन दोनों प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका काल पूर्वकोटि पृथक्त अधिक तीन पत्य है सो ही इन दोनों पर्यायों का उन्कृष्ट काल है अत: उसी तरह जानना। सामान्य देवों में सभी प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका उन्कृष्ट काल तेतीस सागर सर्वार्थसिद्धि की अपेक्षा जानना । भवनत्रिकमें सम्यक्त्व श्रौर सम्यग्मिण्यात्व की श्रवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल श्रपनी श्रपनी स्थित प्रमाण है किन्तु छन्बीस प्रकृतियों में कुछ कम श्रपनी स्थिति प्रमाण है. क्यों कि जन्म लेकर अन्तर्मुहर्तके पश्चात् सम्यग्दृष्टि होने पर उक्त काल पाया जाता है। सौधर्मस लेकर सर्वार्थसिद्धि तक सभी प्रकृतियों भी अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाग जानना 🖟

९ ४-१. श्रन्तरानुगमकी श्रपंत्ता निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रौर श्रादेश। श्रोघसे बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर प्रकृत श्रौर तीन पत्य श्रधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। श्रव्पतर विभक्तिका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर प्रकृत है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर पत्यका श्रसंख्यातवाँ श्रधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। श्रवस्थितका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तसृहूर्त है। सम्यक्त श्रौर सम्यग्मिध्यात्वकी सत्पत्तर विभक्तिका जघन्य श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुहूर्त है, क्योंकि यहाँपर चरम श्रौर द्विचरम

कंदयाणं च आंतरालस्स जहण्णुकस्संतरभावेण गहणादो । अविहि० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० पिलदो० असंखे०भागो, उक्क० दोएहं पि उवहुपोग्गलपरियट्टं । अणं-ताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । णविर अविद्वि० ज० एगस०, उक्क० वेद्याविद्यागरो - वमाणि देस्णाणि । अवत्तव्व० ज० आंतोग्र०, उक्क० जवहुपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।

ऽ८८२. आदेसेण णेरइएसु बाबीसं पयढीणं भुज० ऋष्पदर० ज० एगस० भ्रंतोग्रु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अवद्विद० ओघं। सम्मत्त० अष्पद० णित्थ भ्रंतरं। सम्मत्त-समामि० अवद्वि० जह० एगस०, अथवा वे समया, अवत्त० जह०

काण्डकके अन्तरालका जघन्य अन्तररूपसे प्रह्मा किया है और प्रथम तथा द्वितीय काण्डकके अन्तरालका उत्कृष्ट अन्तररूपसे प्रह्मा किया है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पर्क समय है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पर्वके असंख्यातवें भाग प्रमागा है। तथा दोनों विभ. क्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमागा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भक्त मिथ्यात्वकी तरह है। इतना विशेष है कि अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्र कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तनकाल प्रमागा है।

विश्वीषार्थ-त्र्यायसे बाईस प्रकृतियां की भूजगार विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर दो बार येदक सम्यक्त, एक बार उपरिम प्रैवयक श्रीर एक बार देवकुरु उतरकुरुके कालको तथा श्रन्तर्मुहर्त सम्यक्त्वके उत्पत्तिकालका जोडनेसे एक सौ त्रेसठ सागर श्रीर श्रन्तर्भृहर्त श्रधिक तीन पर्य होता है, श्रिधिकसं श्रिधिक इतने काल तक भूजगार विभक्ति बाईस प्रकृतिया में नहीं होती। श्राल्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर जितना पहले स्त्रोघसे वाईस प्रकृतियों की स्रवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल कहा है उतना ही हाता है। सम्यक्त श्रीर सम्यग्निध्यात्व प्रकृतिमे अल्पतर विभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महर्त है। इन दोनों प्रकृतिया में दर्शनमाहके चपण कालमें जब काण्डकघात होता है तभी अल्पतर विभक्ति होती है, सा प्रथम काण्डक होकर दूसरा काण्डक हाता है, श्रत: प्रथम काण्डक श्रीर दूसरे काण्डकमें जितना श्रन्तरकाल है उतना ता उत्कृष्ट श्रन्तर है श्रीर उपान्त्यकाण्डक श्रीर श्रन्तिम काण्डककी जितना श्रन्तरकाल है उतना जघन्य श्रन्तरकाल होता है। इन दोनों प्रक्रतियां की श्रवक्तव्य विभक्तिका जघन्य श्रन्तर पल्य**के** श्रसख्यातवं भाग है, क्यों कि त्रानादि मिध्याद्दांष्ट्र जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वक द्वारा इन दोनों प्रकृतियों की सत्ता का करके श्रवक्तव्य विभक्ति करता है। तथा पर्यके श्रसख्यावे भाग कालमें दोनां की उद्वेलना करके पुन: प्रथमोपशम सम्यक्त उत्पन्न करके पुन: इन दोनां प्रकृतियों की सत्ता को करके अवक्तव्य विभक्ति करता है, अत: जघन्य अन्तर काल पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। तथा उत्कृष्ट ऋन्तर कुछ कम ऋघंपुद्गल परावर्तन काल है, क्योंकि प्रथमापशमके द्वारा दोनों प्रकृतियों की सत्ताको करके सम्यक्त्वसे च्युत होकर कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन काल तक भ्रमण करके श्रन्तिम भव में पुनः सम्यक्त्व का उत्पन्न करके दोनों प्रकृतियों की सत्ता करने पर उत्हृष्ट अन्तर होता है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिका अन्तर भी इसी प्रकार जान लेना।

हु ४८२, श्रादेशसे नारिकयों में बाईस प्रकृतियों की भुजगार श्रीर श्रन्पतर विभक्तिक। क्रमशः जघन्य श्रन्तर एक समय श्रीर श्रन्तर्मुहूर्त है श्रीर उन्नष्ट श्रन्तर कुञ्जकम तेतीस सागर है। श्रवस्थितविभक्तिका श्रन्तर श्रोधकी तरह है। सम्यक्त्वकी श्रास्पतर विभक्तिका श्रन्तर नहीं

पि तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० धुज०-अविद्या ज० एगस०, अप्पदर० अवत्तव्व० ज० त्रंतोम्र०,उक्क० सव्वेसि तेत्तीसं साग० देसूणाणि । एवं पढमपुढवि०। णविर सगिंददी देसूणा । विदियादि जाव सत्तिमि तेत्री एवं चेव । णविर सगिंददी देसूणा । सम्मत्त० अप्पदर० णित्थ ।

§ ४८३. तिरिक्खेसु वावीसं पयडीणं सुज० ज० एगस०, उक्क० पित्तदो० स्रसंखे०भागो। कुदो १ पंचिदिएसु सुजगारं काद्ण पुणो एइंदिएसु पविसिय पित्रदो० असंखे०भागमेत्तकालेण एइंदियबंघेण सिरसमणुभागसंतकम्मं काऊण पुणो सत्थाणे चेव सुजगारे कदे पित्तदो० असंखे०भागमेत्तंतरकालुवलंभादो। अप्पदर० ज० अंतोसु०, उक्क० तिण्णि पित्तदो० अंतोसु० सादिरेयाणि। अविद्व० ओघं। सम्मत्त० अप्पदर० णित्थ अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० अविद्व० अवत्तव्वं ओघं। अणंताणु०४ मिच्छत्त-भंगो। णविर सुज० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पित्तदो० सादिरेयाणि। अविद्व० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पित्तदो० ओघं।

६ ४८४. पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्जत्तपुसु वावीसंपयडीणं भ्रज० ज०

है। सम्यक्त और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय अथवा दो समय है। अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर प्रत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछकम तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार और अर्वास्थत विभित्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, अल्पतर और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर भूदूर्त है तथा सभी विभिन्तियाका उत्कृष्ट अन्तर कुछकम तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अपनी स्थिति प्रमाण है। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नारिकयों में भी ऐसे ही जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अपनी स्थित प्रमाण है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभिन्ति नहीं है।

[§] ४८३ तिर्यश्वोमें बाईस प्रकृतियाकी भुजगार विभिक्तका। जघन्य अन्तर एक समय है और उक्कष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है, क्यों कि पश्चेन्द्रियोमें भुजगारका करके पुनः एव न्द्रियोमें जन्म लेकर वहां पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा एक निद्र्यके बन्धके समान अनुभाग सत्कर्मकों करके पुनः स्वस्थानमें भुजगारके करनेपर भुजगार विभिन्नतका अन्तर काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है। अल्पतर विभिन्नतका अपन्तर अन्तर्महूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्महूर्त अधिक तीन पत्य है। अवस्थित विभिन्नतका अन्तर ओषके समान है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभिन्तका अन्तर काल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यिमध्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभिक्तिका अन्तर आषके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भक्क मिध्यात्वके समान है। इतना विशेष है कि भुजगार विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तीन पत्य है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है। अवस्थितविभक्तिका अन्तर आघके समान है।

[§] ४८४. पश्चे न्द्रियतिर्यश्च भीर पश्चे न्द्रियतिय अपर्याप्तकोंमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार

एगसमओ, उक्क पुन्नकोडिपुधतं। अप्पदर०-ग्रबिंड तिरिक्स्बोघं। सम्मत्त अप्पद् णित्थ श्रंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० श्रविद्वि०-श्रवत्तन्व० ज० एगस० पिन्दि। असंस्वे०-भागो, उक्क० सगिंदिरी देस्रणा। अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। णविरि भ्रज०-अविद्वि० तिरिक्स्बोघं। अवत्तन्व० ज० श्रंतोग्रु०, उक्क० सगिंदिरी देस्रणा। एवं पंचिदियतिरिक्स्बजोणिणीणं। णविरि सम्मत्त० अप्पद् ० णित्थ। पंचि०तिरि०अपज्ञ० सन्वितिरिक्स्बजोणिणीणं। जविरि सम्मत्त० अप्पद् ० णित्थ। पंचि०तिरि०अपज्ञ० सन्वितिर्यतिरिक्स्वजोणि भ्रज०-अविद्व० ज० एगस०, श्रप्पद० श्रंतोग्रु०, उक्क० सन्वे० श्रंतोग्रु०। सम्मत्त-सम्मामि० अविद्वि० णित्थ श्रंतरं। एवं मणुसञ्चपज्ञ०।

\$ ४८५. मणुसतियम्मि मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० भुज० ज० एगस०, उक्क० पुन्वकोडी देसूणा । अप्पद०-अविद्वि० तिरिक्खभंगो । सम्मत्त--सम्मामि० अप्पद्र० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अविद्वि०-अवतन्व० ज० एगस० पितदो० असंखे०-भागो, उक्क० सगिद्दी देसूणा । अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । णविर भुज०-अविद्वि०-अवत्तन्व० पंचिदियतिरिक्खभंगो ।

४८६, देवेसु वावीसपयडीणं सुज० ज० एगस०, उक्क० अद्वारस० सागरो० विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है। अल्पतर विभक्ति और अवस्थित विभक्तिका अन्तर सामान्य तिर्यभ्वोंके समान है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर कमशः एक समय और पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिध्यात्वके समान है। इतना विशेष है कि भुजगार और अवस्थितविभक्तिका अन्तर सामान्य तिर्यभ्वोकं समान है। अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार पश्चेन्द्रियतिर्यभ्वयोनिनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्निका अच्तर अन्तर्भुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्निका अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य अपूर्णप्रकों में जानना चाहिए।

ु ४८५. तीन प्रकारके मनुष्योमे मिथ्यात्व, बारह कपाय श्रीर नव नोकषायोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्रन्थतर श्रीर श्रवस्थित विभक्तिका भङ्ग तिर्यश्वोके समान है। सम्यक्त श्रीर सम्यिमध्यात्वकी श्रन्थतर विभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्भृहूर्त है। श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तव्य विभक्तिका जघन्य श्रन्तर क्रमशः एक समय श्रीर पत्यके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रपनी स्थितिप्रमाण है। श्रनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वकी तरह है। इतना विशेष है कि भुजगार, श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तव्य विभक्तिका श्रन्तर पश्चेन्द्रिय तिर्यश्चोंके समान है।

§ ४८६ देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय है और

अद्धसागरोवमेण सादिरेयाणि। अप्पदर० ज० द्यंतोसु०, उक्क० एकत्तीसं सागरो॰ देस्णाणि। अविष्ठि० ओघं। सम्मत्त० अप्पदर० णित्थ द्यंतरं। सम्मत्त०-सम्मामि०
अविष्ठ०-अवत्तव्व० ज० एगस० पितदो० असंसे०भागो, उक्क० एकत्तीसं सागरो०
देस्रणाणि। अणंताणु०चडकः सुज०-अविष्ठ०-अप्पदर०-अवत्तव्व० ज० एगस०
द्यंतासु०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देस्रणाणि। एवं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति।
णविर सगिद्दिति देस्णा। एवं भवण०-वाण०-जोदिसिए ति। णविर सगिद्दिति
देस्णा। सम्मत्त० अप्पद० णित्थ। आणदादि जाव णवगेवज्ज० वावीसंपयदीणमविष्ठि० जहण्णुक्क० एगस०। अप्पद० ज० द्यंतोसु०, उक्क० सगिद्दिति देस्णा।
सम्मत्त० अप्पद० णित्थ द्यंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० अविष्ठ०-अवत्तव्व० प्रणंताणु०चउक्क० सुज०-अप्पद०-अविष्ठ०-अवत्तव्व० ज० श्रोधं, उक्क० सगिद्दिति देस्णा! अणुदिसादि जाव सव्वद्दसिद्धि ति छब्बीसंपयदीणमविष्ठद० जहण्णुक० एगम०। अप्पद०
जहण्णुक० त्रंतोसु०। सम्मत्त० अप्पद० णित्थ द्यंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० अविष्ठ०
णित्थ द्यंतरं। एवं जाणिदण णेदव्वं जाव अणाहारि ति।

एकुष्ट अन्तर आधासागर अधिक अठारह सागर है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अवस्थित विभक्तिका अन्तर श्रोघके समान है। सम्यक्त्वकी श्रास्पतर विभक्तिका श्रान्तर नहीं है। सम्यक्त्व श्रीर सम्यक्ति ध्यात्वकी त्रवस्थित त्र्यौर त्रवक्तव्य विभक्तिका जधन्य त्र्रम्तर क्रमशः एक समय त्र्यौर पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी भुजगार, अवस्थित, अल्पतर और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अन्तर्मुहुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। इसी प्रकार सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण हैं। इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर श्रीर ज्योतिषी देवोंमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है। स्त्रानतसे लंकर नवग्रैवेयक तकके देवोमे बाईस प्रकृतियोंकी स्रवस्थित विभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है और उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम श्रपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्तवकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका तथा अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी भूजगार, अल्पतर, अवस्थित श्रीर अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर श्रीघके समान है और ब्लुष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिश्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थासिद्ध तकके देवोंमे छव्बीस प्रकृतियोकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय है। श्ररूपतर विभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर्महर्त है। सम्यक्त्वकी श्ररूपतर विभक्तिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं हैं। इस प्रकार जानकर ऋनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ-त्रादेशसे नारिकयों में बाईस प्रकृतियों की सुजगार और ऋत्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट श्रन्तर उतना ही कहा है जितना नरकमें पहले इन प्रकृतियों की श्रवस्थित विभक्तिका

उत्कृष्ट काल कहा है। भूजगार या श्रह्पतर विभक्ति होकर कुछ कम तेतीस सागर पर्यन्त श्रवस्थितविभक्ति रही, उसके पश्चातु पुनः भुजगार या श्रन्पतर विभक्तिके होनेसे दोनों विभक्तियों का अन्तर काल होता है। नरक में सम्यक्त प्रकृतिके अल्पतरका अन्तर काल नहीं है, क्यों कि वहाँ उसका अल्पतर अतकृत्य वेदक के ही होता है ऋौर वह लगातार क्षय पर्यन्त होता है। श्रीर सम्यग्मिध्यात्वका तो वहाँ श्रल्पतर होता ही नहीं है। इन दोनों प्रकृतियों की श्रव स्थितविभक्तिका जधन्य श्रन्तर एक समय श्रथवा दो समय कहा है कोई २८ की सत्तावाला मिध्यादृष्टि उद्दे लुना करता हुआ प्रथमोपशम सम्यक्त्वके सन्मुख हुआ और अनिश्चिकरणके द्विचरम समयमें उद्वे सना कर सम्यक्त प्रकृतिका अभाव कर चरम समयमे २७ की सनावाला हो गया या सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्घेलना कर चरम समयमें २६की सत्तावाला हो गया। श्रगले समयमे उपशमसम्यग्दृष्टि हो सम्यक्त व सम्यग्मिश्यात्वकी सत्तावाला हो गया इस प्रकार ऋनि-वृत्तिकरएाके एक चरम समयका श्रवस्थितमें श्रन्तर पड़ा श्रत: एक समय कहा। परन्तु जिन्होने सम्यक्त्वके प्रथम समयका अवक्तव्यमें ले लिया उनके मतमें दो समय अन्तर होता है। उक्तप्र श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है. क्यों कि श्रवस्थित विभक्तिके पश्चात ६ द्वेलना करके जब तेतीस सागर काल पूर्ण होने में कुछ काल अवशेष रहे तो सम्यग्द्दष्टि होकर सम्यक्त और सम्यग्नि-थ्यात्वका सत्त्व करके दसरे समयमें अवस्थित विभक्तिके होनेसे उतना अन्तर काल पाया जाता है। इसी कार श्रवक्तव्यविभक्तिका भी उत्कृष्ट श्रन्तर काल लगा लेना चाहिये। तिर्यश्वां में छन्बीस प्रकृतियों की श्रवस्थित विभक्तिका जितना उत्कृष्ट काल पहले कहा है उतना ही उनमें छट्वीस प्रकृतियों की श्रन्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट श्रन्तर काल होता है। इसी तरह श्रनन्तानुबन्धीमें भजगारका उत्कृष्ट अन्तर काल जानना चाहिए। अनन्तानुबन्धीकी अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है, क्यों कि देवकुरु उत्तरकुरुका कोई तिर्यश्व अनन्ता-नबन्धीकी अवस्थित विभक्ति करके उसका विसंयोजन करदे । अन्त समयमे सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिध्यात्वमें त्राकर त्रानन्तानुबन्धीका बन्ध करके पुनः त्रावस्थित विभक्ति यदि करे तो उन्कृष्ट अन्तर कुछकम तीन पत्य होता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्रमे बाईस प्रकृतियोंका मुजगार विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकाटि पृथकत्व कहा।है जब कि उनमे अव-स्थित विभक्तिका काल अन्तर्मुहर्त अधिक तीन परुष है, इसका कारण यह है कि तीन परुषकी स्थिति भोगभूमिमं होती है किन्तु वहां भुजगार विभक्ति नहीं होती, श्रत: उक्त दोनो तिर्य-श्वाम पूर्वकारि पृथक्त श्रसिद्धायोक उत्कृष्ट कालकी श्रपेत्तासे श्रन्तरकाल कहा है। मनुष्यके तीन भेदोंमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछकम पूर्वकाटि है, क्यांकि भुज-गार विभिक्त करके सम्यन्द्दष्टि होजाने पर श्रौर अन्तमें सम्यक्त्वसे च्यून होकर मिध्यात्वमे श्राकर पुन: भूजगार करनेसे उतना श्रन्तर पाया जाता है। मनुष्योंमें श्रसंज्ञी नहीं होते. श्रतः वदकसम्यक्तकी त्रापेचा त्रान्तर कहा है। वदकसम्यग्दष्टि मनुष्यसे मनुष्य नहीं होता, श्रत: कर्मभूमियाके एक भवकी अपेचा उत्कृष्ट श्रायुकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर काल कहा है। देवों मे बाईस प्रकृतियोंकी भूजगार विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर साढे अठारह सागर सहस्रार स्वर्गकी श्रपेक्षा जानना चाहिए, क्योंकि इन प्रकृतियोमे श्रागे भुजगार नहीं होता। तथा अल्पतरिवर्माक्तका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर उपरिमप्रैवेयककी अपेक्षा जानना चाहिए, क्यां कि आगे सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, इस लिये अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक अल्पतर विभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तर श्रन्तर्मुहूर्त ही हाता है। सामान्य देवोंमें सम्यक्तव श्रीर सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका उत्सृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर भी उपरिम ग्रैंबयक की अपेक्षासे होता है, क्यों कि उससे ऊपर सम्यक्त और सम्यग्निध्यालकी अवक्तव्य विभक्ति

§ ४८७. णाणाजीविहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण वावीसंपयडीणं भ्रज०-अप्पद०-अविह० णियमा अत्थि । एवं अणं-ताणु०चउक्क० । णवरि अवत्तव्व० भयणिज्जा । भंगा तिण्णि । सम्मत्त -सम्मामिच्छ-ताणमविह० णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । भंगा णव । एवं तिरिक्खोद्यं ।

§ ४८८. आदेसेण णेरइएस छन्त्रीसंपयडीणं ग्रुज०-अविह० सम्मत्त-सम्मामि० अविह० णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्ञा। वात्रीसंपयडीणं सम्मामि० भंगा तिण्णि। सम्मत्त० अणंताणु०चउक्काणं भंगा णव। एवं सत्तसु पुढवीसु सन्वपंचिदिय तिरिक्ख-मणुसतिय-देवोघं भवणादि जाव सहस्सार दि। णविर विदियादिपुढवि०-पंचिदियतिरिक्खजोणिणी०-भवण०--वाण०--जोइसिए ति सम्मत्त भंगा तिरिणा। पंचि०तिरि०अपज्ज० सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि भंगा। सेससव्वपयडीणं तिरिणा चेव भंगा। मणुसअपज्ज० सन्वपयडीणं सन्वपदा भयणिज्ञा। छन्त्रीसं पयडीणं भंगा छन्त्रीस। सम्मत-सम्मामि० भंगा दोरिणा।

\$ ४८६. आणदादि जात्र सन्त्रहिसिद्धि ति अद्वावीसं पयडीणमविद्धि णियमा अतिथ । सेसपदा भयणिज्ञा । णविर आणदादि जात्र णवगेवज्ञा ति तेवीसं पयडीणं तो संभव ही नहीं है, अविश्यितविभक्ति होती है, किन्तु इन प्रकृतियों में उसका इतना अन्तराल तभी संभव हो सकता है जब कोई उनकी उद्देलना करदे और अन्तमें पुनः सम्यक्त्वके साथ दोनों प्रकृतियों की सन्ताको उत्पन्न करके अवस्थित विभक्ति करे, यह बात अनुदिशादिकमें संभव नहीं

है। इसीप्रकार सौधर्मादिकमें भी अन्तर सममना चाहिए।

\$ ४८७. नाना जीवोंकी श्रपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दें। प्रकारका है—श्रोध श्रौर श्रादेश। उनमेंसे श्रोधसे बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार, श्रल्पतर श्रौर श्रवस्थित विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार श्रमन्तानुबन्धीचतुष्ककी श्रपेद्धा जानना चाहिए। इतना विशेष हैं कि श्रवक्तव्य विभक्ति भजनीय हैं। भंग तीन होते हैं। सम्यक्त्व श्रौर सम्यग्मिण्यात्वकी श्रवस्थित विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। शेष विभक्तियां भजनीय हैं। भंग नौ होते हैं। इसीप्रकार सामान्य तिर्यचोंमं जानना चाहिए।

§ ४८८. त्रादेशसे नारिकयों मं छव्वीस प्रकृतियों की मुजगार श्रीर श्रवस्थितिवभक्तिवाले जीव तथा सम्यक्त श्रीर सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिकी श्रवस्थितिवभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। शेष विभक्तियाँ भजनीय है। बाईस प्रकृतियों के श्रीर सम्यग्मिध्यात्वके तीन भंग हाते हैं। सम्यक्त श्रीर श्रनतानुबन्धीचतुष्कके नौ भंग हाते हैं। इसप्रकार सातों पृथिवी, सब पश्चेन्द्रियतियं क्ष, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी श्रीर सामान्य देव तथा भवनवासीसे लेकर सहस्नार स्वर्ग तकके देवामें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि दूसरी श्रादि पृथिवियों में तथा पश्चेन्द्रिय तिर्यं योनिनी, भवनवासी व्यन्तर श्रीर ज्योतिषियों सम्यक्तवके तीन भंग होते हैं। पश्चेन्द्रिय तिर्यं श्रपर्याप्तकों में सम्यक्तव श्रीर सम्यग्मिध्यात्वके भंग नहीं होते। शेष सब प्रकृतियों के तीन ही भंग होते हैं। मनुष्य श्रपर्याप्तकों से सम्यग्मिध्यात्वके सभी पद भजनीय हैं। छुब्बीस प्रकृतियों के छुब्बीस भंग होते हैं। सम्यग्मिध्यात्वके दो भंग होते हैं।

४८९. श्रानतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें श्रष्टाईस प्रकृतियोंकी श्रवस्थित विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। इतना विशेष है कि श्रानतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके

भंगा तिरिष्ण । सम्मतभंगा णव । अणंताणु०चउक्क० सत्तावीसं । उविर सत्तावीसं पयदीणं भंगा तिरिष्ण । सम्मामि० भंगा णत्थि । एवं जाणिदृण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

देवोंमें तेईस प्रकृतियोंके तीन भङ्ग होते हैं, सम्यक्त्व प्रकृतिके नौ भङ्ग होते हैं श्रौर श्रनन्ता-नुबन्धी चतुष्कके सत्ताईस भङ्ग होते हैं। नवग्रैवेयकसे ऊपर सत्ताईस प्रकृतियोके तीन भङ्ग होते हैं। सम्यग्मिध्यात्वके भङ्ग नहीं होते। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

विशेषार्थ-श्रोघसे श्रनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार, श्रन्पतर श्रीर श्रवस्थितविभक्ति-वाले जीव सदा पाये जाते हैं और अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव विकल्पसे पाये जाते हैं अतः तीन भंग होते हैं। कदाचित उक्त विभक्तिवाले जीवां के साथ एक जीव श्रवक्तव्यविभक्तिवाला होता है, कदाचित उक्त विभक्तिवालों के साथ अनेक जीव अवक्तव्यविभक्तिवाले होते हैं। मूल भंगके साथ तीन भंग होते हैं। सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिध्यात्वकी श्रवस्थितविभक्तिवाले जीव सदा पाये जाते हैं और शेप विभक्तिवाले जीव विकल्पसे पाये जाते हैं, श्रतः नौ भंग होते हैं। श्रवस्थितविभक्तिवालों के साथ १ कदाचित् एक जीव अरुपतर विभक्तिवाला होता है, २ कदाचित् अनेक जीव अरुपतर विभक्तिवाले होते हैं, ३ कदाचिन एक जीव अवक्तव्यविभक्तिवाला हाता है, ४ कदाचित अनेक जी अवक्तव्य विभक्तिवाले होते हैं, ५ कदाचित एक जीव अल्पतरवाला और एक जीव अवक्तव्य वाला होता है, ६ कदाचित एक जीव अल्पतरवाला और अनेक जीव अवक्तव्यवाले होते हैं. ७ कदाचित् अनेक जीव अल्पतरवाले और एक जीव अवक्तव्यवाला होता है, ८ कदाचित् अनेक जीव अल्पतरवाले और अनेक जीय अवक्तव्यवाले होते हैं। मूल भंगके साथ ये नौ भंग होते हैं। श्रादेशसे नार्राकयोमें छव्बीस प्रकृतियोंकी भूजगार श्रीर श्रवस्थितविभक्तिवाले तथा सम्यवन्व त्र्योर सम्याग्मध्यात्वकी अवस्थितविभाक्तवाल नियमसे हाते है शेप विभक्तिवाले विकल्पसे होते है। श्रतः बाईस प्रकृतियोंकं तीन भंग है। बाईस प्रकृतियोकी भुजगार श्रौर श्रवस्थित विभक्ति-वालोक साथ कदाचित एक जीव श्रल्पतर विभावतवाला होता है, कदाचित श्रनेक जीव श्रल्पतर विभावतवाले होते है। मूल भन्नके साथ ये तीन भंग होते हैं। नरकमे सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती, अतः उसके भी तीन भंग होते हैं – सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिक साथ कदाचित् एक जीव श्रवक्तव्य विभिन्तिवाला होता है, कदाचित् श्रनेक जीव अवक्तव्य विभिन्नतवाल होते हैं, मूल भगके साथ ये तीन भन्न होते हैं। सम्यक्त्व और अनन्ता-नबन्धीक नौ भक्त होते हैं। सम्यक्तवकी अल्पतर और अवक्तव्य विभक्ति विकल्पसे होती है अत: श्रवस्थित विभक्तिक साथ १ कदाचित् एकः जीव श्ररूपतरवाला होता है, २ कदाचित् श्रनेक जीव श्चरुपतरवाले हात है इत्यादि, पूर्ववत् जानना । इसी तरह, श्वनन्तानुबन्धीकी भुजगार श्रीर श्रवस्थित विभवितवालोक साथ शेष दो विभवितवालोको भिलानेसे भी नौ भन्न होते हैं। दसरेसे लेकर साववें नरक तक, पश्चे न्द्रिय तिर्यश्च योनिनी तथा भवनित्रकम सम्यक्त्व प्रकृतिकी श्रवस्थित विभक्तिवाले नियमसे होते हैं। श्राल्पतरवाले होते ही नहीं हैं श्रीर श्रावक्तव्यवाले विकल्पसे होते हैं, इसलिए तीन ही भङ्ग होते हैं। पश्च न्द्रिय तिर्यश्व अपर्याप्तकोंमें सम्यवत्व श्रीर सम्याग्म-थ्यात्वका अवस्थित विभक्तिवाले नियमसे होते हैं इसलिए भक्क नहीं है। शेष सब प्रकृतियोकी भुजगार व श्रवस्थित विभक्तिवाले नियमसे होते हैं इसलियं प्रत्येक प्रवृतिके तीन तीन भन्न होते हैं। मनुष्य अपयोप्त सान्तर मार्गणा है अतः सभी प्रकृतियोंके सभी पद भजनीय हैं। श्रीर एक एक प्रकृतिके तीन तीन पद होते हैं अत: प्रत्येक प्रकृतिके खब्बीस खब्बीस भन्न होते हैं। सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिध्यात्वका केवल एक श्रवस्थित पद ही होता है, श्रत: दो दो भक्न होते हैं-- कदाचित् एक जीव अवस्थितवाला होता है, कदाचित् अनेक जीव अवस्थितवाले होते हैं। आनतसे

\$ ४६०. भागाभागाणु० दुविहो णिहे सो— ऋोघेण आदेसेण य । भोघेण मिच्छत्त--वारसक०--णवणोक० भुज० सम्बजीवाणं केव० १ संखे०भागो । अप्प० असंखे०भागो । अविद्वि० संखेज्ञा भागा । एवमणंताणु०चउक्क० । णविर अवत्तच्व० अणंतिमभागो । सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पद०—अवत्तच्व० असंखे०भागो । अविद्वि० ऋसंखेज्ञा भागा । एवं तिरिक्खोघं । णविर सम्मामि० अप्पद० णित्थ ।

६ ४६१. आदेसेण णेरइएसु तिरिक्खभंगो। णवरि अणंताणु०चउक्क० अव-त्तव्व० असंखे०भागो। एवं पढमपुढवि०--पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सार ति। विदियादि जाव सत्तमपुढवि०--पंचि०तिरिक्ख-जोणिणी०--भवण०--वाण०--जोइसि० एवं चेव। णवरि सम्मत्त० अप्पद० णित्थ। पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०--मणुसअपज्ज० णेरइयभंगो। णवरि अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० णित्थ। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण णित्थ भागाभागो।

लेकर सर्वार्थीसिद्ध पर्यन्त सभी प्रकृतियों की अवस्थित विभिन्नतवाले नियमसे होते हैं रोप पद विकल्पसे होते हैं, अतः आनतसे नव प्रैवेयक पर्यन्त तेईस प्रकृतियों के तीन तीन भङ्ग होते हैं; क्योंकि बाईसकी अल्पतर विभिन्नत विकल्पसे होती है और सम्यग्मिध्यात्वकी अवक्तव्य विभक्ति विकल्पसे होती हैं। अनन्तानुवन्धीकी अवक्तव्य, भुजगार और अल्पतर ये तीन विभक्ति विकल्पसे होती हैं इसलिये सत्ताईस भङ्ग होते हैं सम्यक्त्व प्रकृतिकी दो विभक्ति विकल्पसे होती हैं इसलिये नौ भङ्ग होते हैं। अनुदिशादिकमं सत्ताईस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्ति विकल्पसे होती है इसलिये प्रत्येकमं तीन तीन भङ्ग होते हैं। सम्याग्मध्यात्वकी केवल अवस्थित विभिन्त वाले ही नियमसे होते हैं, अतः भङ्ग नहीं है।

§ ४९०. भागाभागानुगमकी ऋषेचा निर्देश दो प्रकारका है—ऋषि और आदेश। श्रोषसे मिध्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायोंकी भुजगार विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं। अन्पत्तर विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं। अव्स्थित विभक्तिवाले संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपंचा जानना चाहिए। इतना विशेष हैं कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यावभक्तिवाले जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यम्भिध्यात्वकी अल्पतर और अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्वोम जानना चाहिए। इतना विशेष हैं कि उनभें सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है।

हु ४९१ त्रादेशसे नारिकयों में तिर्यश्वों के समान भक्ष.है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व, पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व पर्याप्त, सामान्य देव और सीधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोम जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नारकी, पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्यातिषियोम इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती। पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकों में नारिकयों से समान भक्ष है। इतना विशेष है कि उनमे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्ति नहीं होती। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भाग-

\$ ४६२. मणुसा० ओघं। णविर अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० असंखे०भागो। एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणी०। णविर जिम्म असंखे०भागो तिम्म संखे०भागो कायव्वो। आणदादि जाव णवगेवज्ज० सत्तावीसं पयडीणमण्यद० सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० अवत्तव्व० असंखे०भागो । सव्वेसिमविद्वद० असंखेज्जा भागा । णविर अणंताणु०४ भुन० असंखे०भागो । अणुदिसादि जाव अवराइदं ति एवं चेव । णविर सम्म०--सम्मामि०--अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० अणंताणु० भुन० णित्थ । सव्वद्दे सत्तावीसपयडीणमण्यद० संखे०भागो । अविद्व० संखेज्जा भागा । सम्मामि० णित्थ भागाभागो । एवं जाणिदण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

ः ४६३. परिमाणाणु० दुविहो णिहेसो — ओघेण ख्रादेसेण य । ओघेण बन्दीसं पयडीणं तिरिण पद० दन्वपमाणेण केवडिया ? अणंता । अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० असंखेजा । सम्मत्त-सम्मामि० दो पदा असंखेजा । अप्पद० संखेजा ।

४८४. आदेसण णेरइएसु ऋहावीसं पयडीणं सव्वपद्वि० असंखेजा। णविर सम्म० अप्पद० ओघ। एवं पढमपुढवि० पंचिदियतिरिक्ख--पंचि०तिरि०पज्ज०-भाग नहीं है।

\$ ४९२ सामान्य मनुष्यों से श्रोघकी तरह भंग हैं। इतना विशेष हैं कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यित्योंमें जानना चाहिए। इतना विशेष हैं कि जिनका भागाभाग असंख्यातवें भाग प्रमाण है उनमें संख्यातवें भाग प्रमाण कर लेना चाहिए। आनतसे लेकर नवनैवेयक तकके देवोमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिवाले जीव तथा सम्यक्त्व, सम्यिमध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचनुष्किकी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। सब प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यात बहु-भागप्रमाण हैं। इतना विशेष हैं कि अनन्तानुबन्धीचनुष्किकी सुजगार विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अनुदिशमें लेकर अपराजित विमान तकके देवोमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष हैं कि सम्यक्त्व, सम्यिमध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचनुष्किकी अवक्तव्य विभक्ति तथा अनन्तानुबन्धी चनुष्किकी सुजगार विभक्ति वहाँ नहीं है। सर्वार्थसिद्धिमें सत्ताईम प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिवाले जीव संख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अवस्थित विभक्तिवाले जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। सम्यिमध्यात्वका भागामाग वहाँ नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

६ ४९३. परिमाणानुगमकी ऋषेत्वा निर्देश दो प्रकारका है —श्रोघ और आदेश। श्रोघसे छुन्त्रीम प्रकृतियोंकी सुनगार, श्रन्यतर और अवस्थितिवमित्तवाले जाव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? श्रनन्त हैं। श्रनन्तानुबन्धीचनुष्ककी श्रवक्तव्य विमक्तिवाले जीव श्रसंख्यात हैं, सम्यक्तव श्रीर सम्यिग्मध्यात्वकी श्रवक्तव्य और श्रवस्थित विमक्तिवाले जीव श्रसंख्यात हैं और श्रन्यतर विभक्तिवाले जीव संख्यात हैं।

६ ४९४, स्त्रादेशसे नारिकयोंमें स्रद्वाईस प्रकृतियोंकी सब विभक्तिवालोंका परिमाण स्रसंख्यात है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वकी स्रस्पराविभक्तिवालोंका परिमाण स्रोधकी तरह जानना चाहिए। इसीप्रकार पहली पृथिवी, पश्चेन्द्रियतियँच, पश्चेन्द्रियतियश्चपर्याप्त, सामान्य देवोधं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णवरि सम्मत्त० अप्पद० णत्थि । एवं पंचिदियतिरि०जोणिणी-भवण०-वाण-जोदिसिए ति ।

\$ ४६५. तिरिक्खाणमोघं । णविर सम्मामि० अप्पद० णित्थ । पंचि०तिरि०अपज्ज० अन्वीसं पयदीणं तिरिण पदिव० सम्मत्त-सम्मामि० अविद्व० असंखेज्जा ।
एवं मणुसअपज्ज० । मणुस्सेमु इन्बीसं पयदीणं तिरिणपदिवह० सम्म०-सम्मामि०
अविद्व० असंखेज्जा । दोराहमप्पद० इराहमवन्तव्व० संखेज्जा । मणुसपज्ज०-मणुसिणीमु
सव्वपय० सव्वपदिव० संखेज्जा । आणदादि जाव अवराइदं नि अद्वावीसं पयदीणं
सव्वपदिव० असंखेज्जा । णविर सम्मत्त० अप्पद० ओघं । सव्वद्वे सव्वपयदीणं
सव्वपदिविहत्तिया संखेज्जा । एवं जाणिदृण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

१८६. खेत्ताणु० दुविहो णिद्दे सो—ओघेण त्रादेसेण य । त्रोघेण छव्वीसं पयडीणं तििएएएदवि० केविड० खेते १ सव्वलोगे । अणंताणु०चडक० श्रवत्तव्व० सम्म०-सम्मामि० तििएएएदवि० लोग० श्रसंखे०भागे । एवं तिरिक्खोघं । णविर सम्मामि० अण्यद० णित्थ । आदेसेण एएइएसु अद्वावीसं पयडीणं सव्वपद्वि० लोग० देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमे जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सात्वी पृथिवी तकके नारिकयोम इसीप्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिकी श्रव्यतर विभक्तिवाले वहाँ नहीं हैं । इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यंच योनिनी, भवनवासी. व्यन्तर श्रीर ज्योतिषियोंमें जानना चाहिए।

इं ४९५, सामान्य तिर्यं चों में श्रोघकी तरह मंग है। इतना विशेष है कि सम्यग्मिण्यात्वकी श्राल्पतर विभक्तिवाले वहाँ नहीं है। पश्चे न्द्रियितर्यं च श्राप्याप्तकों छव्बीस प्रकृतियों की सुजगार, श्राल्पतर श्रोर श्रावस्थितविभक्तिवाले जीव तथा सम्यक्त्व श्रोर सम्यग्मिण्यात्वकी श्रावस्थितविभक्तिवाले जीव तथा सम्यक्त्व श्रोर सम्यग्मिण्यात्वकी श्रावस्थितविभक्तिवाले जीव श्रावस्थितविभक्तिवाले श्रीर सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिण्यात्वकी श्रावस्थितविभक्तिवाले जीव श्रावस्थितविभक्तिवाले जीव श्रावस्थितविभक्तिवाले जीव श्रावस्थितविभक्तिवाले जीव श्रावस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। समुद्रावस्थात्वकी श्रावक्तिवाले जीव संख्यात हैं। सामुद्रावस्थाप्त श्रीर मानुष्यिनियां में सब प्रकृतियां की सब विभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। श्रावत स्वर्गसे लेकर श्रावस्थितिव विमान तकके देवां में श्रावस्थित्वाले की सब विभक्तिवाले जीव श्रावकी तयह है। सर्वार्थसिद्धिम सब प्रकृतियां की सब विभक्तिवालों का परिमाण श्रावकी तयह है। सर्वार्थसिद्धिम सब प्रकृतियों की सब विभक्तिवालों का परिमाण श्रावकी तयह है। सर्वार्थसिद्धिम सब प्रकृतियों की सब विभक्तिवालों का परिमाण श्रावकी तयह है। इतना हारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

् ४६६. क्षेत्रानुगमकी अपेचा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आदेश। श्रोघसे छन्दीस प्रकृतियों की भुजगार, अल्पतर श्रीर अवस्थितिवर्भाक्तवाले जीवां का कितना क्षेत्र है। सब लोक क्षेत्र है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले तथा सम्यक्तव श्रीर सम्यम्भिण्यात्वकी तीन विभक्तिवाले जीवों का चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीप्रकार मामान्य तिर्याचों में जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें सम्यग्मिण्यात्वकी श्राल्पतर विभक्ति नहीं है। श्रादेशसे नारिकयों में अद्याहस प्रकृतियों की सब विभक्तिवाले जीवों का

असंखे०भागे । एवं सन्वणेरइय-सन्वपंचिदियतिरिक्ख-सन्वमणुस्स-सन्वदेवे ति । एवं जाणिद्ण णेदन्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ४८७. पोसणाणु० दुविहो णिरं सो—-श्रोघेण आदेसेण य। श्रोघेण छन्नीसं पयडीणं तिरिए पदवि० खेत्तभंगो। अणंताणु०चडक्क० अवत्तव्व० सम्म० सम्मामि० अवत्तव्व० लोग० असंखे०भागो श्रद्धचोदस० देम्रूणा। सम्म-सम्मामि० अप्पद० खेतं। श्रविह० लोग० श्रसंखे०भागो अद्दचोद्दस० देम्रूणा सव्वलोगो वा।

§ ४६८. आदेसेण णेरइएसु छब्बीसं पयडीणं तिषिरापदिवि० सम्मत्त०-सम्मामि० अविडि० लोग० असंग्वे०भागो छचोइस० देसूणा। सम्म० अप्प० छएहमवत्तव्व० खेतं। पढमपुढवि० ग्वेतं। विदियादि जाव सत्तमि ति छब्बीसं पयडीणं तिषिरापदिवि० सम्म०-सम्मामि० अविडि० सग्पोसणं। छएहमवत्तव्व० खेतं।

\$ ४६६. तिरिक्ख० छब्बीसं पयडीणमोघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० अव-त्तव्व० खेत्तं। सम्म० अप्पद०-अवत्तव्व० सम्मामि० अवत्त० खेत्तं। दोएहमविडि ० लो० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। पंचिदियतिरिक्खतियम्मि छब्बीसं पयडीणं

चेत्र लाकके अमंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रियतिर्यंच, सब मनुष्य, श्रीर सब देवोमे जानना चाहिए। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

े ४९७ स्पर्शनानुगमकी अपेदा निर्देश दो प्रकारका है— श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे छन्वीस प्रकृतियां की तीन विभिन्तवाला का स्पर्शन चेत्रक समान है। श्रानन्तानुबन्धीचतुष्ककी श्रवक्तव्यविभिन्तवाले जीवों ने श्रीर सम्यक्व तथा सम्यग्मिण्यात्वकी श्रवक्तव्यविभिन्तवाले जीवों ने श्रीर सम्यक्व तथा सम्यग्मिण्यात्वकी श्रवक्तव्यविभिन्तवाले जीवों ने लोकक श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर चौदह राजुमेंसे कुछ कम श्राठ भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्व श्रीर सम्यग्मिण्यात्वकी श्रवप्तर विभिन्तवाले जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रवम्थितविभिन्तवाले जीवों ने लोकक श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर चौदह राजुमेसे कुछ कम श्राठ भागप्रमाण श्रीर सर्व लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

ं ४९८. ऋदिशसे नारिकयोमे छ्ट्यीस प्रकृतियोंकी तीन विभिवतवाले जीवाने और सस्यक्त्व तथा सम्यागिक्यात्वकी अवस्थितविभिक्तवाले जीवा ने लोकके असल्तातवें भागप्रमाण और चौदह राजुमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी अल्पतरिवभिक्त वालों का तथा सम्यक्त्व. सम्यागिक्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क इन छह प्रकृतियों की अवक्तव्यविभिक्तवानों का स्पर्शन चेत्रके समान है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन चेत्रके समान है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारिकयों में छ्व्बीस प्रकृतियों की तीन विभिक्तवालों का और सम्यक्त्व तथा सम्यग्निक्यात्वकी अवस्थित विभिन्तवालों का अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए। छ प्रकृतियों की अवक्तव्यविभिक्तवालों का स्पर्शन चेत्रके समान है।

ई ४९९, सामान्य तिर्यंचों में छ्रव्यीस प्रकृतियों का स्पर्शन ख्रोयकी तरह है। इतना विशेष हैं कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभिक्तवालों का स्पर्शन चेत्रके समान है। सम्यक्त्वकी ख्रवक्तर ख्रीर अवक्तव्यविभिक्तवालों का तथा सम्यग्मिध्यात्वकी ख्रवक्तव्यविभिक्तवालों का स्पर्शन चेत्रके समान है। सम्यक्तव ख्रीर सम्यग्मिध्यात्वकी ख्रवस्थितिविभक्तिवाले जीवों ने

श्वा॰ प्रतो सम्मामि० श्रप्पद० खेतं । श्ववट्वि॰ इति पाठः ।

तिरिरापदिवि सम्म०-सम्मामि० अविहि० लो० असंखे०भागो सन्वलोगो वा । सम्म० अप्पद० इएहमवत्त० इत्थि-पुरिस० भ्रज० लोग० असंखे०भागो । वादर-सुहुमएइंदि-एहिंतो आगंत्ण पंचिदियतिरिक्खेस उप्पण्णाणिमित्थि-पुरिसवेदभुजगारस्स सन्वलोगो किण्ण लब्भदे १ ण, विसोहिवसेण पंचिदियतिरिक्खेसुप्पज्जमाणाणं विग्गहगईए भ्रज-गारबंधाभावादो । णविर जोणिणी० सम्म० अप्पद० णित्थ । पंचि०तिरि०अपज्ज० इन्वीसं पयडीणं तिरिरापदिवि० सम्म०-सम्मामि० अविह० लोग० असंखे०भागो सन्वलोगो वा । णविर इत्थि-पुरिस० भ्रज० लोग० असंखे०भागो । एवं मणुस-अपज्ज० । मणुसतियस्स पंचिदियतिरिक्खभंगो । णविर सम्मामि० अप्प० खेतं ।

४००, देवे० छन्वीसं पयडीणं तिषिण पदवि० सम्मत्त-सम्मामि० अविह० लोग० असंखे०भागो अट्ट-णवचोइस० दसुणा । इत्थि-पुरिस० भुज० छएहमवत्तव्व० अट्टचोइस देसुणा । सम्मत्त० अप्प० खेतं । एवं सोहम्मीसाणे । भवण०--वाण०-

लोकके असख्यातवें भागप्रमाण और सर्वलोक प्रमाण चेत्रका स्वर्शन किया है। पश्चिन्द्रिय-तिर्यश्च. पश्चे न्द्रियतिर्य श्ववयाप्र और पश्चे न्द्रियनिर्यश्चयोनिनयों में इट्वीस प्रकृतियों की तीन विभक्तिवाल जीवों ने और सम्यवन्त्र तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाल जीवों ने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्वलोक प्रमाण चेत्रका स्वर्शन किया है। सम्यवन्त्वकी अन्यत्रविभक्तिवाल जीवोंने तथा इह प्रकृतियोकी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवोंने और स्त्रीयद तथा पुरुपवेदकी भुजगारविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

शंका-बादर श्रीर सूक्ष्म एकेन्द्रियों में से श्राकर पश्चेन्द्रियतिर्यश्चों में उत्पन्न होनेवाले जीवों के स्त्रीवेद श्रीर पुरुपत्रदकी भूजगारविभक्तिका स्पर्शन सर्वलोक क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान – नहीं, क्योंकि विशुद्ध परिएमोंके वशसे पश्चे न्द्रिय तिर्यश्चोमे उत्पन्न होनेवले जीवों के विग्रह्मतिमें भुजगारका स्त्रमाव है।

इतना विशेष है कि पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च योनिनियों में सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है। पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकों में छव्बीस प्रकृतियों की तीन विभक्तिवाले जीवोंने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्निथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवाले जीवों ने लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण और सर्वलोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इतना विशेष है कि स्त्रीयद और पुरुष-वेदकी भुजगार विभक्तिवाले जीवों ने लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकों में जानना चाहिए। सामान्य मनुष्य,मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियों में पश्चेन्द्रिय तिर्यश्चकि समान भक्क है। इतना विशेष है कि सम्यग्निथ्यात्वकी अल्पतर विभक्ति वालों का स्पर्शन चेत्रके समान है।

ई ५०० देवां में छुट्यीस प्रकृतियों की तीन विभिक्तवाल जीवां ने और सम्यक्त्य तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभिक्तवाल जीवां ने लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और चौदह राजूमेसे कुछकम आठ और नौ भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद और पुरुपवेदकी भुजगार विभिक्तवाल जीवां ने और छह प्रकृतियों की अवक्तव्य विभिक्तवाल जीवां ने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्तवकी अल्पतर विभिक्तवालों का

श्रा० प्रतौ देसु्णा सन्वलोगो वा सम्म• इति पाठः ।

जोदिसि॰ एवं चेव । णवरि सगपोसणं । सम्म॰ ऋष्पद॰ णित्थ । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारो ति अहावीसं पयडीणं सन्वपदिवि॰ लोग॰ असंखे॰भागो अहचोइस देसूणा । णवरि सम्म अप्प॰ खेतं । आणदादि जाव अच्चुदे ति अहावीसं पयडीणं सन्वपदिवि॰ सगपोसणं । सम्म॰ अप्पद० खेतं । उवरि खेत्तभंगो । एवं जाणिदृण णेदन्वं जाव अणाहारि ति ।

५ ५०१. कालाणु॰ दुविहो णिद्दे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छब्बीसं पयडीणं तिरिरापद्वि॰ सम्म॰-सम्मामि॰ अविडि॰ सञ्बद्धा । सम्म॰ अप्पद० ज॰ एगस॰, उक्क॰ द्यंतोमु॰। सम्मामि॰ अप्पद० ज॰ एगस॰, उक्क॰ सखेजा समया। सम्मत-सम्मामि॰-अणंताणु॰चउक्क॰ अवत्ताञ्व॰ ज॰ एगस॰, उक्क॰ आविलि॰ असंखे०-

स्पर्शन चेत्रके समान है। इसी प्रकार साधर्म और ईशान स्वर्गम जानना चाहिए। भवनवासी, व्यन्तर श्रीर ज्योतिपियों में इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि श्रपना श्रपना स्पर्शन कहना चाहिए। सम्यक्त्वकी श्रन्पनर विभिन्ति वहाँ नहीं होती। सनत्कुमारसे लेकर सहस्त्रार स्वर्ग तकके देवा में श्रष्ठाईस प्रकृतियों की सब विभिक्तवाले देवों ने लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण और चौदह राजुमेसे कुछ कम श्राठ भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वकी श्रन्पतर विभक्तिवालोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रानत कन्पसे लेकर श्रन्थतन करूप तकके देवों में श्रष्ठाईस प्रकृतियों की सब विभक्तिवालों का स्पर्शन श्रपने श्रपने श्रपने स्पर्शनके समान है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी श्रन्पतर भिमक्तिवालोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रन्थत स्वर्गसे उपर स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रन्थत स्वर्गसे उपर स्पर्शन चेत्रके समान है। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए।

विश्पेष्ध - श्रांचसे अनन्तानुबन्धी चतुष्क श्रीर सम्याग्मध्यान्व की अवक्तव्य विभक्तिन्वाला का म्पर्शन जो आठ बटं चौद्द राजु कहा है तो दंबगित की अपेक्षा सममना। सम्यक्त्व और सम्याग्मध्यात्व की अवस्थित विभक्ति राला ने अतीत कालमें सर्वलाक स्पर्श किया है, विहार-वस्त्वस्थान श्रीर विक्रिया पदके द्वारा वर्तमानमें लोकका असंख्यातवाँ भाग श्रीर अतीत कालमें कुछ कम आठ बटं चौद्द राजू स्पर्श किया है। आदेशसे नारिक्या में छर्त्वास प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिवाले जीवों ने वर्तमान कालमें लोकका असंख्यातवाँ भाग तथा अतीत कालमें लोकका असंख्यातवाँ भाग श्रीर मार्णान्तिक तथा उपपाद पदके द्वारा कुछ कम छह बटं चौद्द राजु केत्रका स्पर्शन किया है। देवोमें छर्द्धास प्रकृतियोक्ती भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिवालों का तथा सम्यक्त्व और सम्याग्मध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालों का स्पर्शन वर्तमान की अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग और अतीत काल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटं चौद्द राजु तथा मारणान्तिक पदके द्वारा कुछ कम नौ बटं चौद्द राजु तथा मारणान्तिक पदके द्वारा कुछ कम नौ बटं चौद्द राजु है। इत्तना विशेष है कि स्वीवद और पुरुषवेद की भुजगार विभक्तिवालों ने तथा छह प्रकृतियों की अवक्तव्य विभक्तिवालों ने अतीत कालमें कुछ कम आठ बटं चौद्द राजू केत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार शेप स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

६ ५०१ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदंश। ओघसे छन्नीस प्रकृतियां की तीन विभक्तियों का और सम्यक्त तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्ता काल सर्वदा है। सम्यक्तिकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुहूर्त है। सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और अल्क्ष्य

भागो । एवं तिरिक्खोघं । णवरि सम्मामि० अप्पद्० णत्थि ।

५ ५०२. आदेसंण णेरइएस छन्बीसंपयडीणं भुज० अविह० सम्मत्त-सम्मा-मिच्छत्ताणमविह० सन्बद्धा । छन्बीसंपयडीणमप्पद० छण्डमवत्त० ज० एगस०, उक्क॰ आविल० असंखे०भागो । सम्म० अप्पद० ओघं । एवं पढमपुढवि०-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णविर सम्म० अप्पद० णित्थ । एवं जोणिणि--भवण०--वाण०-जोदि-सिए ति । पंचि०तिरि०अपज्ज० अहावीसंपयडीणमप्पप्पणो पदवि० णेरइयभंगो ।

५०३. मणुसितिएस इन्बीसंपयडीणं तिण्णिपद्वि० णेरइयभंगो । णविर चदुसंज०-पुरिस० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० अंतोम्र० । सम्म०-सम्मामि० अप्प०-अवद्वि० ओघं । इण्डमवत्तन्व० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । णविर मणुस-पज्ज० मिच्छ०-वारसक०-अद्योक० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया ।

विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल त्रावलीके त्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्वों में जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यग्मिध्यात्वकी त्रारूपतर विभक्ति उनमें नहीं होती।

विशेषार्थ-अपर नाना जीवों की श्रपेक्षा विभक्तियों का काल बतलाया है। श्रोघसे सम्यक्त्व प्रकृति की श्ररूपतर विभक्तिवालों का काल जघन्यसे एक समय है। जैसे श्रनेक जीवों ने दर्शनमाहके क्षपण कालमां एक साथ एक समयके लिये सम्यक्त्वकी श्ररूपतरविभक्ति की। इसी प्रकार ब्ल्कुए काल भी समभना।

\$ ५०२ : आदेशसे नारिकयों में छन्दीस प्रकृतियों की भुजगार और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त और सम्यग्मिश्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। छन्दीस प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। छन्दीस प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका ज्ञान्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्तिकी अस्पतर, विभक्तिका काल आपकी तरह है। इसी प्रकार पहली पृथिवी. पश्चेन्द्रियत्त्र्यश्च, पश्चेन्द्रियत्त्र्यश्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार तकके देवों में जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नारिकयों में इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ सम्यत्वकी अस्पतर विभक्ति नहीं हं।ती। इसी प्रकार पश्चेन्द्रिय तिर्यश्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क-देवों में जानना चाहिए। पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकों में अष्टाईस प्रकृतियों की अपनी अपनी विभक्तियों का काल नारिकयों के समान है।

§ ५०३. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोमे छब्बीस प्रकृतियों की तीन विभिन्नियों का काल नारिकयों की तरह है। इतना विशेष है कि चार संज्वलन और पुरुषवद्की अस्पतर विभिन्नितका जघन्य काल एक समय हें और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यिग्धियात्वकी अल्पतर और अवस्थितविभिन्नितका काल ओघकी तरह है। छह प्रकृतियों की अवक्तव्य विभिन्निका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इतना विशेष है कि मनुष्यपर्याप्तकों में मिध्यात्व, बारह कषाय और आठ नाकषायों की अल्पतर विभन्निका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार

एवं मणुसिणी० । णवरि पुरिस० अप्प० ज० एगस०, उक्क० संखेजा समया। मणुसअपज्ज० छन्वीसंपयदीणं भुज०-अवद्वि० सम्म०-सम्मामि० अवद्वि० ज० एगस०, उक्क० पित्तदो० असंखे०भागो । छन्वीसंपय० अप्प० णेरहयभंगो ।

३ ४०४. आणदादि जाव णवगेवज्ञा ति अद्वावीसंपयडीणमविद्वे० सन्बद्धा । छब्बीसंपय० अप्प० छण्डमवत्तव्य० ज० एगस०, उक्क० आवित्वि० असंखे०भागो । सम्म० अप्पद० ओघं । अणंताणु०४ भ्रुज० ज० एगस०, उक्क० पितदो० असंखे०भागो । अणुदिसादि जाव अवराइदो ति एवं चेव । णविर छण्डमवत्त० अणंताणु०४ भ्रुज० णित्य । सन्बद्घे छब्बीसंपयडीणमप्प० ज० एगस०, उक्क० संखेज्ञा समया । अविद्वि० सन्बद्धा । सम्म० अप्प० ओघं । सम्म०-सम्मामि० अविद्वि० सन्बद्धा । एवं जाणिद्ण णेदन्वं जाव अणाहारि ति ।

ई ४०४. श्रांतराणु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण छव्वीसंपय-दःणं तिण्णिपद्वि० सम्म०-सम्मामि० अविह० णित्थ श्रांतरं। सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा। दोण्हमवत्त० अणंताणु०चउक्क० अवत्त० श्रांतरं ज० एगस०, उक्क० चउवीसं अहोरते सादिरेगे।

मनुष्यिनियों में जानना चाहिए। इतना विशेष है कि पुरुष्येदकी अल्पतर विभिक्तका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। मनुष्य अपर्याप्तकों में छव्बीस प्रकृतियों की मुजकार और अवस्थितविभिक्तका तथा सम्यक्त और सम्यग्मिण्यात्वकी अवस्थितविभिक्तका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। छव्बीस प्रकृतियों की अल्पतर विभिक्तका काल नारिकयों के समान है।

्ष्ठि श्रानतसे लेकर नवसैंवेयक तकके देवां मे श्रद्वाहंस प्रकृतियां की श्रवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। इद्वीस प्रकृतियां की श्रवस्तराविभक्तिका और इह प्रकृतियां की श्रवक्तव्यविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रावलों श्रमस्यातवें भाग प्रमाण है। सम्यवस्वकी श्रव्यात विभक्तिका काल श्रोधके समान है। श्रान्तानुबन्धी चतुष्ककी मुजकारिवभिक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रानुदिशसे लेकर श्रवराजित विभान तकके देवां में इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ इह प्रकृतियां की श्रवक्तव्य विभक्ति श्रीर श्रान्तानुबन्धी चतुष्ककी भुजगार विभक्ति नहीं होती। सर्वार्थसिद्धिमें इद्वीस प्रकृतियों की श्रवस्थत विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व की श्रवस्थत विभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व की श्रवस्थत विभक्तिका काल सर्वदा है। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ ५२५. श्रन्तरानुगमकी श्रपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे छुठ्यीस प्रकृतियोंकी तीन विभिक्तयोंका श्रीर सम्यक्त तथा सम्यग्भिध्यात्वकी श्रवस्थित विभिक्तका श्रन्तर नहीं है। सम्यक्त श्रीर सम्यग्भिध्यात्वकी श्रन्तर विभिक्तका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर छ मास है। इन दोनोंकी तथा श्रनन्तानुवन्धी चतुष्ककी श्रवक्तव्य विभिक्तका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ श्रिषक चौबीस

- ४०६. त्रादेसेण णेरइएस छन्वीसंपयडीणं भुज०-अविदे सम्म०-सम्मामि० अविदे णित्थ त्रांतरं । अप्प० ज० एगस०, उक्क० स्रतोसु० । सम्म० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । सम्मामि० अप्पद० णित्थ । छण्हमवत्तन्व० ओघं । एवं पढमपुढवि० पंचिदियतिरिक्सदोण्णि देवांघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति । विदि-यादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णविर सम्म० अप्पद० णित्थ । एवं पंचि०तिरि०-जोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए ति ।
- १ ४०७. तिरिक्ख० छन्वीसंपयडीणमोघं । सम्म०--सम्मामिच्छत्ताणं णेरइय-भंगो । पंचिदियतिरिक्खअपज्ञ० छन्वीसंपयडीणं तिण्णिपद्वि० सम्म०-सम्मामि० अविद्वि० णेरइयभंगो । मणुसतिण्णि छन्वीसंपयडीणं णेरइयभंगो । सम्म०--सम्मामि० ओघं । णविर मणुसिणी० सम्म०-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । मणुसअपज्ञ० छन्वीसंपयडीणं तिण्णि पद्वि० सम्म०-सम्मामि० अविद्वि० ज० एगस०, उक्क० पिटदा० असंखे०भागो ।
- ३ ५०८. आणदादि जाव णवगेवज्ञा ति छव्वीसंपयडीणमप्पद० ज० एगस०, रात दिन है।
- ६ ५.६. त्रादेशसे नार्रकयोमे छ्वीस प्रकृतियोंकी मुजगार छौर श्रवस्थित विभिन्तका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी श्रवम्थित विभिन्निका श्रन्तर नहीं है। श्रन्पतर विभिन्निका ज्ञयन्य श्रन्तर क समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर वर्ष प्रथक्त्व प्रमाण है। सम्यग्मिथ्यात्वकी श्रन्तर वर्ष प्रथक्त्व प्रमाण है। सम्यग्मिथ्यात्वकी श्रन्तर विभिक्त वहाँ नहीं होती। छह प्रकृतियोकी श्रवक्तव्य विभिन्तिका श्रन्तर श्रायके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पश्चेन्द्रियतिर्यश्च पर्धानित्र सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर महस्तार म्यर्ग तकके देवोमे जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सात्वी पृथिवी तकके नारकियोमे इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ सम्यक्त्वकी श्रन्तर विभिन्न नहीं होती। इसी प्रकार पश्चेन्द्रियतिर्यश्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर श्रीर ज्योतिष्क देवोमें जानना चाहिए।
- ६ ५०७. सामान्य तिर्यश्वोमे छन्वीस प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधकी तरह है। सम्यक्त श्रौर सम्यग्मिण्यात्वका भङ्ग नारिकयोंके समान है। पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व श्रप्याप्तिकोंमे छन्वीस प्रकृतियोंकी तीन विभित्ततिकों तथा सम्यक्त श्रौर सम्यग्मिण्यात्वकी श्रवस्थित विभित्तिका भङ्ग नारिकयोंके समान है। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त श्रौर मनुष्यिनियोंमे छन्वीस प्रकृतियोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। सम्यक्त्व श्रौर सम्यग्मिण्यात्वका भङ्ग श्रोषके समान है। इतना विशोप है कि मनुष्यिनियोंमे सम्यक्त्व श्रौर सम्यग्मिण्यात्वकी श्रन्तर विभिन्तिका जघन्य श्रम्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रम्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। मनुष्य श्रपर्याप्तकोंमें छन्वीस प्रकृतियोंकी तीनों विभिन्तियोंका तथा सम्यक्त्व श्रौर सम्यग्मिण्यात्वकी श्रवस्थित विभिन्तिका जघन्य श्रम्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रम्तर पत्यके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है।
- ६ ५०८. श्रानतसे लेकर नवयैंग्यक तकके देवोमें छव्बोस प्रकृतियोंकी श्रस्पतर विभक्तिका
 जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर सात रात दिन है। श्रवस्थितविभक्तिका श्रन्तर

उक्क० सत्त रादिंदियाणि । अविष्ठ० णित्थि श्रंतरं । अणंताणु०चउक्क० भुज०-अवत्तव्व० जह० एगस०, उक्क० चउवीसमहोरते सादिरंगे । सम्म०-सम्मामि० देवोघं । अणुदि-सादि जाव सन्वदृक्षिद्धि ति सत्तावीसंपयडीणमप्प० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं पित्तदो० संखे०भागो । अद्वावीसंपयडीणमविद्वि० णित्थि श्रंतरं । एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव श्रणाद्दारि ति ।

ई ५१०. अप्पाबहुमाणुममेण दुविहो णिहे सो—ओवंण आदेसेण य । ओवेण मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० सम्बत्योवा अप्पद्गावहत्तिया जीवा । भुज०विहत्ति० जीवा असंखे०गुणा । अबहि० जीवा संखे०गुणा । सम्म०-सम्मामि० सम्बत्योवा अप्पद्गिव० । अवत्त० असंखे०गुणा । अबहि० असंखे०गुणा । अणंताणु०च उक्क० सम्बत्योवा अवत्त्वच । अप्पद० अणंतगुणा । भुज० असंखे०गुणा । अबहि० संखे०गुणा । विह्या है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुगगर आग अवस्थ्या जघन्य अन्तर एक ममय है और सम्बद्ध अस्तर कर अधिक जीवीस सन्दर्शित है । सम्बद्ध और सम्बद्धिक्यान्वका

नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुःगार आर अवस्थ्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक चौबीस गत दिन है। सम्यान्व और सम्यामध्यात्वका भङ्ग सामान्य देवोकी तरह है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थमिछि तकके देवोमे सत्ताईस प्रकृतियोकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर विजयादिक चारमे वर्षप्रथवन्यपमाण और सर्वार्थमिछिम पन्यके संख्यातवें भागप्रमाण है। अष्टुईस प्रकृतियोकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ-श्रांघसे जिन प्रश्नियोंके जो विभक्तिवाले जीव सदा पाये जाते हैं उनमें श्रन्तर हो ही कैसे मकता है ? श्रांघसे सम्यक्त्व और सम्यिग्ध्यात्वकी श्रन्पतर विभिन्नत्वालों का उत्क्रप्ट श्रन्तर छ माम है, क्योंकि इन प्रश्नियोंकी यह विभिन्नत दर्शनमोहके चपकके होती है श्रोर नाना जीवोकी अपेचा उनके चपणकालका उन्क्रप्ट श्रन्तर छ माम होता है।शेप सुगम है।

६ ५०९ भावानुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औद्धिक भाव है। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

ु ५१०. अन्यवहु वानुगमकी अपंचा निर्देश दो प्रकारका है - ओष और आदेश। श्रोषसे मिध्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपार्योक्षी अन्यतर विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे भुजगार विभक्तिवाले जीव असख्यातगुर्ए हैं। उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव संख्यातगुर्ए हैं। उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव संख्यातगुर्ए हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अन्यतर विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुर्ए हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुर्ए हैं। उनसे अल्पतर विभक्तिवाले जीव अनन्तगुर्ए हैं। उनसे अल्पतर विभक्तिवाले जीव अनन्तगुर्ए हैं। उनसे अल्पतर विभक्तिवाले जीव अनन्तगुर्ए हैं। उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव सख्यातगुर्ए हैं। उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव सख्यातगुर्ए हैं।

ता० प्रती पिलदो० श्रसंखे०भागो इति पाठः ।

§ ५११. आदेसेण णेरइएस्र तेबीसंपयढीणमोघं। सम्मामि० सन्वत्थोवा अवत्त०। अविदि० असंखे०गुणा। अणंताणु०चडकः० ओघं। णविर अप्पद० असंखे०गुणा। एवं पदमप्रुढवि-पंचिदियतिरिक्ल-पंचि०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सार ति। विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव। णविर सम्मत्त० अप्प० णित्थ। एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए ति।

§ ५१२. तिरिक्खा ० ओघं । णविर सम्मामि० णेरइयभंगो । पंचिदियतिरिक्ख-अपज्ज ० छब्बीसंपयडीणं सन्वत्थोवा अप्पद० । भ्रुज० असंखे०गुणा । अविष्ठ० संखे०-गुणा । सम्म०--सम्मामि० णित्थ अप्पाबहुद्यं । एवं मणुसअपज्ज० । मणुसाणं णेरइय-भंगो । णविर सम्म०-सम्मामि० सन्वत्थोवा श्रप्प० । श्रवत्त० संखे०गुणा । अविष्ठ० असंखे०गुणा । एवं [मणुस-] पज्जत्त-मणुसिणीणं । णविर सन्वत्थ संखेजगुणां कायन्वं ।

१५१३. आणदादि जाव णवगेवज्ञा त्ति वावीसंपयडीणं सव्वत्थोवा अप्पद० । अविद्वि असंखे ० गुणा । सम्म०-सम्मामि० देवोघं । अणंताणु०च उक्क० सव्वत्थोवा अवत्त०। अप्पदर० संखे ० गुणा । अुज० असंखे ० गुणा । अविद्वि असंखे ० गुणा । अणुदिसादि

[§] ५११. श्रादेशसे नारिकयोंमें तेईस प्रकृतियोंका अल्पबहुत्व श्रोघके समान है। सम्यिमध्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे अवस्थितिवभक्तिवाले जीव असंख्यातगुर्णे हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अल्पबहुत्व श्राघके समान है। इतना विशेष है कि अल्पतर विभक्तिवाले असंख्यातगुर्णे हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चे न्द्रियतिर्थञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्थञ्चपर्याप्त, सामान्य देव तथा सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारिकयोंमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति वहाँ नहीं होती। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्थञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमे जानना चाहिए।

[§] ५१२. सामान्य तिर्यश्वोमें श्रोधके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि सम्यग्मिध्यात्वका मङ्ग नारिकयों के समान है। पश्चेन्द्रिय तिर्यश्व श्रपयोप्तकों में छव्बीस प्रकृतियों की श्रन्पतर विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे भुजगार विभक्तिवाले जीव श्रसंख्यातगुऐ हैं। उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव संख्यातगुऐ हैं। सम्यवत्व श्रीर सम्यग्मिध्यात्वका श्रन्पबहुत्व वहाँ नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य श्रपयोप्तकों में जानना चाहिए। मनुष्यों में नारिकयों के समान मङ्ग है। इतना विशेष है कि सम्यवत्व श्रीर सम्यग्मिध्यात्वकी श्रन्पतर विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे श्रवक्तव्यविभक्तिवाले जीव संख्यातगुऐ हैं। उनसे श्रवस्थित विभक्तिवाले जीव श्रसंख्यातगुऐ हैं। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त श्रीर मनुष्यिनयों जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सर्वत्र श्रसंख्यातगुऐ के स्थानमें संख्यातगुए। कर लेना चाहिए।

६ ५१३. श्रानतसे लेकर नवप्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंको श्रन्पतरविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे श्रवस्थितविभक्तिवाले जीव श्रसंख्यातगुऐ हैं। सम्यवस्व श्रीर सम्यग्मिथ्यात्वका श्रन्पबहुत्व सामान्य देवोंके समान है। श्रनन्तानुबन्धीचतुष्ककी श्रवक्तव्य-विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे श्रन्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यातगुऐ हैं। उनसे श्रुजगार विभक्तिवाले जीव श्रसंख्यातगुऐ हैं। उनसे वश्रास्थत विभक्तिवाले जीव श्रसंख्यातगुऐ ।

जाव अवराइद ति सत्तावीसंपयडीणं सन्वत्थोवा अप्पद०। अविद्व० असंखे०गुणा। सम्मामि० णित्थ अप्पाबहुद्यं। सन्वद्वसिद्धिम्मि एवं चेव। णविर संखेज्जगुणं कायव्वं। एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति।

पदणिक्खेवो

§ ५१४. पदिणक्ते ति तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—समुिकत्तणा सामितं अप्पाबहुअं चेदि । समुिकत्तणाणु० दुविहो णियमा—जह० उकस्सओ चेदि । उकस्से पयदं । दुविहो णिद्दे सो—अोघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत-सोल-सक०-णवणोक० अत्थि उकस्सिया वट्टी उकस्सिया हाणी अवद्वाणं च । सम्म०-सम्मामिच्छताणं अत्थि उकस्सिया हाणी अवद्वाणं च । एवं तिएहं मणुस्साणं ।

§ ५१५. आदेसेण णेरइएसु छब्बीसं पयडीणमोघं। सम्म० अत्थि उक्क॰ हाणी०। एवं पढमपुढिव-तिरिक्खितय नेदेवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारकप्पो ति । एवं विदि-यादि जाव सत्तमि ति । णविर सम्मत्त० उक्क० हाणी णित्थ । एवं पंचि०तिरि०-जोणिणी-पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिए ति ।

ई । अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अल्पतरविभक्तिवालें जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे अवस्थितविभक्तिवालें जीव असंख्यातगुणें हैं। सम्यग्मिध्यात प्रकृतिका अल्पबहुत्व नहीं है। सर्वार्थीसद्धिमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि असंख्यातगुणेके स्थानमें संख्यातगुणा कर लेना चाहिये। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

पदनिक्षेप

६ ५१४. पदिन त्तेपमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं —समुत्कीर्तना. स्वामित्व और अल्प-बहुत्व। समुत्कीर्तनानुगम नियमसे दो प्रकारका है —जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है —ओघ और आदेश। ओघसे मिण्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और अवस्थान होता है। सम्यक्त और सम्यग्मिण्यात्वकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान होता है। इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योमे जानना चाहिए।

इ ५१५. त्रादेशसे नारिकयोमें छ्रव्वीस प्रकृतियोंका भङ्ग त्रांघके समान है। सम्यक्त प्रकृतिकी उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार पहली पृथिवी सामान्य तिर्यश्व, पश्चेन्द्रियतिर्यश्व, पश्चेन्द्रियतिर्यश्व, पश्चेन्द्रियतिर्यश्व, पश्चेन्द्रियतिर्यश्व, पश्चेन्द्रियतिर्यश्व, पश्चेन्द्रियतिर्यश्व, पश्चेन्द्रियतिर्यश्व, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमे जानना चाहिए। इतना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारिकयोमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ सम्यक्त्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट हानि नहीं होती। इसी प्रकार पश्चेन्द्रियतिर्यश्व-योनिनी, पश्चेन्द्रियतिर्यश्व श्रपर्याप्त, मनुष्यश्रपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए।

§ ५१६ त्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमं छव्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि

१. ता० ग्रा० प्रस्योः पदमदुविव पंचिविविवितिरिक्सतिय इति पाठः ।

अवद्वाणं च । णवरि त्र्याणदादि जाव णवगेवज्ञा ति अणंताणु०४ ओघं । सम्मत्त० देवोघं । एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

ृ ५१७. जहएएएयं पि एवं चेव भाणिद्व्वं। णविर जहण्णिष्दं सो कायव्वो। ५५१८. सामित्ताणु० द्विहो—जहएएएएकस्सं च। उक्कस्से पयदं। द्विहो णिद्दं सो—ओघेण आदेसेण य। आघेण मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्सिया वट्टी कस्स ? अण्णदरो जो चदुटाणियजवमज्भस्सुविर्मतां मुहुतमणंतगुणाए वट्टीए बिट्टिदो तदो उक्कस्ससंकिलेसं गंतूण उक्कस्साणु०भागं वंध्रमाणस्म तस्स उक्कस्सिया वट्टी। तस्सेव से काले उक्कस्समवटाणं। उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो उक्कस्साणुभाग-संतकम्मओ तेण उक्कस्साणुभागकंडए हदे तस्स उक्किस्सिया हाणी। सम्मत्त-सम्मामि-च्छताणमुक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो दंसणमोहक्खवां तेण पढमे अणुभाग-कंडए हदे तस्स उक्किस्सिया हाणी। तस्सेव से काले उक्कस्समवटाणं। एवं तिण्हं मणुस्साणं।

\$ ५१६. त्रादेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणमोघं। सम्म० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरों जो दंसणमोहक्खवओं सम्मत्तिहिदी त्र्रंतासुहुत्तमित्थ ति णेरइएसु उववण्णों तस्स विदियसमयणेरइयस्स उक्क० हाणी। एवं पढमपुढवि व-तिरिक्खितय-देवोघं त्रीर अवस्थान होता है। इतना विशेष है कि आनतसे लेकर नवप्रैंत्यक तकके देवोमे अनन्तानु-बन्धीचतुष्कका भङ्ग आघके समान है। सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग सामान्य देवोके समान है। इस प्रकार जानकर अनाहार्रा पर्यन्त ले जाना चाहिये।

\$ ५१७. इसी प्रकार जघन्यका भी कथन कर लेना चाहिये। ख्रन्तर केवल इतना है कि उत्क्रष्टके स्थानम जघन्यका निर्देश करना चाहिये।

ु ५१८ स्वामित्वानुगम दो प्रकारक। है— जघन्य श्रीर उत्कृष्ट। उत्कृष्टसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रोर श्रादेश। श्रोघसे मिण्यात्व, सोलह कपाय श्रीर नव नाकपायोकी उत्कृष्ट गृद्धि कसके हाती हैं? जो चतुःस्थानिक ययमध्यके उपर श्रन्तमुहूर्न तक श्रमन्तगुणी शृद्धिसे बढ़ा, बादमे उत्कृष्ट संक्रेशको प्राप्त होकर जिसने उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध किया उसके उत्कृष्ट श्रुद्ध हाती है। तथा उसीके श्रमन्तर समयमे उत्कृष्ट श्रवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानि कसके होती है। जिस उत्कृष्ट श्रनुभागकी सत्तावाले जीवने उत्कृष्ट श्रनुभाग का काण्डक घान किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। सम्यक्त श्रीर सम्यग्निथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि कसके हाती है? जो दर्शनमाहका चपक जीव है उसके द्वारा प्रथम श्रनुभाग काण्डकका घात किये जान पर उसके उत्कृष्ट हानि होती है। उसीके श्रमन्तर समयमे उत्कृष्ट श्रवस्थान होता है। इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योमें जानना चाहिए।

ु ५१९. त्रादेशसे नारिकयोम छर्चीस प्रकृतियोंका भङ्ग त्रांघके समान है। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट ह्यांन किसक होती है ? जो दर्शनमोहका क्षपक जीव सम्यक्त्व प्रकृतिकी श्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिक रहते हुए नारिकयोम उत्पन्न हुआ, द्वितीय समयवर्ती उस नारकीके सम्यक्त्व प्रकृतिकी उत्थृष्ट ह्यांन होती है। इसी प्रकार प्रथम नरक, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चीन्द्रय तिर्यञ्च, पञ्चीन्द्रय तिर्यञ्च, पञ्चीन्द्रय तिर्यञ्च, पञ्चीन्द्रय तिर्यञ्च, सामान्य देव श्रीर सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्नार स्वर्ग तकके देवोंमें

सोहम्मादि जाव सहस्सारे ति । एवं विदियादि जाव सत्तमि ति । णवरि सम्मत्तः जकः हाणी णत्थि । एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिए ति ।

§ ५२०. पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० इब्बीसं पयडीणमुक्क० वट्टी कस्स १ जो तप्पाओग्गजहण्णाणुभागसंतकिम्मओ तेण तप्पाओग्गजक्रस्साणुभागे पवद्धे तस्स उक्क-स्सिया वट्टी । उक्क० हाणी कस्स १ अण्णद्रो जो उक्कस्साणुभागसंतकिम्मओ उक्कस्साणुभागखंडयमागाएदूण पुणो पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तपसु उववण्णो तेण उक्कस्साणुभागखंडए घादिदे तस्स उक्किस्सया हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवद्दाणं । एवं मणुस०अपज्ज० ।

\$ ५२१. आणदादि जाव णवगेवज्ञा ति छव्वीसं पयडीणमुक्क० हाणी कस्स १ अण्णदरा जा पहमसम्मत्ताहिम्रहा तेण पहम अणुभागखंडए हदे तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवहाणं। णविर अणंताणु०४ उक्क० वड्डी करस १ अण्ण० विसं-जोएद्ण संज्ञतस्स तप्पाओग्गउक्कस्ससंकिलेस गदस्स तस्स उक्क० वड्डी । सम्मत्त० देवोघं । अणुहिसादि जाव सव्वहिसिद्धि ति छव्वीसं पयडीणमुक्क० हाणी कस्स १ अएएएदरा जो अणंताणुवंधिचउक्कं विसंजोएमाणओं तेण पहमें अणुभागखंडए हदे तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवहाणं । सम्मत्त० देवोघं । एवं जाणिद्ण णेदच्यं जानना चाहिए । इसी प्रकार दूसरीसे लेकर सातवी प्रथिया तककं नार्गकयोम जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वहाँ सम्यक्वकी उन्कृष्ट हानि नहीं होती । इसी प्रकार पञ्चीन्द्रयतिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, ज्यन्तर और ज्योतियी देवोम जानना चाहिए ।

१ ५२०. पश्चेन्द्रियतिर्यश्चश्रपर्याप्तकामे छ्रद्यीस प्रश्नितयोकी उत्कृष्ट शृद्धि किसके होती है ? जिसके अपने याग्य जघन्य अनुभागकी सत्ता है उसके अपने याग्य उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने पर उत्कृष्ट शृद्धि होती है। उत्कृश्न हानि किसके होती है ? जिसके उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ता है वह उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकको प्रह्ण कर पुनः पश्चिन्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्तकाम उत्पन्न हुआ। वहाँ उसके द्वारा उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका धात किये जाने पर उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयम उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोम जानना चाहिए।

६ ५२१ त्रानतसे लेकर नवप्रैवयक तकके देवोम छ्रव्यास प्रकृतियोकी व्ल्कृष्ट हानि किसके हाती है ? जो जीव प्रथम सम्यक्त्वकं अभिमुख है उसके द्वारा प्रथम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा उसकि अनन्तर समयम उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचलुष्ककी उत्कृष्ट युद्धि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धी कपायका विसयोजन करके जा जीव पुनः उनसे सयुक्त होकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्षेशका प्राप्त होता है उस जावके उत्कृष्ट युद्धि होती है। सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग सामान्य देवोके समान है। अनुदिशसे लेकर सवाधासद्धि तकके देवोम छ्रव्यीस प्रकृतियोकी उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धीचलुष्कका विसयोजन करनेवाला जो जीव प्रथम अनुभाग काण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयम उत्कृष्ट अवस्थान होता है। सम्यक्त्वका भङ्ग सामान्य देवोक समान है। इस प्रकार जानकर अनाहारी

जाव अणाहारि ति।

१४२२. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहं सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत-श्रद्धकसाय० तिएहं पदाणं जहण्णि० कस्सं १ अएएएदरो जो सुहुमेइंदिय-जहण्णाणुभागसंतकिम्मओ तेण अणंतभागवट्टीए एगपक्लेवे वट्टिद्ण पबद्धे जहण्णिया वट्टी । तिम्म चेव घादिदे जहण्णिया हाणी । एगदरत्थ अवद्धाणं । सम्मत्त० जहण्णिया हाणी । कस्स १ श्र्यएएदरो जो चिरमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयो तस्स जहण्णिया हाणी । जहएएपमवद्धाणं कस्स १ चिरममणुभागखंडयोवट्टं तस्स । सम्मामि० जह० हाणी कस्स १ अण्णदरो जो दंसणमोहक्खवओ तेण दुचिरमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णिया हाणी । तस्सेव से काले जहण्णमवद्धाणं । अणंताणु०चउक्क० ज० वट्टी कस्स १ अण्णदरो जो विसंजोएद्ण पुणो संजुक्जमाणओ तस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स विदियसमयसंजुत्तस्स जहण्णिया वट्टी । जहण्णिया हाणी कस्स १ अण्णदरो जो विसंजोएद्ण पुणो संजुक्जमाणओ तस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स विदियसमयसंजुत्तस्स जहण्णिया वट्टी । जहण्णिया हाणी कस्स १ अण्णदरो जो विसंजोएद्ण श्रंतोसुहुत्तसंजुत्तो विस्संतो जाव सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मादो हेटा वंधदि ताव तेण सञ्चत्थोवे अणुभागे घादिदे तस्स जहण्णिया हाणी । तस्सेव से काले जहण्णमवद्धाणं । लोभसंजलण० जह० वट्टी कस्स १ जो सुहुमेइंदियअणुभागसंत-

पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ ५२२ प्रकृतमें जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है— स्रोघ स्रौर स्रादेश। श्रोपसे मिध्यात्व श्रौर श्राठ कषायोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि श्रौर जघन्य श्रवस्थान किसके होता है ? जघन्य श्रनुभागकी सत्तावाला जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव श्रनन्तभागवृद्धिमें एक प्रचेपकको बढ़ाकर बन्ध करता है उसके जघन्य बृद्धि होती है। उसी प्रक्षेपकके घात किये जाने पर जघन्य हानि होती है। तथा दोनोंमेंसे किसी एक जगह जघन्य श्रवस्थान होता है। सम्यक्त्वकी जघन्य हानि किसके होती है ? दर्शनमोहका चय करनेवालेके अन्तिम समयमं सम्यक्त प्रकृतिकी जघन्य हानि होती है। जघन्य श्रवस्थान किसके होता है? श्रन्तिम अनुभाग काण्डकका श्रपवर्तन करनेवालेके सम्यक्त्व प्रकृतिका जघन्य श्रवस्थान होता है। सम्यग्मिध्यात्व ही जघन्य हानि किसके होती है ? दर्शनमाहके चपकके द्वारा द्विचरम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर उसके जघन्य हानि होती है। उसीके श्रनन्तर समयमें जघन्य श्रवस्थान होता है। श्रनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य वृद्धि किसके होती है १ श्रनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः उसका संयोजन करनेवाले तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिए।वाले जीवके संयोजनके दूसरे समयमें जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य हानि किसके होती है ? जो विसंयोजन करके अन्तर्मुहूर्त बाद संयोजन कर लेने पर विश्राम करता हुन्ना जब तक सूक्ष्म एकेन्द्रियके जघन्य श्रनुभाग सत्कर्मसे नीचे बंध करता है तब तक उसके द्वारा सबसे थोड़े श्रनुभागका घात किये जाने पर उसके जघन्य हानि होती है। तथा उसीके श्रनन्तर समयमें जघन्य श्रवस्थान होता है। लोभसंख्वलनकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जघन्य श्रनुभागकी सत्ता वाले जिस सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके सबसे जघन्य अनन्तवें भागप्रमाण अनुभागकी वृद्धि होती

१. ता॰ प्रतौ पदायां जहिया ॰ [वर्डी] कस्स, ध॰ प्रतौ पदायां जहस्या कस्स इति पाठः ।

किम्मओ सन्वजहण्णअणंतभागेण बिहुदो तस्स जहण्णिया वही । ज० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स खवयस्स चिरमसमयसकसायस्स । जहण्णमवहाणं कस्स ? अण्णदरस्स खवयस्स चिरमे अणुभागखंडए वहमाणस्स । इत्थि-णवुंसयवेदाणं ज० वही कस्स ? सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकिम्मयस्स तप्पाओग्गजहण्णअणंतभागवहीए विहुदस्स जहण्णिया वही । जह० हाणी कस्स ? इत्थि-णवुंसयवेदोदएणुविहदक्खवएणं चिरमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णिया हाणी । जहण्णमवद्वाणं कस्स ? तेणेव दुचिरमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णिया हाणी । जहण्णमवद्वाणं कस्स ? तेणेव दुचिरमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णमवद्वाणं । पुरिस० तिएहं संजलणाणं जहण्णवहीए मिच्छत्तभंगो । जहण्णिया हाणी कस्स ? अण्णादरस्स खवयस्स चिरमसमयअणिल्लेविदस्स तस्स जह० हाणी । जहण्णमवद्वाणं कस्स ? अण्णाद० खवगस्स चिरमे अणुभागस्स खंडए वद्दमाणस्स । छण्णोक० जहण्णावहीए मिच्छत्तभंगो । जह० हाणी कस्स ? खवन्गेण दुचिरमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णिया हाणी । तस्सेव से काले जहण्णमवद्वाणं । एवं तिएहं मणुस्साणं । णविर मणुसपज्जत्तपसु इत्थि० छण्णोकसायाणं भंगो । मणुसिणीसु पुरिस-णवुंस० छण्णोकसायभंगो ।

🖇 ५२३. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त--वारसक०-णवणोक० जहिएएाया वड्डी

है उसके जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य हानि किसके होती है ? चपकके सकषाय श्रवस्थाके श्रन्तिम समयमें संज्वलन लोभकी जघन्य हानि होती है। जघन्य श्रवस्थान किसके होता है ? संज्वलन लोभके अन्तिम अनुभाग काण्डकमें वर्तमान अन्यतर क्षपकके जघन्य अवस्थान होता है। स्त्रीवेद श्रीर नपुंसकवेदकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जघन्य श्रवभागकी सत्तावाले सूदम एकेन्द्रियके तत्प्रायोग्य जघन्य धानन्तभागगृद्धिके होने पर जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य हानि किसके होती है ? स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़नेवाले चपकके द्वारा श्रन्तिम श्रनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर स्त्रीवेद श्रीर नपंसकवेदकी जघन्य हानि होती है। जघन्य श्रवस्थान किसके होता है ? उसी चपकके द्वारा द्विचरम श्रनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर उसके जघन्य अवस्थान होता है। पुरुषवेद श्रीर लोभके सिवा शेष तीन संज्वलन कषायोंकी जघन्य वृद्धिका भङ्ग मिध्यात्वके समान है। जघन्य हानि किसके होती है ? श्रन्तिम समयवर्ती श्रनिर्लेपित श्रन्यतर चपकके इन प्रकृतियोंकी जघन्य हानि होती है। जघन्य श्रवस्थान किसके होता है ? अन्तिम अनुभाग काण्डकमे वर्तमान चपकके जघन्य अवस्थान होता है। छह नोकषायों की जघन्य वृद्धिका भंग मिध्यात्वके समान है। जघन्य हानि किसके होती है ? चपक के द्वारा द्विचरम अनुभाग काण्डकका घात किये जानेपर उसके छह नोकषायों की जघन्य हानि होती है। तथा उसी के अनन्तर समय में जघन्य अवस्थान होता है। इसी प्रकार तीनों प्रकार के मनुष्यों में जानना चाहिये। इतना विशेष है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमे स्त्रीवद का भङ्ग छह नोकषायों के समान है और मनुष्यिनियों में पुरुषवेद तथा नपुंसकवेदका भङ्ग छह नोकषायों के समान है।

§ ५२३. श्रादेशसे नारिकयोंमें मिध्यात्व, बारह क्षाय श्रीर नव नोकपायोंकी जधन्य

१. ता० प्रती इत्थिगांबुसमवेदोदएखुविद्ददक्खवएगा इति पाठः ।

कस्स ? असिण्णिपच्छायदेण हदसमुष्पित्तयकम्मेणागदेण अणंतभागेण बिहुद्ण बंधे तस्स जहिण्णया बहु । तिम्म चेत्र खंडयघादेण घाइदे जह० हाणी । एगदरत्थ अबहाणं । सम्मत्त० जहिण्णया हाणी कस्म ? चिरमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स । अणंताणु०-चउक्क० ओघं । एतं पढमपुढिव-देवोघं ति । विदियादि जाव सत्तिमि ति वावीसंपयडीणं जहिण्णया बहु किस्स ? मिच्छाइहिस्स तष्पात्रोग्गअणंतभागेण बिहुदस्स । तिम्ह चेव घादिदे जहिण्णया हाणी । एगदरत्थ अबहाणं । अणंताणु०चउक्क० ओघं ।

३ ५२४. तिरिक्षेसु वावीसं पयडीणं जह० वड्डी कस्स ? सुहुमेइंदिएण जहण्णाणुभागसंनकिम्मएण अ्रणंतभागेण विड्डिद्ण पबद्धे जहिण्ण्या वड्डी । तिम्म चेव
धाइदे जहिण्ण्या हाणी । एगदरत्थ अवहाणं । सम्मत-अणंताणु०चडक० णेरइयभंगो । पंचिदियतिरिक्खितिएसु वावीसं पयडीणं जह० वड्डी कस्स ? सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मेण आगंतृण अणंतभागेण विड्डिद्ण पबद्धे जह० वड्डी । तिम्ह चेव
धाइदे जहिण्ण० हाणी । एगदरत्थ अवहाणं । सम्मत्त-अणंताणु०चडक० तिरिक्खोधं ।
णविर जोणिणी० सम्म०वज्जं । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० वावीसं पयडीणमेवं चेव ।
अणंताणु०चडक० मिच्छत्तभंगो । एवं मणुसअपज्ज० । भवण०-वाण० पहमपुहविभंगो ।

वृद्धि किसके होती है ? हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ अमर्जा पर्यायसे आकर जो नरकमे जन्म लेता है और मत्ताम स्थित अनुभागसे अनन्तभाग्राद्धिको लिए हुए बंध करता है उसके जघन्य गृद्धि होती है। और उस बढ़े हुए अनुभागका काण्डक घातके हारा घात किए जाने पर जघन्य हानि होती है। इन्हीं दोनोमेसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है। सम्यक्ष्वकी जघन्य हानि किसके होती है ? दर्शनमोहके च्यक्के अन्तिम समयम होती है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भङ्ग अधिके समान है। इमी प्रकार पहली पृथिवी और सामान्य देवोमे जानना चाहिए। दूसरी ने लेकर मातवी पृथिवी तकके नारिकयोमे बाईस प्रकृतियोकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जघन्य वृद्धिके योग्य अनन्तभाग्राद्धिसे युक्त मिध्याद्य जीवके होती है। उसीका घात करने पर जघन्य हानि होती है। दोनो अवस्थाओमेसे किमी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है।

९ ५२४. तिर्यश्वोमे बाईम प्रकृतियोंकी जघन्य बृद्धि किसके होती है ? जघन्य अनुभागकी सत्तावाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके द्वारा अनन्तभागबृद्धिक्ष वन्ध करने पर जघन्य बृद्धि होती है । उसीका घात कर देने पर जघन्य हानि होती है । दोनोमेसे किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है । सम्यक्ष्य प्रकृति और अनन्तानुवन्धीचतुष्कका भङ्ग नार्यक्ष्योंके समान है । पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च पर्याप्त और पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च योनिनियोंमे बाईस प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जघन्य अनुभागकी सत्तावाला सूक्ष्म एकेन्द्रियोमे जन्म लेकर जब अनन्तभागबृद्धिको लिए हुये अनुभागका बन्ध करता है ता उसके जघन्य वृद्धि होती है । उसीका घात करने पर जघन्य हानि होती है । तथा दोनोमेसे किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है । सम्यक्ष्य और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग तिर्यश्चोंके समान है । इतना विशेष है कि पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च योनिनियोमे सम्यक्ष्य प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए । पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकोंमे बाईस प्रकृतियोंकी वृद्धि आदिका स्वामिपना इसी प्रकार है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिध्यात्वके समान है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमे जानना चाहिए । भवनवासी और व्यन्तरोंमे पहली

णवरि सम्मत्तवर्ज्जः । जोदिसिय० विदियपुढविभंगो । एवं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति । णवरि सम्मत्त० णेरइयभंगो ।

इ ५२५. आणदादि जाव सञ्वहसिद्धि ति छ्ब्बीसं पयडीणं जहिण्णया हाणी कस्स ? अणंताणु०चउक्क० विसंजोयंतेण अपिच्छिमे अणुभागखंडए हदं तस्स जह० हाणी । तस्सेव से काले जहण्णमवहाणं । सम्मत्त० ज० देवीघं । णविर अणंताणु० चउक्कस्स दुचरिमे अणुभागखंडए हदं तस्स जहिण्णया हाणी । तस्सेव से काले जहण्ण मवहाणं । णविर आणदादि जाव णवगेवज्जा ति अणंताणु०४ ओघं । एवं जाणिद्ण णेद्व्वं जाव अणाहारि ति ।

१ ४२६. अप्पाबहुत्रं दुविहं-जहण्णमुक्तस्सं च । उक्तस्से पयदं । दुविहो णि०— ओयेण आदेसेण य । ओयेण छन्बीसं पयडीणं सन्वत्थोवा उक्तस्सिया हाणी । वट्टी अवद्याणाणि दो वि सरिसाणि विसेसाहियाणि । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णित्थ अप्पा-बहुत्रं, उक्त०हाणि-अवद्याणाणं सरिसत्तादो । एवं तिण्हं मणुस्साणं ।

४ ५२७, आदेसेण णेरइएसु बब्बीसं पयडीणमोघं । एवं सव्वणेरइय-तिरिक्ख-च उक्त - देवोघं भवणादि जाव सहस्सारो ति । पंचिदियतिरिक्ख अपज्ज ० ब्रब्बीसं पय-

पृथिवीके समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए। ज्योतिषी देवोमे दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सौधर्मसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग नार्राक्योंके समान है।

§ ५२५. त्रानत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों में छ्व्यीस प्रकृतियों की जघन्य हानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयाजन करनेवाल जीवके द्वारा अन्तिम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर जघन्य हानि होती है। उभीके अनन्तर समयमे जघन्य अवस्थान होता है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य हानिका भद्ग सामान्य देवोंकी तरह है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कके द्विचरम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर उसकी जघन्य हानि होती है और उसीके अनन्तर समयमे उसका जघन्य अवस्थान होता है। इतना विशेष और है कि आनतसे लेकर नवप्रैवेयक तकके देवोंमे अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भङ्ग आघके समान है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

९ ५२६. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्क्रष्ट । प्रकृतमे उत्क्रश्से प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—आघ और आदेश । आघमे छव्बीस प्रकृतियोकी उत्क्रष्ट हानि सबसे अल्प है । उत्क्रुष्ट बृद्धि और अवस्थान दोनो समान है किन्तु उत्क्रुष्ट हानिसे कुछ अधिक हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वमें अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि उनकी उत्क्रुष्ट हानि और अवस्थानका प्रमाण समान है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्यात और मनुष्यिनियोमे जानना चाहिए ।

हु ५२७. श्रादेशसे नारिकयोमे छव्बीस प्रकृतियोका श्राह्म श्रांचके समान है। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यश्व, पश्चेन्द्रियतिर्यश्व, पश्चेन्द्रियतिर्यश्व यानिनी, सामान्य देव श्रीर भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमे जानना चाहिए। पश्चेन्द्रियतिर्यश्व श्रपयाप्तकोंमे छव्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट दृद्धि सबसे श्रास्प है। उत्कृष्ट हानि

ढीणं सन्वत्थोवा उक्कसिया वड्ढी। हाणी अवद्वाणं च दो वि सरिसाणि अणंतगुणाणि। एवं मणुसञ्चपज्ज०।

६ ५२८. त्राणदादि जाव सवहिसिद्धि ति छन्वीसं पयडीणसुक्क० हाणी अव-हाणं च दो वि सिरणाणि । णविर आणदादि णवगेवज्जा ति अणंताणु०४ सन्वत्थोवा उक्क० वड्डी । हाणी अवहाणं च अणंतराणं । एवं जाणिदृण णेदन्वं जाव अणाहारि ति ।

प्रश्तः जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्दे सो——श्रोघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अहक ० ज वट्टी हाणी अवहाणाणि तिण्णि वि सिरसाणि । सम्मत्त ० सव्वत्योवा जह हाणी । अवहाणमणंतगुणं । अणंताणु०च छक ० सव्वत्योवा ज ० वट्टी । हाणी अवहाणाणि दो वि सिरसाणि अणंतगुणाणि । चदुसंज०—पुरिस० सव्वत्योवा ज० हाणी । अवहाणमणंतगुणं । वट्टी अणंतगुणा। एवमित्थि-णवुंसयवेदाणं । छण्णोक ० सव्वत्योवा जहण्णहाणी अवहाणं च । वट्टी अणंतगुणा। सम्मामि० जह० हाणी अवहाणां दो वि सिरसाणि । एवं तिएहं मणुस्साणं । णवि मणुसप्जि० हत्थि० छएणोकसायभंगो । मणुस्सिणी० पुरिस०-णवुंस० छण्णोक०भंगो ।

् ५३०. आदेसेण रोरइएसु वाबीसंपयडीर्स तिण्ण पदा सरिसा । अणंताणु०-चउक्क० ओघं । सम्मत्त० णित्थ अप्पाबहुअं । एवं सत्तसु पुढवीसु तिरिक्खचडक० श्रीर अवस्थान दोनो समान है किन्तु उत्कृष्ट वृद्धिसे अनन्तगुर्से है । इसी प्रकार मनुष्य अपयोप्तकोंम जानना चाहिए ।

ू ५२८. त्र्यानतसे लंकर सर्वार्थासद्धि तकके देवोंम छन्वीस प्रकृतियोकी उत्कृष्ट हानि श्रीर श्रवम्थान दोना समान है। इतना विशेष है कि श्रानतसे लेकर नवप्रैवयक तकके देवोंमें श्रनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे श्रन्य है। उत्कृष्ट हानि श्रीर श्रवस्थान श्रनन्तगुर्णे है। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

ू प्रश्. अब जवन्य का प्रकरण है। निर्देश दा प्रकार का है— श्रांघ श्रीर श्रादेश। श्रांच से मिण्यात्व श्रीर श्राठ कपायांकी जवन्य शृद्धि, जवन्य हानि श्रीर श्रवस्थान तीनो ही समान है। सम्यक्त्वकी जवन्य हानि सबसे श्रव्प है। उससे श्रवस्थान श्रनत्तगुणा है। श्रानतानुबन्धोचतुष्ककी जवन्य शृद्धि सबसे श्रव्प है। जवन्य हानि श्रीर श्रवस्थान दानो ही समान है; किन्तु जवन्य शृद्धिसे श्रानत्तगुणा है। चारा सञ्चलन श्रीर पुरुष्वद्की जवन्य हानि सबसे श्रव्प है। उससे जवन्य शृद्धिश्रनत्तगुणी है। इसी प्रकार क्रिवंद श्रीर नपुंसकवद्की श्रपंत्ता श्रत्पबहुत्व जानना चाहिए। छह नाकषायांकी जवन्य हानि श्रीर श्रवस्थान सबसे थोड़ है। उनसे जवन्य शृद्धिश्रनत्तगुणी है। सम्यिमण्यात्वकी जवन्य हानि श्रीर श्रवस्थान दोनो हो समान है। इसी प्रकार तीन प्रकारक मनुष्योम जानना चाहिए। इतना विशेष है कि मनुष्य प्याप्तकाम स्नावद्का भङ्ग छह नाकषायांक समान हे श्रीर मनुष्यानयो मे पुरुष्वद श्रीर नपुंसकवद्का भङ्ग छह नाकषायांक समान है।

६ ५२०. त्रादेशसे नाराकयाम बाईस प्रकातयाक तीना पद समान है। श्रनन्तानुबन्धी चतुष्कका भक्क श्रोघकी तरह है। सम्यक्तवका श्रन्पबहुत्व नहीं है। इसी प्रकार सातो प्राथावयाम सामान्य तिर्यञ्ज, पञ्जेन्द्रियातर्यञ्ज, पञ्जेन्द्रियतिर्यञ्ज पयाप्त, पञ्जेन्द्रियतिर्यञ्जयोनिनी, सामान्य देव देवोघं भवणादि जाव सहस्सारो ति । पंचिदियतिरिक्तअपज्ज० छ्रव्वीसं पयडीणं तिष्णि पदा सिरसा । एवं मणुसअपज्ज०। आणदादि जाव सन्वहिसिद्धि ति छ्रव्वीसं पयडीणं ज० हाणी अवहाणं च दो वि सिरसाणि । णविर आणदादि जाव णव-गेवज्जा ति अणंताणु०चउक्क० देवोघं । एवं जाणिदण णेदच्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं पदणिक्खेवो समत्तो ।

विहिविहत्ती

\$ ५३१. विट्टिविह्तीए तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि णाद्व्वाणि भवंति। तं जहा—सम्रक्तिणा एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेटि भंगविचओ भागाभागं परिमाणं खेतं पोसएां कालो अंतरं भावो अप्पावहुअं चेटि। तत्थ समुक्तिणाणु० दुविहो णिद्दे सो—ओयेण आदेसेण य। ओयेण अव्वीसं पयडीणमित्थि अव्विहा वट्टी अव्विहा हाणी अवद्वाणं च अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्यं च। सम्मत्त-सम्मा मिच्छताणमित्थ अणंतगुणहाणी अवद्वाणमवत्तव्यं च। एवं णेरइयाणं। णविर सम्मामि० अणंतगुणहाणी णित्थ। एवं पढमपुढवि०-तिरिक्खितय०-देवोधं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति। विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव। णविर सम्मत्त० सम्मामिच्छत्त-भंगो। एवं पंचिदियितिरिक्खिजोणिणी-भवगा०-वाण०-जोदिसिया ति।

द्यौर भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोम जानना चाहिए। पश्चेन्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्तकों में छन्दीस प्रकृतियोके तीनो पद समान हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमं जानना चाहिए। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमं छन्दीस प्रकृतियोकी जघन्य हानि और अवस्थान दोनों ही समान हैं। इतना विशेष है कि आनतसे लेकर नवग्रैवेयक तकके देवोम अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भक्क सामान्य देवोकी तरह है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिय।

इस प्रकार पदिनचेप समाप्त हुआ।

वृद्धिविभक्ति

९ ५३१. वृद्धि विभक्तिमें ये तेरह अनुयोगद्वार जानने चाहिये। जो इस प्रकार हैं—
समुत्कीर्तना, एक जीव की अपेचा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय,
भागाभाग, परिमाण, चेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबह्त्व। उनमेसे ममुत्कीर्तनानुगम
की अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आदेश। आंघसे छन्त्रीस प्रकृतियोंकी छह प्रकार
की वृद्धि, छह प्रकारकी हानि और अवस्थान होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्यविभक्ति
भी हाती है। सम्यक्त और सम्यग्मिण्यात्वकी अनन्तगुणहानि, अवस्थान और अवक्ताः
विभक्ति होती हैं। इसी प्रकार नारिकयोंमे जानना चाहिए। इतना विशेष है। क वहाँ सम्यग्मिण्यात्व
की अनन्तगुणहानि नहीं होती। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चीन्द्रयतिर्यञ्च,
पञ्चीन्द्रयतिर्यञ्च, पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोमे जानना
चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारिकयोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना
विशेष है कि इनमें सम्यक्त्वप्रकृतिका भङ्ग सम्यग्मिण्यात्वके समान है। इसी प्रकार पञ्चीन्द्रयतिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये।

१४३२, पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० छन्नीसं पयडीरणं अत्थि छन्निहा बहुी छन्निहा हाणी अवहाणं च। सम्मत-सम्मामिच्छताणमित्थ अविहदं। एवं मणुसअपज्ज०। तिएहं मणुस्साणमोघं। आणदादि जाव णवगेबज्जा ति वाबीसं पयडीणमित्थ अणंत-गुणहाणी अविहदं। अणंताणु०चउक्क० छवडुी हाणी अविहदं अवत्तव्वं च। सम्मत्त-सम्मामि० देवोघं। अणुहिस्सादि जाव सव्वहसिद्धि ति सत्तावीसं पयडीणमित्थ अणंतगुणहाणी अविहदं च। सम्मामि० अत्थि अविहदं। एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति।

५३३. सामिताणुगमेण दुविहो णिइ सो—श्रोघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छन-वारसक०-णवणोक० छिव्वहा वट्टी पंचिवहा हाणी कस्स ? अण्णदरस्स मिच्छादिहिम्स । अणंतगुणहाणी अविहृदं च कस्स ? अएणदरस्स सम्माइहिस्स मिच्छाइहिस्स वा । एवमणंताणु०चउक० । णविर अवत्तव्व० पहमसमयसंजुत्तस्स । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणंतगुणहाणी कस्स ? अएणदरस्स दंसणमोहक्खवयस्स । एत्थ अएणदरस्य वेदोगाहणविसेसावेक्खो । अविहृ० अण्णद् सम्मादिहिस्स भिच्छा-दिहिस्स वा । अवत्वव्वं कस्स ? पहमसमयसम्माइहिस्स । एवं तिएहं मणुस्साणं ।

६ ५३४. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसं पयडीणमोघं। सम्मामि० अवहि०

् ५३२. पश्चेन्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्तकोंमे छ्वीस प्रकृतियोंकी छह प्रकारकी वृद्धि. छह प्रकारकी हानि और अवस्थान होता है। सम्यक्व और सम्यग्मिण्यात्व की अवस्थितिवभक्ति होती है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंगे जानना चाहिये। सामान्य मनुष्य. सनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमे आघकी तरह भङ्ग है। आनतसे लेकर नव प्रेत्रेयक तकके देवोंमे वाईस प्रकृतियों की अनन्तगुणहानि और अवस्थान होते हैं। अनन्तगुन्यविचतुष्ककी छह प्रकारकी वृद्धि, छह प्रकारकी हानि, अवस्थित और अवक्वयविभक्तियां होती हैं। सम्यक्व और सम्यग्निण्यात्वका भङ्ग सामम्य देवोकी तरह है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमे सत्ताईस प्रकृतियोकी अनन्तगुणहानि और अवस्थान होते हैं। सम्यग्निष्यात्वकी अवस्थितविभक्ति होती है। इस प्रकार जानकौर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

६ ५३३. स्व मित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दा प्रकार का है—आंघ और आदेश। आंघसे मिध्यात्व, वारह कपाय और नव नाकपायोंकी छह प्रकारकी वृद्धि और पॉच प्रकारकी हानि किसके होती हैं? किसी मिध्यादृष्टि जीवके होती हैं। अनन्तगुणहानि और अवस्थान किसके होते हैं शिक्सी सम्यन्दृष्टि अथवा मिध्यादृष्टिके होते हैं। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा जानना चाहिए। इतना विशेष हैं कि अवक्तव्य विभक्ति अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः संयोजन करनेवालेके प्रथम समयमें होती हैं। सम्यव्यव और सम्यग्निध्यात्वकी अनन्तगुणहानि किसके होती हैं शिक्सी भी दर्शनमोहके क्षपक्रके होती हैं। यहाँ अन्यतर शब्द किसी खास वेद या अवगाहनाकी अपेक्षा नहीं करता है। अवस्थितविभक्ति किसी भी सम्यन्त्रि अथवा मिध्यादृष्टिके होती हैं। अवक्तव्यविभक्ति किसके होती हैं शिम्यग्दृष्टि जीवके प्रथम समयमें होती हैं शिक्सी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिए।

६ ५३४. श्रादेशसे नारिकयोंमे सत्ताईस प्रकृतियोंका अङ्ग श्रोघकी तरह है । सम्य-

अवत्तव्व ० ओघं । एवं पढमपुढवि-तिरिग्शितिरिक्ख-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति । विदियादि जाव सत्तिमि ति एवं चेव । णविर सम्मत्त ० अणंतगुणहाणी णित्थ । एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण-जोदिसिए ति ।

५३५. पंचिदियतिरिक्स०--मणुसञ्चपज्ज० ब्रब्बीसं पयडीणं छ्वड्डि-छ्हाणिअवहाणाणि सम्म०-सम्मामि० अविहदं च कस्स ? अण्णद० । आणदादि जाव णवगेवज्जा ति वावीसं पयडीणमणंतगुणहाणी अविहदं च कस्स ? अण्णद० सम्माइहिस्स
मिच्छाइहिस्स वा । सम्मत्त० अणंतगुणहाणी कस्स ? अएणाद० कद्करणिज्जम्स ।
सम्मत्त-सम्मामिच्छताणमविह०-अवत्त० ओघं। अणंताणु०चउक्क० ओघं। अणुहिस्सादि
जाव सव्वहसिद्धि ति सत्तावीसं पयडीणमणंतगुणहाणी अविह० सम्मामिच्छ० अविहदं
च कम्स ? अएणाद० सम्मादिहिम्स । अण्णदरसदो विमाणोगाहणविसेसाभावपदुप्पायणफलो । एवं जाणिद्ण णेद्व्वं जाव अणाहारि ति ।

्र ४३६. कालाणु० दुविहो णिहे सो — ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छतअहक०-अहणोक० पंचविष्ट्रकालो जह० एगसमञ्जो, उक० आविष्ठयाए असंखे०भागो।

िमण्यात्वकी द्यविस्थितविभक्ति द्यौर अवक्तव्यविभक्तिका भङ्ग द्योवकी तरह है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रयतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रयतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रयतिर्यञ्च, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोमे जानना चाहिए। दृसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नारिकयोमे इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमे सम्यक्त्यकी अनन्तगुणाहानि नहीं होती। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रयतिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोमे जानना चाहिए।

इ ५३५ पश्चिन्द्रयतिर्यश्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोमे छ्व्वीस प्रकृतियोकी छह वृद्धियां, छह हानियां और अवस्थान तथा सम्यक्त्व और सम्यम्मिध्यात्वकी अवस्थितिमिक्त किसके होती हैं? किसी भी पश्चिन्द्रिय निर्यश्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तक होती हैं। आनतसे लेकर नवयैवयक तकके देवोंमे बाईम प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानि और अवस्थान किसके होते हैं? किसी भा सम्यग्दिष्ट और मिध्यादृष्टिके होते हैं। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि किसके होती हैं। किसी भी कुतकृत्यवद्क सम्यग्दृष्टिके होती हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित और अवक्त्य विभक्तियोंका भङ्ग आघके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमे सत्तादृक्त प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानि और अवस्थित तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थितविभक्तियों किसके होती हैं। किसी भी सम्यग्दृष्टिके होती हैं। यहाँ 'अन्यतर' शब्दका प्रयोजन किसी विमान विशेष या अवगाहन विशेषके अभावको वतलाता है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

ह ५३६. कालानुगमकी अपेद्मा निर्देश दो प्रकारका है—ओव और आदेश। ओघसे मिध्यात्व, आठ कपाय और आठ नोकपायोकी पाँच वृद्धियोका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धिका जवन्य काल एक

१. भा० प्रती श्रवखदस्सदो इति पाठः ।

अणंतगुणविङ्कालो ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० | छहाणिकालो जहण्णुक्क० एगस० | कुदो ? ओकङ्गणाए अणुभागकंडयदुचिरमिदिफालिसु वा णिवदमाणियासु अणुभागहाणस्स घादाभावादो । तं पि कुदो ? अप्पहाणीकयसिरसधिणयकम्मक्खंधत्तादो चिरमवग्गणाए पविद्वाणं दुचिरमादिवग्गणाणं पहाणत्ताभावादो च । अविद्व० ज० एगस०,
उक्क० तेविद्वसागरोवमसदं पिलदोवमस्स असंखे०भागेण सादिरेयं । सम्मत्त० अणंतगुणहाणिकालो ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अविद्व० ज० अंतोमु०, उक्क० वेआविद्वसागरोवमाणि तीहि पिलदो० असंखे०भागेहि सादिरेयाणि । अवत्त० जहण्णुक्क०
एगस० । सम्मामि० अणंतगुणहाणि-अवत्त० जहण्णुक्क० एगस० । अविद्व० जह० अंतोमु०,
उक्क० सम्मतभंगो । अणंतगुणहाणि-अवत्त० जहण्णुक्क० एगस० । अवत्व० जहण्णुक्क० एगस० ।
चदुसंजलण० मिच्छत्तभंगो । णविर अणंतगुणहाणिकालो उक्क० अंतोमुहृत्तं । एवं पुरिस०
णविर अणंतगुणहाणिकालो ज० एगस०, उक्क० दो आविलयाओ समयूणाओ ।

५३७. आदेसेण णेरइएमु छव्वीसं पयडीणं छ्वड्विकालो ओघं । छ्वहाणिकालो जहण्णुक्क० एगस० । अविहि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देम्रुणाणि ।
अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० ओघं । सम्मत्त० ऋणंतगुणहाणि-ऋक्त० सम्मामि०

समय है स्त्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है। छह हानियोका जघन्य स्त्रीर उत्कृष्ट काल एक समय है, क्योंकि अपकर्पणके द्वारा अनुभागकाण्डककी द्विचरम आदि फालियोंके पतन होने पर अनुभाग-स्थानका घात नहीं होता है। यह कैसे जाना ? क्योंकि प्रथम तो समान धनवाले कर्मस्कन्ध अप्रधान हैं। दूसरे अन्तिम वर्गणामे प्रविष्ट हुई द्विचरम आदि वर्गणाओंकी यहाँ प्रधानता नहीं हैं। त्रवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यका त्रसंख्यातवाँ भाग श्रिधिक एक सौ त्रेमठ सागर है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहर्त है। अवस्थितविभक्तिका जधन्य काल अन्तर्मुहर्त है श्रीर उत्क्रष्ट काल प्रत्यके तीन असंख्यात भागोंसे अधिक दो छियासठ मागर है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उक्तष्ट काल एक समय है। सम्याग्मिण्यात्वकी अनन्तगुग्हानि और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य और उन्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्महर्त है श्रीर उत्कृष्ट कालका भङ्ग सम्यक्तवकं समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिध्यात्वके समान है। इतना विशेष है कि अवक्तत्य विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। चार संज्वलन कपायोका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है। इतना विशेष है कि अनन्तगरा-हानिका उत्कृष्ट काल अन्तर्महूर्त है। इसी प्रकार पुरुषंबदकी अपेचा जानना चाहिए। इतना विशेष है कि श्रनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय कम एक त्रावली है।

९ ५३७. ब्रादेशसे नारिकयोमें छन्त्रीस प्रकृतियोंकी छह वृद्धियोंका काल ब्रोधके समान है। छह हानियोंका जधन्य ब्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है। श्रवस्थित विभक्तिका जधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। श्रनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिका भङ्ग ब्राधके समान है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी श्रनन्तगुणहानि ब्रोर अवक्तव्य विभक्तिका काल तथा सम्यग्मिण्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिका काल तथा सम्यग्मिण्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिका काल त्रथा समान है। सम्यक्त्व

अवत्त ० ऋोघं । दोण्हमविद्धं ज ० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० संपुण्णाणि । एवं पढमपुढवि० । णवरि सगिंददी । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णविर सगिंदिदी । सम्मत्त ० ऋणंतगुणहाणी णित्थ ।

§ ५३०. तिरिक्ख ० इन्बीसं पयडीणं इविहु-हाणीणं णेरइयभंगो । अविहि० ज० एगस०, उक्क० तिरिणा पिलादोवमाणि अंतोम्रहुत्तेण सादिरेयाणि । अणंताणु०-चडक ० अवत ० ओघं । सम्मामि० अवत ० सम्मत ० अणंतगुणहाणि-अवत ० ओघं । दोगहमबिह ० मिच्छत्तभंगो । णविर सादिरेयपमाणं पिलादो० असंखे०भागो । प्रकंक्षित्रणहं पंचिंदियतिरिक्खाणं । णविर सम्म०-सम्मामि० अविह० ज० एगस०, उक्क० तिरिणा पिलादोवमाणि पुन्वकोडिपुत्रतंण सादिरेयाणि । जोणिणीसु सम्मत ० अणंतगुणहाणी णिल्थ । पंचिरियतिरिक्खअपज्ञ०-मणुसअपज्ञ० इन्बीसं प्यडीणं इविहु-हाणीणं णेरइयभंगो । अविह० सम्म०-सम्मामि० अविह० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । तिग्हं मणुस्साणं पंचिदियतिरिक्खभंगो । णविर पुरिस०-चदुसंजळ०-सम्मामि० अणंतगुणहाणी ओघं । मणुसिणीसु पुरिस० अणंतगुणहाणी जहणुक ० एगस० ।

\$ ५३६. देवाणं णेरइयभंगो । णवरि सच्वेसिमविद्धं जह० एगस०, उक्क० श्रीर सम्यग्मिश्यात्वकी श्रवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली प्रथिवीम जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तेतीस सागरके स्थानम पहले नरककी स्थिति लेना चाहिय। दृसरीसे लेकर सातवी प्रथिवी तकके नार्रिकया में इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष हे कि श्रपने श्रपने नरककी

स्थिति लेनी चाहिए। तथा सम्यक्तवर्का अनन्तगुगाह्यान दूसरे आदि नरका मे नहीं होती।

९ ५३८. सामान्य तिर्य चो में छन्वीस प्रकृतियोकी छह वृद्धियो श्रीर छह हानियोका भङ्ग नारिकयों के समान है। अवास्थन विभाक्तका जवन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्महर्ते अधिक तीन पर्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिका काल आघके समान है। सम्यागिध्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिका तथा सम्यक्त्वकी अनन्तग्राहानि और त्रवक्तव्य विभक्तिका काल त्रांघक समान है। सम्याग्मध्यात्व त्रांर सम्यक्त्वकी त्रवस्थित विभक्तिका काल मिध्यात्वकं समान है। इतना विशेष है कि कुछ अधिकका प्रमाण पत्यका श्चसंख्यातवो भाग है। इसी प्रकार पश्चीन्द्रयतिर्यश्च, पश्चीन्द्रयतिर्यश्चपर्यात्र श्रीर पश्चीन्द्रय-तियं च योनिनयां में जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त और सम्यागिध्यात्वकी श्चर्वास्थत विभक्तिका जघन्य काल एक समय हे श्रीर उत्दृष्ट काल पूर्वकांटि पृथक्त श्रधिक तीन पत्य है। पञ्चीन्द्रयातर्यञ्च यात्रानियो मे सम्यक्त्वकी श्रनन्तगुणहानि नही होती । पञ्चे न्द्रयातर्यञ्च अपयाप्त और मनुष्य अपर्याप्तकों मे छह वृद्धि और छह हानियों का काल नार्राक्यां क समान है । इनकी अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्र श्रीर सम्यग्मिध्यात्वकी श्रवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल श्रन्तर्मूहर्त है। तीनों प्रकारक मनुष्या में पश्चीन्द्रयातर्यश्चा के समान भङ्ग है। इतना विशेष है कि पुरुषवंद, चारों सञ्चलन और सम्याग्मध्यात्वकी अनन्तगुण्हानिका काल ओयके समान है। मनुष्यिनियों में पुरुपवदकी स्त्रनन्तगुणहानिका जघन्य स्रोर उत्कृष्ट काल एक समय है।

§ ५३५, देवाम नारिकयोके समान भग है। इतना विशेष है कि सब प्रकृतियों की

तेतीसं सागरावमाणि संपुण्णाणि । भवण-वाण-जोदिसि० विदियपुढिवभंगो । णविर अविदिदस्स सगिदिदी । सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति पढमपुढिवभंगो । णविर अविदि० सगिदिदी । आणदादि जाव णवगेवज्ञा ति वावीसं पयडीणमणंतगुणहाणिकालो जह-एणुक्क० एगस० । अविदि० ज० अंतोम्र०, उक्क०सगिदिदी । सम्म०-सम्मामि० देवोघं । णविर सगिदिदी । अणंताणु०चउक्क० अविद्वी अहारणी० देवोघं । अविदि० ज० एगस०, उक्क० सगिदिदी । अवत्तव्व० ओघं । अणुहिसादि जाव सव्वद्दसिद्धि ति इव्वीसं पयद्यीणमणंतगुणहाणी० जहएणुक्क० एगस०। अविदि० जह० अंतोम्र०, उक्क० सगिदिदी । सम्मत्त० देवोघं । एवरि सम्मत्त-सम्मामि० अविदि० जहण्णुक्क० सगिदिदी । एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

े ५४०. श्रंतराणु० दुविहो णिइ सो—ओघेण त्रादेसेण य। श्रोघेण वावीसं पयडीणं पंचवट्टी पंचहाणी० ज० एगस० श्रंतोम्च०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अणंत-गुणवट्टी० ज० एगस०, उक्क० तेविहसागरोवमसदं तीहि पलिदोवमेहि सादिरेयं। अणंतगुणहाणी० ज० श्रंतोमु०, उक्क० तेविहसागरोवमसदं पिलदो० असंखे०भागेण सादिरेयं। अविह० ज० एगस०, उक्क० श्रंतोमु०। सम्म०-सम्मामि० अएांतगुणहाणी

अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है, और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है। भवनवासी, न्यन्तर और ज्यातिपियों में दूसरी प्रथिवों के समान भंग है। इतना विशेष है कि अवस्थितिवभक्तिका काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। सौधमंसे लेकर सहस्रार म्वर्गतक के देवों में पहली पृथिवीं के समान भंग है। इतना विशेष है कि अवस्थितिवभक्तिका काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। आनतसे लेकर नवयें वेयक तक के देवों में बाईस प्रकृतियों की अनन्तगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थितिवभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी म्थितिप्रमाण है। सम्यक्त और सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग सामान्य देवों की तरह है। इतना विशेष है कि यहाँ अपनी अपनी म्थिति लेनी चाहिये। अनन्तानुबन्धी चतुष्क की छह वृद्धि और छह हानियों का काल सामान्य देवों की तरह है। अवस्थितिवभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। अवक्तव्य विभक्तिका काल आघके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों अवक्ति जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त प्रकृतिका भङ्ग सामान्य देवों की तरह है। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

\$ 480. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आदेश। आंघसे बाईस प्रकृतियोंकी पाँच वृद्धि और पाँच हानियोंका जघन्य अन्तर क्रमशः एक समय और अन्तर्मृहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर तीन पत्य अधिक एक सौ नेसठ सागर है। अनन्तगुण्हानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मृहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यका असंख्यातवा भाग अधिक एक सौ नेसठ सागर है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुण्हानि का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर

जहण्णुकः श्रंतोमुः । अविद्यान्य जिल्लामा प्रतिद्यो असंस्वे भागो, उक्कः दांग्रहं पि उवद्वृपोग्गलपरियद्वं । अणंताणु व्यउक्कः मिन्छत्तभंगो । णविर अविद्यान जन्म एगसः , उक्कः वेछाविद्यमागरा । देमुणाणि । अवतः । जन्म श्रंतोमुः , उक्कः उवद्वृ-पोग्गलपरियद्वं ।

ं ५४१. आदेसेण णेरइएमु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० छवड्डी छहाणी ज० एगसमओ अंतोमु०, उक्क० तेतीस सागरो० देमुणाणि । अविह० ओघं । अणंताणु०-चडक० छवड्डि-अविह०-छहाणि-अवत्त० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० तेतीस साग० देमुणाणि । सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णित्थ अंतरं । सम्म०-सम्मामि० अविह०-अवत्त० ज० एगस० पत्तिदां० असंखे० भागो, उक्क० तेतीस सागरो० देमुणाणि । एवं सच्व-णेरइय०। णविर सगिहदी । विदियादि जाव सत्तमि ति सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णित्थ ।

ः ५४२. तिरिक्ख० वावीसपयडीणं पंचविहु-पंचहाणि-श्रविह० ओघं । श्रणंत-गुणवही० ज० एगस०, उक्क० पिट्टो० अगंखे०भागो । श्रणंतगुणहाणी० ज० श्रंतोम्र०, उक्क० तिण्णि पिट्टिहो० श्रंतीमुहुत्तेण सादिरेयाणि । सम्मत्त० अणंतगुणहाणी० णित्थ

अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर पत्यके असंख्यातवे भागप्रमाण है तथा दोनों विभक्तियों का उत्तृष्ट अन्तर कुछ कम अर्छुपुद्गल परावर्तन प्रमाण है। अनन्तानुवन्धी चतुष्कका भङ्ग भिश्यात्वक समान है। इतना विशेष है कि अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागरप्रमाण है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्र अन्तर्म् है और उन्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्छ पुद्गल परावर्तनप्रमाण है।

े ५४१. त्रादेशसे नार्यक्यों में मिण्यात्व, वाग्ह कपाय श्रोर नव नोकपायों की छ युद्धियों का जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रोर छ हातियों का जघन्य श्रन्तर श्रव्ह होते हैं। तथा दोनों का उत्हृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रव्हिश्तक श्रन्तर श्रोधक समान है। श्रान्तानुबन्धीचतुण्ककी छ युद्धियों और श्रव्हिथत विभक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय हैं, छह हानियों श्रीर श्रवक्तव्य विभक्तिका जघन्य श्रन्तर श्रव्ह हानियों श्रीर श्रवक्तव्य विभक्तिका जघन्य श्रन्तर श्रव्ह हानियों श्रीर श्रवक्तव्य विभक्तिका जघन्य श्रन्तर नहीं है। सम्यक्तव श्रिक्ति श्रवन्तर एक समय हैं श्रीर सम्यक्ति श्रीर सम्यक्ति श्रवह्य विभक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय हैं श्रीर श्रवक्तव्य विभक्तिका जघन्य श्रन्तर पत्यके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है। तथा दोनों का उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब नार्रक्यों में जानना चाहिए। इतना विशेष हैं कि तेतीस सागरके स्थानमें प्रत्येक नार्किकी श्रपनी श्रपनी स्थित लेनी चाहिये। दूसरेसे लेकर सातवें नरक तकके नार्कियों में सम्यक्त्व प्रकृतिकी श्रमन्तगुणहानि नहीं होती।

ऽ ५४२ सामान्य तिर्यश्चों में वाईस प्रकृतियों की पांच वृद्धियों, पांच हानियों और श्रव-स्थित विभावतका श्रव्यतर श्रोधके समान है। श्रवन्तगुणवृद्धिका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रव्यत पत्यके श्रसंख्यातवे भागप्रमाण है। श्रवन्तगुणहानिका जघन्य श्रन्तर श्रव्यत-मुहूर्त है श्रीर अत्कृष्ट श्रन्तर श्रव्यमुहूर्त श्रिषक तीन पत्य है। सामान्य तिर्यश्चों में सम्यक्तवप्रकृति-की श्रवन्तगुणहानिका श्रन्तर नहा है। सम्यक्तव श्रीर सम्यग्मिध्यात्वकी श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तव्य

श्चंतरं । दोग्रहमवद्दि०-अवत्तन्व० ओघं । अणंताणु०चडक० मिच्छत्तभंगो । णवरि अणंतगुणवड्टी० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पछिदा० सादिरेयाणि । अवद्वि० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देमृणाणि । अवत्त० ओघं । तिण्हं पंचिदियतिरि-क्खाणं वावीसंपयदीणं छवट्टि-पंचहाणी० ज० एगस० झंतासु०, उक्क० पुट्वकोडि-प्रथत्तं । अणंतीगुणहाणि०-अविड० तिरिक्खोधं । सम्मत्त० अणंतगुणहाणी० णेरइयभंगो । सम्म०-सम्मामि० अवद्यि०-अवत्त० ज० ओघं, उक्क० सगद्विदी देसृणा । अणंताणु०-चडक व्हा चुन चडक व्यापी व्याप व्यापी चडक व्यापी व्यापी व्यापी चडक व्यापी चडक व्यापी चडक व्यापी चडक चडक व्यापी चडक व्यापी चडक चडक व्यापी चडक व्य रेयाणि । अविह० तिरिक्लोघं । अवत्त० ज० त्र्यंतोमु०, उक्क० सगहिदी देसृणा । जोणिणी० सम्म० अणंतगुणहाणी णित्थ । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० छव्वीसपयडीणं द्यवड्टि-अवद्वि० ज० एगस०, द्वहाणी० ज० त्र्रंतोग्रु०, उक्क० सन्वेसिमंतोग्रु०! सम्म०-सम्मामि॰ अवद्वि॰ णत्थि श्रंतरं । एवं मणुसअपज्ज॰ ।

६ ५४<mark>३. तिण्हं मणुस्साणं वावीसं</mark>पयडीणं पंचवड्टि-छहाणि-श्रवद्वि० पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो । त्र्यणंतगुणवड्डी० ज० एगस०, उक्क० पुन्वकोडी देसूणा । त्र्यणंताणु०-

विभक्तिका अन्तर त्र्यायकं समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिध्यात्वकं समान है। इतना विशेष है कि अनन्तग्णवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ ग्राधिक तीन परुष है। अवस्थित विमक्तिका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है। अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघक समान है। पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च. पञ्चीन्द्रयातर्य अपर्याप्त स्त्रीर पञ्चीन्द्रयातर्यश्च योनिनयों में वाईस प्रकृतियों की छ वृद्धियों ्रीर पॉ र हानियां का जघन्य अन्तर क्रमशः एक रुमय और अन्तर्महर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथकविप्रमाण है । अनन्तराग्रहानि श्रीर अवस्थित विभक्तिका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चा के समान है। सम्यक्षवदी धनन्तगुणहानिका भङ्ग नाराकयों के समान है। सम्यक्त्व श्रोर सम्यामध्यात्व प्रकातयांकी अवस्थित श्रीर श्रवक्तव्य विभक्तिका जघन्य श्रन्तर श्रोघके समान है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी छह बुद्धियों का जघन्य अन्तर एक समय है और छह हानियों का जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। तथा दोनोका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तीन पत्य है। अवस्थितका अन्तर सामान्य तियेश्वोकी तरह है। अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मृहर्त हं और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । पश्चे न्द्रियतिर्यश्च बोर्निनयोमे सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि नहीं होती । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च श्रपर्याप्तकांमं छव्बीस प्रकृतियोकी छह बृद्धियो श्रीर श्रवस्थित विभक्तिका जघन्य श्रन्तर एक समय है, छह हानियोंका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हुर्न है तथा सब विभक्तियोका उत्क्रष्ट श्रन्तर त्र्यन्तमु हतं है । सम्यक्त्व त्र्यौर सम्यग्मिध्यात्वकी त्र्रवास्थतिवर्भाक्तका त्र्यन्तर नही है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमे जानना चाहिए।

९ ५४३. तीन प्रकारके मनुष्यां में बाईस प्रकृतियों की पांच वृद्धियां छह हानिया श्रौर श्रवस्थित विभक्तिका श्रन्तर पञ्चोंन्द्रय तिर्यञ्चों के समान है। श्रनन्तगण्यद्भिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटी है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका

च उक्कः पंचिदियतिरिक्खभंगो । सम्म०-सम्मामि० अविह०-अवतः पंचि०तिरिक्ख-भंगो । अणंतगुणहाणी० ओघं ।

प्रथा देवेमु मिच्छत-वारसक० णवणोक० छवड्डि-पंचहाणी० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० अद्दार्स सागरो० सादिरेयाणि । अविह० ओघं । अणंतगृहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० एकतीमं सागरो० देस्णाणि । अणंताणु०चउक्क० छवड्डि-अविह०-छहाणि-अवत्त० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० एकतीमं सागरो० देस्णाणि । सम्मत० अणंतगुणहाणी० णित्थ अंतरं । सम्म०-सम्मामि० अविह०-अवत्त० ज० ओघं, उक्क० एकतीसं साग० देस्णाणि । भवण०--वाण०--जोदिसि० विद्यपुढिविभंगो । णविर सगिहदी । सोहम्मादि जाव सहस्मारो ति पढमपुढिविभंगो । णविर सगिहदी । आणदादि पवगेवज्ञा ति वावीसंपयदीणं अणंतगुणहाणी० ज० अंतोमु०, उक्क० सगिहदी देस्णा । अविह० जहण्णुक्क० एगस० । सम्म०-सम्मामि० देवोघं । णविर सगिहदी देस्णा । अर्थानणु०चउक्क० छवड्डि-अविह० जह० एगस०, छहाणि-अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० सब्वेसि सगिहदी देस्णा । अणुहिसादि जाव सव्वदिसिद्धि ति इव्वीसंपयडीणमणंतगुणहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अविह० जहण्णुक० एगस०।

भङ्ग पश्चे न्द्रिय तिर्यश्चोके समान है। सम्बक्त्व और सम्बग्धिकणात्वकी अवस्थित और अवकृत्य विभक्तिका अन्तर पश्चे न्द्रिय तिर्यश्चो के समान है। तथा अनन्तगुग्हानिका अन्तर आचके समान है।

े ५४४. देवों में भिश्यान्त, बारह कपाय और नव नोकपायोकी छह एडियो और पांच हानियों का जबन्य अन्तर क्रम्ताः एक समय है और अन्तर्महर्त है। तथा उत्कृष्ट अन्तर क्रब श्रिधिक श्रठारह सागर है। अवान्यतका श्रन्तर श्रोघके समान है। श्रनन्तगुग्हानिका जघन्य अन्तर अन्तर्भहर्त है और उन्क्रष्ट अन्तर कुछ कम इकतीम सागर है। अनन्तानुबन्धीचतुरककी छह*ुं*द्धियो[ं] ऋौर अर्ञास्थत विमक्तिकाः जघन्य अन्तर एक सभय है और छह् *हानियो*ं तथा अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्गु हुर्व है। उत्कृष्ट अन्तरकुछ कमा इकतीसा सागर है। सम्यक्तिकी अनन्तरागुहानिका अन्तर नहीं है। सम्यक्ति और सम्यागिकाविकी अवस्थित और **अवक्त**त्र्य विभक्तिका जवस्य अन्तर श्रीघकी तरह है और उत्हार अन्तर कुछ कम उक्तीस सागर है। भवनवासी, व्यन्तर खोर ज्यांतिषयों में दूसरी पृथिवीकं समान भंग है। इतना विशेष है कि दूसरी पृथिबीकी स्थितके स्थानमे अपनी स्थित लेना चाहिये। सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार म्बर्ग तकके देवोमे पहली पृथिवीके समान मंग है। इनना विशेष है कि यहाँ अपनी-अपनी स्थिति लेनी चाहिये । त्र्याननसे लेकर नवप्रैवयक नकके देवोम वाईस प्रज्ञतियोकी अनन्तराुण्हानिका जयन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सम्यक्तव और सम्यक्तिका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इतना विशेष है कि यहाँ कुछ कम अपनी स्थित लेनी चाहिये। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी छह बृद्धिया स्त्रौग स्रवस्थित विभक्तिका जघन्य स्रान्तर एक समय है। छ हानिया स्त्रीर अवक्तत्र्य विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है। तथा सवका उल्ह्रष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थिसिद्ध नकके देवोंमें छन्त्रीस सम्मत्तः त्र्रणंतगुणहाणि-अविहः सम्मामिः अविहः णित्थं त्रांतरं । एवं जाणिदूण णेदच्वं जाव अणाहारि ति ।

४४४, णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिइ सो—अोघेण आदंसेण य । ओघेण वाबीसं पयडीणं तेरसपदा णियमा अन्थि । अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्ब० भयणिज्ञं । सेसपदा णियमा अन्थि : भंगा तिष्णि । सम्म०--सम्मामि० अविदि० णियमा अन्थि । सेसपदा० भयणिज्ञा । भंगा णव । एवं तिरिवखा० । णविर सम्मामि० अणंतगुणहाणी णन्थि । भंगा तिष्णि ।

प्रकृतियोंकी अनन्त-गुण्हानिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमु हुर्न है। श्रवस्थित विभक्तिका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी श्रनन्तगुण्हानि श्रीर श्रवस्थित विभक्तिका तथा सम्यग्निध्यात्वकी श्रवस्थित विभक्तिका श्रन्तर नहीं है। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

विशेषार्थ-त्रोघसे वार्डेस प्रकृतियां की अनन्तग्णवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तर तीन पत्य और एक सौ बेसर सागर कहा है सो अनन्तगुण्युद्धि भिथ्यादृष्टिके ही होती है और भागभूमिमें तथा आनतादि हमे मिध्यादृष्टिके भी नहीं होती. अत: दो बार छियासठ छियासठ सागर तक वदक सम्यक्त्वके साथ विताने तथा एक बार उपरिम प्रेंजयकमे श्रीर तीन पल्यकी स्थितिके साथ उत्कृष्ट भोगभूमिन जितानेसे अनन्तग्ग्युद्धिका उत्कृष्ट अन्तर तीन पत्य और एक सौ त्रेसट सागर होता है। अनन्तगण्हानिका उन्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रेमठ मागर और पन्यके असंख्या-तवे भाग होता है सो उतना ही अवस्थितका उन्क्रप्ट काल है, अनः अनन्तगण्हानि करके उतने काल तक अवस्थित रहकर पुन: अनन्तग्राहानि करनेसे उतन। अन्तर काल होना है। सम्यक्त्व त्रीर सम्यग्गिथ्यात्व प्रकृतिकी त्रवक्तव्य विभक्तिका जघन्य त्रान्तरकाल पत्यका त्रामंख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्रगल परावर्तन पूर्ववन् जानना। अनन्तानु-बन्धकी अवस्थित विभक्तिका उक्कष्ट अन्तर कुछ कम दो छियामठ मागर है क्यों कि अनन्ता-नुवन्धीकी अवस्थित विभक्ति करके अनन्तानुबन्धीके विसंयोजन पूर्वक बंदक सन्यग्दष्टि होकर कुछ कम छियासठ सागर तक सम्यात्वके साथ रहकर पुन: सम्याग्मध्यात्व गएस्थानमे जाकर पुनः सम्यक्तव प्रहण् करके कुछ कम छियासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रहकर भिष्यात्रमे जाकर त्र्यनन्तानुबन्धीका बन्ध करनेके पश्चात त्र्यास्थत विभक्तिको करता है। त्रादेशमे नारिकयो'में छज्बीस प्रकृतिया की छह बृद्धियों स्त्रीर छह हानिया त्रादिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेनीस सागर है। वृद्धि भिष्यादृष्टिके होती है और हानि दोनों के होती है। श्रीर नरकमें मिण्यात्त्रका श्रन्तर काल भी कुछ यम तेतीस सागर है श्रीर सम्यक्त्वका श्रन्तर काल भी कुछ कम तेतीस सागर है अत: उतना ही उन विभक्तियों का भी अन्तर काल जानना । सम्यक् व त्र्यौर सम्यग्मिध्यात्वकी ऋवस्थित त्र्यौर ऋवक्तव्य विभक्तिका भी उत्कृष्ट ऋन्तर काल इसी प्रकार जानना । प्रत्येक नरकमें यह अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है ।

ृ ५४५ नाना जीवांकी अपेद्मा भंगविवय अनुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—आंव और आदेश। आवसे वार्डस प्रकृतियोंके तेरह पद नियमसे होते हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तत्र्य पद भजनीय है, शेप पद नियमसे होते हैं। भंग तीन हैं। सम्यक्तव और सम्यिमध्यात्व प्रकृतिका अवस्थित पद नियमसे होता है, शेष पद भजनीय हैं। भंग नौ हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्य भोमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यिमध्यात्वकी अनन्तगुराहानि नहीं होती।

\$ ५४६. आदेसेण णेरइएसु छन्नीसं पयडीणमणंतगुणविष्टु--अविद्वि णियमा अिया सेसएकारसपदा भयणिजा। अक्खपरावनेण सुन्तगाहाए च आणिदभंगा एनिया होति १७७१४७। णविर अणंताणु०चउक्क० भयणिजापदाणि वारह । तेसिं भंगा ५३१४४१। सम्म० अविद्वि णियमा अित्य । सेसपदा भयणिजा० । भंगा णव । एवं सम्मामि० । णविर भंगा तििएए। एवं सन्वणेरइय-सन्वपंचिदियतिरिक्ख-तिण्णमणुस-दंब-भवणिद जाव सहस्सारो नि । णविर विद्यादिपुहवि-पंचि०तिरिक्जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसएसु सम्मनस्स तििएए। भंगा । पंचि०तिरिक्खअपज्ञ० सम्म०-सम्मामि० णित्य भंगा । मणुस्सअपज्ञ० सन्वपयडी० सन्वपदा भयणिजा । छन्वीसं पयडीणं भंगसमासा एसो १५६४३२२। सम्म०-सम्मामि० भंगा दोिएए। आणदादि जाव सन्वहासिद्ध नि अहावीसं पयडीणमविद्वि० णियमा अत्य । सेसपदा भयणिजा । णविर आणदादि जाव णवगेवजा नि अणंताणु०४ अणंतगुणविद्व-अविद्वं णियमा अत्य । वावीसं पयडीए। भंगा तिरिएए। अणंताणु० चउक्क० भंगा जाणिय वत्तव्वा । सम्मन्तभंगा णव । सम्मामि० भंगा निरिएए। उविर सत्तावीसं पयडीएं भंगा तिरिएए। एव जाणिदण णेद्वं जाव अणाहारि नि ।

भंग तीन होते हैं।

९५४६ त्र्यादेशसे नार्राकयोंमें छटबीस प्रकृतियोकी त्र्यनन्तगुण्युद्धि त्र्यौर त्र्यवस्थित विभक्ति नियमसे होती हैं। शेप ग्यारह पद भजनीय हैं। अन्तपरावर्तन और सत्र गाथाके द्वारा निकाले गये भंगों की संख्या १७७१४७ होती है। इतना त्रिशेप है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके भजनीय पद बारह हैं उनके भंग ५३१४४१ होते हैं। सम्यक्त्वकी श्रवस्थितविभक्ति नियमसे होती है, शेप पद, भजनीय हैं। भंग नौ होते हैं। इसी प्रकार सम्यग्मिष्यात्वके विपयमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उसके तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पश्चे न्ट्रिय तिर्यश्च, तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव श्रौर भवनवासीसे लेकर सहस्रार न्वर्ग तकके देवां मे जानना चाहिए। इतना विशोप है कि दूसरी ऋादि पृथिवीयों, पश्चे न्द्रिय तिर्यश्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्कों में सम्यक्तके तीन भंग होते हैं। पर्श्वान्द्रय तिर्यश्व अपर्याप्तकों में सम्यक्त्व और सम्यग्निथ्या व प्रकृतिके भंग नहीं होते। मनुष्य अपर्याप्तकों मे सब प्रकृतियों के सभी पर भजनीय हैं। छव्बीस प्रकृतियों के भंगों का जोड़ १५९४३२२ होता है। सम्यक्त और सम्यग्निध्यात्व प्रकृतिके दो भंग होते हैं। आनतमें लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवो'मं श्रट्टाईस प्रकृतियो'का अवस्थित पद नियमसे होता है, शेर पद भजनीय हैं। इतना विशेष है कि स्रानतसे लेकर नवप्रैवंयक तकके देवोंने अनन्तानुबन्धीयतुष्ककी अनन्तगुण-युद्धि ऋौर अवस्थितविभक्ति नियमसे हाती है। वार्डस प्रकृतियों के तीन भंग हाते हैं। अनन्तान-बन्धीचतुष्कके भंग जानकर कहने चाहिये। सम्यक्त्व प्रकृतिके नौ भंग होते हैं। सम्यग्नि-थ्यात्वके तीन भंग होते हैं। नवप्रैंवयकसे ऊपर सत्ताईस प्रकृतियोंके तीन भंग होते हैं। इस प्रकार जानकर ऋनाहारी पर्यन्त लेजान। चाहिये।

विशोषार्थ — त्रोघसे बाईस प्रकृतियों में छह वृद्धियां, छ हानियां और अवस्थितविभक्ति ये तेरह पद नियमसे होते हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्य पद सदा नहीं होता, विकल्पसे

होता है. क्यों कि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके सम्यक्त्वसे च्युत हुआ जीव मिण्यात्वमें श्राकर श्रनन्तानुबन्धीका बन्ध करके जब उसके सत्त्ववाला होता है तो श्रवक्तव्य विभक्ति होती है। श्रनन्तानुबन्धीके शेप पद नियमसे होते हैं। अतः तीन भंग होने है। कदाचित सब जीव शेष पद विभक्तिवाले होते हैं, कदाचित अनेक जीव शेप पद विभक्तिवाले और एक जीव अवक्तह्य विभक्तिवाला होता है। कदाचित अनेक जीव शेप पद विभक्तिवाले और अनेक जीव अवक्तव्य विभक्तिवाले होते हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिण्यात्वकी अनन्तगुण्हानि, अवस्थित और श्रवक्तव्य ये तीन पद होते हैं। इनमेंसे अवस्थित पद नियमसे होता है और शेप दो पद विकल्पसे होते है, अत: दो पदोंके नी भंग होते हैं। सामान्य निर्यश्चों में सम्यागिरयात्वका श्चनन्तराग्रहानि पद नहीं होता. श्वत: एक श्रवक्तव्य पद विकल्पसे होता है। और इस्रुलिये तीन ही भंग होते हैं। ऋदिशसे नारिकयों में छव्वीस प्रकृतियों के दा पद नियमसे होते हैं. और शेप ग्यारह पद विकल्पसे होते हैं। अतः पहले कही गई गाथाक अनुसार ग्यारह अध्रव पदों के १७७१४६ मंग होते हैं। उनमें एक ध्रव भंगके मिला देनेसे १७७१४७ कुल भंग होने हैं। त्रमन्तानुबन्धीके एक त्रवक्तव्य पदके होनेसे श्रध्नव पद वारह होते है ग्यार वारह अध्रय पदो के ५३१४४० भंग होते हैं। उनमें एक ध्रव भंगके मिलानेसे कुल भंग होते है। इसरे आदि नरको में सम्यक्तव प्रकृतिका श्रनन्तगुणहानि पद नहीं होता है श्रनः नीन ही भंग होते हैं। पश्चिन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्रकोमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी एक अवस्थित विभक्ति ही होती है अत: भंग नहीं होते । मनुष्य अपर्याप्त सान्तर मार्गणा है अत: उसमें सभी प्रकृतियों के सभी पद विकल्पसे होते हैं. अत: छच्वीस प्रकृतियों के तेरह पदों के १५९४३२२ मंग होने है. और सम्यक्त और सम्यग्मिथ्यात्वके दो भंग होते हैं –कदाचित एक जीव अवस्थितविभिक्तवाला होता है, कदाचित् अनेक जीव अवस्थितविभक्तियाले होते हैं। स्थाननसे लेकर नयप्रैश्यक नक बाईस प्रकृतियों के अनन्त्राणहानि और अवस्थित ये दो पद होते हैं. इनमें अवस्थित पर धूव है और अनन्तग्राहानि पद अध्रव है अतः तीन भंग होते हैं। अनन्तानुबन्धीमे अनन्तपुरा वृद्धि और अवस्थित पद् भ्रव हैं और शेप वारह पद् अभ्रव है, अत: उसमें भंग ५२१४४१ होते हैं। सम्यक्त्व प्रकृतिके त्र्यनन्तगुर्गहानि त्रौर त्र्यवक्तव्य पद त्र्यप्रव है त्र्यतः नौ मंग हाते है त्र्यार सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका केवल एक अवक्तव्य पद अश्रव है अन: नीन मंग होते हैं। त्रजुदिशादिकमें सत्ताईस प्रकृतियोंका अवस्थित पद ध्रुव हे[ँ] और अनन्त**ु**सहानि पद अध्रव है श्रत: तीन भंग होते हैं। सम्यामध्यात्वका केवल एक अवस्थित पद ही होता है अतः भंग नहीं होते ।

§ ५४७. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है — श्रोघ श्रौर आदेश । श्रोघसे छटबीस प्रकृतियोकी पाँच वृद्धि श्रौर छह हानि विभक्तिवाले जीव सब जीवाक कितने भाग प्रमाण हैं ? श्रसंख्यातवे भाग प्रमाण हैं। श्रनन्तगुणगृद्धि विभक्तिवाले जीव सब जीवोंकं कितने भाग प्रमाण हैं ? संख्यातवें भाग प्रमाण हैं। श्रवस्थित विभक्तिवाले संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। श्रनन्तानुबन्धी चतुष्ककी श्रवक्तव्यविभक्तिवाले श्रनन्तवें भागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व

अणंतगुणहाणि०--अवत्तव्य० सव्यजी० केब० १ असंखे०भागो । अविद्व० असंखेज्जा भागा । एवं तिरिक्खोर्घ । णविर सम्मामि० अणंतगुणहाणी णन्थि ।

§ ५८८. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयडीणमोघं। णविर अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० असंखे०भागो। सम्म०-सम्मामिच्छ्ताणं तिरिक्खभंगो। एव पहमपुढवि०-पंचिदयतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति। विदि-यादि जाव सत्तामि ति एवं चेव। णविर सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो। एवं पंचि०-तिरि०जोणिणी-भवण०-वाण०-नोदिसिए ति। पंचि०तिरिक्खअपज्ज० छव्वीमं पय-डीणं णेरइयभंगो। णविर अणंताणु०चउक्क० अवत्त० णित्थ। सम्म०-सम्मामिच्छ-त्ताणं णित्थ भागाभागं। एवं मणुसअपज्ज०।

्र ४४६. मणुसार्णं णेरइयभंगो । णविर सम्मामि० ओघं । मणुसपज्ज०-मणु-सिणीसु अद्वावीसं पयडीणमविद्वि० संखेज्जा भागा । सेसपदा० संखेज्जिदिभागो । आणदादि जाव णवगेवज्जा नि वाबीसं पयडीणमणंतगुणहाणि० सब्बजी० केव० ? असंखेज्जिदिभागो । अविद्वि० असंखेज्जा भागा । अणंताणु०चउक० सम्मत्त०-सम्मामि०

स्रोर सम्यग्मिथ्यात्वकी स्रानन्तगुण्हानि श्रीर स्रवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सब जीवांके कितने भाग प्रमाण् हैं । श्रवस्थित विभक्तिवाले जीव सब जीवांके स्राम्यस्थात बहुभागप्रमाण् हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्चोमे जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमे सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी स्रानन्तगुण्हानि नहीं होती ।

प्रथट. श्रादशसं नार्राक्यों इट्वीस प्रकृतियों का भागाभाग श्रोधकी तरह है। इतना विशेष है कि श्रनन्तानुबन्धी चतुष्कि श्री श्रवक्ति श्रवक्ति विभक्तियों श्री सम्यान्त्व श्रीर सम्यान्त्व विकार पत्र्वी श्री सम्यान्त्व श्रीर सम्यान्त्र विकार पत्र्वी श्री स्वर्गत्व श्रीर साथमें स्वर्गते विकार पह्ली पृथिवी, पश्चिन्द्रयतिर्यश्च पर्याप्त, सामान्य देव श्रीर सीधमें स्वर्गते लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोमे जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सावर्ग तकके नार्याक्यों में इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिका भागाभाग सम्यान्यक्ति तरह है। इसी प्रकार पश्चिन्द्रय तिर्यश्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर श्रीर ज्योतिष्यों जानना चाहिए। पश्चिन्द्रयतिर्यश्च श्रप्याप्तकों छन्बीस प्रकृतियोंका भागाभाग नार्याक्योंकी तरह है। इतना विशेष है कि श्रनन्तानुबन्धी चतुष्कका श्रवक्तव्य पद वहाँ नहीं होता। तथा सम्यक्त्व श्रीर सम्यान्यव्यात्वका भागाभाग नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्य श्रपयंप्तकों में जानना चाहिए।

१. सा॰ प्रती केव॰ ? श्रसंखेजा । श्रवट्टि॰ इति पाठः ।

देवोघं। णविर अणंताणु० अणंतगुणविष्टृ० असंखे०भागो। अणुहिसादि जाव अवराइदो त्ति सत्तावीसं पयडीणमणंतगुणहाणि० असंखे०भागो। अविष्ठि० असंखेज्जा भागा। सम्मामि० णित्थ भागाभागो। एवं सव्वद्दे। णविर संखेज्जं कायव्वं। एवं जाणिदृण णेदव्वं जाव अणाहारि ति।

४५०. परिमाणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण वाबीसं पयडीएां तेरसपदवि० दन्वपमाणेण केव० ? अएांता । एवमणंताणु०चडकः० । णविर अवत्त० असंखेज्ञा । सम्मत्त-सम्मामि० अणंतगुणहाणि० दन्वपमाणेण केव० ? संखेज्ञा । सेसपदवि० असंखेज्ञा । एवं तिरिक्खोघं । णविर सम्मामि० अएांत-गुणहाणी णित्थ ।

१५५१. आदेसेण णेरइएसु अद्वावीसं पयडीएां सन्वपद्वि० असंखेजा । णविर सम्मत्त० अएांतगुरणहार्णि० ओघं! एवं पढमपुढवि०-पंचि०तिरिक्ख०-पंचि०-तिरिक्ख०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव ! णविर सम्मत्त० ऋणंतगुणहाणी णित्थ । एवं जोणिणी--भवण०--वाण०-जोदिसिए ति । पंचिदियतिरिक्खअपज्ञ० छुव्वीसं पयडीएां तरसपदवि० सम्म०-

है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनन्तगुण्यृद्धिवाले असंख्यातवे भागप्रमाण् हैं। अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोमे सत्ताईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुण्हानिवाल जीव असख्यातवें भागप्रमाण् हैं। अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण् हैं। सम्यग्मिण्यात्व प्रकृतिका भागाभाग नहीं है। इसी प्रकार सर्वार्थकिद्धिमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि असंख्यातके स्थानमें संख्यात कर लेना चाहिये। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

९ ५५०. परिमाणानुगमकी ऋषेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ऋषेच और आदेश। ऋषि बाईस प्रकृतियों के तेरह पद्विभक्तियाल जीव द्रव्यप्रमाण्से कितने हैं ? अनन्त हैं। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी ऋषेक्षा परिमाण जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इसके अवक्तव्य विभक्तियाले जीव असंख्यात हैं। सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यग्मिण्यात्व प्रकृतिकी अनन्तगुण्हानिवाले जीव द्रव्यप्रमाण्से कितने हैं ? संख्यात हैं। शेष पद विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्चों में जानना चाहिए। इतना विशेष हं कि तिर्यश्चों में सम्यग्मिण्यात्वकी अनन्तगुण्हानि नहीं है।

ई ५५१. त्रादेशसे नारिकयोमे त्राहाईस प्रकृतियोंके सब पद विभक्तिवाले जीव त्रासंख्यात हैं। इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिकी त्रानन्तगुणहानिवालोंका परिमाण त्राघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च, पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च पर्याप्त, सामान्य देव त्रौर सौधर्मसे लेकर सहस्रार तकके देवों में जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी त्रानन्तगुणहानि नहीं होती। इसी प्रकार पश्चेन्द्रियिर्यश्च योनिनी, भवनवासी, ज्यन्तर त्रौर ज्योतिष्या में जानना चाहिए। पश्चेन्द्रियिर्यश्च त्रप्रयाप्तकों में इच्बीस प्रकृतियों के तरह पद विभक्तिवाले त्रौर

सम्मामि० अवद्वि० असंखेजा । एवं मणुसअपज्न० ।

३ ५५२. मणुसेसु ब्रव्वीसंपयडीणं तेरसपद्वि० सम्म०-सम्मामि० अविठ० असंखेजा । अणंताणुचउक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० अणंतगुणहाणी० स्रवत्त० संखेजा । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु अद्वावीसंपयडीणं सव्वपद्वि० संखेजा । स्राणदादि जाव अवराइदो ति स्रद्वावीसंपयडीणं सव्वपद्वि० असंखेजा । णविर सम्मत्त० स्रणंत-गुणहाणि० संखेजा । सव्वद्दिसिद्धिविमाणे अद्वावीसंपयडीणं सव्वपद्वि० संखेजा । पर्व जाणिदृण णेद्व्वं जाव स्रणाहारि ति ।

\$ ५५३. खेत्ताणुगमेण दुविहां णिद्दे सो—ग्रोघेण आदेसंण य। ओघेण छन्बीसं-पयडीएां तेरसपदवि० केविड खेत्ते १ सन्वलोगे । अणंताणु०चउक्क० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० सन्वपदिवहित्त ० के० खेत्त० १ लोग० असंख्वे भागे । एवं तिरिक्खोघं । णविर सम्मामि० अएंतगुणहासी णित्य । संसमगणासु सन्वपयडीएां सन्वपदिवह० लोग० असंखे०भागे । एवं जाणिदृण णेदन्वं जाव ग्राणाहारि त्ति ।

ई ५५४. पोसणाणु० दुविहो णिइ सो—आंघेण आदेसेण य। ओघेण छव्बीसं-पयडीणं तेरसपदवि० के० खेत्तं पोसिदं १ सव्वलोगो । अणंताणु०चडक्क० अवत्त० सम्यक्त्व तथा सम्योग्मध्यात्वकी अवास्थत विभक्तिवाले जीव असंख्यात है । इसी प्रकार मनुष्य अपयाप्तकों में जानना चाहिए।

हुं ५५२. सामान्य मनुष्यां म छुव्बीस प्रकृतियों की तरह पद्विभक्तिवाले और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभाक्तिवाले जीव असख्यात है। अनन्तगुणहानि और अवक्तव्य विभक्तिवाले, तथा सम्यक्त्व आर सम्यग्मिध्यात्व प्रशातकी अनन्तगुणहानि और अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव सख्यात है। मनुष्यप्याप्त और मनुष्यानया मे अहाईस प्रकृतियों की सब पद विभक्तिवाले जीव सख्यात है। आन्तरस लेकर अपराजित विमान तकक देवों में अहाईस प्रकृतियां की सब पद विभक्तिवाले जीव असख्यात है। इतना बिशंप है कि सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि विभाक्तवाले जीव सख्यात है। सवाधीसद्धि विमानमे अहाईस प्रकृतियां की सब पद विभक्तिवाले जाव सख्यात है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पयन्त ले जाना चाहिये।

६ ५५३. च्रेत्रानुगमकी अपंत्रा निर्देश दा प्रकारका है—आघ और आदेश। श्रोघसे छन्नीस प्रकृतियोकी तरह पद विभक्तिकाल जीवांका कितना च्रेत्र हें १ सब लाक च्रेत्र है। अन-तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्य विभक्तिकाल नथा सम्यक्त्व और सम्याग्मध्यात्वकी सर्व पद विभक्तिकाल जीवांका कितना च्रेत्र हें १ लाकक असंख्यातवें भागप्रमाण च्रेत्र हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्वोभे जानना चाहिए। इतना विशेष हैं कि तिर्यश्वोभ सम्याग्मध्यात्वकी अनन्तगुणहानि नहीं होती। शेष मागणाश्राभ सब प्रकृतियां की सब पद विभक्तिवाल जीवांका लाकक असरख्यात्वें भागप्रमाण च्रेत्र है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ल जाना चाहिए।

\$ ५५४. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है — आघ और आदेश। श्रोघसे अब्बीस प्रकृतियों की तेरह पद विमक्तिवाले जीवोने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? सर्व लोकका स्पर्शन किया है। अनन्तानुबन्धी बतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालों ने लोकके असख्यातवें भागका

लो॰ असंखे॰भागो अहचोदस॰ देसूणा । सम्म॰-सम्मामि॰ त्र्रणंतगुणहाणि॰ खेतं । त्रवि । अति । अति । अवति लोगे अहचोदस॰ देसूणा सन्वलोगो वा । अवति लोगे॰ असंखे॰भागो अहचोदस॰ देसूणा ।

ई ४५४. आदेसेण णेरइएसु छन्वीसंपयडीएां तेरसपद्वि० सम्म०-सम्मामि० अविद्वि० केव० १ लोग० असंखे०भागो छचोइस० देसुणा । सम्म० अणंतगुणहाणि० छण्हमवत्त० खेत्तं । पढमपुढवि० खेत्तं । विदियादि जाव सत्तिमि ति छन्वीसंपयडीणं तेरसपद्वि० सम्म०-सम्मामि० अविद्वि० सगपोसणं वत्तन्वं । छण्हमवत्त० खेतं ।

१ ४५६. तिरिक्ख० छन्बीसंपयडीणं तेरसपद्वि० ओघं। सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० छण्हमवत्त० खेतं। सम्म०-सम्मामि० अविह० लोग० असंखे०भागो सन्बलोगो वा। पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज० छन्बीसंपयडीणं तेरसपद्वि० सम्म०सम्मामि० अविह० लोग० असंखे०भागो सन्बलोगो वा। सम्म० अणंतगुणहाणि०
इत्थि-पुरिस० छवड्डी० छण्हमवत्त० खेतं। एवं जोणिणी०। णविर सम्मत्त० अणंत-

श्रीर चौदह राजूमसे कुछ कम श्राठ राजु प्रमाण क्षेत्रके स्पर्शन किया है। सम्यक्त्व श्रीर सम्यन्ति स्मिध्यात्वकी श्रानन्तगुणहानिवालों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा श्रावस्थित विभक्तिवालों लोकके श्रासंख्यातवें भागप्रमाण, चौदह राजूमसे कुछ कम श्राठ राजू प्रमाण श्रीर सर्वलोंक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्रावक्तव्य विभक्तिवालों ने लोकके श्रासंख्यातवे भागप्रमाण श्रीर चौदह राजूमसे कुछ कम श्राठ राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

इ ५५५, आदेशसे नारिकयामे छव्बीस प्रकृतियोकी तेरह पद विभक्तिवालों और सम्यक्ति तथा सम्यिमध्यात्वकी अविध्यत विभक्तिवाले कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और चौदह राजूमसे कुछ कम छह राजू प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्ति अनन्तगुणहानिवालों का तथा सम्यक्ति. सम्यिग्मध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुककी अवक्तव्य विभक्तिवालों का स्पर्शन चेत्र के समान है । पहली पृथिवीम चेत्रके समान स्पर्शन है । दूसरीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नार्यक्रयों में छव्वीम प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवालों तथा सम्यक्त्व और सम्यिग्मध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालों का अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये । सम्यक्त्व, सम्यिग्मध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालोंका स्पर्शन चेत्रके समान है ।

६ ५५६ सामान्य तिर्यश्वों में छन्बीस प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवालों का स्पर्शन खोचके समान है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालोका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्नियात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तत्र्य विभक्तिवालों का स्पर्शन चेत्रके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्निथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालों लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पश्चेन्द्रियतिर्यश्व और पश्चेन्द्रियतिर्यश्वपर्याप्तकों में छन्बीस प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवालों ने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्निथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवालों ने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालों का तथा स्त्रीयद और पुरुषवदकी छह वृद्धिवालों का और सम्यक्त्व, सम्यग्निभ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालों का स्पर्शन चेत्रके समान

गुणहाणी णित्थ । पंचिदियतिरिक्तअपज्ज व्यन्बीसंपयडीणं तेरसपद्वि० सम्म०-सम्मामि० अविह व्होग० असंखे०भागो सन्वलोगो वा । णविर इत्थि-पुरिस० अवङ्गी० खेत्तं । एवं मणुसअपज्ज० । तिण्हं मणुस्साणं पंचि०तिरिक्त्वभंगो । णविर सम्मत्त०-सम्मामि० अणंतगुणहाणि० ओघं ।

े ४५७, देवेसु छन्वीसंपयडीणं तरसपद्वि० सम्म०--सम्मामि० अविह० लोग० असंखे०भागां अह-णवचोद्दस० देसूणा। सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० खेतं। छण्हमवत्त० इत्थि-पुरिस० छवट्टी० लोग० असंखे०भागो अहचोद० देसूणा। एवं भवण०-वाण०-जोइसिए ति। णविर सगपोसणं। सम्म० अणंतगुणहाणी णत्थि। सोहम्मादि जाव सहस्सारों नि छव्वीसंपयडीणं तरसपद्वि० सम्म०-सम्मामि० अविह० छण्हमवत्त० लोग० असंखे०भागो अहचोद्द० देसूणा। सम्मत्त० अणंतगुण-हाणि० खेतं। णविर सोहम्मीसाणेसु अह-णवचोद्दसभागा देसूणा। आणदादि जाव अचुदो ति वावीसंपयडीणमविह० अणंतगुणहाणि० अणंताणु० सव्वपद्वि० सम्म०-

है। इसी प्रकार पश्चेन्द्रियातर्यश्च योनिनों में जानना चाहिए। इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्ष्यकी अनन्तगुणहानि नहीं है। पश्चेन्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्रकों में छ्टबीस प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवाल! ने तथा सम्यक्ष्य और सम्यिग्ध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालों ने लोकके असंख्यातव माग और सर्वलाक प्रमाण चेत्रका म्पर्शन किया है। इतना विशेष है कि स्त्रीवंद और पुरुषवेदकी छह युद्धिवालों का स्पर्शन चेत्रके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकों में जानना चाहिए। शेष तीन प्रकारके मनुष्यों में पश्चे न्द्रियतिर्यश्चोंके समान भंग है। इतना विशेष है कि सम्यक्ष्य और सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहानिका स्पर्शन ओषके समान है।

९ ५५७. देवों में छटबीस प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवालों ने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह राजूनेसे कुछ कम **त्राठ** ऋौर कुछ कम नो राजू प्रमाग्। त्रेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी श्रनन्तगृण्हानिवालोंका स्पर्शन त्तेत्रके समान है। सम्यक्त्व सम्यामिश्यात्व ख्रौर ख्रानन्तानुबन्धीचतुर्ककी ख्रवक्तव्य विभक्तिवालों ने तथा म्त्रीवद और पुरुपवदकी छह बृद्धिवालों ने लोकके असंख्यातवे भाग श्रीर चौदह राजूमेंसे कुछ कम आठ राजू प्रमाण चेत्रका म्पर्शन किया है। इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर श्रौर ज्योतिपियों में जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वहाँ श्रपना-श्रपना स्पर्शन लेना चाहिए। तथा उनमे सम्यक्त्वकी अनन्तगृणहानि नहीं है । सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवों में छव्बीस प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवालों ने सम्यक्त्व श्रौर सम्यग्मिथ्यात्वकी त्रवस्थितविभक्तिवालों ने तथा सम्यगत्व, सम्यग्मिथ्यात्व स्त्रौर त्रानन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवालों ने लोकक असंख्यातवें भाग और चौदह राजूमेंसे कुछ कम त्राठ राजू प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्तवकी अनन्तगुणहानिवाला का स्पर्शन चेत्रके समान है। इतना विशेष है कि सौधर्म श्रीर ईशान स्वर्गमें चौदह राजूमेंसे कुछ कम श्राठ श्रीर कुछ कम नी राजू प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। आनतसे लेकर अच्युत स्वर्ग तकके देवों में बाईस प्रकृतियों की अवस्थित विभक्ति और अनन्तगुराहानिवालों ने, अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी सर्व पद विभक्तिवालों ने तथा सम्यक्त और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित श्रौर

सम्मामि० अविष्ठि०-अवत्तव्व० लोग० असंखे०भागो छचोदस० देसूणा । सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० खेत्तं । उविर ऋहावीसंपयडीणं सव्वपद्वि० खेत्तं । एवं जाणिद्ण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

ध्रथ्यः णाणाजीविहि कालाणु० दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण य । श्रोघेण छब्बीसंपयढीणं तेरसपद्वि० सम्म०-सम्मामि० अविहि० सन्बद्धा । छण्हमवत्त० जह० एगस०, उक० आवित्ति० असंखे०भागो । सम्म० अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० अंतोग्र० । सम्मामि० अणंतगुणहाणि० ज० एगम०, उक्क० संखेज्ञा समया । एवं तिरिक्खोधं । णवरि सम्मामि० अणंतगुणहाणी णित्थ ।

श्रवक्तव्य विभक्तिवालों ने लोकके श्रसंख्यातवें भाग श्रीर चौदह राजूमेसे कुछ कम छह राजू प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी श्रनन्तगुणहानिवालोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रच्युत स्वर्गसे ऊपर श्रद्धाईस प्रकृतियांकी सर्व पद विभक्तिवालोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। इस प्रकार जानकर श्रनाहारी पर्यन्त लंजाना चाहिये।

विशेषार्थ-श्रोघसे अनन्तानुबन्धी. सम्यक्त्व और सम्यग्निध्यात्वकी अवक्तव्य विभक्ति बालों का जो कुछ कम आठ बटे चौदह राजू म्पर्शन कहा है सो अतीत कालकी अपेक्षा विहार-बरस्वस्थान त्रादि संभव पदो के द्वारा जानना चाहिए। त्रादेशसे नार्राक्यों में छटबीस प्रक-तियों की तेरह पदविभक्तिवालों का स्पर्णन अतीन कालकी अपेक्षा मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह राजु होना है। सामान्य तिर्यश्वों में सम्यक्तव श्रीर सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालां ने मारणान्तिक श्रौर उपपाद पदके द्वारा तीनों कालां में सर्वलांकका स्पर्शन किया है और विहारवत्स्वस्थान आदि संभव पदों के द्वारा लोकका श्रसंख्यातवाँ भाग स्पर्शन किया है। मामान्य देवों में छटवीस प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवाला ने श्रौर सम्यक्त तथा सम्यग्मिष्यात्वकी श्रवस्थित विभक्तिवाला ने विद्वारकस्व-स्थान, विकिया आदि पदों के द्वारा अतीत कालमें कुछ कम आठ बंट चौदह राज चेत्रका स्पशन किया है श्रीर मारणान्तिक समुद्धातके द्वारा कुछ कम नौ बटे चौदह राज चेत्रका स्पर्शन किया है श्रीर वर्तमानकी श्रपेक्षा लोकके श्रसंख्यानवे भागका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सौधर्मादिक में जानना चाहिए। विशेष यह हं कि मारणान्तिक पदके द्वारा कुछ कम नौ वटे चौदह राज् स्पर्शन ईशान पर्यन्त ही होता है, क्या कि ईशान तकके देव ही एकेन्द्रियोंमें भारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उपरके देव नहीं करते। तथा आनतादिक स्वर्गों में मारणान्तिक आदि पदों के द्वारा कुछकम छह बटं चौदह राजू स्पर्शन होता है, क्यों कि चित्रा पृथिवीके उत्परके तलसे नीचे इनका गमन नहीं होता।

६ ५५८. नाना जीवोंकी ऋषेत्रा कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है – श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्राचसे छव्बीस प्रकृतियोकी तेरह पद विभक्तियोका तथा सम्यक्त श्रीर सम्यग्मिध्यात्वकी श्रवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त, सम्यग्मिध्यात्व श्रीर श्रनन्तानुबन्धीचतुष्ककी श्रवक्तव्य विभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रावलीके श्रसंख्यातवें भाग प्रमाण है। सम्यक्त्वकी श्रनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रन्तमुंहूर्त है। सम्यग्मिध्यात्वकी श्रनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्रीम जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तिर्यश्रीम सम्यग्मिध्यात्वकी श्रनन्तगुणहानि नहीं है।

इ ५५६. आदेसेण णेरइएसु ब्रब्बीसंपयडीणं पंचविहु-ब्रहाणि० झण्हमवत्त० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अणंतगुणविहु-अविह० सम्म०-सम्मामि० अविह० सन्वद्धा । सम्म० अणंतगुहाणि० श्राघं । एवं पढमपुढवि०-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सागो ति । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णविर सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णत्थि । एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए ति । पंचि०तिरि०अपज्ज० ब्रब्बीसंपयडीणं तरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अविह० णेरइयभंगो । एवं मणुसअपज्ज० । णविर ब्रब्बीसंपयडीण-मणंतगुणविहु--अविह० सम्म०-सम्मामि० अविह० ज० एगस०, उक्क० पिनदो० असंखे०भागो ।

१५६०. मणुस्सेसु छन्वीसं पयडीणं तेरसपद्वि० सम्म०-सम्मामि० अविष्ठि णेरइयभंगो । णवरि चदुसंज०-पुरिस०-सम्म० अणंतगुणहाणि० जह० एगस०, उक्क० श्रंतोम्रहुतं । छएए। सवतः सम्मामि० अणंतगुणहाणि० जह० एगस०, उक्क० संखेजा समयो । मणुसपज्ज० छन्वीसं पयडीणं पंचवट्टी० ज० एगस०, उक्क० आवित्० असंखे०-

१ ५५९. श्रादेशसे नारिकयों में छ्वीम प्रकृतियों की पांच वृद्धियों श्रीर छ हानियों का तथा सम्यक्त्य, सम्यग्मिध्यात्व श्रीर श्रान्तानुबन्धीचतुष्ककी श्रवक्तव्य विभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रावलीं के श्रमख्यातवें भागप्रमाण है। छव्वीस प्रकृतियों की श्रमत्त्रगुण्युद्धि श्रीर श्रवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व श्रीर सम्यग्मिध्यात्वकी श्रवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्वकी श्रमन्तगुण्युद्धिनिका काल श्रोवके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पश्चिन्त्रिय तिर्यश्च, पश्चिन्त्रिय तिर्यश्च प्रयाप्त, सामान्य देव श्रीर मौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवों में जानना चाहिए। दूमगीसे लेकर सात्रवी पृथिवी तकके देवों स्वर्मा प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि दूमरे श्रादि नरकों सम्यक्त्य प्रकृतिकी श्रमन्तगुण्याद्यिन नद्यां होती। इसी प्रकार पश्चित्त्य तिर्यश्च श्रप्याप्तकों सम्यक्त्य प्रकृतियों ते तेरह पद विभक्तियों जानना चाहिए। पश्चित्त्य तिर्यश्च श्रप्याप्तकों श्रवस्थित विभक्तिका काल नारिक्यों के समान है। इसी प्रकार मनुष्य श्रप्याप्तकों जानना चाहिए। इतना विशेष है कि छ्व्यीस प्रकृतियों की त्रान्तराकी श्रमन्तगुण्युद्धि श्रीर श्रवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्तव श्रीर स्वर्यास्थत विभक्तिका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल पत्यके श्रसंख्यातवे भागप्रमाण्य है।

§ ५६०. मनुष्योमे छ्रन्दीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तियोका तथा सम्यक्त्व और सम्यक्तियांका ख्रविस्थित विभक्तिका काल नार्राक्योंक समान है। इतना विशेष है कि चारों संज्वलन कषाय. पुरुषंबद और सम्यक्त्वकी ख्रवन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल ख्रन्तर्मुहूर्न है। छह प्रकृतियोकी ख्रवक्तव्य विभक्तिका और सम्यग्मिण्यान्वकी ख्रवन्त गुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। मनुष्य पर्याप्तकोंमे छुट्बीस प्रकृतियोंकी पांच बृद्धियोंका जघन्य काल एक समय है ख्रीर उत्कृष्ट काल

श्रा० प्रती सम्म० श्रग्तेतगुण्हाणी जह० एगस० उक्क० संखेजा समया इति पाठः ।

भागो | इहाणी = सम्मामि = अणंतगुणहाणि = इएहमवत्त = जह = एगस = , उक्क = संखेजा समया | अणंतगुणविष्ट - अविद्व = सम्म = सम्मामि = अविद्व = स्वदा | णविर चदु-संजल = - पुरिस = - सम्म = अणंतगुणहाणि = ज = एगस = , उक्क = अंतो मु = | एवं मणु-सिणी = | णविर पुरिस = अणंतगुणहाणि = ज = एगस = , उक्क = संखेजा समया |

१५६१. आणदादि जाव णवगेवज्ञा ति झन्त्रीसं पयडीएां अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० आवल्ठि० ऋसंखे०भागो । एवं छएहमवत्त० । सन्त्रासिमविद्वि० सन्त्रद्धा । सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० ओघं । अणंताणुवंधी० सन्त्रपदा० देवोघं । अणुिहसादि जाव अवराइदो ति सत्तावीसं पयडीएां दोपद्वि० सम्मामि० ऋवद्वि० ऋाणदभंगो । एवं सन्त्रहे । णविर छन्त्रीसं पयडीणमणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० संखेज्ञा समया । एवं जाणिद्ण णेद्व्वं जाव अणाहारि ति ।

विशेषार्थ-श्रांघसे श्रनेक जीव एक साथ श्रवक्तत्य विभक्तिवाले हुए और दूसरे समयमें श्रन्य विभक्तिवाले होगये तो एक समय काल होता है श्रीर यदि लगातार श्रनेक जीव श्रवक्तत्र्य विभक्तिवाले होते रहे तो श्रावलिका श्रसंख्यातवाँ भाग काल होता है। लगातार इससे श्रिषक समय तक श्रवक्तत्र्य विभक्तिवाले जीव नहीं पाये जाते। इसी प्रकार श्रन्य विभक्तिवालों का तथा श्रादेशसे चारों गतियोमे भी काल घटित कर जानना चाहिए।

६ ५६२. अन्तरानुगमकी अपेत्ता निर्देश दो प्रकारका है — स्रोघ स्रौर स्रादेश । स्रोघसे इच्बीस प्रकृतियोकी तेरह पद विभक्तियोका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सम्यक्त्व स्रौर

आवलीके असंख्यातवे भाग प्रमाण है। छह हानियोंका. सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहानिका और छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्तिका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। छव्वीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिश्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। इतना विशेष है कि चारो संख्वलन कपाय. पुरुषवद और सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मृहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्यिनियोमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि पुरुषवदकी अनन्तगुणहानिका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।

६ ५६१. त्रानतसे लेकर नवप्रैवयक तकके देवोंमे छ्रव्वीस प्रकृतियोकी त्रानन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अविलोक त्रासंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिका काल जानना चाहिए। सब प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका काल आघके समान है। अनन्ताजुबन्धीकपायके सब पदोंका काल सामान्य देवोकी तरह है। अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोमे मत्ताईस प्रकृतियोंकी दो पद विभक्तियोंका तथा सम्यग्गिध्यात्वकी अवस्थित विभक्ति का काल आनत स्वर्गके समान है। इसी प्रकार सर्वार्थीसिद्धिमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि छन्बीस प्रकृतियोकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए।

मवत्त० ज० एगस०, उक्क० चडवीसमहोरताणि सादिरेयाणि । सम्म०-सम्मामिच्छ-ताणमणंतगुणहाणि । ज० एगस०, उक्क० छम्मासा ।

इ ५६३. आदेसेण णेरइएस छन्वीसं पयडीणं पंचविट्ट-पंचहाणी० जह० एगस०, उक्क० असंखे० लोगा । अणंतगुणविट्टि०-अविटि० णित्थ अंतरं । अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० अंतोष्ठ० । सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० वासपुपतं । सम्म०-सम्मामि० अविटि० छएहमवत्त० ओघं । एवं पटमपुटवि०-पंचिदियितिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति । विदियादि जाव सत्तम-पुटवि०-पंचिदियितिरिक्ख जोणिणी--भवण०--वाण०--जोइसिए ति एवं चेव । णविर सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णित्थ ।

\$ ५६४. तिरिक्ख० इन्वीसंपयडीणमोघं । सम्म०-सम्मामि० णेरइयभंगो । पंचिं०तिरि०अपज्ज० ऋहावीसं पयडीणं सञ्वपद्वि० णेरइयभंगो । तिएहं मणुस्साणं पि णेरइयभंगो । णविर सम्म०-सम्मामि० ओघं । मणुस्सिणीमु सम्म०-सम्मामिच्छ-ताणं अणंतगुणहाणि० उक्क० वासपुधतं । मणुसअपज्ज० इन्वीसंपयडीणं पंचविष्ट्र०-पंचहाणि० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अणंतगुणविष्ट्र-हाणि-अविष्ठ० सम्म०-सम्यामिण्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है । छह प्रकृतियोकी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक चौबीस रात दिन है । सम्यक्त्व और सम्यामण्यात्वकी अनन्तगुण्हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है ।

६ ५६३. त्रादेशसे नारिकयोमे छन्दीस प्रकृतियोकी पाँचों दृद्धियो त्रोर पाँचों हानियोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण है। अनन्तगुणदृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है। अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्याग्मिण्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका तथा छह प्रकृतियोकी अवक्तव्यविभक्तिका अन्तर ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च, पश्चेन्द्रिय तिर्यश्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्नार स्वर्ग तकके देवोंमे जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सात्वी पृथिवी तकके नारिकयोमे तथा पश्चेन्द्रिय तिर्यश्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्यातिष्योमे इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमे सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानि नहीं होती।

ई ५६४. सामान्य तिर्यश्वोंमे छुट्वीस प्रकृतियोका भङ्ग त्रांघकं समान है। सम्यक्तव श्रौर सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग नारिकयाकं समान है। पश्चिन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकोंमे अष्टाईस प्रकृतियोकी सब पद विभक्तियोंका भङ्ग नारिकयोंकं समान है। तीन प्रकारके मनुष्योम भी नारिकयोंके समान भङ्ग है। इतना विशेष हैं कि सम्यक्त्व श्रौर सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग श्रोघके समान है। मनुष्यिनियोंमे सम्यक्त्व श्रौर सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तनुणहानिका उत्कृष्ट श्रम्तर वषष्ट्रथक्त्व है। मनुष्य श्रप्याप्तकोंमे छुट्वीस प्रकृतियोकी पाँच वृद्धियां श्रौर पाँच हानियोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रौर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रसख्यात लोकप्रमाण है। श्रनन्त-गुणवृद्धि, श्रनन्तगुणहानि श्रौर श्रवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व श्रौर सम्यग्मिध्यात्वकी सम्मामि० ऋवद्वि० ज० एगसमञ्चो, उक्क० पत्तिदो० असंखे०भागो।

्रथ्द्य. आणदादि जाव णवगेवज्ञा ति वावीसं पयडीएां अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि । अविह० सम्म०-सम्मामि० अविह० णिथ्थंतरं । दोएहमवत्त० सम्म० अणंतगुणहाणि० अणंताणु० सञ्वपदा० देवोघं । अणु- हिसादि जाव सञ्बद्दसिद्धि ति सत्तावीसं पयडीणमणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० वासपुथत्तं पत्तिदो० संखे०भागों । एदेसिमविह० सम्मामि० अविह० णित्थ अंतरं । एवं जाणिद्ण णेद्व्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ५६७, ऋषाबहुगाणु० दुविहो णिद्दे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण वावीसं पयडीएां सन्वत्थोवा अणंतभागहाणिविहत्तिया जीवा । असंखेजभागहाणिवि० असंखे०गुणा । संखेभागहाणिवि० संखे०गुणा । संखे०गुणहाणिवि० संखे०गुणा । असंखे०गुणहाणिवि० असंखे०गुणा । अणंतभागविड्डिविह० असंखे०गुणा । असंखे० भागविड्डिवि० असंखे०गुणा । संखे०भागविड्डिवि० संखे०गुणा । संखे०गुणविड्डिवि० अवस्थितिवभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट पत्यके असंख्यातवे भागप्रमाण है ।

१ ५६५. श्रानतसं लेकर नवप्रैवयक तकके देवोम वाईस प्रकृतियोकी अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उन्कृष्ट अन्तर सात रात दिन है। बाईस प्रकृतियोकी श्रविध्यत विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्याग्मध्यात्वकी अविध्यतिवर्भाक्तका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्याग्मध्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिका, सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककं सब पदाका अन्तर सामान्य देवोकी तरह है। अनुदिशसं लेकर सर्वार्थीसिद्ध तकके देवोम सत्ताईस प्रकृतियोकी अन-तगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनुदिशसं अपराजित तक वर्षप्रथक्त्व और सर्वार्थीसिद्धमे पत्यके सख्यातवे भागप्रमाण है। इन प्रकृतियोकी तथा सम्याग्मध्यात्व प्रकृतिकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

§ ५६६. भावानुगमकी त्र्रपेत्ता सर्वत्र ऋौद्(यक भाव है। इस प्रकार जानकर त्र्र्यनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये।

६ ५६७. अल्पबहुत्वानुगमकी अपंचा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आदेश। श्रोघसे बाईस प्रकृतियोकी अनन्तभागहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे असंख्यात भाग-हानि विभक्तिवाले जीव असंख्यात गाग-हानि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुण हैं। इनसे संख्यातमागहानि विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणहानि विभक्तिवाले जीव असख्यातगुणहानि विभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं। इनसे असख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातमागृद्धि विभक्तिवाले जीव संख्यातमागृद्धि विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगुणे हैं।

१. ता॰ प्रतौ पितदो॰ श्रसखेजदिभागो इति पाठः ।

संखे ० गुणा । असंखे ० गुणविहृ वि ० असंखे ० गुणा । अणंतगुणहाणिवि ० असंखे ० गुणा । अणंतगुणविहृ वि ० असंखे ० गुणा । अविदिवि ० संखे ज्युणा । एवमणंताणु० च उक्क ० । णवि र सन्वत्थोवा अवत्त ० विह ० जीवा । अणंतभागहाणिविह ० अणंतगुणा । सेसं तं चेव । सम्म० - सम्मामिच्छत्ताणं सन्वत्थोवा अणंतगुणहाणिवि ० जीवा । अवत्त ० विह ति ० असंखे ० गुणा । अविदि० विह ति ० असंखे ० गुणा ।

५ ५६ द्र. आदेसेण णेग्इएमु वावीसंपयडीणमोघं। अणंताणु०चउक्क० सब्ब-त्थोवा अवत्त०विहत्तिया जीवा। अणंतभागहाणिवि० असंखे०गुणा। उर्वार ओघं। सम्मानि० सन्वत्थोवा अवत्त०विहत्ति० जीवा। अविडि०वि० असंखे०गुणा। एवं पढमपुढवि--पंचि०तिरिक्ख--पंचि०तिरि०पज्ज०--देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारे ति।विदियादि जाव सत्तमित्ति पंचिदियतिरिक्खजोणिणी०-भवण०-वाण०-जोइसिए ति एवं चेव। णविर सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो। तिरिक्खा० ओघं। णविर सम्मामि० णेरइयभंगो। पंचि०तिरि०अपज्ज० छब्बीसंपयडीणमोघं। [णविर अणंताणु०] मिच्छत्तभंगो। सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्ताणं णित्थ अप्पावहुत्रं, एयपदत्तादो। एवं मणुसळ्ञपज्ज०।

इनसे असंख्यातगुण्हिद्ध विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणहानि विभक्ति-वाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुण्मृद्धि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित विभक्तिवाले संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अल्पबहुत्व है। किन्तु इनसे अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनन्तभागहानि विभक्तिवाले अनन्तगुणे हैं। शेष पूर्ववत जानना। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहानि विभक्ति वाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं।

इ ५६८. त्रादेशसे नारिकयों में बाईस प्रश्नितयोंका भङ्ग त्रांवकं समान है। त्रमन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तत्र्य ।वर्भक्तिवालं जीव सबसे थोड़े है। इनसे अनन्तभागहानि ।वभक्तिवालं जीव असंख्यातगुर्गा है। आगे श्रोधकी तरह भङ्ग है। सम्यक्त्व प्रश्नितका भङ्ग श्रोधकी तरह है। सम्यक्तिवालं श्रवक्तिवालं श्रवक्तिवालं श्रवक्तिवालं जीव असंख्यातगुर्गा है। इसी प्रकार पहली प्राथवी, पश्चीन्द्रयतियश्च, पश्चीन्द्रयातर्यश्चपयाप्त, सामान्य देव और सौधर्भसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवाम जानना चाहिए। दूसरे नरकसे लेकर सातवे पर्यन्त तथा पश्चीन्द्रयतिर्यश्चयोनिनी, भवनवासी, त्यन्तर और ज्योतिपयोमं इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विरोप है कि सम्यक्त्व प्रश्नितका भङ्ग सम्योग्मध्यात्वकं समान है। सामान्य तिर्यश्चोमं श्रोधके समान भङ्ग है। इतना विरोप है कि सम्यग्निध्यात्व प्रश्नितका भङ्ग नारिकयोके समान है। पश्चीन्द्रयतिर्यश्च अपर्याप्तकोमं छव्वीस प्रश्नितयोका भङ्ग श्राघकी तरह है। इतना विरोप है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग मिध्यात्वकं समान है अर्थान् इनका अवक्त्वय पद नहीं होता। सम्यक्त्व और सम्यग्निध्यात्व प्रश्नितका अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि यहाँ उनका एक ही पद पाया जाता है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोमं जानना चाहिए।

५६६. मणुम्संसु छन्त्रीसंपयडीणं णेरइयभंगो । सम्म०-सम्मामिच्छताणं सव्वत्थोवा अणंतगुणहाणिविहत्तिया जीवा । अवत्त०विहत्ति० संग्वे०गुणा । स्रविद्धि विहत्ति० असंग्वे०गुणा । एवं [मणुस] पज्जत्त-मणुसिणीसु । णविर सव्वत्थ संखेज्जगुणं कायव्वं । आणदादि जाव णवगेवेज्जा ति वाबीसंपयडीणं सव्वत्थोवा अणंतगुण-हाणिविहत्ति० जीवा । अविद्ध०विहत्ति० असंखेज्जगुणा । सम्म०-सम्मामिच्छ०-अणंताणु०चउक्क० देवोघं । आणदादिसु अणंताणु०वंधीणं छविद्ध-छहाणिसंभवो उच्चारणाहि-प्पाएण लिहिदो, विसंजोणदृण संजुर्जाम्म तद्वलंभादो । मृलवक्तवाणाहिप्पाएण पुण अणंतगुणहाणि-अविद्द-अवत्तव्वाणि चेव । एवं जाणिय वत्तव्वं । अणुहिसादि जाव अवराइदो ति सत्तावीसंपयडीणं सव्वत्थावा अणंतगुणहाणिविहत्तिया जीवा । अविद्दिविहत्ति० असंखे०गुणा । सम्मामि० णित्थ अप्पावहुअं । एवं सव्वद्धे । णविर संखेज्जनगुणं कायव्वं । एवं जाणिद्ण णेद्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं णीदं वड्डि ति अणियोगदारं समतं होदि ।

हाणपरूवणा ।

संतकम्मद्वाणाणि तिविहाणि—वंधसमुप्पत्तियाणि हदसमुप्पत्तियाणि हदहदसमुप्पत्तियाणि ।

ु ५६९. सामान्य मनुष्यामे छन्त्रीस प्रकृतियोका नार्राक्योके समान भन्न है। सम्यक्त्व श्रीर सम्यामिणा वकी अनन्तगणहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े है। इनसे अवक्तव्य-विमक्तिवाले जीव संख्यानगुण् है। इनसे अवस्थिनविभक्तिवाले जीव असंख्यानगुणे हैं। इसी प्रकार मनुष्य पर्यात और मनुष्यिनियोमे जानना चाहिए। इतना विशेष है कि सर्वेत्र संख्यात-गुणा कर लेना चाहिये। त्र्याननसे लेकर नवप्रैययक नकके देवाम वाईस प्रकृतियोकी त्र्यनन्त-गुणहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगरणे हैं। सम्यक्त्व. सम्याग्मध्यात्व श्रौर अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग सामान्य देवोकी तरह है। श्चानत त्र्यादिमे अनन्तानुबन्धी कपायकी छह रूद्धि और छह हानियोंका होना उच्चारणाके श्रिभिप्रायसे लिग्वा है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकपायका विसंयोजन करके पुतः उसका संयोजन करने पर छह ाद्धियाँ और छह हानियाँ पाई जाती है। किन्तु मूल व्याख्यानके अभिप्रायसे श्चानत र्यादिमे अनन्तानुबन्धी कपायके अनन्तगुणहानि, अवस्थित[े] और अवक्तव्य पद ही होते है। इस प्रकार जानकर उनका कथन करना चाहिय। अनुदिशसे लेकर अपराजितविमान तकके देवोंमे सत्ताईस प्रकृतियोकी अनन्तगुणहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थित विभक्तिवालं जीव त्रसंख्यातगुणे हैं। सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिका त्रस्पबद्दत्व नहीं है। इसी प्रकार सर्वार्थीसद्धिमे जानना चाहिए । इतना विशेष है कि श्रसंख्यातगुराके स्थानमे संख्यातगरा। कर लेना चाहिये। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लंजाना चाहिये।

इस प्रकार वृद्धि ऋनियागद्वार समाप्त हुआ।

स्थानप्ररूपणा।

* सत्कर्मस्थान तीन प्रकारके हैं—वन्धसम्रुत्पत्तिक, हतसम्रुत्पत्तिक और हतहत-सम्रुत्पत्तिक। १५७०. बन्धात्समुत्पत्तिर्येषां तानि बन्धसमुत्पत्तिकानि । हते समुत्पत्तिर्येषां तानि हतसमुत्पत्तिकानि । हतस्य हतिः हतहतिः, ततः समुत्पत्तिर्येषां तानि हतहतिसमुत्पति-कानि । 'एए अच्च समाणा' ति इकारस्स अकारो । एवं तिण्णि चेव अणुभागदाणाणि होति, संगहणयावलंबणादो । संपित सण्णादिच उवीसअणियोगदारेमु परूविय समत्तेमु अणुभागस्स किं बड्ढी हाणी अबद्वाणं वा अत्थिणत्थि ति पुच्छिदं तिण्णण्णयविद्वाणद्वं भुजगारपरूवणा कदा । बढ्ढमाणो अणुभागो जहण्णेण उक्कस्सेण वा केतिय्रो बढ्ढिदं, हायमाणो वि जहण्णेण उक्कस्सेण वा केतिय्रो वहुदि, हायमाणो वि जहण्णेण उक्कस्सेण वा केतिय्रो हायदि ति पुच्छिदं तिण्णण्णयविद्वाणद्वं पदिणाक्लेवपरूवणा कदा । अणुभागस्म विद्व-हाणीओ जहण्णिया उक्किस्सिया चेदि किं वे चेव आहा अण्णाओ अत्थि ति पुच्छिदं बढ्ढीय्रो छिन्दहाओ हाणीओ वि तत्ति-याद्यो चेवे ति जाणावणद्वः बिद्धपरूवणा वि कदा । संपित्व द्वाणपरूवणा ण कायच्या, अपुच्चपमेयाभावादो । ण च पुच्चं परूविद्मसेव परूवणा जुता जाणाविद्यजाणाच फलाभावादो ति ? एत्थ परिहारो उच्चदे । ण द्वाणपरूवणा विद्वला, बाढ्ढपरूवणाए परूविद्यहाणाणं विसेसपरूवयत्तादो । बढ्ढीओ छच्चेव, अणंतासंखेज्जभागविद्विन्तिस्तं ज्वाणंत्रण्णविद्विनेष्ठाभाग्वादे । ति । ताओ च बिद्धपरूवणाण् तेरसञ्जाणयोगदारेति सित्थरं परूविद्वाओ । तदो पर्मयाभावादो ण द्वाणपरूवणा कायच्या ति ण पच्चद्वदे थं,

६ ५७०. जिन सन्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति बन्धमे होती है उन्हें बन्धममुत्पत्तिक कहते हैं। घात किये जानेपर जिन सत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति होती है उन्हें हतसमुत्पत्तिक कहते हैं। घात हुएका पुन: घात किये जानेपर जिन सत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति होती है उन्हें हतहतसमुत्पत्तिक कहते हैं। 'ए ए छच्च समाएगा' इस नियमके अनुसार इकारके स्थानमें अकार आदेश होनेसे हत शब्द बना है। इस प्रकार संग्रहनयका अवलम्बन करनेमें अनुभागस्थान तीन प्रकारके ही होते हैं।

शंका—मंज्ञा आदि चौबीस अनुयोगद्वागेका प्ररूपण समाप्त होने पर. अनुसागकी क्या वृद्धि, हानि और अवस्थान होता है या नहीं होता ? ऐसा प्रश्न किये जाने पर उसका निर्णय करनेके लिये सुजगार प्ररूपणा की। अनुभाग यदि बढ़ता है तो जघन्य और उत्कृष्ट रूपसे कितना घटना है ? ऐसा पृद्धने पर उसका निर्णय करनेके लिये पदिन होपका कथन किया। अनुभागकी गृद्धि और हानि क्या जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे दो ही प्रकारकी होती है या अन्य प्रकारकी मी होती है ? ऐसा पृद्धने पर गृद्धि छह प्रकारकी होती है और हानि भी छह ही प्रकारकी होती है थह बतलानेके लिये युद्धिका कथन किया। अनुभाव की स्वाप्त अव सन्कर्मस्थान का कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि कथन करनेके लिये अपूर्व प्रमेयका अभाव है। और पहले कही हुई बातका पुनः कथन करना युक्त नहीं है, क्योंकि जानी हुई बस्तुकी पुनः जानकारी करानेसे कोई लाभ नहीं है।

समाधान—इस शंकाका समाधान करते हैं—म्थानका कथन करना निष्फल नहीं है, क्योंकि वृद्धिका कथन करते समय जिन छह स्थानोंका कथन किया है उसमे उसके द्वारा विशेष कथन किया गया है। अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिके भेदसे वृद्धियाँ छह ही हैं। वृद्धि प्ररूपणामे तेरह अनुयोगद्वारोंके द्वारा उन वृद्धियोंका विस्तारसे कथन किया है। अतः नई वस्नु न होनेसे म्थानका

पादेकमसंखेजजभेयभिण्णद्यण्हं वड्ढीगां विसेसपरूवणादुवारेण द्वाणपरूवणाए अपुट्व-पमेयोवलंभादो । तासि वड्ढीणं सगंतव्भूटविसंसपरूवणद्वमुत्तरसृत्तं भणदि—

🛞 सन्वत्थोवाणि बंधसमुप्पत्तियाणि ।

५ ५७१. एत्थ अणुभागद्वाणाणि ति पुट्यमुत्तादो अणुबहृदे, अण्णहा सुत्त-त्थाणुबवत्तीदो । सन्वत्थोवाणि वंधसमुष्पत्तियद्वाणाणि ति एदेण सुत्तेण उविर भणिस्स-माणघाद्वाणिहितो वंधद्वाणाणं थोवतं चेव जेण परूविदं तेण णाणुभागद्वाणाणि-ओगद्दारं छएएां वड्दीएां विसेमपरूवयमिदि १ ण, देसामासियभावेण परूविद्तिव्यसे-सादो । संपित एदेण सुत्तेण मुइद्त्थपरूवएां कस्सामा । तं जहा—मुहुमणिगोदस्स सब्बनहएएएाखुभागसंतद्वाएां सच्वाणुभागद्वाणाणं पदमं होदि; एदम्हादो हेद्वा अण्णीसं मिच्छत्ताणुभागसंतकम्मद्वाणाणमभावादो । एत्थेव जहएएां होदि ति कुदो णव्यदे १

कथन नहीं करना चाहिये ऐसी शंका नहीं करना चाहिये. क्योंकि छह बुद्धियोंके असंख्यात भेद हैं, इनमसे प्रत्येकका विशेष कथन होनेसे स्थान प्ररूपणामे अपूर्व विषयका कथन पाया जाता है।

विशेषार्थ—सन्धर्मम्थान तीन प्रकारके होते हैं। कर्मका बन्ध होनेपर जिस कर्मम्थानकी प्राप्ति होती है उसे बन्धसमुत्पत्तिक सन्धर्मम्थान कहते हैं अर्थात बन्धसे उत्पन्न होनेवाला सन्कर्मम्थान। उस कर्मम्थानके अनुभागका घात किये जानेपर जो सन्कर्मम्थान उत्पन्न होता है उसे हतसमुत्पित्तिक कर्मम्थान कहते हैं। तथा उस घातसे उत्पन्न सन्दर्मस्थानके अनुभागका पुनः घात करने पर जो सन्कर्मस्थान होता है उसे हतहतसमुत्पत्तिक कर्मम्थान कहते हैं। उपर शंका की गई है कि इन सन्कर्मस्थानोंका कथन ले अकारान्तरसे पहले कर ही आये है पुनः उनके कहनेकी क्या आवश्यकता है तो उसका समाधान किया गया है कि पहले बृद्धि विभक्ति में छह बृद्धियों की अपेत्तासे ही कथन किया है, किन्तु यहाँ उन बृद्धियोंके असंख्यात अनन्तर भेदा मेसे प्रत्येक भेदकी अपेत्ता बृद्धिका कथन किया गया है यही इस कथनमें विशेषता है।

उन वृद्धियोके अन्तर्भूत विशेषोका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं-

अ बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सबसे थांडे हैं।

९ ५७१ इस सूत्रमे पूर्वसूत्रसे अनुभागस्थान शब्दकी अनुवृत्ति श्राती है, उसके बिना सूत्रका श्रर्थ नहीं हो सकता है।

शंका—सबसे थोड़ बन्धसमुत्पत्तिक स्थान हैं इस सूत्र के द्वारा आगे कहे गये हतसमु-त्पत्तिक स्थानोसे बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोका थोड़ा बनलाया है, आत. यह अनुभागस्थान नामक अनुयोगद्वार छह बृद्धियोंके विशेषका प्ररूपक नहीं है।

समाधान-नहीं, क्योंकि देशामर्थकरूपसे इसके द्वारा बृद्धियोंके विशेषका कथन किया गया है।

अब इस सूत्रसे सूचित ऋर्थका कथन करते हैं। वह इस प्रकार है—सूक्ष्म निगोदिया जीवका सबसे जघन्य ऋनुभागसत्त्वस्थान सब ऋनुभागस्थानोमें प्रथम है, क्योंकि उससे नीचे मिथ्यात्वके ऋन्य ऋनुभागसत्त्वस्थानोंका ऋभाव है।

शंका-सूक्त्म निगोदिया जीवके ही सबसे जघन्य श्रतुभागसत्त्वस्थान होता है यह किस प्रमाणसे जाना ?

मिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स १ सृहुमस्स हदसमुप्पत्तियकम्मियस्से ति सामिस्रुत्तादो । जिद एदं जहण्णाणुभागहाणं सृहुमिणिगोदेण हदसमुप्पत्तियकम्मेणुप्पाइदं तो णेदं वंधसमुप्पत्तियहाणं, घादेणुप्पाइदस्स वंधदो समुप्पत्तिविरोहादो ति १ ण वंधसमुप्पत्तियहाणमेवे ति उत्रयाग्ण हदसमुप्पत्तियहाणस्स वि वंधसमुप्पत्तियहाणत्तं पि विरोहाभावादो । कथमेदस्स वंधसमुप्पत्तियहाणसमाणतं १ ण, अहं क-उञ्चकाणं विचात्तेस अणुप्पण्णत्रणेण वंधसमुप्पत्तियहाणाणुभागाविभागपिहच्छेदेहि सिरसाविभागपिहच्छेदत्त्रणेण च वंधसमुप्पत्तियहाणसमाणतुवत्तंभादो । एदं च जहण्णाणुभागहाणमहंकाविहदं । किमहं कं णाम १ अणंतगुणवद्दी । कथमेदिस्से अहं कसण्णा १ अहण्हमंकाणमणंतगुणवद्दी ति हवणादो । जहण्णाणुभागहाणमणंतगुणवद्दीए अवहिद्मिदि कुदो णव्वदे १ अणंतभागविह्नकंडयं गत्ण असंखेज्जभागवभिह्यहाणं होदि । असंखेज्जभागविद्वकंडयं गंतूण संखेज्भागवभिह्यहाणं होदि । संखेज्जभागविद्वकंडयं गंतूण संखेज्ञभागविद्वकंडयं गंतूण संखेजन्ति ।

समाधान-मिथ्यात्वका जघन्य, अनुभागसःकर्म किसके होता है ? हतस्मुरात्तिक कर्मवाले सृक्ष्म निर्गादिया जीवके होता है इस स्वामित्वको बनलानेवाले सूत्रसे जाना।

शंका—यदि यह जघन्य अनुभागम्थान निगोदिया जीवके द्वारा कर्मका घात करके उत्पन्न किया गया है तो यह वन्धसमुत्पित्तक म्थान नहीं हुआ, क्योंकि जो अनुभाग्यान घातसे उत्पन्न किया गया है उसकी वन्धसे उत्पत्ति होनेमें विरोध आता है। आशय यह है कि वन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंकी यह चर्चा है और सबसे जघन्य वन्धसमुत्पत्तिक स्थान हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले निगो-दिया जीवके वतलाया है, अतः वह हतसमुत्पत्तिकस्थान हुआ वन्धसमुत्पत्तिक स्थान नहीं हुआ।

समाधान–नहीं, क्योंकि यह बन्धसमुत्पत्तिक स्थान ही है। कारण कि उपचारमें हतसमु-त्पत्तिक स्थानके भी बन्धसमुत्पत्तिक स्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका - यह हतसमुत्पत्तिक स्थान बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके समान कैसे हैं ?

सुमाधान—पहां, क्योंकि प्रथम तो यह स्थान ऋष्टांक ऋौर उर्वकके बीचमे उत्पन्न नहीं हुआ है कि दूसरे उसके ऋषिमागी प्रतिच्छेद बन्धममुत्पत्तिक स्थानके ऋष्मागके ऋषिमागी प्रति-च्छेदोंके समान हैं, ऋत: यह स्थान बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके समान पाया जाता है।

यह जघन्य अनुभागम्थान अष्टाकरूपसे अवस्थित है।

शंका-अष्टांक किसे कहते है ?

समाधान-अनन्तगुरावृद्धिको ।

शंका-अनन्तगुग्वविकी अष्टांक संज्ञा है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि ऋठिके श्रंककी श्रनन्तगुगावृद्धिरूपसे म्थापना की गई है।

शंका-जघन्य अनुभागम्थान अनन्तगुण्यृद्धिरूपसे अवस्थित है यह कैसे जाना ?

समाधान—काण्डक प्रमाण अनन्तभागतृद्धिके होनेपर असंख्यातभागतृद्धिम्थान होता है। काण्डक प्रमाण असंख्यातभागतृद्धिके होनेपर संख्यातभागतृद्धिम्थान होता है। काण्डक

१ श्रा॰ प्रतो एवं च इति पाटः।

गुणब्भहियद्वाणं होदि । संखेज्जगुणवड्डिकंडयं गंतूण असंखेज्जगुणब्भहियद्वाणं होदि । असंखे ० गुणवड्डिकंडयं गंतूण अणंतगुणव्भिहियद्वाणं होदि त्ति वेयणाए कंडयपरूवणा-सुतादो णव्यदे । ण च जहण्णद्वाणे अणद्व के संते तद्वरि संपूर्णकंडयमेनाएां पंचरहं वड्ढीणमेगअणंतगुणवड्ढीए च संभवो अन्थि, विरोहादो । कि कंडयं णाम ? सूचित्रंगु -लस्स असंग्वे०भागो । तम्म को पडिभागो ? तप्पाओग्गत्रसंखे०रूवाणि ।

५७२. एसा च कंडयआयामसंखा ऋसु वि वड्डीसु सरिसा ति दहन्वा। कुदो ? सुत्ताविरुद्धाइरियवयणादो । एदं जहण्णाणुभागद्वाणं संतकम्मद्वाणं वंघद्वारा-समाणामिदि करो एव्यरे ? अणुभागसंकमजहण्णपद्णिक्वेवसत्तारो । तं जहा-

प्रमाण सस्यातमागर्गुद्धके होनेपर संख्यातगुण्युद्धिस्थान होता है। काण्डक प्रमाण सख्यातगुण-वृद्धिके होनेपर असल्यातगुणवृद्धि स्थान होता है। काण्डकप्रमाण असंख्यातगुणवृद्धिके होनेपर अनन्तगुरावृद्धि स्थान होता है। काण्डकका कथन करनेवाल वदनाखण्डके इस सूत्रसे जाना। यदि जघन्य अनुभागम्थान अष्टांक प्रमाण न होता तो उसके उपर सम्पूर्ण काण्डकप्रमाण पांची वृद्धियां और एक अनन्तगुणवृद्धि संभव नहीं होती, क्योंकि ऐसा होनेमें विरोध है।

शंका-काण्डक किसे कहते है ?

समाधान-सूच्यंगुलकं असंख्यातवं भागका काण्डक कहते हैं।

शंका-उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान-उसके योग्य असंख्यात उसका प्रतिभाग है।

विशेषार्थ-सूच्म निर्गादिया जीवका जो सबसे जघन्य अनुभाग स्थान होता है वह सब श्रानुभागम्थानोमं प्रथम श्रानुभाग म्थान है उससे जवन्य कोई दूसरा श्रानुभागम्थान, नहीं होता। मगर वह अनुभागम्थान घातसे उत्पन्न होता है और यहाँ कथन बन्ध समुत्पत्तिक स्थानोका है तो उसका यहाँ ब्रह्ण नहीं होना चाहिये था। किन्तु घातसे उत्पन्न होने पर भी सुक्ष्म निर्गादियाका जघन्य श्रनुभागम्थान बन्धसमुत्पत्तिक म्थानके समान ही है। श्रीर इसके दो कारण है-एक तो यह स्थान अष्टांक श्रीर उर्वकके बीचमें उत्पन्न नहीं होता, दूसरे इसक श्रविभागी प्रतिच्छेद् बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके श्रविभागी प्रतिच्छेदोके बराबर ही होते हैं। इन दोनों कारगोका विवंचन क्रमसे किया जाता है-(१) यह जघन्य श्रनुभाग स्थान ऋष्टांक रूप है, इसलिये इसकी उत्पत्ति अष्टाक और उर्वंकक बीचम नहीं होती। तथा इसके ऊपर सम्पूर्ण काण्डकप्रमाण पाँचो बृद्धियाँ श्रीर एक श्रानन्तगुणबृद्धि होती है इसलिये यह श्रष्टांक ्रेहप है, क्योंकि अशंकके ऊपर ही इतनी वृद्धियाँ हो सकती हैं और जो स्थान अशंक और उर्वंककं बीचमे उत्पन्न होता है उसपर केवल अनन्तगुणर्राख हा होती है, शेप र्राख्याँ नहीं होती।

इ ५७२. सूत्रसं ऋतिरूद्ध ऋाचार्यवचनोंसे काण्डकका यह प्रमाण छहा वृद्धियोमं समान जानना चाहिये।

शंका-यह जवन्य अनुभाग सत्कर्मस्थान बन्धस्थानके समान है यह कैसे जाना ? मगाधान-अनुभाग मंक्रम अनुयोगद्वारमें जधन्यपदिनिच्चेपका कथन करनेवाले सूत्रसे सुद्गणिगोदजहण्णद्वाणस्सुविर अणंतभागव्भिह्यं विदृष्ण वंशिय पुणो वंशावित्या-दीदिम्ह तम्ह संकामिदे जहण्णिया विद्व ति । ण च जहण्णद्वाणे संतकम्मदाणे संते अणंतगुणविद्व मोत्तृण अण्णा वृद्वी संभविद्र, अहं कुव्वंकाणं विचाले समुप्पण्णस्स सेसवृद्वीणं संभविद्योहादो । ण च वंधेण विणा उक्कडणाए अणुभागद्वाणस्स वृद्वी अत्थि, सरिसंधणियपरमाणुवृद्वीण अणुभागद्वाणस्स वृद्वीण अभावादा । उक्कड्विदं संते पुव्वित्वअविभागपिहच्छेदसंखादो संपिहयअविभागपिहच्छेदसंखाए वृद्वी किमित्थि आहो णत्थि ? जिद्द अत्थि, अणुभागद्वाणवुद्वीण होद्व्वं जोगद्वाणाणं व । ण च अविभाग-पिहच्छेदसमूहं मोत्तृण अण्णमणुभागद्वाणमित्थि, अणुवलंभादो । अह णित्थ, वंधेण फद्द्यवृद्वीण संतीण् वि अणुभागद्वाणवुद्वीण् ण होद्व्वं। तत्थ वि उक्कड्वणाण् इव अविभाग-पिहच्छेदविद्वं मोत्तृण अण्णवृद्वीण् अणुवलंभादो । वंधे पदेसाणं वृद्वी अत्थि त्ति णाणु-भागवुद्वी तत्थ वोत्तुं सिक्कज्वइ, अणुभागपदेसाणमेगत्ताभावादो । ण च अण्णस्स वृद्वीण अण्णस्स वृद्वी होदि, विरोहादो । वंधे फद्द्यवृद्वी अत्थि ति ण द्वाणवुद्वी वोतुं सिक्कज्वइ, अविभागपिहच्छेदविदित्तफद्द्याणमणुवलंभादो । तम्हा वंधेणेव उक्कड्वणाण् वि अणु-भागद्वाणवुद्वीण् होद्व्विमिदि ? एत्थ पिरहारो वृच्वदे । तं जहा—ण ताव पदमपक्ख्त-

जाना । वह इस प्रकार है - सूक्ष्म निगोदिया जीवके जघन्य स्थानके ऊपर अनन्तभागवृद्धिको लिए हुए वंध करने पर पुनः इसका बन्धावलीसे बाह्य निपंकोंम वन्धावलीको विनाकर
संक्रमण करने पर जघन्य शृद्धि होती हैं । यदि सूक्ष्म जीवका जघन्य अनुभागस्थान बन्धस्थानके
समान न होकर, सक्मिस्थान रूप होता तो उसमे अनन्तगुणशृद्धिको छोड़कर दृसरी शृद्धि नहीं
होती. क्योंकि जो स्थान अष्टांक और उर्वकके बीचमे उत्पन्न हुआ है उसमे श्रेप वृद्धियोंके
होनेमें विरोध आता है । तथा बधके विना उत्कर्षणके द्वारा अनुभागस्थानकी वृद्धि होती है. यह
कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि समान धनवाले परमाणुआंकी वृद्धि होने पर अनुभागस्थानका
वृद्धिका अभाव है ।

श्रंका—उत्कर्पएके होने पर पहलेके अविभागी प्रितच्छेदोकी संख्यासे वर्तमान अविभागी प्रितच्छेदोकी संख्यासे वृद्धि होती है या नहीं ? यदि होती है तो योगम्थानकी तरह अनुमागस्थानकी वृद्धि भी होनी चाहिये। और अविभागी प्रितच्छेदोक समूहको छोड़ कर अनुमागस्थान कोई अन्य वस्तु नहीं है. क्योंकि ऐसा पाया नहीं जाता है। यदि उन्कर्पएके होने पर पहलेके अविभागी प्रतिच्छेदोकी संख्यासे वृद्धि नहीं हती है तो बन्धके द्वारा स्पर्थकोंकी वृद्धिके होने पर भी अनुभागस्थानकी वृद्धि नहीं होनी चाहिये, क्योंकि उत्कर्पएकी तरह उसमें भी अविभागी प्रतिच्छेदोकी वृद्धिको छोड़ कर अन्य वृद्धि नहीं पाई जाती है। बंधके होने पर प्रदेशोकी वृद्धि होती है इसलिये अनुभागकी भी वृद्धि होती है ऐसा नहीं कह सकते हैं, क्योंकि अनुभाग और प्रदेश एक नहीं हैं। और अन्यकी वृद्धि होते पर अन्यकी वृद्धि होती है ऐसा माननेमें विरोध आता है। तथा वन्धक होने पर स्पर्धकोंकी वृद्धि होती है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि अविभागी प्रतिच्छेदोंस अतिरिक्त स्पर्धक नहीं पाये जाते हैं। अतः बंधकी तरह उत्कर्पएके द्वारा भी अनुभागस्थानकी वृद्धि होनी चाहिये।

दोसो संभवइ, उक्कड्डिदे अणुभागद्वाणाविभागपिडिच्छेदाणं बुड्डीए अभावादो। अणुभागद्वाणं णाम चिरमफद्दयचिरमवगणाए एगपरमाणुम्हि हिदअणुभागद्वाणाविभागपिडिच्छेदकलावो। ण सो उक्कड्डणाए बहुदि, बंधेण विणा तदुक्कड्डणाणुववत्तीदो। ण च बंधेण जादवही उक्कड्डणाविह ति बुचिदि, वंधे उक्कड्डणाए पहाणत्ताभावादो। ण च हेहिमपरमाण्णमणुभागे अणणुभागद्वाणे उक्कड्डणाए बहुदे अणुभागद्वाणस्स बुट्टि होदि, अण्णबुट्टीए अण्णस्स बुट्टिविराहादो। ण च उक्कड्डणाए इव वंधेण वि अणुभागद्वाण-बुट्टीए अभावो, पुव्विल्लअणुभागद्वाणमण्णद्अणुभागाविभागपिडिच्छेदकलावादो संपिटियअणुभागद्वाणसण्णद्अणुभागाविभागपिडिच्छेदकलावादो संपिटियअणुभागद्वाणसण्णद्अणुभागाविभागपिडिच्छेदकलावस्स अणंतभागदिसक्ष्वेण बिट्टिदेसणादो। चिरमफद्दयचिरमवग्गणाए एगपरमाणुम्हि हिद्अणुभागस्स द्वाणते इच्छिज्जमाणे एगाणुभागद्वाणम्म अणंताणि फद्द्याणि ति सृत्तेण सह विरोहो होदि ति णासंक्षणिज्ञं, जहण्णदाणस्स जहण्णफद्दयप्पहुि उविरमासेसफद्द्याणं तत्थुवलंभादो। ण च हेिहमाणुभागद्वाणाणं तत्थाभावो, तेहि विणा पयदाणुभागद्वाणस्स वि अभाव-प्यसंगेण तेसि तत्थ अत्थितसिद्धीदो। एगपरमाणुम्म अविदेदगुणम्स अणुभागद्वाणने

समाधान—अब इस शंकाका समाधान करते हैं जो इस प्रकार है—प्रथम पत्तमे दिया गया दोप तो सभव नहीं है. क्योंकि उत्कर्पण्के होने पर अनुभागस्थानके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी वृद्धि नहीं होती हैं। अनित्म स्पर्धककी अनित्म वर्गण्के एक परमागुमें स्थित अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंको समूहका अनुभागस्थान कहते हैं। अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंका समूहक्ष वह अनुभागस्थान उत्कर्पण्से नहीं बढ़ता है. क्यांक वधके बिना उसका उत्कर्पण् नहीं बन सकता है। यदि कहा जाय कि वंधके द्वारा होनेवाली वृद्धिको उत्कर्पण् वृद्धि कहते हैं सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि वंधमें उत्कर्पण्का प्राधान्य नहीं है। यदि कहा जाय कि नीचेके परमागुत्रोंके अनुभागमें जो कि अनुभागस्थान नहीं है, उत्कर्पण्के द्वारा बढ़ने पर अनुभागस्थानकी वृद्धि हो जायगी सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अन्यकी वृद्धि होने पर अन्यकी वृद्धिका विरोध है। शायद कहा जाय कि जैसे उत्कर्पण्के द्वारा अनुभागस्थानकी वृद्धि नहीं होती है वेसे ही बन्धके द्वारा भी नहीं होती, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि पहलेके अनुभागस्थान संज्ञावाले अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहकी अनन्तभाग आदि क्षसे वृद्धि देखी जाती है।

शंका—श्रन्तिम स्पर्धककी श्रन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमे स्थित श्रनुभागको श्रनुभागस्थान मानने पर एक श्रनुभागस्थानमे श्रनन्त स्पर्धक होते है इस सूत्रके साथ विरोध श्राता है ?

समाधान—एसी आशंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि जघन्य अनुभागस्थानके जघन्य स्पर्धकसे लेकर उपरके सब स्पर्धक उसमें पाये जाते हैं। शायद कहा जाय कि नीचेके अनुभागस्थानोंका उसमें अभाव है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उसके विना प्रशृत अनुभागस्थानके भी अभावका प्रसग उपस्थित होता है, अतः उसमे नीचेके अनुभागस्थानोंका अस्तित्व है यह सिद्ध होता है।

इंका-यदि एक परमाणुमें स्थित अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोके समृहको अनुभाग-

इच्छिज्जमाणे एगाणुभागद्वाणस्स जहण्णवग्गणप्पहुढि जावुकस्सद्वाणुकस्सवगणे ति कमवट्टीए अविद्वदेसपरूवणाए अभावो होदि, एगपरमाणुम्म उकस्साणुभागाधारम्म सेसाणंतपरमाणुणमभावादो । तेण णेदं घडदि ति ? ण, जत्य एसो उकस्साणुभागहाणपरमाणु अत्थि तत्थ किमेसो एको चेव होदि आहो अण्णे वि अत्थि ति पुच्छिदे एको चेव ण होदि अणंतेहि तत्थ कम्मक्तवंधेहि होद्व्यं तेसि च अवद्वाणक्षमो एसो ति जाणावणहं तप्परूवणाकरणादो । जहा जोगद्वाणे सव्वजीवपदेसाणं सव्वजोगाविभागपिडच्छेदे घेत्रूण द्वाणपरूवणा कदा तहा एत्थ किण्ण कीरदे ? ण, तथा कीरमाणे अधहिदिगलणाए परपयिहसंकमण अणुभागकंडयचिरमफालि मोत्रूण दुचिरमादिफालीसु च अणुभागद्वाणस्स घादप्पसंगादो । ण च एवं, कंडयघादं मोत्रूण अण्णत्थ तम्घादाभावादो । तम्हा एत्थ जोगद्वाणो व्य पज्जविद्यणयो णावलंवयव्यो । किमद्वमेत्थ द्व्विद्यणयो चेव अवलंबिज्जयि ? हिदीए इव पदेसगलणाए अणुभागघादो णित्थ ति जाणावणदः । जित् मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागवंधद्वाणिमिच्छिज्जदि तो संजमाहि-

स्थान माना जाता है तो एक अनुभागस्थानमें जघन्य वर्गणासे लेकर उन्कृष्ट स्थानकी उन्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त क्रमसे बढ़ते हुए प्रदेशोंके रहनेका जो कथन किया जाता है उसका अभाव प्राप्त होता है, क्योंकि उन्कृष्ट अनुभागके आधारभूत एक परमाणुमे शेप अनन्त परमाणुओं का अभाव है। अतः अनुभागस्थानका उक्त लक्ष्मण घटित नहीं होता है।

समाधान—एसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जहाँ यह उत्कृष्ट अनुभागस्थानवाला परमासा है वहां क्या यह एक ही परमासा है या अन्य भी परमासा हैं ऐमा पूछे जानेपर कहा जायसा कि वहां वह एक ही परमासा नहीं हैं किन्तु वहां अनन्त कमेन्कन्ध होने चाहिए और उन कमेस्कन्धोंके अवस्थानका यह कम है यह बतलानेके लिये अनुभागस्थानकी उक्त प्रकारसे प्रहुपसा की है।

शंका—जैसे योगस्थानमे जीवके सब प्रदेशोकी सब योगोके अविभागी प्रतिच्छंदोको लेकर स्थान प्रहण्णा की है वैसा कथन यहां क्यों नहीं करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वैसा कथन करनेपर अधःस्थितिगलनाके द्वारा और अन्य प्रकृति ह्रप संक्रमणके द्वारा अनुभागकाण्डककी अन्तिम फालिको छोड़कर द्विचरम आदि फालियों में अनुभागस्थानके वातका प्रसंग आता है। किन्तु ऐसा है नहीं. क्योंकि काण्डकवातको छोड़कर अन्यत्र उसका वात नहीं होता। अतः यहाँ योगस्थानकी तरह पर्यायर्थिकनयका अवलम्बन नहीं लेना चाहिए।

शंका-यहां पर द्रव्यार्थिक नयका ही अवलम्बन किसलिए लिया गया है ?

समाधान-प्रदेशोंके गलनेसे जैसे स्थितिघात होता है वैसे प्रदेशोके गलनेसे ऋनुभागका घात नहीं होता यह बतलानेके लिए यहां द्रव्याथिकनयका श्रवलम्बन लिया गया है।

शंका-यदि मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागबन्धस्थान इष्ट है तो संयमके अभिमुख हुए

१, ता॰ प्रती अवयो वि इति पाठः।

मुहचिरमसमयिन्छादिहिस्स जहण्णबंधो किण्ण गहिदो ? ण, तत्थतणजहण्णबंधादो तत्थेवाणुभागसंतकम्मस्स अणंतगुणतुवलंभादो । जिद् एवं तो संजमाहिम्रहचिरमसमयिन्छाइहिस्स अणुभागसतकम्मं चेतव्वं, सुहुमेइंदियस्स सव्वुक्षस्सविसोहीदो अणंतगुणसिण्णपंचिदियंसंजमाहिम्रहिष्ट्छाइहिचरिमसमयिवसोहिए पत्तघादत्तादो ति ? ण, तस्स सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मादो अणंतगुणत्त्वलंभादो । तद्यांतगुणतं कुदो णव्वदे ? सव्वत्थावो संजमाहिम्रहसव्विद्यस्स जहण्णाणु०वधो अणंतगुणो । चर्रिदिय० जहण्णाणु०वधो अणंतगुणो । चर्रिदिय० जहण्णाणु०वधो अणंतगुणो । चर्रिदिय० जहण्णाणु०वधो अणंतगुणो । चर्रिदिय० जहण्णाणु०वधो अणंतगुणो । सहमे-इंदियअपज्ज० सव्विद्यस्स जहण्णाणुभागवंधो अणंतगुणो । तस्सेव हदसमुप्पाइदजहण्णाणुभागसंतकम्ममण्तगुणं । वाद्रेइंदिएण हदसमुप्पाइदजहण्णाणुभागसंतकम्ममण्तगुणं । वाद्रेइंदिएण हदसमुप्पाइदजहण्णाणुभागसंतक्तममण्तगुणं । वेइंदिएण जहण्णाणु०

अन्तिम समयवर्ती मिश्यादृष्टिके अनुभागवन्धका जघन्य बन्धरूपसे प्रह्म क्यो नहीं किया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि वहां होनेवाले जघन्य अनुभागवन्धसे वही प्राप्त होनेवाला अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा पाया जाता है।

शंका —यदि ऐसा है तो सयमके अभिमुख हुए अन्तिम समयवर्ती मिध्यादृष्टि जीव है अनु-भागसन्कर्मका बहुण करना चाहिए. क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जावकी सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिसे सयमके अभिमुख हुए अन्तिम समयवर्ती संज्ञी पश्चि द्रिय भिध्यदृष्टि जीवके जो विशुद्धि होती है वह अनन्त-गुणी होती है और उस विशुद्धिद्वारा उस अनुभागका घात हुआ है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके जघन्य अनुभागसंक्रमसे उसके अनन्त-गुणा अनुभागसंकर्म पाया जाता है।

शंका-सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवकं जघन्य अनुमागमत्कर्मनं उसका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान-संयमके अभिमुख हुए सर्वावशुद्ध अन्तिम समयवर्ती मिध्यादृष्टि जीवके जो जघन्य अनुभागवन्ध होता है वह सबसे थोड़ा ह । उससे सर्विवशुद्ध असंज्ञी पश्चिन्द्रियके होने वाला जघन्य अनुभागवन्ध अनन्तगुणा है। उससे चौड़ान्द्रिय जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागवन्ध अनन्तगुणा है। उससे तेइन्द्रिय जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागवन्ध अनन्तगुणा है। उससे वाद्र एकिन्द्रिय जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागवन्ध अनन्तगुणा है। उससे वाद्र एकिन्द्रिय जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागवन्ध अनन्तगुणा है। उससे वाद्र एकिन्द्रिय अपर्याप्तक जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागवन्ध अनन्तगुणा है। उससे उसी जीवके घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागवन्कर्म अनन्तगुणा है। उससे वाद्र एकेन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागमत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे दोर्डन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागमत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे दोर्डन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागमत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे दोर्डन्द्रय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागमत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे दोर्डन्द्रय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागमत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे दोर्डन्द्रय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागमत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे तेइन्द्रिय जीवके द्वारा

१, चा॰ प्रती धवातगुणासिरिष्यपंचिदिय – इति पाठः । २, ता॰ प्रती तद्रणंतगुणासं कत्ता याध्वदे इति पाठः ।

संतकम्ममणंतगुणं । चउरिंदिएण जहण्णाणु ०संतकम्ममणंतगुणं । असिएएपंचिंदिएएा जहण्णाणु ० संतकम्मपर्णातगुणं । संजमाहिम्रहसन्विवसुद्धचरिमसमयमिच्छाइहिएग हद-सम्रुप्पाइदजहण्णाणुभागसंतकम्ममणंतगुणं त्ति भणिदअप्पाबहुअसुत्तादो । होदु णाम अणु-भागबंधाणमणंत्रगुणत्तं ण संतकस्माणं: अणंतगुणाए विसोहीए पत्तघादाणमणंतगुणत्तविरो-हादो ति ण पच्चवहे यं, जादिसंबंधेण अणंतगुणहीणविसोहीदो वि बहुआणुभाग-खंडयस्स दंसणादो, तम्हा सुहुमेइंदिएण हदसमुखाइदत्रमणुभागसंतकम्मं चेव जहएण-मिदि घेत्तव्वं । सुहुमेइंदिएण सव्विधिद्धेण जहएएाजोगेर्एं हदसमुप्पाइदअणुभागो जहएए। ति किएए। बुचदे ? ण जोगविसंसणेण एत्थ पत्रोजणं, जोगादो अणुभाग-वड्डीए अभावादो । सञ्जुकस्सविसोहीए अणुभागसंतकम्मं हर्णतस्स सञ्वजहएएाजोगेएा थावे कम्मक्खंधे संगलंतस्स ओकडुणाए बहुकम्मक्खंधे णिज्जरंतस्स जेए। थोवा चेव पर-मार्ग्य होंति तेण अणुभागसंतकम्मस्स वि जहएएत्तं होटि ति जोगविसेसणं णियमेणेत्थ कायव्वं ? ण, परमाणुणं बहुत्तमप्पत्तं वा अणुभागर्वाट्टहाणीणं ण कारणिमिदि बहुसो घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य ऋतुभागमत्कर्म श्रानन्तगुणा है । उससे चौडन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया अनुभागसन्कर्म अनन्तगुर्णा है। उससे असजिप चेन्द्रिय जीवकं द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है। उससे सयमके श्राभमुख सर्वविशुद्ध चरम समयवर्ता मिथ्याद्यष्ट्र जीवकं द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभाग-सत्कर्म अनन्तगुणा है। इस प्रकार कहे गये अल्पवहृत्व सूत्रसे जाना जाता है कि सुक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके जघन्य अनुभागसन्कर्मसे संयमके अभिमुख हुए चरम समयवर्ती भिध्याद्येष्ट जीवका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है।

शंका—श्रनुभागवन्ध उत्तरोत्तर श्रनन्तगुरो होवें, किन्तु श्रनुभागसन्कर्म उत्तरोत्तर श्रनन्तगुरो नहीं हो सकते; क्योंकि श्रनन्तगुरो विशुद्धिके द्वारा धातको प्राप्त हुए श्रनुभागोके श्रनन्तगुरो होनेमे विरोध है।

समाधान—ऐसी आशका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि जातिविशेषके सम्बन्धमे अनन्त-गुणी हीन विशुद्धिसे भी बहुतसे अनुभागका काण्डकवान देखा जाना है। इसलिये सूक्ष्म एकेन्द्रियके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया अनुभागसन्कर्म ही जधन्य है ऐसा मानना चाहिये।

त्रंका—जबन्य योगवाले सर्वविशुद्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया। श्रानुभाग जघन्य है ऐसा क्यों नहीं कहते ?

समाधान–यहाँ पर योगविशेषसे प्रयोजन नहीं है, क्योंकि योगके द्वारा ऋनुभागकी वृद्धि नहीं होती।

शंका—मं जीव सर्वोत्क्रष्ट विशुद्धिकं द्वारा अनुभागसन्कर्भका चान करता है, सबसे जघन्य योगके द्वारा थोड़ कर्म स्कन्धोंका गलाता है और अपकर्पणके द्वारा बहुनसे कर्मस्कन्धोंकी निर्जरा करता है उसके यत: थोड़े ही परमाणु होते हैं अत: उसके अनुभागसन्कर्म भी जघन्य होता है, इसलिये यहाँ नियमसे योगको भी विशेषण रूपसे बहुण करना चाहिये।

समाधान-ऐसा कथन ठीक नहीं हैं. क्यों कि परमाणुत्रों का बहुतपना या अल्पपना

^{1.} म्रा॰ प्रती म्रणंतगुणविसोहीदो इति पाटः । २. ता॰ प्रती जहरणजोगिणा इति पाठः ।

पर्विदत्तादो । कि च, ण परमाणुबहुत्तमणुभागबहुत्तस्स कारणं, सम्मत्तसम्मामिच्छतुक्कस्साणुभागसामित्तसुत्तरण्यहाणुबवतीदो । तं जहा—दंसणमोहक्सववगं मोतूण्
सव्विम्ह उक्कस्सिमिद सामित्तसुत्तं णेदं यडदे, गुणिदकम्मंसियलक्स्वणेणागंत्ण सम्मतं
पिडविण्णस्स गुणसंकमचिरमसमण् वदृमाणस्स चेव सम्मतुक्कस्साणुभागदंसणादो ।
सुत्ताहिप्पाएण पुण स्विद्कम्मंसियलक्स्वणेणागंत्ण सम्मत्तं पिडविज्ञ्य वेद्घाविद्दिः
भिय दंसणमोहक्सववणं पारिभय जाव अपुव्वकरणपढमाणुभागकंडयस्स चिरमफाली
ण पदिद ताव सम्मत्तस्सुक्कम्समणुभागसंतकम्मिमिद् । ण च सुत्तमप्पमाणं, जिणवयणविणिग्गयस्म अप्पमाणत्तिरोहादो । तम्हा पदेसंबहुत्तमणुभागवहुत्तस्स कारणमिदि
सिद्धं । वयणसिण्णियासस्त्रत्त्रण्णहाणुववत्तीदो च णज्जदे जहाँ अणुभागवहुीए
कसाओ चेव कारणं ण जांगो ति । तं जहा—जम्स णामा-गोद-वेदणीयवेदणा स्वेत्तदो
उक्कस्सा तम्स भावदो णियमा उक्कस्सा ति वेयणासुत्तं । स्पेदं घडदे, स्वविदकम्मंसियसजोगिम्मि लोगपूरणाण् वदृमाणिम्ह उक्कस्साणुभागाभावादो । तदो ण जोगत्थोवत्तमणुभागथोवत्तस्स कारणमिदि सद्देयव्वं । जिद् वि कसाओ असुहपयडीणमणुभाग-

अनुभागकी वृद्धि और हातिका कारण नहां है। अर्थान् यदि परमागा बहुत हो तो अनुभाग भी बहुत हो और यदि परभाग कम हो तो अनुभाग भी कम हो ऐसा नहीं है, यह अनेक बार कहा जा चुका है। तथा परमाग्रुश्रोका बहुत होना अनुभागके बहुत्वका कारण नहीं है, अन्यथा सम्यक्त श्रीर सम्यग्मिथ्यात्वके उन्कृष्ट त्रनुभागका कथन करनेवाला म्वामित्वका सूत्र नहीं वन सकता। उसका खुलासा इस प्रकार है--दर्शनमोहके क्षपकका छोड़कर सर्वत्र सम्यक्त और सम्यग्नि-थ्यात्व प्रकृतिका उन्कृष्ट अनुभागसन्कर्म पाया जाता है यह स्वामित्व सूत्र है परन्तु यह घटित नहीं होता, क्यों कि गुणितक मीरिकलक्षणसे आकर सम्यक्तको प्राप्त करनेवाले जीवके गुण संक्रमके व्यन्तिम समयमे वर्तमान रहते हुए ही सम्यक्त्व प्रकृतिका अकृष्ट ब्रानुभाग देखा जाता है। किन्तु सूत्रके त्र्याभप्रायसे क्षापितकर्माशिकलक्षणसे त्राकर सम्यवत्वको प्राप्त करके दो छियासठ सागर तक भ्रमण् करके दर्शनमोहके क्षपणको प्रारम्भ करके जब तक अपूर्वकरणके प्रथम त्र्यनुभागकाण्डककी अन्तिम फालिका पतन नहीं होता तब तक सम्यक्त प्रकृतिका उन्कृष्ट अनुभाग ग्ह्ना है। शायद कहा जाय कि सूत्र अप्रमाण है किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्यों कि जिन भगवानके मुखसे निकला हुआ वचन अप्रमाण नहीं हो सकता। अतः प्रदेश-बहुत्व अनुभागक बहुत्वका कारण नहीं है यह सिद्ध हुआ। तथा वदनाम्वण्डका सन्निकष सूत्र भी अन्यथा नहीं वन मकता अत: जाना जाना है कि अनुभागकी वृद्धिमें कपाय ही कारण है, योग नहीं। उसका खुलासा इस प्रकार है-जिस जीवके नाम, गोत्र और वेदनीयकी वेदना चेत्रकी अपेचा उक्कष्ट है उसके भावकी ऋषेक्षा नियमसे उक्कष्ट होती है। यह वदनासूत्र है परन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि लोकपूरण समुद्धातमें वर्तमान क्षपित कमीशिक संयोग केवलीके उक्षष्ट अनुभागका स्रभाव है। स्रत: यांगका स्नरूपपना स्रनुभागके स्ररूपपनेका कारण नहीं है ऐसा श्रद्धान करना चाहिय।

^{9.} श्रा० प्रती —सामित्तं सुत्तरणहाणुववत्तीदो इति पाटः। २. श्रा० प्रती तम्हा प्रापदेस— इति पाटः। ३. श्रा० प्रती च ण जुज्जदे जहा इति पाटः।

बुड्ढीए विसोही वि सुहकम्माणुभागवुड्ढीए कारणं तो वि ण लोगपूरणमहिद्वियसजोगि-केवलिस्स उकस्साणुभागसंनकम्मं संभवइ, चरिमसमयसुद्वमसांपराइएण बद्धवेयणीय-द्विदीए बारसमुद्वत्तमेत्ताए पुच्चकोडिअवद्वाणाभावादो ? ण, चिराणद्विदीए पत्तिदोवमस्स असंखे०भागमेत्ताए अवद्विद्परमाणुणं बज्भमाणाणुभागम्मि तिरिच्छेण उक्कड्विदाणं तत्तियमेत्तकालमवद्वाणदंसणादो ।

शंका—यद्यपि कपाय श्रद्धुभ प्रकृतियों के श्रनुभागकी वृद्धिम कारण है और विशुद्धिरूप परिणाम श्रभ प्रकृतियों के श्रनुभागकी वृद्धिम कारण है तो भी लोकपूरण समुद्रघातम वर्तमान सयोगकेवलीके उत्कृष्ट श्रनुभागसन्दर्भका होना संभव नहीं है, क्यों कि सूद्भसाम्परायिक जीव श्रन्तिम समयमे वदनीय कर्मकी जो बारह मुहूर्तप्रमाण स्थिति बॉधता है, वह स्थिति एक पूर्वकोटि काल तक नहीं ठहर सकती।

समाधान—नहीं. क्यों कि पन्योपमके ऋसंख्यातवें भागप्रमाण पुरानी स्थितिमें जो परमाणु मौजूद है उनके बध्यमान ऋनुभागमें ऋषकर तिर्यक् रूपसे उत्कर्षित होने पर उतने काल तक ऋवस्थान देखा जाता है।

विशेषार्थ-एक जीवमे एक समयमे कर्मका जो अनुभाग पाया जाता है उसे स्थान वहते हैं। वह स्थान दो प्रकारका है-अनुभागवन्धस्थान और अनुभागमत्कर्मस्थान। बन्धम जो अनु-भागस्थान उपन्न होते हैं उन्हे अनुभागवन्धस्थान या बन्धसमृत्पत्तिक स्थान कहते है। सत्ताम स्थित अनुभागका बात करनेपर जो स्थान उत्पन्न होते हैं उनका अनुभाग यदि बंधनेवाल अनु-भागके बराबर ही होता है तो उन्हें भी बन्धसमुद्द्रपत्तिक स्थान ही कहते हैं, क्योंकि उनका अनुभाग बक्ष्यमान अनुभागस्थानके बराबर है। किन्तु जो अनुभागस्थान घानसे ही उत्पन्न होते हैं, बंधसे नहीं, तथा जिनका अनुभाग घाता जाकर बंधनेवाले अनुभागसे कम होता है, अर्थान् अष्टांक ऋौर उर्वकके बीचमे नीचेके उर्वकसे अनन्तग्राणा और ऊपरके अष्टांकसे अनन्तग्राणा हीन होता है उन्हें अनुभागसन्कर्मस्थान कहते हैं । उन्हींका दूसरा नाम हतसमुन्पत्तिक स्थान है । हतसमुन्पत्तिक स्थानके अनुभागको भी घातने पर जो स्थान उत्पन्न होते हैं। उन्हें इनहत्तममूल्यिक स्थान कहते हैं । इन तीनो स्थानोमे बन्धसमुत्पत्तिक स्थान सबसे थोड़ हैं। क्यो सबसे थोड़ है यह बतलानेके लिए ही आगेका कथन किया गया है। दन्धममुख्यत्तिक स्थानोमे सबसे जघन्य स्थान सुक्ष्म निर्गादिया जीवका ऋनुमागम्थान है । यद्यपि यह म्थान घानसे उत्पन्न होना है तथापि यह बन्धस्थानके समान है, क्योंकि इसके ऊपर एक प्रज्ञेगधिक बन्ध होनेपर ब्रान्भागकी जघन्य बृद्धि होती है श्रीर श्रन्तर्मुहर्तके द्वारा उसीका काण्डकघातके द्वारा घात किये जानेकर जघन्य हानि होती है। यदि सक्ष्म निर्गादियाका जबन्य श्रनुमानम्थान बन्धम्थानकं समान न होता तो इतनी जघन्य वृद्धि श्रीर हानि नहीं होती. क्योंकि बन्धके बिना वृद्धि नहीं होती। शायद कहा जाय कि जघन्य स्थानके ऊपर एक प्रचेप बृद्धि बयो नहीं होती तो इसका समाधान इस प्रकार है कि घात मत्त्वस्थान बन्धसहश श्रष्टांक श्रौर उर्वंककं बीचमे नीचेके उर्वंकसे अनन्तग्राहा श्रौर उपरंक अप्रांकसे अनन्तग्णा हीन हाता है। इसके ऊपर यदि विशुद्र जघन्य वृद्धिको लेकर भी बन्ध हो तो भी ऊपरके अष्टांकप्रमाण ही बन्ध होता है. अत: घात सत्त्वस्थानके ऊपर अनन्तगुण्जी ह ही होती है अनन्तभागबृद्धि नहीं होती । तथा हानिमें भी अनन्तगुणहानि ही होती है, अनन्तभागहानि नहीं होती । श्रत: सुक्ष्म निर्गादियाका जघन्य स्थान सत्त्वस्थान नहीं है किन्त बन्धस्थान है. इसलिए

उसे बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंमें सबसे जघन्य कहा है। यह जघन्य स्थान अनन्तगुणवृद्धिरूप होनेसे अष्टांक प्रमाण कहा जाना है। वृद्धियां छह होती हैं—अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, सख्यातभागवृद्धि, सख्यातगुणवृद्धि। असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि। इन वृद्धियोंकी सहनानी कमसे, उर्वक, चतुरङ्क, पञ्चांक, पष्टांक, सप्तांक और अष्टांक है। काण्डकप्रमाण पहलेकी वृद्धिके होनेपर आगंकी वृद्धि होती है। जैसे काण्डकका प्रमाण यदि दो कल्पना करे तो दो बार पहलेकी वृद्धिके होनेपर एकबार आगंकी वृद्धि होती है। जिसमें छहों वृद्धियां हों उसे पदस्थान कहते हैं। पदस्थानमें अगली अगली वृद्धिके पूर्व काण्डकप्रमाण पिछली पिछली वृद्धि और अन्तमें एक अनन्तगुणवृद्धि होती है। तदनुसार एक स्थानकी संदृष्टि इस प्रकार है—

उ उ ४	३३४.	उउप्	उउ४	उड४	इउ पू	उउ४	उउ ४	उ उ ६
338	उपष्ठ	उउपू	उउ४	उउ४	उउपू	उउ४	उउ४	उ उ ६
उउ४	338	उर्ध	338	उउ ४	उउप	338	= इच४	330
338	338	333	_ ਭਾਰ <i>ਮ</i>	338	उउ४	उउ४	338 	उड़ ६
उड४	338	उउप	338	- 338	उन्पू	उड४	338 -	338
उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	ਤਵ %	च उ प	उउ४	इड४	330
उउ४	उउ४	337	इड ५	उउ४	उड्	338	328	उ उ ६
उउ४	उउ४	उच्य	उ उ:8	उद्ध	उट४	उउ४	उउ४	उ स ६
उउ४	इउ४	उउ ५	उउ४	ਤਤ ਮ	उउपू	उउ४	ਤ ਤ ਨੂੰ	ਤ ਤ ਜ

सूक्ष्म निगोदियाके जवन्य स्थानके उपर ये वृद्धियां होती हैं. अतः वह अष्टांकरूप है। यदि वह अष्टांक और उर्वक के बीच में स्थित होता तो उसपर केवल अनन्तगुणवृद्धि ही होती, अन्य वृद्धियां नहीं होती। अग्नेर अनुभागन्थानकी वृद्धि केवल उत्कर्पणमात्रस नहीं होती, क्योंकि उत्कर्पण द्वारा नीच के अल्प अनुभागवाल निपंकांका उपरके अधिक अनुभागवाल निपंकांमें नित्तेपण करके उनका अनुभाग बढ़ाया जाता है किन्तु इससे अनुभागन्थानकी वृद्धि नहीं होती, अनुभागन्थान तो उर्योका त्यो रहता है, क्योंकि अन्तिम स्पर्धक की अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जो अनुभाग होता है उसे अनुभागन्थान कहते हैं। इसका विशेष खुलासा आगे करेंगे कि सबसे अधिक अनुभाग साना अन्तिम वर्गणाके अन्तिम परमाणुमें ही होता है और उत्कर्षण के द्वारा उसमे नेपण होना संभव नहीं है। अतः उत्कर्षण के द्वारा उद्योग किन्तु अनुभागन्थानकी वृद्धि नहीं होती। पूर्वम अन्तिम स्पर्धक की अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जो अनुभाग होता है उसे अनुभागन्थान कहा है। इसपर एक शंका यह की गई है कि जैसे योग्युस्थानमें जीवके सब प्रदेशाका प्रहण किया जाता है वैसे अनुभागन्थानमें सब स्पर्धक के सब अविभागी प्रतिच्छेदोंको न लेकर अन्तिम स्पर्धक की अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमे पाये जानेवाले अविभागी प्रतिच्छेदोंको ही क्या लिया तो इसका यह समाधान किया गया कि यदि सब स्पर्धकोंके सब परमाणु आमें पाये जानेवाले अवुभागको अनुभागको माना जायगा तो काण्डक घातके

बिना भी श्रतुभागके घातका प्रसंग उपस्थित होगा । श्रतः जैसे किन्ही परमास्त्रश्रोकी स्थिति कम हो जाने पर भी उनके अनुभागके घट जानेका कोई नियम नहीं है वैसे ही प्रदेशोंका गलन हो जाने पर भी अनुभागस्थानका घात काण्डकघात हुए बिना नहीं होता यह बतलानेक लिये ही यहां द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन लेकर अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाक एक परमागाम श्रनुभागस्थान कहा है। जैसे एक समयमे बांघे गये मिध्यात्व कर्मकी किसी जीवके ७० कोड़ी-कोड़ी सागरकी स्थिति पड़ी । यह स्थिति एक समयमें बांधे गये सब परमागुत्रोंकी नहीं है किन्तु जो निषक सबसे अन्तिम समयमे उदयमें आनेवाला है उसकी है. किन्त द्वव्यार्थिकनयसे वह सभी निषेकोकी स्थिति कही जाती है, उसी प्रकार अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमागुमे सबसे ऋधिक अनुभाग पाया जाता है अतः उसे ही अनुभागस्थान कहा जाता है। उसीमें अन्य सब स्पर्धकोंकी वर्गणात्रांके परमाण त्रोंका अनुभाग गर्भित है। इस प्रकार सहस निगोदिया हतसमुत्पतिक कर्मवालं जीवके मिण्यात्वका जो जधन्य अनुभागम्थान होता है वह सबसे जधन्य है। इसके सिवा श्रन्य जो श्रनुभागम्थान श्रागे बतलाये हैं व जघन्य नहीं हैं। मलमें शंका की गई है कि सुक्ष्म निगोदिया जीवके जघन्य योगके द्वारा जो हतसमूत्पत्तिक श्चनुभाग होता है वह जघन्य है ऐसा क्यों नहीं कहा तो इसका यह समाधान किया गया है कि योग अनुभागकी हानि अथवा वृद्धिम कारण नहीं होता. क्योर्कि चेत्रलाके वेदनाम्बण्डम कहा है कि सयोगकेवली श्रीर श्रयोगकेवलीके बंदनीय. नाम श्रीर गोत्रकर्मका उल्हुए श्रनुमाग ही होता है। यदि योगकी वृद्धि अनुभागकी वृद्धिका कारण होती तो यह नियम नहीं बन सकता, तब तो उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट दोनो ही अनुभाग संभव होते । तथा वदनामण्डकं सन्निकर्प विधानमे कहा है कि जिसके बद्नीयकी बद्ना चेत्रकी अपंचा क्ष्मप्र होती है उसके भाववद्ना नियमसे उक्षप्र होती है। इससे भी जाना जाता है कि योगकी गृद्धि अथवा हानि अनुभागकी गृद्धि अथवा हानिका कारण नहीं होती। सयोगकंवली जब लोकपृरण समुद्घातमे वर्तमान रहते है तब उनका उत्कृष्ट चेत्र होता है। भाव भी दसवें गुणस्थानवती क्षपकके जो होता है, लोकपूरण अवस्थाम वह उत्कृष्ट अथवा अनुस्कृष्ट होता है, ऐसा न कहकर अकुए ही होता है ऐसा कहा है। इससे जाना जाता है कि योगकी हानि-शृद्धि अनुभागकी शृद्धि-हानिका कारण नहीं होती। तथा इसी कसायपाहुडमे कहा है कि सम्यक्त्व और सम्यग्निश्यात्व प्रवृतिका उत्कृष्ट अनुभाग दर्शनमाहके क्षपकको छोडकर अन्यत्र सर्वत्र होता है. इससे भी उक्त बात जानी जाती है. क्योंकि उसमे कहा है कि च्रिपितकर्माशिक ऋर्थान् जधन्य प्रदेशसंचयकी जो मामग्री कही है उस सामग्रीसे श्चाकर त्रथवा गुणितकर्माशलचण त्रर्थान् उत्कृष्ट प्रदेशसंचयकी जो मामयी कही हैं उससे आकर सम्यक्तको प्रहर्ण कर दो छियासठ सागर नक श्रमण करके दर्शनमाहका चपण करते हुए श्रपूर्वकरणमे प्रथम श्रनुभागकाण्डकका जब तक पतन नहीं होता तब तक उस जीवक सम्याग्म-ध्यात्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभाग ही होता है। यदि योगकी वृद्धि हानि अनुभागकी वृद्धि हानिका कारण होती तो क्षपितकमाशको छोड़कर गुणितकमाशसे आकर सम्यक्त्वको प्रहण करनेवाले जीवके ही सम्यक्त और सम्याग्मिश्यात्व प्रकृतिका उन्द्रष्ट अनुभाग होता. क्योंकि गुणितकर्माश बालेके योगका बहुत्व पाया जाता है। और ऐसा होनेपर दर्शनमोहके चपकको छोड़कर सर्वत्र सम्यक्त श्रीर सम्याग्मध्यात्व प्रश्नीतका अनुभाग उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होता । किन्तु एसा नहीं होता; क्योंकि ऐसा कहा नहीं गया है। अतः योग अनुभागका कारण नहा होता। अतः सक्स एकेन्द्रिय जीवक सत्ताम स्थित अनुभागका घात करके जो अनुभागस्थान उत्पन्न होता है बही जघन्य श्रानुभागस्थान हे यह सिद्ध होता है।

§ ५७३, संपिह एट्स्स जहण्णाणुभागद्वाणस्स सरूवपिडबोहणद्विमा परूवणा कीरदे। तं जहा--जहण्णाणुभागद्वाणस्स सव्वकम्मपरमाणुपुंजं करिय पुणो तत्थ सन्वमंदाणुभागपरमाणुष्पासगुणं पण्णाए पुध कादृण जहण्णवड्डिगुणपमाणेण छिएएो सन्बजीवेहि अणंतगुणा सन्वागासघणादो वि त्रणंतगुणअविभागपहिच्छेदा लब्भंति। तेसिं वग्गमिदि सण्णं करिय ते पुध ठवेदन्वा । पुणो पुन्विल्लपरमाणुपु निम्म तस्सरिस-गुणं विदियपरमाणुं घेतूण तदणुभागस्स पुट्यं व पण्णच्छेदणए कदे तत्तिया चेव अणु-भागाविभागपडिच्छेदा छन्भंति । एदेमि पि वग्गमिदि सण्णं करिय पुन्विल्लवग्गस्स दाहिणपासे एदं वि पुध ठवेयच्वा। एवमेगेगसरिसधणियपरमाणु घेत्रण पण्णच्छेदणए करिय दाहिणपासे कंडुज्जुवपंतिरयणा कायव्वा जाव अभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्तसरिसधणियपरमाणू समत्ता ति । एदेसि सर्व्वेसि पि वग्गणा ति सवणा । पुणो गहिदसेसपरमाणुपुंजिन्म अवरेगं परमाणुं घेत्ण पण्णच्छेदणए कदे पुन्विल्लाविभागपडिच्छेदणएहिंतो संपहियअविभागपडिच्छेदा एगेण अविभागपडि-च्छेदेण अहिया होति । एदेसि वग्गसण्णं कादृण पुन्विल्लाणमुवरि टवेद्व्वा । पुणो एदेण परमाणुणा अविभागपिडच्छेदेहि सरिसा अभव्वसिद्धिएहि अणंतगुणा सिद्धाण-मणंतभागमेत्ता परमार्ग्यु तत्थ लब्भंति । तसि पि अणुभागम्स पुर्व्वं व पण्ण-च्छेदणए कदं अणंता ते वग्गा भवंति । एदं सच्वे घेत्तृण विदियवग्गण्णा होदि । एवं

১ ५७३. अब इस जघन्य अनुभागस्थानकं स्वरूपको सममानेके लिए यह कथन करते हैं। यथा-- जघन्य त्रानुभागस्थानके सब कर्मपरमागुत्रोको एकत्र करके उसमेसे सबसे मन्द त्रानु-भागवाले परमाराके स्पर्शगुराको बुद्धिके द्वारा पृथक करके, जधन्य बुद्धिरूप अविभागप्रतिच्छेदके प्रमाणसे उसका छेदन करनेपर वहां सब जीवराशिस अनन्तगुण श्रीर घनरूप समस्त त्राकाशसे भी अनन्तगुर्णे अविभागी प्रतिच्छेद पाये जाते हैं । उनकी 'वर्ग' संज्ञा करके उन्हें पृथक स्थापित कर देना चाहिए। पुन: पहलेक परमासु समूहमसे उस परमासुके समान गुरस्वाले दूसरे पर-मागुका लो । उसके अनुभागक भी पहलेक समान बुद्धिक द्वारा छेद करनेपर उतने ही अविभागी प्रतिच्छेद प्राप्त होते है । इनकी भी 'वर्ग' सज्ञा रखकर पहले वर्गके दाहनी ऋौर उन्हें भी पृथक स्थापित कर देना चाहिए। इस प्रकार समान धनवाले एक एक परमासुको लकर बुद्धिके द्वारा उसके स्पर्शगुणका छंदन करक दिव्हाण पारवम वाणकं समान ऋजु पंक्तिम रचना करते जात्रो स्त्रीर ऐसा तबतक करा जबतक अभव्यसांशासे अनन्तगुणे आर सिद्धसांशिक अनन्तवें भागप्रमाण समान धनवाले परमासु समाप्त हो । उन सब वर्गीकी वर्गसा संज्ञा है । पुन: प्रहस् करनेसे बाकी बचे हुए परमाणु पुंजमसे अन्य एक परमाणुको लेकर बुद्धिक द्वारा उसक अनुभागका छेदन करनेपर पहलेके प्रत्येक परमारामे पाये जानेवाले ऋविभागी प्रतिचछेदासे इसमें पाये जानेवाले ऋविभागी प्रतिच्छेद एक अधिक होते हैं। इनकी भी 'वर्ग' संज्ञा रखकर इन्हें पहलेके वर्गी के ऊपर स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार उस परमागुपुजमे अभन्यराशिसे अनन्तगुण और सिद्धराशिकं अन-न्तवें भागप्रमास परमासु एंसे पाये जाते है जिनके अविभागी प्रतिच्छेद उस एक परमासुके अवि-भागी प्रतिच्छेदोकं समान होते है। उन परमागुत्र्योकं भी ऋनुभागका पहलेकं समान बुद्धिके द्वारा छेद करनेपर व श्रनन्त वर्ग हो जाते हैं। इन सबको लेकर दूसरी बर्गणा होती है। इस प्रकार

दोअविभागपिडच्छेदुत्तरितिष्ण०-चत्तारि०-पंच०-छ०-सत्तादिअविभागपिडच्छेदुत्तरकमेण अविद्वित्रअणंतपरमाणू घेतूण तदणुभागस्स पण्णच्छेदणयं काऊण अभवसिद्धिएहि अणंतागुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्तवग्गणाओ उप्पाइय उविर उविर रचेद्व्वाओ । एवमेतियाहि वग्गणाहि एगं फह्यं होदि, अविभागपिडच्छेदेहि कमवट्टीए एगेगं पंति पद्च अविद्वित्तादो । उविरमपरमाण् अविभागपिडच्छेदसंखं पेविखदृण कमहाणीए अभावेण विरुद्धाविभागपिडच्छेदसंखतादो वा ।

\$ ५७४. पुणों,पढमफदयचरिमवग्गणाए एगवग्गाविभागपिडच्छेदेहितो एगविभागपिडच्छेदेशितो एगविभागपिडच्छेदेशितो एगविभागपिडच्छेदेशितो एगविभागपिडच्छेदेशि अहिययर परमाण् तत्थ चिरंतणपुज्जे अत्थि। ते घेत्तूण पढमफदयउपाइदकमेण विदियफदय- प्रपाएयच्वं। एवं तिदयादिकमेण अभविसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्ताणि फदयाणि उपाएदच्वाणि। एवमेत्तियफदयसम्हेण सुद्धुमणिगोदजहण्णाणुभागद्वाणं होदि। दो अविभागप्रतिच्छेद अधिक, तीन, चार, पांच, छह और झात आदि अविभागप्रतिच्छेद अधिकके कमसे अवस्थित अनन्त परमाणुओं हो लेकर उनके अनुमागका,सुद्धिके द्वारा छेदन करके

अधिकक क्रमस अवस्थित अनन्त परमागुत्राका लकर उनके अनुमागका,बुद्धिक द्वारा छद्न करके अमन्यराशिसे अनन्तगुर्गा; और सिद्धराशिक अनन्तवे मागप्रमाण वर्गणात्राको उत्पन्न करके उन्हें ऊपर ऊपर स्थापित करा । इस प्रकार इतनी वर्गणायोका एक स्पर्धक होता है, क्योंकि वहां अवि-मागप्रतिच्छेदोकी अपंचा एक एक पक्तिक प्रति कमाइद्धि अवस्थितरूपसे पाई जाती है । अथवा ऊपरके परमागुर्श्रामे अविमागप्रतिच्छेदोकी सख्याको दंखते हुए वहां क्रमहानिका अभाव होनेसे इसके विरुद्ध अविभागप्रतिच्छेदोकी संख्या पाई जाती है ।

६ ५५%. पुनः प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक वर्गके अविमागप्रतिच्छेद्वांसे एक अविमागप्रतिच्छेद्दः अधिकवाला परमाणु आगे नहीं है, किन्तु सब जीवोसे अनन्तगुणे अविमागप्रतिच्छेद अधिकवाले परमाणु उस चिरंनन परमाणुपुंजमे मौजूद हैं। उन्हें लेकर जिस क्रमसे प्रथम स्पर्धककी रचना की थी उसी क्रमसे दृगरा स्पर्धक उत्पन्न करना चाहिए। इसी प्रकार तीसरे अदि स्पर्धकों के क्रमसे अभन्यगाशिसे अनन्तगुणे और मिछराशिके अनन्तवें मागमात्र स्पर्धक उत्पन्न करने चाहिए। इस प्रकार इतने स्पर्धकों के समस अभन्यगाशिसे अनन्तगुणे और मिछराशिके अनन्तवें मागमात्र स्पर्धक उत्पन्न करने चाहिए। इस प्रकार इतने स्पर्धकों के समृहसे सूक्ष्म निर्णादिया जीवका जघन्य अनुभागस्थान बनता है।

विशेषार्थ—जयन्य अनुभागस्यानके समस्त परमागुओंको एकत्र करके उनमसे सबसे मन्द अनुभागवाले परमागुको लो और उसके ह्वा. रस और गन्धगुण्को छोड़कर स्वर्शगुण्को छुढिके द्वारा प्रहण करके उसके तब तक छेद करो जब तक अन्तिम छेद प्राप्त हो। उस अन्तिम खण्डको, जिसका दूसरा खण्ड नहीं हो। सकता. अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं। स्वर्शगुण्के उस अविभागप्रतिच्छेद प्रमाण खण्ड करने रस सब जीवोसे अनन्तगुण अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं। एक परमाणुमे रहनेवाले उन् अविभागप्रतिच्छेदोको समूदको वर्ग कहते हैं। अर्थान् प्रत्येक परमागु एक एक वर्ग है। यद्यपि: इसमे पाये जानेवाले अविभागप्रतिच्छेदोका प्रमाण् अनन्त है फिर भी संदृष्टिके लिए उसका प्रमाण् ८ कल्पना करना चाहिए। पुनः उन परमागुओं ससे प्रथम परमागुके समान अविभागप्रतिच्छेदवाले दूसरे परमागुको लो और उसके भी स्वर्शगुण्के बुद्धिके द्वारा खण्ड करनेवर इतने ही अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। यहांवर यह शंका हो सकती है कि परमागु तो खण्डरित है उसके खण्ड कैसे किए जा सकते हैं ? इसका उत्तर यह है कि परमागुद्रव्य अखण्ड अवश्य है किन्तु उसके गुण्की चुज्जिके द्वारा खण्डकल्पना की जासकती है,

क्योंकि एक परमाणुसे दूसरे परमाणुनं हीनाधिक गुणपर्याय देखी जाती है। इस दूसरे वर्गके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण यदापि अनन्त है तो भी संदृष्टिके लिए आठ कल्पना करना चाहिए त्रीर पर्वोक्त वर्गके दक्षिण भागमं उसकी स्थापना कर देनी चाहिए -८८। इस क्रमसे पूर्वोक्त परमाणुके समान एक एक परमाणुका लेकर उसके स्पर्शराणके अविभागप्रतिच्छेद करनेपर एक एक वर्ग उत्पन्न होता है। ऐसा तब तक करना चाहिए जब तक जघन्य गुणवाले सब परमागु समाप्त न हों। ऐसा करने र अभव्यराशिसे अनन्तगुर्णे और सिद्धराशिक अनन्तवें भागप्रमाण वर्ग प्राप्त होते हैं। उनका प्रमाण संदृष्टिरूपमे इस प्रकार है -८८८८। द्रव्यार्थिकनयकी ऋषेत्रा इन सभी वर्गीकी वर्गणा संज्ञा है, क्योंकि वर्गोंके समृहका वर्गणा कहते हैं। इस प्रकार इन वर्गोंका पृथक स्थापित करके उस परमागुपुं जमेसे फिर एक परमागा लो और बुद्धिके द्वारा उसका छेदन करके, छेदन करनेपर पूर्वीक्त परमाराष्ट्रश्रोंसे इसमे एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद पाया जाता है। उसका प्रमाण संदृष्टिरूपमें ९ है। यह एक वर्ग है और इसको पृथक् स्थापित करना चाहिए। इस क्रमसे उस परमागाके समान त्र्यविभागप्रतिच्छेदवाले जितने परमागा पाये जांय उनमेंसे एक एकके बुद्धिके द्वारा खण्ड करके अनन्त वर्ग उत्पन्न करने चाहिए। उनका प्रमाण इस प्रकार है-९९९। यह दूसरी वर्गणा है। इसको प्रथम वर्गणाके त्रागे स्थापित करना चाहिए। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पांचर्वा त्र्यादि वर्गणाएं, जो कि एक एक त्र्राधिक ऋविभागप्रतिच्छेदको लिए हये हैं, इत्पन्न करनी चाहिए । इन वर्गणात्र्यांका प्रमाण त्र्यमव्यराशिसे त्र्यनन्तगुणा त्र्यौर सिद्धराशिके श्रनन्तर्वे भागप्रमाण है। इन सब वर्गणात्र्योंका एक जघन्य स्पर्धक होता है, क्योंकि वर्गणात्र्योंके समृहको स्पर्धक कहते हैं। इस प्रथम स्पर्धकको पृथक स्थापित करके पूर्वीक परमागापुंजमेंसे एक परमाणुका लेकर बुद्धिकं द्वारा उसका छेदन करनेपर द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका प्रथम वर्ग उत्पन्न हाता है। इस वर्गमे पाये जानेवाल अविभागप्रतिच्छंदोका प्रमाण संदृष्टिरूपसे १६ है। इस क्रमसे अभन्यराशिसे अनन्तगुर्ण और सिद्धराशिके अनन्तवे भागमात्र समान अविभागप्रति-च्छेदवाले परमारगुत्रोंको लेकर श्रीर बुद्धिके द्वारा उनका छेदन करनेपर उतने ही वर्ग उत्पन्न होते हैं। इन वर्गीका समुदाय दृसरे स्पर्धकका प्रथम वर्गणा कहलाता है। इस प्रथम वर्गणाको प्रथम स्पर्धककी त्र्यन्तिम वर्गणाके त्रागे त्र्यन्तराल देकर स्थापित करना चाहिए। इस क्रमसे वर्ग, वर्गणा त्रौर स्पर्धकको जानकर तब तक उनकी उत्पत्ति करनी चाहिए जब तक पूर्वोक्त परमासुत्रोंका समुदाय समाप्त न हो । इस प्रकार स्पर्धकोंकी रचना करनेपर श्रभव्यराशिसे श्रनन्तगुणे श्रीर सिद्धराशिके त्रानन्तवें भागप्रमाण स्पर्धक श्रीर वर्गणाएं उत्पन्न होती हैं। इनमेसे श्रन्तिम स्पर्धककी श्रन्तिम वर्गणाके एक परमाग्रामें जो श्रनुभाग पाया जाता है उसे ही जघन्य स्थान कहते हैं। इसकी संदृष्टि इस प्रकार है-

	प्रथम स्प.	डि स्प .	तृ. ∓प.	चस्. प.	पं. स्प	प. स्प,
प्र० वर्गणा	6 6 6 6	१६	ે ૨૪	३२	82	४८
द्वि० वर्गणा	९९९	१७	ર્ષ	३३	8(४९
तृ० वर्गणा	१० १०	१८	२६	३४	85	ųo
च० वर्गाणा	११	१९	२७	३५	४३	५१
	··· ··		•••	•••	***	

§ ५७५. संपिह एदस्स जहण्णाणुभागद्वाणस्स अविभागपिहन्छेदपरूवणा वग्गणपरूवणा फद्दयपरूवणा ख्रंतरपरूवणा चेदि एदेहि चदुहि अणियोगद्दारेहि परूवणं कस्सामो । तत्थ अविभागपिहन्छेदपरूवणाए परूवणा पमाणमप्पाबहुअं चेदि तिण्णि अणियोगद्दाराणि । जहण्णियाए वग्गणाए अत्थि अविभागपिहन्छेदा । एवं णेद्व्वं जाव उक्कस्सिया वग्गणा ति । एवं परूवणा गदा ।

५७६. जहण्णियाए वग्गणाए श्रविभागपिडच्छेदा केविडया ? अणंता सन्व-जीवेहि अणंतगुणा । एवं णेदन्वं जाव उक्कस्सिया वग्गणा ति । एवं पमाणपरूवणा गदा !

ः ५७७. सन्वत्थोवा जहण्णियाए वरगणाए अविभागपिडच्छेदा। उक्कस्सियाए वरगणाए अविभागपिडच्छेदा अणंतगुणा। को गुणगारो १ सन्वजीवेहि अणंतगुणा। कुदां १ जहण्णबंधहाणप्पहुिड उविर असंखेळा०लोगमेत्तछहाणेसु गदेसु सुहुमेइंदिय-जहण्णहाणचिरमवरगणाए समुप्पत्तीदो । अजहण्णअणुक्कस्सियासु वरगणासु अविभागपिडच्छेदा अणंतगुणा। को गुणगारो १ अभवसिद्धि एहि अणंतगुणो सिद्धाण-मणंतभागमेतो । अणुक्कस्सियासु वरगणासु अविभागपिडच्छेदा विसेसाहिया। अजिण्यासु वरगणासु अविभागपिडच्छेदा विसेसाहिया। अजिण्यासु वरगणासु अविभागपिडच्छेदा विसेसाहिया। केतियमेत्तेण १ जहण्णवरगणा-विभागपिडच्छेदिह ऊणउक्कस्सवरगणाविभागपिडच्छेदमेत्तेण। सन्वासु वरगणासु अविभागपिडच्छेदा विसेसाहिया। के० मेत्रेण १ जहण्णवरगणाविभागपिडच्छेदमेत्रेण।

एवमविभागपडिच्छेदपरूवणा गदा।

् ५७५. अब इस जघन्य अनुभागस्थानका अविभागप्रतिच्छेदप्रह्नपणा, वर्गणाप्रह्नपणा, स्पर्धकप्रह्मपणा और अन्तरप्रह्मपणा इन चार अनुयागद्वारोंका आश्रय लेकर कथन करते हैं। उनमे अविभागप्रतिच्छेदप्रह्मपणाके प्रह्मपणा, प्रमाण और अरूपबहुत्व ये तीन अनुयागद्वार हैं। जघन्य वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेद हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये। इस प्रकार प्रहृपणा समाप्त हुई.।

् ५७६. जघन्य वर्गणामं कितने अविभागप्रतिच्छेद हैं ? अनन्त हैं। जो सब जीवोंसे अनन्तगुणे हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये। इस प्रकार प्रमाणप्रस्वणा समाप्त हुई।

६ ५७७. जघन्य वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेद सबसे थोड़ हैं। उनसे उत्कृष्ट वर्गणामें अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुण हैं। गुणकारका प्रमाण कितना है? सब जीवासे अनन्तगुण है; क्योंकि जघन्य बन्धस्थानसे लेकर अपर असंख्यात लोकप्रमाण पट्स्थानांके जाने पर सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके जघन्य अनुभागस्थानकी अन्तिम वर्गणाकी उत्पति होती है। उनसे अजघन्य अनुकुष्ट वर्गणाओं में अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं। यहाँ पर गुणकारका प्रमाण कितना है? अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिका अनन्तवां भागप्रमाण गुणकारका प्रमाण है। उनसे अनुकुष्ट वर्गणाओं में अविभागप्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं। उनसे अजघन्य वर्गणाओं अविभागप्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं। उनसे सभी वर्गणाओं अविभागप्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं। उनसे सभी वर्गणाओं अविभागप्रतिच्छेद प्रमाण अधिक हैं। उनसे सभी वर्गणाओं अविभागप्रतिच्छेद प्रमाण अधिक हैं। उनसे सभी वर्गणाओं अविभाग

§ ५७८. वगगरापरूवरादाए ताणि चेव तिरिरा अणियोगदारासि । तत्थ परूवसादाए ऋत्थि जहरिराया वग्गणा । एवं णेदव्वं जाव उक्कस्सवग्गणे दि । एवं परूवणा गदा ।

५ ५७६. पमाणं वृच्चदे — अणंतेहि सिरसंधणियपरमास्तृहि एगा वग्गणा होदि, दन्विद्यणयावलंवणादो । पज्जविद्यस्य पुण अवलंबिदे वग्गो वि वग्गसा होदि । िष्ठिवयप्पवग्गस्स कथं वग्गस्त १ सा, उविरमएगोठि पेक्सिव्स सिवयप्पस्स वग्गणतं पि विरोहाभावादो । विरोहे वा महाखंडवग्गणाए ध्रुवमुस्सावग्गसारां च ण वग्गणतं होज्ञ, सिरसंधणियाभावादो । ण च एवं, वग्गणाणं तेवीससंखाए अभाव-प्पसंगादो । जहरसाहासन्ववग्गासाओ वि अभवसिद्धिपृहि अणंतगुणाओ सिद्धाण-मणंतिमभागमेताओ । कुदो १ अभवसिद्धिपृहि अणंतगुण सिद्धासम्मास्तिमभागमेत-कम्मपरमास्त्रिहि सिप्परस्पात्ते। एगिम्म जीवे मन्वजीवेहि अणंतगुणा परमास्त्र किरसा मिलंति १ ण, मिन्छतादिपचएहि आगच्छमाणपरमास्त्रसम्मपरमास्ति हि ह्यणंतगुण-सिद्धाणंतिमभागपमाणतुवलंभादो । ए च एत्तिएमु कम्मपरमास्त्रसे कम्मिद्धिपृहि ह्यणंतगुण-सिद्धाणंतिमभागपमाणतुवलंभादो । ण च एत्तिएमु कम्मपरमास्त्रसे कम्मिदिरीए

प्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं । कितने अधिक हैं ? जघन्य वर्गणाके आविमागप्रतिच्छेदीं का जितना प्रमाण है उतने अधिक है ।

इस प्रकार अविभागप्रतिच्छेदप्रमप्रणा समाप्त हुई।

ं ५७८. वर्गणाप्ररूपणामे भी वे ही तीन अनुयोगद्वार हैं, प्ररूपणा, प्रमाण और अस्प-बहुत्व । उनमेसे प्ररूपणाकी अपेक्षा जघन्य वर्गणा है । इस प्रकार उन्क्रष्ट वर्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये । इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई ।

६ ५७८. अब प्रमाणको कहते हैं - द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बनसे समान अविमानप्रतिच्छेदों के धारक अनन्त परमाणु ओकी एक वर्गणा होती है। किन्तु पर्यायर्थिकनयका अवलस्वन करने पर एक वर्ग भी वर्गणा होता है।

शंका-वर्ग तो विकल्प रहित है, उसका वर्गणा कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंक उपिम एक पंक्तिको देखते हुए पिक्तिका वर्ग भी सिवकस्य है, ख्रतः उसके वर्गणा होनेसे कोई विराध नहीं है। यदि विरोध हा तो महास्कन्धवर्गणा और ध्रुव-शून्य वर्गणाएँ भी बगणा नहीं हो सकती; क्योंकि उनम समान धनवालोका अमाव है। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेसे वर्गणात्रोंकी जो तेउंस सकता बतलाई है उसके अभावका प्रसन प्राप्त होना है।

जघन्य अनुभागस्थानकी सब वर्गणाएं भी अभव्यस्यशिसे अनन्तगुःशी और सिद्धस्यशिके अनन्तवे भागप्रमाण है, क्योंकि व अभव्यस्यशिसे अनन्तगुःशे और सिद्धसांशके अनन्तवे भागप्रमाण कर्मपरमाणुआसे बनी है।

शंका-एक जीवमें सब जीवोसे ऋतन्तगृर्णे परमारमु क्यो नहीं एकत्र होते हैं ?

समाधान – नहीं; क्यों कि मिश्यात्व छादि कारणों से बन्धको प्राप्त होनेवाले परमाणु अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिउराशिके अनन्तवें सागप्रमाण ही पाये जाते हैं । इतने कर्म गुणिदेसु सञ्बजीवेहि अणंतगुणा कम्मपरमाण्य होंति, विरोहादो । एके कफदए वि अभवसिद्धिएहि अणंतगुण-सिद्धाणमणंतिमभागमेत्तात्रो वग्गणाओ होंति । ताओ च सञ्बफदएसु संखाए समाणाओ । कुदो ? साहावियादो । एवं वग्गणपमाणपरूवणा गदा ।

- ५८०, जहण्णफद्दए वम्गणाओ थावात्रो । अजहएऐसु फद्दएसु वम्गणाओ
 अणंतराणाओ । सञ्चेसु फद्दएसु वम्गणाओ विसेसाहियात्रो । एवं वम्मणपरूवणा गदा ।
- ्र ५८१, फदयपरूवणं तेहि चेव तीहि अणियोगदारेहि भणिस्सामो । तं जहा— अत्थि जहण्णं फद्दयं । एवं णेदच्यं जाबुकस्सफद्दयं ति । परूवणा गदा ।
- ६ ५८२. जहण्णष् द्वारो अभवसिद्धिष्टि अणंतगुणसिद्धाणंतिमभागमेत्ताणि फद्दयाणि । पमाणपरूवणा गद्दा ।
- ः ५८२. सन्वत्थोवं जहण्णफद्दयं, एगसंखतादो । अजहण्णफद्दयाणि अणंतगुणाणि । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागमेतो ।
 सन्वाणि फद्दयाणि विसेसाहियाणि एगरूवेण । अथवा अविभागपिडच्छिदे अस्मिद्ण
 उच्चदे—जहण्णफद्दयं थोवं । उक्षस्सफद्दयमणंतगुणं । को गुणगारो ? सन्वजीवेहि
 अणंतगुणो । अजहण्णअणुक्षस्सफद्दयाणि अणंतगुणाणि । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणंतिमभागमेतो । अणुक्षस्सफद्दयाणि विसंसाहियाणि । अजहण्ण-

परमास्त्रुओं को कर्मों ही स्थितिसे गुग्रा करने पर समस्त कर्म परमास्तु सब जीवोसे अनन्तगुरो नहीं होते हैं. स्टोशक ऐसा होनेब विराध आता है।

एक एक स्पर्धकमें भी अमध्य राशिसे अनन्तगुणी और सिद्धराशिक अनन्तवे भागप्रभाण वर्षणाएँ हार्ग है। य वर्षणाएँ संख्यामें सभी सभी समान होती है, क्योंकि ऐसा होना स्वाभा-विक्त है। इस प्रकार वर्षणाकी प्रमाणप्रकृषणा समाप्त हुई।

- ६५८ जघन्य स्पर्धकमे थोड़ी वर्गणाएँ है। उनसे व्यजघन्य स्पर्धकोमे व्यनन्तगुणी वर्गणाए हैं। उनसे सब स्पर्धकोने विशेष व्यधिक वर्गणाएँ है। इस प्रकार वर्गणाप्ररूपणा समाप्त हुई।
- ६ ५८१. उन्हीं तीन त्रानुशेगडारोंका त्राश्रय लेकर स्पर्धकका कथन करते हैं। यथा— जघन्य सर्धक है। इस प्रकार उन्क्रष्ट सर्धक पर्यन्त लेजाना चाहिये। प्रह्मणण समाप्त हुई।
- ् ५८२. अघन्य अनुमागस्यानमे अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और मिछराशिके अनन्तवें भागप्रमाण स्वर्ध ह होते हैं । प्रमाणप्र रापणा समाप्त हुई ।
- ् ५८०. जबन्य स्पर्धक सबसे थोड़ा है. क्यों कि उसकी संख्या एक है। उससे अजबन्य स्पर्धक अनन्तगुणे हैं। गुणकारका प्रमाण क्या है? अनव्यराशिसे अनन्तगुण। और सिडराशि के अनन्तवें भागप्रमाण गुणकार का प्रमाण है। उनमें सभी सार्धक विशेष अधिक है, क्यों कि अजबन्य स्पर्धकीसे इनमें एक सार्धक छाविक होता है। अथवा अविभागप्रतिच्छेदें की अपेक्षा कहते हैं जबन्य स्पर्धक थोड़ा है। उनसे उन्कृष्ट स्पर्धक अनन्तगुणा है। गुणकार क्या है ? सब जीवोसे अनन्तगुणा गुणकार है। अजबन्य अनुन्कृष्ट स्पर्धक अनन्तगुणा है। गुणकार क्या है ? अश्वव्याशिसे अनन्तगुणा और सिडराशिसे अनन्तवे भागप्रभाण गुणकार है। अनुन्कृष्ट स्पर्धक

फदयाणि विसेसा० । सन्वाणि फदयाणि विसे० । एवं फदयपरूपणा गदा ।

§ ५८५. पढमं फह्यंतरं सन्वजीवेहि अणंतगुणं ।एवं गोदन्वं जाव उकस्सफद्दयंतरं ति । एवमंतरपमाणपरूवणा० ।

इप्रद्र अप्पावहुत्रं—सन्वत्थावं नहण्णप्तद्यंतरं । उक्कस्सप्द्यंतर्मणंतगुणं । अनहण्णअणुक्कस्सप्द्यंतराणि त्रयंतगणाणि । अणुक्कस्सप्द्यंतराणि विसेशाहियाणि । अनहण्णप्द्यंतराणि विसेशाहियाणि । सन्वाणि प्रद्यंतराणि विसेशाहियाणि । सन्वाणि प्रद्यंतराणि विसेशा । सन्वाणि प्रद्यंतराणि विसेशा । तं पि कुदो १ वंघद्याणाणं हेिद्याणां छन्विद्याणं चृशिण अविद्यतादो । ण च एदम्हादो द्याणादो हेद्या वंघद्याणाणमभावो, सन्वविसुद्धसंनमाहिसुद्दमिच्छाइद्विआदीणं वंघस्स एदम्हादो हेद्या दंसणादो । तं नद्या—संनमाहिसुद्दसन्वविसुद्धमिच्छादिद्वणा वज्भमाणनदण्णमिच्छत्त-दिदीण् असंखेज्जठोगमेत्ताणि विसोदिद्वाणाणि भवंति । पुणो एत्थ सन्वक्कस्सविसोदिद्वाणेण बज्भमाणअणुभागदाणाणि असंखेज्जठोगछ्द्वाणस्क्वेणं होति । पुणो तत्थतण-नदण्णाणुभागवंघद्वाणस्सुविर तस्सेव उक्कस्साणुभागवंघद्वाणमणंतगुणं । पुणो तस्सेव

इस प्रकार स्पर्धकप्ररूपणा समाप्त हुई।

९ ५८४. श्रन्तर प्रकृषणामें जघन्य स्पर्धकका श्रन्तर है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्धकके श्रन्तर पर्यन्त लेजाना चाहिए। इस प्रकार प्रकृषणा समाप्त हुई।

\$ ५८६. श्रह्पबहुत्व — जघन्य स्पर्धकका श्रन्तर सबसे थें। इ. तुन्कृष्ट स्पर्धको श्रन्तर श्रनन्तगुणा है। श्रज्जघन्य अनुत्कृष्ट स्पर्धकों के श्रन्तर श्रनन्तगुणा है। श्रज्जघन्य अनुत्कृष्ट स्पर्धकों के श्रन्तर विशेष श्रिषक हैं। श्रज्जघन्य स्पर्धकों के श्रन्तर विशेष श्रिषक हैं। श्रज्जघन्य स्पर्धकों के श्रन्तर विशेष श्रिषक हैं। श्रिया जा सकता; क्यों कि वे छह शृद्धियों श्रीर छह हानियों के क्रमसे श्रवस्थित हैं। श्रीर इसका सबूत यह है कि नीचे के वन्धस्थान छह प्रकारकी गृद्धिकों लिये हुए श्रवस्थित हैं। तथा इस बन्धस्थानसे नीचे श्रन्य वन्धस्थानों का श्रमाव नहीं है; क्यों कि सबसे विशुद्ध श्रीर सथमके श्रिममुख हुए मिध्यादृष्टि श्रादिके होनेशला बंध इससे नीचे देखा जाता है। उसका खुलासा इस प्रकार है—सथमके श्रिममुख श्रीर सर्वविशुद्ध मिध्यादृष्टि जीवके द्वारा मिध्यात्वकी जो जघन्य स्थिति बांधी जाती है, उसके कारणमूत श्रसंख्यात लोकप्रमाण विशुद्धिस्थान होते हैं। पुनः यहां सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि स्थानसे बंधनेशले श्रनुभागस्थान श्रसंख्यात लोक परस्थान रूपसे होते हैं। तथा वहां पर होनेवाले जघन्य श्रनुभागवन्यस्थानके ऊपर उसीका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्यस्थान श्रनन्तगुणा है। पुनः

[🥄] ता॰ प्रती -झट्टाग्पप (स) रूवेगा, श्रा॰ प्रती -छट्टाग्पपरूवेगा इति पाठः ।

चिरमसमयजहण्णविसोहिद्दाणेण वज्भमाणजहण्णाणुभागवंधद्वाणमणंतगुणं। तस्सेवुकस्साणुभागवंधद्वाणमणंतगुणं। पुणो तस्सेव दुचरिमसमयमिच्छादिद्विस्स सव्वुक्तस्स-विसोहिद्वाणेण वज्भमाणजहण्णाणुभागवंधद्वाणमणंतगुणं। तस्सेव दुचरिमसमयसव्वजहण्णविसोहिद्वाणेण वज्भमाणजहण्णाणुभागवंधद्वाणमणंतगुणं। एवं तिचरिमादिसमयप्युद्धाणमणंतगुणं। एवं तिचरिमादिसमयप्युद्धि श्रंतोम्रहुतकालमणंतगुणस्क्वेणोदारेद्वं जाव सत्थाणमिच्छादिद्विपदमसमओ ति। पुणो असण्णिपंचिद्वय-चउरिदय-तेइंदिय-वेइंदिय-वादरेइंदिएस च श्रंतोम्रहुत्त-कालमणेणेव विद्याण्य ओदारेद्वं। पुणो सव्वविसुद्धचरिमसमयसुहुमअपज्जत्तयस्स सव्युक्षस्सविसोहिद्धाणेण वज्भमाणजहण्णाणुभागवंधद्वाणमणंतगुणं। तस्सेवुक्कस्साणुभागवंधद्वाणमणंतगुणं। तस्सेवुक्कस्साणुभागवंधद्वाणमणंतगुणं। एवं दुचरिमसमयप्यहुद्धि अणंतगुणक्षमेण श्रोदारे-दव्वं जाव सुहुमसत्थाणजहण्णसंतसमाणवंधद्वाणे ति। तेण पद्दयंतराणि छव्विद्वाण् बड्डीए अवदिदाणि ति णव्वदे।

उसी संयमाभिमुख मिध्यादृष्टिके अन्तिम समयवर्ती जयन्य विशुद्धिस्थानमे बधनेवाला अनुभाग-बन्धस्थान अनन्तगृणा है। उसीका उक्तृष्ट अनुभागवन्धस्थान अनन्तगृणा है। उसीका उक्तृष्ट विशुद्धिस्थानसे बंधनेवाला जयन्य अनुभागवन्धस्थान अनन्तगृणा है। उसीका उक्तृष्ट अनुभागवन्धस्थान अनन्तगृणा है। उसीका उक्तृष्ट अनुभागवन्धस्थान अनन्तगृणा है। उसी प्रकार विचरम समयवर्ती उसी मिध्यादृष्टिके सबसे जयन्य विशुद्धिस्थानसे बंधनेवाला जयन्य अनुभागवन्धस्थान अनन्तगृणा है। उसी प्रकार विचरम आदि समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर स्वस्थान अनन्तगृणा है। इसी प्रकार विचरम आदि समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर स्वस्थान मिध्यादृष्टिके प्रथम समय पर्यन्त ये अनुभागवन्धस्थान अनन्तगृणे रूपमे उतारनाचाहिए। पुनः असंज्ञिपञ्चेन्द्रिय, चौडन्द्रिय, तेइन्द्रिय, दौइन्द्रिय और बादर एकेन्द्रियोमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक इसी क्रमसे उतारना चाहिए। पुनः सर्वविशुद्ध चरम समयवर्ती सुक्ष्म अपर्याप्तक जीवके सर्वोन्ध्रप्ट विशुद्धिस्थानसे वंधनेवाला जयन्य अनुभागवन्धस्थान अनन्तगृणा है। उसीका उन्कृष्ट अनुभागवन्धस्थान अनन्तगृणा है। उसी सुक्ष्म अपर्याप्तक जीवके मन्द विशुद्धिस्थानसे वंधनेवाला जयन्य अनुभागवन्धस्थान अनन्तगृणा है। उसी का उन्कृष्ट अनुभागवन्धस्थान अनन्तगृणा है। उसी सुक्ष्म अपर्याप्तक जीवके सवस्थान जयन्तगुणा है। इसी प्रकार द्विचरम समयसे लेकर सूक्ष्म अपर्याप्तक जीवके स्वस्थान जयन्य सत्त्वस्थानके समान बन्धस्थान पर्यन्त अनन्तगुणित क्रमसे उतारना चाहिए। इससे जाना जाता है कि स्पर्धकोंका अन्तर छह प्रकारकी वृद्धिरूपसे अवस्थित है।

विशेषार्थ—स्पर्धकोंने परस्परमे अन्तर पाया जाता है यह बात तो पहले वर्ग, वर्गणा श्रोर स्पर्धकका कथन करते हुए वतलाई ही है। यदि स्पर्धकोंने अन्तर न होता तो स्पर्धक अनेक नहीं होते। अन्तर होनेसे ही पृथक स्पर्धककी रचना होती है श्रीर वह अन्तर अविभागप्रतिच्छेदोंकों लेकर होता है। जहाँ तक एक एक अविभागप्रतिच्छेद अधिकवाले परमाणु पाये जाते हैं वहाँ तक एक स्पर्धक होता है। उसके बाद एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक परमाणु नहीं पाया जाता किन्तु अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेद अधिकवाले परमाणु पाये जाते हैं। बस वहींसे दूसरा स्पर्धक प्रारम्भ हो जाता है, अत: जघन्य स्पर्धकका अन्तर सबसे कम होता है और जघन्य स्पर्धक से

- ५ ५८%. संपित परूवणा पमाणं सेती अवहारो भागाभागं अप्पावहुत्रं चेदि एदेति छित अणियोगद्दारेति सुहुमजहण्णद्वाणपरमाणूणं परूवणा कीरदे। तं जहा—जहिएणयाए वग्गणाए अत्थि कम्मपदेसा। विदियाए वग्गणाए अत्थि कम्मपदेसा। एवं णेद्व्वं जाव उक्कस्सवग्गणे ति। परूवणा गदा।
- § ४८६. सेहिपरूवणा दुविहा—अणंतरोविणिधा परंपरोविणिधा चेदि । तत्थ अणंतरोविणिधाए जहिण्णियाए वरगणाए कम्मपदेसा बहुआ । विदियाए वरगणाए कम्मपदेसा विसेसहीणा । एवं विसेसहीणा विसेसहीणा जाव उक्कस्सिया वरगणा चि । भागहारो पुण अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागमेचो । एवमएांतरोव-णिधा गदा ।
- § ५६०. जहिण्याण् वम्गणाण् कम्मपदेसेहितो अभवसिद्धिण्हि अणांतगुणं सिद्धाणमणांतभागमेत्तमद्धाणां गंतूण कम्मपदेसा दुगुणहीणा होति । एवमविद्धदमद्धाणां

उत्कृष्ट स्पर्धकका अन्तर अनन्तगुणा है। किन्तु इसमे एक दृसरा पत्त भी है और वह यह है कि चूँ कि स्पर्धकान्तर छह प्रकारकी हानि और छह प्रकारकी वृद्धिका लिए हुए होता है, अतः स्पर्धकान्तरोंने अल्पबहुत्व नहीं किया जा सकता। अर्थान यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक स्पर्धकका अन्तर थोड़ा है। और अमुकका अनन्तगुणा क्योंकि हानि हिंदे होनेसे उसमें घटनी और बढ़ती हो सकती है। तथा उनमें हानि-वृद्धि होती है यह बात इससे स्पष्ट है कि सूक्ष्म निगोदिया जीवके उक्त बन्धसमुत्पत्तिक स्थानसे नीचे अन्य भी बन्धस्थान पाये जाते हैं और ये बन्धस्थान छह प्रकारकी बृद्धिको लिए हुए हैं। जैसा कि मूलमें संचमके अभिमुख सर्विवशुद्ध मिण्यादृष्टि जीवसे लेकर सर्विवशुद्ध चौरैमसमयवर्ती सूक्ष्म अपर्याप्तक जीवके होनेवाले अनुसागबन्धको उत्तरोत्तर अनन्तगुणा अनन्तगुणा बतलाकर स्पष्ट किया है।

्र ५८७. छेच प्रचप्णा, प्रमाण, श्रेणी; अवहार, नागाभाग छोर छत्पबहुत्व इन छह अनुयोगहारोसे सूदम जीवके जबन्य अनुभागम्थानके परसण्णुओका कथन करते हैं। वह इस प्रकार है – जबन्य वर्गणामें कर्मप्रदेश हैं। दूसरी वर्गणांगे कर्मप्रदेश है। इस प्रकार उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त लेजाना चाहिए। प्रकृपणा समाप्त हुई।

५ ५८८. जघन्य वर्गणामे कर्मप्रदेश कितने हैं १ ब्रानन्त हुं जो ब्रामध्यगशिसे ब्रानन्त-गणे और सिउराशिके ब्रानन्तवें भागप्रमाण हैं । इस प्रकार उन्क्रष्टवर्गणा पर्यन्त लेजाना चाहिए ।

ु ५८९. श्रीण प्रह्मपणा दो प्रकारकी है—अनन्तरोपनिधा और परंपरोपनिधा। उनमेसे अनन्तरोपनिधाकी अपेचा जधन्य वर्गणामें कर्मप्रदेश वहुत हैं। दूसरा वर्गणामें कर्मप्रदेश विशेष हीन हैं। इस प्रकार उक्तर वर्गणा पर्यन्त कर्मप्रदेश विशेषहीन विशेषहीन होते हैं। भागहारका प्रमाण अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिक अनन्तवें भागप्रभाण है। अर्थात् इस भागहारका भाग जधन्य वर्गणाक कर्मप्रदेशोंमें देनेसे जो लब्ध आप उतने हीन कर्मप्रदेश दूसरी वर्गणामें हैं। इस प्रकार अनन्तरोपनिधाका कथन समाप्त हुआ।

९ ५९०. जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंसे अभव्यगाशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण स्थान जानेपर कर्मप्रदेश दून हीन श्रर्थान् आधे होते है। इस प्रकार गंतूण दुगुणहीणा दुगुणहीणा जाव चिरमगुणहाणि ति । तं जहा—अभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतिमभागमेतं णिसेगभागहारं विरत्तेद्ण जहण्णवग्गणकम्मपदेसेसु समस्वंडं काद्ण दिएएोसु एक कस्स रूवस्स वग्गणाविसेसपमाणं पावदि । पुणो जेणेत्थ एगेगवग्गणविसेसो वग्गएां पिंड हायमाणो गच्छिद तेण णिसेगभागहारस्स अद्भेतं गंतूण जहण्णवग्गणपदेसेहितो तिदत्थवग्गणपदेसा दुगुणहीणा होति । पुणो पढमगुण-हाणिपढमवग्गणभागहारेणेव विदियगुणहाणिपढमवग्गणपदेसेसु खंडिदेसु तत्थतणवग्गण-विसेसो होदि । णवरि पढमगुणहाणिवग्गणविसेसादो विदियगुणहाणिवग्गणविसेसो दुगुणहीणो, पुव्विद्धविह्यामाणदव्वं पेक्सवद्ण संपिंड विह्यामाणदव्वस्स दुभागतादो । एत्थ वि भागहारस्स अद्धं गंतूण दुगुणहाणी होदि । एवं णेदव्वं जाव चिरमवग्गणे ति ।

अन्तिम गुणहानिके प्रात होने तक अवस्थित अध्वान जाने पर कर्मप्रदेश आधे आधे होते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है—अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण निप्कभागहारका विरलन करके उसके उपर जवन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंके समान खण्ड करके देनेवर एक एक अंकके प्रति वर्गणाविशेषका प्रमाण प्राप्त होता है। यतः यहाँ पर वर्गणाके एति एक एक वर्गणाविशेष घटता जाता है अतः निपंकभागहारका आधा प्रमाण जानेपर जघन्य वर्गणाके प्रदेशोंसे वहां पर स्थित वर्गणाके प्रदेश दूने हीन होते हैं। उसके वाद प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणाके प्रदेशोंमे भाग देनेपर वहांका वर्गणाविशेष आता है। इतना विशेष है कि प्रथम गुणहानिकी वर्गणाविशेष दूसरी गुणहानिका वर्गणाविशेष हुना हीन है, क्योंकि पहले जिस द्रव्यमें भाग दिया गया था उससे अब जिस द्रव्यमें भाग दिया गया है वह द्रव्य आधा है। यहां भी भागहारका आधा प्रमाण जानेपर दूनी हानि होती है। इस प्रकार अन्तिम वर्गणा पर्यन्त लेजाना चाहिए।

विशेषार्थ-सूक्ष्म निगादिया जीवका जो जयन्य बन्धस्थान है उसके परमाणुत्रोंका कथन करनेके लिए छड़ अनुयोगस्थान कहे हैं। उनमेसे श्रीण अनुयोगद्वारका कथन अंकसंदृष्टिसे इस प्रकार सममना चाहिए। अमन्यराशिसे अनन्तगुणे और मिद्धराशिके अनन्तवें भागश्माण निषेक-भागहारका प्रमाण १६ है और जयन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंका परिमाण ५१२ है। निषेकभागहार १६ का विरत्नन करके उसके ऊपर जयन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंके १६ खण्ड करके एक एकके ऊपर देनेसे एक एक हुएके प्रति वर्गणाविशेषका प्रमाण आता है। यथा—

५६१. एत्थ तिण्णि अणियोगदारिणि—परूवणा पमाणमप्पावहुश्चं चेदि ।
 परूवणाए अत्थि णाणापदेसगुणहाणिडार्णातरसलागाओ एगपदेसगुणहाणिअद्धाणं च ।
 [परूवणा गदा ।]

१ ५६२. णाणापदेसगुणहाणिसत्तागाओ एगपदेसगुहाणिअद्धाणं च अभव-सिद्धिएहि अर्णातगुर्णं सिद्धार्णमणंतभागमेत्तं होदि। पमाणपरूवणा गदा।

§ ५६३. सन्वत्थोवात्रो णाणापदेसगुणहाणिसल्लागात्रो । एगपदेसगुणहाणि-द्वार्णंतरमणंतगुर्णं । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अर्णंतगुर्णो सिद्धारणमणंतभागमेत्तो । एवं सेढिपरूवणा गदा ।

§ ५६४. पढमाए वम्मणाए कम्मपदेसपमाणेण सन्ववम्मणकम्मपदेसा केविडएण कालेण अविहिरिक्जंति ? अएांतेएा कालेण अविहिरिक्जंति । एवं णेद्व्वं जाव चरिम-

निषेकभागहार १६ का भाग देनेसे एक एक वर्गणांक प्रति चयका प्रमाण १६ श्राता है। यह चय पहलेके प्रमाणसे श्राधा है, क्योंकि पहले भाज्यराशिका प्रमाण ५१२ था और अब २५६ है। यहाँ भी निषेकभागहारका श्राधा श्रर्थात् श्राध स्थान जानेपर कर्मपरमागुत्रोंका प्रमाण श्राधा रह जाता है। इसी प्रकार श्रागे भी जानना चाहिए। यथा—

प्रथम 👸 गहानि	२गुणहानि	३ गुणहानि	४ गुग्गहानि	५ गुगाहानि	चरम गुणहानि
२८८	१४४	৬২	३६	१८	ዓ
३२०	१६०	८०	, 80	হ্চ	१०
३५२	१८६	66	88	হ্হ	, ११
े ३८४). १६२	९६	86	२४	१२
प्र१६	206	१०४	પર) २६	१३
886	२२४	११२	५६	२८	88
_ 860	₹80 /	१२० :	६०	३ ० ∣	१५
े अप१२	. २५६	१२८	६४	३२	१६

इस प्रकार जघन्य स्थानकी प्रथम वर्गणासे लेकर चरम वर्गणा पर्यन्त कर्मपरमागुत्र्योका प्रमाण जानना चाहिए।

९ ५९१. इसका कथन करनेके लिये भी तीन ऋनुयोगद्वार हैं—प्ररूपणा, प्रमाण और अरुपबहुत्व। प्ररूपणाकी अपचा नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर शलाकाएँ हैं और एकप्रदेशगुणहानिअध्वान है। प्ररूपणा समाप्त हुई।

६५९२ नानाप्रदेशगुणहानिश्लाकाएं और एकप्रदेशगुणहानिक्रायाम अभव्य राशिसे

श्रनन्तगुणे श्रीर सिद्धराशिके श्रनन्तवें भागप्रमाण हैं। प्रमाणप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ५९३. नानाप्रदेशगुणहानिशलाकाएँ सबसे थांड़ी हैं। उनसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर अनन्तगुणा है ? गुणकारका प्रमाण कितना है ? अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकारका प्रमाण है। इस प्रकार श्रेणिप्रकृषणा समाप्त हुई।

§ ५९४. पहली वर्गणामें जितने कर्मप्रदेश हैं उतने प्रसाणसे यदि सब वर्गणात्रोंके कर्म-प्रदेशोंका श्रपहार किया जाय तो कितने कालमें किया जा सकता है ? श्रनन्त कालमें उनका वग्गणे ति । अथवा दिवड्डगुणहाणिद्वाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जंति ।

§ ५६५. तदो विदियाए वग्गणाए कम्मपदेसपमाणेण सन्ववग्गणकम्मपदेसा केवचिरेण कालेगा अवहिरज्जंति ? सादिरेयदिवडुगुणहाणिद्वाणंतरेण कालेगा अवहिरिज्जंति । तं जहा—पढमवग्गणकम्मपदेसपमाणेणा सन्ववग्गणकम्मपदेसपिंडे कदे दिवडुगुणहाणिमेत्तपढमवग्गणाओ होंति । संपिंह विदियादिवग्गणावहारकाले इच्छिज्जमाणे
दिवडुगुगहाणि विरलेद्ण सन्वदन्वं समस्वंडं कादृण दिएणो एक कस्स रूवस्स पढमवग्गणपमाणं पावदि । पुणो विदियवग्गणपमाणेण अवहिरिदुमिच्छामो ति हेद्वा णिसेगभागहारं विरलेद्ण पढमवग्गणाए समस्वंडं कादृण दिण्णाए एक कस्स रूवस्स वग्गणविसेसपमाणं पावदि । पुणो एत्थ एगरूवधरिदवग्गणविसेसपमाणेण उविरमिवरलणरूवं पिंड दिदपढमवग्गणासु अवणिदे अवणिदसेसे दिवडुगुणहाणिमेत्तविदियवग्गणास्रो
होति । अवणिदवग्गणविसेसा वि दिवडुगुणहाणिमेत्ता होति । पुणो एदे वि तप्पमाणेण
कस्सामो । तं जहा—रूवुणणिसेगभागहारमेत्तवग्गणविसेसे घेतूण जिंद एगविदिय-

अपहार किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्तिम वर्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये। अथवा डेढ़ गुणहानिस्थानान्तर कालके द्वारा उनका अपहार हो सकता है।

विशेषार्थ—अपहारकालको सरल रूपसे समक्ष्तिके लिये अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है— सब वर्गणाओं के कर्मप्रदेशोंका प्रमाण ४६१५२; गुणहानिका प्रमाण ६४; डेढ्गुणहानि ९६; दो गुणहानि ६४ \times २=१२८; प्रथम वर्गणा ५१२; वर्गणाविशेषका प्रमाण दो गुणहानि अथवा निपेकभागीहारसे भाजित प्रथम वर्गणा ५१२ \div १२८=४। पहली वर्गणाके कर्मप्रदेश ५१२ से यदि सब वर्गणाओं के कर्मप्रदेश ४९१५२ का अपहार किया जाय तो डेढ् गुणहानि कालमें उनका अपहार हो सकता है ४९१५२ \div ५१२ = ६४ \times १३ अर्थात् डेढ् गुणहानि ।

§ ५९५, अनन्तर दूसरी वर्गणामं जितने कर्मप्रदेश हैं उतने प्रमाणसे सब वर्गणाओं के कर्मप्रदेशांका अपहार कितने कालमें होता है ? कुछ अधिक डंढ़ गुणहानि स्थानान्तर कालके द्वारा उनका अपहार होता है। उसका खुलासा इस प्रकार है—प्रथम वर्गणामें जितने कर्मप्रदेश हैं उतने प्रमाणसे समस्त वर्गणाओं के कर्मप्रदेशांके पिण्ड करने पर डंढ़ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गणाएँ होती हैं। अब द्वितीय आदि वर्गणाओं का अपहारकाल लाना इष्ट होनेपर डंढ़ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गणाएँ होती हैं। अब द्वितीय आदि वर्गणाओं का अपहारकाल लाना इष्ट होनेपर डंढ़ गुणहानिका विरत्न करके सब द्रव्यके समान खण्ड करके प्रत्येकके उपर देनेपर एक एक अंकके प्रवि प्रथम वर्गणाका प्रमाण आता है। पुनः द्वितीय वर्गणाके प्रमाणसे अपहार करनेकी इच्छा है इसलिए नीचे निषेकभागहारका विरत्न करके प्रत्येकके उपर सम खण्ड करके प्रथम वर्गणाके देनेपर एक एक हपके प्रति वर्गणाविशेषका प्रमाण आता है। पुनः यहां एक अंकके प्रति प्राप्त वर्गणाविशेषके प्रमाणको उपरिम विरत्ननके प्रत्येक एक पर स्थित प्रथम वर्गणामसे घटा देनेपर डंढ़ गुणहानिप्रमाण द्वितीय वर्गणाएँ होती हैं और घटाये गये वर्गणाविशेष भी डेढ़ गुणहानि प्रमाण हाते हैं। पुनः इन्हें भी द्वितीय वर्गणाके प्रमाणसे करते हैं। उसका खुलासा इस प्रकार है—एक कम निषकभागहार प्रमाण वर्गणाविशेषोंको लेकर यदि एक द्वितीय वर्गणाका प्रमाण

१. ता॰ प्रतो कालंतरेण श्रविहिरिज्जंति इति पाठ । २ ता॰ प्रती केवचिरं कालेण इति पाठः ।

वग्गणपमाणं लब्भिद् तो दिवृहुगुणहाणिमेत्तवग्गणिवसेसेसु केत्तियं विदियवग्गणपमाणं लभामो ति फलगुणिदिच्छाए पमाणेणाविद्दाए जं लद्धं तं दिवृहुगुणहाणीए पिक्सित्ते सादिरेयदिवृहुगुणहाणिमेत्तां विदियणिसेगभागहारो होदि । अथवा दिवृहुगुणहाणिमेत्तं पढमवग्गणाखेत्तं ठिवय पुणो एगवग्गणिवसेसिविक्स्वंभ-दिवृहुगुण-हाणिआयाममेत्तफालिमवणिदं सेसस्वत्तं दिवृहुग्यामं विदियवग्गण-विक्स्वंभमेत्तं होदूण चेद्वदि । पुणो तं फालिं घेतूण विदियवग्गण-विक्स्वंभस्सुविर तिरिच्छेण पादिय ठिवदे दिवृहुग्यामपमाणं विदियवग्गणिवक्स्वंभं ण पावदि । पुणो केत्तियमेत्तेण पावदि ति

| भिणदे गुणहाणिअद्धरूवृणमेत्तवग्गणिवसैसखेतं जिद् होदि तो पावदि । पत्रखेवरूवं पि एगं लब्भिद । ण च एत्तियखेत्तमित्थ तेण सादिरेयदिवडुगुण- हाणिहाणंतरेण कालेण अवहिरिज्ञदि ति सिद्धं ।

श्चाता है तो डेढ़ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोमे दिनीय वर्गणात्रोंका कितना प्रमाण प्राप्त होता है ऐसा त्रैराशिक करने पर फलराशिसे गुणित इच्छाराशिको प्रमाण राशिका भाग देनेपर जां लब्ध आवं उसे डेढ़ गुणहानिमें मिला देनेपर कुछ अधिक डंढ़ गुणहानिप्रमाण दिनीय-वर्गणाका भागहार होता है। अथवा डेढ़ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गणाकं सेत्रको स्थापित क के पुनः एक वर्गणाविशेषप्रमाण चौड़ी और डेढ़ गुणहानिप्रमाण लम्बी फालिको निकाल देनेपर शेष सेत्र डेढ़ गुणहानि प्रमाण चौड़ा होकर स्थित रहता है। पुनः उस फालिको लेकर दितीय वर्गणाके विष्कम्भके अपर तिरछे हपसे स्थापित करने पर वह डेढ़ गुणहानि लम्बा होकर दितीय वर्गणाके विष्कम्भके अपर तिरछे हपसे स्थापित करने पर वह डेढ़ गुणहानि लम्बा होकर दितीय वर्गणाके विष्कम्भको नहीं प्राप्त होता है। पुनः कितने मात्रसे प्राप्त होता है ऐसा प्रश्र करने पर कहते हैं कि यदि वर्गणाविशेषका सेत्र एक कम अर्छ गुणहानिप्रमाण और होता तो पाप्त होता और प्रसेपह्ण भी एक प्राप्त होता किन्तु इतना क्षेत्र नहीं है अतः कुछ अधिक डेढ़ गुणहानि स्थानान्तर कालके द्वारा अपहार होता है यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ-प्रथम वर्गणाके प्रमाणसे द्वितीय वर्गणाका प्रमाण एक वर्गणाविशेष हीन होता है, अतः द्वितीय वर्गणाके कर्मप्रदेशोंका प्रमाण ५१२-४ = ५०८ है। इससे सब वर्गणाओं के कर्मप्रदेशों का अपहार करने पर ४९१५२ ÷ ५०८ = ५६ $\frac{3८ 8}{400 2}$ कुछ अधिक डेढ गुणहानि प्रमाण अपहार काल होता है। डेढ़ गुणौहानि ५६ का विरत्नन करके, सब द्रुघ ४९१५२ के समान खंड करके प्रत्येकके ऊपर देने पर प्रथम वर्गणा ५१२ आती है $-\frac{422}{4}$ ५१२ ५१२ ५१२ ५६ वार। निषेकभागाहार १२८ का विरत्नन करके प्रत्येकके ऊपर सम खंड करके प्रथम वर्गणांके देनेपर

ता० भ्रा० प्रत्योः
 इत्याकारेणोवलभ्यते ।

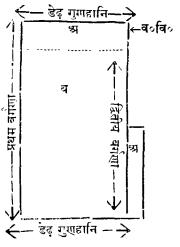
५ ५६६. तदियवग्गणपमाणेण अवहिरिज्जमार्णे दोफालिमेत्ता वग्गणविसेसा होंति । ताओ दोफालीओ आयामेण संधिदे तिष्णिगुणहाणिमेत्ता वगगणविसेसा होंति ? पुणो ते तदियवग्गणपमाणेण अवहिरिज्जमारें। दुरूवृणवेगुणहाणिमेत्तवग्गण-विसेसखेतं घेतूण पुव्वखेतस्सुवरि ठविदे एगं भागहाररूवमहियं लब्भदि। पुणो

एक एकके प्रति वर्गणाविशेषका प्रमाण ज्ञाता है—४ ४ ४ ४१२८ वार _। इस वर्गणाविशेषको उपरिम विरत्नन पर स्थिनःडेढ़ गुण्हानिप्रमाण प्रथम वर्गणात्रोमेसे घटा देने पर (५१२-४) ९६ = ५०८ × ९६ डेढ़ गुगहानि प्रमाण द्वितीय वर्गगाएँ होती हैं। घटाये गये वर्गणाविशेष भी डेढ़ गुणहानिप्रमाण होते हैं ५१२ \times ९६-५०८ \times ९६=8 \times ९६ । यदि एक कम निषेकभागहार (१२८-१)=१२७ वर्गणाविशेषोकी (१२७×४) एक द्वितीय वर्गणा होती है तो डेढ़ गुण्हानिप्रमाण् वर्गणाविशेषो (९६×४) की $rac{\S \xi imes V imes Y}{V imes V} = rac{\S Z imes V}{V imes Z}$ द्वितीय वर्गणा

होती है। $\frac{328}{492}$ को डेढ़ गुणहानि ९६ में मिला देने पर कुछ अधिक डेढ़ गुणहानि ९६ $\frac{328}{492}$

 $=rac{89842}{402}$ द्वितीय वर्गणाका भागाहार होता है। अब चेत्रकी व्यपेक्षा इस भागाहारको सिद्ध करते हैं —डेढ़ सुग्हानिप्रमाण लम्बा और प्रथम वर्गग्राप्रमाण चौड़ा चेत्र स्थापित करके उसमे

से एक वर्गणाविशोपप्रमाण चौड़ और डंढ़ गुणहानि प्रमाण लम्बे ''अ' चेत्रको फालिहपसे अलग करने पर शंप "व" चेत्र उढ़ गुण्हानिप्रमाण लम्बा और द्वितीय वर्भगाप्रमाग् चौड़ा होकर स्थित रहता है। पुनः द्वितीय वर्गणाके विष्कम्भके उपर तिरहे बहासे उस फालिहा ''अ'' दोत्रको स्थापित करनेपर द्वितीय वर्गणाका विष्करभ पुरा नही प्राप्त होता । उसमे एक बम अर्घ गुण्हानित्रमाण् वर्गण्। विशेषोकी कभी रहती है। क्योंकि 'खें' फालिका प्रमाए डेढगणहानि ९६ प्रमाण लम्बा और एक वर्गणाविशेष ४ प्रमाण चौड़ा=९६×४ है श्रीर दितीय वर्गणाका प्रमाण अर्थान् द्वितीय वर्गणा पूरी होनेमे एक कम अर्थ गुणहानि $(\frac{\xi 8}{2} - \xi = 3\xi)$ प्रमाण वर्गणाविशेष (४) की कमी है । यदि $\xleftarrow{}$ - डेंढ़ गुणहानि - \Rightarrow



एक कम अर्थगुणहानित्रमाण वर्गणाविशेष और होते तो एक द्वितीय वर्गणा प्री हो जाती। परन्तु इतना यहाँ नहीं है, ऋतः सब द्रव्यको द्वितीय वर्गणाके प्रमाणसे करनेके लिए वह साधिक डेढ़ गुणहानिसे अपहृत होता है यह कहा है।

६ ५९६. समस्त वर्गणात्रोंके कर्मप्रदेशोका तृतीय वर्गणाके प्रमाणके द्वारा अपहार करने पर दो फालीमात्र वर्गणाविशेष होते हैं। उन दो फालियोंको त्रायामके साथ जोड़ देने पर तीन गुण्हानि प्रमाण वर्गणाविशेष होते हैं। पुनः उन तीन गुण्हानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंको तृतीय वर्गणाके प्रमाणसे ऋपहृत करने पर; दो कम दो गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेप चेत्रको दुरूवाहियगुणहाणिमेत्तवग्गणिवसेसखेत्तमिहयमित्थः। तिम्हि तिद्यवग्गणपमाणेण कीरमाणे तप्पमाणं ण पूरेदि, चदुरूवृणगुणहाणिमेत्तवग्गणिवसेसाणमभावादो । तेण सादिरेय-रूवाहियदिवदृगुणहाणिद्वाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि ति सिद्धं।

§ ५६७. संपित चउत्थवगगणपमार्णेण सन्वद्न्वे अवितिरिक्तमाणे सादिरेयदुस्वाहियदिवडुगुणहाणिद्वाणंतरेण कालेण अवितिरिक्तदि । तं जहा—दिबडुगुणहाणिमेत्तविक्खंभितिण्णिवगगणिवसेसमेत्तखेते अविणिदे अवसेसखेतं दिवडुगुणहाणिविक्खंभेण चउत्थवगणआयामेण अविचिद्वदि। पुणो अविणिद्तििरिण्णकाळीओ तष्पमाणेण
कस्सामो—तिस्वृणवेगुणहाणिमेत्तवगगणिवसेसु एगा चउत्थवगणा होदि ति अद्धवंचमगुणहाणिमेत्तवगगणिवसेसेसु वेचउत्थवगगणा श्रो सादिरेयाओ होति तिरिष्ण ण पूरेति,

ग्रह्म करके पहिले चेत्र पर रकते पर भागाहारमे एक रूपकी अधिकता प्राप्त होती है। पुनः दो अधिक गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशोप चेत्र अधिक है उसे तृतीय वर्गणाके प्रमाणसे करने पर उसके प्रमाणको पूरा नहीं करता, क्योंकि चार कम गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशोपोका अभाव है। अतः सातिरेक एक अधिक ढंढ़ गुणहानि स्थानन्तर कालके द्वारा वह अपहृत होता है यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ – हतीय वर्गणाका प्रमाण (५०४) प्रथम वर्गणाके प्रमाण (५१२) से दें। वर्गणा विशेष (२×४) कम होता है। पूर्वोक्त प्रकारसे प्रथम वर्गणाप्रमाण चौड़ा और डेंढ़ गुण्हानि प्रमाण लम्बा चेत्र स्थापित करके उसमसे एक एक वर्गणाविशेषप्रमाण चौड़ा और डेंढ़ गुण्हानिप्रमाण लम्बा (५०४×५६) स्थित रहता है। पुनः उन दो फालियोको आयामके साथ जाड़नेसे (१३ गुणहानि वर्गणाविशेष +१३ गुणहानि वर्गणाविशेष) तीन गुणहानि वर्गणाविशेष होते हैं (६४×३×४)=१९२×४। इसको हतीय वर्गणा (५०४=१२६×४) के प्रमाण्से करने पर एक हतीय वर्गणा और दें। अधिक गुण्हानि (६४+२=६६) वर्गणाविशेष प्रमाण चेत्र शेष रह जाता है (५९२×४-१२६×४=६६×४)। इस शेष चेत्र (६६×४) की पूरी हतीय वर्गणा नहीं होती, क्योंकि (१२६×४-६६×४) को कमी है। अतः हतीय वर्गणाका अपहार काल कुछ (६४-४=६०) वर्गणाविशेष (४) की कमी है। अतः हतीय वर्गणाका अपहार काल कुछ विशेष एक अधिक डेंढ़ गुणहानिप्रमाण है ९६+१+ $\frac{६६}{१२६}$ = ९० $\frac{६६}{१२६}$, $\frac{१६१५२}{१२8}$ = ९० $\frac{६६}{१२६}$ ।

६ ५९७. अब चतुर्थ वर्गणाके प्रमाणके द्वारा समस्त द्रव्यको अपहत करने पर दो अधिक ढंढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक स्थानान्तर कालके द्वारा अपहत होता है। उसका खुलासा इस प्रकार है – डंढ़ गुणहानिश्रमाण लम्बे और तीन वर्गणाविशेष प्रमाण चौड़ नेत्रको अलग करने पर शेष नेत्र डंढ़ गुणहानिश्रमाण लम्बा और चतुर्थ वर्गणाश्रमाण चौड़ा अवस्थित रहता है। फिर अलगकी हुई तीन फालियोंको चतुर्थ वर्गणाके प्रमाणसे करते हैं—यदि तीन कम दो गुणहानिश्रमाण वर्गणाविशेषोकी एक चतुर्थ वर्गणा होती है तो साढ़े चार गुणहानिश्रमाण वर्गणाविशेषोकी चतुर्थ वर्गणाएं कुछ अधिक दो होती हैं, तीन पूरी तीन नहीं होती; क्योंकि

ता० प्रती कस्सामो ति रूवृग् – इति पाठः ।

णववग्गणविसेम्एणदिवड्डगुणहाणिमेत्तवग्गणिवसेसाणमभावादो । तेण सादिरेयदुरूवाहिय-दिवड्डगुहाणिहाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जिदि ति सिद्धं ।

§ ५६८. पंचमवरगणपमाणिण अविहिरिक्तमाणे सादिरेयितिरूवाहियदिवङ्गुण-हाणिद्वाणंतरेण कालेण सन्वदन्वमविहिरिक्ति । दिवङ्गुखेत्तिम पंचमवरगणपमाणायद-दिवङ्गुणहाणिविक्खंभखेते अविणिदे उन्वरिद्द्युणहाणिमेत्तवरगणिकसेसेसु सादिरेय-तिषिणपंचमवरगणाणमुवलंभादो । चत्तारि रूवाणि ण पूरंति, सोलसवरगणिवसेसेहि युणदोगुणहाणिमेत्तवरगणिवसेसाणमभावादो ।

नौ वर्गणाविशेष कम डेढ़ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंका स्त्रभाव है, स्रतः दो स्त्रधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ स्रधिक स्थानान्तर कालके द्वारा इसका स्रपहार होता है यह सिद्ध हुस्रा।

विशेपार्थ-चौथी वर्गणा ५०० से समम्त द्रव्य ४९१५२ का अपहरण करने पर $\frac{8९१५२}{५००}$ ह्ट $\frac{१५२}{५००}$ =९८ $\frac{३८}{१२५}$ ऋथीन दो अधिक डेढ़ गुणहानि (१६+२=९८) से बुछ अधिक

§ ५६८. पाँचर्वा वर्गणाके प्रमाणसे अपद्वत करने पर समस्त द्रव्य तीन अधिक डेढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक स्थानान्तर कालके द्वारा अपद्वत होता है। डेढ़ गुणहानि प्रमाण चेत्रमं से पाँचर्वा वर्गणाप्रमाण आयामवाले और डेढ़ गुणहानिप्रमाण विस्तारवाले चेत्रको अलग करने पर शेप रहे छह गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेपोंम पाँचर्वा वर्गणाऐ साधिक तीन प्राप्त होती हैं। पूरी चार नहीं प्राप्त होतीं; क्योंकि सोलह वर्गणाविशेप कम दो गुणहानिप्रमाण वर्गणा-विशेषोका अभाव है।

विशेषार्थ-पॉचर्वा वर्गणा (४६६) के प्रमाणसे समस्त द्रव्य (४६१५२) को अपहत करने पर तीन अधिक डेढ़ गुण्हानिसे कुछ अधिक काल प्राप्त होता है ($\frac{85842}{8.5} = \frac{85}{158}$)। चेत्र की अपेचा डेड़ गुण्हानि प्रमाण् (६६) लम्बे और चार वर्गणा विशेष प्रमाण् चौड़े (४ \times ४) चेत्रको अलग करनेपर शेप चेत्र पाँचर्वा वर्गणाप्रमाण् (४६६) चौड़ा और डेढ़ गुण्हानि

५ ५६६. संपिंद ब्रह्वग्गणपमाणेण सन्वद्न्वे अविहिरिज्ञमाणे सादिरेयितिष्णि-रूवाहियदिवङ्गुणहाणिमेत्तकालेण अविहिरिज्ञदि । दिवङ्गुणहाणिमेत्तपढमवग्गणासु ब्रह्वग्गणपमाणे अविणदे अविणदसेसअद्ध्वहमगुणहाणिमेत्तवग्गणिवसेसेसु सादिरेय-तिण्हं रूवाणमुवलंभादो । चत्तारि रूवाणि ण पूरंति, वीसवग्गणिवसेसहीणअद्धगुणहाणि-वग्गणिवसेसाणमभावादो ।

§ ६००. संपिं सत्तमवग्गणपमाणेण सञ्चद्व्वे अवहिरिज्जमाणे सादिरेयचदु-रूवाहियदिवङुगुणहाणिद्वाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि । दिवङुगुणहाणिमेत्तपढम-वग्गणासु सत्तमवग्गणाए अविणिदाए तत्थुव्वरिद्णवगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसेसु

प्रमाण (१६) लम्बा ग्हना है । खलग किये हुए चेत्र (डेढ़ गुगाहानि १६ ×६४ ×४ ×४ = ६×६४ ×४) में से पॉचर्बा वर्गणा पूरी चार (४६६ ×४ = १२४ ×४ ×४) प्राप्त नहीं होती, क्योंकि (१२४ ×४ ×४ – ६ × ६४ ×४ = ११२ ×४ = २ ×६४ – १६ ×४ = १२८ – १६ ×४) मोलह कम दो गुगाहानित्रमाण वर्गणाविशेषोंकी कमी है, इसलिए समम्त द्रव्यको पॉचर्बा वर्गणाके प्रमाणसे करनेपर वह तीन ख्रिधक डेढ़ गुगाहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा ख्रष्ट्वत होता है यह कहा है।

६ ५९९, अब छटी वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्यका अपहरण करने पर वह तीन अधिक ढेंद्र गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहृत होता है। ढेंद्र गुणहानिसमाण प्रथम वर्गणाओमसे छटी वर्गणाके प्रमाणको अलग करने पर अलग किये गये चेत्र साढ़ सात गुणहानिसमाण वर्गणाविशेषोंमे छटी वर्गणाएं कुछ अधिक तीन प्राप्त होती हैं। पूरी चार नहीं प्राप्त होती, क्योंकि वीस वर्गणाविशेष कम अद्ये गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशे ोंका अभाव है।

विशेषार्थ-छठवी वर्गणा (४६२) से समस्त द्रव्य ४९१५२ का अपहरण करनेपर तीन अधिक डेढ़ गुण्डानि (६६+३=९९) से कुछ अधिक काल आता है $\frac{8984}{892}$ =९९ $\frac{88}{822}$ । पूर्वोक्त प्रकारसे डेढ़ गुण्डानि लम्बे और पाँच वर्गणाविशेष प्रमाण चौड़े सेत्रका अलग करनेपर छठवी वर्गणाप्रमाण (४९२) चौड़ा और डेढ़ गुण्डानिप्रमाण (६६) लम्बा सेत्र शेष रहना है। अलग किए हुए साड़े सात गुण्डानि वर्गणाविशेष प्रमाण (१३ गुण्डानि×५ वर्गणाविशेष = $\frac{8}{2}$ गुण्डानिप्रमाण वर्गणाविशेष = $\frac{8}{2}$ गुण्डानिप्रमाण वर्गणाविशेष चार नहीं प्राप्त होती है ($\frac{1}{2}$ ×६४ × ४=३ × १२३ × ४+१११ × ४)। छठवी वर्गणा पूरी चार नहीं प्राप्त होती, क्योंकि बीस कम अर्घ गुण्डानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी कमी है (४ × १२३ × ४ - ३ × १४ × ४ = १२ × ४ = $\frac{8}{2}$ - २० × ४। अतः सब द्रव्यको छठवीं वर्गणाके प्रमाणसे करने पर वह तीन अधिक डेढ़ गुण्डानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहत होता है यह कहा है।

६२०. अब सप्तम वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्यका अपहरण करनेपर वह कुछ विशेष चार अधिक डेढ़ गुणहानिष्रमाण काल द्वारा अष्ट्रत होता है। डेढ़ गुणहानिष्रमाण प्रथम वर्गणाओंमेंसे साववीं वर्गणाके अलग करने पर वहां शेष रहे नौ गुणहानिष्रमाण वर्गणाविशेषोमे

१. ता॰ आ० प्रत्योः -मेत्त्वगगगासु इति पाठः ।

सादिरेयचदुरूतोवलंभादो । पंचरूवाणि ए। पूरेंति, तीसवग्गणिवसेमूणण्गगुणहाणिमेत्त-वग्गणिवसेसाणमभावादो ।

§ ६०१. संपिह अद्वमवग्गणपमाणेण सन्वदन्वे अविहिरिज्जमाणे सादिरेयपंच-रूवाहियदिवहृग्रुणहाणिद्वाणंतरेण कालेण अविहिरिज्जिदि । पढमवग्गणिवक्त्वंभदिवहु-ग्रुणहाणिआयद्खेत्तम्मि अद्वमवग्गणिवक्त्वंभदिवहुगुणहाणिआयद्खेते अविणिदे उन्व-रिदसत्तफालीसु सादिरेयपंचद्वमवग्गणपमाणुष्पत्तीदो । छअद्वमवग्गणात्रो ण उष्पज्जंति, वादान्त्रीसवग्गणिवसेम्र्सादिवहुगुणहाणिमेत्तवग्गणिवसेसाणमभावादो ।

सातवी वर्गणाएं कुछ अधिक चार प्राप्त होती हैं। पूरी पाँच नहीं प्राप्त होती, क्योंकि तीस वर्गणा विशेष कम एक गुणहानित्रमाण वर्गणाविशेषोंका अभाव है।

् ६०१. अब आठवी वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्यका अपहरण करने पर वह कुछ विशेष पाँच अधिक डेढ़ गुणहानि स्थाना तर कालके द्वारा अपहत होता है। प्रथम वर्गणाप्रमाण विस्तारवाले और डेढ़ गुणहानिप्रमाण आयामवाले चेत्रमेंसे आठवी वर्गणाप्रमाण विस्तारवाले और डेढ़ गुणहानिप्रमाण आयामवाले चेत्रका अलग करने पर, शेष रही सात फालियोंसे आठवी वर्गणा कुछ अधिक पाँच उत्पन्न होती है। आठवी वर्गणा छह उत्पन्न नहीं होती, क्योंकि वियालीस वर्गणाविशेष कम डेढ़ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोठा अभाव है।

६०२. णवमवग्गणपमाणेण सन्वदन्वे अविहिरिज्जमाणे केविचिरेण कालेख अवहिरिज्जिदि १ सादिरेयळ्ळ्वाहियदिवड्डगुणहाणिडाणंतरेण कालेण अविहिरिज्जिदि । कारणं
चितिय वत्तव्वं ।

६०२. संपिह का वग्गणा दोग्रणहाणिपमाणेण अविहिरिज्जिदि ? पढमगुणहाणीए अद्धं गंतूण जा दिदा सा अविहिरिज्जिदि । पढमवग्गणिवक्खंभं चतािर फालीओ
काऊण तत्थेगफािलं घेतूण गुणहाणिअद्धपमाणेण आयामेण खंडिय तीम्र चहुन्भागखंडेम्र समयाविरोहेण ढोइदे चहुन्भागूणपढमवग्गणिवक्खंभवेगुणहाणिआयद्खेतुष्पत्तिदंसणादो । एत्तो उविरमखेत्तविण्णासो
तेरासियकमो च जािणय वत्तव्वो जाव जहरा्णाद्वाणाचिरमवग्गणे
ति, विसेसाभावादो ।

एवमवहारो गदो।

वर्गणाके प्रमाणसे करने पर वह पाँच अधिक डेढ़ गुरणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहत होता है यह कहा है।

६०२. नौर्वा वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्य अपहृत होने पर वह कितने कालके द्वारा
अपहृत होता है ? कुछ विशेष छह रूप अधिक डेड़ गुणहानिप्रमाण कालके द्वारा अपहृत होता
है। कारण जान कर कहना चाहिए।

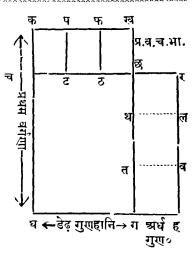
विशेषार्थ—नौर्वा वर्गणा ($820 = 870 \times 8$) से समस्त द्रव्य 8984 को अपहत करने पर छह रूप अधिक डेढ़ गुणहानि (984 + 8 = 809) से छुछ अधिक काल प्राप्त होता है $\frac{8984}{820} = 809 \times \frac{82}{820}$ । सातवाँ अङ्क पृरा नहीं होता, क्योंकि चौबीस वर्गणाविशेष कम डेढ़ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी कमी है ($980 \times 820 - 980 \times 820 \times$

§ ६०३. अब कौनसी वर्गणा दो गुणहानिप्रमाण कालसे सब द्रव्यके अपहृत होने पर आती है ? प्रथम गुणहानिका अर्ध भाग स्थान जाकर जो वर्गणा स्थित है वह सब द्रव्यके अपहृत होनेपर आती है। प्रथम वर्गणाप्रमाण विस्तारकी चार फालियां करके, उनमसे एक फाली प्रह्णा कर गुणहानिके अर्धभागप्रमाण आयामसे उसके खण्ड कर, उस चतुर्थ भागके तीन खण्डों को नियमानुसार मिला देनेपर चौथा भाग कम प्रथम वर्गणाप्रमाण विस्तारवाला और दो गुणहानि आयामवाला चेत्र उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है। इससे आगेका चेत्रविन्यास और त्रीराशिक कम जघन्य स्थानकी अन्तिम वर्गणाके प्राप्त होने तक जानकर कहना चाहिये, क्योंकि कोई विशेषता नहीं है।

विशेषार्थ-गुण्हानि (६४) का स्राधा (३२) स्थान जाकर जो वर्गणा (३८४) प्राप्त होती है। उससे समस्त द्रव्य (४६१५२) को स्र्यवहृत करने पर दो गुण्हानि (६४×२=१२८) काल प्राप्त होता है $\frac{89844}{328}$ = १२८। प्रथम वर्गणाप्रमाण (५१२) चौड़े स्त्रौर डेढ़ गुण्हानि ६ ६०४. भागाभागं जहण्णियाए वग्गणाए कम्मपदेसा सव्ववगणकम्मपदेसाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो । एवं णेदव्वं जाव चरिमवग्गणे त्ति । भागाभागं गदं ।

६०५. अप्पावहुत्रं—सञ्वत्थोवा उकस्सियाए वम्मणाए कम्मपदेसा ६। जहण्णाए वम्मणाए कम्मपदेसा अणंतगुणा ५१२। को गुणगारो १ किंचुणण्णोण्ण-

प्रमाण (९६) लम्बे चेत्र घ क ख ग म से प्रथम वर्गणाप्रमाण विस्तारका एक चौथा भाग प्रमाण क च चौड़ा और डंद गुराहानि लम्बा चेत्र च क ख छ के लम्बाईकी अपेक्षा अर्घ गुराहानि प्रमाण (३२) लम्बे तीन खण्ड क पटच, पफ ठट, फ ख छ ठ को रेखा छ ग की दाई आर इस प्रकार स्थापित करो कि रेखा च ट जो अर्घ गुराहानि (३२) लम्बी है वह रेखा घ ग की सीध में दाई तरफ बद्कर ग ह का रूप धारण कर ल और रेखा क च जो प्रथम वर्गणाका चौथा भाग है वह रेखा ग ख पर पड़कर 'त' स्थान तकः पहुँच जाय। रेखा ट परेखा ह व का और रेखा क परेखा त व का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार क्षेत्र च क पट की बजाय क्षेत्र ग ह व त बन जाता है। इसी प्रकार



क्षेत्र ट प फ ठ की रेखा ट ठ को अर्घ गुणहानिप्रमाण (३२) लम्बी रेखा त व पर रखकर रेखा ट प को रेखा त ख पर रखनेसे प्रथम वर्गणां एक चौथाई भाग स्थान थ तक जाती है। अब क्षेत्र ट प फ ठ की बजाय क्षेत्र न थ ल व बन जाता है। इसी प्रकार रेखा ठ छ को रेखा थ ल पर रखनेसे और रेखा ठ फ को रेखा थ म्व पर विन्दु थ से छ तक पहुँचा देनेसे क्षेत्र ठ फ ख छ की बजाय क्षेत्र थ छ र ल बन जाता है। इससे रेखा घ ग जो डेढ़ गुणहानि प्रमाण लम्बी थी, उसमें अर्घ गुणहानि लम्बी रेखा ग ह के मिल जानेसे रेखा घ ह दो गुणहानि प्रमाण लम्बी हो जाती है और प्रथम वर्गणाप्रमाण रेखा च क में से एक चौथाई प्रथम वर्गणा प्रमाण रेखा क च कम हो जानेसे रेखा घ च तीन चौथाई प्रथम वर्गणा प्रमाण रेखा क च कम हो जानेसे रेखा घ च तीन चौथाई प्रथम वर्गणा प्रमाण चौड़ा बन जाता है जिसका क्षेत्र फल क्षेत्र घ क ख ग के बराबर है। प्रथम वर्गणा प्रमाण चौड़ा बन जाता है जिसका क्षेत्र फल क्षेत्र घ क ख ग के बराबर है। प्रथम वर्गणा तीन चौथाई भागप्रमाण यही वह वर्गणा है जो समस्त द्रव्यका दोगुणहानिसे अपहृत करने पर आती है।

इस प्रकार अपहारकाल समाप्त हुन्ना।

् ६०४. भागाभाग—जघन्य वर्गणामे कर्मप्रदेश सब वर्गणात्रोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण है। इस प्रकार चरम वर्गणा पर्यन्त जानना चाहिए। ‡ इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

्र ६०५. ऋव ऋत्पबहुत्व कहते हैं — अकृष्ट वर्गणामं कर्मप्रदेश सबसे थांड़े हैं ९। जघन्य वर्गणामें कर्मप्रदेश स्त्रनन्तगुणे हैं ५१२। गुणकारका प्रमाण क्या है ? कुछ कम

न्भत्थरासी अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणंतिमभागो । अजहण्णअणुकस्सियासु वग्गणासु कम्मपदेसा अणंतगुणा ५७७६ । को गुणगारो १ अभवसिद्धिएहि अणंत-गुणो सिद्धाणंतिमभागो किंचूणदिवङ्गुगणहाणिमेतो वा । अजहण्णियासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ५७८८ । केत्तियमेत्तेण १ उक्कस्सवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण । अणुकस्सियासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ६२६१ । के० मेत्तेण १ उक्कस्स-वग्गणकम्मपदेसुणजहण्णवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण । सच्वासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ६३०० । के० मेत्तेण १ उक्कस्सवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण ।

एवमेसा परूवणा जहण्णाणुभागस्स कदा ।

६०६. जिंद एदस्स हाणस्स चरिमफद्दयचरिमवग्गणाए एगो वग्गो चेव जहण्णाणुभागद्दाणं होदि तो तं मोत्तृण अवसेसवग्ग-वग्गणा-फद्दयपदेसाणं परूवणा असंबद्धिया, जहण्णद्वाणपरूवणाए अजहण्णद्वाणपरूवणाणुववत्तीदो त्ति ? ण, एदं

अन्योन्याभ्यस्तराशि गुणकारका प्रमाण है जो अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिक अनन्तवे भागप्रमाण है। अजघन्य अनुस्कृष्ट वर्गणाओं में कर्मप्रदेश अनन्तगुणा हैं ५७७९। गुणकार कितना है ? अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण कुछ कम डेढ़ गुणहानि मात्र गुणकारका प्रमाण है। अजवन्य वर्गणाओं में कर्मप्रदेश विशेष अधिक हैं ५०००। कितने अधिक हैं ? उत्कृष्ट वर्गणाके जितने कर्मप्रदेश हैं उतने अधिक हैं। अनुन्कृष्ट वर्गणाकों में कर्मप्रदेश विशेष अधिक हैं ६२९१। कितने अधिक हैं ? उत्कृष्ट वर्गणाके कर्म-देशासाण अधिक है। सब वर्गणाओं कर्मप्रदेश विशेष अधिक हैं ६२००। कितने अधिक है ? उत्कृष्ट वर्गणाके कर्मप्रदेशों का जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं।

विशेषार्थ-पहले विशेषार्थम सब वर्गणात्रोंके कर्मपरमागुत्रोंका प्रमाण अङ्कसंदृष्टिसे ६३०० बतला खाये हैं तथा प्रत्येक वर्गणांगे उनका वटवारा करके प्रत्येक वर्गणांके कर्म-परमागु श्रोंका प्रमाण भी वतला खाये हैं। उस वटवारेके अनुसार सबसे प्रथम वर्गणांम, जो कि जघन्य वर्गणां है, ५१२ कर्मपरमागु हैं खोर सबसे जिन्तम वर्गणांम, जो कि जघन्य वर्गणां हैं, ९कर्मपरमागु हैं खतः जघन्य और उत्कृष्टके सिवाय रोप वर्गणांखोंमें किनने परमागु हैं ? इस प्रश्नका सरल उत्तर यह है कि जघन्य वर्गणां और उत्कृष्ट वर्गणांके परमागुष्ट्रोंकों सब वर्गणांखोंके परमागुत्रोंमेंसे घटा देना चाहिए। यथा--५१२ + ९ = ५२१। ६२००-५२१ = ५७०९ इतने रोप वर्गणांखोंके कर्मपरमागुत्रोंका प्रमागु खाता है। इसी तरह सब वर्गणांखोंके परमागुत्रोंकों कर्मपरमागुत्रोंकों सहस्य जान लेने पर उनमें अल्पवहुत्व लगा लेना चाहिए।

इस प्रकार जघन्य ऋनुभागकी यह प्ररूपणा हुई।

े ६०६ शंका—यदि इस अनुभागस्थानके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाका एक वर्ग ही जधन्य अनुभागस्थान है तो उसके सिवा शेप वर्गी, वर्गणात्रो और स्पर्धकों के प्रदेशोंका कथन करना असंगत है, क्योंकि जधन्य स्थानकी प्रहृपणामे अजधन्य स्थानकी प्रहृपणा नहीं बन सकती।

जहण्णहाणं केवलं ण होदि, किंतु एवंविहवग्ग-वग्गणा-फद्दयपदेसाविणाभावि ति जाणावणहं कयपस्वणाए जहण्णहाणपस्वणतं पिंड विरोहाभावादो। संपित एदं जहण्णहाणं सव्वजीवरासिमेत्तस्वेहि खंडिय तत्थ एगखंडं घेतूण जहण्णहाणं पिंडरासिय तत्थ एदिम पक्खेवे पिक्लते विदियमणुभागहाणं होदि। णेदं घडदे, एवंविहस्स अणुभागहाणस्स वंधादो घाटादो वा उप्पत्तीए अणुववत्तीदो। ण ताव वंधादो उप्पज्जदि,सिरसधणियअणंतपरमाणूहि हेहिमाणंतवग्गणा-फद्दयपदेसाविणाभावीहि विणा एक्ससेव परमाणुस्स वंधागमणविरोहादो। ण च कम्मिम परमाणु अत्थ, अणंताणंत-परमाणुससुदयसमागमेण तत्थ एगेगवग्गणसमुप्पत्तीदो। ण च एक्सिसे वग्गणाए वि वंधो अत्थ, अणंताणंतवग्गणाहि विणा एगसमयपबद्धाणुववत्तीदो। ण च बज्भमाण-कम्मक्खंधिम्म अप्पिदेगपरमाणुं मोतूण अवसेसकम्मपदेसा पुव्विल्लअणुभागहाणिम्म सिरसधिणया होद्षा अच्छंति, अणंतापुव्ववग्ग--वग्गणा-फद्दपि विणा अणुभागवृहीए अणुववत्तीदो। ण च घादेण वि उप्पज्जदि, अणंतवग्ग-वग्गणा-फद्दपाणं घादे कदे तत्थ एगपरमाणुस्स हेिहमएगवग्गाणुभागादो सव्वजीवरासिपिडभागाविभागपिडच्छेदेहिं अव्यिह्यस्स अवहाणुववत्तीदो। तम्हा एसा अणुभागवृही ण जुज्जदे १ एत्थ परिहारो

समाधान—नहीं, क्यों कि यह जधन्य अनुभागस्थान अकेला नहीं होता है, किन्तु इस प्रकारके वर्ग, वर्गणा. स्पर्धक और प्रदेशोंका अविनामात्री होता है यह बतलानेके लिये पूर्वमें की गई प्रक्षणामें जधन्य अनुभागस्थानके कथनके प्रति कोई विरोध नहीं है।

अब इस जघन्य स्थानके सब जीवराशिष्रमाण खण्ड करो और उनमेसे एक खण्ड लेकर जघन्य स्थानको प्रतिराशि बनाकर उसमे इस प्रचेपके प्रचिप्त कर देनेपर दूसरा अनुभागस्थान होता है।

शंका—यह दूसरा अनुभागस्थान घटित नहीं होता है, क्योंकि इस प्रकारका अनुभागस्थान न तो वंथसे ही उत्पन्न होता है और न घातसे ही उत्पन्न होता है। वंथसे तो उत्पन्न होता ही नहीं, क्योंकि नीचेकी अनन्त वर्गणा, स्पर्धक और प्रदेशोंके अविनाभावी समान धनवाले अनन्त परमाणुओंके विना अकेले एक ही परमाणुका वंधके लिए आगमन माननेमें विरोध आता है। तथा कमेंमे एक परमाणु हैं भो नहीं, क्योंकि वहां अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदाय समागमसे एक एक वर्गणाकी उत्पत्ति होती है। शायद कहा जाय कि एक वर्गणाका ही बन्ध होता है सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अनन्तानन्त वर्गणाओंक विना एक ममयप्रवद्ध नहीं बनता। शायद कहा जाय कि वधनेयाल कर्मस्कन्धमे विवक्ति एक परमाणुका छोड़कर शेष सब कर्मप्रदेश पहलेके अनुभागस्थाममे समान धनवाल होकर रहते हैं, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि अनन्त अपूर्व वर्ग, वर्गणा और स्पर्धकोंके विना अनुभागकी बृद्धि नहीं हो सकती, अतः इस प्रकारके अनुभागस्थानकी वधसे तो उत्पत्ति हो नहीं सकती और न घानसे ही उत्पत्ति होती है, क्योंकि अनन्त वर्ग, वर्गणा और स्पर्धकोंका घात करने पर वहां अधस्तन एक वर्गणाके अनुभागसे सर्व जीवराशिका प्रतिभाग बनाकर अविभागप्रतिच्छेदोंसे अधिक एक परमाणुका अवस्थान पाया जाता है, अतः यह अनुभाग बृद्धि ठीक नहीं है।

बुचदे—बंधेण ताव एदस्स हाणस्स उप्पत्ती ए। होदि ति जं भणिदं तएए। घडदे, जहण्णहाणादो अणंतवम्म-वम्मणा-फदएहि अब्भिह्यसमयपवद्धिम्म अण्णाणुभागहाणु-प्पत्तीए विरोहाभावादो । ण च एगो वम्गो वम्गणा फद्दयं वा एमसमयपबद्धो होदि, अण्ब्रुवममादो । ए। च एगो परमाण् गहणामामच्छिदि, अणंतपरमाणुसमुद्रयसमाममेण विणा कम्मइयजहएए।वम्मणाए वि अणुप्पत्तीदो । कथं पुण तस्स समयपबद्धस्स फद्दयरचणा कीरदे, एगसमयपबद्धिम जिद वि परमाण् णित्थ तो वि बुद्धीए पुथ कादृण परमाणु ति संकिष्पिय एगहपुंजं किरय णिसेगविण्णासक्तमो बुचदे—

६६०७. तं जहा—हेिहमहाणवग्गाणुभागेहि सिरसथिणयवग्गे सन्वे घेतूण तेसि सन्वेसि पि हेहा चेव रयणा कायन्वा, हेिहमहाणदो उविरमरयणाए अप्पा-त्रोग्गतादो । पुणो उन्वरिद्यरमाण्यामुविर फह्यरयणाए कदाए विदियहाणमुप्पज्जिद । पुन्त्रिल्लं हाणं पेक्खिद्ण सन्वजीवरासिणा खंडिदेगखंडमेताविभागपडिच्छेदाणमेत्थ अन्भिहियाणमुवलंभादो । तं जहा—दन्बिहियणयजहण्णद्वाणं चिरमफह्यचरिमवग्गणेग-वग्गसिण्णदं सन्वजीवरासिणा खंडिय तत्थ एगखंडं घेतूण विरिष्ठिय जहण्णपक्लेव-फह्यसलागाणं समखंडं करिय दिण्णे एक्केक्स रूवस्स पक्लेवजहण्णफह्यपमाणं

समाधान - इस शङ्काका समाधान करते हैं - वंधसे इस अनुभागस्थानकी उत्पत्ति नहीं होती यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि जघन्य अनुभागस्थानकी अपेक्षा समयप्रवद्धमें अनन्त वर्ग, वर्गणा और स्पर्धकोंसे अधिक अन्य अनुभागस्थानकी उत्पत्ति होने कोई विरोध नहीं है। तथा, एक वर्ग, वर्गणा अथवा स्पर्धक एक समयप्रवद्ध होता है ऐसा भी नहीं है, क्योंकि हमने ऐसा माना नहीं है। और न यही मानते हैं कि एक परमागुका प्रहण होता है, क्योंकि अनन्त परमागुओंके समुदाय समागमके बिना कर्मोंकी एक जघन्य वर्गणा भी नहीं उत्पन्न होती। ऐसी अवस्थामे यह प्रश्न हो सकता है कि उस समयप्रवद्धमें स्पर्धक रचना किस प्रकार की जाती है इसका स्तर यह है कि यद्यपि एक समयप्रवद्धमें एक परमागु नहीं है अर्थात् वह स्कन्धरूप होता है तो भी बुद्धिके द्वारा उसे प्रथक् करके उसमें परमागुकी करपना करके उनका पुंज करके निपेक रचना क्रमका कथन करते हैं -

६ ६०७. वह इस प्रकार है—नीचेके अनुभागस्थानके वर्गमें जितना अनुभाग है उस अनुभागके समान अनुभागवाल सब वर्गों का लेकर उन सवकी नीचे ही रचना करनी चाहिये, क्योंकि नीचेके स्थानसे ऊपरकी रचना करने के अयोग्य है। पुनः रोप बचे हुए परमागुश्रोकी उसके ऊपर स्पर्धक रचना करने पर दूसरा स्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि पहलेके अनुभागस्थानकी अपंक्षा इस अनुभागस्थानमें पहलेके अनुभागस्थानके सर्व जीवराशि प्रमाग् खण्डोंमेसे एक खण्ड प्रमाग् अभिभागप्रतिच्छेद अधिक पाये जाते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है— द्रव्यार्थिकनयकी अपंचा जघन्य स्थानह्म अनिमा स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक वर्गके सर्व जीवराशि प्रमाग् खण्ड करके उनमेसे एक खण्डको लेकर विरत्न करें और उस विरत्न राशिके प्रत्येक एक पर जघन्य प्रचेपस्पर्धकका प्रमाग् आता है।

१. ता० ग्रा० प्रत्योः परमाखदो त्ति इति पाठः ।

पावदि । कथमेदस्स पक्लेवजहण्णफद्यववएसो १ पिडरासीकयजहण्णहाणे एद्मिम पिक्लेने पक्लेवजहण्णफ्द्यं समुप्पज्जिदि त्ति कारणे कज्जुवयारादो । एसो एगल्वंडाणुभागां पक्लेवजहण्णफद्द्यचरिमवग्गणेगवग्गसमुप्पत्तिणिमिन्नो कथं पक्लेवजहण्णफद्द्य-समुप्पत्तीए कारणं १ ण, एद्म्हादो हेद्विमञ्जवभागपिडच्छेदेहि जहण्णफद्द्यसमुप्पत्तीए अदंसणादो । दंसणे वा जहण्णफद्द्यभंतरे अणंताणि जहण्णफद्द्याणि होज्ज १ ण च एवं, अव्ववत्थावत्तीदो । ण च सरिसधणियाणुभागा जहण्णफद्द्यस्स उप्पायया, एगोली-अणुभागसमाणत्रणेण तत्थ पिवहाणं पुधकज्जकारित्तिविरोहादो । ण च एगोलीअणुभागा हेद्विमा तदुष्पायया, तद्रणुभागाविभागपिडच्छेदसंखाए एत्थेव पयदाणुभागे उवलंभादो । ण च पयदाणुभागादो अहिओ अणुभागो छित्य जेण तस्स फद्द्यसण्णा होज्ज । तदो सगंतोक्खित्तसयलवग्ग-वग्गणाणुभागतादो एदं चेव जहण्णफद्द्यं । एत्थ विद्वाणुभागो चेव जहण्हफद्द्यससुप्पत्तिणिमित्तमिदि घेत्तव्वं। एद्म्मि पक्लेवजहण्णफद्द् ए जहण्णपक्लेव-फद्द्यसलाम् विद्विस्कवोवरि हेद्रजहण्णफद्द्यं चेत्रण पिक्लिने पक्लेवस्स विद्यफद्द्यमुप्पज्जिद । एद्म्म पिडरासीकयम्मि तदियक्वविरेदं पिक्लिने पक्लेवस्स विद्यफद्द्यमुप्पज्जिद । एद्म्म पिडरासीकयम्मि तदियक्वविरेदं पिक्लिने पक्लेवस्स

शुंका-इसकी प्रत्तेप जघन्य स्पर्धक संज्ञा क्यो है ?

समाधान-प्रतिराशिक्ष जघन्य अनुभागस्थानमें इसे प्रतिप्त करने पर प्रत्तेप जघन्य स्पर्धककी उत्पत्ति होती है, इसलिये कारणमें कार्यका उपचार करके इसकी प्रत्तेप जघन्य स्पर्धक संज्ञा रखी है.।

दांका—यह एक ख़ण्डरूप अनुभाग प्रचेप जवन्य म्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक वर्गकी उत्पत्तिमें कारण है, अत: यह प्रचेप जवन्य स्पर्धककी उत्पत्तिमें निमित्त कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इससे अधस्तन अविभागप्रतिच्छेदोंके द्वारा जघन्य स्पर्धककी उत्पत्ति नहीं देखी जाती। यदि देखी जाय तो जघन्य स्पर्धकके भीतर भी अनन्त जघन्य स्पर्धक हो जॉय। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि ऐसा होने र अध्यवस्थाकी आपत्ति आतीं है। शायद कहा जाय कि सहश धनवाले अनुभाग जघन्य स्पर्धकको उत्पन्न करते हैं, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि एक पंक्तिमे अनुभागोंके समान होनेसे उसमे प्रविष्ट हुए व पृथक पृथक कार्य नहीं कर सकते हैं। शायद कहा जाय कि एक पंक्तिमें रहनेवाले नीचेके अनुभाग इसके उत्पादक हैं, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि इन अनुभागोंके अविभागप्रतिच्छेदोंकी संख्या यहाँ प्रकृत अनुभागमें पाई जाती है। और प्रकृत अनुभागसे अधिक अनुभाग है नहीं, जिससे उसकी स्पर्धक संज्ञा हो जाय। अतः अपने भीतर समस्त वर्ग और वर्गणाओंके अनुभागको निक्षिप्त कर लेनेके कारण यही जघन्य स्पर्धक है और यहां पर बढ़ा हुआ अनुभाग ही जघन्य स्पर्धककी उत्पत्तिमें निमित्त है ऐसा स्वीकार करना साहिये। इस प्रचेप जघन्य स्पर्धकमें जघन्य प्रचेप स्पर्धक शलाकाओंके विरत्नक द्सरे अंकके उपर स्थित जघन्य स्पर्धकको लेकर मिला देने पर प्रचेपका दूसरा स्पर्धक उत्पन्न होता है। प्रतिराशिह्य इसमें विरत्नक तीसरे अंकके

१. भ्रा॰ प्रती जहरुगण्यस्यमेत्तविद्यगुभागी इति पाठः । २. ता॰ प्रती विद्य [स] रूबोविर, भ्रा॰ मती विद्यसरूबोविर इति पाठः ।

तिदयं फद्दयमुष्पज्जिद् । एवमेदेण कमेण विरल्णमेत्तखंडेमु पविद्वे सु विदियमणुभाग-हाणमुष्पज्जिद्, जहण्णहाणे सन्वजीविहि खंडिदे तत्थ एगखंडमेत्ताणुभागस्स तत्तो एत्थ अव्भिहियस्स उवलंभादो ।

🖇 ६०८. एकम्मि कम्मपरमाणुम्मि हिदाविभागपडिच्छेदाणमणुभागहाण-वग्ग-

ऊपर स्थित जघन्य स्पर्धकको मिला देनेपर प्रचेपका तीसरा स्पर्धक उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस क्रमसे विरत्नन प्रमाण म्वण्डोके प्रविष्ट होनेपर दूसरा अनुभागस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि जघन्य स्थानक सब जीवराशि प्रमाण म्वण्ड करने पर उनमेंसे एक खण्ड प्रमाण अनुभाग इस हमरे अनुभागस्थानमें अधिक पाया जाता है।

विशेषार्थ-अव अनुभागस्थानकी स्पर्धक रचनाको वतलाते हैं। पहले वतला आये हैं कि जघन्य स्थानके ऊपर छह प्रकारकी वृद्धियां होती हैं स्त्रीर यह भी बतला स्त्राये हैं कि सुच्यंगुलके श्रसंख्यातवे भाग बार पहली वृद्धिके हैं। जाने पर त्रागेकी वृद्धि होती है तथा संदृष्टिके द्वारा उसे समभा भी त्राये हैं। त्रीर यह भी वतला त्राये हैं कि सबसे प्रथम त्र्यनन्तमागबृद्धिमें त्र्यनन्तका प्रमाण उतना ही लेना चाहिए जितना जीवराशिका प्रमाण है। त्रात: जघन्य स्थानमे जीवराशिका भाग देकर जो लब्ध आए उसे उसी जघन्य स्थानमे जोड़ देनेसे अनन्तभागबृद्धि युक्त दसरा श्रनुभागस्थान होता है। किन्तु एक एक श्रनुभागस्थानमें श्रनेक स्पर्धक होते हैं यह पहले बतला चुके हैं श्रीर वहां पर स्पर्धक रचनाको बतलाना प्रधान लक्ष्य है, श्रत: उसके बतलानेके लिए हमें इस फैलाना होगा। जघन्य अनुभागस्थानमं अभव्यराशिसे अनन्तगुर्ण त्रीर सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण स्पर्धक होते है. अतः उसकी स्पर्धक शलाकाका प्रमाण अभन्य राशिसे अनन्तगुणा श्रीर सिद्धराशिके श्रनन्तवे भागप्रमाण होता है। इस प्रमाणसे जयन्य श्रनुभागस्थानमे भाग देने पर एक स्पर्धकका प्रमाण त्राता है। जबन्य स्थानसे दूसरे अनुभागस्थानमे ये स्पर्धक अधिक होते हैं। इन बढ़े हुए स्वर्धकोको वृद्धि स्पर्धक या प्रचेप स्पर्धक कहते हैं। इन स्पर्धकोंका जितना प्रमाण है उसका विरलन करें। श्रीर जघन्य स्थानसे दूसरे श्रनुमागस्थानमे जितना श्रनुमाग श्रधिक है-अर्थान् जघन्य स्थानमे जीवराशिका भाग देनसे जो लब्ध आया उतना-उस अनुभागके समान भाग करके प्रत्येक प्रत्येष स्पर्धकपर एक एक भाग दे दो। यह एक एक भाग प्रत्येप स्पर्धकका प्रमाण होता है, अर्थान इन भागांको जघन्य स्थानके अन्तिम स्पर्धकके ऊपर जोड़नेसे प्रचेप स्पर्धक या वृद्धि स्पर्धकका प्रमाण त्र्याता है। जैसे — जघन्य स्थानका प्रमाण ६५५३६ है त्र्यौर जीव-राशिका प्रमाण ४ है। ४ से ६५५३६ में भाग देनेसे लब्ध १६३८४ त्राता है। इस १६३८४ को ६५५३६ में जोड़नेसे ८१९२० दूसरे अनुमागस्थानका प्रमाण होता है, किन्तु यह १६३८४ प्रमाण श्रनेक स्पर्धकोमें विभाजित है श्रीर उन स्पर्धकोंका प्रमाण चार है श्रत: चारका विरत्नन करके ११११ इनके अपर १६९८४ के चार समान भाग करके प्रत्येकके अपर देनेसे ४८९६,४०६६ प्रचेत स्पर्धकका प्रमाण हाता है,इस प्रचेत स्पर्धकके प्रमाण ४०९६को जघन्य स्थान ६५५३६ मे जोड़ देनेसे ६९६३२ जघन्य प्रचेष स्पर्धकका प्रमाख त्र्याता है । इस प्रचेष जघन्य स्पर्धकके ऊपर दसरे विरलन रूपपर अर्थान् एक पर स्थित ४०९६ को जोड़ देनेसे दूसरे प्रचेष स्पर्धकका प्रमाण आता है। इसी प्रकार विरलन प्रमाण जितने खण्ड हैं एक एक करके उन सबको जोड़ देनेपर ८१९२० दूसरे ऋनुभागस्थानका प्रमाण होता है। इस दूसरे ऋनुभागस्थानमे सबसे जघन्य ऋनुभागस्थान में जीवराशिका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध खाता है उतना खनुभाग खिधक पाया जाता है। ु ६०८**. हांका**–एक कर्म परमागुमें स्थित ऋविभागप्रतिच्छेदोंका ऋनुभागस्थान, वर्ग,

वगगणा-फद्दयववएसा चत्तारि वि कथं संगच्छते १ ण, एकम्मि जीवपयत्थे इंद-पुरंदरादि-सण्णाणम्रवलंभादो । अप्पिदजीवम्मि हिद्दपरमाणुपोग्गलाविभागपिडच्छेदेहिंतो अहियत्त-विवक्खाए एदेसिमेगपरमाणुधरिदाविभागपिडच्छेदाणमणुभागहाणसण्णा । सेसपर-माणुअविभागपिडच्छेदेहिंतो सिरसासिरसत्तविवक्खाहि विणा तम्हि चेव विवक्खिदे तस्सेव वगगववएसो । सिरसधणियविवक्खाए वग्गणववएसो । सन्वजीवेहि अणंतगुणमंतिरिय अविभागपिडच्छेदुत्तरकमेण गंतूण पुणो सन्वजीवेहि अणंतगुणाविभागपिडच्छेदुल्लंघणपाओग्गत्तविवक्खाए तस्सेव फद्दयसण्णा ति । ण तत्थ चदुण्हं णामाणं पउत्ती विरुज्भदे । जिद्द एकम्मि कम्मपरमाणुम्मि हिद्दअविभागपिडच्छेदाणं हाणसण्णा इच्छिज्जिद तो एकम्मि कम्मपरमाणुम्मि हिद्दअविभागपिडच्छेदाणं हाणसण्णा इच्छिज्जिद तो एकम्मि कम्मपरमाणुम्मि हिद्दअविभागपिडच्छेदाणं सरिसधिणय-परमाणुणं तत्थुवलंभादो ति १ ण, सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिहिदिचरिमणिसेगम्मि अणंताणंतकम्महिदिप्पसंगादो । एगपरमाणुहिदीदो सेसपरमाणुहिदीणं भेदाभावादो तत्थ अण्णासि हिदीणमग्गहणं चे एत्थ वि तो क्खिह तेणेव कारणेण अण्णोसमग्गहणिमिद किण्ण घेप्पदे १ जिद एवं तो जोगस्स वि हाणपरूवणा एवं चेव किएए। कीरदे १

समाधान—नहीं, क्योंकि एक ही जीव पदार्थमें इन्द्र श्रौर पुरन्दर श्रादि सज्ञाएँ पाई जाती हैं। उसी प्रकार उक्त संज्ञाएँ भी जाननी चाहिए। विवक्षित जीवमे स्थित पुद्गल परमागुश्रोंके श्राविभागप्रतिच्छेदोसे श्राधिकपनेकी विवज्ञा करनेपर एक परमागुमे पाये जानेवाले इन श्राविभागप्रतिच्छेदोसे श्राधिकपनेकी विवज्ञा करनेपर एक परमागुभे पाये जानेवाले इन श्राविभागप्रतिच्छेदोसे सहशता और असहशताकी विवज्ञा न करके केवल उसी एक परमागुभी विवक्षा करने पर उसीकी वर्ग संज्ञा है। सहरा धनपालोकी विवक्षा करने पर उसकी वर्गणा सज्ञा है। प्रथम श्रादि स्पर्धककी श्रान्तिम वर्गणासे द्विनीयादि स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका श्रान्तर श्राविभागप्रतिच्छेदोंकी श्राप्ता सब जीवराशिसे श्रान्तरगुणा है। श्रातः सब जीवराशिसे श्रान्तरगुणे श्राविभागप्रतिच्छेदोंके उलंबनकी योग्यताकी विवज्ञा करनेपर असकी स्पर्धक संज्ञा है। श्रातः एक परमाग्रुमे चारों संज्ञाश्रोंकी प्रवृत्ति होनें। कोई विराध नहीं है।

वर्गणा और स्वर्धक ये चारो संज्ञाएँ कैसे घटित होती है ?

शंका—यदि एक कर्मपरमाणुमे स्थित अविभागप्रतिच्छेदोकी स्थान सज्ञ। मानते हो तो एक स्थानमें अनन्त अनुभागस्थान प्राप्त होते हैं. क्योंकि वहां समान अविभागप्रतिच्छेदोके धारक अनन्त परमाणु पाये जाते हैं।

समाथान –नर्हा, क्योंकि ऐसा कहने पर सत्तर कोड़ीकोड़ी सागरकी स्थितिवाले अन्तिम निषेकमें अनन्तानन्त कर्मस्थितियोंकः प्रसंग प्राप्त होता है ।

शंका-एक परमागुकी स्थितिसे शेष परमागुत्रोकी स्थितिमे कोई भेद नहीं है, अत: वहां स्थन्य स्थितियोंका प्रहण नहीं किया जाता ?

समाधान-तो यहां पर भी उसी कारणसे श्रान्यका प्रहण नहीं किया ऐसा क्यों नहीं मानते हो।

शंका-यद ऐसा है तो योगस्थानका कथन भी इसी प्रकार क्यों नहीं करते ?

ण, तत्थ वि एदेणेव कमेण जोगद्वाणपरूवणाए कयत्तादो । जिंद एवं तो एगजीवपदे-मुक्कस्सजोगाविभागपिंडच्छेदाणं जोगद्वाणसण्णा पावदि ति णासंकणिज्ञं, कम्मक्खंधादो कम्मपदेसाणं व जीवादो जीवपदेसाणमपुधभावेणं सन्वजीवपदेसजोगाविभागपिंडच्छे-दाणमेगजोगद्वाणतं पिंड विरोहाभावादो । कम्मक्खंथादो कम्मपदेसा पुथभूदा णित्थ ति सन्वे कम्मक्खंधाविभागपिंडच्छेदे घेतूण एगमणुभागद्वाणिंमिदि किण्ण वृच्चदे ? ण, कम्मखंधादो भेदं गच्छंताणं कारणवसण संजोगमागयाणं परमाणुणं खंधेण सह एयत्त-विरोहादो ।

§ ६०६. एदस्स विदियाणुभागद्वाणस्स पदेसरचणा पुन्वं व कायन्वा। किंतु चिराणसंतकम्मस्स पदेसविण्णासो वद्दमाणबंधपदेसविण्णासेण सरिसो ण होदि, उबरिमपक्लेवफदयाणं पदमफदयआदिवग्गणाए हेद्दिमवग्गणपदेसेहिंतो असंखेज्जगुण-हीणपदेसत्तादो। अथवा सन्वत्थ गोवुच्छायारेणेव पदेसा चेद्वंति, उक्किष्ट्वपदेसाणं तत्थ सुण्णद्वाणे बज्भमाणपदेसेहि सह समयाविरोहेण विण्णासं करिय अवसेसपदेसाणं सन्वत्थ गोवुच्छायारेण विष्णासविहाणादो।

९६२०. एवं विदियद्वाणपरूवणं काऊण संपहि तदियद्वाणपरूवणा कीरदे।

समाधान-नहीं, क्योंकि वहां भी इसी क्रमसे योगस्थानका कथन किया है।

शंका—यदि ऐसा है तो एक जीवके एक प्रदेशमें होनेवाले उत्क्रष्ट योगके अविभागप्रति-च्छेदोंकी भी योगस्थान संज्ञा प्राप्त होती है।

समाधान-ऐसी आशङ्का नहीं करती चाहिए, क्योंकि जैसे कर्मस्कन्धसे कर्मपरमागु भिन्न हैं, वैसे जीवसे जीवकं प्रदेश भिन्न नहीं हैं, श्रतः जीवके सब प्रदेशोंमे होनेवाले योगके श्रविभागप्रतिच्छेदोंका एक योगस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका -कर्मस्कन्धसे कर्मप्रदेश भिन्न नहीं हैं, अतः कर्मस्कन्धके सब अविभागप्रतिच्छेदोंका एक अनुभागस्थान होता है ऐसा क्यों नहीं कहते ?

समाधान-नहीं, क्योंकि कर्मप्रदेश कर्मस्कन्धसे भिन्न हैं किन्तु निमित्तके वरासे संयोगको प्राप्त हो गये हैं, अतः उनका स्कन्धके साथ अभेद नहीं हो सकता।

§ ६०६. इस द्वितीय अनुभागस्थानकी प्रदेश रचना भी पहलेके समान करनी चाहिए, किन्तु जिस क्रमसे वर्तमानमें बंधनेवाले प्रदेशोंकी रचना होती है पहलेके सत्तामें स्थित प्रदेशोंकी रचना उस क्रमसे नहीं होती, क्योंकि उपरके प्रतेप स्पर्धकोंके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें अधस्तन वर्गणाके प्रदेशोंसे असंख्यातगुणे हीन प्रदेश पाये जाते हैं। अथवा सर्वत्र गोपुच्छके आकारसे ही प्रदेश स्थित रहते हैं, क्योंकि उत्कर्षणको प्राप्त हुए प्रदेशोंकी शून्य स्थानमें बंधनेवाले प्रदेशोंके साथ यथाविध रचना करके बाकीके प्रदेशोंकी सर्वत्र गोपुच्छक्ष्पसे ही स्थापना होनेका विधान है।

§ ६१०. इस प्रकार द्वितीय श्रानुभागस्थानका कथन करके श्रव तीसरे श्रानुभागस्थानका

१ ता० भा० प्रस्योः जीवदेसायां पुधमावेशा इति पाटः।

तं जहा—सन्वजीवेहि विदियद्वाणे भागे हिदे जं लद्धं तम्मि तं चेव पिटरासिय पित्रस्व तिद्यमणुभागद्वाणं होदि । पुन्विन्लद्वाणंतरादो एदं दाणंतरमणंतभागन्भिह्यं, जहण्णद्वाणादो अणंतभागन्भिह्यविदियद्वाणं सन्वजीवेहि खंडिदूण तत्थेगखंडस्स विद्विद्वादो । पुन्विन्लपक्खेवफद्दयंतरादो संपिह्यद्वाणपक्खेवफद्दयंतरं अणंतभागन्भिह्यं, एत्थतणफद्दयसलागाहि विह्ञजमाणरासिस्स पुन्विन्लविद्वज्जमाणरासि पेक्खियुण अणंतभागन्भिह्यतादो । पुन्विन्लपक्खेवफद्दयसलागाहितो संपिह्यपक्खेवफद्दयसलागा सिरसा, एकाए वि फद्दयसलागाए विद्विद्वाए फद्दयंतरस्स पुन्विन्लपक्खेवफद्दयंतरादो अणंतभागहीणचप्यसंगादो । सेसं पुन्वं व वच्चं । एवं तिद्वयद्वाणपक्ष्वणा गदा ।

६११. संपिह चउत्थहाणुप्पत्तं भिणस्सामो । तं जहा—तिदयहाणादो दो-पक्लेवेसु एगिपसुलेसु च अविणदे [सु] अविणदसेसं जहण्णहाणं होदि । पुणो सञ्ब-जीवरासिणा जहण्णहाणे सिपसुलदोपक्लेवेसु च ओविहिदेसु जं छद्धं तं घेत्तूण तिदयहाणं पिडरासिय तत्थ पिक्लिते चउत्थहाणसुप्पज्जदि । एत्थतणहाणंतरं विदिय-तिदयहाणंतरादो अणंतभागव्भिहयं, विहज्जमाणरासिस्स पुव्विन्लविहज्जमाणरासी पेक्लिट्ग अणंतभागव्भिहयत्तादो । पुव्विन्लयक्लेवफह्यंतरादो एन्थतणपक्लेवफह्यंतरं

कथन करते हैं। वह इस प्रकार है - दूसरे अनुभागस्थानमें सब जीवराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आंत्र उसे उसीको प्रतिराशि करके उसमें मिला देने पर तीसरा अनुभागस्थान होता है। पहलेक अनुभाग स्थानान्तरसे यह अनुभागस्थानान्तर अनन्तवा भाग अधिक है, क्योंकि जघन्य अनुभागस्थानसे अनन्तवों भागप्रमाण अधिक द्वितीय अनुभागस्थानके सर्व जीवराशिप्रमाण खण्ड करके उनमें से एक खण्डकी इसमें बृद्धि हुई है तथा पहलेके प्रचेप स्पर्धककान्तरसे साम्प्रनित स्थानका प्रचेपस्पर्धकान्तर अनन्तवां भाग अधिक है, क्योंकि पहले जिस राशिमें भाग दिया गया था उस राशिकी अपेन्ना यहाँकी शलाकाओं भाजितकी जानेवाली राशि अनन्तवां भाग अधिक है। तथा पहलेके प्रचेप स्पर्धककी शलाकाओं वर्तमान प्रचेप स्पर्धककी शलाका समान हैं, क्योंकि यदि उससे इसमे एक भी शलाका अधिक मानी जायगी तो पहलेके प्रचेप स्पर्धकान्तरसे वर्तमान स्पर्धकान्तरके अनन्तभाग हीन होनेका प्रसंग शाप्त होगा। शेष बातें पहलेकी तरह कहनी चाहिए। इस प्रकार तीसरे अनुभागस्थानक। कथन समाप्त हुआ।

इ ६११. श्रव चौथे श्रनुभागस्थानकी उत्पत्तिको कहते हैं। वह इस प्रकार है—तीसरे श्रनुभागस्थानमेसे दो प्रचेप श्रीर एक पिशुलके घटाने पर जो शेप रहता है वह जघन्य स्थान होता है। पुनः सब जीवराशिका जघन्य स्थानमें श्रीर पिशुल सहित दो प्रचेपोंमें भाग देनेपर जो लब्ध श्राव उसे लेकर तीसरे श्रनुभागस्थानको प्रतिराशि करके उसमें जोड़ देनेपर चौथा श्रनुभागस्थान उत्पन्न होता है। इस श्रनुभागस्थानका श्रन्तर दूसरे श्रीर तीसरे श्रनुभागस्थानके श्रन्तरसे श्रनन्तवाँ भाग श्रीधक है, क्योंकि यहां पर जिस राशिमे भाग दिया गया है वह राशि पहलेकी विभज्यमान राशिसे श्रनन्तवों भागप्रमाण श्रीधक है। पहलेके प्रचेप स्पर्धकके श्रन्तरसे इस श्रनुभागस्थानके प्रचेप स्पर्धकके श्रन्तरसे इस श्रनुभागस्थानके प्रचेप स्पर्धकका श्रन्तर श्रनन्तवें भागप्रमाण श्रीधक है। तथा इस स्थानकी

रै ता॰ प्रती एवं (दं) आ॰ प्रती एवं इति पाठः। २. ता॰ प्रती जहरणाट्टाणेसु पिसुस्रदो-पक्खेवेसु इति पाठः।

अणंतभागब्भिहयं, पुन्विद्धपवस्तेव फह्यसलागाओ पेक्सिट्ण एत्थतणपवस्तेव फह्य-सलागाओ सिरसाओ, फह्यंतराणं विसंसाहिय त्तण्ण हाणुववत्तीदो । एवं णेद्व्वं जाव अणंतभागविष्ट्टाणं कंडयस्स चरिमहाणे ति । एदाणि अणुभागहाणाणि वंधेण विणा उक्कडुणाए ण उप्पर्जाति, वंधे अणुभागसंतसमाणे तत्तो उत्ते वा संते उक्कड्डिदफह्याणं संतफद्द एहिंतो अणंतभागव्यहियाणमणुवलंभादो । वंधादो उक्कडुणादो च अणुभागहाणे णिप्पण्णे संते वंधादो चेव णिष्यण्णमिदि किमद्वं वुच्चदे १ ण, उक्कडुणाए बंधायत्ताए वंधसक्त्वाए वंधे चेव अंतव्यावादो ।

श्रचेप स्पर्धक शलाकाएँ पहलेके श्रचेपस्पर्धक शलाकात्रोकं बराबर है। यदि शलाकाएँ समान न होती तो पहलेके श्रचेप स्पर्धकान्तरसे इस स्थानका श्रचेप न्पर्धकान्तर द्यानन्तवें भाग भाग श्रधिक न हाता। इस प्रकार काण्डकप्रमाण द्यानका ग्राचिक स्थानोके द्यान्तिम स्थान पर्यन्त स्थान की उत्पत्तिका यह कम ले जाना चाहिए। ये ध्यनुभागस्थान बंधके बिना उत्कर्षणके द्वारा नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि सत्तामे विद्यमान द्यनुभागके समान अथवा उससे कम बंबके होनेपर उत्कर्षित स्थाक सत्तामे विद्यमान स्थिको स्थानको सामाग्र अधिक नहीं पाये जाते हैं।

शंका—श्रनुभागम्थानके बन्धसे और उत्कर्पणसे निष्पन्न होने पर वह बन्धसे ही निष्पन्न हुआ है ऐसा क्यों कहा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कर्षण बंधके अधीन है और वंध स्वरूप है, अत: उसका बंधमें ही अन्तर्भाव होता है।

विशेषार्थ-पहले जिस प्रकार जघन्य म्यानकी प्रदेश रचना कही है उसी प्रकार दूसरे श्रनुभागस्थानकी भी प्रदेशरचना सममनी बाहिये। किन्तु इतना विशेष है कि सत्तामे स्थित कर्मपरमासुत्र्योंको छोड़ कर नवीन बन्धका प्राप्त हुए परमास्त्रश्चोकी प्रदेश रचना, जिन परमाणुर्ख्यों मे ऋनुभाग बढ़ाया गया है उन परमागुर्ख्याके साथ कहनी चाहिये। किन्तु सत्ता मे स्थित कर्मपरमागुत्र्यांकी प्रदेशरथना नहीं होती, क्योंकि बन्धकालमें जिस क्रमसे उनकी रचना होती है, उत्कर्पण श्रीर श्रपकर्पणके होनेसे उस क्रमसे व श्रवस्थित नहीं रह पाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अन्धको प्राप्त हुए निक्कोंकी प्रदेशर बना तत्काल हो जाती है और वह गांपुच्छाकार रूपसे हाता है, अर्थात् जैसे गायकी पृंद्ध क्रमसं घटती हुई हानी है वैसे ही निषेकोंकी रचना भी एक एक जय घटते कमसे होती है। किन्तु यह रचना बराबर ऐसी ही नहीं बनी रहती, श्रागे जब उन निपंकोम अनुभाग घटता या बढ़ता है तो रचित निपंकोके क्रममे व्यतिक्रम हो जाता है, अत: वन्धकालम पहलेसे सत्ताम स्थित परमासुओंकी निपंकरचनाका निषेध किया है श्रौर दोनोमे अन्तर बतलाया है। श्रब इस दूसर श्रनुभागस्थानकं नवकवन्यकी प्रदेशरचनाको कहते हैं—समयप्रबद्धमे जघन्य अनुभागस्थानस स्रधिक अनुभागवाले जितने परमाग्रु हो उनको पृथक स्थापित करे। और जघन्य स्थानकं समान अनुभागवाले शेष सब परमार्गु श्रोको लेकर उनकी रचना करो । रचना करने पर वे सब परमारा जघन्य श्रनुभाग-स्थानको जघन्य वर्गणासे लेकर उसीकी उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त स्थित हो जाते है। उसके बाद अधिक अनुभागवाले परमाणुश्रोकां लां, उनका प्रमाण अनन्त है उनमसे जघन्य प्रचेष स्पर्धक प्रमाण परमाणश्रोको लंकर जघन्य स्थानके श्रान्तिम स्पर्धककं उत्पर उनकी स्थापना करो । ऐसा करनेसे प्रथम असेप स्पर्धक उस्पन्न होता है। पुनः उनमेंसे द्वितीय स्पर्धकप्रमाण परमाणुत्र्योंको प्रथम प्रचेष स्पर्धकके ऊपर अन्तराल देकर स्थापित करनेसे द्वितीय स्पर्धक उत्पन्न होता है। इस

प्रकार पुन: पुन: परमाण् अंको लेकर तब तक स्पर्धक रचना करनी चाहिये जब तक पृथक् स्थापित किये गये परमाणुँ समाप्त हों। इस प्रकार दूसरे अनुभागम्थानकी स्पर्धक रचना जाननी चाहिये। यह अतन्तमाग्विद्वयुक्त प्रथम स्थान है, अर्थान् जघन्य अनुभागस्थानका सर्व जीव राशिसे भाजित करके जो लब्ध आये उतना अधिक है। इस दूसरे अनुभागस्थानका सर्व जीव राशिसे माजित करके जो लुट्ध आयं उसे दूसरे अनुभागस्थानमें जोड़ देनेसे तीसरा अनुभाग-स्थान होता है। जैसे अकसंदृष्टिसे दूसरे अनुसागस्थानका प्रमाण ५८९० आया था उसमे जीवराशिके कल्पित प्रमाण ४ से भाग देकर लब्ध २०४८ को जोड़ देनेसे तं सरे अनुभाग-स्थानका प्रमाण १०२४०० ध्याता है, यह व्यनन्तमागुद्धि युक्त दूसरा स्थान है। पहलेके स्थानके श्रन्तरसे इस स्थानका अन्तर अनन्तवें भागप्रशास अधिक है। अर्थान पहले हे स्थानका अन्तर ८१६२० - ६५५३६ = १६३८४ है और इस स्थानका अन्तर १०२४०० - ८१६२० = २०४८० है। श्रत: पहलेके स्थानके श्रान्तरसे यदि श्रानन्तका प्रमाण ४ कल्पना किया जाय तो इस स्थानका अन्तर अनुन्तवें भागप्रमाण अधिक होता है। तथा दूसरे अनुभागस्थानके प्रचेष स्पर्धकके अन्तरसे इस तीसरे अनुभागस्थानके प्रदोप स्पर्धकका अन्तर भी अनन्तवें मागप्रमाण अधिक है. क्योंकि पहलेकी विभज्यमान राशिसे इस स्थानकी विभज्यमान राहि। अनन्तवं भागप्रमाण अधिक है। अर्थात् दुसरं अनुभागस्थानकी विभक्त की जानेवाली राशिका प्रमाण अकसंदृष्टिसं ८१६२० है श्रीर इसे तीसरे स्थानकी विभक्त की जानेवाली राशिका प्रमाण १०२४०० है, अतः उससे इसका प्रमाण अनन्तर्वे भागवमाण अधिक है। तथा प्रचेष सर्घक राजाकाएँ दोनो स्थानोकी बराबर वराबर हैं, वर्योक सनी अनन्तनागर्द्ध युक्त स्थानेंकी प्रचेत स्वर्धक रालाकाएँ परस्परमे समान हैं। श्रसंख्यानभागवृद्धि युक्त न्थानोकी प्रचेप स्पर्धक शलाकाएं परस्परमें समान हैं। संख्यातभागवृद्धि युक्त स्थानोंकी प्रदोन स्पर्धक शलाकाएँ भी परस्परमे समान हैं। इसी प्रकार संख्यानगुणवृद्धि. असंख्यातगुण्यद्धि श्रौर अनन्तगुणवृद्धिकी प्रचेप स्पर्धक शलाकाएँ भी परस्परसे समान जाननी चाहिए। यदि स्पर्धक शलाकात्र्योको परस्परमे समान न माना जायगा तो श्रनन्तर्वे भागप्रभाग श्रधिकषना नहीं बन सकेगा । इसका खुजासा इस अकार है - रूपाधिक सर्व जीवराशिसं श्रपने श्रनन्तरवर्ती नीचेके श्रनन्तमाग्राद्धि युक्त स्थानम भाग देनेपर स्थानका अन्तर आता है। उस अन्तरको स्वर्धक शलाकास्रोसे भाजित करने पर स्वर्धकान्तर आता है। इसी प्रकार इस स्थानमें समस्त जीवराशिसे भाग देने र अपरके स्थानका अन्तर ब्राता है। इस स्थानान्तरमे ऊपरकी स्पर्धक शलाकात्र्यासे भाग देने । उपरका स्पर्धकान्तर त्र्याता है। जैसे तीसरे स्थानके अनन्तरवर्ती नीचेके दूसरे स्थानका प्रमाण अंकसंदृष्टिसे ८१६२० है। उसमे एक श्राधिक जीवराशिक कल्पित ब्रमाण ४+१=५ का भाग देने रर १६३८४ श्राता है। यह नीचेका स्थानान्तर है। अर्थान् जघन्य अनुभागस्थान ६५५३६ में और दूसरे अनुभागस्थान ८५८२० में १६३८४ का अन्तर है। इस अन्तरमे कल्पित स्पर्धक शलाका ४ का भाग देनेवर ४.९६ स्पर्धकान्तर त्र्याता है । तथा उसी दूसरे स्थान ८१९२० में सर्व जीवराशि ४ का भाग देनेसे २०४८० ऊपरके स्थानान्तरका बमारा श्राता है। श्रर्थान् तीसरे श्रनुभागस्थान १०२४०० श्रीर दूसरे श्रनुभाग-स्थान ८१६२० में २०४८० का अन्तर है। इसी २०४८० में स्पर्धक शलाका ४ का भाग देनेसे ५१२० जनरकं स्वर्धकान्तरका प्रमाण त्याता है। यह स्वर्धकान्तर पहलेकं स्वर्धकान्तर ४०९६ से अनन्तर्वे भागप्रमाण अधिक है, क्योंकि ४८९६ में अनन्तर्के किएनत प्रमाण ४ का भाग देनेसे १८२४ लब्ध त्राता है। इस लब्धकां ४ ९६+१०२४ जोड़नेसे ५१२० स्पर्धकान्तरका प्रमाग् होता है। श्रब पहलेकी स्पर्धक शलाकासे ऊपरके स्थानकी स्पर्धक शलाकाएँ यदि एक श्रधिक हो तो भी यतः पहलेके भागहारसे ऊपरके स्थानके स्पर्धकान्तरका भागहार अनन्तवें भागप्रमागा अधिक है

इ ६१२. पुगो अंगुलस्स असंखे०भागमेत्तकंडयपमाणेसु अणंतभागविद्वृहाणेसु जं चिरममणंतभागविद्वृहाणं तिम्म असंखेज्जलोगेहि भागे हिदे जं छद्धं तिम्ह तत्थेव पिक्तते पढममसंखेज्जभागविद्वृहाणसुष्पज्जिद् । एदस्स हाणंतरं हेहिमअणंतभागविद्वृहाणंतरादो अणंतगुणं । को गुणगारो ? सन्वजीवाणमसंखे०भागो । तेसिं को पिड-भागो ? असंखेज्जा छोगा । हेहिमफद्दयंतरादो एत्थतणफद्दयंतरमणंतगुणं । गुणगारो जाणिय वत्तव्तो । हेहिमहाणाणं पक्खेवफद्दयसलागेहिंतो एदस्स पक्खेवफद्दयसलागाओ असंखे०भागेण अन्भहियाओ । एदं कुदो णव्वदे ? असंखेज्जभागव्भहियहाणाणं

त्रत: नीचेके स्पर्धकान्तरसे ऊपरका स्पर्धकान्तर श्रनन्तवें भागप्रमाण हीन होगा। किन्तु ऐसा नहीं है श्रतः सब प्रचेताकी स्वर्धक रालाकाएँ सजाति प्रचेताकी स्वर्धक रालाकात्रोंके समान ही हाती हैं। इस तीसरे श्रनुभागस्थानको समस्त जीवराशिसे भाग देनेपर जो लब्ब त्राव उसे उसीमें जोड़ देनेसे चौथा अनुभागस्थान होता है। जैसे तीसरे अनुभागस्थानका प्रमाण अंकसंदृष्टिसे १०२४०० है। इसमें जीवराशिके कल्पित प्रमाण ४ का भाग देनेसे लब्ध २५६०० स्त्राता है। इसे उसमें जोड़ देनेसे १०२४०० +२५६०० = १२८००० चौथे स्थानका प्रमाण होता है। यह चौथा अनुभाग-स्थान अपने पूर्ववर्ती तीसरे अनुमागस्थानसे अनन्तवे भागप्रमाण अधिक है। उतना ही दानों स्थानोंमें अन्तर है। इस अन्तरमें स्वर्धक शलाकाओंसे भाग देनेपर स्पर्धकान्तर होता है। यह स्पर्धकान्तर भी पहलके स्पर्धकान्तरसे अनन्तवे भागप्रमाण अधिक है, क्योंकि दोनो स्थानोकी स्पर्धक शलाकाएँ समान हैं। इस चौथे श्रनुभागस्थानमं सर्व जीवराशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आयं उसे उसीमें जोड़ देनेसे पांचवाँ अनुभागस्थान होता है। यहां पर भी स्थानान्तर और स्पर्धकान्तरका क्रम पहलेकी तरह समभ लेना चाहिये। इस प्रकार जघःय अनुभागस्थानंक ऊपर काण्डकप्रमाण अनन्तभागाः द्विस्थान होते हैं। ये स्थान बंधसे ब्ल्पन्न होते हैं, उत्कर्पणसे नहीं उत्पन्न होते, ् क्योंकि जब ऋनुभागबन्ध सत्तामे स्थित ऋनुभागसे कम होता है या उसके समान होता है तब उत्कर्पणको प्राप्त हुए स्पर्धकोंका ऋनुभाग सत्तामे स्थित स्पर्धकोंके ऋनुभागसे ऋनन्तवें भागप्रमाण श्रधिक नहीं हो सकता। यद्यपि बन्धके समय उन्कर्पण भी होता है, इसलिए अनुभागस्थानोकी उत्पत्ति बन्ध श्रीर उत्कर्षण दोनोसे कही जा सकती है परन्तु इन्हें बन्धस्थान ही कहा जाता है, क्योंकि उत्कर्षण बन्यके ऋधीन है, बन्धके विना उन्कर्षण नहीं होता इसलिये उसका बन्धमें ही ऋन्तर्भाव कर लिया है।

§ ६१२. पुतः त्रांगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण स्थानोंके समुदायको एक काण्डक कहते हैं। श्रतः त्रांगुलके असंख्यातवें भाग काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थानोम जो अन्तिम अनन्तभागवृद्धि स्थान है उसमे असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध आवं उसे उसी स्थानम जोड़ देने पर पहला असंख्यातभागवृद्धि स्थान उत्पन्न होता है। इस स्थानका अन्तर नीचेके अनन्तभागवृद्धि स्थानके अन्तरसे अनन्तगुणा है। गुणकार क्या है? यहां गुणकारका प्रमाण सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है। उसका प्रतिभाग क्या है? प्रतिभाग असंख्यात लोकप्रमाण है। तथा नीचेके स्पर्धकान्तरसे इस स्थानकास्प र्धकान्तर अनन्तगुणा है? गुणकारका प्रमाण जानकर कहना चाहिये। नीचेके स्थानोंके प्रतेप स्पर्धकोंकी शलाकाओंसे इस स्थानकी प्रत्तेप स्पर्धक शलाकाएँ असंख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं।

१ ता॰ प्रती पढम (मा) संखेज- श्रा॰ प्रती पढमसंखेज- इति पाठः।

पक्लेवफहयसलागाओ हेिंडमहाणपक्लेवफहयसलागाहितो असंखे॰भागङ्भहियाओ । संखे॰भागबिट्टाणपक्लेवस्स फहयसलागाओ हेिंडमहाणपक्लेवफहयसलागाहितो संखे॰भागबिट्टाणपक्लेवफहयसलागाहितो संखे॰भागब्भिहियाओ । संखेज्जगुणबिट्टाणपक्लेवफहयसलागाओ संखेज्जगुणाओ । असंखेज्जगुणबिट्टाणपक्लेवफहयसलागाओ असंखेज्जगुणाओ । अणंतगुणबिट्टाण पक्लेवफहयसलागाओ अणंतगुणाओ ति सुत्ताविरुद्धवक्लाणादो णव्वदे । जिद्द एवं तो हेिंडमअणंतभागबिट्टाणाणं कंडयमेत्राणं पक्लेवफहयसलागाओ अण्णोण्णं पेक्लिय्यूण अणंतभागबिट्टाओ किण्ण जादाओ ? ण, तत्थ पच्चवलेण बहुत्तुवलंभादो ।

६१३. असंखेजजभागविष्ट्रहाणं सव्वजीवरासिणा खंडिय तत्थ एगखंडं घेतूण पिडरासीकयअसंखेजजभागविष्ट्रहाणे पिक्खित तदुविरमञ्जणंतभागविष्ट्रहाणं होदि । हेहिमअसंखेजजभागविष्ट्रहाणंतरादो एदं हाणंतरमणंतग्रणहीणं। तत्थतणफद्दयंतरादो वि एत्थतणफद्दयंतरमणंतग्रणहीणं; तत्थतणपक्खेवफद्दयसलागािहंतो एत्थतणपक्खेवफद्दय-सलागाओ विसेसहीणाओ। एत्थ कारणं जािणय वत्तव्वं। पुर्णो असंखे०भागविष्ट्रहािणादो उविरमञ्जणंतभागविष्ट्रहाणं सव्वजीवेहि खंडिय तत्थ लद्धेगखंडे तत्थेव पिक्खिते अर्णामणंतभागविष्ट्रहािणामुण्यज्वित्। एवं णेदव्वं जाव कंडयमेत्ताणमणंत-

शंका-यह कैसे जाना ?

समाधान—असंख्यातभागवृद्धिकृष स्थानोकी प्रचेपस्पर्धक शलाकाएँ नीचेके स्थानोंकी प्रचेप स्पर्धक शलाकाओं असंख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं। संख्यातभागवृद्धिको लिये हुए स्थानोकी प्रचेप स्पर्धक शलाकाओं से संख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं। संख्यातगुणवृद्धि स्थानोकी प्रचेप स्पर्धक शलाकाओं से संख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं। संख्यातगुणवृद्धि स्थानोकी प्रचेप स्पर्धक शलाकाएँ सख्यातगुणि हैं। असंख्यातगुणवृद्धि स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ असंख्यातगुणवृद्धि स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ अनन्तगुणवृद्धि स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ अनन्तगुणवृद्धि स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ अनन्तगुणि हैं। इस सूत्रसे अविकद्ध व्याख्यानसे जाना।

द्यांका--यदि ऐसा है तो नीचेके काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ परस्परमे एक दूसरेकी अपेदाा अनन्तवें भागप्रमाण अधिक क्यो नहीं हुई ?

समाधान-नहीं, क्योंकि उनमें प्रत्यच्चसं बहुत्व पाया जाता है।

§ ६१३. श्रसंख्यातभागवृद्धि स्थानको सब जीवराशिसे खण्डित करके उनमेसे एक खण्ड लेकर उसे प्रतिराशीकृत श्रसंख्यातभागवृद्धि स्थानमं जांड़ देनेपर श्रसंख्यातभागवृद्धि स्थानसं श्रागेका श्रनन्तभागवृद्धि स्थान होता है। नीचेके श्रसख्यातभागवृद्धि स्थानके श्रन्तरसे इस स्थानके श्रन्तरसे इस स्थानके स्पर्धकके श्रन्तरसे इस स्थानके स्पर्धकका श्रन्तर श्रनन्तगुणा हीन है। उस स्थानके प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाश्रोसे इस स्थानकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाश्रोसे इस स्थानकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाश्रोसे इस स्थानकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ विशेष हीन है। यहां कारण जानकर कहना चाहिये। पुनः श्रसंख्यातभागवृद्धिस्थानसे ऊपरके श्रनन्तभागवृद्धिस्थानके सब जीवराशि प्रमाण खण्ड करके उनमेसे एक खण्ड लेकर उसे उसी श्रनन्तभागवृद्धिस्थानमें जोड़ देनेपर दूसरा श्रनन्त-

१. ता० प्रती स्रसंखेजगुवाहीवाश्रो इति पाठः ।

भागविड्डिंडाणाणं चरिमअर्णातभागविड्डिंडाणे त्ति । एत्थ डाणंतर-फद्दयंतर-पवस्तेव-फद्दयसलागाणं संखाणं परूवणा जहा पढमअणंतभागविड्डिंडाणकंडए कदा तहा कायव्वा, अविसेसादो ।

६१४. पुणो कंडयस्स चरिममणंतभागविद्वृद्वाणमसंग्वेज्ञलोगेहि खंडिय तत्थेग-खंडे तत्थेव पित्रखते विद्यमसंखेज्जभागविद्विद्वाणमुष्पज्जदि । एत्थ पक्लेवफद्दयसलाग-पमाणस्स द्वाणंतर-फद्द्यंतराणं पमाणस्स य परूवणा पुट्वं व कायव्वा । एवं णेद्व्वं जाव कंडयमेत्ताणमसंखेज्जभागविद्वीणं चित्मअसंखेज्जभागविद्विद्वाणं ति । तदुविर पुट्वं व अणंतभागविद्विद्वाणाणं कंडयं गंतूण संखेज्जभागविद्विद्वाणं होदि । एदस्स द्वाणंतर-मणंतभागविद्विद्वाणंतरेहितो अणंतगुणं हेद्विमअसंखेज्जभागविद्विद्वाणंतरेहितो असंखेज्जगुणं। संखेज्जभागविद्विद्वाणपक्षेवफद्दयसलागात्रो हेद्विमअणंतभागविद्व-असंखे०भागविद्विद्वाणाणं पक्षेवकफद्दयसलागाहितो संखे०भागवभिद्याञ्चो । जहा द्वाणंतराणि तहा फद्द्यंतराणि वि वत्तव्वाणि । एवं कंडयवभिद्दयकंडयवग्गमेताणि अणंतभागविद्विद्वाणाणि कंडयमेत्त-श्रसंखेज्जभागविद्विद्वाणाणि च जविर गंतूण विदियं संखेज्जभागविद्वाणां होदि । एव-मेदेण कमेण कंडयमेताणि संखेज्जभागविद्विद्वाणाणि उप्पाएदव्वाणि । तत्तो उविर एगं

भागवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह क्रम काण्डकप्रमाण श्रन-तभागवृद्धि स्थानोंमे श्रान्तिम श्रमन्तमागवृद्धिस्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिये। श्रार्थात उत्पन्न हुए अनन्त-भागवृद्धिस्थानके जीवराशिष्रमाण खण्ड करके उनमसे एक खण्डको लेकर से उसी स्थानमे जोड़ देनेसे आगेका स्थान उत्पन्न होता है आदि। यहाँ पर भी नीचेके स्थानसे अपरके स्थानका अन्तर, नीचेके स्पर्धकसे अपरके स्थानका श्रन्तर, नीचेके स्पर्धकसे अपरके स्पर्धकका श्रन्तर और उसकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाश्रोकी संख्याका कथन जैसा प्रथम श्रनन्तभागवृद्धिस्थान काण्डक्से किया है वैसा ही करना चाहिये, दोनोके कथनमें कोई श्रन्तर नहीं है।

६ ६१४. पुनः काण्डकके अन्तिम अनन्तभागृद्धि स्थानके असंख्यात लोक प्रमाण खण्ड करके उनमेसे एक ज्वण्ड लेकर असे उसी स्थानमे जाउँ देनोर दूसरा असंख्यातभागृद्धि स्थान उत्पन्न होता है। यहाँ पर भी प्रक्षेप रार्धक रालाकाओं के प्रमाणका तथा नीचेके स्थानसे इस स्थानके अन्तरके अमाणका कथन पहलेकी तरह कर लेना पाहिये। इस प्रकार इस कमको काण्डकप्रमाण असख्यातभाग वृद्धिस्थानोंके अन्तिम असंख्यातभागवृद्धि स्थान पर्यन्त ले जाना चाहिये। अन्तिम असंख्यातभागवृद्धि स्थानके उपर पहलेकी तरह काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थानके उपर पहलेकी तरह काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थानके उपर पहलेकी तरह काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थानके अन्तरसे असख्यातभागवृद्धि स्थानके असंख्यातभागवृद्धि स्थानके असंख्यातभागवृद्धि स्थानके असंख्यातभागवृद्धि स्थानके अनन्तभागवृद्धि स्थानके असंख्यातभागवृद्धि स्थानकी प्रक्षेप स्पर्धक रालाकालें नीचेके अनन्तभागवृद्धि श्रीर असंख्यातभागवृद्धि स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक रालाकालें नीचेके अनन्तभागवृद्धि श्रीर असंख्यातभागवृद्धि स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक रालाकालें सख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं। जैसे स्थानोंके अन्तरका कथन किया है वैसे ही स्पर्धकांका अन्तर भी कहना चाहिये। इस प्रकार एक काण्डक और काण्डकक वर्गप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थान तथा काण्डकप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिस्थानोंके होनेपर दूसरा संख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। इस प्रकार इस क्रमसे काण्डकप्रमाण

संग्वे०भागवड्डिहाणविसयं गंत्रण पढमसंग्वेज्जग्रणवड्ढी उप्पज्जदि । एदिस्से हाणंतरं हेडिमअणंतभागवड्ढिहार्णंतर्रेहितो अर्णंतगृर्णं संखेजभागवड्ढि-असंखेजभागवड्ढिहार्णंतरे-हिंतो असंखेज्जगुर्गा । तेसि तिण्हं पवग्वेवफद्दयंतरादो एटस्स द्वाणस्स पवखेवफद्दयंतर-मर्गातगुणमसंखे ०गुर्ग च । तेसि चेव पक्खेवफदयसलागाहितो एत्थनणपक्खेवफदय-सलागाओं संखेजागुणाओं । कदो एटं णव्वदे ? आइरियाएां सुत्ताविरुद्धवयणादो । एवं समयाविरोहेण कंडयमेत्तेमु संखेजगुणवड्डिहाणेसु गरेसु पुणो संखेजगुणवड्डि-विमयं गंतूण असंखेजागुणवड़ी होटि । को एत्थ गुणगारो ? असंखेजा लोगा । हेट्टि-मार्णतभागवड्डिहाणे असंखेजेहि लोगेहि गुणिदे असंखेजगुणवड्डी होदि ति भणिदं होदि । वड्डिदाणुभागे हेहिमाणंतभागवड्डिहाणं पडिसासिय पक्लिने असंखेज्जगुरावड्डि-डाएां होदि । भागहारा इव सच्वेसु गुणगारा वड्डीएँ चेव होंति चि कदो णब्बदे ? अएांतगुरावड़ी काए परिवड़ीए परिवड़िदा ? सब्बजीवेहिं ति वेयणासत्तादो । पुन्वमव-हिद्अणुभागो वि वड़ी चेव तेण विणा संपहि वड़िद्अणुभागेणेव अण्णम्म हाणस्स्र-संख्यातभागवृद्धिस्थान उत्पन्न करने चाहिये । इससे ऊपर एक सख्यानभागवृद्धिस्थानके श्चन्तभू त स्थानोके होनेपर पहला *सस्त्यातगुग्*खृद्धिस्थान *उ*त्पन्न होता है। इसका स्थानान्तर श्रथस्तन श्रानन्तमान्त्रद्विम्थानान्तरसे व्यसन्त**ागा है श्रौर संख्यानभाव** द्वि तथा असंख्यातभाग-वृद्धिस्थानोके त्रान्तरसे त्रासम्ब्यातगुणा है। उक्त तीनी स्थानोके प्रदेप स्पर्धकोके ब्रान्तरसे इस स्थानके प्रचेष स्पर्धकका अन्तर अनन्तगुणा और असख्यातगुणा है। उन तीनो स्थानोकी प्रचेष स्पर्धक शलाकात्र्योसे इस स्थानकी अञ्चेष स्वर्धक शलाकाएँ संख्यातगुर्गी हैं।

शंका-यह किम प्रमाण्से जाना ?

समाधान-त्र्याचार्योकं सुत्रसे ऋतिरुद्ध वचनासे जाना।

इस प्रकार आगमके अविरुद्ध काण्डकप्रमाण् संख्यातगुण्यद्विस्थानोके बीतने पर पुन: एक संख्यातगुण्युद्विस्थानके अन्तर्भू न स्थानोका विताकर असंख्यातगुण्यादिस्थान होता है।

शंका—इस असंख्यातगुण्युद्धिस्थानमे गुणकारका प्रमाण् क्या है °

समाधान-असंख्यान लोक। आशय यह है कि इस स्थानके नीचेके अनन्तमागवृद्धि-स्थानको असंख्यान लोकमे गुणा करने पर असंख्यानगुणवृद्धि होती है।

श्रधम्तन श्रनन्तभागरृद्धिम्थानको प्रतिराशि करके समें बढ़े हुए श्रनुभागके जोड़ देनेसे श्रसंख्यातगुण्यद्विम्थान होता है।

रांका—सब स्थानोमे भागहारोके समान गुणकार बृद्धिके श्रनुसार ही होते हैं यह कैसे जाना ?

समाधान—अनन्तगुण्युद्धि किम युद्धिसे युद्धिको प्राप्त हुई है १ सर्व जीवराशिरूप गुण् वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुई है इस वेदनाखण्डक सुत्रसे जाना ।

शंका—पहलेका अवस्थित अनुभाग भी वृद्धिन्वरूप ही है, क्योंकि उसके विना वर्तमानमें बढ़े हुए अनुभागसे ही अन्य स्थानकी उपित्त नहीं हो सकती ?

ता॰ म्रश प्रत्योः पढमासंचे जागुणव हुी इति पाठः । २. ता० श्रा॰ प्रत्योः गुणगार बहीए इति पाठः ।

प्पत्तीए अभावादो ति ? सच्चमेदं, किंतु ण चिराणाणुभागो एत्थ घेप्पदि, बहुणिमित्ताणुभागेण विणा विष्ठुअणुभागेण चेव एत्थ अहियारादो । तं पि कुदो णव्वदे ?
बिहुं पहुच्च भागहार-गुणगारपरूवणण्णहाणुववत्तीदो । हेहिमअणंतभागविष्ठुहाणंतरादो
असंखेज्जगुणविष्ठ्रहाणंतरमणंतगुणं सेसविष्ठ्रहाणंतरेहिंतो असंखे०गुणं । अणंतभागबिहुपक्खेवफदयंतरादो एदस्स फद्दयंतरमणंतगुणं ।

- ६ ६१५. एदमसंखेज्जगुणविहृहाणं सन्वजीवेहि खंडिय जं छद्धं तम्मि तत्थेव पिक्यते उविरममणंतभागविहृहाणं होदि । हेहिमअसंखेज्जगुणविहृहाणंतरादो एदस्स हाणंतरमणंतगुणहीणं । तस्स पक्खेवफद्दयंतरादो वि एदस्स फद्दयंतरमणंतगुणहीणं । असंखेज्जगुणविहृषि हेहिमअणंतभागविहृकंडयस्स हाणंतरादो एदं हाणंतरमसंखे०-गुणां । तत्थतणफद्दयंतरादो वि एत्थतणफद्दयंतरमसंखेज्जगुणां । एवं जाणिदृण समया-विरोहेण णेद्व्वं जाव कंडयमेत्ताणि असंखेज्जगुणविहृहाणाणि समुप्पण्णाणि त्ति ।
- § ६१६. पुणो अवरमेगमसंखेज्जगुणविद्वित्तस्यं गंतृण जं चरिममुव्वंकद्वाण-मविद्वं तिम्म रूवाहियसव्वजीवरासिणा गुणिदे पढममद्वंकद्वाणमुष्पज्जिदि । एदस्स द्वाणंतरं पुव्विल्लासेसद्वाणंतरेद्वितो अणंतगुणं । एदस्स फद्दयंतरं पि पुव्विल्लासेस-

समाधान-उक्त कथन सत्य हैं, किन्तु यहाँ पर चिरकालके अनुभागका प्रहण नहीं करते. क्योंकि यहाँ पर वृद्धिमें कारणभूत अनुभागक विना केवल वृद्धिप्राप्त अनुभागका ही अधिकार है।

शंका-यह कैसे जाना ?

समाधान-यदि वृद्धिमे कारणभूत अनुभागके विना वृद्धिप्राप्त अनुभागका ही अधिकार न होता तो वृद्धिकी अपेचा भागहार और गुणकारका कथन नहीं वन सकता था।

श्रधस्तन श्रनन्तभागवृद्धिम्थानके श्रन्तरसे श्रसंख्यातगुणवृद्धिम्थानका श्रन्तर श्रनन्त-गुणा है तथा शेष वृद्धिम्थानोके श्रन्तरसे श्रसंख्यातगुणा है। श्रनन्तभागवृद्धिके प्रक्षेप स्पर्धकके श्रन्तरसे इस स्थानके स्पर्धकका श्रन्तर श्रनन्तगुणा है।

§ ६१५. इस श्रसंख्यातगुण्वृद्धिस्थानमे सव जीवराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आवे ब्से उसी स्थानमे जोड़ देनेपर ऊपरका श्रमन्तभागवृद्धिस्थान होता है। श्रपस्तन श्रसंख्यातगुण्वृद्धिस्थानके श्रन्तरसे इस स्थानका श्रन्तर श्रमन्तगुणा हीन है। उसके प्रक्षेप स्पर्धकके श्रन्तरसे भी इस स्थानके स्पर्धकका श्रन्तर श्रमन्तगुणा हीन है। श्रसंख्यातगुण्वृद्धिके श्रथस्तन श्रमन्तभागवृद्धिकाण्डकके स्थानान्तरसे इस स्थानका श्रन्तर श्रसंख्यातगुणा है। उसके स्पर्धकान्तरसे भी इस स्थानका स्पर्धकान्तर श्रसंख्यातगुणा है। इस प्रकार काण्डकप्रमाण श्रसंख्यातगुणवृद्धिस्थानोंकी उत्पत्ति होने तक इस क्रमको जानकर श्रागमानुसार ले जाना चाहिये।

६ ६१६. इस प्रकार काण्डकप्रमाण असंख्यातगुण्युद्धिस्थानोकी उत्पत्ति होनेके पश्चात् एक श्रान्य असंख्यातगुण्युद्धिस्थानके अन्तर्भूत वृद्धियोमें जो अन्तिम श्रानन्तभागवृद्धिस्थान आता है उसे एक अधिक समस्त जीवराशिसे गुणा करने पर पहला अष्टांकम्थान उत्पन्न होता है। इस स्थानका अन्तर पहलेके सब स्थानोंके अन्तरसे अनन्तगुणा है। इसका स्पर्धकान्तर भी

फद्दयंतरादो अएांतगुणं । कारगां चितिय वत्तव्वं !

§ ६१७. पक्लेवसत्तागाओं सन्वासु वड्ढीसु अभवसिद्धिएहि ऋएांतग्रुण-सिद्धा-णंतिमभागमेत्ताओ । सगसगफदयसत्तागाहि वड्ढिदअणुभागे भागे हिदे सन्वत्थ फद्दयं-तरुष्पत्ती वत्तन्वा । एवमेगम्स वंधमसुष्पत्तियछहाणस्स जहा परूवणा कदा तहा अव-सेसअसंलेज्जलोगमेत्तछहाणाणं ऋहंकेण विणा पच्छिल्लपंचहाणाणं च परूवणा कायन्वा ।

एवमेसा वंधसमुष्पत्तियद्वाणवस्त्रवणा कदा ।

पहलेके समस्त स्पर्धकान्तरसे श्रनन्तगृगा है। इसका कारण विचार कर कहना चाहिये।

\$ ६१७, सब वृद्धियोमे प्रक्षेप शलाकाएँ श्रमन्यराशिसे श्रमन्तगुर्गा श्रीर सिद्धराशिके श्रमन्तवें भागमात्र है। बढ़े हुए श्रमुभागमे श्रपनी श्रपनी स्पर्धक शलाकाश्रोका भाग देनेपर सर्वत्र स्पर्धकान्तरकी उत्पत्ति कहनी चाहिये। इस प्रकार जिस क्रमसे एक बन्धसमुद्धित्तक पर्स्थानका कथन किया है उसी क्रमसे श्रमस्थान लोकप्रभाग् समस्त पर्म्थानोका तथा श्रष्टांकके विना पीछके पाँच स्थानोका कथन कर लेना चाहिये।

विज्ञापार्थ-जवन्य अनुभागम्थानके ऊपर जो काण्डकप्रमाण् अनन्तानुभागवृद्धिस्थान हुए थे उनमेंसे अन्तिम अनुभागबृद्धिस्थानमे असंख्यात लोकका भाग देनसे जो लुब्ध आवे उसे उसी श्रन्तिम श्रनुभागवृद्धिस्थानमे जोड्नेसे पहला श्रसख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। इस स्थानका अन्तर नीचेके स्थानके अन्तरसे अनन्तगुणा है. क्योंकि समस्त जीवराशिमे असंख्यात लोकका भाग देनेसे जो लब्ध त्राता है वही यहाँ गुएकार है। इस असंख्यातभागशद्धिरूप प्रक्षेपमे इस स्थानकी स्पर्धक शलाकात्र्योका भाग देनेपर जो लब्ध खाता है वही यहाँ स्पर्धका-न्तरका प्रमाण होता है। यह स्पर्धकान्तर नीचेकं स्थानके स्पर्धकान्तरसे अनन्तराणा है, क्योंकि नीचेके अनन्त्रभागगृद्धिस्थानकी स्पर्धक शलाकाओंसे रूपाधिक सर्व जीवराशिको गुणा करके गगानफलसे अन्तिम अनन्तभागशुद्धिस्थानमं भाग देनेसे स्पर्धकान्तर होता है। अनन्तभाग-वाद्धकी प्रत्तेप स्पर्धक शलाकात्र्यासं त्र्यसंख्यातभागवृद्धिकी प्रत्तेप स्पर्धक शलाकाएँ त्र्यसंख्यातवें भाग अधिक हैं। उससे सख्यातभागशृद्धिकी प्रचेप स्पर्धक शलाकाएँ सख्यातवे भाग अधिक है। इसी प्रकार त्रागे भी जानना चाहिए । इसी प्रकार श्रसख्यातभागर्वादकी प्रचेप स्पर्धक शलाकात्रांसे असख्यात लोकको गुणा करके गुणनफलसे अन्तिम अन्तिभागर्गद्धस्थानमे भाग देनेसे ऋसख्यातभागर्श्वहरूप प्रचेपका स्पर्धकान्तर होता है। नीचेकं स्पर्धकान्तरसं ऊपरके स्पर्धकान्तरमे भाग देनेसे जो लब्ध त्राव, नीचेसे ऊपरका स्वर्धकान्तर उतना ही गुणा होता है। इस असंख्यातभागवृद्धिस्थानसे ऊपर काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान होते हैं। उनका कथन पहलेके अनन्त्रभागगृद्धिस्थानोकी तरह जानना चाहिए। इतना विशेष है कि असख्यात-भागवृद्धिके स्पर्धकान्तरोसे अपरके त्रानन्तभागवृद्धिरूप प्रदोपोके स्थानान्तर श्रीर स्पर्धकान्तर अनन्तगुरो हीन होते हैं, तथा नीचेंक काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थानोंके स्थानान्तर और स्पर्धकान्तरोसे ऊपरके काण्डकप्रमास अनन्तभागगृद्धिस्थानांके स्थानान्तर श्रीर स्पर्धकान्तर श्रसंख्यातवें भागप्रमाण त्र्राधिक होते हैं। इसका कारण यह है कि श्रसंख्यातभागवृद्धिस्थानमे भागहारका प्रमाण जीवराशिका त्रसंख्यातवां भाग है और त्रानन्तभागर्गद्वमे भागहारका प्रमाण समस्त जीवराशि है, अतः भागहारकं प्रमाणमं अन्तर होनेसे उक्त अन्तर पड़ता है। जैसे यदि श्चन्तिम श्चनन्तानुभागवृद्धिस्थानका प्रमाण १६०००० कल्पना किया जाव तो उसमें श्चसख्यातके

\$ ६१८. एदेसि वंघटाणाणं कारणभूदकसायुद्यहाणाणं पि अवटाणकमो एरिसो चेव भागहार-गुणगारेहि ठाणसंखाए च भेदाभावादो । तेणेसा परूवणा अणुभागवंघ-जभवसाणहाणाणं पि णिरवयवा वत्तव्वा । एदाणि एवं विहासोसा परूविदवंघसमुप्पत्तिय-ढाणाणि थोवाणि ति चेत्तव्वं ।

🏶 हदसमुप्पत्तियाणि श्रसंखेज्जगुणाणि ।

६१६. एत्थ ताव हदसमुष्पत्तियद्दाणाणं सरूवपरूवणं कस्सामो । कत्तो
 एदेसि समुष्पत्ती ? विसोहिट्टाणेहिता ? काणि विसोहिट्टाणाणि ? वद्धाणुभाग-

कल्पित प्रमाण दोका भाग देनेसे ८०००० छाता है। यह स्थानान्तर नीचेके स्थानान्तरांसे कई गुणा है। तथा असम्यातभाग्राद्धिभ्यानकं कल्पिन प्रमाण १६००००। ८०००० = २४००० मे त्रागेका त्रानन्तभागवृद्धि युक्त स्थान लानेक लिये जीवराशिक कल्पित प्रमाण ४ का भाग देनेसे लच्य ६०००० त्याता है। यह स्थानान्तर नीचेकं अनन्त्रभागवृद्धिस्थानोंके अन्तरसे अधिक है। इसी प्रकार श्रागे भी जानना चाहिये। दुसरे काण्डकप्रभाग अनन्तभागर्श्वस्थानोसे ऋन्तिम स्थानमे असंख्यात लोकका काम देनेपर जो लब्ध आ . उसे सी स्थानमे जोड़ देनेसे दसरा श्रसंख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। इस प्रकार का इकप्रमाग् असख्यातभागवृद्धिस्थान होते है। काण्डकप्रमाण असंख्यातभागः द्विस्थानांगसे जो अन्तिम असंख्यातभागवद्धिम्थ न है उसके ऊपर पहलंकी तरह काण्डकप्रमाण अनन्तभाग हिन्धान होने हैं। उनमेसे अन्तिम अनन्तभाग-वृद्धिस्थानमे उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनसे जो ७ व्य आवे उसे उसीमे जोड़ देनसे पहला संख्यात-भागवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। इसके उत्पर काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान होने पर श्रसंस्थातभागगृद्धिस्थान है श्रीर काण्डकप्रमाण श्रसस्यातभागगृद्धिस्थान होनेपर दूसरा सख्यातभागः । द्विम्थान होता है । इस तरह काण्डकप्रभागः संख्यातभागः श्रिद्धानोके हो जानेपर ऊपर संख्यातभागश्चित्रधान विषयक अनन्तमानवृद्धिस्थानोमे जो अन्तिम स्थान है उसमे छक्टप्ट संख्यातका गुणा करनेसे जो लब्ध आवे उसे उसीमे जोड़ देनेसे पहला संख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। उक्त क्रमसे काण्डकप्रनाम् सल्यातगुरम्बुद्धिस्थानीके हो जाने पर, ऊपर संख्यातगुर्ग-बुद्धिविषयक अनन्तमाग_{र्री}द्धस्थानोम**से** अन्तर्के स्थानमे असस्यात लोकका गुणा कर**नेसे जो** लच्घ त्राव उसे उसी स्थानम जोड़ दंनसे पहला ऋसंख्यातगुणवृदिस्थान होता है। इसी प्रकार त्रागेका विचार कर कथन करके पट्म्थानकी उत्पत्ति कहनी चाहिए। इस प्रकार बन्धसमुत्पत्तिक स्थानकी उत्पत्तिका सांगापांग विचार किया ।

इस प्रकार यह वन्धसमुत्यक्तिकम्थानका कथन हुआ।

§ ६१८. इन बन्धस्थानोकं कारणभूत कपायकं उदयस्थानोकं भी अवस्थानक। क्रम ऐसा ही है, क्योंकि दोनोकं भागहार, गुणकार चौर स्थानसंख्यामे कोई भेद नहीं है। अत: यह पूरा कथन अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोकं विषयमे भी कहना चाहिये। इस प्रकार कहे गये ये बन्धसमुत्पत्तिक स्थान थोड़े हैं ऐसा सूत्रका अर्थ लेना चाहिये।

* उनसे हतसमुत्पत्तिक स्थान असंख्यातगुणे हैं। § ६१९ यहां अब हतसमुत्पत्तिकस्थानोके स्वरूपका कथन करते हैं। शंका—इन स्थानोकी उत्पत्त (कनसे होती है ? समाधान—विश्वद्धिस्थानोसे। संतस्स घादहेदु जीवपरिणामा । ताणि च असंखे ज्ञलोगमेत्ताणि इव्विद्दाए वट्टीए अविदि-दाणि । एदे(सं सीसपिडवोहणदं वामपासे र्यणा कायव्वा , मुहुमणिगोदअपज्ञतः जहण्णाणुभागहाणप्पहुडि जाव पज्जवमाणचिरमाणुभागवंघहाणे लि ताव एदेसि-मसंखेज्जलोगमेत्तवंधसमुष्पत्तियहाणाणमेगसे दियागारेण दाहिणपासे र्यणा कायव्वा । एवं कादृण पुणो सिस्सपिडवोहणहमणुभागवंघहाणाणं घादणक्यं भिणम्मामो । तं जहा — एगेण जीवेण सव्युक्तम्सविमोहिहाणपरिणदेण सव्युक्तम्मश्रणुभागवंघहाणे घादिदे चिरमश्रहं कादो हेहा अणंतगुणहीणं तत्तो हेहिमबंधममुष्पत्तियउव्वंकहाणादो अणंतगुणं होद्ण दोण्हं हाणाण विचाले हदसमुष्पत्तियस्णिणदमणुभागहाणमुष्पज्जदि । एदस्स हाणस्स पदेसविण्णासो जहा वंघहाणाणं पक्तवेदो तहा पक्षवेद्व्वो, पदेस-विण्णासिववज्ञासेण विणा तन्थतणअणुभागम्सेव थोवत्तविहाणादो । पुणो अण्णेण जीवेण दुचिरमविसोहिहाणपरिणदेण पज्जवसाणउव्वंके घादिदे पुच्युत्तरंकुव्वंकाणं विचाले पुच्युष्पण्णचादहाणस्मुवार अणंतभागवभिद्दां होद्ण विदियं हदसमुष्पत्तियहाणमुष्प-ज्जदि । एत्थ वट्टीण भागहारो अभविभिद्धण्हि अणंतगुणो सिद्धाणंतिमभागो । एदेण भागहारेण जहण्णहाणे भागे हिदं जं रुद्धं तिम्ह तत्थेव पविस्वते विदियमणंतभाग-विद्दाणं होदि ति भावत्थे। एत्थ सव्यजीवरासी विद्वभागहारो नि किण्ण इच्छिदो ?

शंका-विशुद्धिम्थान किन्हं कहते हैं ?

समाधान – जीवके जो परिणाम बांघे गये अनुभागसन्दर्भ के घानके कारण हैं उन्हें विश्रद्धिस्थान कहते हैं।

व विशुद्धिस्थान असंस्थान लोकप्रमाग् हैं और छह प्रकारकी बृद्धिको लिये हुए हैं। शिष्योंको सममानेके लिये इन स्थानोकी रचना वाई और करनी चाहिये और सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तकके जघन्य अनुभागम्थानसे लेकर अन्तिम अनुभाग बन्धम्थान तक इन असंख्यात लोकप्रमाग् बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोकी एक श्रेणिके त्याकारमे दाहिनी त्यार रचना करनी चाहिये। ऐसा करके पुन: शिष्योको सममानेके लिये अनुभागवन्धम्थानोके घात करनेके क्रमको कहते हैं। वह इस प्रकार है - सर्वोत्कृष्ट विद्युद्धिस्थानसे परिगान हुए एक जीवके द्वारा सर्वोत्कृष्ट अनुभागबन्धस्थानका घात किये जाने पर अन्तके अष्टांकमें अनन्तग्ए। हीन और उससे नीचेके बन्धसमुत्पत्तिक उर्वकस्थानसे अनन्तगुणा होकर दोनों स्थानोके वीचमे हतसमुत्पत्तिक नामका अनुभागस्थान उत्पन्न होता है। इस स्थानकं प्रदर्शाकी रचना जैसी वन्धस्थानोकी कही है उसी प्रकार कहनी चाहिये। क्योंकि प्रदेश रचना पलटे विना उसके अनुभागको ही कमें कर दिया है। पुनः द्विचरम विशुद्धिस्थानसे परिएत हुए किसी अन्य जीवके द्वारा अन्तिम उर्वक का घात किथे जानेपर पूर्व उर्वक और उत्तर उर्वककं बीचमे पहले उत्पन्न हुए हतसमुत्पित्तकस्थानके ऊपर अनुन्तभाग अधिक दूसरा हतसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न होता है। यहां पर हुई अनुन्तभाग वृद्धिका भागहार अभव्यराशिसे अनन्तगुरण। और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है। इस भागाहारसे जघन्य स्थानमे भाग देने पर जो लब्ध आवं उसे उसी स्थानमे जोड़ देने पर दूसरा श्यनन्तभागवृद्धि स्थान होता है, यह उक्त कथनका भावार्थ है।

ण, कसायुदयहाणाणं व विसोहिहाणविहृहाणीणमभविसिद्धिण्हि अणंतगुणं सिद्धाणंतिम भागं मोत्तृण गुणगारभागहाराणं सव्वजीवरासिपमाणत्तासंभवादो । ण च कारण-गुणगार-भागहारहितो कज्जगुणगार-भागहाराणं पुधभावसंभवो, विरोहादो । पुणो अण्णेण जीवेण तिचरिमविसोहिहाणपरिणएण चिरमुव्वंके घादिदे तिदयमणंतभागविहृहाण-मुप्पज्जिदि । पुणो अवरेण चदुचिरमिवसोहिहाणपरिणदेण पज्जवसाणुव्वंके घादिदे चउत्थमणंतभागविहीण घादहाणमुप्पज्जिदि । एवं कंडयमेत्ताणि अणतभागहीणिविसोहि-हाणाणि हेहा ओसरिय हिद्धसंखेज्जभागहीणिवसोहिहाणपरिणएण चरिमुव्वंके घादिदे घादहाणेमु कंडयमेत्त अणंतभागविहीक्षो उविर गंतूण पढममसंखेज्जभागविहृहाण-मुप्पज्जिदि । एत्थ विहृभागहारो असंखेज्जा लोगा । कुदो ? सुत्ताविरुद्धगुरुवयणादो । एवं विलोमेण हिद्दणगगिवसोहिहाणेण चरिमुव्वंके घादिदे असंखेज्जलोगमेत्ताणि हद-समुत्पत्तियहाणाणि अप्पिदअहं कुव्वंकाणं विचाले उप्पज्जित । णविर घादहाणेमु घादघादहाणेमु च सव्वजीवरासिगुणगारो भागहारो वे त्ति ण वत्तव्वं । कुदो ? घाद-हाणे सव्वजीवरासिणा गुणिदे उक्षम्सवंघहाणादो अणंतगुणघादहाणसमुप्पत्तीदो । ण च वंघहाणादो घादहाणमणंतगुणं होदि, विरोहादो । एदेसिमसंखेज्जलोगमेत्तउन्वंक-

शंका-यहां पर वृद्धिका भागाहार सर्व जीवराशि है ऐसा क्यो नहीं माना ?

समाधान—नहीं. क्योंकि कपायके उद्यम्थानोंको तरह विशुद्धिस्थानोकी वृद्धि और हानि का गुणकार और भागहार अभव्यराशिसे अनन्तराणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाणको छोड़कर सर्वराशिष्रमाण नहीं वन सकता है। अर्थात् जैसे कपायके उद्यम्थानोकी वृद्धि-हानिका गुणकार और भागहार अभव्यराशिसे अनन्तरागुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है वैसा ही विशुद्धिस्थानों भी जानना चाहिये. क्योंकि कपाय ब्द्यस्थान कारण हैं और विशुद्धि स्थान उनके कार्य हैं और कारणके गुणकार और भागहारोसे कार्यके गुणकार और भागहार जुदे नहीं हो सकते, क्योंकि ऐसा होने मित्रोध है।

पुनः त्रिचरम विशुद्धिम्थानसे परिण् हुए किसी अन्य जीवके द्वारा अन्तिम उर्वकका घात किये जाने पर तीमरा अनन्तभागदृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। पुनः चतुःचरम विशुद्धि स्थानसे परिण्त हुए अन्य जीवके द्वारा अन्तिम उर्वकका घात किये जाने पर अनन्तभागदृद्धिको लिये हुए चतुर्थ घातस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार काण्डकप्रमाण अनन्तभाग हीन विशुद्धि स्थान नीचे उत्तरकर स्थित असंख्यात भाग हीन विशुद्धिस्थानसे परिण्त हुए जीवके द्वारा अन्तिम उर्वकका घात किये जाने पर घातस्थानोंम काण्डकप्रमाण अनन्तभाग वृद्धियां उत्तर जाकर पहला असख्यातभागवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। यहां पर असंख्यातभागवृद्धिका भागहार असंख्यात लाक है, क्योंकि सूत्रके अविरुद्ध गुरुके ऐसे वचन हैं। इस प्रकार विलासक्रमसे स्थित एक एक विशुद्धिस्थानके द्वारा अन्तिम उर्वकका घात किये जानेपर विविच्त अष्टांक और उर्वकके बीचमें असंख्यात लाकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं। इतना विशेष है कि घातस्थानामें और घातघातस्थानोमे गुणकार और भागहारका प्रमाण सर्व जीवराशि है ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि घातस्थानको सर्व जीवराशिसे गुणा करने पर उत्कृष्ट बन्धस्थानसे अनन्तगुण घातस्थानकी उत्पत्ति होती है। किन्तु बन्धस्थानसे घातस्थान अनन्तगुणा नहीं होता

चत्तारि-पंच-छ-सत्त-अद्दं काणं रूव्यणद्यद्वाणसिहयाणं द्वाणंतरफद्दयंतरादीणं परूवणाए कीरमाणाए वंधद्वाणमंगो । एवं चिरमुञ्वंकमिस्सिद्ण एत्तियाणि चेव घादद्वाणाणि उप्पज्ञंति, उक्कस्सिविसोहिद्वाणपहुं जाव जहण्णविसोहिद्वाणे ति ताव सञ्वविसोहिद्वाणेले ह्वाएकि चिरमुञ्वंकं घादिय घादद्वाणाणमुष्पाइदत्तादो । पुणो उक्कस्सिवसोहिद्वाणेण दुचिरमञ्ज्वंके घादिदे हेद्वा पुञ्चित्तसम्बन्धन्वज्ञहण्णघादद्वाणादो हेद्वा अणंतभागहीणं होद्ण अण्णं घादद्वाणमुष्पज्जिद्द । एत्य द्वाणीए भागहारो रूवाहियसञ्वजीवरासी । कुदो ? एगेण पिरणामेण घादे संते वि उक्कस्मउञ्बंकादो दुचिरमञ्च्वंकस्म रूवाहियसञ्वजीवरासिणा खंदिदेगखंदपरिहाणिदंसणादो । पुणो दुचिरमित्रसोहिद्वाणेण दुचिरमञ्चलादि । को एत्य विद्वागाद्वारे अण्णं घादद्वाणमणंतभागव्यहियं होद्ण अपुणरुत्तमुष्पज्जिद् । को एत्य विद्वागाद्वारे अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागो, कारणाणुरूवक्कज्जसिद्धीए णाइयत्तादो । अणुभागवंधज्भवसाणद्वाणाणं व अणुभागविद्वस्परुपणाणुभागवाद्वस्परिणामाणं च सरिसत्तविरोहादो । एदं संपिष्ट समुष्पण्णाणुभागघाद्वाणमुवरिमपंतीए जहण्णघादद्वाणेण सरिसं ण होदि, पुव्वित्तज्ञनहण्णद्वाणाणं सञ्बर्णम्वरिमपंतीए जहण्णघादद्वाणेण सरिसं ण होदि, पुव्वित्तज्ञनहण्णद्वाणाणं सञ्चर्णामाणं स्व

है, क्योंकि ऐसा माननंम विरोध द्याता है। एक कम पटम्थान सहित इन द्यसंख्यात लोकप्रमाण उर्वंक, चतुरङ्क, पश्चाङ्क, पण्राङ्क, सप्ताङ्क द्यौर द्यष्टाङ्कोंके स्थानान्तर और स्पर्धकान्तर द्यादिका कथन करने पर उनका भङ्ग बन्धस्थानोंके समान है। इस प्रकार क्रान्तिम उर्वंकके त्याश्रयसे इतने ही घातस्थान उत्पन्न होते हैं, क्योंकि उत्पन्न विद्युद्धिस्थानसे लेकर जघन्य विद्युद्धिस्थान तक सब विद्युद्धिस्थानोंसे अन्तिम उर्वंकको चात कर चातस्थानोंकी उत्पत्ति की जाती है। पुन: उत्कृष्ट विद्युद्धिस्थानोंसे द्विचरम उर्वंकको चात करने पर नीचे पहलेके सर्व जघन्य घातस्थानसे नीचे स्थानतभाग हीन दूसरा चातस्थान उत्पन्न होता है। यहां हानिका भागहार एक द्यधिक मर्व जीवराशि है, क्योंकि एक परिणामसे घात होने पर भी उत्कृष्ट उर्वंकसे द्विचरम उर्वंकमे एक द्यधिक सर्व जीवराशिका भाग देने पर जो एक व्यण्ड लघ्ध स्थाता है। तनी हानि देखी जाती है। सारांश थह है कि स्थन्तिम उर्वंकसे द्विचरम उर्वंक उतना हीन है इसलिये इस घातस्थानकी हानिका भागहार रूपाधिक सर्व जीवराशि रखा है। पुन: द्विचरम विद्युद्धिस्थानसे द्विचरम स्रमुभागवन्यस्थानका घात करने पर स्थनन्तवां भाग स्रधिक स्रन्य स्थानकत्त घातस्थान उत्पन्न होता है।

शंका-यहां पर वृद्धिका भागहार कितना है ?

समाधान-अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवे भागप्रमाण है, क्योंकि कारणके अनुरूप कार्यकी सिद्धिका होना उचित ही है।

शंका—श्रनुभागघाताध्यवसायस्थानोंकी वृद्धिकं भागहार श्रौर गुणकार श्रनुभाग बन्धाध्यवसायस्थानोंके भागहार श्रौर गुणकारकं समान क्यो नहीं होते।

समाधान-नहीं, क्योंकि अनुभागकी वृद्धिके कारणभूत परिणामोके और अनुभागके घात के कारणभूत परिणामोंके समान होनेमें विरोध है।

यह इस समय उत्पन्न हुन्ना त्रानुभागघातस्थान ऊपरकी पंक्तिमें जघन्य घातस्थानके समान

जीवरासिणा खंडिय तन्थेगखंडेग्र्म संपहियजहण्णहाणमध्भवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतिमभागमेत्तभागहारेण खंडिय तन्थेगखंडेण अहियत्तादो । उवरिमपंतीए विदियघादहाणेण वि सिर्मं ण होटि, विहज्जमाणरासीणं अवहारगसीणं च सिर्मत्ता-भावादो ।

६२०. तम्ह चेत्राणुभागतंत्रद्दाणं निचरिमझङभत्यमाणहाणेण यदिदे अण्णं याद्द्दाणमुष्पज्जिद् । एदं पि अपुणक्तं । कारणं चितिय वत्तव्यं । एवमेदिम्ह अणुभागतंत्रद्दाणे यादिज्जमाणे वि असंखेजलोगमेत्ताणि याद्द्दाणाणि अपुणक्ताणि उप्पर्जाति, झणुभागवाद्देद्विरिणामाणमसंखेजलोगपिरमाणतादो । पज्जवसाणअणुभागतंत्रद्दाणे यादिज्जमाणे उप्पण्णअणुभागवाद्द्दाणिहितो दुचरिमअणुभागवंत्रद्दाणदाद्जिणद्वअणुभागहाणाणि सरिसाणि, याद्देद्विसोहिद्दाणाणं समाणतादो । पुणो तेणेव चरिमपरिणामेण निचरिमउन्वंके यादिदे विद्यपिरवादी । उप्पण्णहद्समुष्पत्तियसन्व-जहण्णहाणादो हेदा अणानभागहीणं होद्ण अण्णमपुणक्तदाणमुष्पज्जिद । भीयमाणद्व्यागमणं पि को एत्य भागहारो ? क्वाहियसन्वजीवरामी । पुणो दुचरिमपरिणामेण निचरिमउन्वंके यादिदे निद्यपंतिजहण्णहाणादो अणांतभागन्भिहयं होद्ण अण्णमपुणकत्तद्दाणमुष्पज्जिदे । को एत्य बहुभागहारो ? अभवसिद्धिणहि झणंतगुणो

नहीं है, क्योंकि पहलेका जघन्य स्थान सब जीवराशिका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आबे उतना न्यून है और साम्प्रतिक जघन्य स्थान अभव्योग अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाश भागहारका भाग देने पर जो वहां एक भाग लब्ध आता है उतना अधिक देखा जाता है। तथा यह घानस्थान ऊपरकी पंक्तिमें स्थित दूसरे घातस्थानके भी समान नहीं है, क्योंकि भाउय राशियों और भाजक राशिया समान नहीं हैं।

§ ६२०. उसी अपुमागान्यम्थानका विचरस अध्यवमायम्थानके द्वारा घात किये जाने पर अन्य घानम्थान उत्पन्न होना है। यह घानम्थान भी अपुनकक्त है। उसके अपुनक्क होनेका कारण विवार कर कहना चाहिये। उस प्रकार उस अनुमागवन्यम्थानका भी घात किये जाने पर असम्यान लोकप्रमाण अपुनकक्त घानस्थान उत्पन्न होते हैं, क्योंकि अनुमागके घातके कारणभून परिणाम असंख्यान लोकप्रमाण है। उत्पन्म अनुमागवन्यम्थानके घातसे उत्पन्न अनुमागम्थान अन्तिम अनुभागवन्यम्थानके घातसे उत्पन्न अनुमागम्थान अन्तिम अनुभागवन्यम्थानके घातसे उत्पन्न अनुमागम्थान अन्तिम अनुभागवन्यम्थानके घातसे उत्पन्न अनुमागम्थानम्थानके वरावर ही होते हैं, क्योंकि घातके कारणभूत विश्विद्धम्थान दोनोके समान है। पुनः उसी अन्तिम परिणामके द्वारा विचरम उर्वक्ता घान किये जाने पर दूसरी परिनाटीसे उत्पन्न होनेवाले सर्व जघन्य हतसमुत्पतिकम्थानसे नीचे अनन्तमागहीन होकर दूसरा अपुनक्कम्थान उत्पन्न होता है।

शंका-हीयमान द्रव्यका प्रमाण लानेके लिये यहां भागहारका प्रमाण क्या है ?

मगाधान-एक अधिक सर्व जीवराशि।

पुनः द्विचरम परिग्णामके द्वारा त्रिचरम उर्वंकका घात किये जाने पर स्त्रन्य स्रपुनरुक्त स्थान उत्पन्न होता है जा कि तीसरी पंक्तिके जघन्यस्थानसे स्रानन्तवें भाषप्रमाण् स्रधिक है। जाका—यहां पर वृद्धिका भागहार क्या है ? सिद्धाणमणंतिमभागा । कुटो ? उक्तस्सवाटज्भवसाणहाणाणं पेक्खिट्ण तत्तो अणंतरहेहिमवादज्भवसाणहाणस्स अभव्वसिद्धिण्हि अणंतगुणसिद्धाणमणंतभागमेतभागहारेण खंडिदे तत्थेगखंडेण उज्जादो । कुदो अपुणस्तदा ? भिण्णभागहारेहि
ओविह्ज्जमाणहाणाणं सिरसत्ताभावादो । एवं तिचरिमाणुभागवंघहाणे वि वादिज्जमाणे
तिद्यपरिवाडीए अणुभागवाद्जभवसाणहाणमेत्ताणि अणुभागवादहाणाणि अपुणस्ताणि
उप्पादेदव्वाणि । एवं चदुचरिमाणुभागहाणप्पहुडि जाव हेहा स्वृणबहाणमेत्तपंचहाणिहाणाणं चरिमहाणे ति ताव वादिय हाणं पि असंखेज्जलोगमेत्ताणि वादहाणाणि
अपुणस्ताणि उप्पादेदव्वाणि । एवं स्वृणबहाणमेत्त्रअणुभागवंघहाणाणि अस्सियूण
एत्तियाणि चेव वादहाणाणि उप्पर्जति । पज्जवसाणाणुभागवंघहाणां वादिय सेसअहं कुव्वंकाणं विचालेसु वादहाणाणि किण्ण उप्पाइज्जंति ? ण, एवंविहगुस्वएसाभावादो । जिद् अहं कुव्वंकाणं विचाले चेव वादहाणाणमुप्पत्तिणियमो तो संखेज्जासंखेज्जाणुभागवंघहाणाणं वादेण ण होद्व्वं ? ण, तेसु वादिज्जमाणेसु वादहाणाणि
मोत्तूण वंघहाणाणं समुप्पत्तीदो । वादेणुप्पण्णाणं कथं वंघहाणववएसो ? ण, वंबहाण-

समाधान-अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवे भागप्रमाण शृद्धिका भागहार है, क्योंकि उत्कृष्ट घाताध्यवसायस्थानकी अपेत्ता उससे अनन्तरप्रती नं चेका घाताध्यवसायस्थान अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवे भागप्रमाण भागहारका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आता है उतना कम है।

शंका -यह अपुनरुक्त कैसे है ?

समाधान—क्योंकि, भिन्न भिन्न भागहारोके द्वारा ऋपवतनको प्राप्त होनेवाले स्थान समान नहीं हो सकते।

इती प्रकार त्रिचरम अनुभागवन्धस्थानका भी घात करने पर तीसरी परिपाटीसे अनुभागधाताध्यवसायस्थानोंकी सख्याके वरावर अपुनरक अनुभागधातस्थान उत्पन्न करने चाहिये। इसी प्रकार चतुःवरम अनुभागस्थानसे लेकर एक कम पट्स्थानमात्र पंच हानिस्थानोके अन्तिम स्थान पर्यन्त धातिस्थानकी अपेचा असंख्यात लोक मात्र अपुनरक धातस्थान ध्वपन्न करने चाहिये। इस प्रकार एक कम पट्स्थानमात्र अनुभागवन्धस्थानोकी अपेचा इतने ही घात-स्थान उत्पन्न होते हैं।

शंका -श्रन्तिम श्रनुभागवन्धस्थानका घात करके शेष श्रष्टांक श्रौर उर्वकके बीचमे घातस्थान क्यों नहीं उत्पन्न किये जाते हैं ?

समाधान-नहीं, क्योंकि इस प्रकारका गुरुत्रोंका उपदेश नहीं पाया जाता है ?

शंका-यदि अष्टांक ऋौर उर्वंकके बीचमे ही घातस्थानोंकी उत्पत्तिका नियम है, तो संख्यात ऋौर ऋसंख्यात ऋनुभागबन्धस्थानोका घात नहीं होना चाहिये।

समाधान–नहीं, क्योंकि उनका घात होनेपर घातस्थानोंकी उन्पत्ति न होकर वन्ध-स्थानोंकी उत्पत्ति होती है।

शंका-जो स्थान वातसे उत्पन्न होते हैं उन्हें बन्धस्थान कैसे कहा जा सकता है ?

मेने ति घादेणुप्पण्णाणं पि वंघटाणवनणमसिद्धीदो । संपित अण्णेमो जीनो जो एमब्रह्मणेणूणअसंखेजलोगमेनद्दाणधारश्रो तेण उक्कस्सपरिणामहाणपरिणदेण संपित्यचिरमउन्नं घादिदे दुचिरमञ्चहं कस्स हेहदो अणंतगुणहीणं तत्तो हेहिमअणंतगुणहीणउन्नंकहाणादो अणंतगुणं होद्ण अण्ण हदसमुप्पत्तियद्दाणमुप्पज्जित । पुणो दुचिरमपरिणामहाणेण निम्म चेन चिरमउन्नं के घादिदे निदियमणंतभागन हिघादद्दाणमुप्पज्जित ।
पुणो तिचिरमादिनिसोहिद्दाणेष्ठि तिम्म चेन चिरमउन्नं के घादिक घाति । पिरणामहाणमेत्तािष चेन हदसमुप्पत्तियद्दाणािण उप्पज्जित । कि पमाणािण घादद्वाणहेद्पिणामहाणािण १ स्वृणब्दहाणस्मित्त्यश्चमं खेजलोगमेत्त ब्रह्मणपमाणािण । पुणो
दुचिरमुव्नं के तेति चेन पिरणामहाणेिह पुन्निवहाणेण पिरचादीण घादिद एत्थिन पिरणामहाणमेत्ताणं घादद्वाणां पंती अपुणकत्ता पुन्निक्तचादद्वाणपंतीण हेहदो उप्पज्जित ।
पुणो तेति चेन पिरणामहाणेिह पुन्निवहाणेण तिचिरमुव्नं घादिद एत्थिन अणुभागघादकभावसाणहाणमेत्तािण चेन हदसमुप्पत्तियद्वाणािण विदियपंत्रीण हेहदो पंतियागारेण उप्पज्जित । एवं स्वृणब्दहाणमेत्तमु अणुभागवंयद्वाणेसु घादिज्जमाणेसु स्वृणब्रह्मणमेत्तात्रो अणुभागघादकभावसाणहाणपमाणायदाओ घादहाणपंति। ।
एनमसंखेजलोगमेत्तनं असमुप्पत्तियअहं कुव्वंकाणं निच्चालेसु घादकभावसाणहाणपमाणा-

समाधान—नहीं क्योंकि बन्धस्थान ही हैं इसलिए घातसे उत्पन्न हुए स्थानोकी भी बन्धस्थान संज्ञा सिद्ध होती हैं।

श्रव एक ऐसा जीव लो जो एक पट्म्थानसे कम श्रसंख्यात लोकमात्र म्थानोका धारक है। उन्कृष्ट परिणामम्थानसे युक्त उस जीवने साम्प्रतिक श्रन्तिम उर्वकका घात किया है। यात करने पर उसके श्रन्य हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है जो दिचरम श्रष्टांकसे नीचे श्रनन्तगुणा होत श्रीर उसमे नीचेके श्रनन्तगुणा होत उर्वकम्थानसे श्रान्तगुणा होता है। पुनः दिचरम परिणामम्थानसे उसी श्रन्तिम उर्वकका घात किये जाने पर श्रान्तमागर्गद्वको लिये हुए दूसरा घातम्थान उत्पन्न होता है। पुनः त्रिचरम श्रादि विश्वद्विथानोसे उसी श्रान्तिम उर्वकका घात किये जाने पर परिणामम्थानोंकी संख्याके वरावर ही हनसमुत्पत्तिकम्थान उत्पन्न होते है।

शंका-धातस्थानोंके कारएभूत परिखामस्थानोका प्रमाण कितना है ?

समाधान-एक कम पट्स्थान श्रिथिक श्रासस्यात लोकप्रमाण पट्स्थानोका जितना प्रमाण है उतना है।

§ ६२३. पुनः पूर्व विधानके अनुसार कमवार उन्हीं परिणामस्थानोसे द्विचरम उर्वकका घात किये जाने पर यहां भी पहले कहे गये चातम्थानोकी पंक्तिसे तीचे परिणामस्थानपमाण् यातम्थानोकी अपुनसक्त पिक उत्पन्न हाता है। पुनः पूर्व विधानके अनुमार उन्हीं परिणामस्थानासे त्रिचरम उर्वकका घात किये जाने पर यहां भी दूमरी पंक्तिसे नीचे पंक्तिहासे अनुभागघाताभ्यव-सायस्थानप्रमाण हतसमुत्पिकस्थान उत्पन्न हाते है। इस प्रकार एक कम पदस्थानप्रमाण अनुभागवन्धस्थानोंके घाने जाने पर एक कम पदस्थानप्रमाण अनुभागवाताध्यवसायस्थानप्रमाण लम्बी घातस्थानपंक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण वन्धसमुत्पक्तिक

यदात्रो रूवृणद्यहाणमेत्ताओ हदसमुप्पत्तियहाणपंतीओ पादेकमुप्पादेदव्वाओ। णविर सहुमणिगोदअपज्जत्तवंधसमुप्पत्तियजहण्णसंतहाणादो उविर संखेज्ज हं कुव्वंकाणं विचालेसु हदसमुप्पत्तियहाणाणि ण उप्पर्जाते। कुदो ? साहावियादो। को सहावो ? अंतरंगं कारणं। ण च एस णाओ अप्पिसद्धो, उक्कस्साणुभागघादहाणीदो तस्सेव्युक्किस्सया वट्टी विसंसाहिया ति एवमादीसु एदस्स संववहारस्स पिसद्धिदंसणादो। अणुभागस्स उक्किस्सया हाणी थोवा। तस्सेवुक्किस्सया वट्टी विसंसाहिया ति णव्वदे महावंध-कसायपाहुडसुत्तेहितो। एत्थ पुण संखेज्जहं कुव्वंकाणं विचालेसु हदसमुप्पत्तिय-हाणाणि णित्थ त्ति पर्व्वयसुत्तेण विणा सहाओ दुरहिगम्मो ति। एत्थ परिहारो वुच्दे। सव्वत्थोवा हाणी। वट्टी विसेसाहिया ति जं सुत्तं तं कमाक्कमवट्टि-हाणीओ अस्सिद्ण जेणाविहदं तेण दोएहं पि अत्थाणमेदं चेव सुत्तं ति घेत्तव्वं। अक्कमवट्टि-हाणीसु पिमद्धं सुत्तं एत्थ वि होदि ति कुदो णव्वदे ? सुत्ताविरुद्धआइरिय-वयणादो। अहं कुव्वंकाणं विचालेसु व अर्णंतभागवट्टि-हाणि-असंखे०भागवट्टि-हाणि-संखे०भागवट्टि-हाणि-न्यसंखेजगुणवट्टि-हाणि-च्यसंखे०भागवट्टि-हाणि-संखे०भागवट्टि-हाणि-न्यसंखेजगुणवट्टि-हाणीणं विचालेसु हद-

ऋष्टांक श्रीर उर्वकके श्रन्तरालांमे हतसमुत्पत्तिकस्थानोकी घाताध्यवसायस्थानप्रमाण लस्वी श्रीर सख्यामे एक कम पट्स्थानप्रमाण श्रलग-श्रलग पंक्तियाँ उत्पन्न करनी चाहिये। किन्तु इतना विशेष है कि सुद्धम निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके बन्धसमुत्पत्तिक जघन्य सत्त्वस्थानसे उत्पर संख्यात श्रष्टांक श्रीर उर्वकोके बीचमे हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

शंका-स्वभाव किसे कहते हैं

समाथान-अन्तरंग कारणको स्वभाव कहते हैं। शायद कहा जाय कि यह जो उपपत्तिकी गई है कि सख्यात अष्टांक ख्रोर उर्वकके बीचमे स्वभावसे ही हतसमुत्पत्तिकस्थान नहीं उपन्न होते हैं. यह ख्रासद्ध हैं. किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं हैं. क्योंकि श्रनुमागघातकी उत्कृष्ट हानिसे उसीकी उत्कृष्ट गृद्धि विशेष श्रीधक होती है इन्यादिमें इस व्यवहारकी श्रीसिद्धि देखी जाती है।

शंका—अनुमानकी उक्तष्ट हानि थोड़ी है। उसीकी उन्क्रष्ट वृद्धि विशेष अधिक है यह बान महावन्धसे और कपायपाहुड़के चूर्णिसूत्रसे जानी जानी है। किन्तु यहां तो संख्यान अष्टांक और उर्वकोके अन्तरालोमे हतममुत्पत्तिकस्थान नहीं होते हैं ऐसा कथन करनेवाला कोई सूत्र नहीं है, अतः उसके विना स्वभावका जानना कष्टसाध्य है।

समाधान-इस शंकाका समाधान करते हैं – हानि सबसे स्तोक हैं, वृद्धि उससे विशंष अधिक है यह सूत्र यत: क्रम श्रीर श्रक्रमसे हानेवाली वृद्धि श्रीर हानिको लिये हुए श्रवस्थित हैं. श्रत: दोनों ही श्रथींके सम्बन्धमें यही सूत्र हैं ऐसा मानना चाहिये।

शंका—जो सूत्र श्रकमसे होनेवाली वृद्धि श्रीर हानिके श्रर्थम प्रसिद्ध है वही सूत्र यहां भी लगता है यह कैसे जाना ?

समाधान-सूत्रसं अविरुद्ध आचार्य वचनांसं जाना 🗓

शंका—श्रष्टांक श्रीर उर्वकके बीचकी तरह श्रनन्तभागवृद्धिः श्रनन्तभागहानि, श्रसंख्यात-भागवृद्धिः श्रसंख्यातभागहानिः संख्यातभागवृद्धिः, संख्यातभागहानि, संख्यातगुण्यृद्धिः, संख्यात- समुष्पत्तियद्वाणाणि णित्थ ति कुदो णव्यदे ? एतथेव कसायपाहुडे अणुभागसंकमो णाम अत्थाहियारो, तत्थ चउवीसअणियोगद्दारेसु सभुजगार-पद्णिक्खेव-वड्डीसु समतेसु पुणो अणुभागद्वाणप्रूवणं कुणिद्—एतो द्वाणाणि काद्व्वाणि । जहा संतकम्मद्वाण प्रूवणा कदा संकम्द्वाणप्रूवणा कायव्वा । उक्कस्सए अणुभागवंघद्वाणे एगं संतकम्मं तमेगं संकमद्वाणं । दृचिरमं अणुभागवंघद्वाणे एवमेव । एवं ताव जाव पच्छाणुपुव्वीए पदम्मणंतगुणहीणवंघद्वाणमपत्तं ति । पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे जं चिरममणंतगुणं वंघद्वाणां तम्स हेद्वा अणंतरमणंतगुणहीणं एद्मि अतरे असंखेजलोग्मेत्ताणि घाद्वाणाणि । ताणि संतकम्मद्वाणाणि । ताणि संवक्षमद्वाणाणि । तद्वा पुणो वंघद्वाणाणि च संकमद्वाणाणि च ताव तुङ्काणि जाव पच्छाणुपुव्वीए विदियमणंतगुणहीणं वंघद्वाणाणि । विदियसस अणंतगुणहीणवंघद्वाणस्स उवित्वले अंतरे असंखेजलोगमेत्ताणि घादद्वाणाणि । एवमणंतगुणहीणवंघद्वाणस्स उवित्वले अंतरे असंखेजलोगमेत्ताणि घादद्वाणाणि भवंति णत्य अण्णम्ह कम्ह वि ति एद्म्हादो विउल्लेगिरमत्थयत्थवहुमाणदिवायगादो विणिग्गमिय मोदम-लोहज्ज-जंवुसामियादि--आइरियपरंपगए आगंत्ण गुणहराइरियं पाविय गाद्दासुद्वण परिणमिय अज्जमंत्व-णागहत्थीहितो जद्दसहायिरयमुवणमिय चुण्णिमुत्तायारेण परिणददिव्वजभूणिकिरणादो णव्वदे । एद्राणि हदसमुष्वतिय-

गुणहानि, असम्ब्यातगुणवृद्धि और असस्व्यातगुणहानिके अन्तरालोगे हतसमुत्पत्तिकस्थान नहीं होते यह कैसे जाना !

समाधान-इसी कसायपाइडमे अनुभागसंक्रम नामका अर्थाधिकार है। इसमे भुजकार, पदिनत्तेप त्रौर इद्धि अधिकारके साथ साथ चौबीस अनुयोगद्वारोंके समाप्त होनेपर अनुभाग-म्थानका कथन इस प्रकार है -स्रव संक्रमस्थानका कथन करना चाहिये। जिस प्रकार अनुभागसन्कर्मस्थानोका कथन किया है उसी प्रकार संक्रमस्थानाका भी कथन करना चाहिये। उत्कृष्ट बन्धस्थानमे एक स कर्म है वह एक संक्रमस्थान है। द्विचरम अनुभागबन्धस्थानमे भी इसी प्रकार पञ्चादानुपूर्वीके क्रमसे तब तक जे जाना चाहिये जब तक प्रथम अनन्तगुग्रहीन बन्धस्थानको नही प्राप्त हुन्या है। पूर्वानुपूर्वीसे गिनने पर जो ब्रान्तिम ब्रानन्तराुण बन्धस्थान ब्रौर उमसे नं चे अनन्तर अनन्तगुणा हीन वन्धरवान है इस बीचमे असंख्यात लाकप्रमाण घातस्थान उत्पन्न होते हैं। ये सत्कर्मस्थान है और ये ही संक्रमस्थान है। इसके बाद पश्वादानुपूर्वीसे दूसरे श्चनन्तगुगाहीन बन्धस्थान पर्यन्त बन्धस्थान और संक्रमस्थान बरावर है। दूसरे श्वनन्तगुगाहीन बन्धस्थानके ऊपरके अन्तरमे असख्यात लोकवमाण घातस्थान होते है। इस प्रकार अनंतगुराहीन बन्धस्थानके ऊपरके त्रान्तरमे असंख्यात लोकप्रमाण घातस्थान होते है अन्यमे नहीं होते, इस प्रकार विपुलाचलकं ऊपर स्थित भगवान महावीरहृपी दिवाकरसे निकल कर गौतम. लाहाय, जम्बूम्यामी आदि आवार्य परम्परासे आकर. गुण्धराचार्यको प्राप्त हाकर वहां गाथा-रूपम परिगामन करके पुनः त्र्यार्यमंश्रु और नागहस्ती त्राचार्यके द्वारा त्र्याचार्य यति उपभको प्राप्त होकर उक्त चूर्णिसूत्रहापसे परिगात हुई दिन्यध्वतिहर्भा किरणसे जाना जाता है।

हाणाणि वंधममुष्पत्तियहाणेहितो असंखेज्जगुणाणि । को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा। वंधसमुष्पत्तियहाणाणि अंगुलस्स असंखे०भागेणोविष्ट्य लद्धे असंखे०लोगेण गुणिदे हदसमुष्पत्तियहाणाणंप भाणुष्पत्तीदो ।

ये हतसमुत्पत्तिक स्थान बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोसे असंख्यातगुणे होते है। यहाँ पर गुणकारका प्रमाण क्या है ? असंख्यात लोकप्रमाण है, क्योंकि बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोको अंगुलके असंख्यातवें भागसे भाजित करके जो लब्ध आता है उसे असंख्यात लोकसे गुणित करने पर हतममुत्पत्तिक स्थानोकी संख्या उत्पन्न होती है।

विशेषार्थ-बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोका कथन करके हतसमुत्पत्तिकस्थानोका कथन करते हैं। जो अनुभागत्थान बन्धसे उत्पन्न होते हैं उन्हे बन्धसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं। स**ा**मे स्थित अनुभागका घात करनेपर जो स्थान उत्पन्न होते है उनमंसे भी कुछ स्थान बध्यमान अनुभाग स्थानके समान होते हैं वे बन्धसमृत्पत्तिक स्थान कहे जाते हैं। किन्तु जो श्रनुभागस्थान घातसे ही उत्पन्न होते हैं बन्धसे उत्पन्न नहीं होते उन्हें हतसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं। ये हतसमुत्पत्तिक म्थान वन्धसमुत्पिकस्थानोसे असंख्यातगुरो होते हैं। उनका कथन इस प्रकार हैं - सूक्ष्म निर्गादिया ऋपर्याप्रकं जघाय ऋनुमागस्थानसं लेकर उत्कृष्ट अनुभागस्थान श्रसंख्यात लोकप्रमास वन्धसमुत्प तकम्थानोकी एक पक्ति दाहिनी श्रोर रक्या श्रीर बन्ध स्थानोकं अनुसागका घात करने में कारण, जघन्य परिणामस्थानसे लंकर उत्कृष्ट परिणाम स्थान तकके जो ऋसंख्यात लोकप्रमाण परिणाम हैं. उन्हें बाई श्रोर रखो। एक जीवन सर्वोत्कृष्ट घातपरिकामस्थानकं द्वारा उत्कृष्ट अनुसागवन्यस्थानका घात किया। ऐसा करनेसे अन्तिम श्रनन्तगुणवृद्धि स्थान रूप श्रष्टांक श्रीर उससे श्रनन्तरवर्ती नीचेके उर्वक इन दोनोके बीचमे हत-नमुत्पत्तिरुम्थान उत्पक्ष होता है जो कि उस अष्टांकसे अनन्तगुणा हीन श्रीर उक्त उर्वकसे अनन्तराणा अतुनामवाला होता है। यह समुत्यत्तिकस्थान सबसे जघन्य होता है, क्योंकि सर्वेन्क्रप्ट परिग्णामोके दारा घाता जाकर उत्पन्न होता है। दूसरे एक जीवने उत्कृष्ट विश्वद्धिस्थान से नीचेके द्विचरिम विद्याद्धिस्थानके द्वारा अपरके उर्वकका वात किया। ऐसा करने पर अष्टांक त्रोर उर्वकके बीचमे पहलेके उत्पन्न हुए हतसमुत्पत्तिकस्थानसे उपर दूसरा हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है। यह स्थान पहलेके जवन्य स्थानसे अनन्तवे भागप्रमाण अधिक है। अर्थान अभव्य-राशिसे अनन्तगणे औरसिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण भागहारसे जघन्य हतसमृत्यत्तिकस्थानमे भाग देने पर जा लब्ध आवे उसे उसी जघन्य स्थानमें जोड़ देनेपर दूसरा अनुभागस्थान होता है। पहले वन्धस्थानमे सागद्दार श्रीर गुएकार श्रनन्तप्रमाए सर्व जीवराशि वतला श्राये है श्रीर वहा हतसमत्यात्तकस्थानमे उसका प्रमाण अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवे भागप्रमाण बतलाया है। इसका कारण यह है कि घातस्थानोकी ज्वित्तिके कारण जो विश्वद्धिस्थान है उनमें भी गुणुकार ख्रीर भागहारका प्रमाण अभव्यराशिसे अनन्तगुणा ख्रीर सिद्धराशिके अनन्तवे भाग ही है, अत: कारलके गुलकार और भागहारसे कार्य जो घातस्थान हैं उनका गुलकार और भागहार जुदा नहीं हो सकता । तथा यदि श्रनन्तका प्रमाण सर्व जीवराशि ही माना जाव तो उससे घातस्थानका गुणा करनेपर अष्टांकसे अनन्तगुणा घातस्थान होगा, किन्तु अष्टांकसे ऊपर घात-स्थानकी उत्पत्तिका निषंध है। सभी घातस्थान अष्टांक और उर्वकके वीचमें उत्पन्न होते हैं ऐसा शास्त्राका कथन है। अस्त, किसी अन्य तीसरे जीवके द्वारा उक्त द्विचरिम विश्वद्विस्थानके नीचेके त्रिचरम विश्वव्रिम्थानकं द्वारा उसी अन्तिम उर्वकका घात किये जानेपर तीमरा हतसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न होता है। शायद कोई कहे कि एक श्रन्तिम उर्वकसे श्रनेक हतसमुरात्तिक स्थान कैसे

उत्पन्न हो सकते हैं तो इसका यह समाधान है कि घातके कारण परिणामोके भेदसे घात होकर शेष बचे अनुभ गम भेद हो जाता है, अत: घातस्थान अनेक बन जाते है। किसी अन्य चौथे जीवके द्वारा उक्त विश्चाद्धिस्थानके नीचेके चतुरचरिम विश्वद्धिस्थानके द्वारा उक्त अन्तिम खर्वकका घात किये जाने पर चौथा अनन्तभागबृद्धि युक्त घातस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार पंचर्चारम, श्रीर पटर्चारम श्रादि विश्वद्धिस्थानके द्वारा श्रीन्तम उर्वकका घात करते करते तब तक हतसमुत्पत्तिक स्थाने उत्पन्न करने चाहिये जब तक सर्व जघन्य विश्चिष्टिस्थानके द्वारा श्रन्तिम उर्वकका बात हो। इस प्रकार श्रसंख्यात लोक पट्स्थानप्रमाग् इतसमुत्पत्तिकस्थान होते हैं। वन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी त्र्यन्तिम व्वकको लेकर त्र्यन्तिम त्र्यष्टांक श्रीर व्वकको बीचमें हत-समत्पत्तिकस्थान इतने ही उत्पन्न होते हैं ऋधिक नहीं,क्यों।क कारएके बिना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती । इन स्थानोंकी उत्पत्तिके कारण हैं छह प्रकारकी वृद्धिको लिये हुए विशुद्धिस्थान । उनसे विर्जाद्धस्थानप्रमाण् ही स्थान उत्पन्न होते हैं। इसके वाद अन्तिम विशुद्धस्थानके द्वारा अन्तिम द्विचरम उबकका चात किये जाने पर सर्व जघन्य स्थानसे नीचे श्रनन्तभागहीन होकर दूसरा श्रपनरुक्त हतममुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है। ऊपरके स्थानको रूपाधिक सर्व जीवराशिसे भाजित करनेपर जो लब्ध स्त्राता है उतना यह स्थान ऊपरके स्थानसे हीन होता है, क्योंकि उत्कृष्ट इर्वकसे द्विचरम दर्वक भी इतना ही हीन है और दोनोका घात समान परिगामके द्वारा हन्ना है अत: इसमें जो स्थान उलन्न होते हैं, उनमें भी उतना ही अन्तर होना चाहिये। पनः दिचरम परिणामके द्वारा उसी द्विचरम उर्वकका वात किये जानेपर दुसरा वातस्थान उत्पन्न होता है। इसी प्रकार त्रिचरम श्रादि विश्चद्धिस्थानोसे डिचरम उर्वकका घात करनेपर परिणामो क बराबर ही घातस्थान उलन्न होते हैं । यह घातस्थानोकी दृष्णी पक्ति हुई । इसी प्रकार उक्त परिणामस्यानोकं द्वारा त्रिचरम उर्वक, चतुश्चरम उर्वक, पर्वचरम उवक त्र्याद उर्वकोका घात कर करके बातस्थानोकी तीसरी. चौथी, पाँचवी ऋदि पंक्तिया उत्पन्न होती है। इस प्रकार उत्क्रष्ट स्त्रादि सब परिएगमोक द्वारा शेव बन्धस्थानोंका भी घात करके घातस्थान उत्पन्न करन चाहिय । एसा करनेसे घातस्थानोकी चौड़ाई पट्स्थानप्रमाण् श्रौर लम्बाई विश्चद्धिस्थानप्रमाण होती है। इस प्रकर उत्पन्न हुए सब स्थान अपुनरुक्त ही होते हैं, क्योंकि उनमें समानता होनेका कोई कारण हो नहीं है। यथा-पहली पंक्तिक पहले स्थानमें अपाधिक सर्व जीवराशिका भाग दनेस जो लब्ध आव उतना उस स्थानसे दूसरी पांकका पहला स्थान हीन है और दूसरी पांक्तक पहले स्थानमें अभव्य राशिसे अनन्तगुर्णे या सिद्धराशिक अनन्तव भागका भाग देनेपर जो लट्य आव उतना दूसरी पंक्तिके पहले स्थानसे दूसरा स्थान अधिक है। इस प्रकार सभी पंक्तियो-के दमर स्थान परस्परमे असमान हैं। इसीसे सभी पक्तियोंके सब स्थानोंमे असमानताका विचार कर लेना चाहिये । अब द्विचरम श्रष्टाकरें नीचे श्रीर उसके श्रननारवर्ती नीचेके उर्वकरें ऋपर दोनों बन्धस्थानोंके बीचमें अपन्न होनेवाले घातस्थानोको कहते हैं। एक जीवने अकुष्ट परिशामके द्वारा एक पटस्थानहीन उत्कृष्ट श्रनुभागसःकर्मका वात किया। एसा करनेसे द्विचरम श्रष्टांकसे नीच श्रनन्तग्णा हीन हाकर और उसीके नीचंक उर्वकसे ऊपर श्रनन्तग्णा हाकर हतसम्बद्धिकस्थान उत्पन्न होता है। पुनः द्विचरम परिणामस्थानके द्वारा उसी अन्तिम उर्वकका घात करने पर दूसरा अनन्तभागवृद्धि युक्त घातस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार यहाँ पर भी पहले विधानके अनुसार त्रिचरम श्रादि विश्वदिस्थानोके द्वारा उसी अन्तिम उर्वकका घात करके परिग्णामस्थानीकी संख्याके बराबर घातस्थान उत्पन्न करने चाहिये। फिर अन्तिम परिगामके द्वारा द्विचरम बन्धस्थानका घात करने पर अन्य घातस्थान उत्पन्न होता है जो पहलेके जघन्य स्थानसे अनन्तगृशा हीन होता है। पुन: डिचरम परिशामके द्वारा

🟶 हदहदसमुप्पत्तियाणि असंखेजगुणाणि।

६२१. एवं घाटहाणपरूवणं कादृण संपित हदहदसमुप्पित्तयहाणाणं प्रस्त्रणं कस्सामो। तं जहा—पुन्वविद्याणेण जहण्णविसोहिहाणपहुिं जाव उक्कस्सविसोहिहाणे ति ताव एदासिमसंखेजलोगमेत्तघादहेदुविसोहिछहाणाणमेगसेदिआगारेण र्यणं कादृण पुणो एदेसि दिक्खणापासे सुहुमिणगोदअपज्जत्तजहण्णाणुभागवंधहाणप्पहुिं असंखेजलोगमेत्तवंधसमुप्पित्तयहाणाणं च एगसेदिआगारेण रचणं कादृण पुणो सुहुम-िणगोद्श्रपज्जतजहण्णहाणादो उविद्या संखेजलहाणाअहं कुव्वंकाणामंत्राणा मोतृ्रण सेसासेसल्रहाणाणमहं कुव्वंकाणं विचालेम असंखे०लोगमेत्ताणं हदसमुन्पित्तयहाणाणं च पादेकमेगसेदियागारेण रचणं कात्रण पुणो चिम्मवंधसमुप्पित्तयअहं कुव्वंकाणं विचालिमअसंखे०लोगमेत्तर्वः कुव्वंकाणं विचालिमअसंखे०लोगमेत्तर्वः विचालिमअसंखे०लोगमेत्तर्वः कुव्वंकाणं विचालिमअसंखे०लोगमेत्र कुव्वंकाणं विचालिमअसंखे०लोगमेत्र विचालिमअसंखे०लोगमेत्तर्वः उक्कम्स-

उमी हिचरम वन्धस्थानका चान करने पर अन्य चानस्थान उत्पन्न होता है जो पहलेक स्थानसे अनन्तवे भागप्रमाण अधिक होता है। इस प्रकार सब परिणामोक द्वारा हिचरम, त्रिचरम आदि अनुभागवन्धस्थानाका चात करके अष्टांक और उर्वकके बीचमे चातस्थानोकी पट्स्थान पंक्तियाँ उत्पन्न करनी चाहिये। इस प्रकार द्विचरम अष्टांक और उससे नीचेके उर्वकके बीचमे चातस्थानोंका कथन किया। अब दो पट्स्थानहीन अनुभागवन्धस्थानका चात करके त्रिचरम अष्टांक और उससे नीचेके उर्वकके बीचमे चातस्थान उत्पन्न करने चाहिये। ऐसा करनेसे त्रिचरम अष्टांक और उर्वकके बीचमे उत्पन्न होनेवाले असख्यात लोकप्रमाण पट्स्थानोंका कथन समाव होता है। इसी प्रकार चतुश्चरम, पंचचरम आदि असंख्यात लोकप्रमाण वन्धसमुत्पत्तिक स्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वकोंके बीचमे पृर्व-पश्चिम लम्बा और दिल्लग्-उत्तर चौड़ा असंख्यात लोकमात्र चातस्थानोंक। पटल उत्पन्न होता है। सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तकके जघन्य स्थानके उत्पर संख्यात वन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वकोंके अन्तरालोंको छोड़कर अपर संख्यात वाकप्रमाण अष्टांक और उर्वकोंके अन्तरालोंको छोड़कर अपरके असंख्यात लाकप्रमाण अष्टांक और उर्वकोंके अन्तरालोंको ये चातस्थान उत्पन्न होते हैं, सबमं नहीं। और यह बात इसी कसायपाहुडके अनुभागसंक्रम नामक प्रकरणमे आये हुए चूर्णसूत्रोसे जानी जाती है। इस प्रकार हतसमुत्पत्तिकस्थानोका कथन जानना चाहिये।

इतहतसम्रुत्पत्तिकस्थान असंग्व्यातगुणे हैं ।

\$ ६-१. इस प्रकार चातम्थानोका कथन करके छाब हतहतसमुत्पित्तकम्थानोका कथन करते हैं। वह इस प्रकार है—पहले कही गई विधिके छानुसार जघन्य विशुद्धिस्थानसे लेकर उत्कृष्ट विशुद्धिस्थान पर्यन्त घातके कारण इन छासख्यात लोकप्रमाण विशुद्धि युक्त पटम्थानोंकी एक पंक्तिके रूपमे रचना करो। पुनः उनके दिल्लाण भागमे सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपयाप्तककं जघन्य छानुभागवन्धस्थानसे लेकर छासंख्यात लोकप्रमाण वन्धसमुत्पित्तकस्थानोकी एक पंक्तिके रूपमे रचना करो। पुनः सुक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपयाप्तकके जघन्य स्थानसे उपर संख्यात पट्म्थानोंके छांक छोर उर्वकांके छान्तरालांका छोड़कर वाकीके सव पटम्थानोंके छांक छोर उर्वकांके प्रत्येत लोकप्रमाण हतसमुत्पित्तकस्थानोकी एक पंक्तिके रूपमे रचना करो। पुनः छान्तम वन्धसमुत्पित्तक छाण्डक छोर उर्वकके मध्यवर्ती छासंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पित्तक घट्म्थानोंके प्रत्येक एक उर्वकका उत्कृष्ट परिणामस्थानसे घात किये जाने पर,

परिणामद्वाणेण घादिदे चरिमअह कादो हेहा अणंतगुणहीणं तस्सेव हेहिमअब्बंकहाणाडो अणंतगुणं होदृण दोण्हं पि अंतरे पढमं हदहदसमुप्पत्तियद्वाणमुप्पिज्जिदि । पुणो अणंत-भागहीणद्चिरमिविसोहिद्दाणेण तम्मि चेव उक्तस्साणुभागे घादिदे पुच्चुप्पण्णद्वाणादो उवरि अगंतभागव्भिहियं होदृण विदियं हदहदसमुप्पत्तियद्वाणमुप्पज्जदि । एवं जित्तयाणि विसोहिद्वाणाणि अत्थि तेहि सब्बेहि वि णाणाजीवे अस्मिद्ण चरिमउब्बंके घादिदे चरिमऋड कुव्वंकाणं विचाले परिणामहाणमेत्ताणि इदहद्समुष्पत्तियद्वाणाणि उप्प-ज्जंति । पुणो सन्वविसोहिद्वाणेहि द्चरिमउन्वंके घादिदे सन्वजहण्णहद्हद्समुष्पत्तिय-हाणादो हेहा अणंतभागहीणहाणमादिं काद्ण विसाहिहाणमेत्ताणि हदहद्समुष्पत्तिय-हाणाणि उप्पज्जंति । एवं तिरूव्णञ्चहाणब्भंतरतिचरिमादिसव्वहाणेसु परिवाडीए सन्वविसोहिटाणिहि घादिदेसु विसोहिटाणआयामरूबूणऋटाणविवसंभमेत्ताणि हदहद-समुष्पत्तियद्वाणाणि उष्पग्णाणि हांति। एवं दुचरिम-तिचेरिम-चदुचरिमादिअहं कुव्वंकाणं विचालेसु हदहदसमुप्पत्तियद्वाणाणि उप्पादेदन्वाणि जाव सन्वहदसमुप्पत्तियअद्वं-कव्वंकाणं विचालेसुप्पण्णाणि ति । एवं चरिमवंधसमुप्पत्तियअहं कुव्वंकाणमंतरे ऋवहिद-असंग्वेज्जलाममतहदसमुप्पत्तियद्वाणाणमसंखेज्जलागमेतअद्व'कुव्वंकाणं विचालेमु रूवूण-ञ्चहाणविक्खंभाणि विसोहिद्वाणायदाणि हदहद्समुष्पत्तियद्वाणपदराणि समुष्पण्णाणि होंति । पुणो पच्छाणुपुट्यीए ओदिरद्ण वंधसमुष्पित्तयद्चिरमञह कृट्यंकाण-मंतरे अवदिद्असंखेजालोगमेत्तहद्समुष्पत्तियेवहाणाणमहं कुव्वंकाणं विचालेसु सव्वेसु

चरम अष्टांकसं नीचे अनन्तगुणा हीन और उसीके नीचेकं उर्वक स्थानसे अनन्तगुणा होकर दोनोंके बीचम पहला हतहतसमुरपत्तिकम्थान उत्पन्न होता है। पुनः अनन्तमागहीन द्विचरम विश्चद्धिस्थानसे ःसी अकृष्ट श्रनुभागके याते जानेपर पूर्व स्त्यन्न हुए स्थानसे उपर अनन्तभागर्शद्ध-को लिए हुए दृसरा हुनहुतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार नाना जीवोकी अपेचा जितने विशुद्धिस्थान हैं उन सभीसे अन्तिम उर्वकका घात किये जानेपर अन्तिम अष्टांक और उर्वकके बीच में परिशामस्थानीकी संख्याके वरावर ही इतहतमभुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं । पुनः सद विशुद्धि-स्थानोंसे द्विचरम उर्वंकका घात किये जानेपर सबसे जघन्य हतहतसमुर्क्यक्तकस्थानसे नीचे अनन्त-भागहीन स्थानसे लेकर विद्युद्धिस्थानोकी संख्याके बराबर हत्त्रतसमुत्रत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार तीन कम पट्म्थानोके ज्ञन्तर्वर्ती त्रिचरम ज्ञादि सब स्थानोकं एक एक करके सर्व-विशुद्धिस्थानोके द्वारा घाते जाने पर विशुद्धिस्थान प्रमाण लम्बं और एक कम पट्स्थानप्रमाण चौडे हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार द्विचरम, त्रिचरम, चतुःचरम आदि श्रशंक और उर्वकके बीचमे तब तक हतहतसमुखितकस्थान उत्पन्न करने चाहिये जब तक सब हतसमुत्पत्तिक स्थानसम्बन्धी अष्टांक च्यौर उर्वकांक बीचमे स्थान उत्पन्न हो । इस प्रकार श्रन्तिम वन्धसमुत्पत्तिकस्थानसम्बन्धी श्रष्टांक श्रौर उर्वंकके बीचम स्थित श्रसंख्यात लोकप्रमाण हतममुत्पत्तिकस्थानोके त्र्यसंख्यात लोकप्रमाण त्र्यष्टांक त्र्यौर उर्वकोकं त्र्यन्तरालोमे एक कम पट्म्थान प्रमाण् चौड़ श्रौर विद्युद्धिस्थानप्रमाण् लम्बे हतहतसमुत्पित्तिकस्थान प्रतर उत्पन्न होते हैं । पुनः क्रमसे परचादानुपूर्वीसे इतर कर. वन्धममुत्पत्तिकस्थानसम्बन्धी द्विचरम अष्टांक श्रीर उर्वकके वीचमे स्थित असंख्यान लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थानसम्बन्धी सब अष्टांक

वि र स्वूणछहाणविक्खंभविसोहिपमाणायदहदहदसमुप्पत्तियहाणपदराणि एवं चे उप्पादेद्व्वाणि । पुणो हेहा श्रोसिर्ण वंधसमुप्पत्तियत्विरिमश्रहं कुव्वंकाणमंतरे श्रवहिद् स्वृणछहाणविक्खंभविसोहिहाणपमाणायदहदसमुप्पत्तियहाणपदरस्स असंखेळा-लोगमेत्तअहं कुव्वंकाणं विचालेम् स्वृणछहाणविक्खंभविसोहिहाणपमाणायदहदहद-समुप्पत्तियहाणपदराणाि वि एवं चेव उप्पादेद्व्वाणि । एवं वंधसमुप्पत्तियश्रहं कुव्वंकंतरमंतं काद्ण हेहा अप्पिडिसिद्धवंधसमुप्पत्तियश्रहं कुव्वंकंतरमंतं काद्ण अविहदस्वअहं कुव्वंकंतरमंतं काद्ण अविहदस्वअहं कुव्वंकाणमंतरेमु स्वूणछहाणविक्खंभेण विसोहिहाणायामेण संहिद्दहदसमुप्पत्तियहाणपदराणमसंखेळालोगमेत्तअहं कुव्वंकंतरेमु स्व्यूणछहाणविक्खंभिविसोहिहाणायदहदहदसमुप्पत्तियहाणपदराणि अव्वामोहेण उप्पादेदव्वाणि । जहा वंधसमुप्पत्तियहाणाणं हेहिमसंखेळाहं कुव्वंकाणमंतरेमु घादहाणाणं पिहसेहो कदो तहा प्रथ हेहिमसंखेळाणं घादहाणहं कुव्वंकाणमंतरेमु घादघादहाणाणि ण उप्पळांति ति पिहसेहो ण कायव्वो, वंधहाणेमु पवत्तणसहावस्स पिहसेहस्स घादहाणेमु पजित्विरोहाहो ।

एवं इदइदसमुप्पत्तियद्वाणपरूवणा कदा ।

श्रीर उर्वंकोंके बीचमे, एक कम पट्स्थानप्रमाण चौड़े श्रीर विशुद्धिस्थानप्रमाण लम्बे हनहत-समुत्पत्तिकस्थानरूपी प्रतर इसी प्रकार उत्पन्न करने चाहिये। पुनः नीचेकी त्रोर उतर कर बन्ध-समुत्पत्तिक स्थानसम्बन्धी त्रिचरम ऋष्टांक ऋौर उर्वकके बीचमे स्थित एक कम पट्स्थानप्रमाण चौड़े ऋौर विशुद्धिस्थानप्रमाण लम्बे हतसमुत्यत्तिकस्थानरूपी प्रतरके ऋसंख्यात लोकप्रमाण अष्टांक और उबँकोंके अन्तरालोंमे एक कम पटस्थानप्रमाण चौड़े श्रौर विशुद्धिस्थानग्रमाण लम्बे हतहतसमुत्पत्तिकस्थाने।के प्रतर भी इसी प्रकार उत्पन्न करने चाहिये। इस प्रकार बन्ध-समुत्पत्तिकस्थानसम्बन्धी चतु:चरम ऋष्टांक और उर्वंकके ऋन्तरसे लेकर नीचे ऋप्रतिसिद्ध बन्धसमुन्पत्तिक स्थानसम्बन्धा अष्टांक और उर्वंकके अन्तर पूर्वन्त अष्टांक और उर्वंकके सब श्रन्तरालोमे एक कम पटम्थान प्रम ए चौड़े और विश्वद्विस्थान माए लम्बे जो इतममुल्पत्तिक-स्थानरूपी प्रतर स्थित हैं उनके असंख्यात लोकप्रमाण अष्टांक और दर्वकोंके अन्तरालामें एक कम पटस्थानप्रमाण चौड़े ऋौर विद्युद्धिस्थानप्रमाण लम्बं हत्हतसमुत्पत्तिकरथानोंके प्रतर भ्रान्ति रहित होकर उत्पन्न करने चाहिये। जैसे बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोके नीचेके संख्यात अप्रांक श्रौर उर्वकोके अन्तरालमे घातस्थानोंके होनेका निपंघ किया है वैसे ही यहां नीचेके संख्यात घातस्थान सम्बन्धी ऋष्टांक ऋौर उर्वकोंके ऋन्तरालोंमे घातघातस्थान नहीं उत्पन्न होते हैं ऐसा निपंघ नहीं करना चाहिये; क्योंकि जिस प्रतिपेधकी प्रदृत्ति स्वभावसे ही बन्धस्थानोंमें होती है उसकी घातस्थानोंमें प्रवृत्ति हानेमें विरोध त्र्याता है। ऋर्थान् घातस्थानोके सब श्रष्टांक और उर्वंक सम्बन्धी श्रन्तरालोम घातघातस्थान उत्पन्न करने चाहिये।

विशोषार्थ-अव हतहतसमुत्पित्तकस्थानोंका कथन करते हैं। जघन्य विशुद्धिस्थानसे लेकर उत्कृष्ट विशुद्धिस्थान पर्यन्त असंख्यात लोकप्रमाण जो विशुद्धिस्थान घाते गये अनुभागसे शेष बचे अनुभागके घातके कारण हैं उनकी एक पंक्ति रूपसे रचना करा और उनकी दाहिनी ६४३. संपिह तिद्यवारहदहदसमुप्पत्तियद्वाणाणं परूत्रणं कस्सामो १ बंध-सम्रप्पत्तियचरिमअद्वंकुव्वंकाणं विचाले संदिदरूवूणछद्वाणिवक्खंभविसोहिद्वाणपमाणा-यदहदसमुप्पत्तियद्वाणपदरस्स असंखेज्जलोगमेत्तअद्वंकुव्वंकाणं विचालेस रूवूणछद्वाण-विक्खंभेण विसोहिद्वाणपमाणायमेण अवद्विदअसंखेज्जलोगमेत्तहदहदसमुप्पत्तियद्वाणपद-राणमसंखेज्जलोगमेत्तअद्वंकुव्वंकाणं विचालेसु रूवृणछद्वाणविक्खंभविसोहिद्वाणपमा-

श्रोर सुक्ष्म निगोदिया ऋपर्याप्तकके जघन्य स्थानसे लेकर ऋसंख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंकी एक पंक्ति रूपसे रचना करो। फिर सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तकके जघन्य स्थानसे उपरके संख्यात पटस्थान सम्बन्धी अष्टांक श्रीर उर्वकोंको छोड़कर उसके वादके श्रसंख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक स्थानसम्बन्धी श्रष्टांक श्रीर उर्वकोंके श्रन्तरालोमें श्रसंख्यात लोक-प्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थानोंकी रचना करो । श्रव श्रन्तिम बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक श्रीर उर्वकोंके बीचमें श्रसंख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिक पटस्थान सम्बन्धी श्रन्तिम उर्वंकका उत्कृष्ट परिणामसे घात करने पर अष्टांक और उर्वंकके बीचमे पहला हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होता है जो अष्टांकसे अनन्तगुणा हीन होता है और उसके नीचेके उर्वंकसे अनन्तगुणा होता है। पुन: उत्कृष्ट परिणामसे अनन्तगुणे हीन द्विचरम परिणामस्थानके द्वारा उसी अन्तिम उर्वंकका घात करने पर दूसरा हतहतसमुत्पत्तिकस्थान होता है। यह स्थान पहले स्थानसे श्रनन्तवें भाग श्रधिक श्रनुभागवाला होता है, क्योंकि पहलेके विशुद्धिस्थानसे श्रनन्तवे भाग हीन दूसरे विशुद्धिस्थानके द्वारा घाता गया है। इस प्रकार जितनी जितनी हानिसे युक्त परिणाम स्थानके द्वारा अन्तिम व्वकाका घात किया जाता है उतने उतने अधिक अनुभागवाला हहहत-समुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार करने पर अन्तिम अष्टांक श्रीर उर्वंकके बीचमें परिगामस्थानोंकी संख्याके बराबर ही इतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं। पुन: उत्कृष्ट परिगामस्थानके द्वारा द्विचरम उर्वंकका घात करने पर दूसरी पंक्तिका पहला इतहतसमुत्पत्तिक स्थान होता है। यह स्थान सबसे जघन्य हतहतसमुत्पत्तिकस्थानसे अनन्तवें भाग हीन हाता है। इस प्रकार इस श्रनुभागस्थानका घात करके परिग्णामस्थानोंकी संख्याके बरावर हतहत-समुत्पत्तिक स्थान पहलेकी तरह उत्पन्न कर लेने चाहिये। पुन: उसी अलूष्ट परिएगमस्थानके द्वारा त्रिचरम उर्वंकका घात करने पर दूसरी पंक्तिके जघन्य स्थानसे अनन्तवें भाग हीन तीसरी पंक्तिका पहला स्थान होता है। इस प्रकार इस पंक्तिमें भी परिणामस्थानोंकी संख्याके बराबर ही हतहतसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न होते हैं। इस तरह द्विचरम त्र्यादि हतसमुत्पत्तिक स्थानोंको क्रमसे घात कर परिगामस्थान प्रमाण हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होते हैं। इन स्थानोंका पटल भी षट्स्थान प्रमाण चौड़ा श्रौर परिगामस्थान प्रमाग लम्बा होता है।

इस प्रकार इतइतसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन किया।

§ ६२५. श्रव तीसरी बार हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन करते हैं। बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी श्रन्तिम श्रष्टांक श्रौर उर्वंकके बीचमे स्थित, एक कम षट्स्थान प्रमाण चौड़े श्रौर विद्युद्धिस्थान प्रमाण लम्बे हतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी प्रतरके श्रसंख्यात लोकप्रमाण श्रष्टांक श्रौर उर्वंकोंके बीचमें एक कम षट्स्थान प्रमाण चौड़े श्रौर विद्युद्धिस्थान प्रमाण लम्बे हपसे स्थित श्रसंख्यातप्रमाण इतहतसमुत्पत्तिकस्थानरूप प्रतरोंके श्रसंख्यात लोकप्रमाण श्रष्टांक श्रौर उर्वंकोंके श्रन्तरालोंमें एक कम षट्स्थान प्रमाण चौड़े श्रौर विद्युद्धिस्थानप्रमाण लम्बे

णायदहदहदसमुष्पित्तयद्वाणपदराणमसंखेज्जलोगमेता समुष्पती परूवेद्व्वा । एवं सेस-वंधसमुष्पित्तयअद्वं कुव्वंकाणं विचालेम्च द्विदहदसमुष्पित्तयद्वाणाणि घादिय घादद्वाणाणं परूवणाए कदाए घादद्वाणाणं तदियपरिवाडीए परूवणा समत्ता होदि । एवमुष्पण्णुष्पण्ण-घादद्वाणद्वं कुव्वंकाणं विचालेम्च घादद्वाणाणि ताव उष्पादेद्व्वाणि जाव संखेज्जाओ परिवाडीओ गदाओ ति । एतो उवरि घादद्वाणाणि ण उष्पज्जंति ति तं कुदो णव्वदे ? मुत्ताविरुद्धाइरियवयणादो । एदाणि सव्वहदहदसमुष्पित्तयद्वाणाणि हदसमुष्पित्तयद्वाणे-दितो असंखेज्जगुणाणि । को गुणगारो ? असंखेज्जा छोगा । एवं मिच्छत्तस्स द्वाण-परूवणा कदा ।

त्र्यसंख्यात लोकप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकस्थानरूपी प्रतरोंकी उत्पतिका कथन करना चाहिये। इस प्रकार शेष बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बधी त्र्रष्टांक श्रीर उर्वकोंके बीचमें स्थित हतसमुपत्तिकस्थानों का घात करके घातस्थानोंकी प्ररूपणा करने पर तीसरी परिपाटीसे घातस्थानोंका कथन समाप्त होता है। इस प्रकार पुनः पुनः उत्पन्न हुए घातस्थान सम्बन्धी श्रष्टांक श्रीर उर्वकोंके बीचमें तब तक घातस्थान उत्पन्न करने चाहिये जब तक संख्यात परिपाटियां समाप्त हों।

शंका-संख्यात परिपाटियां समाप्त होनेपर घातस्थान उत्पन्न नहीं होते हैं यह कैसे जाना जाता है।

समाधान-सूत्रकं अविरुद्ध आचार्य वचनोंसे जाना जाता है।

ये सब हतहतसमुत्पत्तिकस्थान हतसमुत्पत्तिकस्थानोसे असंख्यातगुर्णे हैं। गुण्कारका प्रमाण क्या है ? असंख्यात लोक है। अर्थात् हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंसे असंख्यातलोकगुर्णे हैं। इस प्रकार मिथ्यात्व प्रकृतिके स्थानोंका कथन किया।

विश्रोपार्थ-अब हतहतसमुत्पत्तिक स्थानोंका कथन दूसरी परिपाटीसे करते है। बन्ध-समःपत्तिकस्थान सम्बन्धी अन्तिम श्रष्टांक श्रौर उर्वंकके बीचमें श्रसंख्यात लोकप्रमाण इत-समुत्पत्तिकस्थान होते हैं। तथा हतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी श्रन्तिम श्रष्टांक श्रीर उर्वकके बीचमे श्रसंख्यात लोकप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकस्थान होते हैं। प्रथम परिपाटीसे उत्पन्न हतहत-समुत्पत्तिक स्थान सम्बन्धी श्रन्तिम श्रष्टांक श्रौर उर्वंकके बीचमें दूसरी परिपाटीसे श्रसंख्यात लोकप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होते हैं। इसी प्रकार इन्हीं स्थानोंके द्विचरम, त्रिचरम, चतुश्चरम, पंचचरम श्रादि हतहतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी श्रष्टांक श्रौर उर्वकोंके बीचमे दसरी परिपाटीसे श्रसंख्यात लोकप्रमाण इतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न करने चाहिये। इस प्रकार प्रथम परिपाटीसे उत्पन्न हुए हतहतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी श्रष्टांक श्रौर उर्वेकोंके बीचमें दूसरी परिपाटीसे हतहतसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न करने चाहिये। ऐसा करनेसे हतहत-समृत्यित्तिकस्थानोकी दूसरी परिपाटी समाप्त होती है। दूसरी परिपाटीसे उत्पन्न हुए हतहतसमु-त्पत्तिकस्थान सम्बन्धी त्रप्रष्टांक त्रौर उर्वकोके बीचमें फिर भी त्रसंख्यात लोकप्रमाण हतहत-समुत्पत्तिकस्थानोंको तीसरी परिपाटीसे उत्पन्न करने पर इतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंकी तीसरी परिपाटी समाप्त होती है। इस प्रकार अनन्तर उत्पन्न हुए अष्टांक श्रौर उर्वकोंके बीचमे तब तक घातघातस्थान उत्पन्न करने चाहिये जब तक संख्यात परिपाटियां हों। किन्तु श्रन्तिम घात-घातस्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्वकोंके बीचमे घातघातस्थान उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि सबसे अन्तिम पातपातस्थानोंका पात नहीं होता। श्रौर यह बात आचार्य वचनोंसे जानी

असे स्वास्तिक्त स्वाय-णवणोकसायाणं मिच्छुत्तस्सेव तिविहा द्वाणपरूवणा कायव्वा ।

६ ६४३. विसेसाभावादो ।

६ ६४४. संपिष्ट एदेण सुत्तेण देसामासिएण स्विदसम्मत्त-सम्मामिच्छताणं हाणपरूवणं कस्सामो । तं जहा—लदासमाणजहण्णपद्दयपहुिं जाव दारुसमाण-देसघादिउकस्सपद्दए ति ताव एदाणि अभवसिद्धिएि अणंतगुण-सिद्धाणमणंतिम-भागमेत्तपद्दयाणि घेतूण सम्मत्तस्स एगसुकस्साणुभागद्वाणं होदि । पुणो अपुव्वकरणे पदमाणुभागत्वंडए घादिदे विदियमणुभागद्वाणं होदि । एवं पदमाणुभागकंडयप्पहुिं जाव अहवस्समेत्तद्विद्संतकम्मं चेद्वदि ति ताव एदिम्म अंतरे अणुभागकंडयघाद-मिस्सद्ण संखेज्जसहस्साणुभागद्वाणाणि रुब्भंति, दुचिरमादिफाळीओ अस्सिद्ण अणुभागद्वाणुपत्तीए अभावादो । पुणो अहवस्सिद्दिसंतकम्मप्पहुिं जाव एगा दिदी एग-समयकाला ताव एदिम्म अंतरे अंतोस्रहुत्तमेत्ताणि अणुभागद्वाणाणि लब्भंति, सम्मत्तस्स एत्थ अणुसमयओवृह्णाए उवलंभादो । का अणुसमयओवृहणा ? उदय-उदया-विरुषासु पविस्समाणदिदीणमणुभागस्स उदयाविरुषवाहिरदिदीणमणुभागस्स य समयं

जाती है कि घातस्थानोंकी सख्यात परिपाटियाँ बीत जाने पर सबसे श्रन्तमें घातसे जो श्रनुभाग शेष रहता है उसका पुनः घात नहीं होता। इस प्रकार सबसे थोड़ बन्धसमुखितकस्थान हैं, उनसे श्रसंख्यातगुणे हतसमुखितकस्थान हैं श्रीर उनसे भी श्रसख्यातगुणे हतहतसमुखितक स्थान होते हैं। ये स्थान मिथ्यात्व प्रकृतिके श्रनुभागको लेकर कहे गये हैं।

 ^{*} सोलह कपाय और नव नोकपायोंके तीन प्रकारके स्थानोंका कथन
 मिथ्यात्वकी ही तरह करना चाहिये ।

[§] ६२६. क्योंकि दोनोंके कथनमें कोई भेद नहीं है।

[§] ६२७. श्रव इस सूत्रके द्वारा देशामर्शकरूपसे सूचित सम्यक्त्व श्रीर सम्यमिण्यात्व प्रकृतियांक स्थानोंका कथन करते हैं। वह इस प्रकार है - लतासमान जघन्य स्पर्धकसे दारु समान उत्कृष्ट देशघाती स्पर्धक पर्यन्त श्रमन्यराशिसे श्रमन्तगुणे श्रीर सिद्धराशिके श्रमन्तवें-भाग मात्र स्पर्धकोंका लेकर सम्यक्त्व प्रकृतिका एक उत्कृष्ट श्रमुभागस्थान होता है। पुनः श्रपूर्वकरणमें प्रथम श्रमुभागकाण्डकका घात किये जाने पर दूसरा श्रमुभागस्थान होता है। इस प्रकार प्रथम श्रमुभागकाण्डकका चात किये जाने पर दूसरा श्रमुभागस्थान होता है। इस प्रकार प्रथम श्रमुभागकाण्डकचातकी श्रपेत्ता संख्यात हजार श्रमुभागस्थान प्राप्त होते हैं; क्योंकि द्विचरम श्रादि फालियांकी श्रपेत्ता श्रमुभागस्थानकी उत्पत्ति नहीं होती। पुनः श्राठ वर्षप्रमाण स्थितिसकर्मसे लेकर जब तक एक समयकी स्थित रहती है तब तक इस श्रन्तरमे श्रन्तमुहूर्त मात्र श्रमुभागस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि यहां सम्यक्त्व प्रकृतिकी प्रति समय श्रपवर्तना पाई जाती है।

शंका-प्रति समय अपवर्तना किसे कहते हैं ?

समाधान-उदय और उदयावलिमे प्रवेश करनेवाली स्थितियोंके अनुभागका तथा

पिंड अणंतगुणहीणकमेण घादो । एवं सम्मत्तस्स अंतोम्रहृत्तमेत्ताणि चेव अणुभागहाणाणि होति । मिच्छत्ताणुभागे पढमसमय उत्तसमसम्मादि हिम्म असंखे ज्ञलोगमेत्तपिरणामेहि सम्मत्तस्ख्वेण संकामि ज्ञमाणे असंखे ज्ञलोगमेत्त हाणाणि सम्मत्तस्स किण्ण लब्भंति ? ण, तत्थ अणुभागविसे सुप्पत्तिणिमित्तपिरणामाणमभावादो । तं पि कुदो णव्वदे ? सम्मत्तस्स अंतोम्रहुत्ताणि चेव अणुभाग हाणाणि होति ति भणंता इरिए हितो । सम्माइ हिम्म मिच्छते सम्मत्तस्सुविर संकममाणे अणुभाग हाणाणं वियप्पा किण्ण लब्भंति ? ण, मिच्छत्ते सम्मत्तस्सुविर संकममाणे अणुभाग हाणाणं वियप्पा किण्ण लब्भंति ? ण, मिच्छत्ते सम्मत्ताणुभाग सम्मत्ताणुभाग स्वय्या परिणममाणे पोराणाणुभागं मोत्तूण अणुभागविष्ट हाणीणमणुवलंभादो । एवं सम्मामिच्छत्तस्स विवत्तव्वं । णविर एदस्स संखे ज्ञसहस्समेत्ताणि चेव अणुभाग हाणाणि होति । कंड यद्यादेण विणा अणुसमय-ओव हणाण्य अणुभाग हाणाणमणुवलंभादो ।

एवमणुभागे ति जं पदं तस्स अत्थपरूवणा समता।

उदयावित्ससे वाहरकी स्थितियोंके अनुभागका जो प्रतिसमय अनन्तगुणहीन क्रमसे घात होता है उसे प्रतिसमय अपवर्तना कहते हैं।

इस प्रकार सम्यक्त्व प्रकृतिके अन्तर्मृहत्मात्र ही अनुभागस्थान हाते हैं।

शंका—उपशम सम्यन्द्रष्टिके प्रथम समयमं असख्यात लोकमात्र परिणामोके द्वारा मिध्यात्वका अनुभाग सम्यक्त्व प्रकृतिरूपसे संक्रमण् करता है। ऐसी अवस्थामें सम्यक्त्वके अमंख्यात लोकमात्र स्थान क्यो नहीं होते ?

समाधान-नहीं, क्योंकि उस समय अनुभागविशेषकी उत्पत्तिमें निर्मित्तभूत परिणाम नहों होते।

शंका-यह कैसे जाना ?

समाधान-सम्यक्त्व प्रकृतिके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही अनुभागस्थान होने हैं ऐसा कथन करने वाले आचार्योंसे जाना।

शंका—सम्यग्दष्टिके मिध्यात्वका सम्यक्त्व प्रकृतिमे संक्रमण होने पर अनुभागम्थानोंके विकल्प क**ों** नहीं पाये जाते ।

समाधान—नहीं, क्योंकि मिध्यात्वके अनुभागके सम्यक्त्वके अनुभागरूपसे परिणामन करने पर पुराने अनुभागको छोड़ कर अनुभागकी वृद्धि अथवा हानि नहीं पाई नानी है। अर्थान् प्राना ही अनुभाग रहता है, न वह घटता है और न बढ़ता है।

इसी प्रकार सम्यग्निध्यात्व प्रकृतिका भी कथन करना चाहिये । इतना विशेष है कि सम्यग्निध्यात्व प्रकृतिके संख्यात हजारमात्र ही अनुभागस्थान होते हैं, क्योंकि काण्डकघातके बिना प्रतिसमय श्रपवर्तनाके द्वारा अनुभागस्थान नहीं होते हैं ।

> इस प्रकार गाथामें ऋाये हुए 'ऋनुभाग' पदका व्याख्यान समाप्त हुऋा । श्रनुभागविभक्ति समाप्त ।

त्रगुभागविहत्ती समत्ता

१ त्रगुभागविहत्तिचुणिसुत्ताणि

'एत्तो त्र्रणुभागविहत्ती दुविहा—मूलपयडिअणुभागविहत्ती चेव उत्तरपयिह-अणुभागविहत्ती चेव । एत्तो मूलपयडित्र्रणुभागविहत्ती भाणिदव्वा ।

उत्तरपयिङ अणुभागिवहित्तं वत्तइस्सामो । पुन्वं गमिणज्जा इमा परूवणा । सम्मत्तस्स पढमं देसवादिफ इयमादिं काद्ण जात चिरमदेसवादिफ इगं ति एदाणि फ इयाणि । सम्मामिच्छत्तम्स अणुभागसंतकम्मं सन्ववादिआदिफ इयमादिं काद्ण दारु असमाणस्स अणंतभागे णिहिदं । मिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं जिम्म सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं णिहिदं तदो अणंतरफ इयमादत्ता उत्तरि अप्पिडिसिद्धं । विवस्त स्मायाणमणुभागसंतकम्मं सन्ववादीणं दुष्टाणियमादिफ इयमादिं काद्ण उत्तरिमप्पिडिसिद्धं । चदुसं जलण-णवणोकसायाणमणुभागसंतकम्मं देसवादीणमादिफ इयमादिं काद्ण उत्तरि सन्ववादि ति अप्पिडिसिद्धं ।

ैतत्थ दुविधा सण्णा—चादिसण्णा द्वाणसण्णा च । तात्रो दो वि एकदो णिज्ञंति । मिच्छतस्स अणुभागसंतकम्भं जहण्णयं सन्वचादी दुर्हाणियं । उक्कस्सय-मणुभागसंतकम्मं सन्वचादी चदुर्हाणियं । एवं वारसकसाय-छण्णोकसायाणं । सम्मत्तस्स अणुभागसंतकम्भं देसचादी एगद्वाणियं वा दुर्हाणियं वा । सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं सन्वचादी दुर्हाणियं । एक्कं चेव द्वाणं । चेदुर्मं जलणाणमणुभाग-नंतकम्मं सन्वचादी वा देसचादी वा एगद्वाणियं वा दुर्हाणियं वा तिद्वाणियं वा चउद्वाणियं वा । इत्थिवेदस्स अणुभागमंतकम्भं सन्वचादी दुर्हाणियं वा तिद्वाणियं वा चउद्वाणियं वा । भेतेत्रण स्वचगचित्रसम्पद्विथवेद्यं उद्यणिसेगं । तम्स देसचादी एगद्वाणियं । भेत्रस्तिवेदस्स अणुभागसंतकम्भं जहण्णयं देसचादी एगद्वाणियं । चेद्वस्साणुभागसंतकम्भं सन्वचादी चदुर्हाणियं । णवुंसयवेदस्स अणुभागसंतकम्भं जहण्णयं सन्वचादी चुर्हाणियं । क्वस्साणुभागसंतकम्भं सन्वचादी चुर्हाणियं । ज्वस्साणुभागसंतकम्भं सन्वचादी चुर्हाणियं । ज्वस्साणुभागसंतकम्भं सन्वचादी चुर्हाणियं । ज्वस्साणुभागसंतकम्भं देसचादी एगद्वाणियं । ज्वस्स चिर्मसमयणवुंसयवेदयस्स अणुभागसंतकम्भं देसचादी एगद्वाणियं । ज्वस्तिस चिर्मसमयणवुंसयवेदयस्स अणुभागसंतकम्भं देसचादी एगद्वाणियं ।

'एगजीवेण सामित्तं । मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मं कस्स ? 'उक्कसाणुभागं वंधिदृण जाव ण हणदि । ताव सो होज्ज एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चडिंदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा । 'असंखेज्जवस्साउएसु मणुस्सोववादिय-देवेसु च णित्थ । 'एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण-मुक्कस्साणुभागसंतकम्मं कम्स ? दंसणमोहक्खवगं मोत्तृण सन्वस्स उक्कस्सयं।

मिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? स्रहुमस्स । हृदसमुप्पत्तिय-कम्मेण अण्णदरो एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चर्डारिदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा स्रहुमो वा वादरो वा पज्जतो वा अपज्जतो वा जहण्णाणुभागसंतकम्मं कम्स होदि । एवमहकसायाणं । सम्मत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कम्स ? चिरमसमयअक्ष्वीणदंसणमोहणीयस्स । सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कम्स ? अवणिज्जमाणप् अपिच्छमे अणुभागकंडए वट्टमाणस्स । अणंताणुवंधीणं जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कम्स ? पढमसमयसंजुत्तस्स । कोधसंजलणस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कम्स ? स्वगम्स चिरमसमयअसंकामयस्स । विवासस चिरमसमयसक्तायस्स । विवासस चिरमसमयसक्तायस्स । विवासस चिरमसमयसक्तायस्स । विवासस चिरमसमयसक्तायस्स । विवासस चिरमसमयहित्यवेदयस्स । पुरिसवेदस्य जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कम्स ? स्वयस्स चिरमसमयअसंकामयस्स । विवासस चिरमसमयणवंसयवेदयस्स । विवासस चिरमसमयणवंसयवेदयस्स । विवासस चिरमसमयणवंसयवेद्दयस्स । विवासस चिरमसमयपावंसयवेद्दयस्स । विवासस चिरमसमयणवंसयवेद्दयस्स । विवासस चिरमसमयणवंसयवेद्दयस्स । विवासस चिरमसमयणवंसयवेद्दयस्स ।

णिरयगदीए मिच्छत्तस्म जहएणाणुभागसंतकम्मं कस्स ? असिएणस्स हद-समुष्पत्तियकम्मेण आगदम्स जाव हेटा संतकम्मस्स वंयदि ताव। "एवं बारसकसाय-णवणोकसायाणं। सम्मतस्य जहएणाणुभागसंतकम्मं कस्स ? चरिमसमयअक्खीण-दंसणमोहणीयस्स । "सम्मामिच्छत्तस्स जहएणयं णित्थ। 'व्अणंताणुवंथीणमोघं। एवं सव्वत्थ णेदव्वं।

ैंकालाणुगमेण । मिच्छतस्स उकस्साणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ? ैजहएणुकस्सेण अंतोमुहुत्तं । अणुकस्साणुभागसंतकम्मं केवचिरं कालादो

⁽ ११) पु० १५५। (१) पु० १५८। (१८) पु० १६६। (१०) पु० १६६। (१०) पु० १६८। (१०) पु० १८८। (१८८) पु० १८८

होदि ? जहण्णेण श्रंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण असंखेज्जा पोग्गलपरियद्दा । 'एवं सोलस-कसाय-णवणोकसायाणं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ केविचरं कालादो होदि ? जहण्णेण श्रंतोमुहुत्तं । 'उक्कस्सेण वेद्याविद्यागरोवमाणि सादिरे-याणि । 'अणुक्कस्सअणुभागसंतकम्मिओ केचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण श्रंतोम्रहुत्तं ।

मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकिम्मिओ केविचरं कालादो होदि ? जहण्णुक-स्सेण श्रंतोष्ठहुत्तं । एवं सम्मामिच्छत्त-अहकसाय-छएणोकसायाणं । सम्मत्त-अणंताणु-बंधि-चदुसं जलण-तिरिणवेदाणं जहण्णाणुभागसंतकिम्मओ केविचरं कालादो होदि ? जहण्णुकस्सेण एगसमओ ।

ैश्चंतरं । मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसायाणग्रुकस्साणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहरोग्ण श्चंतोग्रुहृत्तं । उक्कस्सेण श्चसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । ैसम्मत-सम्मामिच्छताणं जहापयिं श्चंतरं ।

जहराणाणुभागसंतकिम्मयंतरं केविचरं कालादो होदि ? मिच्छत्त अद्दक्षसाय-अणंताणुबंधीणं च मोत्तूण सेसाणं णित्य झंतरं। भिच्छत्त- ऋदकसायाणं जहराणाणुभागसंतकिम्मयंतरं केविचरं कालादो होदि ? 'जहराणेण श्रंतोम्रहुतं। उकस्सेण असंखेज्जा लोगा। अणंताणुबंधीणं जहराणाणुभागसंतकिम्मयंतरं केविचरं कालादो होदि ? जहराणेण झंतोम्रहुतं। "उकस्सेण उट्टवपोग्गलपरियद्टं।

"णाणाजीवेहि भंगविचओ। "तत्थ श्रद्वपदं। जे उक्कस्साणुभागविहित्तिया ते अणुक्कस्साणुभागस्स अविहित्तिया। जे श्रणुक्कस्साणुभागस्स विहित्तिया। जेसि पयडी श्रित्थ तेसु पयदं, अकम्मे अञ्ववहारो। एदेण अद्व-पदेण। "सञ्चे जीवा मिच्छत्तस्स उक्कस्सअणुभागस्स सिया सञ्चे अविहित्तिया। "सिया अविहित्तिया च विहित्तिओ च। सिया अविहित्तिया च विहित्तिया च। अणु क्कस्सअणुभागस्स सिया सञ्चे जीवा विहित्तिया। सिया विहित्तिया च श्रविहित्तिओ च। "सिया विहित्तिया च अविहित्तिया च। एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-वज्जाणं। सम्मत्त-सम्मामिच्छताणमुक्कस्सअणुभागस्स सिया सञ्चे जीवा विहित्तिया। "एवं तिएए। भंगा।

'णाणाजीवेहि कालो । मिच्छत्तस्स उक्तस्साणुभागकम्मंसिया केविचरं कालादो होति ? जहएएएण श्रंतोमुहुत्तं । उक्तस्सेण पिलदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एवं सेसाएं कम्माएं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाएं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्तस्साणु-भागसंतकम्मिया केविचरं कालादो होति ? सञ्बद्धा ।

मिच्छत्त-अद्वकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकिम्मया केविचरं कालादो होंति १ सव्बद्धा । सम्मत-अर्णताणुविधिचतारि-चदुसंजलण--तिवेदाणं जहण्णाणुभागकम्मंसिया केविचरं कालादो होंति १ जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण संखेळा समया । णवरि अणंताणुवंधीणमुक्कस्सेण आविष्याए असंखेळादिभागो । सम्मामिच्छत्त-छएणोकसायाणं जहण्णाणुभागकम्मंसिया केविचरं कालादो होंति १ जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

ंणाणाजीवेहि श्रंतरं । मिच्छत्तस्स उक्तस्साणुभागसंतकम्मंसियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमञ्रो । उक्तस्सण श्रसंखेज्ञा लोगा । 'एवं सेसकम्माणं । णवरि सम्मत-सम्मामिच्छत्ताएां णित्थ श्रंतरं ।

जहण्णाणुभागकम्मंसियंतरं णाणाजीवेहि। मिच्छत-अहकसायाणं णित्य द्यंतरं। सम्मत-सम्मामिच्छत्त-लोभसंजलण-छण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागकम्मंसियाणमंतरं केविचरं कालादो होदि ? जहण्णेणा एगसमओ। उक्कस्सेण छम्मासा। अणंताणु-वंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियंतरं केविचरं कालादो होदि ? जहण्णेणा एगसमओ। उक्कस्सेण असंखेजा लोगा। इत्थि-णयुंसयवेदजहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केविचरं कालादो होदि ? जहण्णेणा एगसमओ। उक्कस्सेण संखेजाणि वस्साणि। तिसंजलण-पुरिसवेदाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केविचरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण वस्सं सादिरेयं।

''अप्पाबहुअमुक्स्सयं जहा उकस्सबंधो तहा। ''णवरि सन्वपच्छा सम्मामिच्छत्त-मणंतगुणहीणं । 'रेसम्मत्तमणंतगुणहीणं ।

जहण्णाणुभागसंतकम्मंसियदंडस्रो। सन्त्रमंदाणुभागं लोभसंजलणस्स अणुभाग-संतकम्मं । मायासंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। भागसंजलणस्स अणुभाग-संतकम्ममणंतगुणं। कोषसंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। सम्मत्तस्स जहण्णाणु-भागसंतकम्ममणंतगुणं। भुतिसवेदस्स जहण्णाणुभागो स्रणंतगुणो। भुक्तिथवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। भुणवंसयवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो। सम्मा-

^(14) Ao 564 1 (44) Ao 472 1 (44) Ao 472 1 (13) Ao 460 1 (44) Ao 464 1 (47) Ao 464 1 (4) Ao 472 1 (6) Ao 478 1 (2) Ao 478 1 (6) Ao 484 1 (40) Ao 478 1 (4) Ao 488 1 (4) Ao 488 1 (3) Ao 486 1 (8) Ao 480 1 (4) Ao 488

भिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । अणंताणुवंधिमाणजहण्णाणुभागो अणंतगुणो । 'कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । ठोभस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । 'रदीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । दुगुंछाए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । भयस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । 'सोगस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । अपचक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । अपचक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । 'मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । पचक्खाणमाणस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । छोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । मायाए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

'णिरयगईए जहण्णयमणुभागसंतकम्मं । सन्वमंदाणुभागं सम्मतं । सम्मामिच्छ-तस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । अणंताणुवंधिमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिखो । लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ । सेसाणि जधा सम्मादिद्वीए वंधे तथा णेदच्वाणि ।

[°]जधा बंधे भ्रजगार-पदणिक्लेव-बड्डीय्रो तहा संतकम्मे वि कायव्वात्रो ।

संतकम्मद्वाणाणि तिविद्वाणि—वंथसमुष्पत्तियाणि इदसमुष्पत्तियाणि इदहद् समुष्पत्तियाणि । 'स्ववत्थोवाणि वंथसमुष्पत्तियाणि । 'दिदसमुष्पत्तियाणि असंखेज्ज-गुणाणि । 'ददहदसमुष्पत्तियाणि असंखेज्जगुणाणि । 'संलिसकाय-णवणोकसायाणं मिच्छत्तसमेव तिविद्वा द्वाणवरूवणा कायव्वा ।

एवमणुभागे ति जं पदं तस्स अत्थपरूवणा समता।



⁽ १) দু০ বৃধ্ধ। (২) দু০ বৃধ্ধ। (২) দু০ বৃধ্ধ। (৪)

२ अवतरण-सूची

श्र वतरस्	पृष्ठ	ग्र धतर ग	র ন্ত	ग्र वंतर ण	â ā
त्र्यांतभाग वड्डिकंड यं	484	एः छुद्ध समागा	(ऋपूर्ण) ३३१	नस्य गामागोदवेद्ग	ग्रीय- ३४०

३ ऐतिहासिक नामसूची

	श्रार्थमंतु उचारणाचार्य २,	३८८ १ ५१		जम्ब्स्वामी नाग इ स्ति	\$55 \$55	 लोहार्यं वर्षमान दिवाकर	३ ८८ ३८८
		२०५	य	यतिवृषभाचार्य यतिवृषभ	१ १२६,		
ग	ुणघर श्राचार्य	३८८		यतिवृषभ	∫ શ્પ્રશ,		
	गौतम	३८⊏		१ ५७, १७६ , र	७१, ३८८		

४ भौगोबिक नामसूची

विषुलगिरि ₹ጜጜ

५ ग्रन्थनामोल्लेख

હ	उचारणा	१७६.	१८६,
	१ ^५, २	٥२ , २१ ٥	, २१६
	२३४,	२३८,	२४२,
		280	, २७३

क कषायप्रामृत ३८७, ३८८ । म महाकच च चूर्णिस्त्र १६५, २०२. महाबन्धस्त्र रे ३८७ २१०, २१८, २३४, २३८ २५८, २७१, २७२ २७३, ३८८

1 233,234

६ चूर्णिसूत्रगत-शब्दसूची

শ্ব	श्रकःम	२१४	त्रसुकस्वारुभागस	ांत ।	१५०, १५१,१६१ १६४,
	त्रहुकसाय	१६४, १६३,	कस्मिश्र	१८६	१६५, १६६,१६⊏, १७१.
		२०६, २३६	श्र शुभागकंडय	१६५	१७२, २५६,२६०, २६ ७
	ऋहपद	२१४	त्रगुभाग खंडय	१७५	श्रयांतगुर्या २५१, २६०,
	त्रगुकस्ता	सुभाग २१४.	श्रग्राभागविह त्ती	ર	रदश, रदश, रदश,
		२१६, २१⊏	त्रागुभाग धंतकम्म	₹₹0,	२६४, २६६, २६७
	त्रगुकस्य	गुभागसंतकम्म	१३१,१३२ १३६	, १३६	२६८, २६६, २७०,
		१ ८६	१४३, १४४, १४६	,१४६.	ऋग् तंत्यु गद ीग्र २५८,२५६

त्र्राग्तभाग	१३०
त्राग् तरफद्दय	१३१
त्र्रगंताग् बंघिचता	रे २३६
श्रगांता गुबंधिमा ग	२६३
•	२७०
श्रगंतागुबंधी १६६	३७१
१९३, २०६.	२०६,
	२६७
श्रण्यदर	१६३
त्रपचक्खा णमाण	२६७
श्रपञ्छिम	१६५
श्रपजत्त	१६३
श्रप्पडिसिक्क १३१	१३२
श्रप्पाबहुश्र	રપૂદ્
ग्र रदि	२६७
श्रवणि ज माण	१६५
र्श्चावहत्तिय २१४,	૨ ૧૫ ,
२१६, २१७,	, २१⊏
ग्र व्यव हा र	२१४
म्रसण्गी १५८.	१६३, १७५
श्रसखेज १८६,	२०१,
	२०६
त्र संखेडांदभाग	२३३,
	२३७ १५ ६
ग्र संखेज्जवस्सा उन्न	१५६
श्र संखेज् जगु ण	३⊏०
। त्रागद	१७ ५
श्चादिफद्दय १३०	, १ ३२
त्रावलि	२३७
इत्थिवेद १४६	१७२,
	२६२
उ क्क स्स १८६,	१८८
₹०१, २०६,	
- 1,,	२३७
उ क्क स्सबंघ	 ર ય દ
उनकस्सय १३६	
रद०	, २५६

쬐

इ

3

उक्कस्साणुभाग १५८. २१५, २१७ उक्कस्सा गुभागविहत्तिय २१४ उक्कस्याणभागसंतकम्म १५०, १५७, १६० उक्कस्टाग्राभागसंतकमिनग्र १८४, १८७, २०१ २३३. २३४ उत्तरपथडिश्रग्रुभागविहित्त उ**दयग्रि**सेग १४८ उषद्विद १७३ उषड्रपोग्गलपरियष्ट २१० ए एइंदिश्र रध्र⊏, १६३ एगजीव १५७ एगडाणिय १४३, १४६ १४८, १४६, १५१, एगममय १६३. २३६ श्री श्रोघ 308 श्च श्रंतर २०१, २०२, २०६ २०८ २०६ **त्र**तोमुहृत्त १८६, १८७, १८६, १६३, २०१, २०६. २३३, २३७ कम्म २१७, २३३ काल १८५, १८६, १८७ १८६, १६२, ८६३, २०१, २०६, २०८, २०६, २३३, २३४, २३७ कालाग्रुगम १८५ केवचिर १८५, १८६, १८º, १८६, १६२, १६३ २०१, २०६ २०८, २•६, २३३, २३४, २३६, ५३७ कोध २६४, २६७, २६८, २७०

कोघसंजलवा १६८, २५६ २६ ० ख खबग १५१, १६८. १७१ 208, 20X खघय १७२ खबगचरिमसमय इतियवेदय १४८ घ घादिसण्णा १३५ च चडरिंदिश्र १५८, १६३ चदुर्हाण्य १३६. १४६, १५०, १५१ चदुसंबलगा १३२, १४६ १६३, २३६ चरिम १७५ चरिमदेसधादिफहरा १२६ चरिमसमयश्रक्ली गढंसग्र-मोहसीय १६४, १७७ चरिमसमयञ्जरं कामय१६८ १७३ चरिमसमयहरिथवेद १७२ चरिमसमयगाचं सयवेदय १५१ १७४ चरिमसमयसकसायि १७१ **छण्णोकसाय १४२ १७**४ १६३, २३७ बहणा १८६, १८७, २०१ २०६ २३३, २३६ १४६, १५०, **जहण्य**य १६१, १६४, १६५, १६६, १६८, २६६ बहण्यागुभाग २६१. २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६६, २७० जहण्याग्राभागकम्मसिय २३६, २३७ बहरणागुप्रभागसंतकम्म 163, 102, 108, 104, 100, 740

	जह ण्याग्राभ	गिसंतव	िमञ्च
	1 22,	983	, २३६
	जह ∞गागुभ	ागसंत व	मि-
	यंतर २०६.	२०८	३०६
			२१०
	जहरुगागुभ	गसंत क	¥मंसिय-
	दंडय		२५६
	जह ागुक्कस्स	। १⊏६	१८६
		१६३,	२३७
	जहा २५६,	२७०,	२७३
	बहापयडि		२०२
	जीव २१५	२१६,	२१७
द	हाग्		१४४
	हाग्य सण्गा		१३५
स	ग् वग्रोक साय	१३२,	१६०
	१७७,	१८७,	२०१
	ग्रवरि	२३७,	२५८
	गावुं सयवेद	१५०,	१७४,
			२६ ३
	गागाजीव	२१३,	२३३
	श्चिरयगदि	१७५,	२६६
त	तहा २५६,	२७०,	ৰ্ ডই
	तिहाणिय		१४६
	तिविद्		३ ३०
	ति येद	१६३,	२३६
	तेइंदिश्र	१५८,	१६३
द	दारुत्रसमाग		१३०
	दुगु [ं] च् छा		२३६
	दुहाशिय	१३२,	₹₹६,
	१४३, १	88,	१५६,
	देसघा दि	१३२	१४३
	१४६, १४८,	१४६,	१ ५ १
	देसघादिफद्दय		१२६
	दंसग्रमो हक्ख	व्य	१६०
ч	पव्यक्खा ग्रामा ग	Ţ	२६८
	पञ्जत		१६३
	पदमसमयसंजु	त	१६६
	पदिशाक्तिव		२७३
	पयडि		२१४

	पयद	20.4
	•	२१४
	परूवगा पलिदोवम	१२६
		२३६
	पुरिसवेद १४६ १७३	
प;	फ द्दय	१२६
व	बादर	१६३
	बादरकसाय १३२,	१४२,
	7.7	१ ७ ७
		, २७३
	बंधसमुप्पत्तिय ३३०	
भ	भय भरा	२६६
	भुजगार 	२७३
	भंग - 1-	२१८
_	भगविचग्र	२१३
म	मग्रुस्सोवनादियदेव	१५६
	माण-मायासंजलण्	१७१
	माग्रसंजलग्र	२६०
	माया २६४, २६८,	२७०
	मायासंजल ख	રપ્રદ
	मिच्छत्त १३१,	१३६,
	१ ५७ , १६१,१७५ _,	१८५,
	१६२, २०१,	२०८,
	२१ ५ , २३ ३,	२३६,
	_	२६८
	मूलपथडिश्र ग्रा भागवि	वहत्ति २
₹	रिंद	२६६
ल	लोग	२०६
	लोभ २६४, २६८,	
	लोभसंबलग् १७१	२५६
व	बद्दमास १६५,	१७५
	ब ड्डि	२७३
	विसेसाहित्र २६३. व	- (
	२६७, २६ ⊏,	
	विहत्तिय २१६,	
	वेइंदिय १५८,	
_	वेस्रावहिसागरोवम	
स	सन्ना	१३५
	सण्णी १५८,	ì
	समय	२३७

समश **₹**₹**€**, १४₹, १६०, १६४, १८७, १६३, २०२, २१७ २३३, २३४, २३६ रप्रह, २६०, २६६, सम्मादिहि २७० सम्मानिच्छत्त १३०, १३१ १४४, १६०, १६५, १७८, १८७, १६३, २०२, २१७, २३३, २३४, २३७, २५८, २६३. २६१, सम्मामिच्छ्रगासुभाग१४४ सन्व २१५, २१६. २१७, २१८, सन्वघादि १३०, १३२ १३६, १३६, १४४, १४६, १५०, १५३, सव्वत्थ 308 सव्वत्योध ३३२ सन्बद्धाः २१४, २३६ सव्वपन्छ। २४⊏ सव्वमंदागुभाग २५६ २६६ सादिरेय **१**८८ सामित्त १५७ िया २१५, २१६, २१७, २१८ १६१, १६३ सुहुम सेस २०६, २१७ २३३, २७८ सोग २६७ सोलसकसाय १६०, १८७ २०१ संखेज्ज २३७ संतकम्म २७३ संतकम्महाया 330 ह इदसमुप्पशियकम्म १६३, १७५ **इदइदस**मुप्पत्तिय ३३० ₹₹ २६५

७ जयधवलागत-विशेषशब्दसूची

अ उ	श्र हंक त्रसुभाग त्रसुभागडोस त्रसुभागविहत्ति उक्कडुसावड्डि उत्तरपयडि उत्तरपयडिक्रसुभा	३ २ २ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३	द प फ ब म	डाणपरूवणा देसवादि पदिणिक्खेः पदिणिक्खेनपरूपणा फद्द्य बंघडाण बन्धममुत्पिक मगुस्सोबनादियदेन	३४ १२५ १२५ ३३१ १५ <u>६</u>	स इ	विसंजोयणा विसोहिडाण सण्ण। सञ्चघादि ३, सुहुमिणिगोदजहरण भागडाण इतसमुत्पत्तिक १६३ इतहतसमुरुपत्तिक	गणु- ३४४ ३३१ ३ ३१
क	कंडय	₹३४		मूलपया बिश्च शुभागा	वहात्तर		इ दसमुप्पत्तियसंतकम	
भ्य	खबग्रा	२०८	व	वगा	488		^ .	१२६
घ	घादि	१३५		वग्गगा ३४४,	३४⊏		इदइदसमुप्पत्तियसंत	•
च	चरिमसमयश्रसंका	मय१६६		विद्वृ	१ १ २		कम्म डाग्	१२६
ट	हाण	१३५		व ृिपरूनगा	३३१			

